विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख्यपत्र

VIJNANA THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक प्रधान सम्पादक—

प्रो० डाक्टर गोरख प्रसाद डी. एस-सी. (एडिन)

सहायक सम्पादक

श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम. ए. बी. एस-सी.

विशेष सम्पादक

डा० निरञ्जन डी एस-सी; डा० राम शरण दास डी. एस-सी.
श्री चरण वर्मा, डा० सत्यप्रकाश डी- एस-सी.,
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, श्री रामनिवास राय ।

—o—

भाग ५४

तुला-मीन १९९८, अक्टूबर-मार्च १९४२.

प्रकाशक—

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग ।

विषयानुक्रमणिका

आयुर्वेद विज्ञान व चिकित्सा विज्ञान

उद्योग और कलाकौशल

कृषि-शास्त्र

छाया चित्रण (फोटोग्राफी)

प्राणि विद्या

भौतिक विज्ञान

रसायन विद्या

बागवानी

विविध विषय

विकास वाद

शरीर विज्ञान

साधारण

जीवन चरित्र

विषयानुक्रमणिका समाप्तः

भाग ५४ | अक्टूबर, १९४१ | संख्या १

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख्य-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है

विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
३१६

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वह आज २८ वर्षसे परिश्रम कर वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों का चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलेंगी।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें '**मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद**' के पास भेजे जायं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३। ५ ॥

भाग ५४ | तुला, संवत् १९९८ विक्रमी | अक्टूबर, सन् १९४१ | संख्या १

हे जीवन !

दिन करकी आभा के तुम शुचि प्रकाश हो ?
या कोई निर्मल दिव्य दीप्ति के पराभास हो ?
सकल विश्व में व्याप्तमान कोई चपला हो ?
या महेश मस्तक वासी की अगम कला हो ?
जग जननीके दिव्य रूप की तुम आभा हो ?
गगन गंग के धवल धार की क्या प्रभा हो ?
विश्व जलधि में जीव तरणि के केवट हो ?
हो विलीन कहिं प्रकट छिपे नटखट हो ?
प्रकृति नटी के नाटक में क्या सूत्रधार हो ?
स्वयम् कौतुकी बने क्या छलिया अपार हो ?
जीव वापिका में लहरें उठ मिट जाते हो ?
क्या मिट जाते हो या अन्तरहित हो जाते हो ?
ये जग में प्रभु एक रूप हो या अनन्त हो ?
दे दो अपना पता जगत में विश्वमन्त हो ?
हे ! हे जीवन दो बता हमें क्या रूप तुम्हारा ?
मिलता कुछ भी है नहीं तुम्हारा पारावारा ?

'स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य'

विज्ञान का सञ्चालन नए हाथों में

मानव प्राणीमें जैसे २ सभ्यता व विचार बढ़ते गए अर्थात् बुद्धि का विकास होता गया वैसे वैसे इसकी आवश्यकताभी बढ़ती गई। 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है' यह अक्षरशः सत्य है। कोई ऐसा समय भी था जब मनुष्य वस्त्रोंके स्थान पर वृक्षोंके बल्कल और पशुओंकी त्वचा धारण कर शीतसे अपने शरीर की रक्षा करता था। कोई समय ऐसा भी आया कि वह तांबे, कांसे और चांदी, सोना जैसी धातुका उपयोग करने लगा, अग्नि जलानेकी विधि जान गया। जब इसे पशु पालनके समय अन्न उत्पन्न करके उसे उपयोगमें लाने का ज्ञान हुआ, पशुओंके बालोंको तकली से कातना तथा उन बालोंसे वस्त्र बुनना सीख गया और उससे अच्छी तरह तन ढंकने लगा तबसे यह सभ्य कहलाया। इसके काफी समय पश्चात् जब लोहे का पता लगा तो इसने चर्खा नामक यन्त्र का आविष्कार किया। जिससे वह बारीक सूत कातने लगा और बारीक वस्त्र बुननेकी विधि मालूम की, जिस युगमें आकर कांसे, तांबेके शस्त्रोंका स्थान लोहेने ले लिया वह समय कलियुगके जन्मका था। पुराने विचारक इसे कलियुग कहते हैं पर वास्तवमें यह कलियुग नहीं करयुग या कृतयुग था। इस युगमें मनुष्यने बुद्धि विकास द्वारा अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियोंकी सहायता प्राप्त कर स्थावर जंगम अनेक चराचरकी वस्तुओंसे काम लेना सीखा। इसकी बुद्धि समय पाकर इतनी प्रखर हुई कि इसने कृत्रिम इन्द्रियां बना लीं। जिन सूक्ष्म वस्तुओंको यह आंखसे नहीं देख सकता था, जिन सूक्ष्म शब्दों को कानसे नहीं सुन सकता था, जिस सूक्ष्म गन्धका ज्ञान इसके नाकसे नहीं होता था, जिस रसका पता जिह्वासे ठीक-ठीक नहीं लगता था उसका सही सही पता यह कृत्रिम ज्ञानेन्द्रियों से लगाने लगा। यही नहीं, जो काम यह हाथोंसे महीनों व वर्षों में जाकर करता था, उन्हीं कामोंको यह कृत्रिम हाथों द्वारा कुछ घण्टों, दिनोंमें ही कर दिखलानेमें सफल हुआ। पाठक कहेंगे वह कौनसी इसने कृत्रिम इन्द्रियां लगा लीं? जिससे इसमें यह सत्ता बढ़ गई। वह हैं यन्त्र। आधुनिक यन्त्र इसकी ऐसी कृत्रिम इन्द्रियां हैं जिसने इसके इन्द्रिय बलको हजारों गुणा बढ़ा दिया है।

आप दूर न जाकर इस समयके युद्ध पर ही दृष्टि डालिये! और सोचिए कि यह नर संहारकारी शक्ति मानवी ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों की शक्तिसे कितनी बढ़ी हुई है। एक मिनटमें जो मनुष्य हाथोंसे लाठी उठाकर एक दो आदमियोंको ही मार सकता था आज वह उन्हीं हाथों पर मशीनगनें, तोपें, टैंक साधे हुए एक मिनटमें सैंकड़ों क्या हजारों जीवित प्राणियोंका संहार कर रहा है। जहां पैरोंसे यह कठिनतासे ४-६ मील घण्टेमें दौड़ सकता था, वहां आज रेल, मोटर साइकिल, हवाईजहाजमें बैठ घण्टेमें पचासों क्या सैंकड़ों मील दौड़ सकता है। जिस विश्वको दूर या सूक्ष्म होने के कारण यह अपनी आंखसे नहीं देख सकता था आज दूरबीन या खुर्दबीनकी सहायतासे उसे प्रत्यक्ष देख रहा है। कुछ पुराने विचारकों की राय है कि मनुष्य को अपनी साधारण स्थिति में ही रहना चाहिये, मनुष्यको कृत्रिम इन्द्रियोंकी सहायता नहीं लेनी चाहिए। वह यह कहते हुए मानव-प्राणी की बढ़ी हुई आवश्यकता को नहीं समझते, न मानवी प्रकृतिका अध्ययन करते हैं। संसार जिन कृत्रिम इन्द्रियों (साधनों) का अभ्यासी बनता जा रहा है और धीरे धीरे उसका आदि हो चुका है उसे वह एकाएक छोड़ देगा यह कब सम्भव है।

किसीने बापू जी से कहा आपको बिना चश्मा लगाये ही रहना चाहिए 'कहने लगे यह तो हमारी आंखें हैं' उसने चट कहा कृत्रिम आंखे हैं या स्वाभाविक? आप उसका मतलब समझ हंस पड़े।

संसारमें जैसे २ मानवी सृष्टि बढ़ रही है उसकी वृद्धिके साथ उसकी आवश्यकताएं भी बढ़ रही हैं और उस आवश्यकता की पूर्तिके लिए यह संसारमें नयेसे नये कृत्रिम साधन ढूंढ़ रहा है। इसके इन साधनोंका नाम है कला-कौशल। मनुष्य जब इन कलाओं कृत्रिम सहायक साधनों द्वारा सुविधा, सुख और मनोवांछित कामनाको जिस कुशलतामें पूर्ति कर सुख सम्पत्ति प्राप्त कर रहा है, इसकी इस विशेषताको जिस देशके आदमी नहीं समझते वह कभी भी स्वतन्त्रता, ऐश्वर्य व सुखका उपभोग नहीं कर सकते।

विज्ञान का जन्म क्यों हुआ?

हम भारतियोंमें ज्ञानी, महाज्ञानी आजसे नहीं हजारों वर्ष पूर्वसे होते चले आये हैं, पूर्व कालमें कुछ थोड़ा बहुत विज्ञान भी प्राप्त किया था और यह कुछ समय तक संसारमें पथ-प्रदर्शक

भी रहे किन्तु धीरे २ इनके भीतर कुछ ऐसी त्रुटियां और बुराइयां घर कर गईं जिन्होंने इन्हें आगे न बढ़ने दिया। इसका परिणाम कुछ समयमें ही यह देखनेको मिला कि 'गुरू जी गुड़ ही रहे चेला जी शक्कर बन गए' और इन्हें इसका पता तब लगा जब चेलाजी गुरू को गुलाम बना कर लगे उल्टा अपना गुरू मन्त्र कानमें फूंकने।

आज दो शताब्दी पूर्व जब तक हमारा सम्पर्क विदेश-वासियोंसे नहीं हुआ था हमें इस बात का पता न था कि विदेश में ज्ञान विज्ञानका रूप ग्रहण कर रहा है। गुलामीकी हालतमें जब उनके उल्टे मन्त्रोपदेश से पता लगा कि भारतेतर संसार बड़ी तेजीसे आगे बढ़ता चला जा रहा है, उसका ज्ञान वेगसे विज्ञानमें परिणित हो रहा है। वहां नये से नये पदार्थ सम्बन्धी विद्याओंके आविष्कार होते रहते हैं। जितना कुछ हमने समझा था वह इससे बहुत आगे निकले जा रहे हैं। वह अब चरखा के तकलको हाथसे न फिरा कर वाष्प, तेल, व विद्युत् शक्तिसे फिराने लग रहे हैं। हर एक काम को नकली हाथों (यन्त्रों) से करनेकी चेष्टाकी जारही है। जिन बातोंको हम तर्कसे समझते थे, उन्हीं बातोंको वहां प्रत्यक्ष साधनोंसे समझा जा रहा है; यही नहीं, इस विश्वके पदार्थ-विज्ञानसे उनकी मानसिक उन्नतिमें सहायता ही नहीं पहुंचती प्रत्युत शारीरिक, आर्थिक हर एक बातकी उन्नतिमें वह बहुत आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

मनुष्य जिस बातको नहीं जानता प्रथम उसे जाननेकी रुचि होती है, जब उसे जान लेता है तो उससे काम लेना आरम्भ करता है। तथा लाभ उठाने की चेष्टा करता है। हमारे देश-वासी आधुनिक विज्ञानसे उसी प्रकार अपरिचित थे जिस प्रकार छोटा बालक अक्षरोंसे। विद्या पढ़नेसे क्या होता है? इसको बालक नहीं जानता किन्तु उसके लाभको माता पिता जानते हैं। इसीलिये बालकको पढ़नेके लिये वह विवश करते हैं।

सन् १९१४ का जिकर है कुछ वयोवृद्ध दूरदर्शी विज्ञान प्रेमियोंने प्रयागके त्रिवेणी तट पर विज्ञान परिषद् नामकी संस्था स्थापन की और उन्होंने देशकी दशाको देखते हुए यह निश्चय किया कि संसारके विवर्द्धित ज्ञान-विज्ञानको भारतीय जनता तक पहुंचाया जाय, ताकि वह भी कुछ विशेष ज्ञानका प्रकाश पाकर इस ओर अग्रसर होनेकी चेष्टा करें। परिणामतः १९१५ एप्रिल को परिषदने मातृ-भाषा हिन्दीमें विज्ञानको जन्म दिया। विज्ञान का आरम्भ से उद्देश्य यही रहा है कि अपने देशवासियों को बताया जाय कि प्रत्येक कला-कौशल व उसका विशेष ज्ञान संसारमें किस तरह बढ़ रहा है। उससे संसारको क्या लाभ मिल रहा है। भारतीय भी इससे लाभ उठावें और हर एककी अभिरुचि इस ओर बढ़े, यह प्रयत्न था। विज्ञानने आज २५ वर्षोंमें जनताकी इस ओर रुचि बढ़ानेकी जो महान चेष्टायें कीं वह किसीसे छिपी नहीं। विज्ञानकी ही कृपाका परिणाम है कि बहुत से भारतीय मासिक पत्र भी जनता की इस ओर रुचि को बढ़ता देख अपने पत्रोंमें विज्ञान विषयक लेखोंको विशेष स्थान देने लग पड़े, विज्ञानने अपने परिश्रमसे अपनी मातृ भाषा द्वारा जो विस्तृत क्षेत्र तय्यार किया है वह अब किसीसे छिपा नहीं। इसने इस समय तक विज्ञान सम्बन्धी अनेक विषयके जो ग्रन्थ तय्यार करके मातृ-भाषाके ज्ञान भण्डार की पूर्ति की है इसको विद्वत् समुदाय जानता है।

विज्ञान का युवावस्था में प्रस्थान

अब विज्ञान इस योग्य हो रहा है कि वह केवल आरम्भिक ज्ञान ही न दे, प्रत्युत ऐसा क्रियात्मक ज्ञान विज्ञान दे जिसकी सहा-यतासे देश-वासी कुछ अपने हाथों व यन्त्रों द्वारा किसी कार्य को करके सुखैश्वर्य का साधन प्राप्त कर सकें। इसीलिये विज्ञान अधिकाधिक प्रायौगिक ज्ञान विज्ञानकी ओर बढ़ रहा है। पाठकों से छिपा नहीं कि विज्ञान कुछ समयसे ऐसी सामग्री पाठकोंके अर्पण कर रहा है जो केवल ज्ञान वर्धक ही नहीं प्रत्युत अर्थवर्द्धक और बुद्धि-वर्द्धक भी है। अभी यह छोटे-छोटे उद्योग धन्धों-घरेलू व्यवसायोंकी जानकारी और उनको करनेके विधान बतला रहा है किन्तु इतनेसे इसके संचालकोंको सन्तोष नहीं। इसलिये परिषद्ने निश्चय किया विज्ञानको अधिक समुन्नत करनेके लिये ऐसे उत्साही कार्य-कर्ताओंके हाथोंमें इसका संचालन दिया जाय जो इसे प्रत्येक प्रकारसे समुन्नत करनेमें समर्थ हों। इसीलिये इसके प्रकाशन का प्रबन्ध व संचालनका भार **पंजाब आयुर्वै-दिक फार्मेसी** के हाथोंमें सौंपा गया।

हमारी इच्छा

यह युग विज्ञानका युग है अर्थात् विशेष ज्ञान सम्पादनका युग है। जो व्यक्ति अपने व्यवसायमें निपुण होकर उसमें विशेष दक्ष व चतुर नहीं होते, अपने प्रतिस्पर्द्धियों से वह विशेष ज्ञान सम्पादन द्वारा अधिक नहीं बढ़ पाते कभी इस प्रति-स्पर्द्धाके मैदान में जीत नहीं सकते, यह निश्चित बात है। वैद्यक विषयको ही

लीजिए—आयुर्वेदज्ञ यह समझा करते थे कि जितना हमारे ग्रन्थों में ज्ञान विज्ञान है उससे अधिक और क्या होगा किन्तु नहीं, उन्हें थोड़े समयमें ही पता लग गया कि जिस तरह संसारमें मानव संख्या बढ़ रही है उसीप्रकार रोग, औषधज्ञान, शरीर ज्ञान, निदान ज्ञानादि सब बढ़ रहे हैं और चिकित्सा संसारमें नईसे नई चीजें देखने व समझनेको मिलती हैं। जो वैद्य प्राचीन आयुर्वेदके साथ अर्वाचीन ज्ञान विज्ञान के सम्पर्कमें आते हैं वह उन वैद्यों से अधिक दक्ष होते हैं जो केवल प्राचीन आयुर्वेद ही जानते हैं। रोगी भी ऐसे वैद्यों के हाथों चिकित्सा कराना अधिक पसन्द करते हैं जो दो तीन चिकित्सा पद्धतियोंका ज्ञान रखते हैं। वैद्य भी आधुनिक विज्ञान युगका प्रसाद (थर्मामीटर, स्टेथस्कोप आदि अनेक कार्य साधक-यन्त्र) साथ रख कर रोगियोंको यह बतानेकी चेष्टा करते हैं कि हम भी इनके उपयोगमें व्युत्पन्न हैं।

विज्ञान इन्हीं समस्त नई बातोंकी शिक्षाके लिये जन्मा है इसका काम है कि प्रत्येक अत्यावश्यक और व्यावहारिक उपयोगी बातें बतावे; जो वैद्य ऐसे उपयोगी पत्रकी विशेषताको नहीं जानते केवल अनुभूत नुसखोंकी तलाशमें अनुपयोगी पत्रोंके पृष्ठ उलटते रहते हैं, निश्चय है कि वह कभी उन्नति नहीं कर सकते।

किसी रोगी की चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने के लिये केवल अनुभूत योग मिल जाने से काम नहीं चल सकता, रोगको समझना और रोगीकी प्रकृतिको समझना तथा औषधि के गुण धर्मको समझना यही सबसे बड़ी बातें हैं। वयोवृद्ध वैद्य क्यों योग्य और विश्वसनीय माने जाते हैं? इसीलिये कि उन को चिकित्साके चतुष्पादका पूर्ण ज्ञान होता है। वह साधारण सी युक्तियोंसे कठिन रोगोंके इलाजमें सफल हो जाते हैं। यह विशेषता उनमें विशेष ज्ञान सम्पादनसे आती है, न कि अनुभूत योग जान लेनेसे। चिकित्साके चतुष्पादका विशेष ज्ञान उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा मिल सकता है जो विशेष रूपसे ज्ञान विज्ञान सम्पादित अनुभव प्राप्त करते रहते हैं। यह प्रसन्नताकी बात है कि इस विज्ञानको उन विद्वानों अनुभवी पुरुषोंका सदासे सहयोग मिलता चला आ रहा है और आज भी मिल रहा है। हम उन वयोवृद्ध योग्य विद्वानों की प्रेरणा से इस पत्रमें निम्न विशेषताएं लानेकी चेष्टा कर रहे हैं और उसका आरम्भ इस अंकसे कर रहे हैं।

(१) विज्ञानके योग्य विद्वान् लेखकोंसे विज्ञान विषयक ऐसे लेख प्राप्त किये जांय जो प्रायः सचित्र हों और क्रियात्मक रूपसे लाभ पहुंचाने वाले हों

(२) कला कौशल सम्बन्धी लेखोंको विशेष स्थान दिया जाय।

(३) चिकित्सा पद्धतिमें सहायता देने वाले लेखोंको अधिक स्थान मिले।

(४) विज्ञानके नयेसे नये आविष्कारोंकी सूचना और रहस्य समझायें जांय।

(५) व्यापारिक और औद्योगिक विषयकी जानकारी बढ़ाई जाय।

(६) यान्त्रिक साधनोंका उपयोग बतलाया व समझा जाय।

(७) ग्राहकोंके आवश्यक व उपयोगी प्रश्नोंका उत्तर दिया जाय।

सहयोग की आवश्यकता

किन्तु कोई भी पत्र तभी उपयोगी लेख संग्रह कर सकनेमें समर्थ रहते हैं जब उनकी ग्राहक संख्या काफी हो। अच्छे लेखों को संग्रह करने में कितना व्यय करना पड़ता है इसमें भारतीय जनता बहुत कम परिचित है। हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करेंगे कि वह एक दो वर्ष तक विज्ञानके ग्राहक बन कर इसकी उपयोगिताको देखें। यदि इसके द्वारा देश जाति व समाजके किसी भागका भी उपकार होता है तो इसको प्रोत्साहित करना उनका कर्त्तव्य होना चाहिए।

विदेशोंमें विज्ञान सम्बन्धी विषयके एक एक देशसे बीसों पत्र निकलते हैं यह अभागा देश भारत ही है जहां केवल विज्ञान विषयक यही एक मात्र पत्र है जिसकी ग्राहक संख्या इतने बड़े देशमें हजारके भीतर है, कितनी अज्ञानता और पढ़े लिखों की कमी कही जा सकती है।

साधारण पढ़े लिखोंको शिकायत है कि इसमें ऐसे लेख होते हैं जिनको साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकते। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि विज्ञान कोई उपन्यास नहीं है प्रत्युत विशेष ज्ञानविवर्धित वह विद्या है जिसका ज्ञान सबको नहीं होता। इसीलिये विज्ञानको मनन पूर्वक देखने व समझनेसे ही इसे समझा जा सकता है, और जो इसे समझते हैं वह इसकी सहायतासे लाभ उठाते हैं। पाठकों को चाहिए, कि उपन्यास व नावलोंको छोड़ कर विद्या व्यसनी व विज्ञान प्रेमी बनकर भारत का मस्तक ऊंचा करें। यही अन्तिम प्रार्थना है।

हरिशरणानन्द

बच्चों में वमन

[लेखक—कैप्टेन उमाशङ्कर प्रसाद, आई० एम० एस०]

मस्तिष्कमें प्रत्येक अंगको संचालित करनेके लिये विशेष केन्द्र स्थित हैं। इसी प्रकार सांस लेने, वमन करने आदिके भी केन्द्र हैं। इन विशेष केन्द्रोंमें उत्तेजना होनेसे उस विशेष केन्द्र की क्रिया होने लगेगी। उदाहरणात: यदि श्वास केन्द्र को किसी प्रकार उत्तेजित किया जाय अथवा यह केन्द्र परावर्तित हो जाय तो श्वास का वेग बढ़ जायगा। वमन करने की क्रिया बहुत टेढ़ी है। इस क्रियामें कई मांस पेशियां कार्य करती हैं पर इनको चलानेका केन्द्र मस्तिष्कमें स्थित है। वमन केन्द्रके प्रत्यावर्तनके लिये उत्तेजना दो प्रकारसे पहुंच सकती है:— (१) आमाशय की दीवारों द्वारा उत्पन्न उत्तेजना, (२) कपालके भीतर दबाव बढ़नेसे मस्तिष्क पर दबाव द्वारा।

बुखारकी दशा (जैसे चेचक, निमोनिया आदि) में वमन के दोनों ही कारण रहते हैं। ऐसी दशामें आमाशयमें पाचन शक्ति कम रहती है तथा उत्तेजना शक्ति बढ़ जाती है जिसके कारण पत्यावर्तन क्रिया द्वारा वमन केन्द्र उत्तेजित हो जाता है। ऐसी बीमारियोंसे मृत बालकोंके, आमाशयको देखनेसे आमाशयके भीतर रक्त-स्त्रवण पाया गया है। दूसरी बात यह है कि बुखारमें बच्चोंके मस्तिष्क की झिल्लियोंमें कुछ सूजन भी आ जाती है तथा कपालके भीतर जलका दबाव साधारणसे बहुत अधिक रहता है जिससे वमन होने लगता है। यदि यह दबाव कम कर दिया जाय तो वमन दूर हो जाता है।

प्रबल वमन (Acute Vomiting)

साधारणत: वमनमें अधिकता होने का कारण अन्नमार्गकी बिमारी है। ऐसे समय वमनके साथ ही दस्तोंकी भी अधिकता होती है तथा अनपच भी हो जाती है।

यदि केवल वमन ही हो और दस्त न हों तो बिमारीके कारण का पता लगाना सरल हो जाता है। साधारणत: बच्चेके भोजनमें कोई बदली बहुत जल्द कर दी जाय अथवा फटा हुआ खट्टा दूध पिलाया जाय या दूध बदल दिया जाय तो अनपच और वमन होने लगेगा। यह हाल प्राय: उन बच्चोंमें पाया जाता है जो मां का स्तन-पान नहीं करते हैं बल्कि बोतल से या ऊपरका दूध पीते हैं। मां का स्तन पान करने वाले बच्चोंमें यह दशा बहुत कम पाई जाती है।

स्तन पान करने वाले बच्चेका आमाशय २ घण्टेके बाद खाली हो जाता है इसके पश्चात् आमाशयमें उदहरिकाम्लही पाया जाता है। लेकिन बोतलसे ऊपरका दूध पीने वाले बच्चेके आमाशयको खाली होनेमें ३½ घण्टेसे भी अधिक समय लग जाता है और नमकका तेजाब उस समय आमाशयमें नहीं मिलता है।

अधिक वमनके इलाजमें (दस्त भी हों या नहीं) १२ से २४ घण्टे तक कुछ भी खाना नहीं देना चाहिये, लेकिन जल बिना रुकावटके देना चाहिये क्योंकि वमन तथा दस्त द्वारा शरीरसे सब जल बाहर निकल जाता है इस जलके साथ नमक भी निकल जाता है इसलिये पिलानेके लिये नमक का पानी (१ पाइन्ट पानीमें १ ड्राम खाने वाला साधारण स्वच्छ नमक) बहुत उपयोगी है। प्रत्येक ३ आउन्स पानीमें चायके १ चम्मच बराबर ग्लूकोस (विशेष प्रकार की शक्कर) भी डाल देनी चाहिये क्योंकि यह शक्ति-वर्धक है। यदि केवल सादा जल पीनेको दिया जाय तो शरीरसे नमक का भाग निकल जानेके कारण पानी शरीरमें न रुकेगा, बल्कि पेशाब बन कर तुरन्त बाहर चला जायगा और कुछ लाभ न होगा। यदि दस्तमें आधा पचा हुआ फटा दूध हो या प्रारम्भमें रोगी आवे जब पेट में मल अधिक हो तो रेण्डीका तेल थोड़ी मात्रामें उपयोगी है यदि वमन बन्द न हो तो थोड़ी मात्रामें कैलोमल १/१० ग्रेन (Calomel gr. 1/10), सोडाबाइकार २ ग्रेन, (Soda-bicarb gr. 2), कैम्फर १/२ ग्रेन (Camphor gr. 1/2). प्रत्येक आधा घंटे पर ६ खुराक तक खिलाना बहुत लाभकर होगा, नमकके पानीको पीनेके लिये बराबर देते रहना आवश्यक है चाहे वमन न भी रुके। कुछ देर बाद यह जल पचने लगेगा. २०-५० C.C. वह जल सूई द्वारा शरीर में प्रवेश किया जा सकता है जो बहुत उपयोगी होगा।

अन्य कारणों द्वारा प्रबल वमन

डा० हरलिंग्स जैकसन ने कहा था कि 'स्वांसकी खरखराहट हमेशा दमा ही नहीं होता'। उसी प्रकार कहा जा सकता है कि

अजीर्ण से ही वमन नहीं होता ।

कितनी ही प्रबल बीमारियों का प्रारम्भ वमन से होता है । उदाहरणार्थ, बच्चोंमें निमोनिया का प्रारम्भ जूड़ी से नहीं होता है जैसा प्राय; बड़ों में होता है बल्कि बच्चोंमें निमोनिया का प्रारम्भ प्राय; हाथ पैरकी अकड़नसे अथवा वमनसे या दोनों से ही प्रारम्भ होता है परन्तु अधिकतर शुरू में वमन ही होता है ।

बच्चों को वमन सब से अधिक निमोनियां के प्रारम्भ में होता है परन्तु कुछ अन्य रोगों और विशेष ज्वरों में भी शुरू में वमन होता है । किसी रोग में यदि शरीर का ताप बहुत बढ़ जाय तो बच्चों को वमन होगा । गुर्दे की सूजन तथा कान के भीतर हड्डी में सूजन आने में प्रायः वमन होने लगता है । प्रत्येक बच्चेको जिसे ताप एक बारगी बहुत बढ़ जाय और वमन होने लगे तो बच्चे के पेशाब की जांच (Cells) या कोष के लिये तथा कान के पर्दे में सूजन की जांच पहले करनी चाहिये । ऊपर कहा गया है कि मस्तिष्क में वमन केन्द्र दो प्रकारसे उत्तेजित हो सकता है—(१) आमाशयकी दीवारों से उत्तेजना तथा (२) कपाल के भीतर दबाव बढ़ने से । अब हमें वमन का कारण समझने में कठिनाई नहीं होगी क्योंकि हम जानते हैं कि बच्चा भोजन को और विशेषकर भोजन के वसा (Fat) भाग को सरलता से पचा नहीं सकेगा और अनपच के कारण आमाशय से वमन के लिये उत्तेजना मिलेगी । साथ ही ज्वर के कारण कपाल के भीतर दबाव बढ़ जायेगा इससे वमनका दूसरा कारण भी स्पष्ट हो जाता है ।

मां का स्तन पान करने वाले बच्चों में अनपच बहुत कम होता है इस लिये ऐसे बच्चों में प्रबल वमन का सबसे पहला कारण किसी रोग का प्रारम्भ ही समझना चाहिये ।

मस्तिष्क पर दबाव पड़ने से वमन होने की बात मस्तिष्क की झिल्लियों के सूजन के रोगों में, (जैसे गर्दन तोड़ बुखार) मस्तिष्क की (tumour) रसौली के रोग में तथा मस्तिष्क में अधिक जल आ जाने से हाइड्रोसेफेलस (Hydrocephalous) में देखा जाता है । इन रोगों में केन्द्र स्थान पर अधिक दबाव पड़ने लगता है । अन्य लक्षणोंके होनेसे प्रारम्भ में इन रोगों का पता लगाना बहुत कठिन है । पर यह ध्यान रक्खें कि वमन एकाएक होने लगता है तथा भोजन से वमन का सम्बन्ध नहीं मिलता है और वमन क्रिया जोरदार होती है जिससे वमन की धार दूर तक पहुंचती है । यदि साथ ही दस्त के बदले कब्ज भी हो तो अवश्य मस्तिष्क के रोगों पर ध्यान देना चाहिये तुरन्त प्रबल वमनके असर इस प्रकार होंगे—

शरीर से सब जल शीघ्र वमन द्वारा बाहर निकल जायगा जिससे आंखें अन्दर धंस जावेंगी, तथा कुछ ही घण्टोंमें आंखके कोओंमें पानी कम हो जाने से ये बैठ जायगी । बच्चों में कपाल में जो मुलायम भाग (Fontanelle) रहता है वे अन्दर धंस जायेंगे । प्रबल वमनमें ये लक्षण बहुत जल्द हो जाते हैं ।

वमनके साथ शरीरसे क्लोराइडस (Chlorides) निकल जाते हैं—आमाशय से हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric Acid) रूप में तथा भोजन में रहने वाले प्राकृतिक लवणों (Salts) के रूप में—इससे शीघ्र ही रक्तमें क्षारीय (Alkalosis) दशा उत्पन्न हो जाती है और शरीर में आक्षेप या झटके (Convulsion) आने लगते हैं ।

शरीर से जल निकल जानेके कारण रक्त गाढ़ा हो जाता है रक्त-सञ्चार कम हो जाता है और बेहोशी आने लगती है यदि वमनके साथ दस्त भी होने लगें तो ऊपरके सब लक्षण और अधिक प्रबल हो जाते हैं ।

निरंतर वमन (Persistent Vomiting)

निरंतर या बहुत दिनों तक वमन होते रहने के कई कारण हैं:—(१) आमाशय का आवश्यकता से अधिक फूल जाना (Over distension); (२) अनपच हो जाना (भोजन देनेकी गड़बड़से) ; तथा (३) आमाशयके मुंह पर कोई रुकावट का होना जिससे भोजन आमाशय से अंतड़ियों में सरलता से न जाने पावे ।

मुख्य कारण यही तीन हैं क्योंकि रोगी कुछ बतला नहीं सकता और रोग का निर्णय स्वयं सब बातें देख कर ही किया जा सकता है ।

बहुत दिनों से वमन होते रहने में प्रबल वमन के समान तुरंत मृत्युका अधिक डर तो नहीं रहता है परन्तु यदि ध्यान न दिया गया तो रोगी का भविष्य बहुत बुरा होता है । इस अवस्था में जब शरीर के सब अंग खूब बढ़ते हैं । यदि वमन का रोग हो गया तो कई साल तक के लिये शरीर की बनावट और बढ़ने पर बुरा असर पड़ जायगा ।

बहुत दिनों तक वमन के रोग के लक्षण उसी प्रकार के होंगे जितने दिनों से वमन हो रहा है:—

शरीरका तोल घट जायगा—तोल धीरे २ और बराबर घटता रहेगा। कुछ दिनों बाद बच्चे के चूतड़ बिल्कुल पक जायेंगे। शरीर से जल निकल जाने के कारण पेट तथा जांघों पर चमड़ा कागज की तरह पतला और ढीला हो जायगा जिससे यदि चुटकीमें पकड़ कर चमड़ा खींचा जाय तो झुर्रियां कुछ देर तक बनी रहेगीं।

सिरमें तालू (Soft Palate) अन्दर धंस जायगा अधिक रोगमें तो कपाल की हड्डियां जोड़ पर एकेके ऊपर एक चढ़ जायेंगी क्योंकि कपाल के भीतर का जल निकल गया होगा और कपाल की हड्डियों को भीतरसे सहारा न मिल सकेगा इससे वे सिकुड़ कर छोटी होनेका प्रयत्न करेंगी।

(१) आमाशय का अधिक फूल जाना अधिक भोजन से या अधिक वायु भर जाने से

यदि हम ध्यान रक्खें कि बच्चे का आमाशय बहुत छोटा होता है तो हमें आश्चर्य होगा कि अधिक भोजन दे देने पर भी वमन बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि आमाशय की दीवार बहुत लचीली होती है और बढ़ जाती है।

जिन बच्चों के नाक में किसी प्रकार की रुकावट होती है जिससे नाक से सांस लेने की जगह पर मुंह से सांस लेनी पड़ती है, उन बच्चोंमें दूध पीते समय साथ ही साथ वायु प्रत्येक घूंटके साथ बहुत अधिक मात्रामें आमाशयमें पहुंच जाता है जिससे अमाशय मशक की भांति फूल जाता है परन्तु अमाशयमें भोजनकी मात्रा कम ही रहती है और शेष वायु रहता है। रुकावट का प्रायः मुख्य कारण नाकके मार्गमें कुछ गिल्टियों Adenoids का बढ़े रहना होता है और इनको काटकर निकलवा देने से यह कठिनाई दूर हो जाती है। कभी-कभी जुकाम और नाक बहनेसे भी कुछ समयके लिये रुकावट होने लगती है परन्तु ऐसा रोग तो उचित उपचारसे शीघ्र दूर हो जाता है।

कुछ बच्चोंको दूधके साथ प्रत्येक घूंट में वायु पीनेका भी रोग होता है ऐसी हालत में बार बार वमन होने से बच्चे की तन्दुरुस्ती बिल्कुल गिर जाती है। प्रायः यह देखा जाता है कि ऐसे बच्चे मुंहमें अंगूठा या अन्य कोई वस्तु डाल कर चूसते रहते हैं और उसी समय पेट में वायु भी भर लेते हैं। बच्चेके हाथोंमें दफ्ती रुईकी गद्दियें लपेट कर बांध दी जाय जिससे बच्चा हाथ मोड़ कर अंगूठा मुंह तक न ला सके तो प्रायः १ सप्ताहमें यह आदत दूर हो जायगी।

(२)—भोजन की असावधानी से अनपच

इसके तीन कारण हैं जिनमेंसे कोई कारण हो सकता है परन्तु प्रायः तीनों कारण साथ ही साथ दिखलाई देते हैं।

मात्रा—अधिक मात्रामें भोजन देने पर प्रायः वमन हो जाता है और यह गल्ती आप ही सुधर जाती है। कभी कभी जल दूध पिलानेके बाद ही पिला दिया जाता है जिसमें मात्रा अधिक हो जाती है और वमन हो जाता है। जल दूध पिलानेके आधा या एक घंटा पहिले पिलाना चाहिए।

मुख्य गलती तो यह है कि भोजनकी मात्रा बहुत कम दी जाती है। इसका पता दिन भरके कैलोरी आवश्यकताके हिसाब से निकालना चाहिये। इस हालतमें बच्चा सचमुच भूखा रहता है, और बेचैनीसे रोता रहता है और दूध पीते समय बहुत लालचसे जोरोंसे दूध खींचता है तथा रोता रहता है। दूध पीते समय रोते रहने की पहचान पक्की है। रोते समय वायु बहुत अधिक खींच लेता है जिससे आमाशय फूल जाता है और जो थोड़ा दूध पेटमें पहुंच पाता है वह भी वायुके साथ वमन में बाहर निकल आता है यदि दूधकी मात्रा बढ़ा दी जाय जिससे बच्चेका पेट भर जाय तो बच्चा शीघ्र ही रोना छोड़ देगा और वमन भी रुक जायगा। $\frac{1}{2}$ ग्रेन मात्रामें क्लोरल (Chloral) प्रत्येक दूध पिलानेके कुछ पहले अथवा १ ग्रेन की मात्रामें नित्य ३-४ बार देनेसे वमन शीघ्र कम हो जाता है, तथा आमाशयको विश्राम मिलता है, जिससे कुछ देर बाद अधिक मात्रामें भोजन पच सकता है।

यहां यह ध्यान रखना उचित है कि कुछ बच्चे बसा (Fat) नहीं पचा सकते और ज्वरमें तो सभी बच्चे बसा नहीं पचा सकते। यही नहीं, बल्कि दूधका केसीन (Casein) भाग भी पचानेमें मुश्किल होती है जिसे दूर करनेके लिये (Lactic Acid Milk Feeding) लैक्टिक ऐसिडसे दूध बना कर पिलाना चाहिए। इस लैक्टिक ऐसिडके इस्तेमाल से यह निश्चय रहता है कि आमाशयका नमकका तेजाब (Hydrochloric Acid) की जो रोगोंकी दशामें बहुत कम होता है अब बचत होगी तथा दूधसे अब फटने पर जो दहीका टुकड़ा बनता है वह बहुत छोटा होता है और बड़ी सरलतासे पच जाता है। इस जल्द पच जानेसे आमाशय शीघ्र ही खाली हो जाता है इससे पुनः दूसरी बार भोजन खिलाने पर पहलेका अनपचा भोजन तो आमाशयमें अब बचा नहीं रहता

इससे वमन होनेका अन्देशा नहीं रह जाता है।

भोजनके बीचके अन्तरः—इस सम्बन्धमें ऊपर लिखा गया है। यदि अन्तर बहुत कम हुआ तो अनपच हो जायगा क्योंकि पहलेका भोजन अभी हजम नहीं हुआ है। बहुत बच्चों में वमनका रोग दूर करनेके लिये भोजनका अन्तर चार घण्टा कर दिया जाय तथा बिना पानी मिलाया दूध पिलाया जाय और उचित मात्रामें पानी दूधसे १ घंटे पहले पिलाया जाय तो सब शिकायत दूर हो जायगी। नित्यही कैलोरिक शक्ति बढ़ाने के लिए ग्लूकोज (एक प्रकारकी शक्कर) प्रत्येक तीन आउंस पानी में एक चाय-चम्मच मिला कर पिलाना चाहिए। बहुत कमजोर बच्चोंमें भोजनका अन्तर और कम कर देना चाहिए। याने दूध की मात्रा कम कर दी जाय, परन्तु अन्तर कम करनेसे जल्द पिलाया जाय तो बच्चेके आमाशय पर बहुत अधिक मात्रामें दूध पिलानेका कष्ट दूर हो जायगा। ऐसी हालतमें लैक्टिक एसिड दूध या पेप्टोन मिला दूध बहुत उपयोगी होगा।

दूध पिलानेकी रीतिमें गलतियांः—इस कारण भी बहुत बच्चोंमें वमनका रोग हो जाता है। दूध पिलानेकी शीशी में रबड़की चुसनीमें छेद इतना बड़ा होना चाहिए कि बच्चा अधिकसे अधिक १०-१५ मिनटोंमें दूध पीना समाप्त कर सके। इस विचारसे रबड़की चुसनीके छिद्रकी जांच कर लेनी चाहिए छिद्र बहुत छोटा या बड़ा तो नहीं है (अथवा छेद बिल्कुल है ही नहीं जैसा प्रायः देखनेमें आता है) यदि छिद्र बहुत बड़ा होता है तब दूध बच्चेके मुंह में जल्दी भर जाता है और बच्चा दूध पी नहीं पाता तथा सांस रुकनेसे बच्चेको वमन हो जाता है। यदि छिद्र छोटा हुआ तो बच्चा जोरोंसे दूध चूसनेकी कोशिश करता है परन्तु दूध कम आनेसे मुंहसे वायु अधिक मात्रामें आमाशयमें भर जाता है और वमन हो जाता है। बच्चेको लिटाना नहीं चाहिए बल्कि उचित रीतिसे गोदमें बिठाना चाहिए जिससे यदि कुछ वायु आमाशय में जाय तो वह ऊपर ही के भागमें रह जाय। शीशीको भी मुंहके आगे समकोणमें रखना चाहिए।

सबसे साधारण गलती यह होती है कि बच्चे को दूध पिलाने के बाद शीघ्रही खड़ा कर दिया जाता है। दूध पिलाने के बाद बच्चेको कुछ देर तक लिटाये रखना चाहिए जिससे ३-४ डकारके साथ सब वायु निकल जाय। बहुत ज्यादा झक-झोरना या पीठ ठोंकना अनुचित है क्योंकि ऐसा करनेसे वमन होनेका डर रहता है।

स्तन पान करानेमें ध्यान रखना चाहिए कि बच्चेकी नाक मां के स्तनसे दब न जाय जिससे बच्चेके सांसमें कठिनाई हो।

३ रुकावट

कभी २ (Oesophagus) भोजन जानेकी नलिकाका सुराख पैदाइससे ही बहुत छोटा होता है जिससे बच्चा वमन करता है परन्तु यह दशा बहुत कम देखनेमें आती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस रोगमें वमन बच्चेको पैदा होनेके साथ ही शुरू हो जाती है।

आमाशयसे अतड़ियोंमें भोजन जानेके रास्तेका छिद्र (Pyloric Stenosis) छोटा होता है जिससे वमन होने लगता है। यह कारण सबसे मुख्य है। १२ सप्ताहसे कम उम्रके लड़के में बहुत दिनोंसे यदि धारादार वमन होता हो (तथा कब्जियत भी हो) तो बच्चेको दूध पीते समय ध्यानसे देखना चाहिए तथा पेट पर आंतोंकी चाल देखनी चाहिए। प्रायः आध घंटे तक देखते रहना आवश्यक है। इसके साथ ही पेटमें असाधारण गोल पदार्थ का हाथसे टटोलने पर पता लगेगा। इस रोगका विशेष इलाज है।
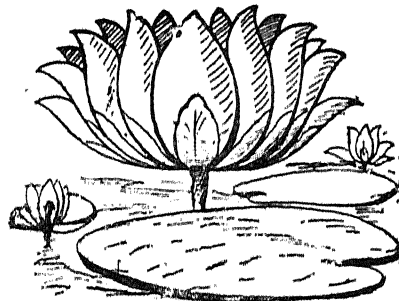
उँगलियों की छाप

[लेखक—श्री चन्द्रिका प्रसाद बी. एस-सी.]

छाप किस प्रकार बनाई और ली जा सकती है ?

जासूस बनने की आकांक्षा लड़कों में कभी न कभी अवश्य रहती है। सबका उद्देश्य आगे चलकर जासूस बननेका नहीं रहता, परन्तु किसी रहस्यमें थोड़ी जासूसी करके उसके भेद जानने की हरेक की इच्छा रहती है। उस उत्तेजनापूर्ण कार्य के लिये जिन सरल वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी वे बिजलीका टार्च और रबड़ के तले वाले जूते हैं, इनमें यदि आप चाहें तो नकली पिस्तौल और हथकड़ी जोड़ सकते हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बात है जिसे एक तरुण जासूस को जानना चाहिये और जिसका सामान उसके पास होना चाहिये। उसको थोड़ा बहुत उङ्गलियों की छाप के बारे में जानना चाहिये, और इन्हें बनाने का सामान उसके पास होना चाहिये। जासूसी कहानियों में अकसर इन छापों के बारे में हम पढ़ते हैं, और यह सम्भव है कि आपके 'मामले' में भी उङ्गलियोंकी छापें भेद जाननेमें सहायक हों।

इस विषयमें अधिकतर लोग केवल इतना ही जानते हैं कि उंगलियोंके निशान वस्तुओं पर पड़ जाते हैं और कोई भी दो निशान एक दूसरेके समान नहीं होते।

इनका सम्पूर्ण अध्ययन तो विशेषज्ञोंके लिये जन्म-भरका काम है, क्योंकि कुछ न कुछ नई बात इनके बारेमें हमेशा मालूम होती रहती है। परन्तु कुछ प्रारम्भिक बातें सरलतासे जानी जा सकती हैं, तथा अपने मित्रोंकी छापें लेने और भिन्न भिन्न नकशों को पहचानने में बहुत आनन्द आता है। इसके अतिरिक्त उंगली की छापोंके बारेमें जाननेसे जासूसी कहानियों में और अधिक आनन्द आयेगा।

परन्तु इसके पहले कि आप कार्य आरम्भ करें, एक दो वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी जिनमें कोई भी अधिक दामकी नहीं है और कुछ आप अपने हाथ से बना सकते हैं।

तख्ते पर स्याही फैलानेके लिये आपको एक रबड़से ढके बेलन (Roller) की आवश्यकता पड़ेगी। एक छोटा सा बेलन, लगभग ३ इञ्च चौड़ा, ठीक होगा। यह किसी भी फोटोग्राफीकी दुकान पर दस बारह आने में मिल जायगा।

एक सपाट धातुके तख्तेकी भी आवश्कयता पड़ेगी। विशेषज्ञ लकड़ीके तख्तेमें जड़ा हुआ तांबेका टुकड़ा व्यवहारमें लाते हैं, परन्तु इससे सस्ती चीज काम आजायगी। यह इस प्रकार बना सकते हैं, टीन के सिगरेटके बड़े (चौखुटे) डिब्बेसे ढकना निकाल लो। कोई भी सपाट ढकना काम देगा परन्तु उसके ऊपर उभरे हुए अक्षर नहीं होने चाहियें। ढकनेको डिब्बेसे सम्भाल कर निकालना चाहिये जिससे ढकना टेढ़ा न होने पाये। ढकने की नाप कोई भी हो, पर बेलन से अधिक चौड़ा हो तो अच्छा है जिससे स्याही सफाई से फैलाई जा सके और किनारे पर अधिक स्याही न हो जाय। सिगरेट वाला ढकना ६ इञ्च लम्बा वह ४ इञ्च चौड़ा होता है और सबसे उपयुक्त है।

एक ½ इञ्च मोटा लकड़ी का टुकड़ा लेकर उसे ठीक नाप का काटो कि ढकना उसपर चौकस बैठे जैसे कि यह डिब्बे पर बैठता था। तब ढकनेके नीचे मुड़े हुए किनारोंमें छोटी कीलें ठोक कर ढकनेको लकड़ी पर जड़ दीजिये। टीन में पहले ही टेकुए या तेज की हुई कीलसे छेद कर लीजिये नहीं तो ढकने के टेढ़े हो जानेका डर है। ध्यान रहे कि यदि ढकना बिलकुल सपाट न हुआ तो स्याही बराबर न फैल पायेगी। बताया हुआ तख्ता तथा यहां दी हुई अन्य वस्तुएं चित्रमें दिखाई हैं।

आपको थोड़ी सी छापने वाली स्याही (Printing ink) की आवश्यकता पड़ेगी। यह आपको किसी छोटे छापेखानेसे दो चार आनेमें मिल जायगी, या थोड़ी सी होने के कारण आपको मुफ्त ही में मिल जायगी। यह स्याही बहुत गाढ़ी होती है इसलिये इसे किसी चौड़े मुंह वाली शीशी में रखना चाहिये। पेंचदार ढकने वाली शीशी बहुत अच्छी होगी।

अन्य आवश्यक वस्तुओंमें लाइनों को गिननेके लिये एक औजार और एक आतिशी शीशा चाहिये। पहली वस्तु कलम या सरकण्डे में एक बड़ी सुई मजबूती से खोंस देने से बन जायगी। बाजारमें जापानी आतिशी शीशे सस्ते में मिल जायेंगे वे कामके लायक काफी अच्छे होंगे।

उंगलीकी 'अप्रकट' छाप—अर्थात् वह छाप जो मनुष्य

द्वारा व्यवहारमें लाई गई किसी वस्तुपर पड़ गई हो और साधारण तौर पर दिखाई न देती हो, ऐसी छाप को प्रकट करने के लिये ग्रेपाउडर (Grey powder) और बुके हुए ग्रेफाइट (Graphite) की आवश्यकता पड़ेगी, ग्रेपाउडर दवाके काम आता है और इसी नाम से दवाखाने में बिकता है।

अब हम उंगलीकी छापों के बारेमें लिखेंगे । छापों का अध्ययन करनेसे पहले हमें उन्हें बनानेका अभ्यास होना चाहिये।

पकड़ कर स्वयं ही उसमें स्याही लगाते और छापते हैं। हम अपने पाठकोंको भी यही राय देंगे कि वे अपने मित्रों आदि की छाप लेते समय इसी रास्ते पर चलें।

आप देखेंगे कि आपको घुमनी छाप लेते समय टेबुलके किनारे पर काम करना पड़ेगा, नहीं तो उंगली स्थिर नहीं रखी जा सकेगी। इसलिये छाप लेते समय कागज को मोड़कर चित्र में दिखलाये गये तरीकेसे टेबुल के किनारे पर रखना पड़ेगा।

थोड़ी सी काली छापेकी स्याही और बेलन से तख्ते पर स्याही की बहुत पतली तह फैलादो। अभ्याससे मालूम हो जायगा कि कितनी स्याही लेनी चाहिये, यदि स्याही बहुत है तो सादा कागज (सोख्ता नहीं) तख्ते पर रखकर दो तीन बार बेलन चला देने से स्याही कम हो जायगी। छाप लेने से पहले यह अच्छा होगा कि उंगली को पैट्रोल या स्पिरिट लगे कपड़ेसे साफ कर लिया जाय।

अब उंगली के सिरेको तख्ते पर हलके से दबाओ और फिर उतने ही हलके से कागज पर दबाओ। कागज पास में तैयार रखना चाहिये। एक अच्छी, साफ छाप आनी चाहिये। छाप देखने में लम्बोतरी होगी। यह सादी छाप कहलाती है और इसमें केवल उंगलीके बीचका भाग आता है।

उंगलियों की छाप लेने और अध्ययन करने के लिये इन सरल वस्तुओं की आवश्यकता है।

पूरी छाप के लिये 'घुमनी' छाप लेनी चाहिये, जिससे उंगली के पूरे सिरेमें स्याही लग जाय, यहां तक कि उंगली फिर बेंड़ी हो जाय, पर इस समय इसका मुंह उलटी तरफ रहे। इस घुमाने की क्रिया को कागज पर दुहराना चाहिये। इस बार छाप लम्बोतरी न होकर चौखूंटी आयेगी और उंगलीका बहुत सा भाग छाप में आजायेगा।

छाप लेनेमें उंगली कितनी जोरसे दबाई जाय? यह अभ्यास की बात है, नौसिखिये अधिकतर ज्यादा जोर से दबाते हैं। इसलिये विशेषज्ञ अपने अभियुक्तों की उंगली अपने हाथोंमें

हम उंगली की छापों के पहचानने और विभाग करनेके विषयमें पूर्ण रूप से नहीं जायेंगे, यह एक कठिन विषय है। परन्तु चार मुख्य विभागोंका पहचानना सरल है और यह देखने में कि कौन अधिक और कौन कम पाये जाते हैं, और भिन्न-भिन्न मनुष्योंमें वे किस प्रकार भिन्न होते हैं, बहुत मनोरञ्जन होता है। कुछ प्रकार बहुत ही कम पाये जाते हैं, और किसी दुर्लभ प्रकार की छाप मिलने पर जो आनन्द होता है वह किसी तितली इकट्ठा करने वाले के आनन्द के बराबर होता है जब कि

वह एक अजीब तितली पा जाता है ।

चार मुख्य प्रकारकी छापें शङ्ख, चक्र, धनुष और मिश्रित हैं। इन चारों प्रकारके चित्र दिये गये हैं जिनसे आप इन्हें मिला सकें। इन चित्रोंसे चारों विशेष बातें और भिन्नता साफ प्रकट है ।

'शङ्ख' छाप शङ्खाकार होती है इसमें रेखाएं एक स्थान पर दो भागोंमें विभाजित होती हैं, और दूसरे स्थान पर होकर मुड़कर लौटती हैं। इन दोनों स्थानों को जोड़ती हुई रेखा कई रेखाओं को काटती है। आतिशी शीशे से देखकर यह गिनना चाहिये कि कितनी रेखाओं को यह काटती है। यह गिनती दो शङ्खों को एक दूसरे से पहचानने में सहायता देती है।

'चक्र' छाप में रेखाएं चक्र या भंवर की तरह गोल गोल होती हैं। 'तोरण' छाप में रेखाएं धनुष या महराबकी तरह बीचमें उठी रहती हैं यह सबसे सरल छाप है, कभी कभी महराब बनाने वाली रेखाएं बहुत खड़ी रहती हैं और छाप तम्बू की तरह लगती है।

'मिश्रित' छाप जैसा कि शब्दसे पता चलता है बाकी तीन छापों के मेलसे बनी है। इसमें चार विभाग हैं और छाप को पहचानना के किस विभाग में रखी जाय कठिन हो जाता है। इसलिये यह अच्छा है कि यह कम पाई जाती है।

धनुष

शंख

चक्र

मिश्रित

यदि आप जासूसी करना चाहते हैं तो आपको छापें बनाने या अध्ययन करनेके अतिरिक्त, उन छापों को भी खोजना पड़ेगा जो उंगलियोंकी नमी या प्राकृतिक तेलके कारण उन वस्तुओं पर-जो हाथसे पकड़ी गई थीं—बन गई हैं अवश्य ही यह छापें लगभग अदृश्य ही होती हैं।

किसी भी चिकनी वस्तु पर छाप पड़ जाय, जितनी ही वह अधिक चमकदार हो उतना ही अच्छा है। कपड़े या खुरखुरी दीवाल ऐसी वस्तुओं पर छाप खोजना बेकार है। परन्तु शीशे धातु और पालिशकी हुई लकड़ी पर छापें मिल सकती हैं। गिलास, शीशियों आदि पर अवश्य कुछ न कुछ छापें मिल जाती हैं।

जिस सतह पर छाप मिलने की सम्भावना हो उसे तिरछे देखना चाहिये, यदि छाप होगी तो पालिशमें धब्बे के समान दिखाई पड़ेगी। इस हालत में छापका पहचानना या अध्ययन करना कठिन है। इसे अप्रकट छाप कहते हैं और इसे देखने के लिये प्रकट करना होगा।

यदि छाप किसी गहरे रंग की वस्तु पर है तो रेखाओं को सफेद बनाना होगा, और यदि छाप हलके रंग की वस्तु पर है तो रेखाएं काली करनी पड़ेंगी। ऊपर बताई हुई दोनों बुकनियां इसी काममें आती हैं। ये छापें पसीने से बनी हैं, इसलिये यदि सावधानी न की जायगी तो ये बिगड़ जायेंगी। बुकनी को बहुत मुलायम बाल वाले ब्रशसे लागना चाहिये और फालतू बुकनी फूंककर उड़ा देना चाहिये। अब रेखाएं स्पष्ट दिखाई पड़ेंगी, कम से कम ये इतनी स्पष्ट होंगी कि आसानीसे देखी जा सकें।

साधारण तौर पर इनके फोटो 'चित्र' ले लिये जाते हैं, परन्तु यह आपके लिये कठिन होगा। यदि छाप शीशे पर है तो बुकनी के लिये अल्युमिनियम पाउडर काममें लाकर इसे साधारण तौर पर नेगेटिव की तरहसे छापा जा सकता है।

बुभुक्षित पारद

[लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

रस शास्त्रोंमें पारदके आठ संस्कार करने बतलाए हैं उनमेंसे पारदका बुभुक्षीकरण या दीपन नामका आठवां अन्तिम संस्कार होता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस संस्कारके करने पर पारदमें कुछ ऐसी विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जो इससे पूर्व के सात संस्कारों तक करनेमें नहीं देखी जातीं। यथा—

यदि परिगालितः सकलो वस्त्राच्चैकतां यातः।
न भवति यदि दण्डधरो जीर्णग्रास स्तदा ज्ञेयः॥ रसहृदय

अर्थः—पारदमें कोई धातु सुवर्ण, चांदी आदि मिलाई जाय और उसके मिलाने पर पारद गाढ़ा न हो अर्थात् थालीमें बहाते समय गाढ़ेपनकी लकीर न बनावे और गाढ़े वस्त्रमें छानने पर पारा साराका सारा कपड़े में से छन जाय, धातु और पारद एक रूप हो जांय तो इसे कहते हैं कि पारदने उस धातुको खा लिया। धातुको खा जाने वाले ऐसे पारदको दीपित या बुभुक्षित पारद कहते हैं।

बुभुक्षित पारदकी कोई और भी परीक्षा है? इसके सम्बन्ध में रसहृदयकारके समय तकके ग्रन्थोंमें इससे अधिक और कोई प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इसके बहुत समय पश्चात् अर्थात् १५ वीं शताब्दीमें आकर ज्ञानज्योति नामक रसायनीको निम्न लिखित लक्षणोंका और पता लगा—

रसो राक्षस वक्त्रोऽथ सुवर्णं शुल्वतारकम्।
भक्षयेद्विविधान्धातून् समुद्रं वाडवो यथा॥
तत्पुनः सूतराजोऽपि तोलितोऽयं यथास्थितः।
कौतुकं ममचित्तेऽपि ज्ञानज्योतिरिदं पुनः॥ रसज्ञानम्

अर्थः—पारद यदि बुभुक्षित हो चुका हो तो वह सोना तांबा, चांदी आदि अनेक धातुओंको इस प्रकार भक्षण कर लेता है जिस प्रकार समुद्रको बड़वानल। ज्ञानज्योति जी कहते हैं ऐसे धातुभक्षक पारदको मैंने जब तोला तो जितना वजन या भार केवल पारदका था उतना वजन मिला, जिसे देख कर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। इनके उक्त कथनसे ज्ञात होता है कि इससे पूर्व इन्ह इस बातका पता न था कि बुभुक्षित पारद जब किसी धातुको खा लेता है तो उस धातुका भार पारदके भारमें लीन हो जाता है, तभी तो आपने "कौतुकं ममचित्तेऽपि" कहा। यदि इस बातका अनुभव इन्हें या इनके पूर्वके किसी ग्रन्थकारको होता तो उसकी जानकारी परम्परासे प्राप्त होती चली आती, ऐसी दशा में आश्चर्यके लिए स्थान ही नहीं रहता।

क्या बुभुक्षित या दीपित पारद ऐसा हो सकता है कि उसमें किसी धातुको मिलाने पर वह धातु-पारद मिश्रित (Amalgam) न बनाकर लीन हो जाय और अपने अस्तित्व को गंवा दे, तथा धातु मिश्रणके जो लक्षण हैं वह पारदमें से जाते रहें, यहां तककि धातुका भार भी उस पारदमेंसे गायब हो जाय, क्या यह बातें सम्भाव्य हैं?

पारदके अष्ट संस्कार तो प्रत्येक रसवैद्य उस समयसे करते चले आए हैं जबसे रस प्रक्रियाका ज्ञान हुआ। किन्तु बुभुक्षित पारद शायद ही किसीसे बना हो। इस बीसवीं शताब्दीमें आकर जब वैद्योंने अपना संगठन बनाया और प्रति वर्ष सम्मेलनोंमें एकत्र होकर अनेक बातों पर विचार करने लगे। वहां पारदकी इस क्रिया पर कई बार विचार हुआ और निश्चय हुआ कि कोई रसवैद्य दीपित पारद बनाकर दिखावे तो उसे पुरस्कृत किया जाय, क्योंकि यह संस्कार किसी वैद्यसे पूरी तरह नहीं होता। कहा जाता है कि करने वालोंसे कोई न कोई त्रुटि रह जाती है या बनस्पतियों की अप्राप्यता इसका कारण है। कुछ कारण हो कई सदियोंसे बुभुक्षित पारद प्राप्य न था।

श्री युक्त पं० कृष्णपाल शास्त्री द्वारा इस रहस्यका उद्घाटन १९३८ में बम्बई वैद्य सम्मेलन पर हुआ। वहां पता चला कि बनारस निवासी पं० कृष्णपालजी शास्त्री आए हैं, उन्होंने १५ वर्ष रसायनकी ठरकमें लगा कर १९३७ में पारदको दीपन करने में सफलता प्राप्त कर ली है और वह वैद्योंके समक्ष इस क्रिया की सफलताका प्रदर्शन करेंगे। उन्होंने सम्मेलनके समय उस पारदसे बना मकरध्वज दिखलाया और बतलाया कि इस मकरध्वजमें उतना सुवर्ण विद्यमान है जितना कि पारदमें डाला गया था, उन्होंने वहां पर उस मकरध्वजकी एक डलीके दो हिस्से किए और दोनोंको भिन्न भिन्न कुठालीमें डाल कर अग्नि पर रख दिया और एक डली पर कोई चीज (विड़) बहुत जरा सी डाल दी। जो चीज उन्होंने डाली उसकी भी परीक्षा की गई कि

इसमें सुवर्ण तो नहीं है। किन्तु उसमें सुवर्ण नहीं था। उन दोनों कुठालियों को तीव्र अग्नि लगादी गई तो जिस कुठालीमें विड डाला गया था उसमें कोई दो रत्तीके लगभग सुवर्ण मिला जिस कुठालीमें विड नहीं डाला था केवल मकरध्वज था उसमें कुछ नहीं बचा, साराका सारा मकरध्वजका पारा गन्धक व सोना उड़ गया। यह पंडितजी की क्रिया आश्चर्य में डालने वाली थी। इसके पश्चात् आप ई० १६४० के लखनऊ वैद्य सम्मेलन पर पधारे वहां आपने बुभुक्षित पारदमें सुवर्ण ग्रास करा कर यह दिखलाया कि पारद सुवर्णको जब खा लेता है तो जितने सुवर्णको खा लेता है वह सुवर्ण पारद रूप हो जाता है। कपड़ेमें से उस मिश्रण (Amalgam) को छानने पर कपड़ेमें कुछ भी अवशेष नहीं रहता, न सुवर्ण ग्रसित पारदका वजन ही बढ़ता है। वहां पंडित जी ने एक तोला पारदमें १ तोला सुवर्ण ग्रास करके दिखलाया था।

पुनः उक्त प्रक्रिया का निरीक्षण

इसके कोई तीन मास बाद रुद्रयामलतन्त्र तथा गोरक्षसंहिता की अन्य हस्तलिखित प्रतियां देखनेके लिये मुझे कलकत्ता और और बनारस जाना पड़ा तो बनारसमें आपका मेहमान बननेका सुअवसर मिला। मैं आपके पास केवल इसलिये ही ठहरा था कि इस पारदके संस्कारकी उक्त क्रियाको देख कर उसे समझूं तथा इस अष्टम संस्कारका रहस्य मालूम करूं।

मैं पहिले यह समझता था कि आप कोई रस वैद्य या चिकित्सक होंगे किन्तु आपके पास रहने और वार्तालाप करने पर पूरा पता लगा कि आप चिकित्सक नहीं, आप तो शुद्ध रसायनी (ठरकी विरादरी के एक पहुंचे हुए व्यक्ति) हैं। और आपने इस रसायनकी ठरकमें अपना जीवन ही व्यतीत कर दिया है। आप ने अपने मकान पर ही उक्त पारदको बद्ध करके, उड़ाके तथा अग्नि पर पारदको कथनांकसे अधिक उत्ताप पर कोई ३० मि० रखकर दिखलाया, इससे भिन्न आपने पुनः पारदमें द्विगुण सुवर्ण मिला कर खरल करना आरम्भ किया और ६ घण्टेमें उसका वजन करके दिखलाया उस समय पारदमें सोना १० माशे प्रति तोला लीन हो चुका था। कहने लगे कल तक समस्त सुवर्ण और उसका भार इस पारदमें लीन हो जायगा। उस पारद को वहीं पर सुरक्षित रखा और अगले दिन फिर वजन करने पर १ तोला चार माशेके स्थान पर पूरा १ तोला निकला। इसमें १ तोला पारा २ तोला सुवर्ण था। कहने लगे कि आज इस पारदमेंसे पुनः सुवर्ण निकाल कर दिखा सकते हैं। किन्तु दो दिनके बाद हमारे लिये इससे सुवर्ण पृथक् करना सम्भव नहीं। उन्होंने ६ माशे उस पारदको अग्नि पर रखकर उसके ऊपर कुछ बीज (विड) डाल दी और अग्नि देकर उसे तपाया तो पारद उड़ गया और १ तोला सोना कुठालीमें नीचे बैठा हुआ मिला।

आधुनिक रसायन शास्त्रसे इस समस्या पर विचार

आधुनिक रसायन शास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा इस पारद में उत्पन्न विलक्षण गुणोंकी ओर देखा जाय तो कोई आधुनिक विचारवान् इसको सिवाय इन्द्रजालीय कौतुकसे अधिक महत्व नहीं दे सकता। परन्तु 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' पं० जी कहते हैं जिसकी इच्छा हो हमसे उक्त पारद मंगाले और स्वयम् अपने हाथसे इसकी परीक्षा कर ले।

कहते हैं कि इस पारद से बने मकरध्वजकी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा कलकत्तेके प्रेसीडेन्सी कालेजके रसायन विभागमें परीक्षा हो चुकी है। वहां रासायनिक विश्लेषणमें सुवर्ण की मात्रा पाई गई है। इससे इतना सिद्ध होता है कि पारदके साथ सुवर्ण भी उड़कर वहां लगता है जहां पारदका यौगिक जाकर जमता है।

आधुनिक रसायन शास्त्रका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि पारद, सुवर्ण, चांदी और गन्धक आदि मौलिक पदार्थ या तत्त्व हैं। यह मौलिक पदार्थ अपनी इस रासायनिक सीमामें अच्छेद्य, अभेद्य हैं। जब तक यह अपने मौलिक रूपमें रहते हैं तब तक इनमें अपना अस्तित्व द्योतक पांच बातें पाई जाती हैं अर्थात्—१ तन (आयतन), २ घन (घनत्व), ३ मात्रा (भार) ४ वर्ण (रंग) और ५ ताप (आन्तरिक उत्ताप)। जब वह अपने तात्विक रूपमें रहते हैं यह बातें नहीं बदलतीं। यह उसी समय बदलती हैं या तो उस तत्त्वका किसी प्रकार अस्वित्व मिट जाय या वह तत्त्व किसी दूसरे तत्त्वसे मिल कर यौगिक में परिणात हो गया हो या सम्मेलन बनाले यहां इस पारदके साथ सुवर्ण मिलाने पर न तो मिश्रण बनता है न यौगिक। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि साधारण पारदसे मिश्रण बनने पर पारद गाढ़ा हो जाता है और जम जाता है। यह पारद उस समय तो कुछ गाढ़ा होता है, परन्तु धीरे धीरे उसकी द्रवता बढ़ती चली जाती है और ४-६ घंटेमें ही वह अपने पूर्व रूपमें आजाता है जिसे कपड़ेमें छानने पर सुवर्ण का अंश उस वस्त्रमें लगा नहीं रहता। इससे भिन्न पं० जीका कथन

है कि इस पारदको परिश्रुत किया जाय तो पात्रके नीचे भी कुछ नहीं मिलता, साराका सारा सुवर्णका अंश पारे के साथ उड़ कर बकनलीमें हो संग्राहकमें एकत्र हो जाता है। इससे भिन्न तोलने पर भी सुवर्णका भार नहीं मिलता। ऐसी स्थितिमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुवर्ण कहां चला गया? यदि पारद में सुवर्ण विद्यमान् हो तो कमसे कम उस सुवर्णका भार उसमें रहना चाहिए। यह मान भी लिया जाय कि पारदमें यह शक्ति उत्पन्न हो गई है कि वह बड़ी तीव्रतासे अन्य धातुओंको घुला मिला लेता है। किन्तु धातुओंके घुल मिल जाने पर या मिश्रण बन जाने पर अथवा यौगिक बन जाने पर उन दोनोंकी मात्रा तो बनी ही रहनी चाहिए। यह विद्यमान् रसायन शास्त्रके सिद्धान्त बतलाते हैं। परन्तु हम इसके विपरीत यहां पर उलटी बात देखते हैं। पारद न तो मिश्रण बनाता है न यौगिक, प्रत्युत वह आरम्भमें कुछ गाढ़ा होकर फिर धीरे २ पतला हो जाता है और ४-६ घंटेमें अपने असली रूपमें आजाता है। उसे कपड़े में छानने पर जब कुछभी कपड़ेमें अवशेष नहीं मिलता न तोलने पर उसका वजन मिलता है तो इससे प्रतीत होता है कि पारद उस धातुको अपनेमें लीन या आत्मसात् कर लेता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि पारद जब दीपित हो जाता है तो वह धातुओं को खा जाता है दृष्टान्त देते हैं कि—जिस तरह सजीव प्राणी अनेक प्रकारके पदार्थों को खाकर आत्मसात् कर लेते हैं और जब वह पदार्थ शरीरमें खप जाते हैं तो उसका भार (मात्रा) उनके शरीर में नहीं बढ़ता, यही बात पारदमें उत्पन्न हो जाती है। वह धातु को खा लेता है और उसको अपने में ऐसा आत्मसात् कर लेता है कि जिस तरह सजीव प्राणियोंके शरीरमें खाद्य पदार्थ। तभी तो इस संस्कार युक्त या ऐसे गुण युक्त पारदका दीपित या बुभुक्षित नाम दिया गया। दीपित या बुभुक्षितका अर्थ है भूखा।

पारद सजीव पदार्थ नहीं

आधुनिक रासायनिकों की राय है कि किसी पदार्थको खाना और उसे पचा कर आत्मसात् करना यह व्यवहार सजीव जगतके प्राणियोंमें ही देखा जाता है। निर्जीव पदार्थोंमें ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता जो इस तरहका आचरण करता हो। वैज्ञानिक प्रयोग शालामें कुछ ऐसे यौगिक तय्यार किये जा सके हैं जो कुछ अंशोंमें सजीव जगत्का साआचरण करते हैं परन्तु उनमें से एक भी ऐसा नहीं जो गृहीत पदार्थको पूर्णतया आत्मसात् कर लेता हो और यहां तो पारा एक धातु पदार्थ है इसका यह आचरण अवश्य विस्मय जनक है, इसीलिए इसकी सत्यताकी पूरी तरह वैज्ञानिक जांच होनी चाहिए। अभी तक पं० जी ने अपना बुभुक्षित पारद किसी आधुनिक रसायनीको परीक्षार्थ नहीं भेजा है। उन्हें चाहिए वह इस पारदकी कुछ मात्राएं भिन्न भिन्न प्रयोग शालाओंमें भेजें और पारदमें सुवर्ण चांदी ग्रासकी विधिभी लिख कर भेज दें ताकि वह इसकी जांचकर सकें और विद्यमान् प्रयोगशालाएं इस बातकी परीक्षा कर सकें कि क्या वास्तव में पारदमें कोई ऐसी विशेषता उत्पन्न होती है जिससे वह धातुओं को खा सकता है? इन प्रयोगशालाओं द्वारा इस बातको जांचा जा सकता है कि धातुओंकी उसमें लीनताके समय क्या स्थिति होती है? यद्यपि जब तक उसके सत्यताकी प्रायोगिक जांच न हो जाय आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान् इसके उक्त गुणोंको माननेके लिये तय्यार नहीं। इसलिये उसे आधुनिक प्रायोगिक कसौटी पर उतारना ही चाहिए।

पारदके बुभुक्षीकरण की सत्यता सिद्ध हो जाय तो रसायन शास्त्रके मौलिक सिद्धान्तोंमें एक नया अंश जुड़ सकता है और अनुसन्धानके लिए एक नया मार्ग निकलता है। यह एक ऐसी समस्या है जो वैज्ञानिकों की उत्सुकता को बढ़ा सकती है। सम्भव है इसकी खोज से प्रकृति के कुछ गूढ़ रहस्यों का पता लग सके।

उक्त पारद पर मेरे विचार और एक सहयोगी

हमारे रस-शास्त्रोंकी जिस पौराणिक कालमें रचना हुई उस समयकी स्थितिका प्रभाव उन लेखकों पर बड़ा भारी हुआ। समस्त बातोंको जिस तरह देवोंकी महिमासे जोड़ा जा रहा था रस ज्ञाता इस सामयिक प्रवाहसे न बच सके। उन्होंने भी धातूपधातु और रस-महारसोंको उसी अलंकारिक शलीमें ले जा कर उनके उत्पत्ति व इतिहासको देवों राक्षसों की जीवनकथाओंसे जोड़ दिया। जिसका परिणाम उस समय तो जो हुआ सो हुआ इस समय आकर बहुत बुरा दिखाई दे रहा है। बहुतसे दकयानूसी लेखक वैद्य आज भी उसे सत्य मानते हैं और अनुसन्धानके मार्गसे कोसों दूर हटते चले जा रहे हैं जो व्यक्ति इस भ्रम व भूलको दूर करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें वह आयुर्वेदका शत्रु समझते हैं। अभीकी ताजी घटना है १५ वर्ष परिश्रमके व अनुसन्धानके पश्चात् मेरे द्वारा **'कूपीपक्व रस-निर्माण विज्ञान'** नामक एक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित हुआ; ग्रन्थका उपोद्घात पारदके इतिहाससे आरम्भ होता है क्योंकि

रसशास्त्रकी नींव पारद पर ही रक्खी गई है इसके इतिहास के लिखनेमें महान् परिश्रमके पश्चात् जो सामग्री एकत्र की गई है तथा जो जो प्रमाण दिये गये हैं उन्हें पढ़ कर इन दकयानूसियों का दिमाग चकरा गया है। इस पुस्तकको पढ़ने के पश्चात् उनकी योग्यता इस बातमें थी कि वह उसमें दिये प्रमाणों को असत्य सिद्ध करते और शिव वीर्यसे पारद की उत्पत्तिको किसी युक्तिसे सिद्ध कर दिखलाते किन्तु इतना साहस कहां।

परन्तु उक्त ग्रन्थमें उन दकयानूसी विचार का समर्थन न देख उन्हें बहुत क्षोभ हुआ। इसीलिये वह आग बबूला हो उठे उनमेंसे हमारा एक सहयोगी उस पुस्तककी समालोचला करते हुए लिखता है—

"जैसी स्वामी जी की आदत है उनके प्रत्येक शब्द से पाश्चात्य विज्ञान की पूर्णता एवं ग्राह्यता तथा भारतीय रस-शास्त्रकी अपूर्णता और हेयता टपकती है। यद्यपि पुस्तकको उपादेय बनानेके लिए स्वामीजीने काफी परिश्रम किया है परन्तु 'अपने विज्ञानकी उन्नति अपने ढंगसे हो सकती है' इस बातको विस्मृत करके ही वे लेखनी उठाया करते हैं। पाश्चात्य विज्ञान की तारीफ में यदि झूठ भी बोलना पड़े तो वे खुशी से बोल सकते हैं।"

हमारे झूठ बोलनेका प्रमाण आपने १२८ पृष्ठ परसे निम्न लिखित उदाहरण कूपीपक्व रस निर्माणसे उद्धृत कर दिया है—

"यथा जिन वैद्योंके यह विचार हैं कि जब पारद को अत्यन्त शुद्ध किया जाय तो वह बुभुक्षित हो जाता है उस समय वह सुवर्णको खाकर अपनेमें तल्लीन कर लेता है, बुभुक्षित पारदमें फिर सुवर्णका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मिलता न सुवर्ण भार ही उसमें पाया जाता है न उसकी द्रवता ही घटती है, रसायनशास्त्र इन बातोंकी पुष्टी नहीं करता। न रसायन शास्त्रियोंने आज तक पारदकी कोई ऐसी अवस्था देखी है। वैद्य समुदाय शास्त्रका प्रमाण तो देते हैं किन्तु ऐसा पारद कोई वैद्य आज तक तैय्यार करके न दे सका, इसलिये जब तक यह प्रत्यक्ष प्रयोग-सिद्ध बात सामने न आए, रसायन-शास्त्र इस पर अपनी कोई सम्मति नहीं देता।" यह पंक्तियां शास्त्रीजीने पकड़ी हैं हमारे झूठ बोलनेकी।

पाठको! पाश्चात्य विज्ञान की तारीफमें मैंने यहां क्या झूठ बोला? जिस बुभुक्षित पारदको रसायन शास्त्रियोंने देखाही नहीं, आज सैकड़ों वर्षोंसे उन जैसे दकयानूसी-विचारके व्यक्तियोंने स्वयम् बनाया नहीं, उस पर 'बाबा वाक्यंप्रमाणम्' के आधार पर यह चाहे कुछ कहते रहें विद्यमान् रसायनशास्त्र इसकी पुष्टि कैसे कर सकता है? जब तक प्रत्यक्षमें प्रयोग सिद्ध बात सामने न आए कोई रसायनी कैसे इस पर अपनी सम्मति दे सकता है। आप कहते हैं 'अपने विज्ञानकी उन्नति अपने ढंगसे हो सकती है' हम भी कहते हैं कि होनी चाहिए। परन्तु जब आप पहुंचते हैं प्रति वर्ष सम्मेलन के स्टेज पर और कुर्सी भी सबसे आगे मिलती है और कई वर्ष से सम्मेलन के प्रधान पदके उम्मेदवार भी बने चले आ रहे हैं पर कितनी उन्नति आज तक आपने अपने विज्ञान की अपने ढंगसे की, कृपया यह तो बतलाइये?

आप विद्यापीठके वर्षोंसे सर्वे सर्वा बने चले आ रहे हैं अपने सम्मेलन पत्रिकाकी बागडोर संभाली और एक प्रकारसे सम्मेलनके कर्णाधार बने हुए हैं किन्तु आप सबोंके अपने ढंगसे विज्ञानोन्नति की यह दशा है कि आज तक किसी भस्म और रसका स्टेण्डर्ड (मान दण्ड = निश्चित रूप तक) न निर्द्धारित कर सके। विद्यापीठके कर्णाधार होते हुए भी विद्यापीठके लिये अपने ढंगके विज्ञानकी पाठ्य पुस्तकें तक नहीं बना सके, वही व्यतीत कालकी आवश्यक अनावश्यक अंशसे पूर्ण पुस्तकोंका पुलिन्दा विद्यार्थियों के दिमागमें आज १८-१६ वर्षसे जबरदस्ती ठूंस रहे हैं। आपको इन बीस वर्षोंमें भी अपने वैज्ञानिक ढंग से काम करना नहीं आयातो आपसे आधुनिक वैद्य समाज क्या आशा कर सकता है।

एक ओर तो आप पाश्चात्य विज्ञानकी निन्दा करते हैं दूसरी ओर 'प्रत्यक्ष शारीरम्' 'प्रत्यक्ष निदानम्' व्यवहारायुर्वेद जैसे पाश्चात्य अन्वेषणों अनुसन्धानोंके आधार पर लिखे ग्रन्थों को विद्यापीठ पाठ्य ग्रन्थोंमें स्थान देते हैं, क्या यही है आपका अपने विज्ञानोन्नतिका ढंग? "हम तो पाश्चात्य विज्ञानका रंगीन चश्मा लगा कर देखते हैं।" क्योंकि हम उन चश्मोंको उपयोगी समझते हैं। पर आप बिना चश्मेके इसे भारतीय दृष्टि से देखिये कि आपके द्वारा जो कुछ हो रहा है क्या इसका नाम अपना विज्ञान है?

शास्त्रीजी महाराज! आंख खोलिए अकलकी आंख! दूर न जाकर कानपुरके वैद्योंके चिकित्सालयमें ही जा कर यह देख आइये कि कितने वैद्य बिना थर्मामीटर बिना स्टैथस्कोपके चिकित्सा करते हैं फिर आपको सहजमें ही पता लग जायगा कि कितने आपके विचारके वैद्य अपने विज्ञानोन्नतिके पथ पर हैं।

[फिर कभी]

ओरांग-उटांग

[लेखक—श्री गिरीश चन्द्र शिवहरे, बी. एस-सी.]

मनुष्योंसे मिलते जुलते बन्दरोंमें गुरिल्ला, ओरांग-उटांग चिम्पैंजी और गिबिन प्रमुख हैं। यद्यपि इस बातमें बहुत मतभेद है कि इनमेंसे किसको सबके अधिक मनुष्यसे समीप रखा जाय लेकिन फिर भी बहुमतसे गुरिल्लाको यह मान प्राप्त है। ओरांग-उटांगका स्थान गुरिल्लाके पश्चात् है। यह चिम्पैंजी और गिबिन से बड़ा होता है लेकिन, कदाचित् इसका मानसिक विकास चिम्पैंजीसे कम है। ओरांग-उटांगके बारेमें पहले बहुत सी दंतकथायें प्रचलित थीं लेकिन अब पूर्वके देशों में जहाजों के आने जाने की सुविधाके कारण इसकी वास्तविक जीवनी मालूम हो गई है।

ओरांग-उटांग

आंखें बहुत पास पास हैं। नथुने और कान छोटे छोटे हैं। ऊपरका होंठ और मुंह काफी बड़ा है।

ओरांग की खाल भूरी लाल होती है। बालों का रंग भी इसी प्रकारका होता है। यह बहुत धीरे धीरे, बल्कि कहना चाहिए कि आलसियों की तरह चलता है। वास्तव में यह पेड़ों पर रहने वाला जानवर है और इसीलिए इसके लम्बे लम्बे हाथों की कलाइयां बहुत चपल होतीं हैं। कलाईकी हड्डियां भी विशेष रूपकी होती हैं। उम्र बढ़ने पर सिर आगे झुक जाता है और कभी कभी पुरुष-ओरांगके मुंहके दोनों तरफ की खाल लटक जाती है, इसी प्रकार गलेके सामनेका भाग लटक कर छाती तक आ जाता है। आंखें बहुत पास होती हैं नथुने और कान छोटे छोटे होते हैं। ऊपरका होंठ काफी बड़ा होता है लेकिन ओरांग उसे बड़ी शीघ्रतासे सिकोड़ कर अपने दांतोंको दिखानेके लिए सर्वदा प्रस्तुत रहता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ओरांग केवल बोर्नियो और सुमात्रा द्वीपोंमें ही पाया जाता है। यहां यह घने और आर्द्र जङ्गलोंमें रहता है। एक अद्भुत बात यह है कि ओरांगके शरीरका रंग वही है जो वहां के निवासी मनुष्यों का है, और यह भी कुछ जंगली मनुष्यों की भांति पेड़ पर रहता है। मनुष्यों को छोड़ कर इसके मुख्य शत्रु सांप और शेर, चीते आदि हैं।

फसलों पर चढ़ाई करने के लालच को छोड़ कर, ओरांग बहुत ही कम भूमि पर आता है। गुरिल्ला की तरह यह भी घोंसला या एक प्रकारका मंच बना कर रहता है। धूप और वर्षासे बचनेके लिए यह घास पत्तीकी छतरी बना लेता है। बन्दी जीवन में (चिड़िया-खानेमें) यह अखबार या तिनके से भी छतरी बना लेता है। केवल एक बार एक बंदी ओरांगने घोंसला बनाया था। कुछ पहले लन्दनके चिड़ियाखाने से रात में एक बड़ा ओरांग भाग निकला। दूसरे दिन प्रातः वह आरामसे एक खुदके बनाये घोंसलेमें बैठा मिला।

ओरांगकी शिक्षाकी ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया

है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें काफी बुद्धिमानी और तर्क शक्ति है। न्यूयार्कके चिड़ियाखाने के एक ओरांगने एक लकड़ी की चाबी बनाई थी। एक दफा एक ओरांगके पिंजड़ेके निकट भूलसे एक लोहेका टुकड़ा पड़ा रह गया। उसने उस टुकड़ेको उठा लिया और उससे पिंजड़ेसे बाहर निकलनेके लिए छड़ोंको मोड़ और झुका कर, रास्ता बनाने लगा। यही नहीं, बल्कि उसने इस कामके लिए अपने एक चिम्पैंजी साथीसे भी सहायता ली। यह चिम्पैंजी भी उसी पिंजड़े में बन्द था। बहुधा यह देखा गया है कि ओरांग जब कभी किसी कामको करना आरम्भ करता है तो उसे बहुत मेहनतसे और दत्तचित्त होकर करता है।

ओरांगका जीवन—मनुष्यके जीवनसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। यह परिवार सहित झुंडोंमें रहता है और दिनमें खाना खाता और रातमें सोता है। बच्चेकी शिक्षाका भार पूर्ण रूपसे स्त्री पर ही रहता है और जिस प्रकार पूर्वमें बच्चे बहुधा माताकी गोदीमें रहते हैं उसी प्रकार ओरांगकी माता बचपनमें उसे अपनी गोदमें रखती है। पेड़ों पर रहनेके कारण ओरांगके दैनिक कार्य क्रममें कुछ विशेषता हो गई है। बिना मंच बनाए यह किसी भी स्थान में अधिक समय नहीं बिताता। ओरांग केवल वही पानी पीता है जो बरसात से या ओस से पेड़ों के तने और शाखाओं के जोड़ों में बने गड्ढों में इकट्ठा हो जाता है। एक चिड़िया खानेके बन्दर घरमें एक बाल्टीमें पानी भर दिया गया, यद्यपि वहां एक कटोरी रखी थी लेकिन फिर भी ओरांगने कुछ तिनके उठा लिए और उनको पानीमें डुबो कर चूसने लगा। यह ओरांग जंगलमें काफी समय तक रह चुका था।

यद्यपि ओरांग बच्चोंकी भांति बहुत शान्त जानवर है लेकिन कभी-कभी यह बहुत भयंकर और भीषण हो जाता है। यह आदत पुरुष-ओरांगमें बहुत पाई जाती है। जितने भी पुरुष ओरांग पकड़े जाते हैं—चाहे वे जीवित पकड़े गए हों या मृत—उनमेंसे बहुतोंके शरीर पर लड़ाइयोंके चिन्ह होते हैं। यह देखा गया है कि ओरांगकी उंगलियोंके सिरे बहुत छोटे होते हैं—कदाचित् इसका यह कारण हो कि बंदर जब लड़ते हैं तो एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चबा डालते हैं।

ओरांगका सबसे बड़ा शत्रु सांप है। इसमें सन्देह नहीं कि ओरांगका इनसे डरना ठीक ही है क्योंकि जिन जंगलोंमें यह रहता है वहीं बड़े-बड़े विषैले सांप भी पाये जाते हैं। कदाचित् ओरांग अपने स्वयंके अनुभव ही से सांपसे डरता है। एक बार लंदनके चिड़ियाखाने में एक छोटेसे ओरांग के साथ एक विषहीन सांपको रख दिया गया। इस ओरांगने कभी सांपको नहीं देखा था। वह सांप से डरने लगा, यहां तक कि उसकी रक्षाके लिए यह उचित समझा गया कि दोनोंको अलग कर दिया जाय।

ओरांग उटांगके बारेमें न्यूयार्क के चिड़ियाखाने के निरीक्षक डा० डिटमार्सका वर्णन बहुत मनोरंजक है। स्वयं उनके ही शब्दोंमें इसका वर्णन सुनिये:—

मुझे सबसे अधिक आनन्द ओरांग उटांगके साथ मिलता है। एक बार मुझे सैन फ्रांसिसको जाकर कुछ ओरांग उटांगके लाने की आज्ञा मिली यह ओरांग उटांग सिंगापुरसे आये थे। सैन फ्रांसिसको में एक चीनीने इनको चावल पका कर खिलाए, रेलगाड़ी वालोंने पहले तो बहुत झक झककी लेकिन अन्तमें वे ओरांग-उटांगको गाड़ीमें जगह देनेको सहमत हो गये। मैंने बहुत ही सुरक्षित रूपसे ओरांग-उटांगके पिंजड़ेको गाड़ीमें रखवा दिया और उनके चारों तरफ लोहेके नल भी लगा दिए।
मेरा डिब्बा ओरांग उटांगके डिब्बेसे सात डिब्बे आगे था, इसलिये मैंने एक आदमी को कह दिया कि अगर कोई जरूरत हो तो मुझे आकर कह जाए। आधी रातके समय मेरे डिब्बेको किसीने बड़े जोरसे खटखटाया। कुलीने क्षमा मांगते हुए मुझसे कहा कि आपकी पीछेके डिब्बेमें आवश्यकता है। नींदमें झूमते हुए मैं उधरकी ओर बढ़ा। वहां जाने पर मालूम हुआ कि एक रेल कर्मचारी जो कि सामान की जांच कर रहा था, ओरांग उटांगके पिंजड़ेके पास आया। शायद उसे कोई कागज नहीं मिल रहा था इसलिये उसने अपनी जेबसे कागजोंको निकाल कर पिंजड़ेके ऊपर रखा और उनमेंसे छांटने लगा। इसी समय रेल एक ओर मुड़ी और ओरांग जाग पड़ा। शायद ओरांगकी समझमें यह बात नहीं आई कि यहां पर खंभेके समान यह क्या खड़ा है। उसने अपने लम्बे हाथ निकाल कर उन "खम्भों" को जोरसे ऐंठ दिया। बेचारा कर्मचारी आह आह करता हुआ एक तरफ गिर पड़ा। भाग्य वश उसका शिर नहीं फूटा।......
सुबह मैंने देखा कि पिंजड़ा पांच छ; जगहसे टूटा हुआ था। एक स्टेशन पर मैंने ओरांगको जल पान कराया। दोपहरके समय एक दूसरे स्टेशन पर जब मैं चाय पी रहा था तो मुझे ओरांगके डिब्बेकी ओरसे चीखें और हंसीकी आवाज सुनाई पड़ी, एक दम मैं समझ गया कि मेरे ओरांगका इसमें अवश्य कुछ हाथ

है। वहां जाने पर देखा कि सारे डिब्बेमें मिरोड़े हुए कागजों का ढेर लगा है—और धीरे-धीरे वह ढेर बढ़ता ही जारहा है। वास्तवमें एक समाचार पत्र बेचने वाला लड़का वहां पर ओरांग को देखनेके लिए आया था। ओरांगने एक झपटेमें उससे समाचार पत्र छीन लिए और उन्हें फाड़ने लगा। इतनी देर आलस में बैठनेके पश्चात् जब ओरांगको यह खेल मिला तो पता नहीं उसको कितना आनन्द हुआ होगा क्योंकि वह बीच बीच में किलकारी भी मारता जाता था। मैंने उस लड़केको तुरन्त सब समाचार पत्रोंका मूल्य दे दिया।

कुछ समय पश्चात् एक कुली फिर मेरे डिब्बेमें आया और बिना क्षमा मांगे हुए ही उसने मुझसे जल्दी ही ओरांगके पास चलनेको कहा। वहां जाकर मैंने देखा कि ओरांगके हाथमें एक लम्बा चाकू है और वह उससे आस पास खड़े हुये दर्शकोंको डरा रहा है। पूछनेसे मालूम हुआ कि एक कुली नये सामानों पर लेबिल चिपकाने आया था। यह सोच कर कि कहीं किसी सामानके पीछे रख कर चाकू भूल न जाय उसने उसे ओरांग के पिंजड़े पर रख दिया। लेबिल काट कर उसने दुबारा फिर वहीं चाकू रख दिया। आवाज होनेसे ओरांग जाग गया और चुपकेसे उसने चाकू पिंजड़ेसे खींच लिया। कुलीने पहले तो चाकू को खोजा लेकिन ज्यों ही उसने उसे ओरांगके हाथमें देखा वह फौरन डिब्बेमेंसे कूद पड़ा और एक दूसरे कुलीको बन्दरके मालिकके पास भेजा। बड़ी देर तक सोचनेके पश्चात् मैंने ओरांगको एक तेलकी कुप्पी दिखाई। उसमेंसे तेल गिरता देख कर शायद ओरांगने यह सोचा कि चाकूसे अच्छा यह खेल है चाकू गिरा दिया और कुप्पी ले ली। चुपकेसे मैंने चाकू हटा दिया।

सच और झूठ परखनेका यन्त्र

एक नए यन्त्रका आविष्कार हुआ है जिसकी सहायतासे सच और झूठ का पता चल जाता है। पुलिस विभागमें इससे अपराधियों को पहचानने का काम लिया जाता है। अमरीका में प्रति वर्ष लगभग १३०० अपराधियों की इस यन्त्र द्वारा जांच की जाती है।

यह यन्त्र पुलिस वालों, तथा लोगोंके लिये एक नई सी चीज है इसलिये लोगों को सन्देह होता कि यह जो निर्णय देता है वह ठीक भी है। लोगोंके मनमें दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। 'यह किस प्रकार कार्य करता है ?' साथ ही साथ यह भी जानने की इच्छा होती है कि इस पर 'कहां तक विश्वास' किया जा सकता है ?

जब मनुष्य झूठ बोलता या धोखा देता है तो उसके शरीरमें मनोविकार उत्पन्न होते हैं इन मनोविकारोंसे रक्तका दबाव बढ़ जाता है और सांस की गति भी बढ़ जाती है। बहु-चित्र विधिके आधार पर बने हुए इस यन्त्र द्वारा एक कागज पर (जो सरकता रहता है) सांस की गति और खूनके अधिक दबावको दिखाने वाला चित्र अंकित हो जाता है।

यह तय करने के लिये कि यह यन्त्र जो निर्णय देता है वह ठीक है या नहीं; बहुतसे ऐसे चित्र खींच लिये जाते हैं, फिर खुफिया पुलिस उन अपराधों का पता लगाती है। यदि यन्त्रका इस्तेमाल करने वाला व्यक्ति चतुर हो तो निर्णय काफी हद तक ठीक ही होता है।

किस प्रकार इस यन्त्रसे अपराधियों का पता लगता है, यह जानने के लिये दो एक अपराधियों को खोजने के लिये जो कार्य किया गया उसका वर्णन दिया जाता है।

मान लो कोई व्यापारी रुपयों की एक थैली अपनी मोटरमें छिपाकर रख गया और मोटरके किवाड़ और शीशे लगा कर पासमें किसी कामसे चला गया। जब वह आता है तो उसको मोटरका वह डिब्बा जिसमें रुपयों की थैली रख गया था टूटा हुआ मिलता है। जिस मनुष्य पर उसे सन्देह होता है पुलिस उसको पकड़ कर ले जाती है, और यन्त्र लगा कर उससे बहुतसे प्रश्न पूछती है। जब चुरानेसे सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न उससे पूछा जाता है तो चित्रमें उस स्थान

पर विभिन्नता आ जाती है।

देखने वाला समझ जाता है कि इस प्रश्न का उत्तर इस व्यक्तिने गलत दिया या यह अपराध इसने किया है।

सारे अपराधों के लिए पुलिस प्रायः मिलते जुलते ही प्रश्न पूछती है। ये प्रश्न इस प्रकारके होते हैं—

१. तुम्हारा घर बनारस है?

२. तुम कानपुर रहते हो?

३. यह अक्तूबर का महीना है?

४. इससे पहले भी तुमने अपराध किया है, और पकड़े नहीं गए?

५. क्या चोरी करनेके लिए कभी तुम किसी घरमें घुसे हो?

६. तुम्हारा वारंट तो नहीं निकला?

७. तुमने किसीको रास्ते पर रोक कर लूटा है?

८. तुमने कभी कोई मोटर गाड़ी चुराई है?

९. पिछले साल तुमने कोई चीज चुराई है?

१०. तुमने सब सवालों का जवाब ठीक ठीक दिया है?

इन प्रश्नोंके द्वारा एक बार अपराधियोंके अपराधका पता इस प्रकार लगाया गया:—वे दोनों एक गाड़ीसे उतरे थे—पुलिसको उन पर शक था। उन दोनोंसे यहां दस सवाल पूछे गए। वे दोनों बिलकुल साफ इनकार करते रहे, लेकिन उनके बहुचित्र एकसे नहीं थे। पहले अपराधीसे जब चौथा सवाल पूछा गया। (क्या इससे पहले भी तुमने अपराध किया है और पकड़े नही गए?) तो उस स्थानका बहुचित्र अनवरत एकसा नहीं था। चौथे प्रश्नके स्थान पर चित्रमें गड़बड़ी थी। इसी प्रकारकी गड़बड़ी ५,६ तथा ९ प्रश्नके स्थान पर भी थी। इससे यह सिद्ध हुआ कि वह अपराधी इन इन सवालोंका उत्तर गलत दे रहा था।

इन सब सवालोंसे मिल कर यह फल निकला, कि उसने अपराध किया है और वह अपराध किसी मकानमें या बड़ी दुकानमें घुसनेका है (५ प्रश्नके अनुसार)। उसका वारंट निकला है (प्रश्न ६)। और पिछले साल उसने कोई न कोई चोरी जरूर की है (प्रश्न ९)।

यह बात जाननेके बाद जांच करने वाले अफसरने इन बातोंको ध्यानमें रख कर उससे प्रश्न किए। उसने उनको समझाया कि भई झूँठ मत बोलो हमारे यन्त्रने सब कुछ बता दिया है। उसने जब अपने अपराधों से मिलती जुलती बातें अफसरसे सुनी तो उसे बड़ा अचम्भा हुआ। अपनेको फंसा हुआ समझ कर उसने सब बातें साफ साफ बतला दीं।

उसने बताया, कि उसका घर एक पासकी रियासतमें है। कल ही वह और उसका साथी अपना घर छोड़ कर भाग आए हैं। घरसे भागनेसे पहले वे एक घरमें घुसे थे और वहां से एक पिस्तौल चुरा लाए हैं। वह पिस्तौल उसके पास एक कपड़ेमें लिपटा हुआ था और उस बंडलको वह अपनी बांहके नीचे दबाए हुए था।

यह नहीं समझना चाहिए कि यह यंत्र केवल छोटे छोटे अपराधोंका ही पता लगानेके लिए है। इसके द्वारा मौत या कत्लके अपराधोंका भी पता लगाया जाता है। एक बार एक कत्लके मुकदमेंमें ५० आदमी शकमें पकड़े गए। इस यन्त्र द्वारा जब उनकी जांच की गई तो केवल एक आदमी ही अपराधी मिला। बादमें दूसरे तरीकोंसे जांच करने पर मालूम हुआ कि वास्तवमें वही एक मनुष्य अपराधी था और बाकी सब निरपराध थे।

इस वर्णनसे यह मतलब नहीं है कि इस यंत्रके होनेसे जजों की आवश्यकता ही नहीं रही। जहां अपराधीके पता लगानेके और बहुतसे उपाय हैं उनमेंसे एक यह भी वैज्ञानिक उपाय है—इससे अधिक इसको स्थान नहीं मिल सकता। जैसे कभी कभी डाक्टर या हकीम किसी बिमारीके बारेमें बिलकुल उलटा सोच लेते हैं उसी प्रकार इस यन्त्र द्वारा जांच करने वाला भी इससे प्राप्त फलोंका बिलकुल उलटा मतलब लगा लेता है।

(सायंटिफिक अमेरिकनसे)
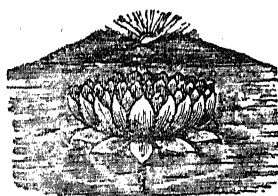
वायुयान

युद्धमें कार्य, रुपद का उपयोग, डाक ले जाना, अग्नि शांत करना, फसल को बचाने के साथ-साथ भयङ्कर हमले भी

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी, एम. ए., बी. एस-सी.]

जिस दिन समाचार-पत्रों में यकायक यह निकला था कि एक ही रात्रीमें जर्मनीने डैनमार्क और नार्वे ले लिया वह सबसे पहला दिन था जिसने संसार को बता दिया था कि इस युद्ध में विजय नव सेनाकी शक्ति के स्थान पर वायुयान की शक्ति पर निर्भर होगी। जिसके पास वायुयानकी शक्ति अधिक होगी वही इस युद्धका विजेता होगा। उसी दिन से इंगलैण्डमें लगातार वायु शक्ति को बढ़ानेका प्रयत्न हो रहा है।

गत महायुद्धमें भी वायुयानों का उपयोग किया गया था किन्तु उस समय वायुयानों में उतनी अधिक उन्नति नहीं हो पाई थी कि वे ही जय पराजयका निर्णय करते, उस समय नव सेना शक्ति ही मुख्य थी। किन्तु अब गति, सामान ले जाने की शक्ति तथा बाहर दूर स्थित देशों पर हमला करनेकी योग्यताके कारण ही वायुयानों का युद्ध के शस्त्रों में प्रमुख स्थान हो गया है।

जलयान केवल समुद्रोंमें चल सकते हैं और टैंक केवल स्थल पर; परन्तु वायुयानों के लिये दोनों ही मार्ग एकसे हैं। इसके साथ साथ बादलों का पर्दा बना कर वायुयान शत्रु के प्रदेश में अपनी रक्षा कर सकता है।

यांकी क्लिपर का यान्त्रिक केन्द्र
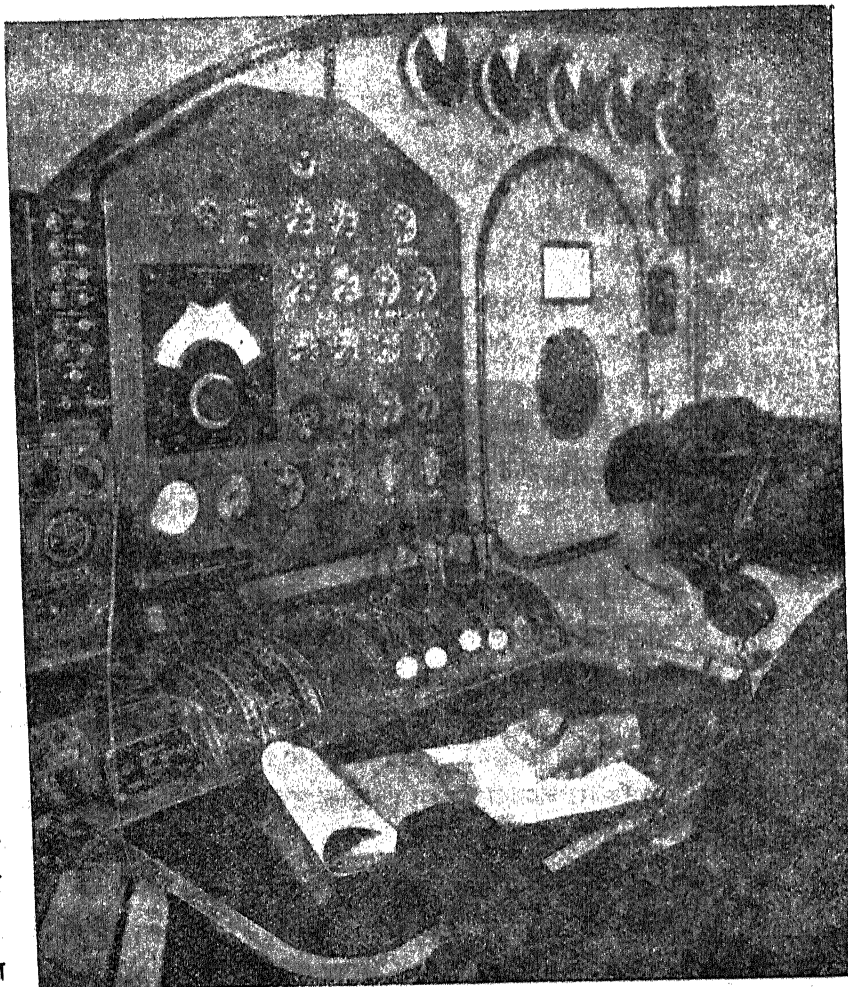
यांकी क्लिपर दुनियां का सबसे बड़ा वायुयान है। यह समुद्रों तथा महासागरों के आर-पार देशोंके यात्री ले जाने के लिये बनाया गया था। इसमें ७४ मुसाफिर चल सकते हैं; ४० यात्रियों के तो सोने का इन्तजाम है। चित्रमें वायुयान का वह कमरा दिखाया गया है जहां से सब यन्त्रों को चलाया जाता है। इसमें काम करने वाले व्यक्ति बड़ी सतर्कतासे कार्य करते हैं।

आज कलका युद्ध वास्तव में एक भिन्न प्रकारका है। उसका झगड़ा दो देशोंका न होकर दो आदर्शोंका झगड़ा है। इस युद्धमें सैनिकसे भी अधिक भयंकर शत्रु हल जोतने वाला किसान और फैक्टरीमें काम करने वाला मजदूर है। किलोंको बरबाद करनेसे भी अधिक आवश्यक है फैक्टरियोंको बरबाद करना। युद्ध जारी रखने के लिये जो लड़ाईकी मशीन के लिये खाना और यन्त्र भेजते हैं वह किसान और मजदूर यदि समाप्त कर दिए जांय तो वह मशीन स्वयं ही कार्य करना बन्द कर देगी। इसके अतिरिक्त आदर्शोंमें युद्ध होनेके कारण मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालना भी इस युद्धके जीतनेका एक उपाय है। किसी प्रकार शान्त जनताको भयभीत कर देना, उनके दिलोंमें सैनिक शक्तिके प्रति अश्रद्धा भर देना यह भी युद्धके लिए आवश्यक है।

स्थल पर चलने वाली सेनायें उस समय तक कार्य नहीं कर सकतीं जब तक मोरचेकी सेनाको बिल्कुल हरा ही न दिया जाय; किन्तु वायुयानों द्वारा यह हर समय सम्भव है।

म्युनिच पैक्ट के पश्चात् तो संसार के सारे देशों ने वायुयानोंके बनानेमें महान् प्रयत्न किया है। डा० विम्परिसने वायुयानकी गतिकी उन्नतिके विषयमें भाषण देते हुए कहा था कि अभी तक वायुयानकी गतिकी कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक तो ऐसे वायुयानके बनाने की फिक्रमें हैं जो इतनी तेज गति से चलेगा कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की परिधिसे भी बाहर निकल जायगा। वह वायुयान इस प्रकार फिर किसी दूसरे तारेमें उतारा जा सकेगा। अभी तक यह केवल गणितके आधार पर ही है, किन्तु सम्भावना है कि इस प्रयोग में सफलता भी मिल सके। इस प्रकार के वायुयान को रोकेट (Rocket) कहते हैं।

इस वायुयानके बनानेमें सबसे अधिक कठिनाई दिशा नियत करने में होती है। यह बिना पंखों का बनाना पड़ता है क्योंकि पंखोंके होनेसे हवाके कारण बहुत अधिक रुकावट होती हैं। यदि पंख न हों तो यह रुकावट बहुत कम हो जाय। यही कारण है कि आज कलके वायुयानोंकी गति अधिक नहीं बढ़ पाती।

इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा था कि फौजी वायुयानोंकी गति ५०० से ६०० मील फी घंटा रहेगी; किन्तु सामान और मुसाफिर ले जाने वाले वायुयानोंकी गति अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। क्योंकि इसमें सफर करने वालोंको बाधा पड़ेगी।

'वायुयानकी बोझा उठानेकी शक्ति पंखोंके आयतन पर ही अधिक निर्भर रहती है। इस ओर भी विशेष प्रयोग किये जा रहे हैं कि कमसे कम वर्ग वाले पंख अधिक से अधिक भार ले कर उड़ सकें।

वायुयान क्लब

अमरीकामें छोटे २ वायुयान बनानेके क्लब बनाये गये हैं। इनके सदस्य अपना दिल खुश करनेके लिये छोटे २ वायुयान बनाया करते हैं। इन वायुयानोंके इञ्जन भी बहुत छोटे अश्वसामर्थ्यके होते हैं; उनकी शक्ति भी प्रायः $\frac{1}{8}$ के बराबर होती है। इनका वजन आध सेर या कभी कभी इससे भी कम होता है। लम्बाई चौड़ाईमें करीब चार पांच इञ्च होते हैं।

ये बनाये हुए वायुयान यद्यपि बच्चोंके खिलौने जैसे होते हैं परन्तु वे उपयोगी भी बहुत होते हैं। इनकी उड़ान देखी जाती है और जो वायुयान पसन्द आ जाता है वह सरकार खरीद लेती। उसीके आधार पर फिर बड़े २ वायुयान बनाये जाते हैं। इस प्रकार लोगोंका मनोरञ्जन भी हो जाता है और सरकारको वायुयानोंके उपयोगी नमूने बिना अधिक व्यय किये प्राप्त हो जाते हैं।

इन छोटे छोटे वायुयानोंमें बिजलीके लिये सूखी बैटरियां (Dry cells) काममें लाई जाती हैं। पृथ्वीमें चलते समय इन बैटरियोंसे काम लिया जाता है किन्तु उड़ते समय ये बैटरियां पृथ्वी पर ही रह जाती है। ये छोटेसे वायुयान प्रायः ५० मील तक उड़ सकते हैं तथा ऊंचाईमें १०,००० फुट तक भी चले जाते हैं।

रूपद या प्लास्टिक का उपयोग

वायुयानोंको सस्ता तथा हल्का बनानेके लिये प्लाईउडका उपयोग किया जाता था किन्तु इसमें कुछ सफलता न मिल सकी, क्योंकि लकड़ी वायु, दीमक, मेह, तथा ओलोंके प्रभाव को अधिक नहीं सह सकती थी।

इन मुश्किलोंको दूर करनेके लिए एँलूमीनियम धातुके संयोगसे बनी मिश्रधातु (Calloy) का उपयोग किया जाता था। इस प्रकारके बने विमानशरीर मजबूत तो होते थे किन्तु उनके बनाने में बहुत समय लगता था। प्रत्येक पंखके भीतर जो सलाखें उन्हें मजबूत करनेके लिये लगाई जाती थीं उनकी संख्या बहुत

अधिक होती थी। हजारों ऐसी छोटी छोटी सलाखोंको लगाने में बड़े २ होशियार मिस्त्रियोंको भी बहुत समय लग जाता था। अमरीका का डगलस नामका कारखाना बड़ी मुश्किल से तथा बहुत अधिक मजदूरों को रख कर १८ महीने में केवल ५०० वायुयान तैयार कर सका था।

इसके अतिरिक्त वायुयानकी बनावट भी एक मुख्य वस्तु है। जो वायुयानके दक्ष हैं वे जानते हैं कि वायुयानके शरीर पर एक छोटा सा गढ़ा या छोटा सा उभरा हुआ स्थान वायुयानकी गति पर कितना असर डालता है। किन्तु धातुके बने वायुयानोंमें ये त्रुटियां रह ही जाती हैं। इन बातोंको दूर करने के लिए ऐसे पदार्थ की आवश्यकता थी जिसे जैसा चाहें मोड़ा जा सके और मजबूत भी काफी हो।

कर्नल क्लार्क के प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा इस प्रकारका पदार्थ प्राप्त हो सका है। इस पदार्थका नाम उन्होंने डुरामोल्ड रखा जिसका मतलब होता है दो भागों वाला, क्योंकि इसके बनाये जहाज केवल दो हिस्सोंमें ढाले जाते हैं।

वह वास्तवमें लकड़ी तथा वास्तविक रूपदके मध्यकी वस्तु है। डुरामोल्ड पर न गड्ढे पड़ते हैं न इसमें दरारें पड़ती हैं। इस पर जल, तेल तथा तेजाब किसीका भी असर नहीं होता। मजबूतीमें यह धातुसे भी अधिक मजबूत होती है, मोरचा न लगने वाले फौलादसे यह १०·४ गुना अधिक मजबूत होती है तथा एलूमीनियमके संयोगकी बनी धातुसे ३·४ गुना अधिक मजबूत, जिन वस्तुओं से यह पदार्थ बनाया जाता है वे बहुत सस्ती हैं। डुरामोल्डके बनाए गए वायुयानोंको किसी भी शकल का बनाया जा सकता है और यह बनावट ऐसी ही रहती है। उसके बिगड़ने का कोई भय नहीं होता।

युद्धसे पहिले नाजी जर्मनीने एक सालमें १०,००० वायुयान बना कर सारे प्रजातन्त्र राष्ट्रोंको भयभीत कर दिया था, किन्तु इन दस हजार वायुयानों के बनाने में जर्मनी को बहुत अधिक मनुष्योंसे काम लेना पड़ा था। जर्मनीके इस युद्धके कार्य के लिये १६०,००० सीखे हुए मिस्त्रियोंकी तथा २४०,००० मजदूरोंकी अन्य छोटे छोटे वायुयानके भाग बनानेके लिए आवश्यकता पड़ी थी। किन्तु डुरामोल्ड से बने हुए वायुयानों को बनाने के लिए इससे बहुत कम मजदूरों की आवश्यकता पड़ेगी तथा प्रति वर्ष संख्या भी ३८,००० के लगभग होगी।

वायुयान का अगला पंखा

वायुयानका सबसे मुख्य तथा उपयोगी भाग यह आगेका पंखा ही है प्रति वर्ष वायुयान के इंजन की शक्ति में लगभग १०० अश्वसामर्थ्यकी वृद्धि हो जाती है इस बढ़ी हुई शक्तिको उपयोगमें लानेके लिए इन पंखोंकी संख्या बढ़ा दी गई है। दो या तीन फलकोंके स्थान पर अब चार तक रखे जाते हैं।

वायुयान जब काफी ऊंचाई पर हो तो कितने ही मीलों तक वह बिना मोटरके चलाए हुए भी कार्य कर सकता है। इसमें इन फलकोंकी दिशा बाधक होती है। इस कठिनाईको दूर करने के लिए एक भिन्न प्रकारकी युक्तिसे काम लिया जाता है। ये फल बड़ी मजबूतीसे कसे होनेके स्थानमें इस प्रकार बने होते हैं कि उनको जब चाहो घुमाया जा सकता है और उनके झुकावके कोणमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

डुरामोल्ड का बना वायुयान
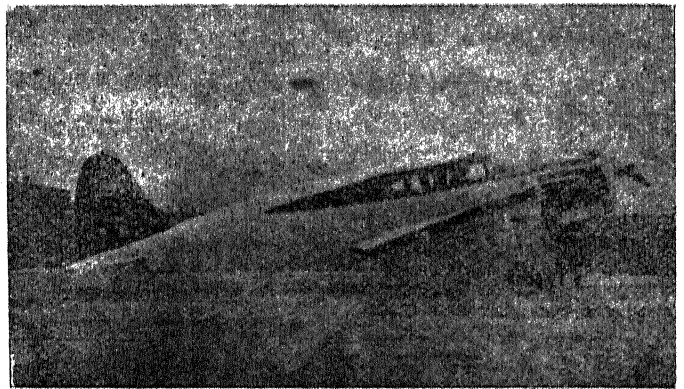
रूपद का बना वायुयान का शरीर। इसके बने वायुयानके शरीर में अधिक जोड़ नहीं होते हैं; सारा शरीर दो भागों का बना होता है।

यदि कोई वायुयान २०,००० फुट की ऊंचाई पर हो तो वह इञ्जन बन्द कर देने पर भी पृथ्वी पर उतरनेके समय तक ७२ मील चल सकता है। इस यात्रामें इंजिन बन्द होनेके कारण वायुयान कोई आवाज भी नहीं करेगा। इस प्रकार एक वायुयान फ्रांसके किनारेसे उड़ कर इंगलैण्डके दक्खिनी पश्चिमी किनारे पर घूम कर वापिस आ सकता है। आवाजसे हवाई जहाजोंका पता लगाने वाले यन्त्रोंको भी इसकी स्थितिका पता नहीं चल सकता।

कई कई इंजिन वाले वायुयानोंमें शीघ्रतासे मोड़ लेनेके लिये ऐसे पंखे लगाये जाते हैं कि वे दोनों ओरको घूम सकें। यदि किसी वायुयानमें चार पंखे हों तो दो एक तरफको और दो दूसरी तरफको घूमानेसे बहुत थोड़ी सी जगहमें ही घुमाया जा सकता है।

दोनों ओर घूमने वाले पंखे
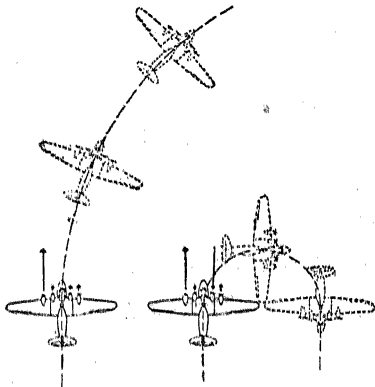
यदि वायुयानके अगले पंखे एक ही ओर को घूमने वाले होते हैं तो जल्दी मोड़ने में दिक्कत होती है। दोनों ओर को चलने वाले पंखों की सहायतासे मोड़ने में आसानी होती है चित्र में दोनों प्रकार से वायुयानों के मोड़ने की गति दिखलाई है।

बिना चलाने वाले के भी वायुयान उड़ सकते हैं

अमरीका तथा जर्मनीमें इस प्रकारके प्रयोग किये जा रहे हैं कि वायुयान बिना किसी चलाने वालेकी सहायताके स्वयं चल सकें, मुड़ सकें तथा पृथ्वी पर आप ही उतर आयें। इसमें सफलता भी प्राप्त हो चुकी है।

वायुयानमें चलाने और मोड़नेकें सारे यन्त्र रेडियोकी तरंगों द्वारा काम करते हैं स्थल पर नीचे बैठा हुआ मनुष्य बटनों द्वारा वायुयानकी दिशा निर्धारित करता रहता है, स्थलका यन्त्र विद्युत धाराओंको भेजता रहता है और वायुयानमें लगा हुआ यन्त्र उन धाराओंके द्वारा कार्य करता रहता है। इतना ही नहीं, इन्हीं विद्युत् धाराओंके प्रभावसे वह दुश्मनके देशमें बम वर्षा करके अपने देशमें लौट कर भी आ सकता है।

समुद्र और स्थल दोनों पर उतर सकने वाले वायुयान

अब इस प्रकार के वायुयान बनाये जाते हैं कि वे स्थल पर भी उतर सकें और आवश्यकता पड़ने पर समुद्रोंमें भी। इस प्रकारके वायुयानोंमें स्थल पर उड़नेसे पहले चलने के लिये जो पहिये लगे रहते हैं वे समुद्रमें उतरते समय एक कमानी द्वारा ऊपरको उठा दिये जाते हैं। जब स्थल पर उतरना होता है तो ये फिर नीचेको किये जा सकते हैं। नीचेके चित्रोंसे इस प्रकारके वायुयानोंके विषयमें प्रर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

जल और स्थल दोनों पर उतरने वाले वायुयान
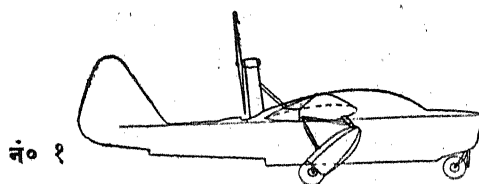
१. स्थल पर उतरते समय पहिया नीचे हो जाता है।
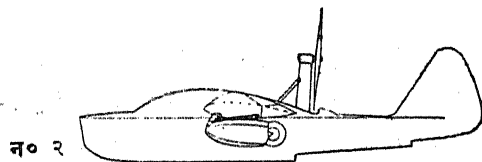
२. समुद्रमें उतरते समय एक कमानी की सहायता से पहिया ऊपर उठा दिया जाता है।

इन वायुयानोंमें घूमने वाला पंखा आगे न लगा कर बीच में ऊपर लगा होता है। किन्तु वायुयानको उतरते समय उलटने से बचानेके लिये गुरुत्व केन्द्रको पृथ्वीके सबसे अधिक निकट रखना चाहिये यदि वायुयानका इंजिन भी पंखोंके पास रहेगा तो गुरुत्व केन्द्र ऊपरकी ओर अधिक हो जायगा और उलटनेकी अधिक सम्भावना रहेगी। इसके लिये इंजिन तो मध्यमें नीचे ही रखा जाता है किन्तु एक मोटी सलाख द्वारा जिसके अन्तिम सिरे पर दांते होते हैं पंखा ऊपर भी घुमाया जा सकता है।

(क्रमशः)

मसालों के इत्र* (उद्वायी तेल)

[लेखक—श्री रामसूरत दूबे, एम. एस-सी.]

लगभग सारे सभ्य संसारमें मसालोंकी बहुत बड़ी मांग है क्योंकि हमारे अधिकांश भोज्य पदार्थोंमें इनकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है। सभ्यताके साथ साथ हमारी रुचि भी परिवर्तित होती जा रही है और स्वाभाविक वस्तुओंसे तृप्त न होकर, हम कृत्रिम वस्तुओंकी शरण लेने लगे हैं, खाद्य-पदार्थों की तैयारीमें हमारी उन्नति उसी ढर्रे पर हुई है जैसे ओषधियोंका निर्माण और प्रयोग। जिस प्रकार हम अब धतूरे के स्थान पर एट्रोपीन (Atropine) और अफीम के स्थान पर मार्फीन (Morphine) का प्रयोग करने लगे हैं उसी प्रकार और लगभग उन्हीं कारणोंसे हम लौंग और धनियां आदि के स्थान पर उनके उद्वायी तेलोंको प्रयोगमें लाने लगे हैं कारण यह है कि सूखे मसालोंमें कई अवगुण होते हैं जो इनमें बिलकुल ही उपस्थित नहीं होते।

सूखे मसालोंके अवगुण

मसालोंका विशेष प्रयोग अचार और चटनीके व्यवसायी करते हैं, लेकिन सूखे मसालोंके द्वारा उन्हें अपने मालको साल भर एक ही सा स्वादिष्ट और सुगन्धित बनाए रखनेमें एक बहुत बड़ी कठिनाई यह पड़ती है कि भिन्न २ स्वाभाविक दशाओंमें उत्पन्न मसालोंके गुणोंमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ता है और चूंकि व्यवसायी लोग अभाग्य-वश सस्ते मसालोंका प्रयोग करते हैं इसलिए यह मानी हुई बात है कि उनके माल कभी भी अच्छे नहीं हो सकते।

दूसरा कारण यह है कि सूखे मसाले हमारे लिए आदर्श-वस्तुएं नहीं हैं क्योंकि उनके उद्वायी तेलोंका सेवन हमारे काम का होता है। शेष सारा भाग अनावश्यक और कभी-कभी हानिकर होता है। पहली अनावश्यक वस्तुएँ मसालोंके बीजोंमें वर्त्तमान कीटाणु (Bacteria) और (Enzymes) उत्प्रेरक जीव होते हैं। इनसे भोज्य-पदार्थोंके सड़ जानेका भय होता है।

दूसरी अनावश्यक वस्तु मसालोंकी वह छिद्रोज जैसी (Cellulose Like) वस्तु होती है जो तेलकोष्ठों (Oil-Cells) की ऊपरसे रक्षा करती है। जब तक यह छिद्रोज सी (Cellulose Like) वस्तु अलग कर के तेल कोष्ट (Oil-cells) तोड़ न दिए जांय तब तक हमें मसालेका उद्वायी तेल जिसके कारण स्वाद सुगन्ध (Flavour) होता है, प्राप्त नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त धूप, धरती, जलवायु आदि प्राकृतिक साधनों की भिन्न भिन्न दशाओंमें, उत्पन्न होकर एक ही मसाला एक ही से गुणोंसे सम्पन्न नहीं होता, इसलिए भिन्न भिन्न मसालोंमें समता नहीं हो सकती—

एक अवगुण सूखे मसालोंमें यह भी है कि नमकके घोल (Brine) में वे आसानीसे घुलते नहीं।

इत्र-निकालना

हमारे यहां मसालोंसे उद्वायी तेलोंका निकालना और अचार चटनीमें उनका प्रयोग प्रति दिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि इनके सहारे मालको साल भर समरूपसे स्वादिष्ट और सुगन्धित बनाए रखना सरल हो गया है। भारतवर्ष बूटियों और मसालोंका घर है। यहां यह बिलकुल आसानीसे हो सकता है कि यह तेल इतने शुद्ध-पवित्र बनाए जायं कि अपनी घरेलू मांग पूरी करके विदेशोंमें भी इनका निर्यात हो सके।

इत्र के निकालनेकी क्रिया अल्प-व्ययसे ही एक साधारण रसायन-शास्त्रज्ञके हाथ सफल हो सकती है; विशेष रूपसे वहां जहां बूटियां और मसाले पैदा होते हैं, किन्तु वर्तमान समयमें इनके उपजाने और बाजारके लिए तैयार करनेका काम अशिक्षित प्रजाके हाथमें है। इसीलिए माल इतना अच्छा नहीं होता कि ग्राहकोंको पसन्द आए।

---

* अनेक बनस्पतियों के मूल, छाल, पत्र, बीज फूल आदिमें जो सुगन्ध होती है वह एक प्रकार के उड़नशील या उद्वायी तेलों (Volatile Oil) के कारण होती है। यह उद्वायी तेल यद्यपि तेल नहीं होते किन्तु तैलीय जातिके होने से इनको इत्र (Essence) कहते हैं। इन्हीं इत्रोंमें उत्तम सुगन्धका गुण भाग विद्यमान रहता है। जो साधारण उत्ताप पर उड़नशील है। इनके अणु जब उड़कर हवामें मिलते हैं, तो उनका हमारी नाकसे स्पर्श होतेही उसकी गन्धका ज्ञान होता है।

सम्पादक हरि०

उद्वायी तेलोंको निकालनेकी क्रिया भाप द्वारा (Steam distillation) की जाती है सूखा मसाला कूट कर छोटे २ कणों (चूर्ण रूप) में विभाजित कर दिया जाता है और एक बड़े बन्द बर्तनमें रख दिया जाता है जिसके ढक्कनमें से होकर एक नली बाहरकी ओर भाप जमाने वाले यंत्र Condenser में जाती है, और जिसका पेंदा छिद्र-मय होता है और एक नली के द्वारा वाष्प-जनक बर्तन (Boiler) से जुड़ा होता है।

जब भाप अधिक दबावके साथ छिद्रोंके द्वारा मसालेमें होकर जाती है तो उद्वायी तेलको अपने साथ ले जाती है फिर भाप जमाने वाले यंत्रमें द्रव बनकर एक बर्तनमें टपकती है। इत्र अगर पानीसे हल्का हो तो उसकी सतह पर तैरता है किन्तु पानीसे भारी हुआ तो पेंदे पर जाकर जमा होता है। उदाहरणत: लौंगका तेल पानीके नीचे और जायफलका तेल पानी के ऊपर तैरता है।

यह उपाय जितना ही सरल है उतना ही लाभदायक भी है क्योंकि सारी अनावश्यक वस्तुयें (Impurities) पीछे छूट जाती हैं। केवल इत्र भापके साथ ऊपर जाता है, अधिक दबाव के साथ आने वाली भाप छिद्रोज से (Cellulose like) पदार्थोंको घुलाकर, इत्र-कोष्ठोंको तोड़, इत्रको उड़ा ले जाती है।

इत्रका प्रयोग

चूंकि इत्र ही स्वाद-सुगन्धका मूल कारण है और मसालेमें यह प्रतिशत से कम ही होता है; इसलिए मसालों के स्थान पर इत्रोंका प्रयोग करते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि इत्रकी मात्रा प्रतिशतके अनुसार ही रहे।

इत्र ही हमारे प्रयोगमें लानेके लिए आदर्श वस्तु है इसका स्वाद-सुगन्ध सम होता है। दूसरे भिन्न २ स्वाद-सुगन्धके लिये ये इत्र भिन्न भिन्न मात्रामें मिश्रित किए जा सकते हैं।

इत्र नमक के घोल (Brine) में लेश-मात्र ही घुलनशील होते हैं, इसलिए इन्हें पहले किसी विभाजक-वस्तु (Emulsifier) के साथ एक खरल (Mortar) में खूब रगड़ा जाता है। इससे इत्र अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभाजित होकर फेनके रूपमें आ जाता है। फिर इस फेनको नमकके घोलमें सुगमतासे मिलाया जा सकता है।

मीठे-आचार

मीठे अचारोंको बनाते समय इत्रोंके घुलानेमें एक विशेष प्रकारकी कठिनाईका सामना करना पड़ता है, क्योंकि इत्र चीनी और सिरके (Vinegar) के घोल में घुलनशील नहीं होता, इस कठिनाई को दूर करने के लिए इत्र को पहले ६५°/॰ अंश वाले मद्यसार (Rectified spirit) में घुला लिया जाता है और फिर यह घोल चीनी और सिरके के घोलमें सुगमता से मिश्रित किया जा सकता है।

प्रायोगिक-क्रिया

इन इत्रोंका पहले-पहल प्रयोग करते समय मीठे घोलको एक एक गैलनकी मात्रामें तैयार रखना सुविधा जनक होगा।

अस्तु ७ पौंड चीनी (रवेदार) को सिरके के ३ पाइन्ट में घुलाइए और पानी इतनी मात्रा में डालिए कि आयतन १ गैलन हो जाय। फिर घोलके थोड़े अंशमें थोड़ा-थोड़ा इत्र का घोल (मद्यसारमें) मिलाइए।

लगभग प्रत्येक मीठे आचारका स्वाद-सुगन्ध प्रारम्भिक रूपसे लौंग, दालचीनी, जावित्री आदिके इत्रोंके कारण होता है। इन इत्रोंको भिन्न-भिन्न मात्रामें मिलानेसे भिन्न-भिन्न स्वाद-सुगन्ध पैदा किए जा सकते हैं। सुगन्ध बढ़ानेके लिए अन्य इत्र भी आवश्यक मात्रामें मिलाए जा सकते हैं। संतरा, नींबू, जायफल, अजवायन आदिके इत्रोंको मिश्रित कर देनेसे उनके सुगन्ध-विशेष से संयुक्त आचार या चटनी बनाई जा सकती है।

एक सर्व-साधारणके जान लेने योग्य और लाभदायक बात यह है कि सारे के सारे इत्र एक दूसरे में घुलनशील होते हैं, इसलिये कई एकको मिलाके एक नया इत्र ऐसा तैयार किया जा सकता है कि कोई यह ठीक-ठीक नहीं बतला सकता कि किन किन इत्रोंको मिला कर यह नया इत्र बना है। व्यापारकी दृष्टिसे यह एक महत्वपूर्ण बात है क्योंकि एक व्यवसायी दूसरे का अनुसरण नहीं कर सकता।

कुछ अपवाद

कुछ इत्रोंमें मसालेका पूर्ण स्वाद नहीं होता। जैसे काली मिर्च और अदरक। इनमें सुगन्धके अलावा अन्य रालीय पदार्थो (Oleo resins) के कारण एक विशेष स्वाद होता है, इत्र निकालनेकी उपरोक्त विधि ऐसे स्थानों पर असफल होती है। इनके लिये घोलक (Solvent) की आवश्यकता पड़ती है।

साधारणतया काममें लाये जाने वाले द्रव मद्यसार (Alcohol) सिरकोन (Acetone) और ईथर (Ether) हैं।

महीन कुटा हुआ सूखा मसाला एक लम्बे बर्तनमें भरा जाता है और ऊपरसे आवश्यक द्रव धीरे धीरे गिरता है और इत्र तथा स्वाद-पूर्ण अन्य रालीय वस्तु (Olco resins) को घुला कर पेंदेमें एक छेदसे होकर नीचे टपकता है, जब सारा सत्त इस प्रकार निकल आता है तो घुलाने वाला द्रव वातशून्य पात्र में डाल कर परिश्रुत (Vacuum distillation) कर लिया जाता है और अनावश्यक पदार्थ पीछे छूट जाता है। यह मसालोंके इत्रोंमें घुलनशील होता और सम्मिश्रण-दृष्टिकोणसे कोई ऐसी कठिनाई उपस्थित नहीं करता; किन्तु इसको विभाजित रूपमें लाने के लिये इसे अन्य इत्रोंके अधिकांशके साथ मिश्रित करने की आवश्यकता पड़ती है।

व्यवसाइयोंके लाभार्थ निम्नांकित सुचीमें कुछ प्रसिद्ध मसालों में इत्रोंका प्रतिशत दिया हुआ है।

मसाला	इत्र का प्रतिशत
कड़ुआ बादाम	०·५ %
काली मिर्च	१·५ %
सौंफ	३·० %
नागदोन	०·०१ %
जीरा	५·० %
छोटी इलायची	५·० %
गाजरके बीज	२·० %
लौंग	१७ %
धनिया	०·५ %
सोया (बीज)	३·५ %
सोया (पौदा)	०·५ %
जावित्री	१२·५ %
सरसोंके बीज	०·७५ %
जायफल	१२·५ %
अजवायन	२·० %
दारचीनी	१·० %
तेजपत्र	२·५ %
बादयान खताई	२·० %
जीरा काला	३·०% ५·०%
बड़ी इलायची	५·० %

इन इत्रोंको किसी खाद्य द्रव्यमें डालनेके समय इस बातको खूब समझ लेना चाहिए कि इन्हें कब किस समय मिलाया जाय, आचार मुरब्बा या अन्य कोई खाद्य द्रव्यको सुगन्धित करके उसे डब्बोंमें बन्द करना हो तो इत्र उस समय मिलाना चाहिए जब डब्बे पैक कर रहे हों। भोजनीय द्रव्योंमें उस समय डालना चाहिए जब वह ठण्डे हों या गरम गरम दाल भाजीमें डालना हो तो ठीक भोजन परोसनेके कुछ मिनट पहिले डाले जांय।

मसाले के इत्रों को बहुत गरम या उबलते हुए खाद्य द्रव्यमें डाल देने पर ये उड़नशील होनेके कारण बहुत कुछ उड़ जाते हैं इसलिए खाते समय इसकी सुगन्धका जो आनन्द आना चाहिए वह नहीं आता। मसालोंके इत्रोंका उपयोग करनेसे पूर्व इस बातको भी समझ लेना आवश्यक है कि किस खाद्य द्रव्यमें कौन २ से इत्र परस्पर कितनी कितनी मात्रामें मिश्रित कर डालने चाहिएं। इनके भिन्न भिन्न नुसखों के मिश्रणका रूप (Formula) न मालूम हो तो अच्छी सुगन्ध प्राप्त नहीं होती। और जब तक खाद्य द्रव्यमें वस्तुके अनुरूप सुगन्ध न आवे उसके खानेमें आनन्द नहीं आता। इसलिए इस विषय पर किसी अगले अंकमें विचार करेंगे।
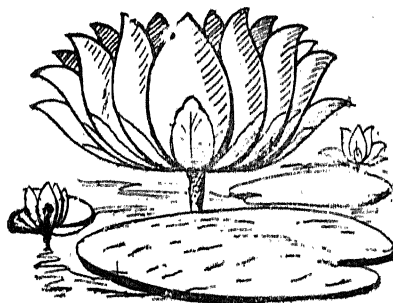
अल्यूमिनियम

अल्यूमिनियम या ऐल्यूमिनियम धातुकी उपयोगिता अब इतनी अधिक बढ़ गई है कि इस पर महायुद्ध का हारना जीतना निर्भर है। हमारी सरकारने इस उपयोगी धातुका आवश्यक खर्च रोकनेके लिये इसका विदेशसे भारतवर्षमें आना बन्द कर दिया है। जो कुछ भी अल्यूमिनियम मिल सकता है सरकार स्वयं ले जाती है और उससे ग्रेट ब्रिटेन हवाई जहाज बनाता है। इन दिनों हवाई जहाजोंमें इस धातुका बहुत खर्च होता है क्योंकि यह बहुत हल्का होता है अल्यूमिनियम कुल २·७ गुना ही भारी है। फिर इस धातु और तांबे आदिसे मिल कर बने संकर धातु (Alloys) बहुत चिमड़े और मजबूत भी होते हैं। दो-से दस प्रतिशत मैंगनीशियम मिला अल्यूमिनियम बहुत ही हल्का होता है, परन्तु हवाई जहाजोंमें ड्यूरैल्यूमिनियम लगता है जो अल्यूमिनियम में साढ़े चार प्रतिशत तांबा, १ प्रतिशत मैंगनीशियम और जरा-सा मेंगनीज डाल कर बनता है।

टंकियों में छोड़ा जाता है और अल्यूमिनिया बनाया जाता है।

यदि इस धातुका बहुत ही बारीक चूर्ण बनाया जाय—इतना बारीक कि जिस शीशी में यह चूर्ण रहे उसे हिलाने पर शीशी के पूर्णतया स्वच्छ रहने पर भी चूर्ण शीशीकी दीवार में चिपक जाय—तो गरम करने पर यह जल उठेगा। खौलते पानी के तापक्रम तक इसे गरम करके ठोंका-पीटा जा सकता है, परन्तु बहुत गरम करने से यह भुरभुरा हो जाता है।

अल्यूमिनियममें विशेष अवगुण यह है कि खारी पानीमें विशेष कर समुद्रके पानीमें, यह घुल जाता है।

बेलने वाली मशीन।
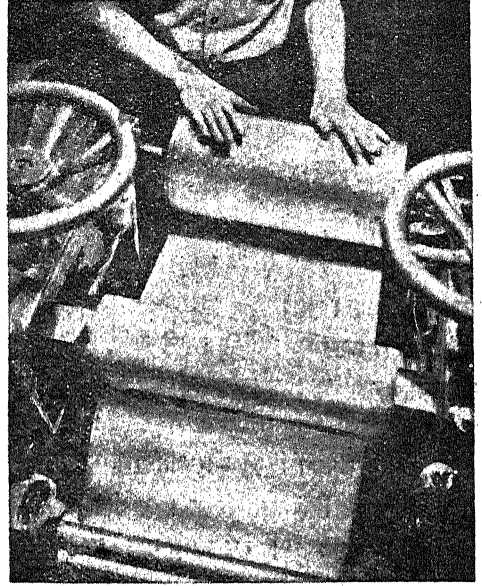
अल्यूमिनियम की चादर इस मशीन द्वारा बनाई जाती है—इसमें बड़े बड़े बेलन लगे होते हैं।

यों तो अल्युमिनियम प्रायः सभी मिट्टियों में रहता है पृथ्वी की ऊपरी परत में लगभग ७ प्रतिशत अल्युमिनियम है परन्तु इसे इन मिट्टियोंसे अलग करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसे अभी केवल बाक्साइट (Bauxite) नामक मिट्टी (या खनिज पदार्थ) से निकालते हैं। इसे कास्टिक सोडामें घोलते हैं। इसमें ऐल्युमिना नामक रासायनिक पदार्थ डालने पर कुल अल्युमिनियम नीचे अल्युमिनियमहाइड्राक्साइड के रूप में बैठ जाता है। इसे अलग करके पिघले क्रायोलाइटमें घोलते हैं और बिजलीकी धारा इसीमें से होकर जाने देते हैं। तापक्रम लगभग ६०० डिगरी सेंटीग्रेड रहता है बिजलीसे अल्युमिनियम अलग हो जाता है। इस समय यह पिघला रहता है।

यहां दिये गए एक चित्रमें दिखाया गया है कि किस प्रकार कास्टिक सोडा में घुले बॉक्साइटको पंप द्वारा उन बर्तनों में डालते हैं जिनमें ऐल्युमिना डाला जाता है। दूसरे चित्रमें अल्युमिनियमको बेलकर चादर बनानेकी रीति दिखलाई गई है।

चिट्ठी तोलने का तराजू

तैरती वस्तुओं पर जितना ही अधिक बोझ डाला जायगा, उतना ही अधिक वे पानीमें धंस जायंगी। उदाहरणतः नाव पर जितने ही अधिक लोग बैठेंगे, उतनी ही अधिक वह पानीमें दब जायगी। कहा जाता है कि एक बादशाह अपने प्रिय हाथी को तुलवाना चाहता था। इसे उस जमाने का कोई इंजिनियर या वैज्ञानिक न कर सका क्योंकि काफी बड़ी तराजू बनाना उस समय सम्भव नहीं था। परन्तु एक बूढ़े मल्लाहने अर्जी पेश की कि वह हाथी को तोल सकता है। अर्जी मंजूर हुई। मल्लाहने अपनी नाव पर हाथी को चढ़ा लिया और जहां तक नाव पानी में डूबी थी वहां तक उसने चिह्न लगा लिया। हाथीके उतरने पर नाव हल्की होकर उभर आई। तब उसने नाव पर गिन-गिन कर इतने आदमियोंको चढ़ाया कि नाव फिर पहले लगे चिह्न तक डूब जाय। इन गिने आदमियों को अब अलग-अलग तोल कर और उनकी तोलों को जोड़ कर उसने तुरन्त बतला दिया कि हाथीका तोल क्या है। बादशाह बहुत खुश हुआ और मल्लाह को गहरी रकम इनाममें मिली।

यहां वर्णन किया गया तराजू उपरोक्त सिद्धान्त पर बना है और इसे कोई भी चतुर बालक शीघ्र बना सकता है। यह केवल मजाक नहीं है। इससे वस्तुतः चिट्ठियां तोली जा सकती हैं और इसका उपयोग प्रति दिनके काम काजके लिए किया जा सकता है। इसके लिए चौड़े मुंह की कोई बोतल या बड़ी शीशी होनी चाहिए। इसमें पानी गर्दन तक भर दिया जाता है। तोलने वाला भाग इसी बोतल में डाल दिया जाता है। यह और कुछ नहीं मामूली लकड़ी की गोल छड़ी है, इसके एक सिरे पर पीतल या हो सके तो सीसा (धातु) जड़ दिया जाता है जिसमें पेंदा भारी रहने से लकड़ी तिरपट न होने पाए और दूसरे सिरे पर दफ्ती जड़ दी जाती है। इसी दफ्ती पर आधा तोला, १ तोला, २ तोला आदि के बांट रख कर लकड़ी पर चिह्न लगा दिये जाते हैं और यह भी लिख दिया जाता है कि किस बांट से किस चिह्न तक लकड़ी डूबती है। स्मरण रहे कि एक रुपये के तोलको ही एक तोला कहते हैं। लकड़ी जब पानी के कारण भीतर तक तर हो जायगी तो भारी हो जायगी और चिह्नोंसे ठीक तोल न निकलेगी। इसलिए लकड़ी को पानीमें डालने के पहले इसे कुछ समय तक पिघले मोममें डुबाए रखना चाहिये या पिघला मोम खूब पोतकर लकड़ीको आगके सामने कई मिनट तक गरम करना चाहिए जिससे मोम भीतर तक घुस जाय, पीछे फालतू मोम पोंछ देना चाहिये। इस कामके लिए मोमबत्ती का मोम अच्छा है। यह पैराफिन मोम है, यह न मिले तो मधुमक्खीके मोमसे भी काम चल जायगा। छड़ी यदि किसी सफेद और हलकी लकड़ी की हो तो अच्छा है काली और भारी लकड़ियां (जैसे शीशम वगैरह) इस कामके लिए ठीक नहीं हैं। चीड़, आम, तुन, सेमर आदिकी लकड़ियां उचित होंगी।
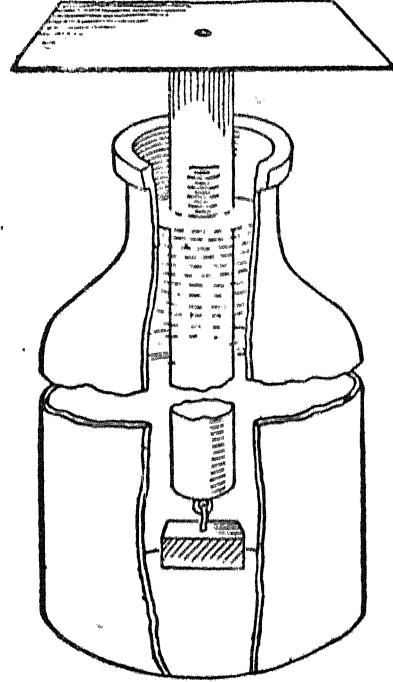
वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

डोगलस बी-१६—नवीन हवाई जहाज जिसका नाम डोगलस बी-१६ रक्खा गया है इतना बड़ा होगा कि इसमें १० आदमी और १८ टन बमके लिये स्थान रहेगा। एक बार पेट्रोल भरने पर यह ७५०० मील उड़ सकेगा। यदि बम न रक्खा जाय तो इसमें १२५ सिपाही अपने सब समानसे लैस होकर उड़ सकेंगे। इसमें एक बारमें ११००० गैलन पेट्रोल भरा जाता है, यह २१० मील प्रति घंटा उड़ सकता है और २२००० फुट ऊपर उड़ सकता है, इसका पंख २१२ फुट लम्बा है और शरीर १३२ फुट, इसमें चार इंजन रहेंगे और प्रत्येकमें २००० अश्वबल उत्पन्न होगा।

अँधेरा होने पर आपसे-आप रोशनी—जहां बिजली की रोशनी होती है वहां भी किसी व्यक्ति को अँधेरा होने पर स्विच दबाना पड़ता है। परन्तु जेनरल इलेट्रिक कम्पनीने अब एक ऐसा यंत्र बनाया है जिसमें फोटो-एलेक्ट्रिक-सेल लगा है, फोटो-एलेक्ट्रिक-सेल में सिलीनियम धातु रहता है जिस पर प्रकाश पड़नेसे जरा सी बिजली पैदा होती है। इसी जरासी बिजलीको प्रवर्द्धित करके स्विचको खुला रखनेके लिये प्रयोग किया जाता है। अँधेरा होने पर जब सिलीनियमसे बिजली नहीं निकलती तो स्विच बन्द हो जाता है और सब बल्ब जल उठते हैं। ऐसे स्विच अभी चौराहों और रेलकी गुमटियों (फाटकों) पर लगाये जायँगे।

रबड़ के मडगार्ड—सभी मोटर गाड़ियों में कभी-न-कभी धक्का लग ही जाता है, चाहे ड्राइवर कितना ही होशियार क्यों न हो? परिणाम यह होता है कि मडगार्ड पिचक जाते हैं। मरम्मत करके दुबारा रंगे जाने पर भी वे पहले जैसे सुन्दर नहीं हो पाते। इसलिये इंग्लैंड के डनलप रबर कम्पनी ने रबड़ के मडगार्ड बनाने का प्रबन्ध किया है। ये कड़े रबड़ के बनेंगे और इसलिए उनका आकार आप-से-आप नहीं बदलेगा। परन्तु वे लचीले होंगे। टक्कर खाने पर वे मुड़ जायंगे अवश्य, परन्तु दबाव के हटते ही वे अपने पुराने आकार के हो जायंगे। केवल बहुत जोर की ठोकरों से ही वे टूटेंगे। इन मडगार्डो से एक लाभ यह भी होता है कि वे मोरचा नहीं खाते।

आटेमें विटैमिन—चक्की में हाथ से पिसे आटे में प्रायः वे सभी विटैमिन रह जाते हैं जो गेहूं में होते हैं। इसीलिये ऐसा आटा बहुत ही स्वास्थ्यप्रद होता है। विशेष कर जब चोकर भी न निकाला जाय तब आटा बहुत ही लाभ-दायक होता है। परन्तु मशीन से बने मैदे में विटैमिनों की मात्रा बहुत ही कम हो जाती है। वर्तमान युग में विटैमिनों का राज्य है। अब सभी चाहते हैं कि अन्न का विटैमिन किसी प्रकार नष्ट न होने पावे। इसलिये मैदा बनाने वाली बड़ी-बड़ी यूरोपियन और अमरीकन मिलों में चोकर से सब विटैमिन निकालकर मैदे में मिलाने की रीतियां निकाली गई हैं और अब विटैमिन युक्त मैदा भी बराबर बिकता है। मैदे में कोष्ठवद्धता (कब्ज) उत्पन्न करने का जो दोष है वह तो इस रीति से नहीं मिट पाता, परन्तु विटैमिनों की कमी बहुत कुछ पूर्ण हो जाती है।

एक साल पुराना गुंथा आटा—परड्यू यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ने प्रयोग करके देखा है कि यदि गुंथा आटा (अर्थात पानी डाल कर साना हुआ आटा) शीघ्र ही खूब ठंढा करके जमा दिया जाय और वर्फ के समान ठंढी कोठरी या रेफरीजीटर में रक्खा जाय तो साल भर तक बिगड़ता नहीं। अभी तक इस प्रयोग से कोई उपयोगी परिणाम नहीं निकल पाया है, परन्तु सम्भव है किसी दिन इससे लाभ उठाया जा सके।

क्या रूपदों के कारण धातुओं का प्रयोग उठ जायगा?—धातु बनाने वाले डरने लगे हैं कि सेलुलायड, बेकलाइट आदि की जाति के रूपद पदार्थों [Plastics] के कारण शायद धातुओं की खपत इतनी कम हो जायगी कि कुछ कारखानों को बंद कर देना पड़ेगा। बहुत सी वस्तुएं जो पहले धातुसे बनती थीं अब रूपदोंसे बनती हैं। भारतवर्ष में भी रूपदों के डिब्बे, डिब्बियां, गिलास, कटोरी आदि बिकने लगी हैं। तो भी डाक्टर बेस्ट का कहना है कि इन रूपदों के कारण बहुत सी ऐसी मशीनें और बरतन जो घर में इस्तेमाल किये जाते हैं इतनी सस्ती हो जायेंगी कि इनकी खपत बहुत बढ़ जायगी इसका परिणाम यह होगा कि धातु की खपत भी बढ़ जायगी, क्योंकि बहुत से पुरजे ऐसे हैं जो केवल धातु के ही बन सकते हैं और इन मशीनों या बरतनों में लगते हैं।

समालोचना

त्रिदोषालोक—लेखक व प्रकाशक—श्री विश्वनाथ द्विवेदी, प्रिन्सिपल श्री ललित हरि आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत। साइज २०×३०=१६। पृष्ठ ३२० मूल्य २)

ई० सन् १९३४ में मेरे द्वारा जब 'त्रिदोष मीमांसा' प्रकाशित हुई थी उस समय वैद्यसमाज में बड़ी उत्तेजना थी उस समय उसका उत्तर देनेका काफी उत्साह पाया गया था, ऐसा ज्ञात होता था कि मानो इस पुस्तक के विरोध चारों ओरसे एक तूफान उठने वाला है। कई सम्पादकों व लेखकोंकी कलमने जोर भी मारा था और पुस्तककी आंशिक आलोचना आरम्भकी थी, पर पुस्तकके अन्त तक न पहुंच पाये उक्त ग्रन्थ पर विचार करनेके लिये सन १९३५ ई० में त्रिदोष-सम्भाषा-परिषदका-आयोजन हिन्दू-विश्व-विद्यालयमें हुआ। उस समय पं० भानुशंकरशर्मा संग्रहीत त्रिदोषवादः तथा गुरुकुलस्नातक पं० धर्मदत्त द्वारा त्रिदोष विमर्ष नामक एक एक संस्कृतमें निबन्ध पुस्तकाकार उपस्थित किये गये, जिसमें प्रत्यक्ष अनुमान और आप्त प्रमाणों द्वारा त्रिदोषवादकी नींवको दृढ़ भित्ती पर खड़ी दिखलानेकी पूरी चेष्टा की गई। किन्तु त्रिदोष मीमांसाका कोई जिकर तक न आया। सन १९३६ ई०में कविराजश्री उपेन्द्रनाथ-दास भिषगाचार्य अध्यापक यूनानी तिब्बिया कालेज देहलीने पञ्चभूत-विज्ञानम् और त्रिदोष-विज्ञानम् नामके दो निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित किये। जिनमें त्रिदोष मीमांसाकेअनेक विचारणीय अंशोंमें से कुछ एक अंशोंका आपने उत्तर दिया। किन्तु त्रिदोषमीमांसा का बहुतसा क्रियात्मक अंश आपने अछूता छोड़ दिया।

इसके पश्चात् सन १९४० ई० में श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी द्वारा त्रिदोष मीमांसाकी समालोचनाके रूपमें उक्त पुस्तक लखनऊ सम्मेलनके अवसर पर दिखाई दी। जिसे आपने अपने करकमलों द्वारा मुझे इसलिये भेंट की कि यातो मैं इस पुस्तकको पढ़कर अपने विचार बदल लूं या इसका समुचित उत्तर दूं। आज अवसर पाकर विज्ञान द्वारा इसकी यथा स्थान आलोचना की जा-रही है, आशा है पाठकगण सत्यासत्यकी छानबीन स्वयं करलेंगे

पं० जी ने ग्रन्थको आरम्भ करनेसे पूर्व 'दो शब्द' नामकी एक छोटीसी भूमिका लिखी है। यहां आपने दूसरे पृष्ठपर त्रिदोष की व्यापकता यहां तक दिखाई है, लिखा है—"आश्रमोंके चार विभाग, उनके पृथक नियम, धार्य-वस्त्रादि सब त्रिदोषापेक्षी हैं स्वास्थ्य साधनके स्तम्भ हैं। यह विज्ञान प्रकाशकी भांति उज्ज्वल और आकाशकी भांति विभु हैं।"

पाठकगण! जरा उक्त पंक्तियों पर विचार कर इस बातकी खोज करें कि आश्रमोंके चार विभाग और उनके पृथक् करणके नियम तथा धारण करने योग्य वस्त्र आदि किस प्रकार त्रिदोषा-पेक्षी हैं? और यह त्रिदोष आकाशकी भांति विभु किस प्रकार है?

आगे आपने इसी दो शब्दकी भूमिकाके पृष्ठ ३ पर लिखा है—"वास्तवमें हमारा लब्ध त्रिदोष साहित्य क्रम बद्ध एक स्थान पर नहीं मिलता, अतः आधुनिक विद्वान् जो इसे समझने की चेष्टा करते हैं यह उनके अध्ययन करने और समझनेकी पूर्ण सामग्री नहीं बन पाता।" आगे चल कर आप पृष्ठ ५ पर लिखते हैं—"अस्तु आवश्यकता हुई कि इस (त्रिदोषवाद) की विशद और वैज्ञानिक व्याख्याकी जाय। इधर आयुर्वेद पर आक्षेपों पर आक्षेप होने प्रारम्भ हुए। इस असमंजस कालमें गुरुजनोंकी प्रेरणा से इसको पूरा करनेका भार मेरे दुर्बल कन्धों पर रखा गया। यह पुस्तक त्रिदोष सिद्धान्तके वास्तविक स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिये लिखी गई है। अनुमानिक विवरणोंकी व्याख्याकी आवश्य-कता आज विज्ञानके समुन्नत युगमें नहीं रह गई है अतः इसमें मूल सिद्धान्तोंकी विस्तृत व्याख्या वैज्ञानिक क्रमके अनुसार की गई है।" यह है आपकी प्रतिज्ञा। और आपको इस पुस्तक पर अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलनने नागपुरके अधिवेशनमें प्रथम श्रेणीका मान-पत्र तथा एक स्वर्ण पदक भी दिया है यह पुस्तक कैसी है? हम भी अब इस पर कुछ विचार करेंगे।

पं० जी "आयुर्वेदका प्राचीन इतिहास" नामक शीर्षकसे ग्रंथका आरम्भ करते हैं और पृष्ठ ४-५ पर आप लिखते हैं कि "वैदिक कालमें चार प्रकारकी चिकित्सा प्रणाली प्रसिद्ध थी (१) अथर्वणी (२) आंगिरसी (३) दैवी (४) मनुष्यजा। इसके प्रमाणमें आपने अथर्व वेदका एक मन्त्र दिया है। अथर्वणी चिकित्सा से मन्त्र द्वारा चिकित्सा और शरीर आंगीरिसी ग्रन्थी रसोंकी सहायतासे क्षय पूर्ति और उन रसों द्वारा रोग निवारणको आंगीरिसी चिकित्सा कहा है।" आप कहते हैं "मानसिक शक्ति

की प्रबल प्रेरणासे इन रसोंको अंग—प्रत्यंगमें संचार करनेसे रोगों की निवृति होती है।" और आगे आप दैवी चिकित्साका अर्थ करते हैं—"जल, तेज (सूर्य या अग्नि आदि) वायु आदि देवोंके, द्वारा जो चिकित्साकी जाती है वह दैवी है। इसमें जल चिकित्सा सूर्य-रश्मिचिकित्सा, वायुचिकित्सा, विद्युत चिकित्सा, वर्ण-चिकित्सा आदि सब प्रकारकी प्राकृतिक चिकित्साओंका उद्गम स्थान प्राप्त है।"

जिस समय तक तार, टेलीफोन, आकाशवाणी प्रचार (रेडियो) सिनेमा, रेलें, विद्युत आदिका आविष्कार नहीं हुआ था उस समय तक सूर्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा आदि का नाम तक सुनाई नहीं पड़ता था। उस समय वेद मन्त्रोंके भाष्यकर्ताओंको (जो त्रिकालज्ञ तक कहलाते थे) इन बातोंका ज्ञान न हुआ, अब जब यह आविष्कृत हुई तो वेदोंमें उक्त विद्यायें और इस प्रकारकी दैवी चिकित्साएं निकलने लग पड़ीं और अभी जो और भी अनेक आविष्कार होते जारहे हैं तथा जो कायरोप्रेक्टिस आदि चिकित्साकी नई नई पद्धतियां निकल रही हैं कल वेद उनका भी उद्गम स्थान बन जायगा। आविष्कार तो उनका हो विदेश में और उद्गम स्थान हो उनका वेद और यह सूझे उस समय जब उस के प्रसारका प्रभाव भारतीय मस्तिष्क तक पहुंचे। क्या इसी को कहते हैं "सत्यंब्रूयात्? आगे आप पृष्ठ ७ पर कहते हैं "वैदिक युगमें चिकित्सा प्रणालियां हर प्रकारकी पाई जाती हैं। हमारे वेद चिकित्सा निधान हैं। आर्य जाति तो प्रत्येक विद्या का स्रोत वेदोंको मानती है। इसमें आधुनिक कृत्रिम अंगोंकी योजनाका वर्णन प्राप्त है।' पं०जी भविष्यमें आविष्कृत होने वाले अंगोंकी योजनाका वर्णन प्राप्त है ऐसा कह देते तो कोई अयुक्ति नहीं थी। क्योंकि भूतमें जो विद्यायें थीं, वर्तमानमें जो आविष्कृत हो रही हैं तथा भविष्यमें जो होंगी, उन सबका उद्गम स्थान वेद को कहनेमें और मनमोदक खाकर प्रसन्न होनेमें जितनी सन्तुष्टि होती है यह किसीसे छिपी नहीं। ऐसी बातोंके कहनेमें सबसे अधिक बुद्धिचातुर्य पाया जाता है। आगे पृष्ठ ६ पर 'आयुर्वेदका समय' नामक शीर्षकके नीचे आप लिखते हैं "आयुर्वेदके समय का निर्धारण निश्चित अंकोंमें करना कठिन है। वैदिक सभ्यताके प्रवाहका समय अरबों वर्ष पूर्व है। वेदोंकी उत्पत्तिका भी ठीक समय बतलाना कठिन है। इन वेदोंमें आयुर्वेदको यत्र तत्र सर्वत्र पाते हैं। वेदोंमें होनेसे यह आयुर्वेद भी उतना ही प्राचीन है जितना कि वेद।" तो वेदोंके साथ आयुर्वेदको अपौरुषेय कह देना था तमाम झगड़ा समाप्त हो जाता। क्योंकि ब्रह्मा ही ने तो वेदोंसे आयुर्वेदके सारको लेकर एक लाख श्लोककी ब्रह्मसंहिता बनाई, ऐसा आपका तथा आप्त पुरुषोंका कथन है और उसकी शिक्षा ब्रह्माने दक्षको दी। दक्षने इसको साररूप में रखनेके हेतु दस हजार श्लोकोंकी संहिता रची, आगे इसी तरह सार रूपमें घटती चली गई ऐसा हमारे पं० जी तथा बहुतसे वैद्य मानते हैं। ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण यह देते हैं कि कलिकालके मनुष्योंकी बुद्धि थोड़ी देख कर उन विचारवानोंने इसे उनके समझने योग्य कर दिया।

अल्पायुषोऽल्पवक्तारः स्वल्पशास्त्रविशारदाः।
अल्पावधारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः॥

आत्रेसंहिता।

अभीभी तो कलियुगही है और उस विचारे कलियुगकी जो आयु दी है उस लिहाजसे तो वह इस समय एक दूध पीते बालक के तुल्य है। अभी कुल ५ हजार ६सौ वर्षही तो बीते हैं। इसी वर्तमान समयमें बल्कि यह कहना चाहिए कि इसी दो शताब्दीमें जिन विद्याओंका आविष्कार हुआ वह प्रतिदिन बढ़ रही हैं; उनके अंग प्रत्यंगों, शाखाओं-प्रशाखाओंका इतना विस्तार बढ़ रहा है कि वह एक दूसरेसे अलग होती जारही हैं। जो ग्रन्थ निकलता है अधिकसे अधिक ज्ञान विज्ञानपूर्ण होता है। किन्तु आयुर्वेद भारतीय वैद्योंकी मन्दमति होनेके कारण घटाया गया। क्या ही उत्तम विचार प्रणाली है। इस कलियुगमें आकर विदेशोंमें तो अनेक विद्यायें बढ़ें और उनकी उन विद्याओंको हम भारतीय वेदों से निकली बतावें, पर हमारी सर्व प्राचीन विद्या आयुवद इस कलि-युगमें आकर घटे इसीका नाम है 'बुद्धिको कुण्ठित करना' अकलको काठ मारना। एक ओर तो पं० जी वेदोंको सर्व विद्याओंका उत्पत्ति स्थान बतलाते हैं और आयुर्वेदको सर्व चिकित्सा प्रणालियोंमें प्राचीनतम चिकित्सा विधान बतलाते हैं। दूसरी ओर नव्य ग्रन्थि रस-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, विद्युत-चिकित्सा आदि आधुनिक चिकित्सा प्रणालियां—जिनका आविष्कार विदेशोंमें हुआ, जिनके आविष्कारक विदेशी हैं—उनके बीजको वैदिक बताते हैं। यदि यह ठीक है तो जिस तरह वेद मन्त्र द्रष्टाको ऋषि कहा गया है इसी तरह उन विदेशी आविष्कारकोंको—जिन्होंने वेदकी उस बीजरूप विद्याओंका विस्तार किया वेदके व्याख्या कारवत्—उन्हें भी ऋषि क्यों नहीं मान लेते? दूसरे जिन स्रोत विहीन ग्रन्थि रह

द्वारा चिकित्साको आंगीरसी कहते हो कृपया उन ग्रन्थियोंके वैदिक नाम क्या हैं ? और उनका वर्णन इस समय अपने किन किन ग्रन्थों में आया है ? यही बतला देते। आयुर्वेदज्ञ बनाने के लिये आप विद्यार्थियों को पाश्चात्य रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, शरीर-रचना-शास्त्र, प्रसूति-शास्त्र, आदि अनेक शास्त्रों के अंशांश को आयुर्वेद वर्णित विषयसे भिन्न पढ़ाते हैं। इनको क्या वेद विद्याओं के बीज रूपकी व्याख्या समझ कर पढ़ाया जाता है या आधुनिक विवर्द्धित ज्ञान समझकर ? यदि इनका बीज वेदों में है और जो बातें आयुर्वेदमें नहीं आईं, जिनका ज्ञान अभी हुआ है, जब उसके कुछ अंशको अपनाते हो तो बाकीको क्यों छोड़ते हो ? क्या आप पर यह कहावत चरितार्थ नहीं होती कि 'मीठा मीठा हड़प कड़वा कड़वा थू।'

आगे पृष्ठ १३ पर मध्यकालीन इतिहास शीर्षकके नीचे ऋषियोंके समय पर विचार करते हुए आप लिखते हैं "महर्षि भारद्वाज के समयको निर्द्धारित करना अत्यन्त कठिन है। इन्हें हम वैदिक युगमें भी पाते हैं, और त्रेतायुग (त्रेता नहीं द्वापर कहिये!) में महाराज जनकके दरबारमें भी पाते हैं।" पाठको ! इसका अभिप्राय समझे ? यही न, कि भारद्वाजजी की आयु तीन युगसे बड़ी थी। तभी तो आप आगे कहते हैं "इन्हें हम सर्व-कालमें पाकर, इनकी प्राचीनताकी निर्खे समयोंमें नहीं दे सकते।" पं० जी महाराज 'सर्व-कालमें थे' तो अब कहां चले गये ? यह है विज्ञानसे आलोकित करने वाला पंडितजी महाराज का ऐतिहासिक ज्ञान। आगे चल कर पृष्ठ १६ पर आप कहते हैं कि "आत्रेय कई हुए हैं, जैसे आत्रेय, कृष्णात्रेय, भिक्षुरात्रेय में इत्यादि।" जब आत्रेय कई होसकते हैं तो क्या भिन्न भिन्न युगों भारद्वाज कई नहीं हुए होंगे ? क्या सारे युगों में एक ही भारद्वाज हो सकते हैं ? इसको किसी विचारवान् से तो पूछ देखिये ? अब और देखिये, आत्रेयजी के सम्बन्ध में आपके इतिहास ज्ञान की बानगी—आप पृष्ठ १३ पर कहते हैं "महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय २१०में भारद्वाज व आत्रेय दोनोंका नाम आता है। अस्तु महाभारत काल को आज के इतिहासज्ञ २५०० वर्ष पूर्व मानते हैं, और उस कालसे भी आत्रेयका मत चिकित्सा क्षेत्रमें सर्व पूज्य था तो यह काल अवश्य ही इससे अर्थात् ३००० वर्षसे पूर्व या और पूर्वका होगा।" आपने इस समयको निर्द्धारित करने वाला एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया। यदि आप सीधे यह लिख देते कि सतयुगमें आत्रेय जी हुए तो आपकी कौन कलम पकड़लेता। आत्रेयके छः शिष्य अग्निवेशादि हुए। इनके सम्बन्धमें आप पृष्ठ १७ पर लिखते हैं "अग्निवेशादि के बादका इतिहास कुछ नहीं मालूम होता। इसके कई सौ वर्ष बाद चरकका प्रादुर्भाव हुआ था और सुश्रुतका।" आप आत्रेय का काल कलियुग आरम्भ होनेसे ५-६ हजार वर्ष पूर्वका मानते हैं। अर्थात् लगभग आजसे ११ हजार वर्ष पूर्व। उनके शिष्य अग्निवेशादि भी तभी हो सकते हैं जब गुरू जी जीवित हों तो इसका अभिप्राय यह निकला कि चरक जी जो "अग्निवेश जी से कई सौ वर्ष बाद हुए" इनका समय भी दो चार सौ वर्ष बाद ही समझा जा सकता है न ? फिर आपको चाहिए था कि इस तथ्यको जिसे ऐतिहासिक बतलाते हैं कि चरक महाराज कनिष्कके कालमें हुये जो सन् ७८ ई० के करीब होता है इसका खण्डन करते। पर न जाने क्यों आपने इस पर हरताल फेरनेका साहस न किया। इस प्रकार आप इतिहासकी इतिश्री करके त्रिदोषवाद पर आगये और सबसे पूर्व आपने वेदोंमें त्रिदोषवादको दिखानेकी चेष्टा की। पृष्ठ २४ पर आप कहते हैं "अथर्ववेद केवल वात, पित्त, कफका साधारण विवेचन ही नहीं करता बल्कि उनके द्वारा होने वाले ज्वरके भिन्न भिन्न प्रकारोंका वर्णन करता है।" यहां पर पं० जी साधारण विवेचनके स्थान पर पूर्ण विवेचन लिख देते और ज्वरके भिन्न भिन्न प्रकारों (संतत, सतत, मन्थर, फुफ्फुसप्रदाही आदि) का विस्तृत लक्षण सहित वर्णन है ऐसा कह देते तो आप को कौन रोकता। अथर्ववेदमें तक्मनका नाम आनेसे यदि ज्वरके भिन्न २ प्रकारोंका वर्णन बीज रूपमें आ जाता है तो ऐसे बुद्धि-वादकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। त्रिदोषका विवरण वेदोंमें है इसको दिखानेके लिये आपने जो अथर्ववेदका १½ मन्त्र उद्धृत किया है वह निम्न है।

यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च।
मास्मैतान् सर्वान कुरुथा बलास कासमुद् युगम्।
तक्मन भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासि यया सह॥

इन मन्त्रों का प्राचीन भाष्य यदि पाठक देखें तो पता लगेगा कि वहां कहींभी त्रिदोष का नाम नहीं आता। वहां पर अभ्रसे अभिप्राय बादल, वातसे हवा, बलाससे कासमें निकलने वाला बलगम है जोखांसीके समय निकलता है। बस इसी प्रमाण पर आप फूले नहीं समाते और लिखते हैं "इस प्रकार वात, पित्त, कफ का वर्णन तो वैदिक युगों से चला आ रहा है। इसलिये त्रिदोष की स्थापना प्राचीन कालिक है।" आगे आप

कहते हैं कि "आत्रेयके समय उनके शिष्योंके बादके इतिहासके न मिलनेसे मालूम होता है कि इस कालमें पूर्व की बहुत सी बातों पर विचार न हुये अतः आयुर्वेद विज्ञान शिथिल हो गया था। आत्रेय के समय में भी इसके विषय में शंका थी अतः एक त्रिदोष परिषद (काशी सन् ३५ की तरह) भगवान् आत्रेय के सभापतित्व में हुई थी। इस प्रकार महर्षि आत्रेय द्वारा लुप्तप्राय त्रिदोष-गुणोंका पुनरुद्‌घाटन हुआ और त्रिदोष सिद्धान्त पुनः प्रौढ सिद्धान्त हो गया, जो कुछ काल तक भ्रमावह बना हुआ था। कुछ लोगों को इसमें भ्रम है, वे इसे ही त्रिदोषवाद का श्री गणेश समझ कर त्रिदोष सिद्धान्तके स्थापन का रहस्य मानते हैं और प्राचीन वैदिक कालके त्रिदोष सिद्धान्त को ताकपर रख देते हैं।" पंडित जी महाराज! हमतो इसे ताक पर नहीं रखते हमने तो आपके और विद्वानोंके समक्ष रखा और बतलाया है कि जो व्यक्ति वेदोंके पंडित हैं वह त्रिदोष वादकी वेदोंमें कहीं गंध सिद्ध कर दें और प्राचीन भाष्यकारोंके प्रमाणसे इसे प्रमाणित करदें तो हम उनका कथन मान लेंगे। किन्तु हम उन आधुनिक भाष्यकारों की बात माननेके लिए तय्यार नहीं जो तार, रेल, वायरलैस, विद्युत आदिका आविष्कार होने पर कहने लग जाते हैं यह सब तो हमारे वेदोंमें पहिलेसे ही विद्यमान् हैं। यदि विद्यमान था तो उन विदेशी आविष्कारकोंसे पूर्व तुमने क्यों नहीं कर दिखाया? पीछे डींगें मारने से क्या? तुम्हारी तो यह दशा है कि 'घरमें नहीं दाने बुढ़िया चली भुनाने।' जब देखा कि विदेशमें आविष्कार पर आविष्कार हो रहे हैं पर हमको कुछ आता जाता नहीं तो यही कहना आरम्भ कर दिया कि हमारे यहां सब कुछ पहिले ही से है हमें इसे सीखने, जाननेसे क्या प्रयोजन?

त्रिदोषकी प्राचीनताको उक्त पंक्तियोंमें सिद्ध करके पुनः आपने पञ्च महाभूत व त्रिदोष शीर्षकमें पंच महाभूतों द्वारा कैसे सृष्टि होती है उसका वर्णन करते हुए उससे त्रिदोषका जो सम्बन्ध बताया है उसमें कोई बात ऐसी नहीं बताई जो ग्रन्थोंमें न दी हो किन्तु, इस अंश पर जो आक्षेप त्रिदोष मीमांसा द्वारा उपस्थित किए गए हैं आपने उनमेंसे सिवाय एक दो बातोंके किसीको स्पर्श तक नहीं किया। जिन एक दो बातोंको छूनेका कष्ट उठाया है वह आपकी दी हुई निम्न पंक्तियोंमें है।

पृष्ठ ३४ पर आप कहते हैं "पार्थिव सुवर्ण, वस्तुओंमें रौप्य, मणि, मुक्तादिका भी वर्णन है जिसको आजका सभ्य संसार तत्वों (Elements) के नामसे पुकारता है और ९२ की संख्या देता है। आयुर्वेद शास्त्रकी दृष्टिके मूलतत्त्व ५ ही हैं। किन्तु वर्तमान सभ्य वैज्ञानिक संसार ९२ तत्त्व मानता है और भविष्यमें यदि आविष्कारने कुछ और तत्त्व बतलाए तो वे भी इसमें सम्मिलित होंगे। अन्त तक वैज्ञानिक संसार यह नहीं बतला सकता कि सृष्टि के उत्पत्तिमें निश्चित तत्त्व कितने हैं।" चले हैं आप वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी आलोचना करने पर देखो! कितनी अनभिज्ञता। पंडितजी महाराज वैज्ञानिकतो मणि मुक्तादि को यौगिक कहते हैं न कि मौलिक। और यह कहना तो आपका बिल्कुल असत्य है कि "वैज्ञानिक संसार यह नहीं बतला सका कि सृष्टिकी उत्पत्तिमें निश्चित तत्त्व कितने हैं।" पंडित जी महाराज पहिले आंख खोल कर त्रिदोष मीमांसाको ही पढ़िये! और पृष्ठ ३५ पर देखिये! 'पृथ्वीकी उत्पत्तिमें ११-१२ तत्वोंका संयोग हुआ है।' और पृष्ठ ४७ पर देखिये 'सजीव जगत् की उत्पत्ति में मूल ६ तत्त्व बतलाये हैं तथा विकसित प्राणियोंमें और गौण तत्त्वों का संयोग हुआ है। इसतरह समस्त चर-अचर स्थावर, जंगम सृष्टिकी रचना १६ तत्त्वोंसे मिलकर हुई है। जल दो तत्त्वोंसे बना है वह स्वयम् तत्त्व नहीं। इससे अधिक और निश्चित रुपमें देखना हो तो किसी आधुनिक प्रयोग-शालामें जाकर देख आइयेगा।

आपका केवल इस प्रकार कहना कि—"आर्युवदका सृष्टिक्रम प्राचीन कालसे चला आरहा है और इसपर सहस्त्रों विज्ञ महर्षियों के मस्तिष्कों की शाण लग चुकी है। अतः खराद पर चढ़ते-चढ़ते इस रत्नकी प्रतिभा स्पष्ट हो चुकी और इसमें अब सन्देहका स्थल नहीं।" बस, संसार आपके इस प्रकार कहे वाक्योंको वैज्ञानिक क्रम के अनुसार व्याख्या समझ कर विश्वास करले, यह इस युग की बात नहीं रही।

आगे आप पृष्ठ ३६ पर तत्त्व शब्दकी निरुक्ति देकर कहते हैं "तनोतीतितत्त्वम् तनु विस्तारे धातुसे क्विप् तुक् कर 'पृष्टोदरादि" से यह प्रयोग बनता है। अर्थात् वह वस्तु जो तान-तूनकर विस्तार में आवे। इस प्रकार तत्त्व शब्दका अर्थ विस्तार करना हुआ। अर्थात् वे पदार्थ या द्रव्य जो विस्तार करके सारी सृष्टी को फैलावें।" आप कहते हैं "पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश यही तत्त्व अर्थमें सर्वत्र खरे पाये जाते हैं। नवीन ९२ तत्त्व इस कसौटी पर असिद्ध व कच्चे उतरते हैं।" किस तरह? इसको

आपने सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की। क्योंकि आपके वाक्य ही 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' का स्थान कालेज में प्राप्त कर चुके हैं। क्योंकि वहां आपके अनुयायी विद्यार्थी बहुत हैं, यदि आप दिनको रात और रातको दिन कहें तो वह 'सत्यं-सत्यं' कहने से कभी पीछे नहीं हटेंगे ?

आगे आप पृष्ठ ३७ पर गुण कर्म नामक अंतरंग शीर्षक में लिखते हैं—"गुण—सूक्ष्म व स्थूल भूतोंके भेदानुसार दो प्रकारके हैं।" पं० जी महाराज ! पहले कृपा करके यह तो बतलाते कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाशका कौन सा सूक्ष्म रूप है और उनका लक्षण क्या है ? उन्हें किस तरह देखा व जाना गया ? फिर स्थूल भूतोंका रूप और लक्षण जैसा शास्त्रमें दिया है, उससे उसके विभेदको बतलाते इस के पश्चात् गुण, कर्मकी बारी आती है। आप कहते हैं "सूक्ष्म भूतोंमें तो मूल प्रकृतिके त्रैविध्य गुणका ही सम्मिश्रण (सत्वरज-तम) प्राप्त होता है।" सूक्ष्म भूतोंमें प्रकृतिका सम्मिश्रण बतलाना संसारको धोखा देना है। जिस तरह आप कहते हैं कि "स्थूल भूतोंमें आयुर्वेद उस वस्तुको गुण मानता है जो कि द्रव्यमें रहे।" इसी प्रकार सूक्ष्म भूतोंमें भी उसके वही गुण रहने चाहिएं जो स्थूलमें पाये जाते हैं, तब तो पदार्थके दो रूपकी स्थितिकी ऐक्यताको माना जा सकता है। यह नहीं हो सकता कि उसी एक मौलिक पदार्थके सूक्ष्म रूपमें और गुण हों तथा स्थूलमें और गुण। पं० जी महाराज ! द्रव्याश्रित गुण है। गुण गुणीको तब तक नहीं छोड़ता जब तक उस द्रव्य (गुणी) का अस्तित्व बना रहता है। चाहे वह सूक्ष्म रूपमें रहे चाहे स्थूल रूपमें, यह है वैज्ञानिक तथ्य, प्राकृतिक नियम जिसे कोई बदल नहीं सकता। और जो आप यह कहते हैं कि "शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह भूतोंके प्रधान गुण हैं और इन्द्रिय ग्राह्य हैं।" यदि यह भूतों के गुण हैं तो आप इनका निर्पेक्ष ज्ञान कराइये ? तथा त्रिदोष मीमांसा में दिये आक्षेपोंका उत्तर दीजिये। इससे आगे आपने शब्द स्पर्शादिको प्रधान गुण कह कर गुरु, लघु, शीतोष्णादिको उन पञ्चभूतोंका भौतिक गुण बतलाया है। प्रधान गुण और भौतिक गुणका क्या अर्थ ? भौतिक गुणका अर्थ होता है भूतोंके साथ रहने वाला गुण। क्या प्रधान गुण भूतोंके साथ नहीं रहते ? यदि रहते हैं तो भौतिक गुणोंसे इनका विभेद कैसे हुआ ? पदार्थोंके क्या गुण भी प्रधान अप्रधान होते हैं ? यदि होते हैं तो इसे प्रायौगिक कसौटीसे कस कर दिखाइयेगा ?

आगे आप ३८ पृष्ठ पर गुरु, लघु, आदि २० गुणों पर विचार करते हुए लिखते हैं। "आज कल वर्तमान विज्ञान भी इसी प्रकार के लक्षणों को मानता है। जो रचना दृष्टिसे तथा यान्त्रिक बल प्रयोगसे स्थिर किया गया है। अतः वर्तमान लक्षण स्थूलतम द्रव्यके हुए न कि तत्त्व के।"

पं० जी महाराज ! आप आज तक यही नहीं समझ पाये कि द्रव्यत्व होता किसमें है ? और तत्त्वमें द्रव्यत्व है या नहीं ? यह बात एक बार फिर बनारस जाकर अपने गुरु जी महाराजसे पूछ आते और फिर लिखते तो अच्छा होता।

पृष्ठ ३६ पर आप ही तत्त्वकी निरुक्ति देते हैं 'तनोतीति तत्वं' अथवा 'तनोतीति सर्वत्रमिदमिति' "जो तान तून कर विस्तारमें आवे या जो सर्वत्र फैल कर सब कुछ करे।" जो स्वयं विस्तार में आने वाला हो जो स्वयम् फैल कर सृष्टि रूप हो जिस में आप गुरु, लघु, आदि २० गुण मानते हैं। जिनके सम्बन्धमें आप स्वयम् त्रिदोष मीमांसामें पृष्ठ २० पर दिये आधुनिक तत्त्वके लक्षणोंको उद्धृत कर पृष्ठ ३६ पर इनकी परीक्षा नामक अन्तरंग शीर्षक देकर आप लिखते हैं "यदि हम निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करें तो स्पष्ट कह सकते हैं कि मूल भूतोंमें यह सब लक्षण हैं। बल्कि इससे भी अधिक उनमें लक्षण हैं।" आयतन, घनत्व, मात्रा या गुरु लघुतादि समस्त गुण द्रव्याश्रित हैं या अद्रव्याश्रित ? आप अपने विद्यार्थियोंमें बैठ कर जरा सोचिये तो सही, और अपनी लिखी हुई पृष्ठ ४१ की ४ थी पंक्ति को पुनः गौर से पढ़िये। आगे आपने पृष्ठ ४० पर तत्त्वोंके गुणोंकी व्याख्या करते हुए आधुनिक परमाणु सिद्धान्तको स्पष्ट मान लिया है। किन्तु आप कहते हैं "यह तर्क से समझमें आने वाला है।" पं० जी महाराज ! अब तो तर्कसे नहीं, प्रत्युत प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा—फिर एक नहीं कई-कई विधियोंसे परमाणुओंके अस्तित्वको समझा जा रहा है ! जरा किसी आधुनिक प्रयोगशालामें तो जाइये ! और देखिए कि इसे वहां तर्कसे समझते हैं या प्रयोगसे। आगे पृष्ठ ४१ पर आपने लिखा है "जल-तत्त्वको 'हाइड्रोजनके दो परमाणु व आक्सीजनके एक परमाणुसे मिलकर स्थूल जल द्रवका स्वरूप बनाते हैं।" क्या इस द्रवसे भिन्न कोई और जल तत्त्वका स्वरूप है ? इसकी व्याख्या साथमें कर देते तो हम आपके उस सूक्ष्म जलतत्त्व पर भी कुछ विचार करते। आगे इसी स्थूल जलतत्त्वके सम्बन्धमें कहते हैं "इसमें केवल वायव्य ही स्थूल रूपसे पाये जाते हैं। (बाह

खूब कहा ! वायव्य और स्थूल रूप धन्य हो महाराज) जो यान्त्रिक शक्तिमें आ सकते हैं। किन्तु तीन भूतोंके परमाणुओंका उल्लेख यान्त्रिक शक्ति नहीं दे सकती। (क्या आकाश, वायु और तेजके परमाणु होते है ? यदि हां तो फिर यान्त्रिक शक्तिके द्वारा क्यों नहीं जाने जा सकते ?) आपने कोई कारण नहीं बताया। आपने अपने उक्त कथनका मतलब इस तरह दिया है कि "जल निर्माणमें ½ अप् + ½ आकाश वायु; तेजके परमाणु संयोग करते हैं। इसमें हाईड्रोजनके लिये हम अप्का स्थान दें तो (हाईड्रोजनका 'अप्' माननेमें प्रमाण ?) भी आक्सीजनको यदि तेज तत्त्व या वायु तत्त्वके लिये मानें (मान लीजिये घरमें बैठ कर और पढ़ा डालिये विद्यार्थियोंको अनाप सनाप की बातें) तो भी दो तत्त्वोंकी कमी रह जाती है।" शोक ! कि आप इन दो तत्त्वोंकी कमीको वाग्विडम्बनासे भी पूरा न कर सके। आगे आप कहते हैं—"वास्तवमें बात यह है कि यान्त्रिक शक्ति स्थूल पदार्थ तक पहुंचती है। सूक्ष्म वस्तु व शक्तिका विभाजन तो उसकी शक्तिसे बाहरकी बातें हैं।" आपने किस तरह जाना ? आपके विद्यालयमें यदि विद्युत् प्रकाश, पंखा आदि लगे होते तो आपके दिमागमें आसानीसे यह बात पहुंचाई जा सकती कि शक्ति (Energy) का विभाजन धन (Positive) और ऋण (Negative) में इस समय यन्त्र शक्तिने किया है जिस के सम्मेलन समयमें ही आपको शक्ति, प्रकाश, उत्ताप मिल रहा है। आगे आप कहते हैं—"अस्तु जलके यदि हम इस उपर्युक्त फार्मूलामें कोई कमी बेशी करें तो फिर जल वस्तुका जलत्व नष्ट हो जाता है। (जलत्व नष्ट होने पर आपका वह सूक्ष्म जलतत्त्व कहां गया ?) यों पाश्चात्य लक्षणोंसे भी पञ्चभूत ठीक उतरते हैं। (पं० जी महाराज ! पाश्चात्य लक्षणोंसे ठीक उतरते तो फिर रोना किस बातका था) बल्कि पार्थिव वायव्य व जलीय विकारोंको आज तत्त्व कहते हैं (इन विकारोंको कौन तत्त्व कहता है ? कोई प्रमाण तो देते) वे तत्त्व नहीं अपितु पदार्थ हैं। (क्या तत्त्वोंमें पदार्थत्व नहीं ? पदार्थ और तत्त्व यदि दो हैं तो इसका खुलासा तो करते ?) जो कि पञ्च भूतोंके संगठन संहनन व संघातसे प्रकट हुए हैं।" (पञ्चभूतोंके संगठन व संहनन व संघात से कैसे ९२ तत्त्व उत्पन्न हुए ?) इसकी आप वैज्ञानिक व्याख्या तो करते ? आगे पृष्ठ ४२ पर आप लिखते हैं—"यन्त्र योजना तो पार्थिव सृष्टिके स्थूलतम भाग पृथ्वी या मिट्टीकी परीक्षा करती है। उनको चाहिये कि पृथ्वी तत्त्वके स्थूल १ परमाणुके निर्माणमें ½ पृथ्वी + ½ आकाश + वायु + अग्नि + अपके परमाणु मौजूद हैं, पृथ्वी तत्त्वके स्थूल रूप जिसमें उपर्युक्त सूक्ष्म तत्त्वोंका सम्मिश्रण है, इन्हें विचारें।"

पंडितजी महाराज ! आप पृथ्वी के एक परमाणु में आधा पृथ्वी और आधा आकाश तथा बाकी के + क्रास चिह्नित तत्त्व कितने कितने मिलाकर पृथ्वीका एक परमाणु बनाते हैं ? मालूम होता है आपके मतमें परमाणु कई टुकड़ों में विभक्त हो सकता है। तभी तो आधा परमाणु टुकड़ा पृथ्वी का और आधा आकाश का बाकी कितने कितने + क्रास चिह्नितबस, वाह रे हिसाबदां ! दे दो भोले भाले वैद्यसंसारको धोखा, जमालो उन पर योग्यता की धाक।

रसायन शास्त्रकी सीमामें आज भी परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य माना जाता है। पर आपके सूक्ष्म पञ्च तत्त्वोंके परमाणु छेद्य, भेद्य हैं और वह अपने संहनन, व संगठन शक्तिके बलसे स्थूल पृथ्वीका १ परमाणु बना डालते हैं। पाठको ! जरा सोचो और पण्डित जी महाराज की बुद्धिमत्ता को दाद दो, कि उन्होंने कैसा अद्भुत आविष्कार किया है कि सूक्ष्म तत्त्वोंके परमाणुओंसे ही स्थूल तत्त्वके परमाणु बना डाले। परमाणुसे अणु तो बनते हैं पर परमाणुसे परमाणुकी रचना कितना बड़ा आविष्कार है ? फिर मजा यह कि किसी शास्त्र का कोई प्रमाण नहीं। अजी ! नए आविष्कारमें प्रमाण की कहां पहुंच है। आप आगे ४३ पृष्ठ पर कहते हैं—"आकाश तत्त्वमें बिचारे वैज्ञानिकों की यान्त्रिक शक्ति यन्त्रणामें पड़ गई और उन्हें इसका पता ही न चला। तेजकी परीक्षामें भी वही बात रही और यन्त्र शक्ति असफल हो गई। होता भी क्या तेजमें ½ अग्नि + ½ आकाश + वायु तत्त्व ये उसमें तीनोंके तीनों यन्त्र द्वारा अग्राह्य ठहरे।" आपने इसे किस तरह ग्रहण कर लिया ? और तेजमें ½ अग्नि + ½ आकाश + वायुको परस्पर मिलते कहां बैठकर कैसे देखा ? क्या यह सब नव्य आविष्कार तो नहीं ?

आप पृष्ठ ४४ पर कहते हैं—"इस प्रकार पञ्च तत्त्वोंके नाम से वर्तमान विज्ञानने स्थूल विकृत (स्थूल भूत) का ही विश्लेषण किया है और तत्त्वोंके विश्लेषण का नाम दे डाला है अतः ये तत्त्व नहीं विकार हैं।"

पण्डित जी महाराज ! वर्तमान विज्ञानने स्थूल भूतोंका ही विश्लेषण नहीं किया प्रत्युत आप जिसे पृष्ठ ४० पर लिखते हैं कि "(१) हर एक पञ्च तत्त्वोंमें का तत्त्व अपना सूक्ष्म रूप रखता है

और इतना सूक्ष्म कि जो तर्कसे ही समझा जावे। इस सूक्ष्म रूपको 'परमाणु' कहते हैं।' और जितने भी तात्त्विक पदार्थ सृष्टिमें हैं सबका परमरूप या वास्तविक रूप परमाणु ही है। (२) इन परमाणुओंमें घनत्व, आयतन और भार भी होना चाहिये (३) इन तत्त्वोंके विशुद्ध परमाणुको बिना प्रबल शक्तिके नहीं तोड़ा जा सकता। (४) इनसे अनेकों तत्त्व बनना चाहिये। तो यह स्पष्ट ही है कि सारी सृष्टि पञ्च तत्त्वात्मक है।"—ऐसे परमाणु रूप सूक्ष्म पञ्चतत्त्वोंका वैज्ञानिकोंने प्रबल शक्ति की सहायतासे विश्लेषण कर डाला है और उन्हीं सूक्ष्म तत्त्वोंके परमाणु विश्लेषणसे एलेक्ट्रोन, प्रोट्रोन, न्यूट्रोन नामक जो सत्तात्मक वस्तुका अस्तित्व मिला है उसे अक्लकी आंख खोलकर देखिये। और पल्लेमें कोई साधन हो तो उसे समझिये, वृथा डींगें हांकनेसे कुछ लाभ नहीं। जब आपने स्पष्ट शब्दोंमें परमाणु सिद्धान्त को मान लिया है और परमाणु अस्तित्व द्योतक उनके विद्यमान् गुण, स्वभाव भी मान लिये हैं। जब आप यहां तक आगे बढ़ आये हैं तो "पांच ही तत्त्व हैं" ऐसा यह आपका अटल विश्वास अब प्रयोगवादके एक साधारण झोंके से उसी तरह गिर जाने वाला है जैसे नदी तटका वृक्ष।

आगे आप पृष्ठ ४६ पर शरीर की उत्पत्ति तथा त्रिदोष—नामक शीर्षकसे नया अध्याय आरम्भ कर लिखते हैं। "वैशेषिक व सांख्य की अनुयायिनी चरक संहिता भी अव्यक्त, महान् अहङ्कार व पञ्च तन्मात्राओं से शरीरकी उत्पत्ति मानती है। पञ्चतत्त्व व तन्मात्राओंकी उत्पत्तिका क्रम जिस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने लिखा है वह बहुत ही उपादेय तथा उत्तम क्रम है। यथा:—अर्थात् सर्व प्रथम भूतादि का शब्द तन्मात्रा पैदा होती है। शब्द तन्मात्रा भूतों (महान् प्रकृति आदि) का आवरण करती है उससे आकाश तत्त्व उत्पन्न होता है। इस शब्द तन्मात्रासे स्पर्श तन्मात्रा पैदा होती है। स्पर्श तन्मात्रा शब्द तन्मात्रा को आवरण करके आकाश की सहायतासे स्पर्श तन्मात्राके द्वारा वायु पैदा होती है स्पर्श तन्मात्रा से रूप तन्मात्रा उत्पन्न होती है। रूप तन्मात्रा स्पर्श तन्मात्रा को आवरण करती है इस आवरणसे वायु की सहायता प्राप्त करके रूप तन्मात्रासे तेज पैदा होता है। यों ही अन्य भी होते हैं।" यह प्रमाण आपने किसी वेदान्त ग्रन्थ पर लिखे वरवर मुनि तत्त्व त्रयभाष्य अचित् प्रकरणसे लिया है और उसके सम्बन्धमें लिखा है—"उपर्युक्त विचार केवल वेदान्त-मतावलम्बियोंके द्वारा तत्त्व निरूपणमें कहा गया है। इस प्रकार प्रारम्भमें तत्त्वोदय प्राप्त होकर स्थूल जगत् की सृष्टि अणुओंके पारस्परिक संयोगसे अर्थात् द्व्यणुक, त्र्यणुक, चतुरणुक इत्यादिका स्वरूप होकर होती है। ऐसा ही दृष्टिकोण पातञ्जलि का भी विचार रखता है जो योग वार्त्तिकमें वर्णित है।"

ऊपर आपने अव्यक्त से महत् और महत् से अहङ्कार और अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्रा तथा उससे पञ्च स्थूल भूतोंकी उत्पत्ति—जो सांख्यने बतलाई है उसके उक्त उत्पत्ति क्रममें से अहङ्कार द्वारा पञ्चतन्मात्राएं कैसे उत्पन्न होती हैं इसका आपने जो सप्रमाण वर्णन दिया है। क्या इसीका नाम है त्रिदोषवाद की विशद और वैज्ञानिक व्याख्या? आपने किस प्रकार जाना कि 'भूतादेः शब्दतन्मात्रं जायते' और यह किस प्रकार ज्ञात हुआ कि 'शब्द तन्मात्रं भूतादिरावृणोति' और 'तत् आकाशं जायते' और यह किस प्रकार ज्ञात हुआ कि 'अस्मात् शब्द तन्मात्रात् स्पर्श तन्मात्रं जायते' और यह कैसे पता लगा कि 'स्पर्श तन्मात्र शब्दतन्मात्रमावृणोति एवं शब्दतन्मात्रावृत्तात् आकाशसहायकात् स्पर्श तन्मात्राद्वायुर्जायते।' फिर यह कैसे पता लगा कि 'ततः अस्मात् स्पर्श तन्मात्रात् रूपतन्मात्रं जायते रूप तन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रमावृणोति। एवं स्पर्श तन्मात्रा वृतात्तेजो जायते। एव मग्रे एवं तत्त्व त्रय विवरण कृष्णापादै रुक्तः।'

बहुतसे अन्ध विश्वासी व्यक्ति कह सकते हैं कि यह तो आप्त प्रमाण पर अविश्वास करना है। यहां विश्वास और अविश्वास का कोई प्रश्न नहीं है। यहां तो सचाई का प्रश्न है। देखना और समझना तो इस बात का है कि क्या वास्तव में सृष्टि रचना इस प्रकार हुई? क्या इसको जानने व समझने के प्रायौगिक साधन हैं? जब इस प्रयोगवादके युगमें परमाणु से सूक्ष्म उस अदृश्य सत्ता का पता यान्त्रिक शक्ति से लग रहा है जिसे प्राचीन दार्शनिक प्रकृति कहते हैं और आधुनिक वैज्ञानिक उसे एलेक्ट्रोन, प्रोट्रोन, न्यूट्रोन आदि नाम रखकर शक्तिके नाम से पुकारते हैं और इनके संहनन व संगठन द्वारा परमाणुका अस्तित्व सिद्ध करते हैं, तो ऐसी दशामें पंडितजी महाराजको चाहिये था कि वह किसी प्रयोग द्वारा यहभी बताते कि किस प्रकार भूतादि की शब्दतन्मात्राएं पैदा होती हैं। और वह शब्दतन्मात्रायें कौनसे भूतोंका किस प्रकार आवरण कर=घेर कर=उससे आकाश तत्त्वको उत्पन्न करती हैं। यह बातें आप किसी भी प्रकार प्रयोगों द्वारा बतलाते तो हम क्या संसार आपकी बात मान लेता। पर अब इसे 'बाबा वाक्य प्रमाणं' के आधार पर कोई मानने वाला नहीं। इससे

आगे आप पृष्ठ ४६ पर पञ्चभूतोंकी सृष्टि उक्तवर्णित प्रकारसे कर के कहते हैं—"इन पञ्चभूतों के पारस्परिक संयोगसे स्थूल शरीरकी उत्पत्ति होती है।" और आप कहते हैं "इस शरीरमें इन पांच भौतिक पदार्थोंका सक्रिय उदय ३ रूपोंमें होता है। १ वात, २ पित्त, ३ कफ।" इनकी उत्पत्तिमें आप कहते हैं "आकाश और वायुतत्त्व से वायु, केवल तेज तत्त्वसे पित्त और भौम आप्य तत्त्वसे श्लेष्म की उत्पत्ति होती है। फिर आप कहते हैं—"इसका संगठन ऐसा है कि इनके संगठनको यदि थोड़ा सा भी घटावें या बढ़ावें तो पदार्थत्व का नाश हो जायगा।" इस पर आप दृष्टान्त देते है "तथा पूर्व कथित जलीय तत्त्व H_2O फार्मूले के परिवर्तन से जलत्व नष्ट हो जाता है।" यह जल तत्त्वका फार्मूला आपके शास्त्र का है या आधुनिक विज्ञान का? दूसरे आपने इस फार्मूलावत् यह किस प्रकार मालूमकर लिया कि शरीरमें त्रिदोषों का संगठन ऐसा है कि इन्हें यदि खाद्य, पेय या औषध द्वारा जरा भी घटावें बढ़ावें, तो पदार्थत्व (शरीर) का नाश हो जायगा?

त्रिदोष सिद्धान्तानुसार दोष शरीरमें घटते बढ़ते तो रहते ही हैं फिर जरा घटाने बढ़ानेका क्या अभिप्राय? क्या जरा सी घटा बढ़ीसे शरीरका नाश हो जाता है? हमने त्रिदोष मीमांसामें उक्त सिद्धान्त पर जो आक्षेप रक्खे हैं उनको तो पंडित जीने छुआ तक नहीं और प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'यह पुस्तक त्रिदोष सिद्धान्त के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए लिखी गई है।'

आगे पृष्ठ ५० पर आप इस प्रकार शरीर में त्रिदोष की व्याख्या करते-करते योग शास्त्रको ले बैठे हैं और 'योग शास्त्रमें तात्त्विक अंग व रंग' शीर्षकमें कहते हैं "यही नहीं योगशास्त्र में इन तत्त्वोंकी कल्पना शरीरके अंगों पर की गई है। यथा— पैरोंसे जानु पर्यन्त पृथ्वीका स्थान। जानुसे गुदा पर्यन्त...... जलका स्थान, गुदासे हृदय तक अग्निका स्थान, हृदयसे भ्रू तक वायुतत्त्व का व भ्रूसे ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश तत्त्व का स्थान है।" आगे आप कहते हैं "कुछ योगियों का मत अधोलिखित है— १ दोनों कन्धोंके ऊपर अग्निस्थित है। २ नाभिकी जड़में वायु है। ३ दोनों जानुओंमें पृथ्वी है। ४ पैरोंके अन्तमें जल है। ५ मस्तकमें आकाश है।" पंडितजी महाराज! यह सब कल्पना है या प्रयोगवाद की वैज्ञानिक व्याख्या? फिर आप एक कोष्ठक बना कर पांच तत्त्वोंके रंग, रूप, गुण देते हैं। आप लिखते हैं "पृथ्वी वर्णमें पीली, रूप चतुष्कोण, गुण गन्ध। जल शुभ्र, रूप अर्द्ध चन्द्राकार, गुणरस। अग्नि वर्णमें रक्त, रूपमें त्रिकोण, गुण रूप। वायु वर्णमें हरित, रूपमें गोल, गुण स्पर्श। आकाश वर्ण रहित निराकार गुण शब्द।"

आप चले तो थे शरीर में पञ्चभूतों के सक्रिय उदय रूप त्रिदोष को दिखाने कि पांच तत्त्वोंके शरीरमें सक्रिय यह तीन रूप ही रहते हैं किन्तु उलट कर फिर वहीं पहुंच गए, पञ्च महाभूतों के चक्करमें। और सिद्ध करने लगे योगियोंके भ्रमध्य गत ध्यान द्वारा प्रत्यक्षी करणसे, क्या ही उत्तम संगति जोड़ी। फिर तत्त्वोंके आपने जो वर्ण और रूप बतलाए हैं पाठक जरा देखें तो सही कि वास्तव में पृथ्वी चतुष्कोण है या गोल, तथा जल अर्द्धचन्द्राकार है या गोल, वायु हरा है या विवर्ण, इस प्रकार इस विषयको यहीं छोड़कर फिर आपने पंचभूतोंके प्रधान भौतिक गुणोंकी व्याख्या करना आरम्भ कर दिया।

पृष्ठ ५४ पर आप लिखते हैं "शब्द गुणमाकाशम्" अर्थात् आकाशका मुख्य गुण शब्द है। इसकी योनि आकाश शब्द वाहक वायु रूप अज्ञात (निरवयव) है।" पाठको! जरा सोचो! एक ओर तो आप आकाशको वायु रूप कहते हैं फिर निरवयव, क्या वायु निरवयव है? आइये! हम आपको इसे सावयव दिखाते हैं। एक अंगीठीमें कोयले सुलगाइयेगा और जब कोयले दहक जांय उसे गर्मी के दिनों मध्याह्न कालमें जहां धूप हो वहां रख कर आप छायामें खड़े होकर उस अंगीठीमेंसे ऊपर उठने वाली वायुकी लपकको देखिये आपको अंगीठीके बगलमें उसकी परछांई दिखाई देगी। यह परछांई उस ज्वालाकी नहीं, प्रत्युत गरम होकर जो अंगीठीके आसपास की हवा ऊपर उठती है उसकी दिखाई पड़ती है। खैर, इससे आगे त्रिदोष मीमांसा पृष्ठ २७ का प्रयोग उद्धृत करके उस पर आप पृष्ठ पर ५६ पर लिखते हैं वायुनिष्कासन यन्त्र वायु ही निकालता है इसमें कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। वह द्रव्यके अन्तर्गत आकाश के परमाणुओं को भी साथ ही निकालता है।" फिर तो आकाशके परमाणु सावयव हुए न? पण्डित जी महाराज! अभी किसी आधुनिक विद्यालयमें जा कर पढ़ोगे तब पता लगेगा कि वायुके साथ आकाश निकल भी सकता है या नहीं? आधुनिक प्रयोगवादी संसारका कल्पनासे पेट नहीं भर सकता। वह तो स्वयं प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके दिखलाने की क्षमता रखता है कि डब्बेमें कितना वायु समा सकता है उसको आयतन और भार दोनोंसे नाप कर ठीक ठीक बता सकता है और उस वायुको

उस डब्बेसे निकाल कर किसी दूसरे वायु शून्य डब्बेमें भर कर उसके भार आयतनको ठीक ठीक तोल कर दिखला सकता है कि डब्बेसे केवल वायु ही निकला है, आकाश नहीं। आकाश सावयव पदार्थ नहीं। यदि सावयव हो तो वह निकाला जा सकता है। फिर यदि आकाश डब्बेसे निकाला जा सके तो उसकी सर्व व्यापकता नष्ट हो जाती है। व्यापक उसी वस्तुको माना जा सकता हैं जिसे किसी स्थानसे रिक्त न किया जाय।

आगे आप लिखते हैं "आकाश तत्त्वसे यहां त्रिदोष मीमांसा के लेखकने (Atmosphere) का ग्रहण किया है।" झूंठकी भी कोई सीमा होनी चाहिए। आपने बिना अंग्रेजी पढ़े ही थान २ पर अंग्रेजीकी जो उटपटांग टांग तोड़ कर समन्वय करने की चेष्टाकी है वह किसी अंग्रेजीदां के देखने योग्य है। पंडितजी महाराज! एटमास्फेयरका अर्थ है वातावरण, न कि आकाश। आप यदि त्रिदोष मीमांसाकी पारिभाषक शब्दावली को ही देख लेते तो आपको पता लग जाता कि हमने आकाशकी (Sky) या (Space) परिभाषा दी है। (Sky) का अर्थ है ब्रह्माण्ड में व्याप्त शून्य स्थान और (Space) का अर्थ है रिक्त स्थान जिसमें पदार्थकी स्थिति तथा गति होती है।

आगे आप कहते हैं डब्बेके "वातावरणमें ये वायव्य तथा रजःकण (Meter dust) [मीटर नहीं Matter मैटर लिखिये] अन्य उपादान (Ether) भी मौजूद थे, और वायु यन्त्र चालना के साथ साथ सब डब्बेसे बाहर आगये।"

धन्य हो महाराज! डब्बेसे ईथर भी बाहर निकाल मारा, जी में आता है आपको अकलमन्दोंके लिये जो सबसे बड़ी उपाधि हो दे डालें, पर हमें तो कोई मिलती ही नहीं। ईथरको आज तकका वैज्ञानिक संसार एक ऐसा सर्वव्यापी पदार्थ मानता है जिसके मध्यममें प्रकाश, उत्ताप, विद्युत आदिका आवागमन होता है। वैज्ञानिकोंको जिससे रहित आज तक कोई स्थान नहीं मिला, न जिससे रहित वह किसी पदार्थ या पात्रको कर सके हैं उस को पं०जीने बातकी बातमें ही डब्बे से बाहर निकाल मारा। क्या इसी का नाम है प्रयोगवाद और वैज्ञानिक व्याख्या? यदि हां तबतो आपके विद्यार्थी अवश्य ही संसारमें दिग्विजयी होंगे इसमें संशय नहीं। आगे आप कहते हैं—"अब भीतरके शब्दकी उत्पत्ति हो तो किसमें, क्योंकि यदि निरवयव आकाश परमाणु (शब्द)की उत्पत्ति नहीं कर सकता। साथ ही जो वायु खींची गई उसमें का ईथर जो आज आकाश तत्त्व वैज्ञानिक बतलाते हैं वायुके साथ निकल गया। अतः परिस्पन्दन (Thrilling) से तरंगकी उत्पत्ति ईथरानुपस्थितिमें कहां हो सकती है। मीमांसाकार केवल यहां धोखा देनेके सिवाय विवेकसे काम नहीं लेता।"

पंडित जी महाराज! हम धोखा नहीं दे रहे, प्रत्युत वैद्योंको धोखा तो आप दे रहे हैं, जो ईथरका डब्बेसे निकलना बतला कर उसकी अनुपस्थितिमें वायु तरंगकी उत्पत्ति नहीं होती यह बातों से सिद्ध कररहे हो। 'शब्द गुणमाकाशम्' को सिद्ध करनेके लिये आपका निरवयव आकाश परमाणु तो अयोग्य सिद्ध हो गया तो सावयव आकाश आपका कौनसा है जिसका शब्द गुण माना जाय? इसको सिद्ध करनेकी चेष्टा न करके आगे आप कहते हैं "उपर्युक्त स्वामीजी के विचार असत्य और अधूरे हैं अतः 'शब्द' गुण आकाशका पूर्ववत् अटल है। रहे सूक्ष्म, विशद, श्लक्ष्ण, लघु, मृद्वादि स्थूल भूत संगठनके द्वारा प्राप्त द्रव्योंके अन्दरके गुण वे भी पूर्ववत् अटल हैं। जिसे इसमें सन्देह हो वे इस समयके वर्तमान आकाशीय द्रव्य जात विशुद्ध ईथरमें ये लक्षण देखलें।"

उक्त आकाशके गुणोंके सम्बन्धमें जो आक्षेप त्रिदोष मीमांसामें रखे गये थे उन्हें तो आपने छुआ तक नहीं बस, कहदिया सब पूर्ववत् अटल हैं। और मजेदार बात यह है कि जिसे देखना हो वह इस समयके वर्तमान आकाशीय द्रव्य जात विशुद्ध ईथरमें देखलें। अर्थात् इसका अभिप्राय यह कि वर्त्तमान ईथर आकाशीय द्रव्य जात है। यह पंडित जी महाराजने विद्यालयमें बैठ कर नहीं, योग निद्रामें निमग्न हो जान लिया।

इस पुस्तकके ३२० पृष्ठ हैं इसका कोई ऐसा पृष्ठ नहीं जो इस प्रकारकी अनर्गल बातोंसे न भरा हो। यदि हम सारी पुस्तककी समालोचना करें तो कमसे कम ६०० पृष्ठ इसके लिये चाहियें। हम इसपर समय अधिक नष्ट न कर संक्षेपमें पाठकों को यह बतला देना चाहते है कि वास्तविक क्रियात्मक अंशमें तो पण्डित जी महाराज त्रिदोष—वादको मानते नहीं, न आप त्रिदोष वादके आधार पर चिकित्साकरते हैं। पर सिद्धान्ततः लड़ने झगड़ने और वितण्डावादके लिये पञ्चभूत और त्रिदोष-सिद्धान्तका शस्त्र उठाये घूमते फिरते हैं और इस बात को दिखानेकी चेष्ठा करते हैं कि हमारे बाबा तीरन्दाज थे।

पाठक शायद कहने लगें कि यह बात क्या कह डाली, क्या पण्डित जी महाराज एक विद्यालयके आचार्य होकर इस-तरह धोखा देने वाले हैं। "प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्" आपके द्वारा

इस त्रिदोषालोक से पूर्व की लिखी वैद्य सहचर नामकी पुस्तक उठाकर देख लीजिये। यदि पाठक एक दो स्थलोंको छोड़कर उक्त सारी पुस्तक पढ़ेंगे तो व्याधियोंकी उत्पत्तिमें कहीं त्रिदोष का नाम न मिलेगा और त्रिदोषानुसार चिकित्साकी कहीं गन्ध प्राप्त न होगी यदि ऐसा हो तो आप हमें झूठा कर सकते हैं। हम उस पुस्तककी आरम्भसे ही दो चार पंक्तियोंके प्रमाणकी वानगी दिखाते हैं।

पुस्तक आरम्भ करते ही आप ज्वर चिकित्सा नामसे ग्रन्थका आरम्भ करते हुए लिखते है। नव ज्वर तीव्र—सामान्य परिचय-ज्वर प्रारम्भ हो कर धीरे धीरे १०३ या १०४ डिग्री तक हो रोगीके बल वर्णादि पूरे हों, कोई उपद्रव न हो, तब मृत संजविनीरसका प्रयोग अद्रकरससे करें।

पृष्ठ ७ पर साधारण ज्वर—जिसमें ज्वर १०३ डिग्री तक रहता हो, दुर्बलता कम हो, रोगी किसी उपद्रवसे युक्त न हो तो मृत्युञ्जय रसका प्रयोग करें। पृष्ठ ७ जीर्ण ज्वर (अतिसार युक्त) परिचय—ज्वर हल्का और प्रत्येक समय रहता हो। साथ ही साथ अतिसार भी हो और कास श्वास दौर्बल्य इत्यादि उपद्रव न हों तो स्वर्ण वसन्त मालतीका प्रयोग करना चाहिये।

पृष्ठ ६ जीर्ण ज्वर (कास युक्त) परिचय—ज्वर होकर धीमा पड़जाता है कास श्वास वक्ष वेदना इत्यादि अधिक बढ़ कर साथमें रहने लगते हैं ज्वरादि लक्षण कभी कम होते हैं कभी अधिक। तब भी वसन्त मालतीका प्रयोग करना चाहिये।

पृष्ठ १४ विषम ज्वर अथवा शीत ज्वर—परिचय—जिसरोगमें पहिले जाड़ा लगे पश्चात् ज्वर बड़े वेगसे चढ़े और ताप मान १०४ व १०७ तक हो जाय तथा कुछ घण्टे रहकर पसीना देकर उतर जाय उसे शीत ज्वर कहते हैं इस प्रकार के ज्वरोंमें मलेरिया संहारका प्रयोग करना चाहिये।

इसतरह आपने सारा वैद्य सहचर लाक्षणिक चिकित्साके रूपमें लिख कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह त्रिदोष वाद केवल पोथीमें या बातोंमें मानते हैं वास्तविक चिकित्सामें लक्षण देख कर चिकित्सा करते हैं। इसका एक प्रमाण इसी विषम ज्वरके एक दूसरे योगमें आप देख सकते हैं, समस्त आयुर्वेद ग्रन्थ विषम ज्वरको पित्त प्रधान ज्वर मानकर पित्त शामक चिकित्सा बतलाते हैं। किन्तु आपने इस ज्वरको रोकनेके लिये मल्लस्फटिका नामक एक योग दिया है जिसमें १६ तोला फिटकरी और १।। माशे संखिया है। क्या पाठक बता सकेंगे कि संखिया पित्त शामक है या पित्त वर्द्धक? इसका नाम है वह जादू जो सिर चढ़ कर बोले।

पाठक शायद कह दें कि कुछ औषध अपने गुण प्रभावसे रोगोंका शमन करती हैं उन्हींमेंसे मल्ल भी एक है जो विषम ज्वरको शमन करता है। हम यहां जिस आयुर्वेदके प्राचीन त्रिदोष सिद्धान्तके आधार पर चिकित्सा क्रम निर्द्धारित कर चुके हैं उसको सन्मुख रख कर इसपर विचार कर रहे हैं इसलिये इसका उत्तर आयुर्वेदकी संहिताओंसे देना चाहिये न कि आधुनिक रस चिकित्साके आधार पर। किमधिकम्—ऐसे ग्रन्थको त्रिदोषालोक कहा जाय या अन्धकार फैलाने वाला, पाठक इसे पढ़ कर विचारें।

बीसवीं शताब्दी की इङ्गलिश हिन्दी डिक्सनरी

लेखक सुखसम्पत्तिराय भण्डारी एम. आर. ए. एम.। प्रथम भाग मूल्य १८) प्राप्ति स्थान डिक्सनरी पब्लिशिंक हाउस ब्रह्मपुरी अजमेर

संसारमें पदार्थ संख्या बढ़ रही है नित्य नये अनेकों पदार्थ हमारे सामने आ रहे हैं। इनमें से कितनी चीजें ऐसी हमारी नजरोंसे गुजरती हैं जिनको न हम पहिचानते हैं न उनके नाम ही जानते हैं। हमें उन वस्तुओं का नाम पूछना पड़ता है और यह किस काम आती है? यह जानने समझने की आवश्यकता बनी रहती है। यह तो हुई साधारण व्यवहारकी बात, किन्तु जब हम किसी विद्या या कला-कौशलके मार्ग पर कदम रखते हैं तो वहां हमें अनेकों नई-से-नई चीजोंसे वास्ता पड़ता है जिनके हम नाम तक नहीं जानते। उन्हें समझनेमें बड़ी कठिनाई दिखलाई देती है। विदेशों में जितनी पदार्थ विद्या, कलाकौशल, और व्यवहार विद्या बढ़ चुकी है उनके जो नाम व्यवहार में आ रहे हैं वह विदेशी भाषाके हैं इसीलिए हम सबों को वह अड़चन का कारण बने हुए हैं। हम उनका उच्चारण सही रूप में नहीं कर सकते उनके भावद्योतक, रूपद्योतक, अर्थद्योतक अर्थ समझने में असमर्थ रहते हैं।

हम भारतीयोंका अब विदेशसे बहुत घना सम्बन्ध हो चुका है। भारतका व्यवसाय अब भारतकी भूमि तक सिमित नहीं। यही नहीं हम सबों को अनेक प्रकार की विद्यायें सीखने विदेशोंमें जाना पड़ता है। हम सब जब किसी विद्या को सीख कर आते हैं तो उस विद्या के व्यावहारिक शब्दों द्वारा उसे अपने देशवासियोंको समझा नहीं सकते। इस समय यह अत्यन्त आवश्य-

कता दिखाई देती थी कि उन विद्याओं के व्यावहारिक शब्दों को अपनी भाषा के पर्याय नामों द्वारा जानें। इस समय तक कोई ऐसा अच्छा शब्द कोष नहीं था जो हमारी इस त्रुटिकी पूर्ति करता हो। हम बहुत समयसे इस त्रुटिका अनुभव करते चले आ रहे थे पीछे अभी कुछ समय हुआ जब हम बम्बई गये तो वहां भण्डारी जीके उक्त शब्द कोषको देखनेका सौभाग्य मिला।

इसमें कोई संशय नहीं कि बहुतसे प्रकाशकों ने कितने ही इंगलिश हिन्दी शब्दकोष प्रकाशित किए हैं। किन्तु उनमें यह त्रुटि है कि हमें जब राजनीति, अदालती,कृषि, व्यवसाय, बैंक आदिके परिभाषिक अंग्रेजी शब्दोंके स्थान पर कोई हिन्दी पारिभाषिक शब्द जानने की आवश्यकता पड़ती है तो उनसे उसकी पूर्ति नहीं होती और जब कभी रसायनशास्त्र भौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, ज्योतिष, इंजीनियरिंग आदि विषय के शब्दों के पर्याय ढूंढें तो और भी कठिनताईका सामना करना पड़ता है। इन विद्याओंके शब्दोंका बहुधा अभाव मिलता है।

हम आपके इस शब्द कोष को देखकर मनोमुग्ध हो गए। आपने इसमें अर्थशास्त्र, राजनीति वैद्यक, शरीर शास्त्र, शल्य-शास्त्र प्रसूति-शास्त्र, रसायन शास्त्र, ज्योतिष, गणित, वनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, भूगोल, बीमा, श्रमिक, व साझेदारी बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय आदि १५-१६ विषयों के शब्दों का संग्रह किया है

अंग्रेजी शब्दोंके पर्य्याय भी जो दिये गये हैं वह आपने उन विद्वानों के लिखे ग्रन्थोंसे लिए हैं जो भारतीय भाषामें अपनी विषयके विशेषज्ञ हैं। हम आपसे आशा करते हैं कि आप शीघ्राति शीघ्र इसके अन्य भाग प्रकाशितकर भारतीय भाषा विज्ञानके इस अंशकी पूर्ति करके विशेष बधाईके पात्र बनेंगे।

आयुर्वैदिक कालेज पत्रिका—सम्पादक कवि. प्रताप सिंह प्रो. जगन्नाथ शर्मा आदि मूल्य लिखा नहीं।

यह पत्रिका हिन्दू विश्वविद्यालय आयुर्वैदिक कालेज विभाग की ओरसे अभी षाण्मासिक रूपमें पिछले वर्षके अक्टूबरसे प्रकाशित होने लगी है। अभी तक इसके दो अंक निकल चुके हैं। दूसरा अंक अप्रैलका हमारे सामने है। पत्रको देखनेसे स्पष्ट हो रहा है कि इसका सम्पादन योग्य व्यक्तियोंके हाथोंमें है। लेखोंका चयन बहुत योग्यतासे किया गया है। यदि इस पत्रिकाका सम्पादन इसी उत्तमतासे होता रहा तो आशा है आयुर्वेद में एक नया जीवन आ जायगा और दकयानूसी विचार-धारा को लोप होते देर न लगेगी हम पत्रिका का हृदयसे स्वागत करते हैं।

धन्वन्तरीका अनुभवांक—

सम्पादक श्री बांकेलाल गुप्त प्रकाशक धन्वतरी कार्य्यालय विजयगढ़ अलीगढ़ पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य २) रु०

इस विशेषांकमें १२७ वैद्योंने भिन्न भिन्न रोगों पर अपने अपने अनुभूत योग दिए हैं।

दिए हुए योग सही हैं, या नहीं? इस बतको तो तभी जाना जासकता है जब कि उन्हें बना कर और उन्हें किसी रोगी पर आजमा कर देखा जाय। तब समालोचना की जाय तो वह सार्थक कही जा सकती है। केवल पढ़ लेनेसे इतना ही पता चलता है कि कुछ नुसखोंकी ओषधियां ठीक तथा उनकी रचना अच्छी है जो उन्हें बनानेके लिए प्रेरित करती है और यह प्रतीत होता है कि वह लाभकारी होंगे।

इस अनुभवांकमें १४७ नुसखे दिए गए हैं। यदि इनमेंसे दो चार भी रामबाण निकल जांय अथवा एक योग भी अच्छा फलप्रद हो तो उसी एक योगसे वैद्य हजारों रुपये कमा सकते हैं। आशा है वैद्य इस अंकको मंगाकर मन लगे योगों को बना कर अनुभव लेंगे और उदार लेखकवैद्योंका उपकार मानेंगे।

औषधी विज्ञान—पूर्वार्द्ध प्रथम भाग,लेखक वैद्य गोपाल जी कुंवर जी ठक्कुर प्रकाशक—सिंध आयुर्वैदिक फार्मेसी, नानक वाड़ा, कराची पृ. १४४ मूल्य १) रु०।

यह ग्रन्थ गुजराती भाषामें लिखा गया है। इसमें ५३ वनौषधियोंका बहुत खुलासा वर्णन किया गया है पुस्तक गुजराती भाषाभिज्ञोंके लिए बहुत उपयोगी है।

वैद्य सहचर—दूसरा संस्करण। लेखक—व प्रकाशक श्री विश्वनाथ द्विवेदी प्रिंसिपल श्री ललित हरि आयुर्वैदिक कालेज, पीलीभीत। पाकेट साइज पृष्ठ २८० मूल्य अजिल्द १॥) सजिल्द २) रु० छपाई सफाई उत्तम।

यह आपकी क्रियात्मक कृति है। आपको चिकित्सा द्वारा जिन २ रोगों पर जो योग लाभदायी प्रमाणित हुए उनको आपने अपनी इस पुस्तकमें क्रमसे अंकित किया है।

पुस्तक उन वैद्योंके लिए—जो अनुभूत योगोंकी तलाशमें ही ग्रन्थों को टटोला व इधर उधर भटका करते हैं—उनके बड़े कामकी है।

हरिशरणानन्द

विज्ञान

भाग ५४ | नवम्बर, १९४१ | पूर्ण संख्या

र्षिक मूल्य ३) रु० | संख्या

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है ।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी । इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना ।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं । वह आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं ।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है । सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है ।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं । तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलेंगी ।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जायं । आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें । प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीआॅर्डर **मैनेजर आयु विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें ।

विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३। ५ ॥

भाग ५४ | वृश्चिक, संवत् १९९८ विक्रमी नम्बर, सन् १९४१ | संख्या २

विज्ञान महिमा

तुम्हारी शक्ति है विज्ञान !

विधिनाकी विधि मनुज सुगमकर जड़-चेतन सम-भान।
बिन चेतनके चञ्चल कल कल-रव कल करें महान् ॥
मोटर रेलें पोत डुबकनी बिन वाहन के यान।
थलमें जलमें गगन गमन में गति दी एक समान ॥
गुप्त प्रकट का भेद मिटाया दृश्य अदृश्य जहान।
सरल रूपमें सन्मुख लाकर रख दीन्हा भगवान !
वस्तु अग्राह्य रही नहिं कोई अणु परमाणूवान।
लोक अलोकित सब कर दीन्हें मन नहिं रहा गुमान ॥

'स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य'

ध्वनि मापक यन्त्र और उसके कार्य

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम. ए. बी. एस-सी.]

विज्ञानके प्रशंसनीय कार्यों में ध्वनि-विज्ञान सम्बन्धी उन्नति भी एक है। किस प्रकार सितारका तार, हारमोनियमका पर्दा, बांसुरीकी हवा और आदमीका मुख ध्वनि पैदा करता है? किस प्रकार ध्वनि हमारे कानों तक पहुंचती है, कैसे कान उसको सुनते हैं? ये प्रश्न साधारणसे होते हुए भी बड़े जटिल और दिलचस्प हैं। ये ही ध्वनि विज्ञानके आधार स्तम्भ हैं।

जबसे विद्युत कणोंका पता चला है विज्ञानमें बहुत सी नई बातें मालूम हुई हैं और उस ज्ञानकी सहायतासे बहुतसे नए यंत्र बने हैं। ध्वनि नापने वाला यंत्र भी इस ज्ञानकी सहायतासे बनाया गया है।

यह ध्वनि नापने का यंत्र एक छोटे सूट-बक्स के बराबर होता है—लेकिन इसमें बोझ बहुत होता है। क्योंकि बिजली पैदा करनेके लिए उसमें काफी बैटरियां लगाई जाती हैं। इस यंत्रके बक्सके एक ओर लाउड-स्पीकर के माइक्रोफोन के समान माइक्रोफोन लगा रहता है। ध्वनिकी लहरें इस माइक्रोफोन पर अपना प्रभाव डालती हैं—इसकी सहायतासे वे ध्वनिकी तरंगे विद्युत् तरङ्गोंमें बदल जाती हैं। ये विद्युत तरंगें बहुत कम शक्तिशाली होती हैं इसलिए बैटरियोंकी सहायता से इनको शक्तिशाली किया जाता है (इसी विधिसे रेडियोकी विद्युत् तरङ्गोंको जो एरियल पर आती हैं फिर बढ़ाकर इतना शक्तिशाली किया जाता है कि उनसे आवाज सुनाई पड़ने लगती है)। ध्वनि नापनेके यंत्रमें यह कार्य एक वायु शून्य-नली (Vacuum tube) की सहायतासे किया जाता है। इस यंत्रसे सम्बन्ध रखने वाली बातोंमें एक बात याद रखने की यह है कि विद्युत् तरंगे ध्वनिके तेज और धीमी होने पर शक्ति-शाली या निर्बल रहती हैं। इसी अन्तरके द्वारा ध्वनिको नापा जाता है।

ध्वनि नापनेकी इकाईका नाम डेसीबैल है। जैसे थर्मामीटरके ऊपर डिगरी होती है इसी प्रकार आवाज नापने वाले पैमाने पर डेसीबैलके निशान लगे रहते हैं।

जैसे सेगटीग्रेड थर्मामीटर पर शून्यका स्थान बर्फका तापक्रम होता है इसी प्रकार इस ध्वनि नापनेके थर्मामीटर पर शून्य के स्थानमें 'सबसे धीमी सुनी जा सकने वाली' ध्वनिके पासकी ध्वनिका मतलब होता है। जो ध्वनि १३० डेसीबैलसे ऊंची होती है वह साधारण ध्वनि न रह कर हृदय विदारक ध्वनिमें परिणत हो जाती है और कभी-कभी बड़ी दर्दनाक होती है। इस प्रकार १३० डेसीबैल सबसे अधिक और ० बिलकुल न सुनाई देने वाली ध्वनि के स्थान हैं। जैसे सेगटीग्रेड थर्मामीटर में १००° से० पानीके खौलने का तापक्रम है इसी प्रकार ध्वनि नापनेके यंत्र पर १३० डेसीबैल उच्च ध्वनि का स्थान है।

जब तीन या चार आदमी एक कमरेमें बैठकर बात चीत करते हैं तो वे ६५ से ७० डेसीबैल तककी ध्वनि उत्पन्न करते हैं। पियानो बजानेमें ७५ डेसीबैलकी ध्वनि उत्पन्न होती है। बोझा ढोने वाली मोटर गाड़ी ८० डेसीबैलकी आवाज करती है जब शेर दहाड़ मारता है तो ८५ डेसीबैलकी ध्वनि उत्पन्न होती है बिजलीके कड़कनेसे ८० से ११० डेसीबैल तककी ध्वनि उत्पन्न होती है। रेलगाड़ी जब पूरी गतिसे चलती है तो १०३ डेसीबैलकी ध्वनि करती है। पृथ्वीसे उड़ते समय वायुयानकी ध्वनि ११५ से १२० डेसीबैल तक होती है।

संसारमें सबसे जोरकी आवाज तब हुई थी जब अगस्त सन् १८८३ में क्रैकेटोआ (Krakatoa) का ज्वालामुखी फूटा था। उस समय कोई भी ध्वनि नापनेका यंत्र नहीं बना था। यह ध्वनि लगभग १९० डेसीबैलकी थी क्योंकि पृथ्वीकी सतह पर ३०० मील तक इस ज्वालामुखी के फूटनेका शब्द सुनाई पड़ा था।

काना-फूसीमें जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह लग-भग २५ या २० डेसीबैल की होती है। अगर किसीको ऐसे स्थानकी खोज हो जहां पर कम से कम ध्वनि हो तो वह स्थान किसी गुब्बारेसे लटकी डलिया होगी। जब यह गुब्बारा पृथ्वी के धरातलसे २ या ३ मील ऊंचा उड़ जायगा तो उस डलियामें बैठे आदमीके पास पृथ्वीका शोर बिल्कुल नहीं पहुंच पाएगा—लेकिन उस समय हवा ज्यादा तीव्र न होनी चाहिए।

लन्दनमें सबसे अधिक ध्वनि एक गलीकी थी जो लगभग १०० डेसीबैल थी। मनुष्य की खुले स्थानमें सबसे तेज आवाज ९२ डेसीबैल नापी गई है लेकिन अमेरिका के सबसे

अधिक जोरसे चिल्लाने वाले एक आदमीकी आवाज लगभग ८७ डेसीबैल होगी क्योंकि जब वह एक पहाड़ी की चोटी से चिल्लाता था तो उसकी ध्वनि ८ मील तक सुनाई पड़ती थी ।

इस यंत्रका उपयोग किसी स्थानकी आवाज घटानेके लिए भी हो सकता है । हर एक आदमी चाहता है कि जब वह काम करे तो ज्यादा शोर गुल न हो । इससे कार्यमें ही हानि नहीं होती किन्तु यह स्वास्थ्यके लिए भी हानिकारक है । एक वैज्ञानिकने यह सिद्ध किया है कि शोर गुल वाले स्थानमें, शान्त स्थानकी अपेक्षा किसी कार्य को करने में अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है । यदि किसी स्कूल, दफ्तर या बैङ्कमें शोर गुल ज्यादा होगा तो काम करने वालों को घर आने पर थकान अधिक होगी, दूसरे कार्य करने में समय अधिक लगेगा और काम में गलतियां भी अधिक होंगी ।

यदि रात्रिमें अधिक शोर-गुल होगा तो नींद अच्छी नहीं आएगी । एक डाक्टरने बताया है कि कुछ ध्वनियां ऐसी होती हैं कि उनसे रक्तका दबाव अधिक बढ़ जाता है । इसलिए शोर गुलको घटानेका अधिकसे अधिक प्रयत्न करना चाहिए । लन्दनमें तो ऐसा किया गया है कि रात्रिमें कोई भी मोटरका हॉर्न न बजाए । इससे वहां घटनाएं भी घट गईं क्योंकि ड्राइवर मोटरको बड़ी सावधानीसे तथा कम गतिसे चलाते हैं ।

कुछ स्थान ऐसे हैं जहां पर ध्वनि घटाने की आवश्यकता है, जैसे रेस्टोरेंट, वहां पर लोगोंकी बात-चीत और तश्तरियोंकी खड़-खड़से बहुत अधिक आवाज होती है । जिससे यह आवाज कम हो जाय इसके लिए प्रयत्न किया गया है । दिवालों तथा छतों पर एक प्रकारका मसाला लगाया जाता है जो ध्वनिको सोख लेता है और गूंज नहीं पैदा होने देता । अगर किसी कमरेमें एक तश्तरी गिरे तो पहले दो तश्तरीके गिरनेकी आवाज होगी, इसके बाद वह ध्वनि दिवारों से टकरा कर बार-बार लौटेगी और गूंज पैदा कर देगी । इस प्रकार उस तश्तरीके टूटने की ध्वनि दस-से-बीस बार तक सुनाई देगी । यदि इस कमरेकी छतें तथा दिवारें ध्वनि शोषक पदार्थ की बनी हों तो वह ध्वनि केवल एक बार सुनाई पड़ेगी ।

वायुयानमें पाइलेटके स्थानको शान्त बनानेकी आवश्यकता पड़ती है । अभी तक बिना आवाज करने वाला वायुयान बनाने में तो सफलता नहीं मिल सकी है किन्तु वायुयान के भीतरी स्थानको काफी हद तक शान्त बनाया जा सकता है । इस प्रकार शहरके सबसे अधिक शोर गुल वाले हिस्सेमें रहने वाले आदमियोंको भी शान्त स्थानकी खोजके लिए जंगलोंमें न जाना पड़ेगा; उनके घरमें ही शान्त कमरे बन सकेंगे । कोई कमरा कितनी गूंज करता है तथा कोई पदार्थ कितनी ध्वनि शोषण शक्ति रखता है यह इस ध्वनि मापक यन्त्र द्वारा ठीक-ठीक मालूम हो सकता है ।

कभी-कभी यह यन्त्र ध्वनि कम करने के स्थान पर ध्वनि अधिक करनेके लिए भी काममें लाया जाता है । उस समय इसको सूक्ष्म-ध्वनि-दर्शक यन्त्र भी कहते हैं । प्रायः गेहूंमें घुन लग जाता है, जब यह घुन बड़ा होता है तब तो आंखोंसे दिखाई पड़ जाता है किन्तु इसके बच्चे बहुत छोटे छोटे होते हैं तो वे अन्दर ही अन्दर गेहूंको खाते रहते हैं । ऊपरसे देखने पर किसी प्रकार भी यह मालूम नहीं पड़ सकता कि गेहूंमें घुन लगना शुरू हो गया है । यह घुन जब गेहूंको अन्दरसे खाता है तो बहुत धीमी कट-कटकी सी ध्वनि उत्पन्न होती है । साधारण कानोंसे किसी प्रकार भी यह ध्वनि सुनाई नहीं पड़ सकती ।

यदि एक प्यालेमें गेहूंको रखा जाय और इस सूक्ष्म-ध्वनि प्रदर्शक यन्त्रका माइक्रोफोन उस प्यालेसे लगा दिया जाय तो कट-कटकी ध्वनि बिलकुल साफ सुनाई देगी । ज्योंही यह कीड़ा अन्दरका हिस्सा काटेगा इस यन्त्रमें एक कट-कटकी ध्वनि सुनाई पड़ेगी । इस यन्त्र की सहायता से किसी ध्वनि को १०,०००,०००,०००,००० गुना अधिक बढ़ाया जा सकता है ।

इस यंत्रका उपयोग फैक्टरियोंमें भी किया जाता है । वहां यदि किसी मशीनका पहिया ठीक धुरी पर न हो तो ध्वनि द्वारा इसका पता चल जाता है । अगर चीनी या शीशे के बर्तन में बहुत हल्का सा बाल आ गया हो तो उसका भी पता लग जाता है । डाक्टरोंको भी इससे बहुत सहायता मिली है । दिलकी धड़कनके अतिरिक्त क्षतयुक्त जोड़ों पर जो धीमी-धीमी ध्वनि होती है या गले और कानकी बिमारियोंमें जो उनकी नलियोंमें ध्वनि होती है उसका इससे पता चल जाता है । इसके अतिरिक्त ध्वनि विज्ञान सम्बन्धी खोजें भी इस यन्त्र द्वारा हुई हैं ।

मोतीभरा या मन्थर ज्वर तथा भोजन

[ले० श्री कैप्टेन उमाशंकर प्रसाद आई० एम० एस०]

अंग्रेजीमें कहावत है "Feed a cold and Starve a Fever" यहां भी इसी प्रकार लोगोंका विश्वास है कि लंघन या उपवाससे ज्वर दूर भाग जाता है यह प्रचिलित अन्ध विश्वास बहुत पुराना है और अंग्रेजी चिकित्साके पिता हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) के समयसे है क्योंकि हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) अपने ज्वरके रोगियोंको आसव और यवका पानी ही देता था। यह विश्वास १०० वर्ष पहले तक अपना स्थान डाक्टरोंके मनमें बनाये था।

ज्वरमें भोजन देनेसे ताप अधिक हो जाता है तथा ज्वरका रोगी भोजन पचा कर कुछ बल संचित नहीं कर सकता है, यह दोनों बातें अब गलत सिद्ध कर दी गई हैं। यह निश्चय हो गया है कि हल्के तथा सरलतासे पच जाने वाले भोजनको ज्वर का रोगी उसी सरलतासे पचा लेता है जैसे स्वस्थ मनुष्य तथा यह भी निश्चय हो गया है कि भोजन पचानेमें ज्वर बढ़नेका कोई सम्बन्ध नहीं है।

ज्वरकी दशामें रक्तमें विषैली वस्तुएं होती हैं जो शरीरके तन्तुओं और मुख्यकर प्रोटीन भाग पर बहुत बुरा फल डालती हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि ज्वरमें शरीरके प्रोटीन भाग नष्ट होते हैं इसलिये भोजनमें मुख्यतर प्रोटीन ही रोगीको देना चाहिए जिससे ज्वरसे नष्ट हुये प्रोटीन भागकी कमी को शरीर भोजनकी प्रोटीनसे पूरा कर ले, अन्य लोगोंका मत है कि ज्वर के कारण शरीरके प्रोटीन भाग नष्ट होकर शरीर पर बुरा प्रभाव डालते हैं इससे भोजनमें भी प्रोटीन खिलानेसे शरीर पर इसका प्रभाव और भी अधिक बुरा होगा इसलिये भोजनमें प्रोटीन नहीं रहना चाहिए, संभवतः दोनों ही कुछ अंशमें ठीक हैं परन्तु आज कल पिछले मतसे अधिक लोग सहमत हैं। इससे ज्वरके कारण शरीरके प्रोटीन भागके नष्ट हो जानेकी कमीको पूरा करने के विचारसे भोजनमें अधिक प्रोटीन नहीं दिया जाता, बल्कि दूधके रूपमें बहुत सरलतासे पचने वाला प्रोटीन दिया जाता है। दूधके साथ ही भोजनमें ऐसी वस्तुएं दी जाती हैं जिनको शरीर ज्वरकी दशामें काममें लाता है और शरीरका प्रोटीन इसलिये नाश होनेसे बच जाता है। ऐसी भोजनकी वस्तुएं कर्बोदेत तथा वसा (Fats) हैं। वसा (Fat) से शीघ्र ही अरुचि हो जाती है और ज्वरका रोगी बहुत मात्रामें ऐसा भोजन खाता है इसलिये काम में केवल दूध तथा कर्बोदेत (Carbohydrates) बच जाते हैं।

ज्वरमें भोजन देनेका मत बहुत पहलेसे प्रचिलित हो गया था परन्तु मोतीभरा (Typhoid) रोगमें भोजन देनेका विचार बहुत दिनों तक नहीं हुआ था। मोतीभरा रोगमें अंतड़ियोंकी दीवारें बिल्कुल पतली कागजकी तरह हो जाती हैं और स्थान स्थान पर आंतोंमें छाले तथा घाव बन जाते हैं जिससे आंतोंके फट जानेका बहुत डर रहता है। इसी डरसे पहले इन रोगियों को भोजन तो दूर रहा पानी भी बहुत कम दिया जाता था क्योंकि डर था कि अांतड़ियोंमें अधिक चाल होनेसे तथा भोजन जानेसे उनके फट जानेका डर बहुत बढ़ जायगा किन्तु यदि आंतड़ियोंको विश्राम मिला और भोजन न दिया गया तो आंतड़ियोंके छाले शीघ्र भर जायेंगे। इसीलिये रोगीको दूधके साथ थोड़ा शक्कर घोल कर पिलाया जाता था और बिचारेको यदि २००० कैलोरी शक्ति भी इसमें मिल जाती थी तो वह सौभाग्य शाली था। मोतीभरा में शरीरका आत्मीकरण (metabolism) स्वस्थ दशासे ४०% अधिक हो जाता है इससे भोजन में ४०% अधिक कैलोरीकी आवश्यकता पड़ती है और जब साधारणतः स्वस्थ मनुष्यको नित्य ४००० कैलोरी शक्तिके भोजनकी आवश्यकता होती है तो केवल १००० कैलोरी वर्धक भोजनसे क्या हो सकता है ? इस हालतमें भोजनकी कमीको शरीर अपना ही अंग काट कर पूरा करता है। इसलिये पहले तो शरीरमें जो चर्बी रहती है वही काममें लानी पड़ती है परन्तु इस चर्बी के शीघ्र समाप्त हो जाने पर शरीर को अपने मांस पेशियों तथा आंतड़ियोंके मांस-पेशियोंको—जो अन्यथा आंतड़ियों पर बने घावोंको बल तथा सहायता देती—भोजनके रूपमें काम में लाना पड़ता है। यह बातें केवल सिद्धान्त ही नहीं हैं बल्कि गणनाओं तथा अंकोंसे स्पष्ट है कि रोगीको अधिक कैलोरी शक्तिके भोजन देनेसे आंतोंमें छिद्र हो जाने तथा रुधिर आनेके भयानक डरकी संख्या बहुत कम हो जाती है। अमेरिका तथा

इंगलैंडमें अधिक कैलोरी वर्धक भोजन देनेकी प्रथा प्रचिलित है परन्तु भारतवर्षमें अभी इस प्रकार भोजन देनेकी प्रथा कुछ बड़े बड़े अस्पतालोंमें ही है। यह कुछ आश्चर्यकी बात है क्योंकि यहां के डाक्टर प्रायः पश्चिमी देशोंका अनुगमन शीघ्र ही करते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि यहां अन्य देशोंकी भांति चिकित्सा-गृह (Nursing Homes) की प्रथा बहुत ही कम है इसलिये प्रायः ६६१. मोतीभराके रोगियोंके भोजन का प्रबन्ध घरके कुटुम्बियोंको ही करना पड़ता है। दूसरा कारण यह है कि यहां डाक्टरोंकी आज्ञा या मतका पालन उतना नहीं होता जितना घरके बड़े बूढ़ोंकी राय का। पिता भले ही लड़के के लिये धन व्यय करके बड़े बड़े डाक्टरोंको बुलवा कर रोगीकी जांच करायेगा तथा डाक्टरी मत सुन कर दवा खरीद लेगा परन्तु दवा पिलानेकी नौबत कम होगी। इसीलिये यहां सूई द्वारा नसमें दवा देनेकी प्रथा अधिक है क्योंकि एक सूई देने पर डाक्टरको यह विश्वास हो जाता है कि कमसे कम एक मात्रा औषधिकी रोगीके शरीरमें प्रविष्ट हो गई। रोगीके भोजनके विषयमें डाक्टरको बहुधा लाचार हो कर चुप ही रहना पड़ता है क्योंकि यदि घरकी बूढ़ी मां के विचारमें मोतीभरामें भोजन न देना ही उचित है तो डाक्टर हजार प्रयत्न करें तथा अच्छे डाक्टरोंका मत बतलावें परन्तु अपने मतानुसार रोगीको भोजन दिलानेमें असफल रहेगा।

ऊपर लिखा हुआ ४००० कैलोरीका अंक अंग्रेजों तथा अमेरिका निवासियोंके लिये है। हिन्दुस्तानियोंके लिए कुछ कम कैलोरी प्रायः २०००, ३००० कैलोरी वर्धक भोजनकी आवश्यकता होगी। कमसे कम २० कैलोरी प्रति पौंड शरीरके तोलके हिन्दुस्तानियोंके लिये आवश्यक है। ध्यान रहे कि रोगी का तोल रोगके कारण बहुत घट जायगा इससे रोगीको तोल कर कैलोरीका हिसाब नहीं लगाना चाहिए बल्कि रोगीकी लंबाई नाप कर चार्टसे तोलका पता लगा कर इस अंक पर कैलोरीका हिसाब निकालना चाहिए। २५०० कैलोरीके लिए कौन कौन वस्तु भोजनमें चुनना है इसके लिए लकीरके फकीर बननेकी आवश्यकता नहीं है। सबसे आवश्यक दूध है, परन्तु २५०० कैलोरीके लिये ६ पाइन्टसे अधिक दूध नित्य पीना पड़ेगा जो असम्भव है। कुछ रोगियोंको साधारण दूध पीनेमें बहुत कष्ट होता है। उनको साइट्रेटड मिल्क (Citrated milk) या लैक्टिक ऐसिड मिल्क (Lactic Acid milk) पचानेमें सरलता होगी। स्वाद बदलनेके लिए हार्लिक्स मिल्क ओवलटीन (Horliks milk, Ovaltine) या अन्य प्रकारका दूध दिया जा सकता है। शक्कर (Lactose या Dextrine) से अधिक कैलोरी शक्ति मिलती है। अंगूरोंकी शक्कर (Glucose) से पेटमें संधान होकर वायु (Formentation) अधिक बनता है, जिससे कष्ट होता है और साथ ही बहुत मीठा होनेके कारण अरुचि हो जाती है। शोरवामें अधिक कैलोरी शक्ति तो नहीं रहती परन्तु भली भांति तैय्यार किया हुआ मुर्गी के बच्चेके शोरवा से उतनी ही कैलोरी शक्ति मिलेगी जितनी दूधसे, इस शोरवेका स्वाद बहुत रुचिकर हो जायगा। यह आवश्यक नहीं है कि भोजन बिल्कुल पीने ही योग्य तरल रूप पदार्थ हो। बिस्कुट, रस्क, मक्खन तथा डबलरोटी आमाशयमें जाकर गल कर दूध ही की भांति तरल हो जाते हैं इसलिए स्वाद बदलनेके आशयसे कुछ मात्रामें इन्हें खिलानेमें हानि नहीं है बल्कि लाभ ही है, इन्हें काटनेमें दांत तथा मुंह स्वच्छ हो जाता है। अंडेको दूधमें घोल कर भी पिलाया जा सकता है आलू भी उबाल कर मक्खन या घी में भून कर दिया जा सकता है। पका चावल पकी सब्जी या ताजे फलको कपड़ेमें रखकर उसका रस निचोड़कर उस रसको पिलाया जा सकता है, इससे विटैमिन भी मिल जायेगी और छिलका तथा कड़ा भाग पेटमें न जा सकेगा। जो भोजन दिया जाय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें सब विटैमिन उचित मात्रामें आजांय अन्यथा विटैमिनकी कमीको दवाके रूपमें पूरी करना चाहिए।

पूरी कलोरी शक्तिवाली मात्राका भोजन रोगीको नित्य देनेमें नर्सको बहुत समझसे काम लेना पड़ेगा। डाक्टरको भी रोगीको पूरा शक्ति वर्धक भोजन देने के लिये दस्त वमन, वायु-प्रकोप आदि तथा अन्य कष्टोंको रोकनेके लिए नित्य केवल रोगी की देख भाल ही नहीं करनी पड़ती बल्कि भोजनकी जांच तथा दवाकी सहायता समय समय पर लेनी पड़ती है।

६ सप्ताहकी मोतीभराकी मियाद पूरी करनेमें रोगी बहुत दुर्बल हो जायगा और फिर स्वस्थ होनेमें बहुत समय लगेगा।

डाक्टरको प्रयत्न करना चाहिए कि रोगी अच्छा होकर बिस्तरसे उठ कर खड़े होनेके समय तक अपने शरीरके तोलको पुनः बराबर करले। यह सच है कि पुरानी आदत मुश्किलसे और धीरे धीरे छूटती है परन्तु यदि डाक्टर लोग अपनी बातोंसे सबको भरोसा दिलादें तो अवश्य कुछ दिनों बाद अन्ध-विश्वास दूर हो जायगा।

गेहूँ की खेती

[मूल लें०—श्री बी. एस. प्यु, बी. एससी. बी. डी., बी. एससी. एजी. (कैलिफोर्निया)
प्रोफेसर ऑफ एग्रोनोमी, एग्रिकल्चर इन्स्टिट्यूट, इलाहाबाद ।

४४

गहूं बोनेके लिए खेत तैयार करना—सबसे अच्छा खेत गेहूं बोनेके लिए वह होता है जिसको खूब जोता गया हो, अर्थात् डलोंको तो तोड़ा जाय लेकिन उनको इतना बारीक नहीं करना चाहिये कि जिससे वे रेत जैसे हो जांय। यदि मिट्टी बिलकुल रेत जैसी हो जाय तो मेंह पड़ने पर उसकी एक सतह बन जायगी जिसके कारण जड़ें आसानी से मिट्टी में दूर तक न जा सकेंगी।

इस देशमें मिट्टी तैयार करने के अनेक ढंग काम में लाये जाते हैं। ये ढंग किस प्रकारकी मिट्टी है इस पर निर्भर रहते हैं। इसके साथ-साथ यह भी ध्यानमें रखना पड़ता है कि यह जमीन सिंचाई वाली है या बिना सिंचाई की। जहां पर नदियों की लाई हुई मिट्टी है जैसे—पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त और सिंध, वहां पर मिट्टी तैयार करनेका साधारण ढंग यह है कि उस खेत में कई बार हल जोता जाय, यहां तक कि मिट्टी बहुत बारीक हो जाय। कभी-कभी तो किसान एक खेतमें १५ बार तक हल जोतता है। किन्तु प्रायः आठ या दस बार हल जोतना काफी होता है। यह हल बरसातके दिनोंमें जोता जाता है। इसके बाद सितम्बर और अक्तूबरके महीनेके बाद तो एक-दो बार ही हल जोता जाता है। बरसातके पश्चात् खेतमें सोहगा (पञ्जाबी) या पटेला फेरा जाता है। यदि खेत सिंचाईकी जमीनमें हो तो हल दो या तीन बार चलानेसे ही काम चल जाता है इसके बाद डले फोड़नेके लिये पटेला चलाया जाता है।

जिन भागोंमें काली मिट्टी है जैसे मध्य भारत, बुंदेलखण्ड मध्य प्रान्त और बम्बई वहां पर बिलकुल दूसरे ढंगसे खेत तैयार किया जाता है। खेतमें तैयार करनेके लिए हलके स्थान पर बखर काममें लाया जाता है। यह इन स्थानोंके लिए ही काम में आता है। इसमें २० इञ्च लम्बा और ४ इञ्च चौड़ा फलक लगा होता है। इस फलक के दोनों सिरे एक तख्तेमें लगे होते हैं। यह पृथ्वी में करीब आठ इञ्च गहरा चला जाता है और मिट्टीका चूरा कर देता है। इसके बाद पटेला चलाने की जरूरत नहीं रहती। यह बखर अप्रैल या मईके महीनेमें चलाया जाता है, इसके बाद फिर एक दो बार सितम्बरके महीनेमें चलानेकी आवश्यकता पड़ती है। इसके बाद फिर बोनेसे पहिले अक्तूबर में एक बार बखर और चलाया जाता है।

बोनेका समय—बोनेका समय प्रायः अक्तूबरसे लेकर बीच नवम्बर तक है। उत्तरी पश्चिमी प्रान्त तथा उसके पासके पञ्जाबके भागमें गेहूं कुछ बादमें बोया जाता है नहीं तो सारे हिन्दुस्तानमें बोनेका समय लगभग यही है।

बोनेकी विधि—गेहूं तीन प्रकारसे बोया जाता है—(१) बखेरना, (२) हलकी लीकमें डालना, (३) अधिक गहराईमें डालना। बखेरनेमें बीजको हाथसे खेतमें बखेर दिया जाता है और इसके बाद उसपर हल चला दिया जाता है जिससे बीज उससे पूरी तरह ढक जाय। इस प्रकार बीज मिट्टी में एक गहराई तक नहीं रहता है। कभी-कभी बीज पृथ्वी के ऊपर ही पड़ा रहता है जहां पर वह जमता नहीं और प्रायः चिड़ियां उसे उठाकर खा जाती हैं। इसके अलावा बीज भी सारे खेतमें एक-सार नहीं रहता है, इसलिए इस विधिको बीज बोनेके काममें नहीं लाना चाहिए किन्तु फिर भी हिन्दुस्तानमें जहां कहीं गेहूं उत्पन्न होता है यह विधि काममें लाई जाती है। यदि मिट्टीकी सतह काफी नम हो तो इससे अधिक हानि नहीं होती। इस विधिसे गेहूं बोनेके लिए प्रति एकड़ ४० से ५० सेर तक गेहूंकी आवश्यकता पड़ती है।

(२) इस विधिसे गेहूं बोने में बीजको हलसे बनी लीकमें डाला जाता है। बीज बोने वाला हलके पीछे पीछे चलता है। इस प्रकार बीज बोनेका काम बच्चे या औरतें करती हैं और आदमी हल चलाता रहता है। यह विधि बीज बखेरनेकी विधि से तो अच्छी है लेकिन इसमें मेहनत अधिक पड़ती है और एक दिनमें बोया भी कम जमीनमें जाता है बीज बोनेके बाद बीजको ढकनेके लिए पटेला फेरना जरूरी हो जाता है, अधिकतर तो बीज बोने वाले के पैरों से ढाई गई मिट्टी से ही ढक जाता है। इस प्रकार बीज बोनेके लिए प्रति एकड़ ३० से ४० सेर तक बीजकी आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकारसे पञ्जाबके सिंचाई वाले भागोंमें तथा बम्बई प्रान्तके सिंचाई वाले भागों में बीज बोया जाता है।

(३) अधिक गहराई तक बीज बोनेकी विधि भारतके भिन्न भागोंमें भिन्न प्रकारसे है। संयुक्त प्रान्त और पञ्जाबमें इस विधि

से बीज बोनेके लिए बांसका एक नलका बंधा रहता है। इस नलकेमें बीज हाथसे डाला जाता है। वह बीज ठीक हल के नीचेके भागके पास मिट्टीकी बनी घाईमें पड़ता है। बीज हल के चलनेसे गिरी मिट्टीसे दब जाता है। इस प्रकार बीज बोनेके लिए दो आदमियोंकी आवश्यकता पड़ती है। एक आदमी हल और बैल चलाता रहता है और दूसरा आदमी कीपमें से बीज डालता रहता है। यह बीज नलके द्वारा ठीक स्थान पर गिरता है। बीज डालनेका काम प्रायः स्त्री करती है। बांसके नलके को ऊंचा नीचा करके यह ठीक किया जा सकता है कि बीज कितनी गहराई तक डाला जाय। इस प्रकार गेहूं बोनेमें प्रति एकड़ २५ से ३० सेर तक बीज की आवश्यकता पड़ती है।

मध्य प्रान्त तथा बरारमें बीज बोनेके लिये ३ छेद वाली नली काममें लाई जाती है। इसे वहांकी भाषामें तिफन कहते हैं। इसका मुह तो चौड़ा कीप जैसा होता है किन्तु नीचेका नलका एक के स्थान पर तीन नलियों का बना होता है। इस कीपमें हाथसे बीज डाला जाता है और यह तीन नलियोंमें से गिरता है। इस प्रकार यह नलका एक बारमें तीन लीकोंमें बीज डाल सकता है। इस प्रकार बीज बोने के लिये प्रति एकड़ ३० सेर बीज काफी होता है।

अब तो बीज बोनेके लिये एक पाश्चात्य देशकी बनी मशीन काममें लाई जाती है। नलोंकी शक्तिके अनुसार बड़ी या छोटी मशीन काममें लाई जा सकती है। बैलोंके लिये जो मशीन प्रायः काममें लाई जाती है वह एक बारमें पांच छः कतार बो सकती है। यह मशीन बीजको भी बराबर गहराई तक एक सार फलाती है किन्तु जो खेत बहुत अच्छे जुते हुए हों उन्हींमें यह ठीक ठीक काम करती है।

इस प्रकार इन तीनों प्रकारकी विधियोंमें नलकेसे बीज बोनेकी विधि सबसे उत्तम है इस प्रकार बीज बोनेसे फसल अच्छी होती है बीज लगभग एक गहराई तक पड़ता है इसलिये सारे खेतमें बीज एक साथ ही जमता है। इस विधिसे बोनेमें प्रति एकड़ बीज भी कम खर्च होता है। बीज एक खास तथा नियत गहराई पर ही बोना चाहिये क्योंकि जड़ें मिट्टीमें एक खास गहराई पर रहती हैं। बीज चाहे किसी तरह क्यों न बोया जाय यदि जड़ोंके रहने की गहराई पर बीज डाला जायगा तो बीजकी जड़ें आसानीसे फैल सकेंगी जब बीज जमता है तो तीन या इससे अधिक जड़ें निकलती हैं। प्रारम्भमें स्थाई जड़ें इन पहली निकली जड़ोंसे ऊपर फैलती हैं और ये मिट्टीकी सतहसे लगभग एक या दो इंच नीचे रहती हैं। यदि बीज अधिक गहराई तक बोया जायगा तो जड़ोंको इस स्थान तक आनेमें पर्याप्त कार्य करना पड़ेगा जिसके कारण फसलको हानि पहुंचेगी।

बोनेके बाद फसलकी देख भालः—जो जमीन सिंचाईकी नहीं है वहां पर फसल बोनेके बाद अधिक काम नहीं करना पड़ता लेकिन जहां जमीन सिंचाईकी है वहां खेतमें क्यारियां बनानी पड़ती हैं, पंजाबमें बीज उपजनेसे पहले ही क्यारी बना दी जाती हैं। अब फसलमें कितनी बार पानी देना चाहिये यह मौसम तथा जमीन पर निर्भर रहता है। पंजाबमें बीज बोने के बाद दो या तीन सिंचाई की जाती हैं, संयुक्त प्रान्तमें एकसे तीन तक और राजपूतानेके बहुतसे भागोंमें छः बार तक सिंचाई की जाती है।

गेहूंकी फसलको निरानेकी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, गेहूंके खेतमें निरानेकी चीज केवल बथुआ है। कभी-कभी फसल के पौदे सीधे न रह कर गिर जाते हैं। इसका कारण नालका कमजोर हो जाना या जड़ोंका खराब हो जाना है। यह प्रायः मिट्टीके अधिक गीले रहनेके कारण हो जाता है। अगर फसलके प्रारम्भमें फसल ढह जाती है तो बादमें बालके सीधा होनेकी सम्भावना रहती है। यदि फसल पकनेके समय ढहती है तो उसके सीधे होनेकी सम्भावना नहीं रहती। प्रायः जोरके मेंह आंधी या ओलोंसे इस प्रकार फसल ढह जाती है।

फसल काटना तथा गहानाः—मध्य भारत तथा मध्य प्रान्तमें मार्चसे फसल काटनी शुरू हो जाती है। संयुक्त प्रान्तमें मार्चके अन्तसे प्रारम्भ हो कर अप्रैलके मध्य तक, पंजाबमें अप्रैलके मध्यसे लेकर मई तक कटती है। उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्तमें फसल और देरीमें काटी जाती है। प्रायः जूनके प्रारम्भ से लेकर इस महीनेके अन्त तक फसल काट ली जाती है।

फसल हांसी या दंतियांसे काटी जाती है। कटी हुई फसल के गट्ठर बांध बांधकर एक स्थान पर जमा किये जाते हैं। इसके बाद गहाई शुरू हो जाती है। गहाई बैलोंको फसल पर चला कर की जाती है। बैलोंके बार बार चलनेसे उनके खुरोंसे भूसा तथा अनाज अलग हो जाता है, इसके बाद हवाकी दिशाको मुंह करके एक छाजमें ले कर यह भूसा तथा अनाज उड़ाया जाता है भूसा अलग एक ढेरमें इकट्ठा हो जाता है अनाज अलग एक ढेरमें। [क्रॉप प्रोडकशन इन इन्डियासे]

मशीनों की लड़ाई

किस प्रकार अमरीकाके मशीन बनानेके औजारोंके व्यवसायने जर्मन-हाई-कमाण्ड को सशङ्कित कर दिया।

जबसे वर्तमान युद्ध करनेका ढंग चला है और आज तक जब कि मशीनगनें, तोपें और शीघ्र-गामी टैंकोंका भी उपयोग किया जाने लगा है, प्रत्येक होशियार नेता यह जानता है कि विजयी वह होगा जिसकी सैना अधिक देर तक युद्ध स्थलसे दूर रहेगी। सन् १९१४-१९१८ के युद्धमें फ्रांस और इंगलैंड इस सिद्धान्तको भूल गये थे। जब वे देश युद्धके लिये और सैना की भर्ती कर रहे थे उसमें भी उन्होंने होशियार कारीगरों को भर्ती करके लड़नेके लिये युद्धस्थल पर भेज दिया था किन्तु इसी समय जर्मनीने अपने सारे कारीगरोंको युद्धस्थलसे दूर फैक्टरियों में कार्य करनेके लिए रख छोड़ा था। यही कारण था कि जर्मन गत युद्धमें इतनी सफलतासे लड़ता रहा और यदि अमेरिकाकी मदद इंगलैंडको न मिलती तो वह विजयी भी हो जाता।

संसारके इतिहासमें कोई भी ऐसा देश नहीं है जिसने जर्मनीके समान अपनी पराजयसे इतना लाभ उठाया हो। इस बार लड़ाई प्रारम्भ करनेसे पहले जर्मनीकी शस्त्र बनानेकी गति पिछले युद्धसे आठ गुनी अधिक थी और होशियार कारीगर पिछले युद्धके समयसे दस गुने अधिक थे।

जिस शीघ्रतासे जर्मनीने अपने विपक्षियोंको पराजित किया है वह वास्तवमें आश्चर्यजनक है। विजयोंसे यह सिद्ध होता है कि जर्मनीने मशीन बनानेमें महान् उन्नति कर ली थी। युद्धमें हजारों जर्मनी वायुयानों और टैङ्कोंके मुकाबले इंगलैंड और फ्रांस के पास बहुत कम वायुयान और टैङ्क थे।

वास्तवमें पोलैण्ड और फ्रांस तो जर्मनीने १९३४ में ही जीत लिये थे जब खुल्लम-खुल्ला बिना वर्साइलकी सन्धि तोड़े हुए वह मशीन बनानेके औजार बनाने लगा था। सन् १९३४ में जर्मनीकी मशीनके औजार बनानेकी संख्या ८०० प्रतिशत हो गई थी। जब तक जर्मनीने यह न देख लिया था कि उसकी वायुयान, टैङ्क और मशीनगन बनानेकी शक्ति, फ्रांस और इंगलैंड की सम्मिलित शस्त्र बनानेकी शक्तिसे ही नहीं बल्कि युनाइटेड स्टेट्सकी भी शस्त्र बनानेकी शक्तिसे अधिक हो गई है, तब तक उसने राइन प्रदेश पर अपना अधिकार नहीं किया था।

जर्मनीने युद्धकी तैयारी करनेके पश्चात् सबसे पहले जिस देश पर हमला किया वह जैकोस्लोवेकिया था, क्योंकि जैकोस्लोवेकिया ही योरपमें उस समय सबसे अधिक औजार (machine-tools) बनाने वाला देश था।

जर्मनीने युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले औजार बनाने क्यों प्रारम्भ किये? और इंगलैंड तथा फ्रांसने उसके इस कार्य पर अधिक ध्यान क्यों नहीं दिया? पहले भागका उत्तर यह है कि औजारोंकी सहायतासे अन्य औजार तथा हर प्रकारके यन्त्र बनाये जा सकते हैं। चाहे दूसरे औजार बनाने हों या मोटर, वायुयान मशीनगनें...इत्यादि, इन सबके बनानेमें औजारोंकी सबसे बड़ी अधिक आवश्यकता पड़ती है। खराद उतारनेकी मशीन जो आज पानी चढ़ानेके मोटरोंके पुर्जे बनानेके काममें आ रही है, बड़ी आसानीसे दूसरे दिन लड़ाकू वायुयानके पुर्जे बनानेके काममें लाई जा सकती है। कुछ खास तरहके औजारों तथा रुखानियोंकी (Gauges) सहायतासे यह खराद उतारनेकी मशीन एक या दो ही घंटेमें युद्धके लिये शस्त्र बनानेका कार्य प्रारम्भ कर सकती है यही तरकीब जर्मनीमें चुपके चुपके बहुत छिपा कर की गई थी।

सब तैयारियां करनेके पश्चात् जर्मनी उस दिनकी राह देख रहा था जब वे मशीनें जो किसी मोटरके पुर्जे बना रही थीं, मक्खन निकाल रही थीं, और देखनेमें ऐसी लगती थीं मानो वे तो मानवता की सुख वृद्धिके लिये ही कार्य कर रही हों, एक ही रातमें युद्धके विध्वंसकारी शस्त्रोंको बनाने लगीं। यही कारण था कि सन् १९३४ में जब यह अफवाह उड़ी थी कि जर्मनी वायुयान और टैङ्क बना रहा है तो फ्रांस और इंगलैंडने इसका विरोध नहीं किया था। वास्तवमें जर्मनी उस समय टैङ्क और वायुयान बनानेके स्थान पर वायुयान और टैङ्क बनाने के औजार और नाप बना रहा था।

सन् १९३६ के पश्चात् तो बराबर ये खबरें उड़ा करती थीं कि जर्मनी बहुत अधिक तेजीके साथ शस्त्र बना रहा है। सन् १९३८ में दूसरे देशोंके वायुयान-विज्ञाता कहते थे कि जर्मनी के पास फ्रांस और इंगलैंडके सम्मिलित वायुयानोंसे भी अधिक

वायुयान है। इसके अतिरिक्त टैङ्कों और तोपोंके विषयमें तो यह कहा जाता था कि वे असंख्य प्रति दिन जर्मनीकी फैक्टरियोंमें तैयार हो रहे हैं। ये खबरें इतनी बढ़ी चढ़ी थीं कि पहले इनको जर्मनीके दुश्मनोंने बिल्कुल झूठा समझा और हंस कर टाल दिया। किन्तु सच क्या था और कैसे वह सम्भव हुआ यह आज संसारको साफ साफ मालूम हो गया और इस ज्ञान प्राप्तिके लिये उसको बहुत अधिक कीमत देनी पड़ी है।

जिस प्रकार जर्मनी एक रातमें ही अपनी फैक्टरियोंमें वायुयान बनाने प्रारम्भ कर सकता है वैसे ही और देश अपने यहां क्यों नहीं कर सकते? जर्मनी यह जानता था कि कोई भी संधिके विरुद्ध कार्य करनेसे पहले उसके पास मशीन बनानेके औजार, खास नापें तथा होशियार कारीगर बहुत संख्यामें होने चाहियें। इसलिये जो भी नई फैक्टरियां खुलती थीं वहां पर तीन तीन बदली (अर्थात् चौबीसों घंटों) से कार्य किया जाता था। यह टैङ्क या वायुयान बनानेके लिये नहीं किन्तु मशीन बनानेके औजार बनानेके लिये; क्योंकि मशीन बनानेके औजार मनुष्य कृत ऐसी वस्तु हैं जो अपने जैसे और औजारोंको भी जन्म दे सकते हैं। एक खराद उतारनेकी मशीन दूसरी खराद उतारनेकी मशीनें बना सकती है; एक लोहेका समतल करनेका यन्त्र अपने से ६० गुने अधिक बड़े समतल करनेके यन्त्रको बना सकता है। एक सीधा छेद करने वाली मशीन अपनी जैसी और कितनी ही मशीनोंको बना सकती है। इस प्रकार इन मशीनोंसे बनी मशीनें फिर अपनी जैसी असंख्य और मशीनोंको बना सकती हैं।

जर्मनीकी इतनी शीघ्र तथा आश्चर्यजनक विजयोंका कारण यही औजार बनानेकी तरकीब है इन औजारों और खराद उतारने की मशीनों को देख कर दूसरे देश के लोग बहुत समय तक इनका ठीक ठीक अर्थ नहीं समझ सके थे। वे समझते थे कि जर्मनी अपने देशको सर्व सम्पन्न करनेके लिये कार्य कर रहा है।

लेकिन एक दिन इस कार्यका भी अन्त होगया और स्टोर तथा बड़ी बड़ी दुकानोंमें कागजमें लिपटे बिसातीके समानकी तरह जो नाप तथा नुकसे, रक्खे थे वे अपने ठीक स्थान पर पहुंच गये। उनकी सहायतासे वायुयान, टैङ्क, तोपें तथा अन्य अस्त्र बड़ी शीघ्रतासे बनने लगे। संसार अभी तक उन खबरों का मजाक ही उड़ा रहा था और जर्मनीकी फैक्टरियां १००० प्रतिमाहके हिसाबसे वायुयान तैयार कर रही थीं, और हजारों टैङ्कोंकी अनवरत कतार जर्मन फैक्टरियोंसे बाहर निकल रही थी।

जर्मनीको कुछ महीनोंकी आवश्यकता थी जिनमें वह इस प्रकार कार्य करके अपने विपक्षियोंके मौजमें बनाये गये शस्त्रोंसे अधिक शस्त्र तैयार कर ले। इसके लिये ६ महीनेका अवकाश काफी था किन्तु जर्मनीको करीब दो वर्ष मिल सके हैं जबकि उसकी फैक्टरियां युद्धस्थलसे पर्याप्त दूर लगातार कार्य कर सकीं। युद्ध प्रारम्भ होने पर फ्रांसने भी तैयारी शुरू की, पुरानी फैक्टरियां ठीक की गईं, कारीगर बुलाये गये, किन्तु तब तक बहुत देर हो गई थी और फ्रांसको पतनका मुंह देखना पड़ा।

जर्मनीके विज्ञाताओंने पहले ही हिसाब लगा लिया था कि अमरीका ज्यादासे ज्यादा कितने शस्त्र बना कर इंगलैंडकी मदद कर सकता है। इसके लिये जर्मनीमें पांच साल तक सारे राष्ट्रने प्रयत्न भी बहुत किया है।

किन्तु अमरीकाने भी पिछले युद्ध के परिणामोंसे कुछ सबक सीखा था। युद्धके प्रारम्भ होने पर तुरन्त ही अमरीका ने इंगलैंड तथा फ्रांसके लिये वायुयान बनाने प्रारम्भ नहीं किये थे। लगभग एक वर्ष तक अमरीकामें होशियार मिस्त्रियोंको इकट्ठा कराया गया था तथा अन्य स्थानों पर नये मिस्त्रियोंके लिये शिक्षा दी गई थी। इस समयमें टैङ्क तथा वायुयान बनाने के स्थान पर अधिकतर अमरीकाकी फैक्टरियोंमें मशीन बनानेके औजार बनाये गये थे। अमरीकाने फ्रांसका तथा फ्रांसकी फैक्टरियोंका शोचनीय अन्त देखा था, और उसका कारण खोजा था।

इस प्रकार जब अगले साल अमरीका १००,०००,०००,० रुपयेका लड़ाईका सामान बना सका तो जर्मन हाई कमान्डको बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि जर्मनीने अभी आने वाले दो सालों के बाद भी अमरीकाकी अधिकसे अधिक शस्त्र बनानेकी शक्ति ५००,०००,००० रु० की लगाई थी। उसके साथ मशीनके औजार बनानेमें अमरीका और भी प्रगति कर रहा है। ऐसा विश्वास है कि इस सालके अन्त तक अमरीका लड़ाईका सामान बनानेमें आश्चर्यजनक उन्नति कर लेगा।

जर्मनीका हाई कमान्ड यह जानता है कि एक नेता बहुत सी गलतियां कर सकता है और उनका कोई अधिक प्रभाव भी न पड़े; किन्तु दूसरे देशकी लड़ाईका सामान बनानेकी शक्तिके विषयमें की गई गलतीको ठीक करना आसान नहीं, यह संभव है कि जर्मन हाईकमान्डने अमरीकाकी इस शक्तिके विषयमें 'गलती' की हो और उसका अवश्यम्भावी फल भी उसे उठाना पड़े।

[पॉपुलर सायंस से]

गताङ्क से आगे

वायुयान

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम. ए. बी. एस-सी.]

डैक पर उतारने वाले वायुयान

इसके अतिरिक्त ऐसे भी वायुयान बनाये गये हैं जो दोनों ओरको चल सकते हैं तथा वायुमें एक स्थान पर खड़े रह सकते हैं। इनका नाम ओटो जाइरो (Outo giro) है। उनमें एक पंख तो आगेकी ओर होता है और एक पंख जहाजके ऊपर होता है। दोनों पंखोंके घूमनेकी परिधि आपसमें समकोण बनाती है।

ये वायुयान उड़ते और उतरते समय अधिक दूर तक नहीं चलते। इनको मकानोंकी छत पर उतारा जा सकता है। इन के उपयोग द्वारा पनडुब्बियोंका भय भी दूर किया जा सकता है।

वायुयान एक दम पृथ्वीकी धरातलसे २० इञ्च ऊंचा उछल जाता है उसके पश्चात जिस ओर उसे मोड़ना चाहो वह मुड़ सकता है। उतरते समय उसके दौड़नेके लिए केवल १० फुट जमीनकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारके वायुयान समुद्री जहाजोंके डेक पर बड़े मजेमें उतर और उड़ सकते हैं। ये जहाज काफी बड़े और शक्तिशाली भी होते हैं। कई २ बम और छोटी २ तोपें लेकर भी ये उड़ सकते हैं। इनमें मशीनगनें भी लगी रहती हैं जिनकी सहायतासे ये पनडुब्बियोंके डेक परके मार करने वाले लोगोंको भी मार कर छिपनेके लिये मजबूर कर देते हैं।

इनमें एक ऐसा यन्त्र लगा रहता है जिसके द्वारा ये पानी के नीचे चलने वाली पनडुब्बियोंका ठीक २ पता लगा लेते हैं और फिर गहराई तक धंसने वाले बमों द्वारा उस पर हमला कर देते हैं इस प्रकार इनसे बच कर निकल भागना पनडुब्बियों के लिए बहुत कठिन होजाता है।

इस महायुद्धमें सबसे अधिक विध्वंसकारी कार्य गोता खोर वायुयानोंने किया है। वायुयानसे हमला करनेके लिए तथा उस हमलेको सफल करनेके लिए कुछ बातोंकी आवश्यकता पड़ती है। इनमें सबसे मुख्य ठीक निशाने पर बम डालना होता है। यदि एक बम भी ठीक स्थान पर गिर गया तो वह सैकड़ों योंही डाले गए बमोंसे अधिक प्रभावशाली होता है।

इसके अतिरिक्त मुख्य बात यह है कि बम जितनी अधिक ऊंचाईसे डाला जायगा उतना ही वह अधिक नुकसान पहुंचाएगा। इससे पहिले उड़ते हुए हवाई जहाजसे बम डाले जाते थे। चलते हुए वायुयानसे जो बम छोड़ा जाता है वह ठीक नीचेके स्थान पर नहीं गिरता किन्तु जितनी देरमें वह जमीन तक पहुँचता है उस समय में वह वायुयानकी गतिसे आगेको भी चलता रहता है। इस कारण २०,००० फुट की ऊंचाई पर तथा २०० मील प्रति घंटा चलने वाले वायुयानसे छोड़ा हुआ बम पृथ्वी तक पहुँचते पहुँचते दो मीलके लगभग आगे चला जाता है। इसलिए किसी स्थान पर बम डालनेके लिए बमको उस स्थानसे दो मील पहिले छोड़ देना चाहिए। इसके साथ-साथ वायुकी गति भी बमके ठीक स्थान पर पहुँचने में बाधक होती है।

किन्तु गोताखोर वायुयानोंके द्वारा यह कठिनाई दूर हो जाती है। वायुयान बहुत ऊँचाईसे ठीक नीचेकी ओर निशाने की तरफ गिरता है और इस गिरनेके समयही वह बम छोड़ देता है। बमकी गति उस समय नीचेकी ओर होती है इसलिए ठीक निशाने पर वह पहुंच जाता है। इसके अतिरिक्त केवल चलते हुए वायुयानोंसे जो बम डाला जाता है उसकी नीचेकी गिरने की गति वायुयानसे छोड़नेके समय शून्य होती है इसके बाद पृथ्वीके आकर्षणके कारण वह गति प्राप्त कर लेता है किन्तु गोताखोर वायुयानमें बम छोड़ते समय वायुयानकी गति भी नीचेकी ही ओर होती है। इस प्रकार गोताखोर वायुयानसे छोड़ा हुआ बम नीचेको गिरते समय प्रारम्भसे ही वायुयानकी गति लिए हुए होता है इसलिए जब यह निशाने पर गिरता है तो अधिक गतिसे गिरता है जिसके कारण बम फटनेसे पहिले ही पर्याप्त स्थानको बरबाद कर देता है जो कुछ भाग बचा रहता है वह बम फटने पर समाप्त हो जाता है।

ऊंचाई पर सांस लेनेका प्रबन्ध

मामूली ऊँचाई पर उड़ने वाले वायुयानों में सांस लेने की दिक्कत नहीं होती किन्तु जो वायुयान बहुत ऊँचाई तक उड़ते है उनमें यह कठिनाई उपस्थित होती है।

पृथ्वीके पास की वायु तो बहुत अधिक भारी तथा घनी

हैं। इसका कारण वह बोझ है जो प्रति वर्ग इंच वायुके दबाव के कारण होता है। जितना हम ऊपरको चलते जाते हैं उतना ही प्रति वर्ग इंच वायुका दबाव कम होता चला जाता है। कम दबाव वाली हल्की वायुमें सांस लेनेसे आदमी जल्दी हॉफ जाता है. यही कारण है कि मैदानोंके चलने वाले लोग जब अधिक ऊँचे पहाड़ों पर चलते हैं तो बहुत जल्दी थक जाते हैं।

हल्की हवामें सांस लेनेसे ऐसा मालूम होता है जैसे आधा ही सांस लिया हो। यह बात तो १०,०००, वा १५,००० फुटकी ऊँचाई पर ही अनुभव होने लगती है किन्तु जो वायुयान इससे भी ऊँचाई पर उड़ते हैं उनमें तो वायु इतनी पतली और हल्की होती है कि उसमें ठीक प्रकार सांस नहीं लिया जा सकता।

इसके लिए पहिले गैसमास्कोंका इस्तेमाल किया जाता था किन्तु इसमें बड़ा झंझट रहता था। अब इस प्रकारकी युक्ति काम में लाई जाती है कि वायुयान के अन्दर वायु का दबाव उतना ही रहता है जितना वायुका साधारणतया पृथ्वी पर रहता है। इसके लिए वायुयानके परोंमें इस प्रकारके छेद होते हैं कि वे एक खास दबाव तक वायुको अन्दर खैंचते रहते हैं। वसेही अधिक गतिसे चलने वाले वायुयानोंके परों पर हवाका बहुत अधिक दबाव पड़ता रहता है किन्तु इस रीति से जो हवा अन्दर आदमियोंके बैठनेके स्थान पर होती है वह एक सीमासे अधिक बाहर नहीं हो सकती।

वायुयान द्वारा डाक ले जाना

यद्यपि दूर स्थित देशोंको तो अब डाक प्राय: वायुयानों द्वारा ही जाती है किन्तु देशके भीतर छोटे छोटे शहरोंमें डाक पहुँचाने में कठिनाई पड़ती है। एक तो प्रत्येक छोटे शहरमें ऐसे स्थान नहीं बनाए जा सकते जहां पर वायुयान उतर सकें। इसके अतिरिक्त प्रत्येक छोटे शहर में उतारने और चढ़ानेमें भी बहुत काफी समय व्यर्थमें नष्ट हो जाता है।

इसके लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि वायुयानको प्रत्येक स्थान पर उतारनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस कार्य के लिए ओटो जाइरो (Outo giro) नामके वायुयान काम में लाए जाते हैं। इन वायुयानोंमें एक पंखा ऊपर होता है जिसके कारण वायुमें ही ये एक स्थान पर खड़े हो सकते हैं। जिस स्थानसे डाक लेनी होती है वहां पर आकाशमें ही यह वायुयान खड़ा हो जाता है। वायुयानमें एक नीचेको खुलने वाली खिड़की होती है इससे ही उस स्थान पर देने वाली डाक डाल दी जाती है। जो ले जाने वाली डाक होती है उसके लिए इस खिड़कीमें से ही एक तार लटका रहता है उस तार में ही नीचेसे डाकखानेका आदमी डाकका थैला लगा देता है।

किन्तु इसमें भी वायुयानको एक स्थान पर खड़ा रहना पड़ता है जिसके कारण काफी समय खराब हो जाता है। इसको दूर करनेके लिए ऐसी तरकीब की गई है कि चलते हुए ही वायुयान डाक डाल देता है और ले लेता है।

इस कार्यका कुछ अनुमान मेलट्रेनमें चलते हुए लाइन क्लियर देनेके कार्यसे हो सकता है। जिस प्रकार ४० या ४५ मील फी घंटा चलने वाली रेलगाड़ी लाइन क्लियर ले लेती है और डाल देती है उसी प्रकार २०० या ३०० मील प्रति घंटा चलने वाले ये वायुयान डाकका थैला ले लेते हैं तथा डाल देते हैं।

इस कार्यके लिए काममें लाए जाने वाले वायुयानोंमें नीचे को खुलने वाली एक खिड़की होती है। इस खिड़कीसे ही एक खास प्रकारके डिब्बेमें बन्द करके डाकका थैला नीचेको डाल दिया जाता है। इस डिब्बेमें बन्द करनेसे एक तो थैला अधिक इधर उधर उड़ता नहीं, साथ ही थैले में बन्द लिफाफों और पारसलोंको कुछ नुकसान नहीं पहुँचता।

उड़ते-उड़ते डाकका थैला लेनेका कांटा।

वायुयानके नीचेकी खिड़कीसे यह कांटा एक तार द्वारा लटकाया जाता है इसमें डाक का थैला अटक जाता है इसे फिर खींच लेते हैं।

डाक ले जानेके लिए ३० फुटके दो खम्भे ६० फुटकी दूरी पर गढ़े रहते हैं। इन दोनों खम्भोंके बीचमें एक तार लगा रहता है। इस तारसे ही डाकका थैला बंधा रहता है। उड़ते हुए वायुयानसे नीचेकी खिड़कीमें होकर एक तार लटका रहता

है। इस तारके आखरी सिरे पर एक कांटा लगा रहता है। चलता हुआ वायुयान इतनी ऊंचाईमें तथा ऐसे मार्गमें चलता है कि यह कांटा उस तारमें अटक जाता है। इस प्रकार थैला और तार उस कांटेमें उलझ कर वायुयानके साथ चलने लगते हैं। वायुयानमें बैठा हुआ आदमी उस तारको खैंच कर डाक का थैला ले लेता है।

चिट्ठियोंको स्थानके अनुसार लगानेका कार्य भी वायुयान में ही होता रहता है। इस प्रकार डाक बहुत शीघ्रतासे देशके भीतर पहुँचाई जा सकती है।

उड़ते हुए वायुयानसे डाक का थैला फैंकनेकी विधि

चित्र कांटे तथा डब्बे का

इस प्रकारके डिब्बेमें रखकर डाक का थैला वायुयान पर से फेंक देते हैं इस डिब्बेके कारण थैलेके पत्र और पार्सल गिरनेसे खराब नहीं होते।

कुछ वर्ष पहिले रूसमें उत्तरी ध्रुव पर एक बेधशाला तथा जहाजी अड्डा बनानेकी योजना की गई थी, इसको पहिले पहिल संसारके लोगोंने केवल शेखचिल्लीकी कल्पना मात्र ही सोचा था, क्योंकि उत्तरी ध्रुव पर बर्फके प्रत्येक हिस्सेमें बर्फके तूफान चलते रहते हैं। इसके साथ जीवन निर्वाहकी कोई भी सामग्री वहां प्राप्त नहीं हो सकती।

इस प्रयत्नमें बहुतसे वायुयान बर्फसे दब कर समाप्त हो गये किन्तु अन्तमें रूसके लोग ठीक उत्तरी ध्रुव पर एक जहाजी अड्डा तथा बेधशाला बनानेमें सफल हुए।

उत्तरी ध्रुव पर बनी बेधशाला (Odservatory)

इस बेधशालाके बनानेके लिए सारा सामान वायुयानों द्वारा पहुँचाया गया था। अब भी वहां जो कार्य करने वाले लोग हैं उनके लिए खानेकी सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं इन्हीं वायुयानों द्वारा पहुँचाई जाती हैं। यह बेधशाला एक प्रकारसे संसारकी छत पर स्थित है। अपनी स्थितिके कारण अवलोकन कार्यके लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है, इसके साथ साथ वायुयानोंका अड्डा सारे उत्तरी सागर पर स्थित बन्दरगाहोंकी रक्षा तथा देख भालके लिए अत्यन्त महत्व पूर्ण सैनास्थल है।

वायुयानों द्वारा दावाग्नि शांत करना

जब जंगलोंमें दावाग्नि लगती है तो मीलों तकके जंगल जल कर समाप्त हो जाते हैं। इस अग्निके बुझानेमें ही जंगलके अफसरोंकी तारीफ समझी जाती है। अग्निको बुझानेके लिए बहुत अधिक आदमियोंकी बहुत काफी आवश्यकता पड़ती है।

अभी तक अग्निको बुझानेकी कोई युक्ति प्राप्त नहीं हो सकी है केवल इतना किया जाता है कि अग्निको फैलनेसे रोका जाय। इसके लिए जिस भागमें आग लग जाती है उस भाग के चारों ओर य जिधरकी हवा होती है उस भागमें कुछ दूर चल कर (यह वायुकी गति पर निर्धारित रहता है, अगर वायु तेज है तो अग्नि शीघ्रतासे बढ़ेगी इसलिये अधिक दूर जाकर काम करना होगा) वनका भाग काट कर साफ कर दिया जाता है। साफ किए गए भागमें सूखी पत्तियां तक भी नहीं रहने दी जातीं।

इसके बाद अग्नि लगने वाले भागके साफ किए जाने वाले छोरमें आग लगा दी जाती है। दोनों ओरसे बढ़ने वाली अग्नि बीचमें मिलकर स्वयं शांत हो जाती है।

घने जंगलोंमें गाड़ियों के लाने ले जाने के मार्ग नहीं होते इसलिये आदमी तथा सामान बड़ी कठिनाईसे ठीक स्थान पर पहुंच पाता है कभी अग्नि चारों ओरसे आकर आदमियोंको घेर लेती है और उस समय बहुतसे मजदूरोंकी जान चली जाती है।

यह कार्य अब वायुयानों द्वारा किया जाता है। आदमी खाने पीनेका सामान, पेड़ काटनेके औजार इत्यादि सब वायुयानों द्वारा शीघ्रतासे ठीक स्थान पर पहुंचाए जाते हैं क्योंकि इनके मार्गमें पेड़ोंकी डालें बाधा उत्पन्न नहीं करती हैं।

आग बुझाने वाले आदमी एसबेस्टसके कपड़े पहन कर छतरियों द्वारा नीचे उतरते हैं—ये छतरियां बड़ी मजबूत रेशम

की बनी होती हैं अगर उतरते समय आदमी पेड़की डालोंमें अटक गया तो यह छतरी सहसा फटती नहीं है। काम करने वालोंके लिए पानी तथा खानेका सामान भी वायुयानों द्वारा ही पहुंचाया जाता है। इस प्रकार जो कार्य बड़ी कठिनाई से बहुत अधिक समयमें होता था वह बहुत जल्दी होता है जिसके कारण जंगलके विभागको करोड़ोंका लाभ हुआ है।

केवल आदमीकी शरीर शक्तिकी सहातासे वायुमें उड़ना

इस प्रकारका प्रयत्न किया जा रहा है कि जिस प्रकार पैर चलानेसे साईकिल चलती है उसी प्रकार वायुयान भी चल सके इस प्रकार बिना किसी इंजनकी सहायताके आदमी उड़ सकेगा। अभी तक इस प्रकारके प्रयोगमें एक वैज्ञानिक ३/४ मील तक उड़ सका है आशा है इसमें और अधिक उन्नति हो सकेगी।

वायुयानों द्वारा खेती को नष्ट करने वाले कीड़ों को मारना

अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशोंमें हमारे देश के समान छोटे छोटे खेत नहीं हैं किन्तु कई कई एकड़के बहुत चौड़े खेत हैं। इस प्रकारके खेतोंको भापके इंजिनों द्वारा ही जोता तथा बोया जाता है, इनमें फसल जब होती है तो बहुत अधिक होती है। किन्तु कभी कभी खेतीको नष्ट करने वाले कीड़े भी हो जाते हैं। उस समय वे कीड़े बहुत अधिक हानि पहुंचाते हैं और सारी खेतीमें छूतकी बीमारीके समान फैल कर सारी फली हुई खेतीको नष्ट कर डालते हैं।

इन कीड़ोंसे रक्षा करनेके लिए इन खेतों पर कीड़ोंको मारने वाले घोल छिड़कने चाहिए। मनुष्यों द्वारा यह कार्य आसानीसे नहीं हो सकता क्योंकि कभी कभी खेती इतनी घनी होती है कि खेतके बीचमें पहुंचना असम्भव हो जाता है इसके साथ साथ इस प्रकार इन घोलोंको छिड़कनेमें समय भी अधिक लगता है।

यह कार्य बहुत सुगमता और शीघ्रतासे अब वायुयानोंकी सहायतामें किया जाता है। घोल और छिड़कने वाले फव्वारों को लेकर वायुयान इन खेतों पर बहुत नीचे उड़ते हैं और घोल को छिड़कते चले जाते हैं।

यह तो वायुयानोंकी उपयोगिताके विषयमें कुछ वर्णन हुआ अब उनके द्वारा किस प्रकार विध्वंसकारी कार्य किया जाता है तथा उससे किस प्रकार रक्षा हो सकती है इसे अगले अंकमें पढ़ियेगा।

नीम

[लेखक—श्री रमेश वेदीआयुर्वेदालङ्कार]

समान्य उपयोग

भारतवर्षमें नीम बोने का इतना अधिक प्रचलित रिवाज होनेका कारण यह समझा जाता है कि यह वायुको शुद्ध रखता है और मलेरियाके मच्छरोंको दूर रखता है इसके पत्तों में से गुजर कर आने वाली हवा स्वास्थ्यके लिए अच्छी मानी जाती है। नीचे गिर कर उड़ते हुए पत्ते सम्भवतः छोटे हानिकारक जीवोंको आस पास न पनपने देते हों। अत्युत्तम पथवृक्षके रूपमें इसकी ख्याति वस्तुतः ठीक ही है, गरमियोंमें जब और वृक्ष नग्न होते हैं यह शीतल छाया देता रहता है, इसलिये भी यह बहुत बोया जाता है।

संयुक्त प्रान्तमें मैंने कई स्थानों पर नीम वृक्षोंको विशाल पथवृक्षों के रूपमें देखा है। घेरमें ये पांचसे दस फुट तक पहुंच गये हैं। चौड़ी सड़कके दोनों ओर दूर तक लगे हुए और ऊपर जाकर सब मिल कर एक लम्बी हरी रेखा बनाते हुए ये सुन्दर, शीतल छाया देने वाले पथवृक्ष राहगीरों के लिए बृहत् आरामदायक होते हैं। इनके फल पक कर जमीन पर गिरते रहते हैं। गांवकी स्त्रियां अपने प्रातः कालीन दैनिक कार्यको समाप्त करके दोपहरको छोटे बालकों सहित इन पेड़ोंके नीचे आ जाती हैं। फल पकनेके मौसम—जुलाईमें छोटी छोटी टोकरियों और वृक्षोंकी टहनियोंसे बनाई झाड़ुओंके साथ इन्हें वृक्षोंके नीचे बुहार कर निमोली इकट्ठा करते हुए देखा जा सकता है। ये सब इकट्ठी की गई निमोलियां एक केन्द्रमें ले जाई जाती हैं और इनमेंसे तेल निकाल लिया जाता है। तेल दो विधियोंसे निकाला जाता है—(१) कोल्हूमें पेल कर या (२) मींगीको कूट कर और पानीमें उबाल कर।

गरीब लोग तेलको जलानेके काममें लाते हैं, पर यह धुआं बहुत बुरी तरह देता है। कीड़ोंसे बचानेके लिए वृक्षोंकी छालों को प्रायः इससे पोत दिया जाता है उदर कृमिहर और कीटाणुनाशकके रूपमें इसका बहुत मान है; यह तेल मद्राससे लंका को जाता है।

बीजोंको मनकोंकी तरह पिरोकर मालाएं बनाई जाती हैं।

पके फलोंको बड़े शौकसे खाते हैं। बीजोंमें कीड़े मारनेका गुण होनेसे सिन्धमें स्त्रियां बीजोंको पानीमें पीस कर सिर धोती हैं। जिससे जूएं और लीखें मर जाती हैं। साबुनोंमें भी तेल डाला जाता है।

नीमकी लकड़ी टिकाऊ होती है। बिना सुखाई लकड़ीका भार पचपनसे सत्तर पौण्ड और सूखी हुईका भार पैंतालीससे बावन पौण्ड प्रति घन फुट होता है, एक घन इंचकी व्यत्यस्त Transverse शक्ति २·५५से ५·१२५ टन है। मोटे वृक्षोंसे ली गई लकड़ी अच्छी होती है इसमें पेटियों और बक्सोंकी लकड़ी जैसी कठोर होती है। खुली रहने पर अन्त: काष्टका रंग अधिक गहरा हो जाता है। चीरते हुए इसमेंसे एक गन्ध आती है जो मोहागनीसे बहुत कुछ मिलती है, लकड़ी जलाने पर यह गन्ध नहीं आती। गरीब श्रेणीके ग्रामीणोंकी झोपड़ियोंमें खम्भों और शहतीरोंके लिए, गाड़ियों और पहियों, हलों, तेल पेरनेके कोल्हू में, जहाजों और लकड़ीके औजारोंको बनानेके लिए इसकी लकड़ी का उपयोग होता है। संयुक्त प्रान्तमें ढोलकियोंके लिए नीमकी लकड़ी अच्छी समझी जाती है। मारवाड़में नीमका ऊखल और मूसल अच्छा समझा जाता है। दक्षिणी भारतमें फर्निचर बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। इमारती लकड़ीके लिए भी यह अच्छी होती है। कड़वी होनेके कारण इसमें घुन, दीमक व अन्य कीड़े नहीं लगते। सम्भवत: इसीलिए हिन्दु लोग इसे पवित्र मानते हैं और इसकी मूर्तियां बनाते हैं। इस प्रसिद्ध वृक्ष की लकड़ी बाजारमें बड़े परिमाणमें प्राय: नहीं आती।

पत्तोंमें पोटास और स्फुरिका का अधिक अंश होनेसे दक्षिणीय भारतमें ये हरे खादके रूपमें इस्तेमाल किये जाते हैं। बीजों की खली भी खादके काम आती है। ऊंटोंके चारोंके लिए पत्तोंका उपयोग होता है। वे इसे चावसे खाते हैं पर बकरियां और दूसरे पशु सुगमतासे नहीं खाते। कोरोमण्डलके तट पर मछली पकड़नेमें प्रलोभनके रूपमें शाखाएं समुद्रमें डाल दी जाती हैं। मछलियां अण्डे रखनेका स्थान ढूंढ़ती हुई उनके पास आ जाती हैं। परन्तु ऐसा कड़वा पौदा क्यों इतना आकर्षक होगा यह समझ नहीं आता।

पत्ते धार्मिक उत्सवोंमें काम आते हैं। विवाहोत्सवोंमें तोरण पर नीमके पत्तोंका प्रयोग होता है मारवाड़में विवाहके बाद जब दूलहिन घरमें आती है तो प्रथम दिन विवाहित दम्पति एक खेल खेलते हैं जिसे सोट सोटकी बोलते हैं इसमें बहुधा नीमकी टहनी ही बीचका उपकरण बनती है। बरातमें नाई नीमकी टहनी अपने साथ रखता है मृतकके दाह संस्कारके बाद जब लोग श्मशानसे वापिस आकर उसके सम्बन्धीके घर आश्वासन देने जाते हैं तो विदाईके समय द्वार पर खड़े नाई या ब्राह्मण के हाथमें स्थित नीमकी टहनीसे एक एक पत्ता तोड़ते जाते हैं। पत्तेको चख कर मुंहका स्वाद जरा कड़वा करके फेंक दिया जाता है। कितना आश्चर्य है प्रेमियोंके प्रेमालापका वाहन और जीवनकी सबसे दु:खद समझी जाने वाली घटनाका प्रकटीकरण नीमको ही करना पड़ता है।

शरीरके किसी अंग विशेषमें विद्यमान रोगमें और सर्वाङ्ग व्यापी रोगोंमें भी नीमकी हरी कोमल शाखाओंसे रोगको झाड़कर निकाल देनेका रिवाज भारतमें सब जगह अशिक्षित ग्राम्य समाज में है। उनकी दृष्टिमें रोगोंको उत्पन्न करनेमें कारण समझे जाने वाले भूत और पिशाच इससे भाग जाते हैं। जब किसीको चेचक या दूसरा फैलने वाला रोग होता है तो इसी ख्यालसे आक्रान्त रोगीके मकानके दरवाजे पर नीमकी डाली बांध दी जाती है। बिच्छूके डंक मारने पर तथा अन्य छोटे जहरीले कीड़ों के काटने पर इसकी शाखाओंसे विष झाड़ते हुए मैंने देखा है परन्तु कष्टमें जरा भी कमी होती हुई नहीं नजर आई।

ताजी व नई सुखाई पत्तियां कृमियोंके आक्रमणसे बचाती हैं इसीलिए पुस्तकों, कागजों या कपड़ों पर झींगुर दीमक आदि कीड़े लगनेसे बचानेके लिए इन्हें उनमें दबा कर रखा जाता है। परन्तु ये इस गुणमें कपूरसे बहुत घटिया हैं। काफी समय बाद इनका असर हट जाता है और ये निष्क्रिय हो जाती हैं। इसलिए बार बार बदल कर नये पत्ते रखते रहना चाहिए।

पत्तोंके धुएंकी गन्ध बहुत अरुचिकर होती है यह कई छोटे जीवोंके लिए घातक है। कमरेको रोग कीटाणुओंसे रहित करने के लिए हरे पत्तोंका धुआं कमरेमें कुछ देरके लिए बन्द कर दिया जाता है। शहदकी मक्खियों और भुनगोंके लिए भी यह धुआं हानिकारक होता है। जलते हुए कोयलोंके ऊपर छोटी छोटी शाखाओं समेत हरे पत्तोंको रख दें और इसमेंसे उठते हुए कड़वे धुएंको इनके छत्तेके नीचे लगातार कुछ देर तक जाने दें। धुएंकी दम घोटने वाली कड़वी गन्धसे वे कुछ तो वहीं मर जायंगे और शेष अपना स्थान छोड़ कर भाग जायंगे। इसमें सफलता बहुत देरमें मिलती है।

———o———

भिन्न भिन्न ज्वरोंमें भोजनसे हानि व लाभ

[लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

ज्वर शरीरमें उत्पन्न होने वाली एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीरको काफी हानि पहुंचती है। एक दो दिन भी किसी व्यक्ति को ज्वर हो जाय तो वह अपने में इतनी निर्बलता का अनुभव करता है कि कई दिन चारपाईसे नहीं उठ सकता; शायद इसीलिए आयुर्वेदज्ञ इसे रोगोंका राजा कहते हैं।

ज्वरका रूपः—समस्त प्राणियों का जीवन–व्यापार एक निश्चित उत्ताप पर चल रहा है। मनुष्य भी एक निश्चत उत्ताप पर अपना जीवन व्यापार चलाता है। यह उत्ताप जब किसी भी कारणसे बढ़ जाता है तो इसे ज्वर कहते हैं।

जब तक थर्मामीटरका आविष्कार नहीं हुआ था वैद्य शरीर को स्पर्श कर तथा नाड़ीकी बढ़ी हुई गतिको देख कर इसकी स्थितिको मालूम करते थे। किन्तु हम उस समय यह नहीं समझ सकते थे कि शरीरमें उत्तापकी मात्रा कितनी रहती है और वह जब बढ़ जाती है तो कहां तक बढ़ जाती है? इस समस्याको फारन हीट थर्मामीटरने हल कर दिया। यह थर्मामीटर बतलाता है कि मानवीय शरीरका ताप प्रायः ९८॥वें रहता है। यदि यह एक दो डिग्री भी बढ़ जाय तो शरीरका कार्य व्यापार अस्त व्यस्त हो जाता है और कहीं ५-६ डिग्री बढ़ जाय तो मृत्युका भय दिखाई देने लगता है। इसी तरह यदि शरीरका उत्ताप घट कर ९५ डिग्रीसे अधिक नीचे चला जाय तो उस समय भी मृत्यु सिर पर नाचने लगती है।

शरीरके उत्ताप बृद्धिका कारणः—जब इस बातका ठीक ठीक पता लगा कि शरीरका व्यापार एक निश्चित उत्ताप पर चलता रहता है किन्तु जब कभी वह बढ़ जाता है और ज्वर का रूप धारण कर लेता है तो इससे जीवन संकटमें पड़ जाता है तब इस बातकी खोज होने लगी कि यह उत्ताप क्यों और कैसे बढ़ जाता है?

शरीर में उत्तापोत्पादक कारणः—मनुष्य जो भी खाद्य रूपमें पदार्थ खाता है उस वस्तुके मुंहमें पहुंचते ही मुंहसे लार निकल कर उस खुराकमें मिलने लग जाती है। इसी तरह जब वह भुक्त पदार्थ पेटमें पहुंचता है तो वहां आमाशय ग्रंथिका रस निकलकर उसमें मिलता है। इससे आगे जब अन्न क्षुद्रान्त्रमें जाने लगता है तो वहां उसमें आकर क्लोम रस मिलता है। इस तरह क्षुद्रान्त्रमें भी कुछ रस निकल कर उस भुक्त द्रव्यमें मिलते रहते हैं। इन शारीरिक रसोंके मिलनेका अभिप्राय क्या? कोई भी खाद्य पदार्थ पेटमें पहुंच कर किसी अग्नि द्वारा नहीं पकता प्रत्युत उसमें इन रसों के मिलने से रासायनिक परिवर्तन होने लगता है। इन भिन्न-भिन्न रसोंमें यह शक्ति होती है कि वह भुक्त द्रव्यमें मिलते ही उसमें रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न कर दे। इसी रासायनिक परिवर्तनके कारण भुक्त द्रव्योंके अंशांश टूट फूट कर घुलनशील व ऐसे खपनशील पदार्थमें परिवर्तन हो जाते हैं जिन्हें शरीर ग्रहण करनेके योग्य हो जाता है। भुक्त पदार्थमें यह रासायनिक परिवर्तन मुंहसे आरम्भ होकर उस समय तक चलता रहता है जब तक वह मल मार्ग द्वारा शरीरसे बाहर नहीं निकल जाता। इस रासायनिक परिवर्तन में भुक्त पदार्थ के अनेक ग्राह्य अंश ऐसे द्रव रूपमें परिवर्तित हो चुके होते हैं जिसके पहले रूपको सान्द्रव (Cyme) कहते हैं; दूसरेको कांदव (Chyme) कहते हैं। यह कांदव जब क्षुद्रान्त्रके आचूषकों (Epitheliam Tissue) द्वारा चूसा जाकर लसिका वाहनियोंमें पहुंचता है तो इसको 'रस' संज्ञा प्राप्त होती है। लसिका वाहनियों द्वारा यह रक्तमें पहुंचता है, वहां यह हृदयकी गतिके कारण रक्त परिभ्रमणके साथ समस्त शरीरमें पहुंचता है। इस परिभ्रमणमें यह रस कलाओं द्वारा शरीरके एक एक कोष तक रमता रहता है और इसके शरीरमें रमनेसे अन्य समस्त धातुओं का अपने अपने स्थानमें निर्माण होता रहता है।

भुक्त पदार्थ में जो रासायनिक परिवर्तन आरम्भ हुआ था उसके सांद्रव व कांदव बन जाने पर भी वह बराबर जारी रहा और जब वह रस रूपमें आया तब भी उसमें उक्त परिवर्तन बन्द नहीं हुआ बल्कि रक्तमें पहुंचने पर वहां उसमें वृद्धि हुई, क्योंकि रक्तमें आने पर उस रससे ऊष्मीकरण क्रियाका अधिक सम्बन्ध होजाता है।

यह स्मरण रखने वाली बात है रासायनिक परिवर्तन चाहे शरीरमें हो रहा हो या शरीर से बाहर, परिवर्तनके समय उत्तापकी मात्रा अवश्य बदलती है। बहुधा उत्ताप बढ़ता है, कहीं कहीं

घटता भी है।

शरीरमें इस तरहके रासायनिक परिवर्तनसे काफी उत्ताप संजनित होता रहता है। संजननकी यह क्रिया दिन रात्रि एकसी रहती है। ऐसी दशामें उत्तापको शरीरमें बढ़ना चाहिये। अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ है कि शरीरके उत्तापको नियन्त्रणमें रखनेके लिये मस्तिष्कमें एक विशेष कार्य कारी स्थान है जिसकी प्रेरणासे शरीरमें कुछ ऐसी गतियां व परिवर्तन होते रहते हैं जिससे शरीर का उत्ताप बढ़ने नहीं पाता। उस केन्द्रके द्वारा ही शरीरमें उत्ताप विसर्जन, अवरोधन, सम्वर्धन आदि का कार्य सुव्यवस्थित रूपमें चलता रहता है, तभी तो सदा शरीरका उत्ताप एक निश्चित मात्रामें बना रहता है।

हां! जब कभी कोई आन्तरिक या बाह्य कारण एकाएक ऐसा उस उत्ताप नियन्त्रक केन्द्र पर पड़ता है जिससे उसमें व्याघात आ जाता है तो शरीरमें बढ़ने वाला उत्ताप उसके नियन्त्रण में नहीं रहता, उस स्थितिमें उत्तापकी मात्रा बढ़ जाती है जिसे ज्वर कहते हैं।

उत्ताप वर्द्धक कुछ विशेष कारण:—ज्वरकी परिस्थितिको देख कर पहिले यह निश्चय करते थे कि ऋतु परिवर्तन और मिथ्या-आहार, विहारसे शरीर संरक्षक कुछ मूल पदार्थों में विकार आ जाता है इसीलिए शरीरके भीतरकी अग्नि बाहर निकल आती है तभी शरीर तपने लगता है। किन्तु अनुसन्धान से सिद्ध हुआ है कि वास्तवमें ऐसी कोई बात नहीं देखी जाती। भिन्न-भिन्न ज्वरों का विशेष कारण भिन्न भिन्न जाति के जैव (Bacillus) होते हैं जिनका ठीक ठीक पता सूक्ष्म दर्शक यन्त्रोंके आविष्कारके बाद लगा। यह जैव शरीरके शत्रु हैं। उदरपूर्तिके लिये जिस तरह हम अनेकों उपाय काममें लाकर इस जीवन युद्धके लिये अपने स्पर्द्धियों = प्रतिद्वन्द्वियोंसे लड़ते झगड़ते और अनेक तरहके दांव-पेंच खेलते हुए संसारमें जीवन यापन करते हैं, इसी तरह यह जैव भी करते हैं। शरीरके भीतर जब कोई रोग कारक या ज्वरोत्पादक जैव घुस आता है और शरीरके अवयवों को मार कर उन्हें खानेकी चेष्टा करता है या शरीरमें विद्यमान धातुओंमें से किसीको खानेकी चेष्टा करता है उस समय शरीर या शरीरके संरक्षक अवयव खामोश बैठे हुए तमाशा नहीं देखते, प्रत्युत जिस समय कोई जैव शरीरमें घुस आता है और उसका पता शरीर रक्षकोंको लगता है वह उसी समय वहां पहुंचकर उसको नष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु, उनका नष्ट करना शरीरकी क्षमता शक्ति तथा रक्षकोंकी युद्ध कुशलता पर निर्भर है। शत्रु जो आक्रमणकारी होता है अथवा जिसका काम डाकजनी है वह एक तो स्वयं हौसले वाला होता है दूसरे वह सदा ही अच्छे शस्त्रोंसे सुसज्जित रहता है इसी कारण प्रायः वह सफल हो जाता है।

फुफ्फुसप्रदाह, क्षय, मन्थरज्वर, विषमज्वर आदिरोगों के जैव इतने अधिक बलशाली होते हैं कि प्रतिशत ८०-९० मनुष्योंको अपना आखेट बना लेते हैं। विरले ही कोई सक्षम मनुष्य होते हैं जो इनके आखेटसे बच जाते हैं।

शरीरमें जैवोंका केन्द्र और उनका प्रभाव—जब कोई रोगकारी जैव शरीरमें पहुंच जाता है—मुंह, नाक, कान, त्वचा, क्षत, आदि द्वारा किसी भी मार्गसे पहुंचे—वह शरीरके प्रत्येक स्थान या अङ्ग उपाङ्गमें जम कर वहीं स्थान बना लेता हो, ऐसी बात नहीं है। प्रत्युत प्रत्येक रोग कारक जैव शरीरमें घुस कर किसी विशेष उपयुक्त स्थानको ढूंढते रहते हैं और उसे अपना केन्द्र बनाते हैं। जब तक उन्हें उपयुक्त स्थान न मिले वह अच्छी तरह बढ़ नहीं सकते। खोजोंसे भिन्न भिन्न जैवों के केन्द्रोंका अच्छी तरह पता लग गया है। विषम ज्वरी जैव रक्त कणोंमें और यकृत प्लीहामें अपना केन्द्र बनाते हैं। मन्थरी जैव क्षुद्रान्त्रमें अपना केन्द्र बनाते हैं। फुफ्फुस प्रदाही जैव कण्ठ, श्वास प्रणाली और फुफ्फुस को अपना केन्द्र बनाते हैं। इसी तरह समस्त रोगोत्पादक जैवोंके शरीरमें भिन्न भिन्न केन्द्र होते हैं। शरीरका जो भी अङ्ग इन रोगोत्पादक जैवोंका केन्द्र बनता है वह शरीर के और अंगोंकी अपेक्षा पहिले विकृत हो जाता है। उसमें शोथ, रक्ताधिक्यता, काठिन्य तथा अन्य अनेकों विकारके रूप उत्पन्न हो जाते हैं। जब कोई अंग किसी रोग कारक जैवोंका इस तरह आखेट बनता है तो इस स्थितिमें उसके स्वाभाविक कार्य व्यापारमें व्याघात आ जाता है। उस दशामें वह फिर अपना कार्य ठीक सम्पादन नहीं कर सकता। किन्तु जब किसी जैवी कारणसे शोथ काठिन्य आदि उत्पन्न होकर उन जैवी विषों का प्रभाव शरीर व्यापी हो जाता है और उससे उत्तापोत्पादक केन्द्र प्रभावित होकर उत्ताप पर नियन्त्रण नहीं रख सकता तो शरीरमें उत्तापकी वृद्धि होती है।

उत्तापका प्रभाव—जब किसी ऐसे कारणोंसे उत्तापकी वृद्धि होती है तो इस स्थितिमें शरीरमें कई प्रकारके परिवर्तन देखे जाते हैं।

कुछ जैवी ज्वर ऐसे हैं जिनका प्रभाव रसोत्पादनी ग्रंथियों पर अधिक पड़ता है इससे पाचकरसोंका उत्पादन घट जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि ज्वर कालमें बहुधा लाला ग्रंथियों का रस घट जाता है, इसी तरह उदरग्रंथि रसोंकी भी मात्रा घट जाती है। जिन ज्वरोंमें उक्त पाचक रसोंकी मात्रा घट जाती है उन ज्वरोंमें भोजनकी पूरी मात्रा देना सिद्धान्ततः ठीक नहीं दिखाई देता, क्योंकि जब यह देखा जाता है कि किसी भुक्त पदार्थमें लाला रस न मिले तो उसकी सारी माड़ी शर्करामें नहीं बदलती, इसी तरह जब उदरदरी व क्लोम ग्रंथिरस व पित्तरस उसमें न मिलें तो अन्नजिदीय व स्नेही पदार्थोंसे बनने वाला सान्द्रव व कांदव नहीं बन सकता। जब यह बात है तो उस ज्वरमें जिसमें उक्त पाचक रसोंकी मात्रा घट गई हो—भोजनका पचन किस तरह हो सकता है? यह विचारणीय बात है।

अब देखना यह है कि किन ज्वरोंमें ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है।

क्षय ज्वर—क्षय कीटाणुओंसे जब ज्वर उत्पन्न होता है तो इन कीटाणुओंका प्रभाव अधिकतर या तो फुफ्फुस पर होता है या लसिका ग्रंथियों पर या अस्थियों पर। इस ज्वरके होने पर पाचक ग्रंथियां बिलकुल निरोग रहती हैं और समस्त पाचक रस अपनी पूरी मात्रामें बनते रहते हैं। इसीलिए क्षय ज्वरमें आरम्भसे लेकर अन्त तक बराबर भोजन पचानेकी शक्ति पाई जाती है, किन्तु विषम ज्वरमें यह बात नहीं देखी जाती, विषम ज्वरका जब आरम्भ होता है इसके प्रभाव से पाचक ग्रंथियां, यकृत, क्लोम; प्लीहा, आदि ग्रंथियां अधिक प्रभावित होती हैं, इसीलिये आरम्भमें इस ज्वरके होने पर भोजनसे रुचि हट जाती है। परन्तु यह ज्वर यदि मन्द पड़ जाय या तृतीयक, चातुर्थिक होजाय तो उस स्थितिमें पाचक रसोंकी मात्रा ज्वरके आवर्त होते रहने पर भी धीरे-धीरे ठीक हो जाती है। चातुर्थिक या तृतीयक रोगी पेट भर भोजन कर लेता है और उसे पचा डालता है। इसीलिये इस ज्वरमें आरम्भको छोड़ कर पूरा भोजन दिया जा सकता है।

किन्तु मन्थर ज्वर (मोतीझरा) में इससे भिन्न स्थिति देखी जाती है। मन्थरी जैवोंका केन्द्र क्षुद्रान्त्र कला है। आंतों की कलामें जब उक्त जैवोंके प्रभावसे प्रदाह होता है तो सबसे पहली बात यह होती है कि आन्त्रिक गति घट जाती है। जैसे जैसे ज्वरका वेग बढ़ता जाता है वैसे वैसे पाचक रसवाही ग्रंथियोंका कार्य भी घटता जाता है। यहां तक कि लाला ग्रंथि व उदरग्रंथिरसोंकी मात्रा आधी भी नहीं रह जाती। इससे भिन्न आन्त्रिक प्रदाहके कारण आन्त्रिक गति भी घट जाती है। भुक्त पदार्थ उदरसे जब क्षुद्रान्त्रमें पहुंचते हैं तो उसकी आंकुचन प्रसार गतिकी कमीके कारण सान्द्रव वहीं अधिक समय तक रुक कर आगे बढ़ता है, इसका परिणाम यह होता है कि उस सान्द्रवमें अयोग्य सन्धान उठ खड़ा होता है और उसमेंसे कई वायवीय (Gases) का संजनन होने लगता है। यदि यह सन्धान बृहदान्त्रमें जाकर हो तो वहां वायवीय पदार्थ उत्पन्न होने पर उनका निःसरण आसानीसे हो जाता है, वह अपान वायु मार्गसे होकर निकल जाते हैं, किन्तु जब वही वायवीय पदार्थ क्षुदान्त्रमें बनें तो उनका निःसरण जल्दी नहीं होता इसीलिये उनके रुकने से प्राय: आध्मान होजाता है। मन्थर ज्वरमें इसी पचन दोष की विकृतिसे आध्मान अतिसारादि उपद्रवोंका प्रादुर्भाव होता है और प्राय: देखा जाता है कि जिस रोगीको आध्मान अतिसार का उपद्रव खड़ा हो जाता है उसको संभालना कठिन हो जाता है। वायवीयोंके संजनन होने पर सबसे भयंकर बात यह होती है कि उत्तापकी मात्रा सहसा बढ़ जाती है। ज्वर जहां १०२-१०३ डिग्री तक रहा करता था अब वह १०४-१०५-१०६ तक जा पहुंचता है।

कुछ चिकित्सकोंके विचार हैं कि ज्वरमें भोजन देने पर ऐसा कोई उपद्रव नहीं होता। भोजन इसलिये देते हैं कि रोगी निर्बल न हो जाय।

ज्वर होने पर शरीर का मांसल भाग या अन्नजिदीय (Proteids) अंश बहुत नष्ट होता है इसके संरक्षणके लिये भोजनकी व्यवस्था आवश्यक समझी जाती है। यह ठीक है कि जब शरीर क्षीण हो रहा हो, तो उस समय उसकी क्षीणताको रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिए किन्तु इसके साथ यह भी तो देखना आवश्यक है कि रोगीकी पचन क्रिया ठीक भी है, या नहीं। यदि पाचक ग्रन्थि रस बन रहे हैं और भुक्त द्रव्य अपनी साधारण गतिसे आगे बढ़ रहा है तब तो भोजन देने पर वह पच जायगा, उससे रस बनेगा और शरीर की क्षय-पूर्ति (Metabolism) का कार्य बहुत अच्छी तरह होगा। किन्तु जब पाचक ग्रन्थि रसोंकी कमी पड़ जाय, मुंहमें किसी वस्तुके डालने पर लाला रसका निर्गमन न हो तो शार्करी या माड़ी जातीय (Carbohydrates) पदार्थ किस तरह शर्करामें बदल सकते

हैं। शार्करी पदार्थ का पूर्णतया पचन आगे क्लोमरसके मिलने में होता है किन्तु जिस तरह लाला रस घट जाता है उसी तरह उदरीय अन्य क्लोमादि रस भी घट जाते हैं।

इच्छा शक्तिका रस ग्रन्थियों पर प्रभाव

इस बातको तो समस्त चिकित्सक मानते हैं कि इन पाचक ग्रन्थियों पर इच्छा शक्तिका भी बहुत प्रभाव पड़ता है भोजनको देखते ही मुंहमें लार आने लगती है। इसी तरह जब वह भोजन इच्छा होने पर खाया जाता है तो अन्य पाचक रसोंका स्राव भी यथा समय—जब भोजन उनकी सीमामें पहुंचता है—होने लगता है किन्तु जिस ज्वरीको दूध पीनेकी इच्छा ही नहीं है उसे दूध जबरदस्ती दिया जाय तो क्या इस इच्छा शक्तिके अभावमें और बिना रसोंके उसमें मिश्रण हुए उस दुग्धका ठीक तौर पर पचन होगा? बहुतसे चिकित्सकोंकी राय है कि दुग्ध तरल भोजन है यह जल्दी जाकर पच जाता है। यह बात बहुत सीमा तक ठीक नहीं जंचती; क्योंकि दूध जब उदरदरीमें पहुंचता है तो वहां अम्लीय रसोंके प्रभावसे वह फट जाता है, उसका जलीय अंश भिन्न तथा पनीर या छेना भिन्न हो जाता है और उसके छोटे-छोटे थक्के बन जाते हैं। जब दूध फट कर छोटे छोटे थक्का रूपमें आ जाता है तब आमाशयिक रसके प्रभाव में आकर उसका अन्नजिन (Protin) सान्द्रवमें बदलता है। ऐसी दशा होने पर यह तरल रूपमें न रहा। हां दुग्धके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि इसमें थोड़े थोड़े समस्त वह भोजनीय द्रव्य विद्यमान रहते हैं जिनकी शरीरको आवश्यकता रहती है तथापि जल का भाग दुग्ध में अधिक रहता है और उनकी मात्रा थोड़ी। दुग्ध एक तरल खाद्य पदार्थ है इसको ही अधिक देना चाहिए, यह धारणा सही नहीं जंचती। दलिया, साबूदाना, जौ, अण्डे, आदिमें अधिक जल डाल कर और इनका मिश्रण बनाकर जब इनको तरल कर लिया जाता है तो इनकी भी वही स्थिति हो जाती है जो दुग्ध की।

भोजन देनेसे क्या ज्वर नहीं बढ़ता—सिद्धान्त की बात तो यह है कि किसी भी ज्वर के रोगी को जिसके भीतर पाचक रस बन रहे हैं उसे भोजन दिया जाय और वह बराबर पचे तो इसका ज्वर वृद्धि पर कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु जब किसी ज्वररोगीके शरीरमें पाचक रसोत्पादनी ग्रन्थियां अपना पूरापूरा काम नहीं करतीं और पाचक रसोंकी मात्रा घट जाती है या वह निर्बल रस बनाती हैं और भुक्त द्रव्योंका आगे बढ़ना भी ठीक क्रमसे समय पर नहीं होता तो परीक्षाओंमें देखा गया है कि ऐसी दशामें उदरमें गया हुआ भोजन १॥-२ घण्टा रहनेके स्थानमें—६—८—१० घण्टा तक वहीं पड़ा रहता है। आंतोंमें उसका आगे बढ़ना भी इसी तरह रुक रुक कर होता है। इस स्थितिमें उस भुक्त पदार्थमें—जब कि उचित मात्रामें पाचक रस न मिले हों अन्य ऐसे सन्धान (Ferments) होने लगते हैं जिनसे कई अयोग्य अग्राह्य वस्तुओं का निर्माण होता है। यदि वायवीय पदार्थों का संजनन हो रहा हो और वह रक्तमें पहुंचें या अन्य अयोग्य अग्राह्य रस आचूषकों द्वारा शोषित होकर रक्तमें पहुंच जाएं—जो वेग से उष्मीकरण क्रिया के लिए उपयुक्त हों तो शरीर का उत्ताप अवश्य ही बढ़ जायगा; इसको कोई शक्ति रोक नहीं सकती। इसका प्रमाण मन्थरज्वर या मोतीझरामें स्पष्ट दिखाई देता है। जब भोजन दें और वह न पचे तो आध्मान अवश्य होता है और ज्वर बढ़ जाता है। तब रोगीकी स्थिति खराब होने लगती है।

फुफ्फुस प्रदाहमें भोजन—फुफ्फुस प्रदाह या न्यूमोनियांमें इस रोगके कीटाणुओंका प्रभाव फुफ्फुस भाग या वायु प्रणाली पर होता है और पाचक रस ग्रन्थियों से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं होता तथापि यह देखा जाता है कि इस ज्वरमें भी पाचक रसों की मात्रा घट जाती है। उदरदरी की सङ्कोच प्रसार गतियां भी शिथिल पड़ जाती हैं। परीक्षाओं से पता चलता है कि उदर भागकी श्लैष्मिक कला में भी कुछ प्रदाहके चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। यह भी देखा गया है कि इस रोगके विषका प्रभाव श्लैष्मिक कला पर अधिक होता है इसीलिये उनका कार्य व्यापार शिथिल पड़ जाता है और दुग्धादि देने पर श्लेष्म की मात्रा अधिक बढ़ जाती है।

इस रोग की अवधि पूर्ण होने के समय साधारणतया मल निःसरण कराते रहने पर कोई १२-१३ दिनके बाद एक विशेष प्रकारका श्यामवर्ण लहेसदार पिच्छिल मल निकलते देखा जाता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मन्थरज्वरवत इस ज्वरमें भी अन्न प्रणालीकी श्लैष्मिक कलामें अवश्य कुछ न कुछ विकार आता है तभी पाचन प्रक्रिया ठीक नहीं रहती इसीलिये फुफ्फुस प्रदाहमें भोजन देते समय सावधानी रखनी चाहिए।

उपवास और ज्वर—भोजन देनेका अभिप्राय यही

होता है कि रोगी किसी तरह निर्बल न होने पावे। किन्तु हमारा दिया हुआ भोजन रोगी के शरीर में बनने वाले पाचक रसों के अभावमें पच जायगा, ऐसा तो होता नहीं। भोजनको पचाने या यों कहो उसे एक रूपसे दूसरे रूपमें ले जानेके लिये पाचक रसोंका उसमें मिश्रण आवश्यक होता है और जब तक पाचक रसोंकी ठीक-ठीक मात्रा उस भुक्त द्रव्यमें न मिले तब तक उससे उचित व शरीरग्राह्य पदार्थ नहीं बनते जब तक शरीरके योग्य रसका निर्माण न हो तब तक उससे नष्ट हुई शरीर के धातुओंकी पूर्ति सम्भव नहीं।

किसी भी संचारी ज्वरमें इस बातको सबसे प्रथम चिकित्सक को देखना व समझना जरूरी है कि रोगीके भीतर पाचक ग्रंथियां अपना पूरा काम कर भी रही हैं या नहीं। यदि वह कर रही हैं, तो भोजन देनेमें लाभ है। यदि वह नहीं कर रहीं, तो भोजन देनेमे हानि है। क्योंकि जब भुक्त द्रव्य पचेगा नहीं तो शरीरके भीतर ऐसे अग्राह्य पदार्थकी मात्रा और बढ़ेगी जिसकी शरीरको आवश्यकता नहीं। यही अग्राह्य पदार्थ जब शरीर में रुकते या बढ़ते हैं तभी शरीर असमर्थ होकर रोगोंसे घिर जाता है। यद्यपि शरीरके मलवाही स्रोत अपना काम करते रहते हैं तथापि जब दूसरी ओर उन मलोंको बढ़ानेका आयोजन किया जाय तो उनका पूर्णतया निःसरण नहीं होता। इसीलिये लंघन कराना एक प्रकारसे पिछला काम समाप्त करनेके लिये शरीरको अवसर देना है। आयुर्वेद ने इस बात को सिद्धान्त रूप में बतलाया है कि "ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्" ज्वर होने पर आरम्भमें लंघन करावे।

लंघनके पक्षमें मानसिक तथ्य—जब मनुष्यका ध्यान एक ओर लगा होता है तो उसी कामको वह ठीक तौर से कर सकता है किन्तु जब उसका ध्यान अन्य कामों की ओर खिंच जाय तो कई काम एक साथ अच्छी तरह नहीं किये जा सकते। उस दशामें तो और कठिनता उत्पन्न हो जाती है जब उसके लिये किसी ऐसे कामका बोझ सिर पर आ पड़ता है जिसका वह अभ्यासी न हो।

रोग या ज्वर शरीर के लिये ऐसी बुरी स्थिति है जिसमें पड़ कर शरीरका कोई एक अंग ही नष्ट नहीं होता प्रत्युत शरीरके प्रत्येक अवयव नष्ट व क्षीण होते चले जाते हैं। जहां शरीरकी मांस पेशियां क्षीण होती हैं उसके साथ ही पाचक रसोत्पादनी ग्रन्थियां भी क्षीण होती चली जाती हैं। जिसका तन घट रहा हो, जिसके सिर पर विपत्तिके बादल मंडला रहे हों उस स्थिति में वह क्या ठीक अपना कार्य उसी पूर्व जैसी स्थितिमें करता रहेगा? यह कभी सम्भव नहीं।

भयंकर व संचारी ज्वरोंके होने पर शरीरकी समस्त मानसिक शक्तियों का ध्यान उस रोगको हटानेकी ओर खिंचा होता है इसलिये शरीरमें होने वाले सब कार्य व्यापार ढीले पड़ जाते हैं। जब ज्वर होने पर मनुष्य चलने फिरने बोलने तकसे लाचार हो जाता है उस स्थितिमें क्या उसके शरीरके भीतर कार्य करने वाले और अंग, उपांग शिथिल व लाचार नहीं हो सकते? फिर उस दशामें कोई यह चाहे कि शरीरसे पूरा काम लिया जाय तो भला यह कब सम्भव है। इसीलिये हमारे आचार्योंने जो ज्वरारम्भमें लंघनका सिद्धान्त स्थापन किया है उसका अभिप्राय यही है कि शरीरको—जबकि वह एक कष्टका सामना कर रहा है उस समय उसको दूसरा ऐसा अधिक काम मत दिया जाय ताकि उसका ध्यान ज्वरसे हट जाय और संभलनेके लिये अवसर न मिले। अन्य कामोंका बोझ उस पर डालना उसको शीघ्र न संभलने देना है। प्राकृतिक चिकित्सक भी इसी सिद्धान्त के आधार पर यह मत स्थापन कर चुके हैं कि ज्वर जैसे शीघ्र नाशकारी रोगोंकी दशामें शरीर को लंघन करा कर अवसर देना अपने बचाव शक्तिको बढ़ाना है। लंघनसे शरीरकी क्षमता शक्ति बढ़ती है; घटती नहीं। जब पशु तक इस नैसर्गिक चिकित्सा का आश्रय लेते हैं तो मनुष्य इसका आश्रय लेकर किस तरह भूल कर रहा है? यह बात सिद्धान्ततः किसी चिकित्सक को समझनी चाहिए।

शराब पीनेकी आदत

कैसे पड़ती है ? क्या नुकसान है ? कैसे छूट सकती है ?

खाना और पीना दोनों वस्तुएं जीवन धारण करने के लिये अति आवश्यक हैं। अधिक खाने, अपथ्य खानेसे आदमीको हानि उठानी पड़ती है, इसी प्रकार अधिक या कम पीने तथा न पीने योग्य वस्तुओंके पीनेसे भी आदमीको बहुतसे रोगोंका शिकार होना पड़ता है। अन्य जीवधारियों के समान मनुष्य केवल पानीसे ही सन्तुष्ट नहीं होता, उसने ऐसी वस्तुओंका भी आविष्कार कर लिया जिससे वह उत्तेजित हो सके। शराब उनमेंसे एक है।

किसी मनुष्यको शराब पीनेकी आदत कैसे पड़ती है तथा उससे क्या हानि होती है ? इस प्रश्न पर ही विचार करना है। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये यह याद रखना चाहिये कि शराब पीने वालोंमें शराब पीनेसे पहले—'शराब पीनेकी इच्छा' रहती है। वे पहले अपने मनमें सोचते हैं कि एक बार इसको पीकर देखा जाय। किन्तु जैसे आदमी और बातोंमें एक दूसरे से नहीं मिलते हैं इसी प्रकार कैसे यह 'इच्छा' उत्पन्न होती है इसमें भी भेद रहता है। इसके अतिरिक्त भी कुछ कारण हैं जिनके कारण हम शराब पीना शुरू करते हैं—जैसे मित्रोंके साथ बैठकर उनकी बार-बार खुशामदके कारण 'यार आज तो एक घूंट भर लो'।

हममें से बहुतसे ऐसे हैं कि जिनके मनमें शराबके लिये इच्छा ही नहीं होती। कुछ ऐसे हैं कि जिन्होंने एक आध बार पी भी है तो वे उससे और अधिक नफरत करने लगे हैं और फिर जीवनमें कभी नहीं पी। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उन मनुष्योंका नैतिक आदर्श बहुत ऊंचा है या वे बहुत अधिक सदाचारी हैं। जैसे बहुतसे लोगोंको खानेमें बहुत सी तरकारियां अच्छी नहीं लगती इसी प्रकार उन्हें यह अच्छी नहीं लगती, इससे अधिक कुछ भी नहीं।

कुछ लोग शराब कभी-कभी पीते हैं और इसी प्रकार कितने सालों तक पीते रहते हैं और कुछ ऐसे हैं कि वे रोजाना पीते हैं। कुछ बहुत थोड़ी सी पीने पर नशेमें चूर हो जाते हैं और बहुतसे कई कई गिलास पी लेने पर भी ठीक ठीक बात चीत करते रहते हैं। ज्यादा शराब पीकर ठीक ठीक बात कर सकना बहुत दिनों तक पीनेका फल हो, सो बात हमेशा नहीं होती। आदमीकी शारीरिक बनावट तथा सहन शक्ति पर निर्भर रहता है कि उसे कितनी शराबमें नशा होगा।

शराब नुकसान तो हर एक को ही करती है किन्तु जो मनुष्य कमजोर स्नायु-मण्डल (Nervous system) के हैं उनके लिये यह बहुत खतरनाक है। असलमें जो कुछ पागल हैं, जिनका दिमाग कमजोर है, जिनके सिरमें कभी गहरी चोट लगी है उनके लिये शराब जहर है। वे लोग बहुत थोड़ी मात्रासे ही उत्तेजित हो जाते हैं। जितनी शराबसे किसी मजबूत आदमीको गर्मी भी न आए, उसमें वे लोग आपेसे बाहर हो जाते हैं। बहुतसे पागल लोगोंकी जांच की गई तो मालूम हुआ कि उनके सिरमें कभी गहरी चोट लगी थी इसके बाद उन्होंने शराब पीनी शुरू की जिसके फल स्वरूप वे पागल हो गए।

जो लोग तुनुक मिजाज होते हैं या चिड़-चिड़े होते हैं उन्हें बहुत थोड़ी शराबसे ही नशा हो जाता है। शराब पीनेकी इच्छा होती है, ऐसे मनुष्यों को अपने मन तथा इन्द्रियों पर बिलकुल भी काबू नहीं होता इसलिये एक बार शराब पी लेने पर उनकी नैतिक शक्ति और भी कम हो जाती है वे फिर पीते हैं, फिर नैतिक शक्ति (Moral force) कम होती—होती अन्तमें वे पूरे पियक्कड़ हो जाते हैं।

स्त्रियोंमें शराब पीनेकी आदत बुरे संसर्ग, रंज, परेशानी, अकेलेपन, खाली रहना अर्थात कुछ भी काम न करना, दिमागी खराबी, और शराब पीने की सुविधा इन कारणों से पड़ती है। मनुष्योंमें शराब पीनेकी आदत पड़ती है—मेहनतके बाद थकान को दूर करनेके लिये या परेशानीको भूलनेके लिये। कुछ लोग कमजोर होनेके कारण अपने शरीरमें शक्ति लानेके लिये इसे पीते हैं—जब इन लोगोंकी दवा की गई और वे स्वस्थ्य हो गये फिर उन्होंने शराब पीना भी छोड़ दिया।

हम लोग शराब पीना बहुत खराब समझते हैं और शराबी से प्रायः नफरत करते हैं। यदि ऐसा कायदा बना दिया जाय कि शराब घर बिलकुल खुले स्थानोंमें हों जहां पर रास्ते चलते आदमियोंकी निगाह भी पड़ती हो तो बहुतसे लोग शराब पीना

छोड़ दें। इसके साथ-साथ यह भी होना चाहिये कि कोई भी शराब अपने घर नहीं ले जा सकता। रेस्टोरेण्टमें अलग-अलग मेज होने पर बहुतसे शराब पीने वाले लोग शराब नहीं पीते हैं अधिकतर आदमी शराब घर ले जाकर या तो अकेले पीते हैं या अपने जैसे और दो चारोंके साथ। लेकिन यह पार्टी भी जब शराब पीती है तो बिलकुल छिपकर।

पुराने पियक्कड़ अधिकतर वे मनुष्य होते हैं जो किसी प्रेम में निराश हुए हों या इसी प्रकार की और वेदनामय भावनाओं या तकलीफों को भूलना चाहते हैं। जो लोग केवल उत्तेजनके लिये पीते हैं वे प्रायः खास खास मौके पर ही शराब पीते हैं।

जो मनुष्य अपनी कठिनाइयों तथा अन्दर बैठी बातों को भूलनेके लिये शराब पीते हैं वे कमजोर दिलके कम चरित्र वाले मनुष्य होते हैं, इसीलिये हर बार जब उन पर कोई कठिनाई पड़ती है तो वे शराब पी लेते हैं। यह नशा उन्हें थोड़ी देर के लिये शांति दे देता है, इसीलिये फिर वे शराब पीते हैं, कठिनाई सहने की तथा मुसीबतोंका सामना करनेकी उनकी शक्ति और कम हो जाती है और वे पूरे पियक्कड़ बन जाते हैं। दूसरी बार जब वे शराब पीते हैं तो उस समय एक तो पहली बार शराब पीनेकी याद आती है, दूसरे एक बार गिर जानेके कारण उनकी मानसिक शक्ति कमजोर हो जाती है और तीसरे उनकी कठिनाइयों का मुकाबला करनेकी शक्ति भी कम हो जाती है। इसके बाद वह मनुष्य केवल इसलिए ही शराब नहीं पीता कि उसे शराबके नशेमें आनन्द आता है बल्कि इसलिए पीता है कि जिससे वह भूला रहे और एकचित्त होकर विचारने न लगे—क्योंकि यदि वह अपनी कठिनाइयों तथा अपनी दशा पर विचारने लगेगा, अपनी गिरावट को देखने लगेगा तो उसे और भी अधिक बेचैनी होगी इसलिए जब कभी वह अपनी गिरावट पर सोचने लगता है, और उसका मन उसको धिक्कारने लगता है उसे इस आदतको छोड़नेके लिये बेचैन करता है तो वह मूर्ख उस परेशानी को भूलनेके लिए भी शराब को पी लेता है। वह बार बार प्रतिज्ञा करता है कि शराब नहीं पियूंगा, किन्तु बार बार वह अपनी प्रतिज्ञाओंको तोड़ता है। जिस समय वह अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने चलता है उस समय उसके दिमागमें तर्क होने लगता है वह सोचता है कि 'यह खराब चीज है' साथ ही साथ उसे ऐसे प्रलोभनोंकी याद आती है कि उसका मन पीनेको करता है—वह जितना ही इन प्रलोभनोंके विरुद्ध तर्क करता है उतने ही ये प्रलोभन उस पर अपना असर जमाते चले जाते हैं। अन्तमें बिचार-शक्तिको बिलकुल भूल एक जोशमें आकर वह चल देता है उस समय सोचता नहीं, सोचना चाहता ही नहीं और फिर शराब पीकर अफसोस करता है।

कुछ लोग देखा देखी भी शराब पीना शुरू कर देते हैं। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है इस प्रकार शराब पीने वालोंमें भी पहले 'इच्छा' शराब पीनेकी होती है। यह देखा गया है कि जिस परिवारमें सबसे बड़ा आदमी बहुत शराब पीता था उसी कुटुम्बके और लोग शराबसे बहुत अधिक घृणा करते थे। छोटे छोटे बच्चे तक शराबको छूते नहीं थे।

शराब पीनेके मामलेमें स्त्रियां आदमीसे कुछ भिन्न प्रकृति की होती हैं—उनकी शराब पीनेकी इच्छा नहीं होती और अधिकतर शराबसे घृणा करती हैं, किन्तु यदि वे एक बार शराब पीलें तो शराब पीने की इच्छा उनमें जाग्रत हो जाती है और फिर छूटनी भी मुश्किल हो जाती है। कुछ स्त्रियां जो शराबकी आदि बन गई हैं वे इसको पीने पर बहुत शरमाती हैं और अधिकतर छिपकर इस प्रकार पीती हैं कि किसीको इसका पता ही न लगे, जब बहुत दिनों तक पीनेके कारण उनको आदत पड़ जाती है और दूसरों को सन्देह भी होने लगता है तो वे तरह तरहके बहाने बना कर इस सन्देहको दूर करना चाहती हैं। कभी कभी इस सन्देहको दूर करने के लिये वे पर्याप्त समय तक पीती भी नहीं। परन्तु जब पता ही पड़ जाता है तो वह अपने कार्य के लिये बहुत अधिक शरमाती हैं। कुछ कारण बताती हैं कि क्यों वह पीनेके लिये मजबूर हुई, आगे कभी न पीनेके लिये कसम लेती हैं, लेकिन कमजोर आदमियोंकी तरह उनकी प्रतिज्ञायें सब झूठी निकलती हैं।

शराब पीनेसे आदमीकी लगातार काम करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। मालूम तो ऐसा होता है कि हम शराब पीकर बहुत ज्यादा काम करते हैं किन्तु वास्तवमें ऐसा होता नहीं। कुछ देरके लिये कार्य करनेकी शक्ति अवश्य बढ़ जाती है किन्तु थोड़ी देर बाद ऐसी गिरावट होती है कि जितना साधारण अवस्थामें वह काम करता था उससे बहुत कम काम वह कर सकता है, यह तो मस्तिष्क शक्ति पर उसका प्रभाव पड़ा। शारीरिक शक्ति पर तो इससे भी बुरा प्रभाव पड़ता है। शराब पीनेसे ऐसा मालूम होता है कि हम ताकतवर हो गये किन्तु यह ताकत हमारे खूनके गर्म हो जाने के कारण आती है, शरीरमें ताकतवर वस्तु

की अधिकके कारण नहीं आती । इसी कारण गहरा नशा करने वालोंका जब नशा उतरता है तो उन्हें हाथ पैर हिलाने तक में तकलीफ होती है।

जब शराब पी जाती है तो उत्तेजना होती है, हमारा जी जरा चुस्त सा लगता है, बोलने चालने में बिलकुल निडर होकर बोलते हैं और ऐसा मालूम होता है कि हमें बोलनेमें झेंप या संकोच नहीं है । मनुष्यमें एक विचार शक्ति होती है जो बार बार उसे आगाह करती रहती है, जब भी वह कोई असाधारण कार्य करता है तो यह शक्ति उसे सतर्क करती रहती है, किन्तु शराब पीनेमें मस्तिष्क शक्तिके साथ-साथ यह भी कम हो जाती है और वह जो कुछ कार्य करता है बेधड़क बिना विचारे करता है । इसी कारण बहुतसे लोग शराब पीनेके बाद जब बोलना शुरू करते हैं तो बोलते ही चले जाते हैं और जब हंसते हैं तो हंसते ही चले जाते हैं । जब वे बात करते हैं तो कभी कभी ऐसी बात कह कर भी यह समझते हैं कि हमने बड़ी होशियारी और मजाककी बात कह डाली और बड़े जोरसे कहकहा लगा कर हंसते हैं । अगर किसीसे ऐसा आदमी हाथ मिलावे तो बड़े जोरोंसे बार बार हाथको दबायेगा, बिल्कुल अनजान आदमीसे वह अपने जीवन की करुण कहानी सुनानेके लिए सदा उत्सुक रहता है किन्तु जब सुनाने लगता है तो बीचमें न तो क्रम रहता है और न उसे अपनी कहानी ही पूरी पूरी याद रहती है ।

शराब पीनेके बाद या तो आदमी खूब खुश होता है या बहुत रंजीदा होता है या उसे बहुत क्रोध आता है ये सब बातें उस आदमीकी विचार धारा पर निर्भर रहती हैं । अगर पहलेसे ही खुश है तो अधिक खुश होगा अगर उसे गुस्सा आरहा हो तो और अधिक गुस्सा बढ़ जायगा ।

नशेके शुरूमें जो मस्ती सी और ताकत सी आती मालूम पड़ती है वह धीरे धीरे कम होने लगती है, हाथ पैर शिथिल पड़ने लगते हैं और चलनेमें वह आदमी लड़खड़ाने लगता है । कुछ आदमी एक कुर्सी पर बैठ कर बड़ी अच्छी तरह बात चीत करते रहते हैं और पता नहीं पड़ता कि इन्होंने शराब पी रखी है लेकिन ज्यों ही वे चलनेका प्रयत्न करते हैं वे लड़खड़ाने लगते हैं और कभी कभी तो खड़े भी नहीं हो सकते, खड़े होते ही गिर पड़ते हैं । कभी कभी इस दशासे पुलिस वालोंको झूठा बनना पड़ता है । एक पुलिस वालेने एक शराबीको लड़खड़ाते हुए देखा और उसकी रिपोर्ट पुलिसमें की, उसी समय जब वहांके अफसर ने उससे जिरह की तो वह बिल्कुल ठीक ठीक उत्तर देता रहा । पुलिस अफसरने सिपाहीको डांट लगाई और वह आदमी छोड़ दिया गया ।

शराबके बाद जो उत्तेजना सी प्रतीत होती है वह केवल शराबकी उत्तेजनशक्ति के ही कारण नहीं होती बल्कि शराब से हमारे मस्तिष्ककी विचार शक्ति के कम होने, निर्णय तथा तर्क शक्तिके कम होजानेके कारण होती है । इस विचार शक्तिके कम होनेके कारण मनुष्यकी तामसी प्रकृतियां उत्तेजित हो जाती हैं । इसलिये यदि कोई लगातार शराब पीता रहता है तो उसकी सात्विक प्रकृतियां नष्ट हो जाती हैं, उसे अपने आप पर काबू नहीं रहता । इतना ही नहीं: उसकी वे कमजोरियां जो उसने बड़े अभ्यासके पश्चात् करीब करीब मिटा सी दी थीं अब उसके छिपानेसे भी नहीं छिपतीं और सब कोई उन्हें जान जाता है ।

जब मनुष्य शराब पीनेकी असाध्य दशा पर पहुंच जाता है तो उसमें बहुत सी खराबियां आ जाती हैं । वह झूठ बोलने लगता है, स्वाभिमान जो उसमें पहले था नष्ट हो जाता है और जो बातें पहले वह सतर्कताके साथ करता था अब उनके करनेमें वह लापरवाह हो जाता है । वह अपने लाभ हानिका ध्यान नहीं रखता । अपने कुटुम्ब तथा बाल बच्चोंके सुख तथा भलाईका उसे जरा ध्यान नहीं रहता वह यह देखते हुए भी कि उसके बच्चे और स्त्री उसके कारण दुःखी हैं, उसके कारण उन्हें जिल्लत और शर्म उठानी पड़ती है किन्तु फिर भी उनका जरा भी ख्याल न करके वह अपनी बुरी आदतको जारी रखता है । प्रायः वह अपनी स्त्रीकी चीजोंको भी शराबकी बोतल खरीदनेके लिये चुरा कर बेच आता है । इससे भी अधिक उसका मिजाज बड़ा चिड़चिड़ा हो जाता है, अपना गुस्सा वह अपनी स्त्री और बच्चों पर उतारता है । अपनी स्त्रीको पीटना, बच्चोंके साथ जानवरोंका सा व्यवहार करना तथा अपने साथियों को जरासी बात पर ही मारनेको तैयार हो जाना शराबियोंकी रोजानाकी सी बातें हैं ।

सुरापानसे उत्तेजना होती है और कामवासना प्रदीप्त होती है । बहुत से युवापुरुष इस शराब के कारण जननेन्द्रिय संबन्धी बहुतसे रोगोंसे ग्रस्त हो जाते हैं और इस उत्तेजनाके कारण बहुत सी स्त्रियां वंध्या या बांझ हो जाती हैं । शराब पीना और चरित्र हीनता दोनों एक मनुष्यमें साथ साथ पाये जाते हैं । स्त्रियोंमें तो ये दोनों और भी अधिक मिल कर रहते हैं । जब आदमी की विचार शक्ति कम होती है तो उसके आचरण भी प्रायः

दूषित हो जाते हैं। स्त्रियां जो शराब पीनेसे पहले बड़ी सच्ची और ईमानदार थीं; शराब पीनेके बाद अपने पतियोंको भी धोखा देने लगीं और उनमें झूंठ बोलनेकी आदत बहुत बढ़ गई। वे शराब पीनेके लिये कोई भी काम कोई चालाकी करनेसे वे बाज नहीं आतीं। स्त्रियोंके सम्बन्धमें एक बात याद रखनेकी यह भी है कि स्त्रियां प्रायः पतिकी कठोरता और कृतघ्नताके कारण शराब पीनेकी आदत डालती हैं।

शराब पीनेके कारण कोई आदमी बहुतसे पाप कर सकता है जैसे काम सम्बन्धी, पाशविक तथा आत्महत्या, किन्तु शराबी पहलेसे ही पापी हो सो बात नहीं है। कभी कभी कोई मनुष्य कोई पाप करनेसे पहले शराब पीले तो इसका मतलब यह नहीं कि उसने यह काम शराब पीनेके कारण किया है; हां! यह जरूर है कि शराब के कारण वह पाप और बेधड़क होकर कर सकता है।

यदि किसी पुराने पियक्कड़से यह कहा जाय कि भई तुम शराब पीना धीरे-धीरे कमकर दो और इस प्रकार आदत छूट जायगी तो यह बिल्कुल गलत बात है। वह आदमी शराबके मामलेमें नैतिकताका बिल्कुल ध्यान नहीं रखता और जब कभी भी उसे शराब मिल सकती है—चाहे चुरा कर हो—वह उसे पी जाता है। इस प्रकार धीरे धीरे कम करके छोड़नेका कार्य केवल वे लोग कर सकते हैं जिन्हें अभी आदत नई पड़ी है।

इसके अतिरिक्त यदि पीने वालेको मनोवैज्ञानिक ढंग पर अर्थात् उसकी इच्छा को या तो कम करके या उसके मन को किसी दूसरे विषयमें लगा कर ठीक करनेके स्थान पर जबरदस्ती रोका जाय तो इसका असर अस्थाई होगा। पीने वालेके मनमें अन्दर ही अन्दर इस बाहरी रुकावटके प्रति विरोध भावना जाग्रत होगी और अवरोध जितना ही अधिक कठोर होगा उतना ही अधिक विद्रोह उसकी आत्मामें उत्पन्न होगा। यही कारण है कि बलात्मक अवरोध प्रायः असफल रहता है। पीने वालेको जब भी अवकाश मिल जाता है वह पीनेसे बाज नहीं आता।

इसलिये किसी मनुष्यकी शराब पीनेकी आदतको छुड़ानेके प्रयत्न करनेसे पूर्व यह मालूम कर लेना चाहिये कि उस मनुष्यने किस प्रकार और क्यों तथा कबसे शराब पीनी शुरू की है? फिर यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि शराब पीने वाला मनुष्य छोड़नेके समयमें ऐसी परिस्थितियों न रहे जिसके कारण उसे बहुत चिंता करनी पड़े या किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक कठिनाई उठानी पड़े।

शराब पीने वालोंको बजाय यह बताने के कि शराब पीना पाप है; उन्हें यह बताना चाहिये कि शराब पीने से उनके स्वास्थ्य पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है। उनके फेफड़े खराब हो जाते हैं, उनकी अंतड़ियां अपना कार्य ठीक-ठीक नहीं करतीं। दिल कमजोर हो जाता है और उन मनुष्योंकी आयु भी धीरे-धीरे कम होती चली जाती है। इसके अतिरिक्त उनका समाज में निरादर होता है, उनके बच्चोंको जिल्लत उठानी पड़ती है, उसकी स्त्रीकी कितनी दयनीय अवस्था है। वह यदि बुरी आदतको छोड़ दे और नियमसे जीवन व्यतीत करे तो उसे महान् सफलता मिले। अपने अनवरत परिश्रम द्वारा वह क्या से क्या हो सकता है......इत्यादि।

इसके अतिरिक्त छोड़ते समय भोजनके विषयमेंभी ध्यान रखना चाहिये। भोजन ऐसा हो जिससे शरीर स्वस्थ रहे स्वस्थ रहनेसे चिंता नहीं आएगी और चिन्ताओंके दूर रहनेसे पीनेकी इच्छा नहीं होगी। यदि इस समय आवश्यकता हो तो डाक्टरसे लेकर कोई दवा भी देनी चाहिये जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहे। मन प्रसन्न रखनेके लिये अधिक कार्य किन्तु थकान न करने वाला तथा हंसमुख न पीने वाले मित्रोंकी संगत दोनों बहुत लाभकारी हैं। लेकिन दिक्कत यह है कि पीने वाला न तो अपने आपको ठीक करने के लिये कुछ पैसे ही खर्च करना चाहता है और न किसी डाक्टरसे जाकर राय ही पूछनेके लिये समय देना चाहता है। किन्तु जो शराब पीने वाले आदमीके शुभचिंतक हैं उन्हें अवश्य ही उस मनुष्यको ये दोनों काम करने के लिये बार बार पूछते रहना चाहिये।

यदि एक बार कोई ५ या ६ महीना शराब पीना छोड़ दे और उसके बाद फिर भी कभी कभी उसका बहुत ज्यादा पीने को जी चाहे तो उसे सोचना चाहिये—'तुमने ५-६ महीने तक जो परिश्रम किया है वह सब बेकार हो जायगा। शराब पीने पर तुम्हें बहुत दुःख होगा। जब तुमने शराब पीनी छोड़ी थी तो तुमने बहुत दिनों पीकर यह अनुभव किया था कि यह बहुत बुरी चीज है और जैसे भी हो इसे छोड़ना चाहिये। यदि अब की बार तुम अपने बचनको तोड़ दोगे तो अन्य कार्योंमें भी तुम इसी प्रकार असफल रहोगे। जीवनमें फिर कोई भी कार्य पूर्ण नहीं कर सकोगे। शराब तो फिर कभी भी नहीं छोड़ सकोगे उसके छोड़नेकी तो फिर बात ही नहीं उठाई जा सकती। संसार

में मनुष्य सब कुछ कर सकता है तुम इतनी छोटी सी बात नहीं कर सकते तो जीवनमें अन्य कठिनाइयोंको कैसे सह सकोगे—यह कायरता है, यह मनकी कमजोरी है। जो मुसीबतोंको भूलनेके लिये शराब पीते हैं वे कायर हैं—वे कठिनाइयोंका सामना नहीं कर सकते इसलिये कठिनाईको भूलनेके लिये शराब पीते हैं। वे ठीक उस मनुष्यके समान हैं जो घरमें चोरको घुसा समझ कर बजाय चोरका पता लगाने के अपनी रजाईको अपने ऊपर और ढक कर लेटे रहते हैं—और सांस भी बन्द कर लेते हैं। इस प्रकार चोर भाग नहीं सकता बल्कि वह और आसानीसे माल चुरा कर चला जायगा। यदि उठ कर खोजोगे तो सम्भव है तुम अपनी तथा अपने मालकी रक्षा कर सको। इसी प्रकार कठिनाईको भुला कर तुम उसे दूर नहीं कर सकते। दूर करनेके लिये ठीक ठीक सोचना तथा उसके अनुसार कार्य करना आवश्यक है।

स्त्रियोंके विषयमें एक विशेष बात है। स्त्रियां प्रायः शराब से नफरत करती हैं—यह उनमें कुछ स्वाभाविक है। यदि आदमी उनसे आग्रह न करें और बूढ़ी शराबी औरतें उन्हें खास खास अवसर पर शराब पीनेके लिये लालायित न करें तो उन्हें शराब पीनेकी आदत कभी भी न पड़े। वे शराब कभी पियें ही नहीं।

शराबके कारण एक आदमी तो अपने घरकी चीजें ही बेचता है। किन्तु स्त्री तो खुद अपनेको भी बेच देती है। इसलिये स्त्रियोंमें शराब पीनेकी आदत पड़ना बहुत अधिक खतरेकी बात है। किन्तु जिस प्रकार आदमी शराब पीनेकी आदत छोड़ सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी शराब पीनेकी आदत छोड़ सकती हैं। हां! जिन स्त्रियोंने लोक लाजको बिल्कुल उठा कर डाल दिया है उनकी बात दूसरी है। उनके लिये तो 'दिमागी अस्पताल ही ठीक है'।

संसार की कहानी

[लेखक—श्री 'विशेषज्ञ']

[विद्युत् अणु, जगत् रचनाकी ईंटें, इनके गुण तथा इनका कार्य।]

रेडियमकी खोजने विज्ञानमें जो उन्नति की है उसका पता धीरे धीरे होता जाता है। बहुत समय तक संसारके लिये यह एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। डाक्टरोंके लिये हितकारी तथा वैज्ञानिकोंके लिये एक पहेली थी, उस समय भी वैज्ञानिक इस बातका अनुभव करते थे कि रेडियमकी विशेषतामें प्रकृतिका कोई रहस्यमय संदेश निहित है। उन्होंने इस विचित्र पदार्थकी विशेषतायें जाननेके लिये अनवरत प्रयत्न किया। इन महान् व्यक्तियोंमें मुख्य सर जे. जे. टामसन (Sir J. J. Thomson) सर अरनैस्ट रूदर फोर्ड (Sir Ernest Rutherford), सर डब्लू० रैमजे (Sir W. Ramsay) और प्रोफेसर सोडी (Professor Soddy) हैं, पांच वर्ष पश्चात् ही रहस्यका पता चल गया. इससे केवल यही सिद्धान्त नहीं मालूम हुआ कि सारे पदार्थोंका मूल तत्त्व एक ही है किन्तु यह भी ज्ञात हुआ कि प्रकृतिकी विभिन्नतायें एक रूपताकी ओर इंगित करती हैं। अनेक रूपतामें एकताके सिद्धान्तका प्रतिपादन प्रायोगिक रूपमें इससे पहले न हो सका था।

विद्युत् अणु की खोज

भौतिक विज्ञान वेताओंको शीघ्र ही इस बातका पता चला कि रेडियम द्वारा जो विकरण (Radiations) प्रस्फुटित होते हैं वे क्रूकस नली (Crookes tube) के द्वारा प्रस्फुटित विकरण (Radiations) के ही समान हैं। धीरे धीरे यह मालूम हुआ कि रेडियम और क्रूकस नली दोनोंमें ही उस पदार्थका परमाणु-विच्छेदन होता रहता है।

सबसे पहली बात जो ज्ञात हुई वह उन तीन किरणोंके विषयमें थी जो रेडियम तथा युरेनियम, से निकलती हैं। ग्रीक भाषाके सर्व प्रथम शब्दोंकी ध्वनि पर ही इन किरणोंका नाम भी ऐल्फा (Alpha), बीटा (Beta) तथा गामा (Gamma) रखा गया।

जिन किरणोंका नाम बीटा रखा गया था उनका जब अध्ययन किया गया तो विज्ञानमें एक नई खोज हुई। इन बीटा-किरणोंका ही नाम आगे चल कर विद्युत्-अणु रखा गया। ये अलग हुए विद्युत्के कण हैं जो किसी पदार्थके परमाणु-विच्छे-

दन पर प्राप्त होते हैं। जब परमाणुसे ये विद्युत्-अणु अलग हो जाते हैं तभी इनके स्वतन्त्र अस्तित्व का पता चलता है। इस प्रकार विद्युत्-अणु किसी पदार्थ के परमाणु के ही भाग हैं जो भिन्न भिन्न विधियोंसे अलग किये जा सकते हैं।

सर विलियम ब्रैग (Sir Williaim Bragg) के कथनानुसार, 'विद्युत-अणु अपनी स्वतन्त्र स्थितिमें तभी रह सकता है जब उसकी गति प्रकाश की गति के $\frac{१}{३००}$ भाग या इससे अधिक हो। अर्थात् कमसे कम ६०० मील प्रति सेकेण्ड। यदि गति इससे कम होगी तो विद्युत्-अणु किसी दूसरे परमाणु से जाकर मिल जायगा और अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको खोदेगा।' ये विचित्र कण १०,००० मील प्रति सेकेण्ड से लेकर १००,००० मील प्रति सेकेण्ड की गति से चलते हैं। जब चुम्बक इन रेडियमसे निकलने वाली किरणोंके पास लाया जाता है तो इनकी दिशामें परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण पहले-पहल यह ज्ञात हुआ कि ये किरणें विद्युत्-अणुका अंश मात्र हैं। रेडियम या क्रूकस नलीसे ये विद्युत्-अणु, प्रकाशकी गति अर्थात् १८६,००० मील प्रति सेकेण्डकी गतिसे भी चलते हैं।

विद्युत्-अणु एक प्रकारसे अलग हुए विद्युत्के कण हैं। इनका आयतन बहुत ही सूक्ष्म तथा भार केवल विद्युत्के रूपमें होता है। पदार्थके वास्तविक रूपका ज्ञान इन्हीं विद्युत्-अणुओं पर निर्धारित है।

ये ऋण-विद्युत्के कण हैं, अपारदर्शी ठोस पदार्थोंमेंसे भी ये पार हो जाते हैं और उन पदार्थोंके गुणोंमें कुछ परिवर्तन भी कर देते हैं। जिन पदार्थों से जाकर ये टकराते हैं वे पदार्थ अंधेरे में चमकने लगते हैं; फोटोग्राफीकी प्लेट पर इनका रासायनिक प्रभाव होता है; इनके द्वारा वायु भी विद्युत् वाही बनकर कार्य करने लगती है, नम वायुमें इनके द्वारा बादलोंकी उत्पत्ति हो जाती है और बहुतसे रासायनिक पदार्थोंमें इनके द्वारा परिवर्तन हो जाता है। अभी न जाने और कौन-कौनसे कार्य ये छोटेसे विचित्र कण इस संसारमें करने वाले हैं।

विद्युत्-अणु सिद्धान्त तथा पदार्थका नया दृष्टिकोण

हमें अब यह पूर्ण रूपसे ज्ञात हो गया है कि किसी पदार्थ के परमाणु एकाएक अथवा उत्तेजित करने पर विद्युत्-अणुओं का विस्फुरण करने लगते हैं या यह कहा जा सकता है कि विद्युत्-अणुओंमें विभाजित होने लगते हैं। किन्तु इससे एक बात प्रमाणित होती है कि परमाणुओंमें विद्युत्-अणु उपस्थित रहते हैं इस प्रकार विद्युत्-अणु तथा परमाणुका स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

किन्तु जिस समय वैज्ञानिक बताने लगता है कि किस प्रकार ये विद्युत्-अणु परमाणुमें नियमित स्थान पर स्थित हैं तब हम वास्तविक जगत्से दूर केवल एक काल्पनिक संसारमें चक्कर काटने लगते हैं। इस छोटेसे घेरे (o) के बराबर जलबिन्दुमें हाइड्रोजनके परमाणुमें न जाने कितने विद्युत् अणु होंगे—इतना ही नहीं कि वे बहुत पास पास हों, बल्कि स्वतन्त्रता पूर्वक घूमते होंगे। फिर भी हम वैज्ञानिक से पूछते हैं कि बताइये इन परमाणुओं में छोटे छोटे विद्युत्-अणु किस प्रकार तथा किस क्रमसे रखे हुए हैं। उस समय केवल काल्पनिक चित्रके सिवाय वास्तविकता को कैसे देखा जा सकता है? जिससे सारी आवश्यकतायें पूरी हो जांय, तथा परमाणुका गुण भी न बदले इन सब बातों को ध्यान में रख कर ही वैज्ञानिक विद्युत्-अणु के स्थान तथा क्रमके विषयमें कुछ सिद्धान्त रखता है।

इसी कारण विद्युत्-अणुके विषयमें कई वर्षोंके वाद विवाद के पश्चात् भी दो सिद्धान्त स्थिर हुए हैं। किन्तु इन वैज्ञानिक सिद्धान्तों में अधिक गहरे न जाकर हमें उन सिद्धान्तों के मुख्य भागोंके विषयमें ही कुछ कहना है।

इस सिद्धान्तको तो अब सब ही वैज्ञानिक मानते हैं कि किसी पदार्थ के परमाणुओं में छोटे छोटे ऋण-विद्युत् अणु (Negasive electric particles) स्थित रहते हैं। ये ऋण-विद्युत् कण उस परमाणु में मध्य धन विद्युत्-अणु (Positive electric porticle) के आकर्षणके कारण अपने स्थान पर स्थित रहते हैं। ये विद्युत्-अणु परमाणु में सर्वदा गतिमान रहते हैं—अर्थात् ये स्थिर न रह कर सर्वदा एक प्रकारसे बड़ी गतिसे चलते रहते हैं अथवा अपने स्थान पर ही हिलते रहते हैं। इसी कारण यह सिद्ध हुआ है कि एक परमाणुमें जो बहुत अधिक शक्ति संचय रहती है वह इन्हीं विद्युत्-अणुओंकी गतिके कारण है।

इसके अतिरिक्त एक और सिद्धान्तका पता चला कि जिस पदार्थका परमाणु भार (Atomic weight) जितना अधिक होता है उतने ही उसमें धन विद्युत्-अणुओं की संख्या अधिक होती है।

इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुंच जाते हैं कि सारे तत्त्वों के परमाणु इन विद्युत् कणों से बने हैं। हाइड्रोजनका पर-

माणु जो सबसे हल्का होता है एक केन्द्रीय (Nucleus) धन अणु तथा एक ऋण विद्युत-अणुसे बना होता है। इसके अतिरिक्त सोने का परमाणु जो काफी भारी होता है कई केन्द्रीय धन अणु तथा कई ऋण विद्युत-अणु उसके आस-पास होते हैं। सूक्ष्म अनुसन्धानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि परमाणुमें जो मात्रा पाई जाती है वह धन अणुओंके कारण होती है। हाइड्रोजनके परमाणुमें एक धन अणु और एक ऋण अणु पाया जाता है। इससे छोटा और हल्का किसी तत्वका परमाणु नहीं मिलता, इसीसे इसका भार १ माना गया। हीलियमके परमाणुमें धन अणु की संख्या ४ पाई जाती है। कार्बनके परमाणुमें इनकी संख्या १२ है, ऑक्सीजनमें इनकी संख्या १६ है, इसीलिये हाइड्रोजनसे हीलियम ४ गुना, कार्बन १२ गुना और ऑक्सीजन १६ गुना तथा सोनाके परमाणुमें इनकी संख्या १९७ होने के कारण ही यह हाइड्रोजनसे १९७ गुना भारी है।

हम यह भी जानते हैं कि ये ऋण विद्युत् अणु तथा केन्द्रीय धन अणु दोनों ही विद्युत् कण हैं। इस प्रकार परमाणु केवल विद्युत् ही हैं और जो विशेषता एक परमाणुमें होती है वही तत्त्वकी होती है इसलिये तत्त्व भी उस विद्युत् रूपका ही द्योतक है।

इसके अतिरिक्त परमाणुओं के मिलने से अणुओं (Molecules) की रचना होती है। इस प्रकार परमाणु तथा अणु इस ब्रह्माण्डको बनानेमें ईंटोंका सा काम करते हैं। हमारा शरीर तथा और जो कुछ भी दृश्य तथा अदृश्य पदार्थ हैं वे इन्हीं छोटे छोटे परमाणुओंकी ही सहायतासे बने हैं।

किन्तु विकरणके सिद्धान्तसे बहुतसे नये प्रश्न उपस्थित होते हैं। विकरणमें विच्छेदन होता रहता है अर्थात् तत्त्व परिवर्तन (Change cf Element) ही होता है; जैसे युरेनियम (Uranium) बहुत समयके विकरणके पश्चात् हल्के परमाणु भार वाले तत्त्वमें परिवर्तित होजाता हैं। इसी तरह भारी परमाणु भार वाले पदार्थ हल्के परमाणु भार वाले पदार्थों में बदलते रहते हैं। युरेनियम (Uranium) पहले रेडियम (Radium) में परिणित होता हैं, इसके पश्चात रेडियम और बहुत सी अवस्थाओंमें होकर अन्तमें सीसा (Lead) में परिणत हो जाता है। उस परिवर्तनमें प्रत्येक तत्त्व अपने पहले तत्त्वसे हल्का ही होता है यह परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होता है। जो पदार्थ स्वयं ही विकरणशील होते हैं अथवा किसी विधिसे विकरणशील बनाये जा सकते हैं, उनमें यह परिवर्तन देखा जाता है। इससे यह विश्वास होता है कि संसारके सारे तत्त्व विकरणशील हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि सारे पदार्थोंका मूल तत्त्व वास्तवमें एक ही पदार्थ हो और उसीसे भिन्न भिन्न परिस्थितियों के कारण भिन्न भिन्न तत्त्वों का जन्म हुआ हो। यह कार्य प्रकृति में अवश्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के मिलने पर बहुत कालसे चल रहा होगा।

हल्के पदार्थोंसे भारी पदार्थ बने होंगे क्योंकि हल्के पदार्थों में विद्युत्-अणु कम तथा साधारण स्थितिमें रहते हैं किन्तु भारी पदार्थों के परमाणुमें विद्युत अणु बड़ी जटिलतासे क्रमबद्ध होते हैं; तथा भारी पदार्थ जब विकरित होता है तो साधारणतया हल्के पदार्थोंमें परिवर्तित होजाता है—जो सम्भव है उसकी प्राथमिक अवस्था हो।

इस सिद्धान्तके आधार पर भविष्यमें वैज्ञानिक आशा करते हैं कि लोहेसे सोना भी बन सकेगा—जिसकी खोजने पूर्व-प्रदेशों के वैज्ञानिकों को आगे न बढ़ने दिया था।

प्रकृतिमें कम भार वाले सरल परमाणुओंसे भारी परमाणु बने होंगे ऐसा ख्याल बहुत ही कम वैज्ञानिक करते हैं। क्योंकि पदार्थ रचना के सम्बन्धमें कुछ वैज्ञानिकोंके विचार हैं कि विश्वमें पदार्थ रचना होनेसे पूर्व जब कभी आकर्षणका तूफान या बवण्डर उठता है उस स्थान पर धन विद्युत् अणु समूह और ऋण विद्युत अणु समूह उस आकर्षणके बवण्डर जालमें फंसकर पदार्थोंके परमाणुओंका प्रादुर्भाव करते हैं। उस समय उस बवण्डरके केन्द्रमें इतना भयङ्कर आकर्षण का बल होता है कि पदार्थ की रचना करने वाले उक्त विद्युत् अणु उस बवण्डर में धंसकर इतने घनीभूत होते हैं जहाँ विवश होकर उनसे भारी मात्रा वाले परमाणुओंकी रचना होती है। वहां हल्के परमाणु कम बनते हैं, धीरे-धीरे फिर उनसे हल्के परमाणु बनते रहते हैं, यदि हल्के परमाणुसे भारी परमाणुओं की रचना प्रकृतिमें हुई होती तथा प्रकृतिमें यह क्रम सरल होता तो अवश्य ही लोहेसे सोना बनने में देर न लगती। अब तक जिन वैज्ञानिकोंने इसमें सफलता पाई है उन्हें हल्के तत्त्वसे भारी तत्त्वमें परिवर्तत करके नहीं मिली, प्रत्युत पारद जैसी सोने से भारी धातुको हल्के तत्त्वमें बदलते समय मिली है। पारेके परमाणु का भार २००·६१ है सोनेके परमाणुका भार १९७·२ है।

ह. श.
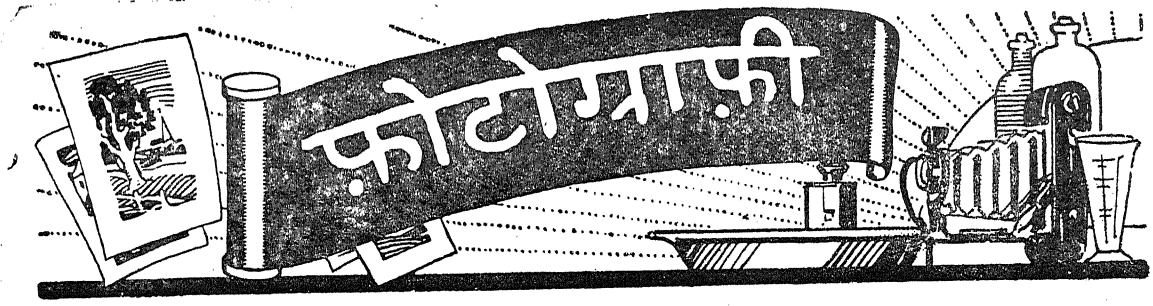
प्लेट डेवेलप करना:—प्लेटको फिल्मकी तरह डेवेलप किया जाता है अन्तर केवल इतना होता है कि प्लेटको तश्तरी में रख कर उस पर फारमैलिन, डेवेलपर आदि छोड़ा जाता है। तश्तरीको बराबर हिलाते रहना चाहिए। फारमैलिन उड़ेलनेके पहले प्लेटको पानीसे तर करनेकी आवश्यकता नहीं है। जाड़े में जब फॉरमैलिन की आवश्यकता नहीं रहती सूखे प्लेट पर सबसे पहले डेवेलपर ही छोड़ा जाता है प्रत्येक २½"×३½" के प्लेटके लिए १ आउंस डेवेलपर काफी होगा, परन्तु तश्तरी प्लेटसे जरासी ही बड़ी हो।

कटफिल्म या फिल्म पैकके फिल्म को पहले पानी से तर कर लेना उचित है। अन्य बातोंमें वे प्लेटकी तरह डेवेलप किये जाते हैं कुछ अभ्यासके बाद चार-चार कट फिल्म एक साथ ही डेवेलप किये जा सकते हैं। उनको वारी-वारी से डेवेलपर छोड़ना चाहिए और उसी क्रमसे निकालना चाहिए। इन्हें डेवेलप करनेके लिये विशेष टैंक भी बिकते हैं।

किये फिल्म (या प्लेट) किसी न किसी कागज पर ठीक छप ही जाते हैं। परन्तु सदा चेष्टा यही करनी चाहिए कि नॉरमल (Narmal) गैस लाइट पर छपने योग्य नेगेटिव तैयार हो। तब भूलसे कम या अधिक डेवेलप हो जाने पर कड़े (हाई या विगरस) या नरम (सॉफ्ट) गैसलाइट पर छापकर काम चलाया जा सकता है।

अन्धेरी कोठरी

कट फिल्मों और प्लेटोंको डेवेलप करनेके लिए अन्धेरी कोठरीका उत्तम प्रबन्ध कट फिल्मों या प्लेटोंको चौखटों (हैंगर्स Hangers) में फंसाकर डेवेलप आदिकी टङ्कियोंमें लटका दिया जाता है;

कितनी देर तक डेवेलप करें?—

यह (१) प्लेट की बनावट, (२) डेवेलपर के नुसखे, (३) डेवेलपरके तापक्रम, (४) विषयके प्रकाशान्तर (उसके चटक या धूमिल होने) और (५) कैसे नेगेटिवकी आवश्यकता है इन पांच बातों पर निर्भर है। इन दिनों इतने मेलके कागज बनते हैं कि बहुत कम और बहुत अधिक समय तक डेवेलप

जितना ही अधिक समय तक फिल्मको डेवेलप किया जाता है उतना ही अधिक प्रकाशान्तर नेगेटिव में आता है, अर्थात् नेगेटिवके हल्के और गाढ़े भागोंके घनत्व (कालेपन) में उतना ही अधिक अन्तर रहता है। यह समझना भारी भ्रम है कि प्रकाश दर्शनकी भूल चूकको डेवेलप करते समय ठीक किया

जा सकता है।*

नौसिखियेको चाहिए कि वह पहले बराबर एक ही तरहका फिल्म (या प्लेट) इस्तेमाल करे, डेवेलपर एक ही नुसखेके अनुसार बनावे, और एक प्रकारके कागज पर छापने योग्य नेगेटिव बनानेकी चेष्टा करे। इस प्रकार वह तीन बातोंको स्थिर रख सकता है। विषयके प्रकाशान्तरका प्रभाव अधिक नहीं पड़ता और इसलिए यदि इस पर ध्यान न भी दिया जाय तो कुछ हानि न होगी। इस प्रकार केवल एक बात रह जायगी, अर्थात् तापक्रम नीचेके नुसखेके अनुसार बने डेवेलपरसे यदि किसी प्लेटके लिये डेवेलप हो जानेका समय ६५° पर पांच मिनट हो तो ६०° पर ६⅔ मिनट, ५५° पर ७½ मिनट, ७०° पर ४⅔ मिनट, ७५° पर ३⅚ मिनट और ८०° पर ३⅙ मिनट होगा। इससे अधिक तापक्रम पर डेवेलप करनेसे बहुत अधिक धुन्ध उत्पन्न होता है। एक बार अंदाजा लग जानेसे कि किस तापक्रम पर कितने समयमें फिल्म डेवेलप होता है अन्य तापक्रमोंके लिये उचित समयका अंदाजा ऊपर दिये गए अङ्कोंसे लग जायगा।

अवश्य ही, यह मान लिया गया है कि डेवेलपर का तापक्रम आरम्भसे अन्त तक एक ही रहता है। यदि गरमीके कारण डेवेलपरका तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ रहा हो तो समयका अनुमान करना कठिन हो जायगा। इसलिए डेवेलपरके गिलास या तश्तरीको पानीसे भरे बड़े बरतनमें रखना अधिक अच्छा होता है क्योंकि तब तापक्रम प्रायः स्थिर रहता है।

नुसखे—डेवेलपर का नुसखा यह है—

मेटॅल (metol)	१० ग्रेन
हाइड्रोक्विनोन	३० ,,
सोडियम सलफाइट (सूखी बुकनी)	१६० ,,
सोडियम कारबोनेट (सूखी बुकनी)	१३० ,,
पोटेसियम ब्रोमाइड	१० ,,
पानी इतना कि कुल हो जाय	१० आउंस

इस्तेमालके लिए इस घोलमें बराबर मात्रामें पानी मिला लेना चाहिए।

* हां, यदि पहलेसे पता हो कि किसी प्लेट को अधिक प्रकाश दर्शन मिला है तो डेवेलपरमें पहलेसे खूब पोटासियम ब्रोमाइड मिलानेसे कुछ प्रतिकार अवश्य हो सकता है। परन्तु पहले कहां पता रहता है कि प्रकाशदर्शन कम है या अधिक।

इस घोलके बनानेकी रीति यह है कि पहले लगभग तीन चौथाई (करीब ८ आउंस) पानी लिया जाय। कुल सोडियम सलफाइट तोल लेनेके बाद उसका अंदाजसे दसवां भाग ही पहले पानीमें घोला जाय। तब उसमें कुल मेटॅल घोला जाय। इसके पूर्णतया घुल जाने पर शेष सोडियम सलफाइट घोला जाय। फिर हाइड्रोक्विनोन और अन्तमें कारबोनेट और ब्रोमाइड। तब आवश्यकतानुसार पानी छोड़ने पर डेवेलपर तैयार हो जायगा। यदि पहले कुल सलफाइट घोल लिया जायगा और तब मेटॅल डाला जायगा तो मेटॅल घुलेगा नहीं और डेवेलपर खराब हो जायगा। पहले मेटॅल घोलनेसे डेवेलपर कुछ बदरंग हो जाता है, परन्तु विशेष हानि नहीं होती।

इस डेवेलपरको यदि गरदन तक भरी और कागसे अच्छी तरह बन्द की गई शीशियोंमें रक्खा जाय तो वह कई सप्ताह तक चलेगा। खौलाये पानीसे डेवेलपर बनाया जाय तो यह और भी अधिक दिन चलेगा।

हाइपोका नुसखा यह है।

हाइपो	४ आउंस
पानी	१ बोतल (२० आउंस)

स्मरण रखना चाहिए कि इसमें बहुत गाढ़ा या बहुत फीका घोल बनानेसे हानि होती है। यदि २० आउंस पानीमें ८ आउंससे अधिक हाइपो घोला जायगा तो नेगेटिवमें पक्का दूधियापन उत्पन्न हो जायगा जिससे नेगेटिव खराब हो जायगा यदि २ आउंससे कम हाइपो डाला जायगा तो नेगेटिवोंके स्थायी (Fix) होनेमें (अर्थात् उनके दूधियापनके मिटनेमें) असुविधाजनक अधिक समय लगेगा।

एक बारके इस्तेमालके बाद डेवेलपर फेंक देना चाहिए। हाइपोके दो आउंस घोलमें तीन-चार क्वार्टर प्लेट बारी-बारीसे स्थायी किये जा सकते हैं परन्तु घोलको उठा कर दूसरे समयके लिये रखना न चाहिये, क्योंकि यह बदरंग हो जाता है।

कड़ा करने वाले हाइपोके घोल:—यदि गरमी अधिक न पड़ती हो या किसी प्रकार ऐसा प्रबन्ध किया जा सके कि फिल्म बराबर ठंडे घोलोंमें डूबा रहे और इसमें गरम हवा इतनी देर तक न लगने पाए कि फिल्मकी ठंडकमें अधिक अन्तर पड़ सके तो ऐसा भी किया जा सकता है कि डेवेलप करनेके पहले फॉरमैलिनका प्रयोग न किया जाय। केवल अन्तमें हाइपोके सादे घोलके बदले निम्न घोल इस्तेमाल किया जाय।

यह घोल कड़ा भी करता है और स्थायी भी।

(क)	पानी	६४	आउंस
	हाइपो	१६	,,
(ख)	पानी	५	,,
	सोडियम सलफाइट (सूखा)	१	,,
	ऐसेटिक ऐसिड (२८ प्रतिशत)	३	,,
	फिटकरी (चूर्ण)	१	,,

अलग-अलग बना कर एकमें मिलाओ।

ऐसेटिक ऐसिडके बदले १ आउंस साइट्रिक ऐसिड छोड़ा जा सकता है।

शुद्ध नेगेटिवकी पहिचान—नेगेटिवको सफेद कागज पर रक्खो और इसको ध्यानसे देखो। यदि नेगेटिवके किनारे (जिन पर प्रकाश नहीं पड़ा है) खूब स्वच्छ हों तो ठीक है; अन्यथा समझना चाहिए कि नेगेटिवमें धुन्ध उत्पन्न हो गया है। नेगेटिवके चित्र वाले भागमें कहीं भी किसी अंशको उतना स्वच्छ न होना चाहिए जितना किनारे, हल्केसे हल्के भागको किनारोंसे कुछ अधिक गाढ़ा होना चाहिये परन्तु अन्तर बहुत कम होना चाहिये। यदि चित्रका काफी बडा भाग उतना ही स्वच्छ हो जितना किनारे हैं तो समझना चाहिए कि फिल्मको काफी प्रकाश दर्शन नहीं दिया गया था (अवश्य ही यहां यह मान लिया गया है कि प्लेट या फिल्म इतना पुराना नहीं है कि किनारे गंदे हो गये हैं, और यह भी मान लिया गया है कि फिल्मके किनारों पर प्रकाश नहीं लगने पाया है)। यदि चित्र का हल्केसे हल्का भाग किनारों से काफी अधिक गाढ़ा हो गया हो तो समझना चाहिए कि प्रकाश दर्शन आवश्यकतासे अधिक दिया गया था।

यदि नेगेटिवसे छापने पर पूरे प्रकाशांतर का फोटो छप ही नहीं सकता, और फिल्मको प्रकाश दर्शन आवश्यकतासे बहुत अधिक नहीं दिया गया था तो समझना चाहिए कि नेगेटिव काफी समय तक डेवेलप नहीं किया गया था। पूरे प्रकाशांतरके फोटोसे अभिप्राय है कि फोटोमें कहीं पर खूब काला भाग भी है, कहीं सफेद भाग भी है और शेष स्थानोंमें न्यूनाधिक कालेपनके भाग हैं, इस प्रकार फोटो चटक लगता है। यदि नेगेटिव से छापने पर पता चले कि छापमें कुछ अंश बिलकुल काला छपता है और कुछ अंश बिलकुल सफेद रह जाता है और इन काले और सफेद भागोंमें ब्योरा प्रायः मिट जाता है, यद्यपि नेगेटिवमें इन स्थानोंमें ब्योरा है, तो समझना चाहिये कि फिल्मको आवश्यकतासे अधिक समय तक डेवेलप किया गया है।

नौसिखियेको चाहिए कि वह किसी कुशल और ईमानदार फोटोग्राफरको नेगेटिव दिखाकर सलाह ले कि प्रकाशदर्शन और डेवेलपमेंट ठीक है या नहीं। केवल पुस्तकके भरोसे ठीक पता बहुत अनुभवके बाद ही जब वह बहुत तरहके नेगेटिवोंको छाप चुकता है—लगता है।

पैनक्रोमैटिक प्लेट और फिलम—पैनक्रोमैटिक प्लेटों और फिल्मोंको बिल्कुल अंधेरेमें डेवेलप करना चाहिए, साधारण प्लेटोंके डेवेलप करनेके अनुभवके बाद इसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। समय जाननेके लिए या तो किसीको बाहर खड़ा कर लेना चाहिए, या विशेष अलार्म घड़ीका इस्तेमाल करना चाहिए जिसमें चार-पांच मिनट पर घंटी बज सकती हो या विशेष हरे प्रकाशका प्रयोग करना चाहिए (विशेष हरा लैंप इसीलिए बिकता है, परन्तु यथा सम्भव यह रोशनी केवल घड़ी पर पड़े)।

सफाई—अँधेरी कोठरी और मेज, तश्तरी, गिलास वगैरह खूब साफ रक्खे जांय गर्द न रहे, झाड़ू डेवेलप करनेके आध घंटे पहले लगवाना चाहिए। गर्दसे पूर्णतया रक्षा चाहें तो दीवाल और फर्श पर पानी छिड़क लें डेवेलप करने के बाद तश्तरियोंको धो कर खड़ा कर देना चाहिए।
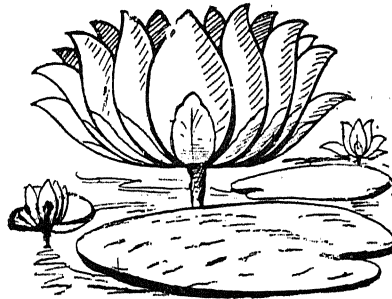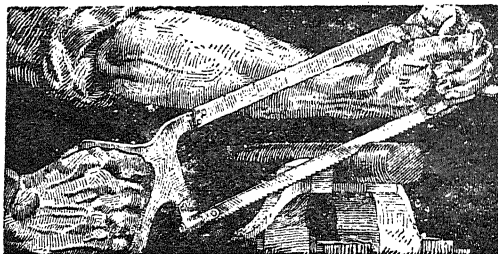
पत्रिकाओं पर जिल्द बांधना

[ले०—श्री 'सिद्धहस्त']

पुरानी पत्रिकाओंको आप क्या करते हैं? बिना जिल्द बांधे अवश्य ही वे तितर-बितर हो जायंगी। इसके लिये रुपया खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं। आप स्वयं जिल्द बांध सकते हैं। जिल्दसाजीके लिये किसी विशेष हथियारकी आवश्यकता भी नहीं है, यद्यपि एक दो रहें तो सुविधा होगी।

जिल्दसाजीके लिये सिलाई दो प्रकारसे की जा सकती है, एक तो जुजकी सिलाई, जिसमें थोड़े-थोड़े पन्ने (साधारण ८ या १६ पृष्ठ) अलग-अलग सिये जाते है और दूसरी बगलसे, जिसमें सब पन्ने साथ ही सी दिये जाते हैं। बगली सिलाई तभी ठीक होती हे जब पन्ने नरम और बड़े होते हैं।
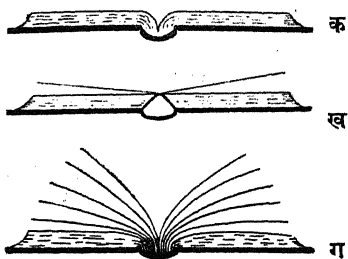
चित्र नं० १

(चित्र १ क)। यदि वे छोटे या कड़े हुए तो पुस्तक ठीक नहीं खुलती और पन्ने उठे रहते हैं (चित्र १ ख)। जुजकी सिलाईमें पन्ने बराबर अच्छी तरह खुलते हैं, चाहे वे कितने ही छोटे या मोटे क्यों न हों (चित्र १ ग)। इसलिये यहां जुज की ही सिलाईका वर्णन किया जायगा। जुज फारसी शब्द है और इसका अर्थ है अंश। इसलिये हम इसे आंशिक सिलाई भी कह सकते हैं।

जिल्दसाजी के लिये निम्न हथियारों से विशेष सुविधा होती है—
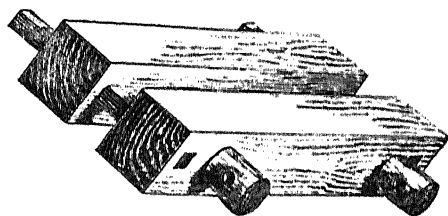
चित्र नं० २

(१) **शिकंजा** (चित्र २) इसमें पुस्तकें दबाई जाती हैं इसके अभावमें बढ़ई या लोहार लोगोंके बांक (वाइस Vice) से भी छोटी पुस्तकों की जिल्दसाजी का काम चल सकता है, परन्तु यदि कुछ न हो तो दो मजबूत (डेढ़ इञ्च मोटा) पटरा या पीढ़ासे काम चल जायगा। इन पटरोंके कोनों पर छेद करके उनमें बाल्टू पहना कर वाशर लगाकर ढिबरी चढ़ा देनी चाहिये। पटरोंके बीचमें पुस्तक रखकर ढिबरियों को कसने पर पुस्तक कस उठेगी।
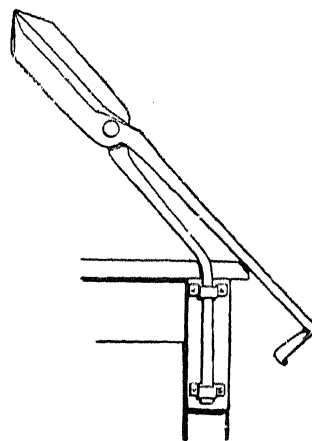
चित्र नं० ३ कतरनी

(२) दफ्ती काटनेके लिये बड़ी **कैंची** (चित्र ३) या **कतरनी** ।
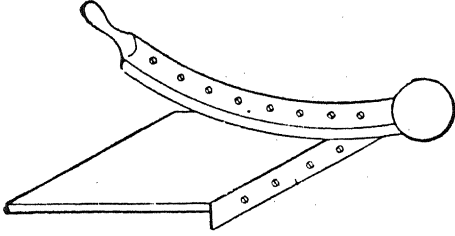
चित्र नं० ४

सरौता (चित्र ४) इसके अभाव में किसी भी मजबूत कैंची से काम चल जायगा ।
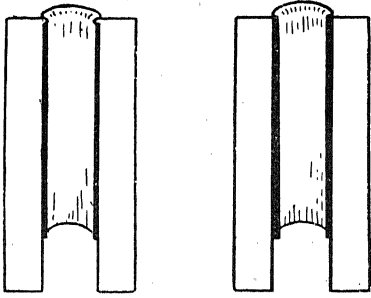
चित्र नं० ५

(३) लकड़ीके दो मजबूत और चिकने पटरे। पुस्तकको शिकञ्जेमें दबाते समय इनको पुस्तककी अगल-बगल रख दिया जाता है. (चित्र ५)
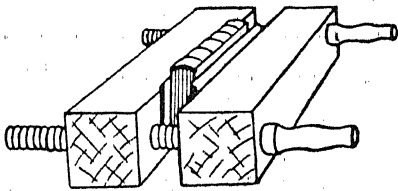
चित्र नं० ६

तब शिकंजे में दबाया जाता है, (चित्र ६) जिसमें पुस्तक सब जगह बराबर दबे ।

(४) पुस्तकके पन्नोंको चौरस और चिकना काटनेके लिये विशेष चाकू अन्यथा कोई भी तेज और बड़ा चाकू ।

(५) सुई, धागा, सरेस आदि ।

पत्रिकाओंकी जिल्दसाजीके लिये उनका कवर निकाल देना चाहिए और सिलाई खोल डालनी चाहिए। फिर उनको क्रमानुसार रखकर एक बार सब पन्नोंको देख डालना चाहिये
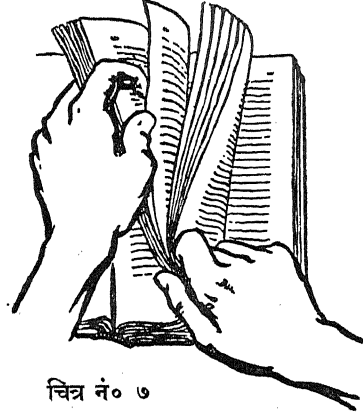
चित्र नं० ७

(चित्र ७) के क्रममें कहीं गड़बड़ी तो नहीं है, कोई पन्ने छूटे तो नहीं हैं, कोई पन्ने फटे तो नहीं हैं, इत्यादि ।
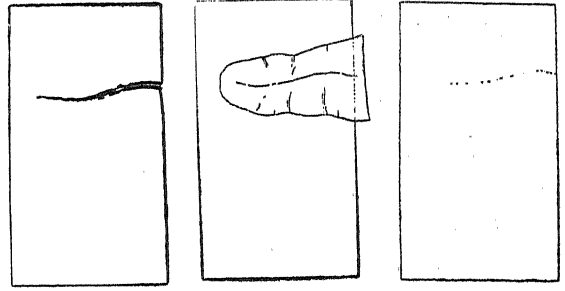
क ख ग

चित्र नं० ८

यदि कोई पन्ना फटा हो (चित्र ८ क) तो फटे भाग पर पारदर्शक कागज चिपकाकर (चित्र ८ ख) अनावश्यक भाग काट देना चाहिये (चित्र ८ ग) ।

चित्र नं० ९

क ख ग
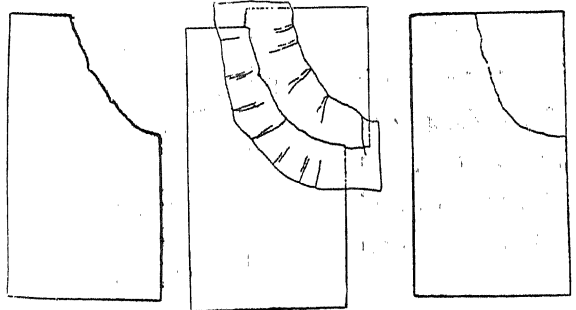
इसी प्रकार यदि किसी पन्नेका कोना फटा हो (चित्र ९ क) तो फटे स्थानमें आवश्यक आकारका कागज रख उसे पारदर्शक कागजसे जोड़ देना चाहिये (चित्र ९ ख) और फिर अनावश्यक भागको काट देना चाहिये (चित्र ९ ग)।
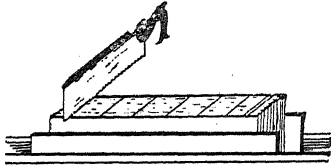
चित्र नं० १०

अब सिलाई दो प्रकारसे की जा सकती है, बत्ती डालकर या फीता लगाकर। पहले बत्ती वाली रीति बतलाई जायगी। पन्नोंको मेज पर ठोंक कर ऐसा कर लेना चाहिये कि जुजोंके दो किनारे (जैसे सिरे और पुस्तक की पीठकी ओर किनारे—पीठ उसे कहते हैं जिधर सिलाई रहती है) सब ठीक चौरस हो जाएं तब पुस्तक को शिकंजेमें इस प्रकार कस देना चाहिये कि पीठ ऊपर रहे। अब इस पीठमें बत्तियों के लिए आरी से काट कर घर बना देना चाहिए। (चित्र १०)।

बत्तियां कहां लगती हैं यह (चित्र ११) से स्पष्ट हो जायगा। ताग-फांसके लिए भी घर काट लेना चाहिए।
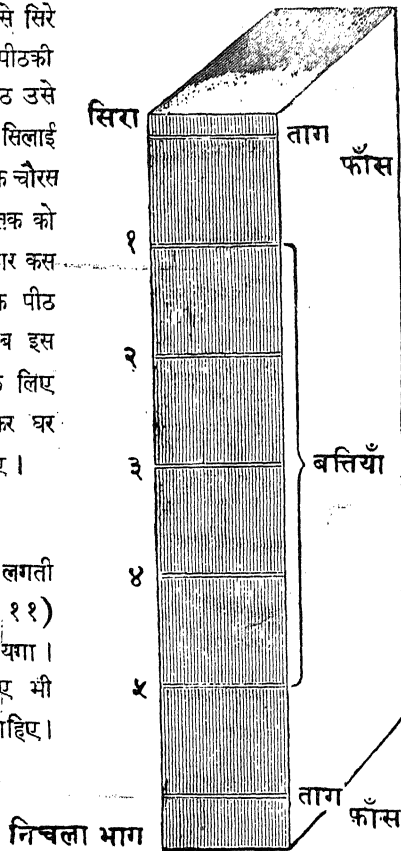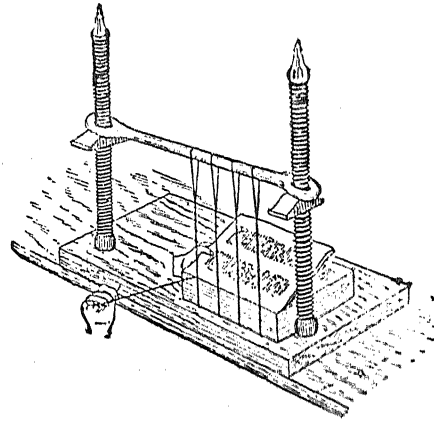
चित्र नं० ११

चित्र नं० १२

अब सिलाई करनी होगी। इसके लिए पुस्तकको शिकंजे से निकाल कर रखना चाहिए। फिर अन्तिम जुजको सिलाई करनेके ढांचेके पटरे पर रखना चाहिए। यह ढांचा (चित्र १२ में) दिखलाया गया है। ढांचेमें बंधे धागे वस्तुतः बत्तियां और वे एक दूसरेसे इतनी दूरी पर तानी जाती हैं कि पुस्तककी पीठ पर कटे हुए घर पर ही वे पड़ें। इस ढांचेके अभावमें साधारण मेज पर या पीढा पर ही रख कर पुस्तक सी जा सकती है, केवल बार-बार बत्तियोंको सीधा करनेमें कुछ समय नष्ट हो जायगा। सूई में धागा खूब लम्बा लिया जाय और सिलाई चित्र १३ में दिखलाई गई रीतिसे की जाय। इस चित्र (क) भाग में दोहरी बत्तियां दिखलाई गई हैं जो कागजमें धँसी नहीं हैं। इसलिये जिल्द बँध जाने पर पुस्तककी पीठ पर इन बत्तियोंके कारण उभरी दोहरी धारियां दिखलाई पड़ेंगी। ऐसी सिलाई केवल बहुत मजबूत कामों के लिये विशेषकर बैंक की बहियों के लिये की जाती है। चित्र १३ (ख) में एक बत्ती दिखलाई गई है। यह भी बाहर उभरी है। ऐसा काम भी केवल बहुत मजबुत कामोंके लिए किया जाता है, यद्यपि यह दोहरी बत्तीके बराबर मजबूत नहीं होता। साधारणतः सिलाई चित्र १३ (ग) की तरह की जाती है। इसमें कागजमें घर इतने चौड़े काटे गये हैं कि बत्ती भीतर धंस गई है। जिल्द बंध जाने पर पुस्तककी पीठ सपाट रहेगी। बत्ती लगभग $\frac{१}{१६}$ इंच व्यास की होती है और साधारण सूतकी डोरी ही होती है। सिलाईमें विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि तागा इन बत्तियों पर बराबर लिपटता चले।
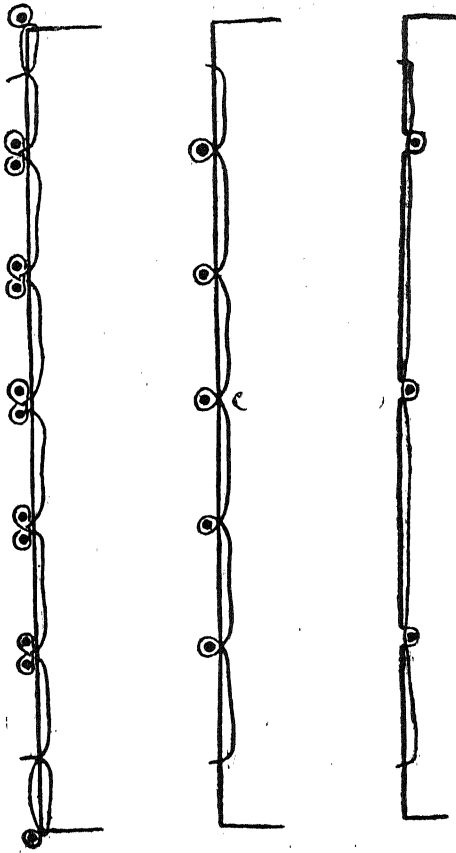
चित्र नं० १३

चित्र १४ से स्पष्ट है। सिलाईमें समय लगता है। जल्दबाजी करनेसे काम बिगड़ जाता है। तागेको जब-जब बत्तियों
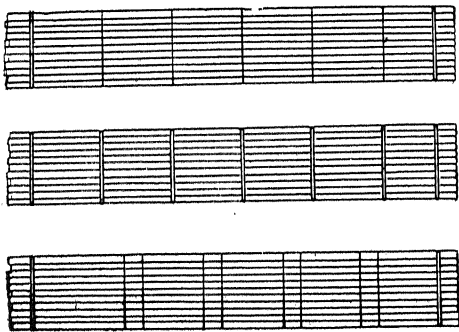
चित्र नं० १४

पर लपेटा जाय तब तब उसे तान लिया जाय, जिसमें सिलाई ढीली न हो। प्रत्येक सिरे वाले घर पर (जहां बत्ती नहीं रहती) तागेको नीचे वाली जुजमें के तागेमें फंसाया जाता है। इसका विवरण नीचे दिया जायगा।

यदि बत्तीके बदले फीता दिया जाय तो भी सिलाई हो सकती है। फीता आधा इंच या कुछ कम चौड़ा होता है। किसी सूती फीतेसे काम चल जायगा, यद्यपि इसी कामके लिये विशेष रूपसे बनने वाले फीतेमें कुछ सुविधा होती है, क्योंकि यह फीता माड़ी देकर कड़ा किया रहता है। फीतेकी सिलाईमें पुस्तककी पीठको आरी या किसी भी यन्त्रसे काटनेकी आवश्यकता नहीं रहती इस रीतिमें भी जुजोंको सरिया कर पहले शिकंजे में कसा जाता है। फिर पीठ में उन स्थानों पर जहां फीतेके टुकड़ोंके किनारे पड़ेंगे पेनसिलसे चिह्न कर दिया जाता है। जहां जहां ताग फांस रहेगा वहां भी पेनसिलसे चिह्न कर देते हैं। फिर सिलाई उपरोक्त रीतिसे ही की जाती है, अन्तर केवल
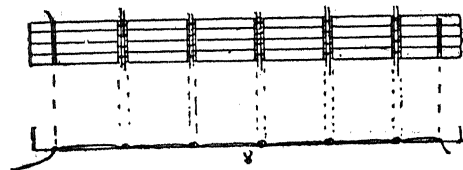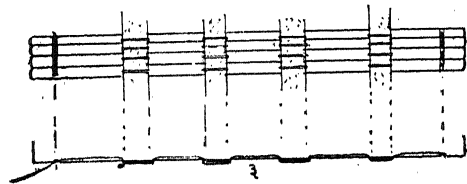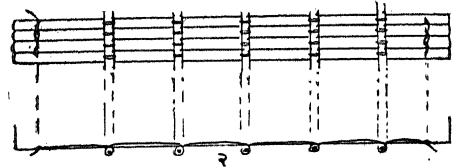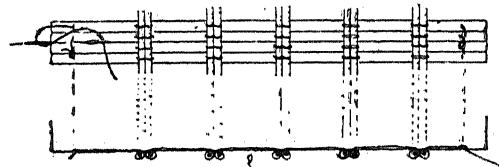
चित्र नं० १५

यही होता है कि तागेको फीते पर लपेटते नहीं। तागा जुजके भीतरसे निकल कर फीते पर चढ़ जाता है और फिर भीतर जा कर दूसरे फीतेकी बगलमें बाहर निकलता है।

चित्र १५ में चार जुजोंकी सिलाई भिन्न भिन्न रीतियोंसे करके दिखलाई गई है, सबसे ऊपर दोहरी बत्तीकी सिलाई है, उसके नीचे एकहरी उभरी हुई बत्तीकी सिलाई है, उसके नीचे (जहां ३ लिखा है) फीतेकी सिलाई है, सबसे नीचे एकहरी धंसी हुई बत्तीकी सिलाई है। सबसे ऊपर वाले अंशमें यह भी दिखलाया गया है कि ताग फांसके लिये किस प्रकार तागा नीचे वाले जुजके तागेमें फंसाया जाता है।
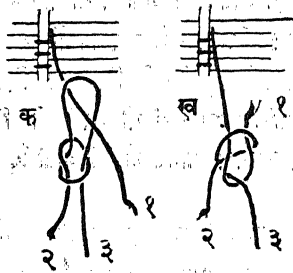
चित्र नं० १६

चित्र १६ में तागा फंसानेकी दो रीतियां बड़े पैमाने पर दिखलाई गई हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ठीक इन्हीं रीतियोंमें से किसीसे तागा फंसाया जाय। किसी भी रीतिसे काम चल जायगा; उद्देश्य केवल यही है कि जुजोंके दोनों सिरे नीचे वाले जुजके सिरोंसे बंधते चले जांय। सबसे नीचे वाले जुजमें पहली बार सुई बाहरसे डाली जाती है और ताग फांसके लिये चार अंगुल तागा बाहर निकला हुआ छोड़ दिया जाता है। जब दूसरे जुजकी सिलाई करते करते सुई उधर आती है तो तागेके प्रथम सिरेको दूसरे जुजसे निकले तागेमें बांध दिया जाता है।

ऊपरोक्त रीतिसे एक-एक करके सब जुज सी दिये जाते हैं। जब-जब तागामें नया तागा जोड़नेकी आवश्यकता पड़े तो गांठ पुस्तकके बाहर डालनी चाहिए। सिलाई करनेसे पुस्तक बहुत फूल उठती है। इसलिये कभी-कभी हथौड़ेसे हल्की चोट देकर पुस्तकको फिर पहले जैसी पतली कर लेते हैं। फिर पुस्तकके आदि और अंतमें मोटा (ड्राइंग या कारट्रिज) कागज दोहरा करके और मोड़े स्थानकी एक ओर ¼ इञ्च तक लेई लगा कर चिपका देते हैं। मोड़ पुस्तककी पीठके समतल रहे। इनमें से प्रत्येक कागजका आधा भाग पीछे दफ्तीमें चिपकाया जायगा। इन कागजोंको पोस्तीन कहते हैं। इसके बाद समूची पुस्तकको शिकंजेमें दबा देना चाहिए और पीठ पर (जिधर सिलाई और बत्ती या फीता है) सरेस लगा देना चाहिए। जब तक यह न सूखे पुस्तकको शिकंजेमें दबा रहना चाहिए।

इसके बाद पुस्तककी तीनों कोरोंको तेज चाकूसे काटना चाहिए काटनेके लिए जहांसे काटना हो उसपर पटरी (हो सके तो लोहेकी पटरी) दबाकर चाकूको बार-बार चला कर कागजको काटो। यदि चाकू वस्तुत: तेज होगा तो कागज सफाईसे कटता चला जायगा, परन्तु एक इंचसे अधिक मोटी पुस्तक चाकूसे साफ नहीं काटी जा सकती। ऐसी पुस्तकोंके लिये यही अच्छा होगा किताबको किसी छापेखानेमें ले जा कर मशीनसे कटा लिया जाय। सम्भवत: चाकूसे काटनेमें कहीं-कहीं कागज कुछ खुरखुरा कट जायगा। इसलिये कटी पुस्तकको शिकंजेमें दबा कर कटे किनारेको बारीक रेगमाल (सैंड पेपर) से चिकना कर लेना चाहिए।

इसके बाद, यदि बत्तीकी सिलाई हुई तो पुस्तककी पीठ की अगल-बगलमें निकली बत्तीमें से एक-एक इंच रहने दिया जाता है; शेषको काट कर निकाल दिया जाता है। फिर इन निकले भागोंको टेकुआ या सूजेकी सहायतासे उधेड़ दिया जाता है।
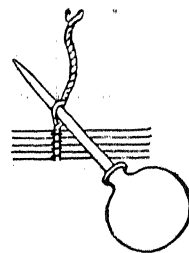
चित्र नं० १७

(चित्र १७) यदि फीते की सिलाई हुई तो फीते को उधेड़ने की आवश्यकता नहीं रहती। अब पुस्तक की पीठ को हथौड़ेसे ठोंक कर जरा उन्नतोदर (गोल) कर दिया जाता है। (चित्र १८) फिर इसे अगल बगल पटरा लगा कर शिकंजेमें कसा जाता है।
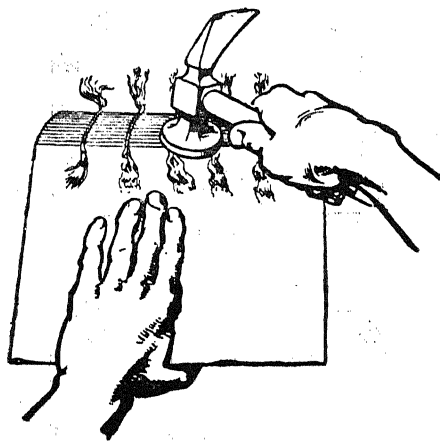
चित्र नं० १८

चित्र १९ भाग (१) कुछ लोग गावदुम पटरा लगाते हैं, जिसकी कोर तिरछी कटी रहती है। ऐसे ही पटरे इस चित्रमें दिखलाये गये हैं। तब भीगे चिथड़े से पोंछ कर सरेस को नरम करनेके बाद पीठको हथौड़ेसे ठोंक-ठोंक कर पहले एक ओर (चित्र १९ भाग २), फिर दूसरी ओर (चित्र १९ भाग ३) कागज मोड़ दिया जाता है। केवल $\frac{1}{8}$ से लेकर $\frac{1}{4}$ इंच तक (पुस्तककी नापके अनुसार) मुड़ता है
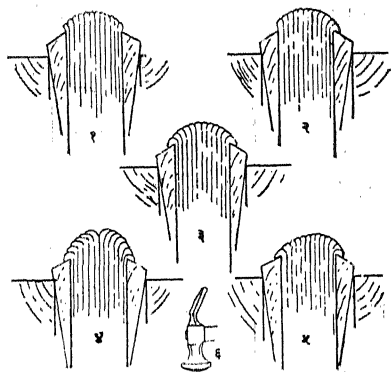
चित्र नं० १९

और शिकंजेमें कसते समय कागज शिकंजे से इतना ही बाहर निकला रहता है। चित्र १९ के भाग ४ में अधिक गोलाई लानेका दुष्परिणाम दिखलाया गया है—पीठ बीचसे फट गई है भाग ५ में एक ओर अधिक गोलाई लानेका दुष्परिणाम दिखलाया गया है। इन दोनों त्रुटियोंसे बचना चाहिए। भाग ६ में वह हथौड़ा दिखलाया गया है जिससे पुस्तककी पीठ ठोंकी जाती है, परन्तु किसी भी हथौड़े से सम्भाल कर काम करनेसे, काम चल जायगा।
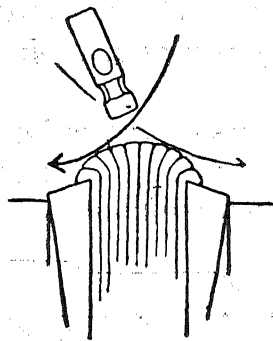
चित्र नं० २०

चित्र २० में हथौड़ा चलानेकी रीतिका प्रवर्द्धित चित्र दिखलाया गया है। चित्र १८ में बत्ती वाली सिलाई की गई पुस्तक दिखलाई गयी है।
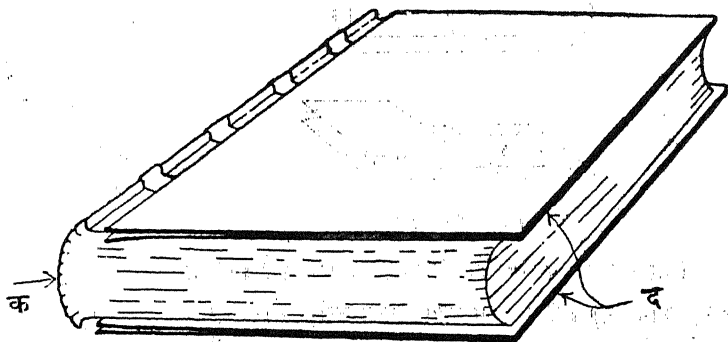
चित्र नं० २१

चित्र २१ में फीते वाली सिलाई की गई पुस्तक, दोनों के लिए कोरोंको झुकानेकी रीति—जिसे 'कगर' निकालना कहते हैं—एक ही है, चित्र २१ से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार कगर निकले रहनेसे दफ्ती लगाने पर भी पुस्तककी पीठकी चौड़ाई, पुस्तककी मोटाईसे जरा सी अधिक रहती है, किसी भी अच्छी जिल्द बंधी पुस्तककी जांचसे इस बातका पता चल जायगा।

कगर निकालनेके बाद पुस्तककी पीठ पर गाढ़ा गरम सरेस (ग्लू) लगाते हैं। सरेसको अच्छी तरह रगड़ना चाहिए जिसमें प्रत्येक जुज बगल वाले जुजोंको पकड़ ले और बत्ती या फीतेमें

संरेस मिल जाय। फिर पीठ पर चिमड़ा और जरा मोटा कागज चिपका देते हैं। कुछ लोग पीठ पर पहले विशेष खंखरा कपड़ा चिपकाते हैं, कपड़ा एक-एक इंच दोनों ओर बढ़ा रहता है और यह अन्तमें दफ्तीमें चिपका दिया जाता है। इस प्रकार कपड़ा लगाना बहुत अच्छा है। इस संरेसको अच्छी तरह सूख जाने देते हैं।

अब पुस्तक पर चढ़ने वाली दफ्तीकी खोल (केसिंग) बनाते हैं, इसके लिए पुस्तकके आकारके दुगुनेसे कुछ बड़ा कपड़ा या चमड़ा लेते हैं।
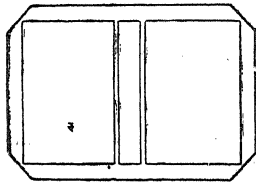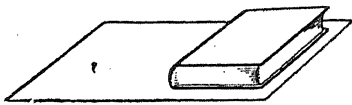
चित्र नं० २२

चित्र २२ इस पर दफ्तीके तीन टुकड़े चिपकाते हैं। (चित्र २२, भाग २)। बीच वाला भाग दफ्ती नहीं, मोटे कागज का होता है और पुस्तककी मोटाईसे जरा सा ही अधिक चौड़ा होता है। अगल-बगलके टुकड़े मोटी दफ्तीके होते हैं। और पुस्तकसे जरा-जरा बड़े होते हैं। फिर कपड़े या चमड़ेके बढ़े भागोंको मोड़ कर चिपका देते हैं और अन्तमें इसीके भीतर पुस्तक रख कर चिपका देते हैं। (चित्र २२ भाग ३) इस चिपकानेमें बीच वाले टुकड़े पर संरेस नहीं लगाते।

चित्र २३, भाग (क) में वही बात दिखलाई गई है जो चित्र २२ (भाग २) में, परन्तु २३ (ख) में यह दिखलाया गया है कि यदि कोई चाहे कि चमड़ा पुस्तककी केवल पीठ और किनारों पर ही रहे तो कहां-कहां कपड़ा, कहां-कहां चमड़ा रखना चाहिए।

इस प्रकार दफ्तीके पुस्तक पर चढ़ जानेके बाद पुस्तकके

चित्र २३ (क)
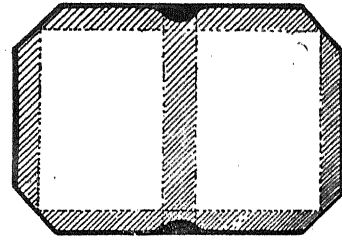
चित्र २३ (ख)
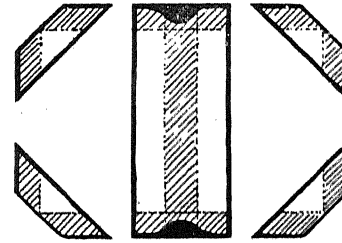
चित्र नं० २३

ऊपर नीचे लकड़ी रख कर (चित्र २७) पुस्तकको शिकंजेमें या अन्य किसी पुस्तकोंके नीचे कई घंटे तक (हो सके कुछ दिन तक) दबा रखना चाहिए।

उपरोक्त रीतिसे बंधी पुस्तकमें दफ्ती केवल संरेसके भरोसे फीते या बत्तीमें चिपकी रहती है। मजबूत कामके लिये इतना ही काफी नहीं समझा जाता। ऐसे कामके लिए बत्तीकी सिलाई करते हैं और फिर दफ्तीमें कई छेद करके बत्तीको उसीमें पहना देते हैं।
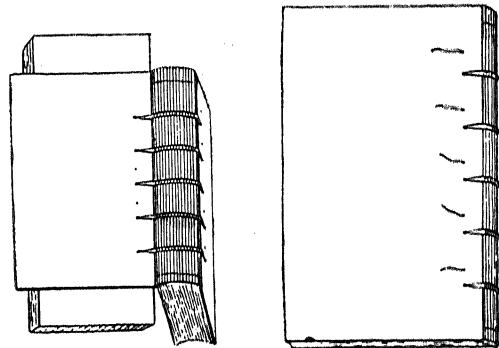
चित्र नं० २४

(चित्र २४) प्रत्यक्ष है कि ऐसी पुस्तकोंमें दफ्ती पर कपड़ा या चमड़ा पहलेसे ही नहीं चढ़ाया जा सकता। इसके लिए दफ्तीमें बत्ती पहनानेके बाद ही कपड़ा या चमड़ा चिपकाया जाता है।
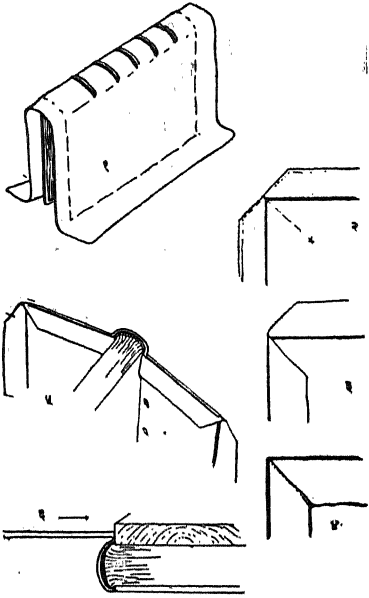
चित्र नं० २५

इसकी विविध क्रियाएँ चित्र २५ में दिखलाई गई हैं, इस चित्र (भाग १ में) कपड़ा चिपकाने का प्रथम पद दिखलाया गया है, (२) में दिखलाया गया है कि कपड़ेका कोना कैसे काटते हैं, (३) में कपड़ेके बड़े किनारेका भीतर मोड़ा जाना दिखलाया गया है, ४ में दूसरा किनारा भी मोड़ दिया गया है, ५ में उस समयकी पुस्तककी दशा है जब केवल एक ही किनारा मोड़ा गया था; ६ में दिखलाया गया है कि पुस्तकके आदि अन्त वाले कागज दफ्तीमें कैसे चिपकाये जाते हैं। ऐसी जिल्दों में पुस्तक की पीठ भी
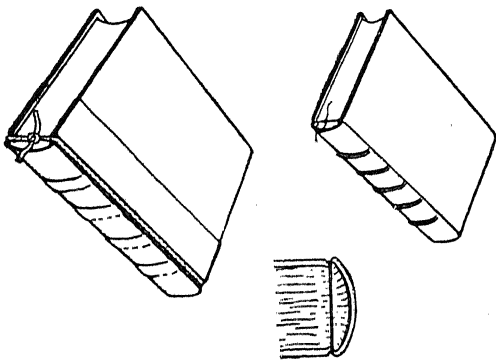
चित्र नं० २६

चमड़े या कागजमें चिपका दी जाती है। इसलिये पुस्तक उस प्रकार खुलती है जैसा चित्र १ (क) में दिखलाया गया है। चिपकानेके बाद बाहरसे एक पतली डोरी कसकर चित्र २६ में दिखलाई गई रीतिसे बांध दी जाती है जिसमें बाहरी जिल्द कगरके पास भी अच्छी तरह चिपक जाय। फिर पुस्तकके ऊपर
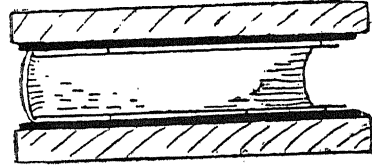
चित्र नं० २७

नीचे लकड़ी रख कर (चित्र २७) उसे शिकंजेमें या भारी बोझ के नीचे या दाब प्रस नामक मशीनमें (चित्र २८) कई दिन तक दबा रखते हैं। जब पुस्तक दबे-दबे ही खूब सूख जाय तब
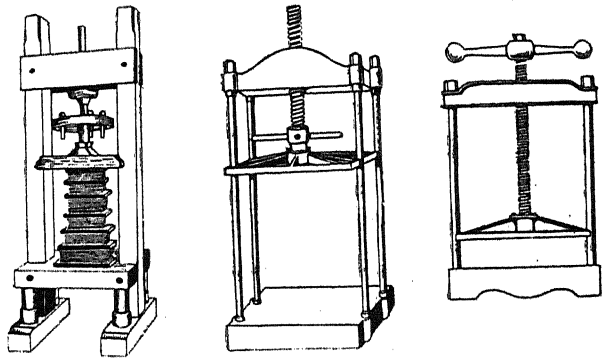
दाब प्रेस चित्र नं० २८

उसे निकाल लेते हैं और वह तैयार समझी जाती है।

तैयार हो जानेके बाद कुछ लोग सौंदर्य-वृद्धिके विचारसे पुस्तकके किनारोंको रंगते है या उस पर चित्र बनाते हैं।

(चित्र २९), सबसे सरल रीति यह है कि दांत साफ करने के ब्रश पर रंग लगा लिया जाय और उसे पुस्तकके किनारेके पास ले जाकर बिना धारके चाकूसे रगड़ा जाय। इस प्रकार रंग के छींटे उड़ेंगे जिससे पुस्तककी कोरों पर रंगीन बिंदियां बन जायंगी। इसके लिये अच्छा यही होगा कि पुस्तक शिकंजेमें रहे। इसके बदले कुछ लोग झींसी-उत्पादक नामक मशीनका प्रयोग करते हैं।
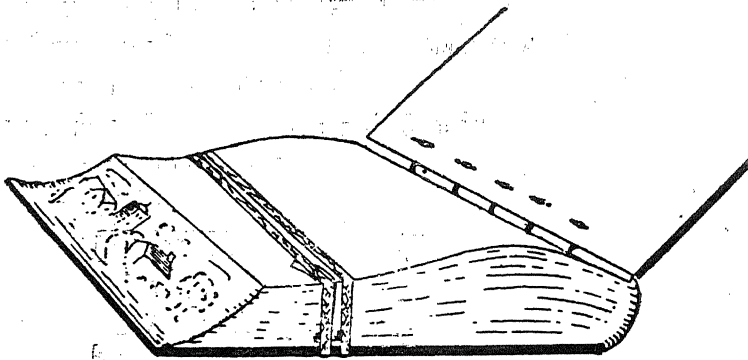
चित्र नं० २६

चित्र नं० ३०

यह यंत्र चित्र ३० में दिखलाई गई रीतिसे घर परभी बनाया जा सकता है। बोतल (क) में काग और टेढ़ी खोखली शीशे की नली (ख) लगी है जो लकड़ीमें दूसरी नली (घ) खोंसी गई है। यदि इन नलियोंका मुंह पतला किया रहेगा और बोतल (क) में रंग भरा रहेगा तो (घ) द्वारा फूँकने पर (ख) द्वारा भींसी निकलेगी क्योंकि जब (घ) से हवाकी धार जोरसे निकलती है तो वह अपने लपेटमें (ख) से रंग चूस लेती है।
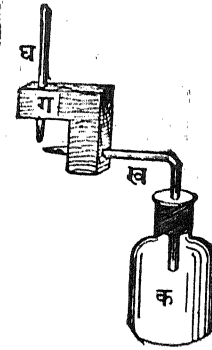
जिल्दसाजी संबन्धी अधिक जानकारीके लिये पाठकोंको श्री सत्यजीवन वर्मा कृत 'जिल्दसाजी' नामक पुस्तक जो विज्ञानपरिषद, द्वारा प्रकाशित हुई है मूल्य १॥) है, अवश्य पढ़नी चाहिए।

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

ऑक्सीजनकी सहायतासे दूध बहुत समय तक खराब नहीं होता—जर्मनीमें दूध और दूधसे बनाई चीजों को सड़नेसे बचानेका एक नया उपाय सोचा गया है। दूधको कम ताप क्रम पर ऑक्सीजन गैसके अधिक दबावमें रखा जाता है। इस प्रकार दूध या इससे बनी चीजें बिल्कुल ताजी रहती हैं।

लकड़ीको दीमक नहीं खायेगी—लकड़ीकी चीजें समयके साथ साथ खराब होजाती हैं—इसमें ज्यादा चीजें दीमक के खानेसे खराब होती हैं। इससे रक्षाके लिए बहुतसे प्रयोग किये गये हैं। पैंटाक्लोर-फिनोल (Pentachlor-phenol) से लकड़ी बहुत समय तक खराब नहीं होती। एक विशेष यन्त्र द्वारा इस रसायनको लकड़ीपर इस तरह लगाया जाता है कि यह लकड़ीमें कुछ अन्दर तक चली जाती है इससे लकड़ीका रंग तथा सतह खराब नहीं होती वह अपने प्राकृतिक रूपमें ही रहती है।

किरणें जो दश इंच लोहेको बेध सकती हैं—रेडियम सल्फेटसे एक प्रकारकी किरणें निकलती हैं जो गामा किरणें (Gamma rays) कहलाती हैं। ये किरणें दस इंच मोटे लोहेको भी पार कर सकती हैं इनकी सहायतासे लोहेमें हवाके जो बुलबुले रह जाते हैं उनका पता लग जाता है। जिस लोहेकी परीक्षा करनी होती है उसके नीचे फोटोग्राफीकी प्लेट लगा दी जाती है। उन किरणों द्वारा फिल्म या प्लेट पर लोहे का चित्र अंकित होजाता है। जिस स्थान पर हवाके बुलबुले होते हैं वहां प्लेट पर गहरा काला रंग आता है।

नये प्रकारका फिल्म—इस फिल्म पर वायु, मौसम तथा तापक्रमका प्रभाव अधिक नहीं पड़ता। बिल्कुल शीशेके समान साफ होता है और बहुत लचीला होता है। यह फिल्म आगसे जलता भी नहीं है। यह फिल्म चूना, कोयला, नमक तथा पानीके संयोगसे बनाया जाता है। फोटोग्राफीके फिल्मके अतिरिक्त और अन्य कामोंके लिये इसका उपयोग किया जाता है, जैसे बरसाती, खाना ढंकनेके कपड़े, खिड़कियोंके परदे... इत्यादि बनानेके लिये।

—o—

कनेर
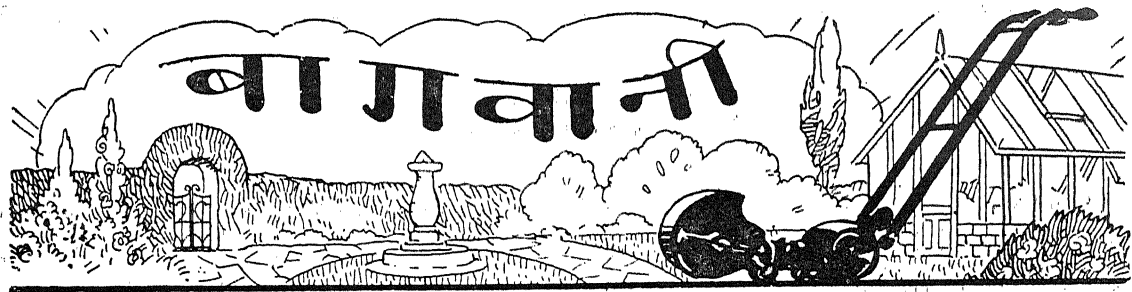
एकहरा फूल

कनेर या कनेल (संस्कृत करबीर) एक प्रसिद्ध छोटा पेड़ या पौधा है जिसमें गुलाबी, लाल, पीले या सफेद फूल लगते हैं। यह पुराने जमानेसे चला आ रहा है, इसीलिए इसे सभी जानते हैं। भारतवर्ष में यह प्राय: सभी जगह होता है। कनेरकी कई जातियां हैं परन्तु वह जाति जो बागोंमें साधारणत: लगाई जाती है उसकी ऊंचाई ७ फुट से १५ फुट तक होती है कुछ कनेरोंके फूल एकहरे होते हैं, परन्तु बागमें अक्सर वे कनेर लगाए जाते हैं जिनके फूल दोहरे होते हैं। दोहरे फूल ही अधिक अच्छे लगते हैं। कनेरका लगाना आसान है क्योंकि किसी विशेष सेवाकी आवश्यकता नहीं रहती। इसकी डालियां छड़ीकी तरह पृथ्वीसे निकलती हैं और इन्हींके सिरे पर झुण्डके झुण्ड फूल लगते हैं। जब डालियां फूल चुकें और उनमें फिर फूल लगते न दिखाई पड़ें (जेठ या बैसाखमें) तो इन डालियों को काट डालना चाहिए, फूल नई डालियोंमें ही लगते हैं। यदि पक्की (कड़ी) डालियों को (फागुनमें या शुरू बरसातमें) जमीनमें रोप दिया जाय तो इनमेंसे जड़ें निकल आएंगी। नए पौधे इसी तरह कलम (कटिंग) लगाकर तैयार किए जाते हैं। कनेर विषैला होता है। पत्तियां कड़ई होती हैं, इसीलिए इसे जानवर भी नहीं खाते, पर यदि वे इसे खा लें तो हानि हो सकती है। कनेरके पौधोंको थोड़ा-बहुत खाद मिलना चाहिए परन्तु बहुत अधिक खादसे या फूल फूलते समय बहुत सिंचाई से पत्तियों की ही वृद्धि अधिक होती है और फूल अधिक नहीं लग पाते। इनकी जड़ोंको पानी कम भी मिले तो भी यह हरे भरे बने रहते हैं। फूलोंके गुच्छे सुन्दर तो लगतेही हैं किन्तु किसी किसी रङ्गके फूल उपयोगमें भी आते हैं। सफेद कनेर के फूल जुकाम, सिर दर्दमें बहुत मुफीद हैं। इसके फूलों की नस्य बना कर लेते रहनेसे सिर दर्द, जुकाम, नजलामें फायदा होता है। इसके फूलोंको तोड़कर छायामें सुखा लेते हैं और निम्नलिखित रीति पर नस्य बना लेते हैं।

नस्य बनाने का नुसखा—

कनेर फूल सूखे	१ तोला
कायफलका बकला	१ ”
कश्मीरी पत्ता	१ तोला
कपूर देसी	६ माशे
केशर	३ माशे

सबको कूट पीस कर कपड़छान कर लें और शीशीमें भर कर रखे छोड़ें, आवश्यकताके समय इसकी नस्य लेते रहें।

समालोचना

यू० पी० सेक्रेटेरियटके अनुवाद-विभागने युद्ध-प्रयत्नके सिलसिलेमें कुछ पुस्तिकायें हिन्दीमें प्रकाशित की हैं जो हमारे पास समालोचनार्थ आई हैं। इनका मुख्य उद्देश्य जनताको युद्ध संबंधी जानकारी दिलाना है और उनके सामने वर्तमान संघर्षमें नाजियों के अत्याचारोंका और उनकी संस्कृति तथा सभ्यताका सच्चा रूप उपस्थित करना है। लगभग १७ पुस्तिकायें अभी तक प्रकाशित हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) नई व्यवस्था, (२) नये और पुराने अत्याचारी शासक, (३) समुद्री ताकत ही जीतेगी, (४) नाजी नृशंसता, (५) क्या जापान युद्धका भार उठा सकता है? (६) जर्मनी के जीते हुए देशोंमें नाजियोंका अत्याचार, (७) हिटलर और मजदूर, (८) पत्र-विनिमय, (९) मिस्टर चर्चिलके भाषण, (१०) नाजी संस्कृति और सभ्यता, (११) अमेरिका ब्रिटेनके लिए क्या कर रहा है? (१२) फ्रांस क्यों हारा, (१३) एक भारतीय वायुयान चालक, (१४) नाजी और बच्चोंकी शिक्षा, (१५) अब न रोकूंगी! (१६) एक हवाई बेड़ेके लीडरकी कहानी, और (१७) कनक-घट।

सभी पुस्तिकायें बड़ी अच्छी निकली हैं, उनकी भाषा, छपाई-सफाई और गेट-अप अति उत्तम है। कवर-पेज भी बहुत ही आकर्षक दिये गये हैं। हम अनुवाद विभागके काय-कर्त्ताओं को उनकी इस सफलता पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि उनका प्रयत्न जो कि बहुत ही सराहनीय है जारी रहेगा।

यह विभाग उर्दूमें एक छोटा सा साप्ताहिक पत्र "हफ्तेकी खबरें" भी निकालता है जिसका कि वर्तमान युद्धके दूसरे वर्षकी समाप्तिके सम्बन्धमें एक विशेषांक भी निकला है। यह भी बहुत ही सुन्दर निकला है, हम इस पर भी इस विभागको बधाई देते हैं।

गोरखप्रसाद

वैज्ञानिक विचारणा—ले० स्वामी कृष्णानन्दजी महराज प्रकाशक कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक औषधालय, कालेड़ा-बोगला, अजमेर। पृष्ठ संख्या ३०० मूल्य १॥) रु० इस पुस्तकमें स्वामी जी महाराजने आधुनिक एलोपेथीके मटेरिया मेडिकाके ढंग पर आयुर्वेदोक्त औषधियोंके गुण प्रभावका बड़ा ही उत्तम वर्गी-करण दिया है। चरकमें जिस तरह सूत्र स्थानमें षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें वामक रेचक, स्तन्य-जनन, शुक्र-जनन आदि भिन्न भिन्न बनस्पति कषायोंको एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है। ठीक इसी प्राचीन क्रमके अनुसार आपने अनुलोमन अभिष्यन्दी, अवसादक अर्शघ्नी आदि भेदसे आपने कोई १०० भेदमें अनेक वनस्पतियोंको उनके गुणानुसार बांट कर बड़े अच्छे क्रममें रखा है। यही नहीं इससे भिन्न चरक सुश्रुत कथित महा कषायोंका भी आपने इसमें आगे संग्रह कर दिया है

इस ग्रन्थके अध्ययनसे वैद्योंको यह अच्छी तरह पता लग सकता है कि किस औषधके बनस्पतिमें कौन कौनसे मुख्य गुण पाये जाते हैं यदि किसीको पसीना देना है या वमन देना हो तो किन २ वनस्पतियोंको देना चाहिए। पसीना रोकना है तो किन औषधियोंके प्रयोगसे रोका जा सकता है इत्यादि। ग्रन्थ नई पद्धतिके आधार पर लिखा गया है। और इसके द्वारा लाक्षणिक चिकित्साको काफी प्रोत्साहन मिलेगा। हम इस सुन्दर ग्रन्थकी रचना पर बधाई देते हैं। आशा है इस ग्रन्थके अवलोकनसे वैद्य समाजको बहुत लाभ पहुंचेगा। इस ग्रन्थमें औषधिके गुण धर्मा पर विचार किया गया है और उसे गुण भेदसे बांटा गया है किन्तु ग्रन्थके नाम से इस बातका बिलकुल बोध नहीं होता। वैज्ञानिक विचारणा नामसे चिकित्सकको—किसी अन्य विषयका ग्रन्थ होगा—ऐसा सन्देह होता है। स्वामी जी महाराज यदि इसका कहीं गुण द्योतक नाम देते तो बहुत अच्छा होता।

हरिशरणानन्द

विज्ञान

भाग ५४
र्षिक मूल्य ३) रु०

दिसम्बर, १९४१ धनार्क, सं० १९९८ वि०

पूर्ण संख्या २२१
संख्या ३

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषदका सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५४ | धनार्क, संवत् १९९८ विक्रमी | दिसम्बर, सन् १९४१ | संख्या ३

वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा प्रचलित अन्ध-विश्वास

(लेखक—श्री हरिश्चन्द्र रायजादा)

आजसे सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व विज्ञान शुष्क समझा जाता था। तब तक वह विश्वके गर्भमें निहित प्रकृति की अद्भुत लीलाओंको झांक तक न पाया था वह उसके दूध पीनेके दिन थे, अनेकों खोजोंके बाद भी न्यूटनने अपनेको एक-मात्र अपार और वृहत् सागरके किनारेके भाग पर ही खेल करते बताया था। तबसे समय बीता, दांत जमे और तोतली बोली के पश्चात् अब कहीं वह कुमारावस्था पर आ लगा है, विज्ञान अब असभ्यता और अन्धकारकी पगडंडीसे रास्ता टटोल सभ्यता की सड़क पर भ्रमण करने लगा है। किन्तु अब भी उसके ज्ञानकी परिधि अज्ञानतासे कहीं कम है। फिर भी अब तक उसने विश्वमें एक महत्वपूर्ण क्रान्ति मचा दी है, उसने प्रकृतिके अनन्त रहस्योंका अनुभव किया है। अब उसकी दृष्टिमें आत्मा ही प्रकृतिका रूपान्तर नहीं रहा है। अपने मैले तथा बुरे वस्त्रों को उतार आधुनिक विज्ञानने एक नवीन उन्नतिमय तथा प्रगति शील शैलीका अनुकरण किया है। यों ही बातोंमें विश्वास करना उसकी नीतिके विरुद्ध है। इसी बूते पर तो वह धर्मान्धों और प्राचीन रूढ़ीवादोंसे लोहा लेनेको प्रस्तुत है।

मनुष्य नित्यही ब्रह्माण्डमें घटित रहस्यमयी अनेक लीलाओं (Phenomenons) को देखता है। साथमें भिन्न भिन्न प्रकारके प्रश्न भी उनके बारेमें उसके मस्तिष्कमें उठने लगते हैं, विद्वान् मनुष्य उनके हल भी ढूंढ़ निकालते हैं, पर कभी कभी ये बिल्कुल सिर पैर के नपे तुले न होने के कारण धीरे धीरे जनतामें अन्धविश्वासके रूपमें प्रचलित हो जाते हैं। साधारण मस्तिष्क उनमें विद्वता और महान् महत्वकी झलक पाता है, उसकी बुद्धिके परे ही जो ठहरे। वे उसके आनन्दके साधन तथा आदरणीय विषय बन जाते हैं। इन अन्धविश्वासोंकी प्रगति प्राचीन कालमें बहुत हुई, किन्तु अब जब वे एक वैज्ञा-निक की आंख तले गुजरते हैं वह उनको वाद-विवादकी तराजू पर तोलता है, 'क्यों और कैसे' प्रश्नोंसे जोखता है क्योंकि वह सत्यताकी तह पर पहुंचना चाहता है अन्तमें उनकी वास्तविकता का पता लगता है। वैज्ञानिक स्वयं उनकी सत्यताका व्योरा देता है। प्राकृतिक रहस्य उसके लिये तो एकमात्र आनन्द

उठानेके साधन नहीं हैं। उसका ध्येय तो सत्यताकी खोज है—सत्यका पुजारी ही जो ठहरा। इन्द्र-धनुषमें एक साधारण मनुष्य भगवान्की अपार महिमाको देखेगा, उसके लिये उसमें दैवी प्रतापकी झलक होगी, पर वैज्ञानिक के लिये तो वह केवल प्रकाशके विभाजनका रूप मात्र ही है।

पुराने समयमें जब कि विज्ञान चेत न पाया था ऐसे अगणित अन्धविश्वास बने। किन्तु विज्ञानने अब उनकी वास्तविकताका पूर्ण उत्तर दिया है, अरिस्टोटलके सूर्यके पृथ्वीके चारों ओर घूमनेके सिद्धान्तके खण्डनकी बात तो पुरानी हो गई है। अब तो प्रगतिशील विद्वान् उन्हें दूर करनेमें दत्तचित हैं। किन्तु उन्होंने सफलता कहां तक प्राप्तकी है कहा नहीं जा सका।

ऐसे अन्धविश्वास हमारे भारतवर्षमें बहुतायतमें हैं। आज दिन बहुतसे भारतवासी यह कहते हुये पाये जाते हैं कि भूचाल ईश्वरीय प्रकोप है। भगवान् द्वारा पापोंके प्रायश्चित स्वरूप भेजा जाता है। गान्धी जी तकको "विहार" के भूचालमें दैवी प्रकोपकी सत्यता दिखाई दी थी। इन अन्धविश्वासोंमें विश्वास रखने वाले लोग कहते हैं कि यह पृथ्वी शेष नाग पर सधी हुई है। शेषनाग स्वयं अनन्तसागरमें शयन करते हैं। इस अतुल बोझकी थकावटके फल स्वरूप जब कभी वे करवट बदलते हैं तभी पृथ्वी हिलने लगती है। इस गल्पमें सत्यता तनिक भी नहीं है। विज्ञानने इसका उचित उत्तर बताया है। उसके लिये पृथ्वी गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तानुसार सधी हुई है। पृथ्वीके गर्भमें तप्त पिघले हुये अनन्त पदार्थ एकत्रित हैं, जब इस तापमें किसी प्रकार पृथ्वी परकी दरारों द्वारा पानी पहुंच जाता है तब अनन्त गर्मी भाप बन ऊपरको उठती है, भापकी ताकत द्वारा पृथ्वी हिलने लगती है और भूचाल आ जाता है। कभी-कभी दरारोंमें होकर यह पदार्थ बाहर भी आ जाते हैं, इस प्रकार ज्वालामुखीका प्रादुर्भाव होता है। इस तरह विज्ञानने इस अन्धविश्वासका पूर्णतया खण्डन किया है फिर भी हमारे पढ़े लिखे समाजमें अनेकों प्रकाण्ड पंडित पुराने विचार रखते पाये जाते हैं।

सूर्य और चन्द्रग्रहणके प्रति भी हमारे समाजमें बड़ी विचित्र गल्प प्रसिद्ध है, कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाको राहु एवं केतु नामक दो राक्षस हड़प करना चाहते हैं इसी कारण जब सूर्य और चन्द्रमारूपी ब्राह्मण उन राक्षसों के फन्देमें फंस जाते हैं तभी अन्धकार फैल जाता है। इस ब्रह्महत्याको देखना महापाप है इससे बचनेका एकमात्र उपाय पवित्र गंगामें स्नान है।

यह भी सर्वथा मिथ्या है यदि ऐसा होता हो भारतवर्षीय ज्योतिषी महीनों पहिले सूर्य और चन्द्रग्रहण की तिथियोंकी जानकारी न कर लेते। अचम्भा यह है कि भारतवर्षमें ज्योतिष विज्ञान और मिथ्या-विचार एक साथ बने रहे। ग्रहणकी तिथियों को वर्षों पहिले बताने वाला ज्योतिष ब्रह्म हत्याके देखनेके डरसे पहले दान देता तथा गंगास्नान करता हुआ पाया जायगा। विज्ञानने बताया है कि जब कोई वस्तु पृथ्वी और सूर्य या पृथ्वी और चन्द्रमाके बीच आ जाय तो वह प्रकाशको रोकने लगती है तभी ग्रहण पड़ता है।

तारों के सम्बन्धमें भी भूल भरी समझ प्रचलित है, जब अमावसकी अन्धकार-मयी रात्रीमें अनन्त आकाशमें बिखरे हुये अगणित ताराओंसे आकर्षित एवं प्रफुल्लित हो बालक इस नई दुनियांका रहस्य जाननेकी जिज्ञासा प्रकट करते हैं उस समय हमारे देशकी मातायें उन्हें ऊट-पटांग बातें बता अन्धकार में डाल देती हैं वे बच्चोंकी ज्ञानकलाको यह कह कर मसल देती हैं यथा—"लल्ला ये रामजी की गौएं हैं।" जब हमारे यहां सायं-काल होता है तब स्वर्गमें सूर्योदय होता है, और तभी सब गौएं इस विस्तृत आकाशमें चरनेको छोड़ दी जाती हैं। यहां सबेरा होने पर वहां अन्धकार हो जाता है गौएं भी लौट जाती हैं, अतः हम फिर नहीं देख सकते। पर इस गल्पमें सत्य नाम मात्रको भी नहीं है। विज्ञानने अब दूरबीनका निर्माण कर आंखोंसे ओझल तारों को देखा है यह हमसे हमारे सूर्य की अपेक्षा अनेक आलोक वर्षोंकी दूरी पर हैं।

इस तरह बहुतेरे अन्धविश्वास विज्ञान द्वारा असत्य सिद्ध कर दिये गये हैं। किन्तु फिर भी अभी उनकी संख्या थोड़ी नहीं हुई है। यह तो तय है कि जैसे जैसे विज्ञान उन्नति करता जायगा मिथ्या-विचार कम होते जायेंगे। फिर भी अचम्भेकी बात है कि सभ्यसे सभ्य देशोंमें भी ऐसे मनुष्य मिलते हैं जो इन अन्धविश्वासोंमें विश्वास रखते हैं। उन देशोंमें भी मनुष्य एक दियासलाईसे तीन सिगरेट नहीं जलायेंगे; १३ की संख्या में एक मेज पर खाना पसन्द न करेंगे। खाली घड़ा आते देख बाहर न जायेंगे......आदि आदि। ऐसे अन्धविश्वासोंकी भली प्रकार एक सूची बनाई जा सकती है। विज्ञान इनसे अपरिचित नहीं है। वह इनके विकास और इनकी उत्पत्तिके कारणको जाननेमें तत्पर है।

इस तरह विज्ञान ने अपने अनुसन्धानों द्वारा अनेक प्रचलित अन्धविश्वासोंका खंडन किया है। किन्तु यह कहना कि

सभी प्राचीन रूढ़ियां कोई महत्व नहीं रखती हैं, सर्वथा असत्य है। साथमें यह कहना भी अनुचित है कि संसारकी प्रगति के पथमें धर्म एक रोड़ा मात्र है, और विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ यह धर्म भाव विलुप्त होने लगेगा। ऐसी धारणा रखने वाले विज्ञानकी आधुनिक गतिसे नितान्त अनभिज्ञ हैं। भारतीय ही नहीं सभी पाश्चात्य विद्वान् भी जड़वादको स्वीकार करते हैं। श्री आइन्सटाइन जगत् प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंग्टन आदि सभी चैतन्यवादी हैं; इंगलैण्डके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्राड महोदयने लिखा था कि विज्ञानके नाम पर जड़वादका समर्थन करना भूल है। फिर हिन्दू धर्म और आधुनिक विज्ञानका तो घनिष्ठ सम्बन्ध है। विज्ञानकी सभी बातें शास्त्रोंके नियमोंसे जोड़ खाती हैं। अन्तर केवल उनकी युक्तियों और तरीकोंमें है उनसे उत्पन्न विचारोंमें नहीं। उनसे उत्पन्न परिणाम और सिद्धान्त लगभग एक ही से होते हैं। वैज्ञानिकके खोजे हुए अनुसन्धान पूर्णतया तुले जुभे होनेके कारण सरलतासे हृदयंगम हो सकते हैं। पर शास्त्रों द्वारा निकली वस्तुयें कदाचित् योगियों के सिवाय साधारण बुद्धिके सर्वथा परे हैं। वैसे दोनोंही एकाग्र मनः शक्तिके फल स्वरूप हैं। एक योगियोंकी समाधि और साधना द्वारा प्राप्त दूसरी वैज्ञानिकोंके अनन्त परिश्रम चिंतन और धैर्यका फल है। योग द्वारा जानी हुई बातें होने के कारण ये सिद्धान्त सरलतासे दूसरे के सन्मुख नहीं रक्खे जा सकते। उनकी आलोचनाके प्रति एक मात्र धार्मिक गाथायें ही घड़ी जा सकती हैं। पर विज्ञानका मूल तत्त्व परीक्षा है, बिना परीक्षा किए स्वीकृति और अस्वीकृति देना विज्ञानके मतके विरुद्ध है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि समाधिकी सहायतासे प्राप्त ज्ञान स्वप्नवत् मिथ्या है। आधुनिक युगके शिक्षित जन उसे झूठामत (Superstition) न समझें। योग द्वारा प्राप्त अनुसन्धानतो अभी वैज्ञानिककी बुद्धिके भी परे हैं। बड़ेसे बड़े वैज्ञानिक भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि धर्म, नीति अथवा दर्शन योगके स्थानको विज्ञान कभी ग्रहण नहीं कर सकता है। एक स्थान पर 'हेक्सले' (Huxley) ने स्वयं कहा था कि 'हिन्दू ऋषियोंकी चर्चा ही क्या जो युगों पहिले वैज्ञानिक सिद्धान्तोंसे पूर्ण परिचित थे।' यह अक्षरशः सत्य है विमान (Aeroplane) टेलीविजन और रेडियो आदि उसकी सत्यताका प्रमाण हैं। फिर उनके मस्तिष्क से निकली खोज बिलकुल बेकार और कम महत्वकी नहीं हो सकती। हां इतना अवश्य है कि इन मिथ्या विचारोंकी उत्पत्ति और उनके प्रति दिए गए प्रमाण असत्य हैं। उनको धर्मके पल्ले बांधनेका अभिप्राय उन्हें साधारण जनतामें प्रभावशील बनाना ही था, अज्ञान जनतामें धर्मका कोप विशेष महत्व रखता है, प्राचीन कालमें शायद विज्ञानकी बातका शीघ्र ही विश्वास नहीं होता था।

वैज्ञानिकोंने बताया है कि ग्रहणके समय सम्पूर्ण वायु-मण्डल कीटाणुमय हो जाता है। ऐसे समयमें भोजनादि करना उचित नहीं। इसके अतिरिक्त इन कीटाणुओंसे बचावका एक-मात्र उपाय उस समय तक पानीमें रहनेसे ही हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारी प्राचीन रूढ़ियां काफी महत्व-शाली हैं। कीटाणुओंके डरसे शायद जनता जाड़ोंमें भी घण्टों गङ्गामें डूबे रहनेका परिश्रम न उठाती। इसी कारण ऋषियोंने साधारण जनताको आकर्षित करनेके लिए इन सिद्धान्तोंमें धर्म की पुट लगाई। ब्रह्महत्याको देख गङ्गा स्नान करनेको सभी तत्पर रहेंगे। विज्ञानने इसी प्रकार अन्य अनेकों रूढ़ियोंकी सत्यताका प्रमाण दिया है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे प्रचलित नियम योंही एक दम ताक पर रख देनेकी वस्तु नहीं हैं। हमारे आजकलके तनिक पढ़े लिखे नीम हकीम तो उनमें तनिक भी विश्वास करना पसन्द नहीं करते, पर यह उनकी त्रुटि ही कही जा सकती है। हां यह अवश्य है कि आजकल अनेकों ऐसे मिथ्या विचार भी प्रचलित हो गए हैं जो न तो शास्त्रोंसे ही मेल खाते हैं और न विज्ञानकी कसौटी पर ही खरे उतरते हैं। इन्हें हम पौराणिक कपोल कल्पित गाथायें मान अलग फैंक सकते हैं। ये तो दोनों तरहसे असंगत हैं। फिर भी खरे और खोटेकी जांच करना परम आवश्यक है। यह वैज्ञानिक युग है हम बिना जांच पड़-ताल किए किसी बस्तुको बेकार नहीं फैंक सकते। प्राचीन सिद्धान्तोंसे हमें सत्यताकी पुट लेना आवश्यक है। मिथ्या विचारोंको तो हम सरलतासे दूर हटा सकते हैं। हमें यह देखना चाहिए कि उनकी उत्पत्तिका वास्तविक कारण और उनके विकासका महत्व क्या है।

"रासायनिक युद्ध"

[लेखक श्री महेन्द्र गुप्त, बी. एस-सी.]

रासायनिक पदार्थोंका युद्धके लिये प्रयोग कोई नवीन घटना नहीं है। ऐतिहासिक प्रमाण पाये जाते हैं कि प्राचीन समयमें भी ऐसे पदार्थोंका प्रयोग होता रहा है। ईसा के पूर्व सप्तम शताब्दीमें द्रव अग्नि और कष्ट दायक वाष्पोंको युद्धास्त्रोंके स्थानमें काममें लाये जानेका वर्णन मिलता है। परन्तु रसायन शास्त्र और दूसरी विद्याओंकी उस समय उन्नति न होनेके कारण इन वस्तुओंकी कोई विशेष महत्ता न थी। इतना ही नहीं लगभग पचास वर्ष पूर्व तक लोग इस विषयमें पहले जैसे ही अज्ञानमें थे। यह इस बातसे पूर्णतया प्रकट है कि क्रिमियाके युद्धमें—जो कि ब्रिटेन और रूसमें हुआ था, गन्धककी वाष्प तथा गन्धक द्विओषिदको जला कर प्राकृतिक वायु द्वारा शत्रु सेनामें भेजनेकी आयोजनाकी गयी थी परन्तु ब्रिटेनने उस समय इसे मनुष्यत्वके प्रतिकूल समझ कर इस प्रयोग का बहिष्कार कर दिया।

रासायनिक युद्धके साधन व अस्त्रोंका वर्णन करते समय हम उन्हें दो मुख्य भागोंमें विभाजित करेंगे। एकमें विस्फोटक पदार्थों (Explosiues) पर दृष्टि डाली जायगी। और दूसरे में विषैली गैसों पर। अधिकतर यही दो वस्तुयें रासायनिक युद्ध में प्रयुक्त होती हैं

रासायनिक युद्धका प्रथम रूप विस्फोटक पदार्थ—

विस्फोटक पदार्थोंका क्रमवद्ध विस्तृत वर्णन करनेसे पूर्व दो चार मोटी मोटी बातें जानना नितान्त आवश्यक है। पहले विस्फोटक पदार्थ क्या है? दूसरे उनमें और पदार्थोंकी अपेक्षा क्या विशेषतायें होती हैं तथा उनके प्रयोगका आन्तरिक रहस्य (Mechanism) क्या है?

विस्फोटक पदार्थ क्या हैं? उनकी विशेषतायें—कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विस्फोटक पदार्थ साधारण रासायनिक पदार्थोंकी भांति ही होते हैं। सारांशमें यह कई रासायनिक योगिकोंके मिश्रणसे मिल कर बने होते हैं और विशेष स्थानोंमें रासायनिक परिवर्तनकी गति बड़ी द्रुत होती है। यही नहीं इन परिवर्तनोंके कारण ताप तथा प्रकाश अत्यधिक मात्रामें प्रकट होते हैं परन्तु साधारण रासायनिक और विस्फोटक पदार्थमें अन्तर यह है कि इनमें अपनी स्वयम्की शक्ति होती है और वह भी बहुत बड़ी मात्रामें। इनका जलना आरम्भ करनेके लिये बहुत न्यून शक्ति (जैसे बन्दूकका घोड़ा दबाने) की आवश्यकता होती है उसके बाद सारा कार्य स्वयं ही समाप्त हो जाता है।

विस्फोटक पदार्थ आधुनिक समयके परमावश्यक अस्त्र हैं जिनके बिना युद्ध केवल हाथा पाई ही रह जायगा। इन्हीं पदार्थों के कारण हम शत्रु पर बहुत दूरसे खड़े होकर प्रहार कर सकते हैं यद्यपि उक्त कथन पर कुछ चतुर पाठक अवश्य कहेंगे कि प्राचीन समयके धनुष-बाणमें भी यह विशेषता थी। सो बात नहीं: उस धनुष-बाण और आधुनिक विस्फोटक पदार्थोंमें जमीन और आसमानका अन्तर है। यह ठीक है कि दोनोंमें शक्ति एकत्रित पहले से होती है परन्तु धनुष-बाणकी सीमा और उत्तमता धनुर्धारीके बाहु-बल पर निर्भर है। धनुषमें वैसे कोई शक्ति नहीं है परन्तु उसके झुकाने पर उसमें शक्ति भर जाती है और वही शक्ति बाण को दूर फेंकनेमें व्यय होती है।

विस्फोटक पदार्थोंसे केवल युद्धमें ही उन्नति नहीं हुई वरन् मनुष्यकी शक्तिमें भी एक प्रकारसे असमानता आगई है। प्राचीन समयमें ऐसे पदार्थोंके आविष्कारसे पूर्व एक भीमकाय मनुष्य निर्बल पर जी चाहा अत्याचार कर सकता था परन्तु अब वैसा सम्भव नहीं। एक जीर्ण शीर्ण रोगी मनुष्य जो कि बिस्तर से नहीं उठ सकता दो तीन पहलवानोंके लिये यथेष्ट है, यदि उसमें पिस्तौलका घोड़ा भर दबानेकी भी शक्ति अवशेष हो। मीलों ऊपरसे बम वर्षा करके प्रान्तके प्रान्त बातकी बातमें नष्ट किये जा सकते हैं चाहे नीचे प्रान्तोंके मनुष्योंमें कितना ही शारीरिक बल क्यों न हो। सच कहिये तो आधुनिक युद्धमें अब हाथापाईका तो प्रश्न ही नहीं रह गया है। सब दूर ही का खेल है और सबके लिये सर्व विदित है, कि विस्फोटक पदार्थ कितने आवश्यक हैं।

विस्फोटक पदार्थोंका आन्तरिक रहस्य—अब यह देखना आवश्यक है कि ऐसे पदार्थोंके विस्फोट करनेका आन्तिरिक रहस्य क्या है? यह तो ऊपर कहा ही जा चुका है कि एक विस्फोटमें रासायनिक परिवर्तन बड़े वेग पूर्वक होते हैं। सादी भाषामें (Non Technical) प्रथम तो विस्फोटमें वेग-पूर्वक गैसें बड़े आयतनमें निकलती हैं और दूसरे रासायनिक परिवर्तन

द्वारा तापके कारण इन गैसोंका आयतन और अधिक बढ़ना आरम्भ हो जाताहै। यथार्थमें यह दोनों कार्य एक ही साथ होते रहते हैं।

दबाव—यह विस्फोटक पदार्थ ऐसे संकुचित स्थानमें बन्द होते हैं जिनका आयतन बहुत ही न्यून है और आकस्मिक इन गैसोंके निकलनेका प्रभाव यह होता है कि बहुत अधिक (Pressure) उत्पन्न हो जाता है। और यही (pressure) है जो विस्फोटक पदार्थसे काम लेनेमें सहायता करता है। इस (Pressure) से हम या तो कोई गोली छुड़वा सकते हैं या लोहेके बाहरी घेरेको जिसमें कि पदार्थ बन्द है तुड़वा कर उन टुकड़ों को चारों ओर फिंकवा सकते हैं। एक साधारण बममें यही होता है। अधिक दबाव (Pressure) न सह सकनेके कारण बमका बाहरी (वाह्य) खोल वेग पूर्वक तथा शब्द करता हुआ फट जाता है और उसके टुकड़े तथा उसके अन्दरके विषयुक्त पदार्थ वेग पूर्वक चारों ओर फैल जाते हैं। आस पास की वस्तुओंको हानी पहुंचती है। यह बात स्पष्ट है कि हानि अधिक अथवा कम होना फटने की गति पर निर्भर है और गति उन विस्फोटक पदार्थों पर जो कि बमके अन्दर हैं।

एक साधारण बन्दूक अब ऐसी वस्तु हो गई है कि जिसे अपढ़से अपढ़ मनुष्यने भी देखा है। उसका सिद्धान्त उपरोक्त वर्णनसे स्पष्ट है। कारतूसके अन्दर वह विस्फोटक पदार्थ होता है जो कि घोड़ेके दबानेसे जल उठता है अर्थात् वह रासायनिक परिवर्तन जिनके विषयमें ऊपर लिखा गया है प्रारम्भ हो जाते हैं। फल यह होता है कि गैसके बड़े आयतनको संकुचित स्थान में एकत्रित होनेसे बड़ा भारी दबाव (Pressure) उत्पन्न हो जाता है जो कि गोलीको बड़े वेगके साथ बन्दूककी नलीमें से निकाल कर फैंक देता है। इस शक्तिका कुछ भाग प्रकाश तथा ध्वनिमें परिवर्तित हो जाता है।

विस्फोटक पदार्थोंके विषयमें एक बात यहां और कहना अनुचित न होगा। पदार्थ को ओषजनकी अधिकतामें (अर्थात् खुले स्थानमें) जलानेसे वह साधारण प्रकारसे जलने लगेगा। इस समय उसमें उस सब वेगके प्रदर्शनका सर्वथा प्रभाव होगा। जैसे बारूद को यदि हम वायुमें जलावें तो वह शान्ति पूर्ण जल जावेगी। यह नहीं कि गैसोंका बड़ा आयतन उत्पन्न होगा वरन् स्थान अधिक होनेसे कोई दबाव नहीं होता।

एक और सादा उदाहरण मोटर का इञ्जिन है जिसमें कि विस्फोट पिस्टन को आगे पीछे चलानेके लिये प्रयोग किया जाता है। इसमें निस्फोटक पदार्थ कई गैसोंका मिश्रण होता है और विस्फोट का वेग दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा धीरे धीरे होता है। पिस्टन के घूमने के साथ ही एक फलाई व्हील भी घूमने लगता है और इस प्रकार मोटर चलती है।

विस्फोटक पदार्थों के प्रकार—यह पदार्थ भिन्न-भिन्न कई विभागोंमें विभाजित किये जा सकते है। परन्तु "उच्च" (High) विस्फोटक पदार्थोंका तात्पर्य उनसे होता है जिनकी गति अधिक होती है। परन्तु सब स्थानों पर अधिक चाल वाले विस्फोटक प्रयोग नहीं किये जासकते। उदाहरण के लिये बन्दूक को ले लीजिये, यदि इसमें हम उच्च विस्फोटक पदार्थ (जैसे नाइट्रोग्लीसरीन—इसके विषयमें कहा जाता है कि यदि एक कारतूस एक मील लम्बा एक किनारे पर चलाया जावे तो एक सेकेण्डसे कममें दूसरे किनारे पर पहुंच जाता है) का प्रयोग करें तो गसकी आकस्मिक उत्पत्ति तथा फैलावसे बन्दूकही फट जायगी। गन कौटनके प्रयोगके लिये जब उसका भरना आरम्भ किया तो कई विस्फोटक ऐसे भयानक हो गए कि एक यथेष्ट समय तक लोग उसके प्रयोगसे वञ्चित रहे।

अब नीचे थोड़े से मुख्य-मुख्य विस्फोटक पदार्थों के ऊपर प्रकाश डालने की चेष्टा की जावेगी।

बारूद—ऐसा कौन मनुष्य है जो बारूद को नहीं जानता सच तो है कि बारूद ही सबसे पहला विस्फोटक पदार्थ था। और सर्व प्रथम इसके आविष्कार का श्रेय विद्वान् लेखक श्री फ्रांसिस वेकन को है। यह चौदहवीं शताब्दी की बात है। आश्चर्य की बात है कि लगभग ४०० वर्ष तक बारूद ही मुख्य विस्फोटक पदार्थ था। बारूदमें केवल तीन पदार्थ होते हैं, शोरा ४ भाग, कोयला ३ भाग और गन्धक ३ भाग। कोई भी मनुष्य उपरोक्त तीन वस्तुओं को लेकर और पीस कर (पीसनेमें सबको अलग अलग पीसना आवश्यक है) मिलाकर बारूद बना सकता है।

बारूद उच्च विस्फोटक पदार्थ नहीं है यद्यपि इसके कारण युद्धकी रूपरेखामें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। बारूदके प्रयोग में बहुत सी कठिनाइयां (Disadvantages) भी सम्मुख आती हैं प्रथम तो यह कि विस्फोटकके वेग की अपेक्षा इसकी मात्रा बहुत अधिक लेनी पड़ती है। यदि एक आधुनिक बन्दूकसे हम एक गोली १२ मील भेजना चाहें तो सारी नली

को बारूदसे भरना पड़ेगा। दूसरे विस्फोट प्रारम्भ करनेके लिये जिस तरीके (Method) की आवश्यकता पड़ती है वह अच्छा नहीं है और उसमें सदैव भय लगा रहता है।

'आधुनिक विस्फोटक पदार्थ'—आधुनिक उन्नतिके युगमें प्रति दिन नए नए विस्फोटक पदार्थोंके आविष्कार हो रहे हैं, और आश्चर्य यह है कि यह केवल इन वैज्ञानिकों के पिछले पचास वर्षोंके अनुसन्धानका ही फल है। मुख्य-मुख्य पदार्थोंका यहां संक्षेपमें वर्णन किया जावेगा।

गन कौटन—यह एक बड़ा भयानक पदार्थ है और शोरे के अम्लकी रुई पर प्रतिक्रिया करनेसे बनता है और यही कारण है कि इसका नाम गन कौटन है। रुईमें से पहले चिकनाई निकालने के लिए कास्टिक सोडे के साथ उबालते हैं फिर शोरे और गन्धकके अम्लमें २०° पर २४ घण्टे तक रखते हैं। पानी से भली भांति धोनेके बाद कपड़े धोनेके सोडेसे और फिर पानी से धोते हैं। यही गन कौटन है।

यदि हम इसमें एक दियासलाईकी बत्ती लगावें तो समस्त पदार्थ एकदम भकसे जल उठता है। यह तारपीडो में प्रयोग की जाती है क्योंकि पानी इसके विस्फोट करनेमें कोई अड़चन उपस्थित नहीं करता। यह केवल ऐसीटोनमें घुल सकती है और उसमें घुलकर यह एक जैलीकी भांति बन जाती है। फिर यह प्रेसमें दबाकर डोरियोंके रूपमें कर ली जाती है। उन डोरियों को ही **कौरडाइट** कहते हैं। पहले कौरडाइटोंमें कठिनाई यह थी कि वे जलने पर इतना ताप उत्पन्न करते थे कि बन्दूककी नलियां फट जाती थीं और फिर लक्ष्य ठीक नहीं आता था। परन्तु बादके प्रयोगोंमें गन कौटनका प्रतिशत कम कर देनेसे यह कठिनाई दूर हो गई।

नाइट्रो ग्लेसरीन—यहभी एक ऐसी ही भयानक वस्तु है। स्वीडन देशके प्रसिद्ध रसायनज्ञ ऐल्फ्रेड नोवलने सन् १८६२ में युद्धके लिये इसके गुणोंका अनुसन्धान किया; यह वही नोवल थे जिनके नामसे आज जगत् प्रसिद्ध पांच पुरस्कार दिये जाते हैं। इस पुरस्कारके विजेताका संसारमें बड़ा सम्मान है। हमारे देशके केवल दो ही लोग इसे प्राप्त कर सके हैं।

ग्लेसरीन पर गन्धक व शोरे के अम्ल की प्रतिक्रिया से ही नाइट्रो ग्लेसरीन बन जाती है। पहले कुछ समय तक (१८४६-१८६२) यह व्यर्थ ही रही पर फिर नोवलने इसमें मिट्टी मिलाई और उसके मिलने से वह एक शक्ति शाली एवं लाभदायक विस्फोटक पदार्थ डायनामाइटमें बदल गई।

नाइट्रो ग्लेसरीन इतनी भयानक है कि युद्ध दशामें तो युद्ध के कार्योंमें इसका प्रयोग हो ही नहीं सकता। सेफ तोड़ने वाले बुद्धिमान् चोर इसीका प्रयोग करते रहे हैं परन्तु उसमें अधिकतर उन्हें सेफके साथ अपने प्राण भी गवाने पड़े हैं। मिट्टी या लकड़ीका बुरादा या खड़िया मिलानेका तात्पर्य केवल उसीके वेग को घटाना है।

डायनामाइट—एक बड़ी लाभदायक वस्तु भी है। इसके ऊपर मनुष्यका अपना वश (Control) रहता है। युद्धके सिवा सुरंगे बनाने, सड़कें बनाने, कोयलेको तोड़ने, नहरें बनाने, मिट्टी के तेलकी खोज करने इत्यादिमें यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त जो कार्य डायनामाइटकी सहायतासे किया जाता है उसमें समय बचता है और व्यय भी कम होता है। अमेरीका की कोलोरैडो नदीसे लौस ऐंजल्स तक जब नहर बनाई गई थी तो यह अनुमान था कि इसके बनानेमें १००० वर्ष लगेंगे परंन्तु डायनामाइट की सहायतासे कुल ६ वर्ष ही में सारा काम समाप्त हो गया।

स्थानाभावके कारण अब हम केवल एक ही पदार्थका नाम और ले सकते हैं और वह है आपका परिचित **टी. एन. टी.** (ट्राइ नाइट्रो टूलीन) यह टूलीन पर शोरेके अम्ल द्वारा प्रयोग करके बनाया जाता है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि पहले जब इसके विस्फोटक गुण नहीं मालूम थे तब यह रङ्ग उद्योगमें प्रयोग की जाती थी। पर अभी थोड़े दिन पहले ही पता चला है कि यह एक उच्च विस्फोटक पदार्थ है। टी. एन. टी. धातुओं पर कोई प्रभाव नहीं करती और मामूली धक्कोंको सहन करती हुई भी विस्फोट नहीं करती। परन्तु जब एक विशेष प्रकारकी चालसे (Shock) यह विस्फोट की जाती है तो बड़े भयानक शब्द के साथ यह सब वस्तुओं को उड़ा देती है। शरीर के संसर्ग में जाने से खाल पीली पड़ जाती है तथा बड़े-बड़े घाव उत्पन्न होजाते हैं। सच-मुच टी. एन.टी बड़ी भयानक वस्तु है।

यही संक्षेपमें वे विस्फोटक पदार्थ हैं जिन्होंने युद्धको उलट पुलट कर दिया है। जब गत महायुद्धमें पहली जर्मन गोलियोंने लीगके ग्रसन गुम्बज को चूर्ण कर दिया और उसके फौलाद में छिद्र कर डाले, तो संसारने समझ लिया कि किलोंसे अपने को सुरक्षित रखने का विचार अब केवल स्वप्न है। बृटिश फौजों ने अपने अगणित धनसे बने किलों को छोड़कर खाइयोंकी शरण ली

और फ्रांसमें पड़े बृटिश सैनिकोंने चैनल पार समाचार भेजा 'हमें उच्च विस्फोटक पदार्थ भेजो नहीं तो हम मरे।' आरम्भमें तो कुछ न हो सका अन्तमें जब ऐलीजने ५०० पांच सौ पौण्ड टी. एन. टी. से भरी हुई गोलियां दागीं तब जर्मन लोगों के छक्के छूट गए।

बम—आधुनिक युद्धके साधनोंमें बम एक सर्व परिचित वस्तु है जिसका उपयोग असाधारण रूपसे अपार संख्यामें किया गया है। बम और गोली (Shell) में केवल इतनाही भेद है कि बम ऊपर फेंके जानेका तनाव (Strain) नहीं सह सकते; वे बहुत जल्दी ही फट जाते हैं। गोली की चाल १२०० मील प्रति घंटा तक होती है और इस शीघ्र चालके उत्पन्न होने में १ सेकेण्डसे भी कम समय लगता है। यह बमकी चालकी भांति धीरे धीरे उत्पन्न नहीं हुई है, बमकी गति अधिकसे अधिक इसकी आधी हो सकती है।

बम भी कई प्रकारके होते है और भिन्न भिन्न प्रकारके भिन्न भिन्न कार्योंमें उपयोग किये जाते हैं। मकानों, किलों और इसी प्रकारकी दूसरी वस्तुओंके लिये बड़े बड़े बम बनाये जाते हैं और इनमें उच्च विस्फोटक पदार्थ यथेष्ट मात्रामें बन्द किये जाते हैं। इन्हें डिमोलिशन बम कहते हैं।

एक नये प्रकारके बम जो आज कलके समाचार पत्रोंमें बहुत सुननेमें आते हैं 'इनसिइन्ड्री' बम हैं। यह छोटे छोटे होते हैं और इनमें विशेषता यह होती है कि यह अग्नि लगानेमें बड़े निपुण हैं और यह रेते या पानीसे बुझ नहीं सकते हैं क्योंकि इनके जलनेका सिद्धान्त वायुमण्डलकी ओषजनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इनके अन्दर 'थर्माइट' नामक एक वस्तु होती है जो कि एल्यूमिनियम पाउडर और लोह ओषदका मिश्रण है। इनके जलनेसे गर्मी एक बड़ी भारी मात्रामें निकलती है और वहां ताप मान २५००°C तक बढ़ जाता है।

यह कहा जाता है कि १००० ऐसे बम दो दो पौंडके बड़े बड़े १०० बमकी अपेक्षा अधिक हानिकारक हैं क्योंकि एक बड़ी आग बुझानेसे बहुत सी जगह छोटी छोटी आगें बुझाना कहीं दुष्कर कार्य है। इसके अतिरिक्त ग्रेनेड और हैंडग्रेनेड नामक और कई प्रकारके बम भी बनाये और प्रयोगमें लाये जा चुके हैं।

रासायनिक युद्धका दूसरा रूप—विषैली गैसें— रासायनिक युद्धका एक रूप हम पिछले पृष्ठोंमें देख चुके हैं। दूसरा रूप पहलेसे कहीं अधिक वीभत्स तथा भयानक है। गत महा युद्धमें विषैली गैसोंके अधिक भीषण परिणाम जनतासे छिपे नहीं है। जहां राइफलकी बुलट नहीं पहुंच सकतीं थीं वहां यह गैसें बड़ी सरलतासे पहुंच जाती हैं। गैस मास्कोंमें पिन के बराबर छिद्रोंमें से यह घुस सकती हैं और गोलियोंकी चोटके विपरीत यह अदृश्य तथा बिना शब्द के हैं जिससे कि इनके आनेकी किसी प्रकारकी सूचना भी नहीं मिल पाती। सैनिकोंकी खाइयोंके ऊपर यह गैसें उनकी उसी तरह सतर्क हो कर प्रतीक्षा करती हैं जैसे कि एक क्षुधापीड़ित बिल्ली एक चूहेके बिल पर। नाक मनुष्यके पास एक सूंघनेका दैवी अस्त्र अवशेष था परन्तु असुगन्धित गैसोंके निकलनेसे अब वह भी व्यर्थ हो गया है।

क्या गैसें इतनी आफत बरपा कर सकती हैं? गैसमें यह गुण है कि जितना आयतन उसे मिलता है उसमें समानेका प्रयत्न करती है और इस फैलनेमें गैसका एक एक कण मृत्युको साथ लिये रहता है। गर्म गैस तो और भी अधिक फैलती है। और यही कारण है कि शान्ति और युद्ध दोनों ही में गैस मनुष्यकी एक भारी और महत्वपूर्ण कार्य कुशल मस्तिष्क की परिचायक है।

गत महायुद्धमें गैसोंका प्रयोग किया गया था परन्तु उसमें इतनी भयानकता नहीं थी, क्योंकि किसी देशने प्रथमसे इस आक्रमणकी तैयारी नहीं की थी। २२ अप्रैल १९१५ को प्रथम बार जर्मनीने क्लोरीन गैसका प्रयोग किया। गैसें थैलेमें भर ली जातीं और फिर यह थैले बड़े वेगसे शत्रु सेनाकी ओर फेंके जाते थे, जहां जाकर यह फट जाते और गैस अपना राक्षसी कार्य आरम्भ कर देती थी। इस पहले प्रयोगमें अरक्षित ६००० सैनिकों की मृत्यु हुई और सम्पूर्ण ४ मीलका युद्धाग्र (Front) मोर्चा ही उड़ गया। इस दिनसे सैनिकोंको गैस रक्षक थैला भी साथ रखना आवश्यक हो गया।

गैसके प्रयोगकी देर थी कि युद्ध स्थलके पीछे रसायनज्ञोंकी खोज बड़े जोर शोरके साथ गैसोंसे रक्षाकी उपयुक्तता पर आरम्भ हो गयी। लगभग तीन हजार गैसोंकी परीक्षा की गयी। इस खोजके परिणाम स्वरूप कई बातें मालूम हुई जो कि गैस बनाने के लिये नितान्त आवश्यक हैं। प्रथम तो गैस उत्पादक पदार्थ सुलभ तथा सस्ते होने चाहिएं दूसरे गैसका वायुसे घनत्वमें अधिक होना आवश्यक है, नहीं तो गैसकी कभी शत्रुके निकट

पहुंचनेकी सम्भावना ही नहीं। इस आवश्यकताके विचारसे बहुत सी गैसें उस श्रेणीसे निकल जाती हैं। यही नहीं, गैसकी थोड़ी ही मात्रा अपने गुण दिखानेमें चमत्कारी होनी चाहिये और इस के अतिरिक्त गैसको अदृश्य व सुगन्ध रहित होनाभी सर्वथा आवश्यक है।

यह बात स्पष्ट है कि ऐसी आदर्श गैस अभी तक कोई नहीं मिल सकी परन्तु जो कुछ भी है वे हानि पहुंचानेमें किसी प्रकारसे कम नहीं है, क्लोरीन प्रथम प्रयोजित गैस हरे पीले रंग वाली अरुचिकर गन्धपूर्ण होती है और प्रत्येक मनुष्य जो कि एक रासायनिक प्रयोगशालामें रह चुका है परिचित है। आश्चर्य तो आपको यह सुन कर होगा कि यह उसी नमकसे बनती है जिसे प्रायः हम सब प्रति दिन प्रयोगमें लाते हैं। परन्तु यह गैस अपने रंगके कारण १०००० भाग हवामें एक भाग प्रभाव डालनेके कारण अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। इसके अतिरिक्त एक साधारण से गैस रक्षक द्वारा सैनिक इससे बच सकता है।

क्लोरीनकी भांति फेफड़ोंको नष्ट करनेके लिये एक दूसरी गैस, 'फौसजीन' यथेष्ट रूपमें प्रयोग की गयी है। वैज्ञानिक भाषामें इसका नाम कारबोनल क्लोराइड है। यह कार्बन, ओषजन तथा क्लोरीनके सम्मिश्रणसे बनी है। क्लोरीनसे कमसे कम दस गुनी मृत्युदायक है परन्तु गत महायुद्धमें यह दोनों ओरसे प्रयोग की गयी थी। क्लोरीनके ३ भाग और इसका १ भाग मिल कर तो और भी भयानक सिद्ध हुई है। यह गैस बड़ी धूर्त है सूंघनेमें मीठी होती है पर तुरन्त ही सूंघने वालेके फेफड़ों को नष्ट कर देती है।

हाइड्रो सियेनिक गैस ऐसी है कि जिसके एक विशेष परिमाणमें सूंघते ही तुरन्त मृत्यु हो जाती है। कदाचित् संसारकी सब गैसोंमें यही सबसे भयानक है परन्तु इसके लिये कुछ अधिक मात्राकी आवश्यकता पड़ती है (१ भाग २००० में) और यद्यपि ब्रिटेनने इसे प्रयोग किया था पर अधिक मात्रामें न कर सका। इनके अतिरिक्त और ऐसी गैसेंभी हैं जो कि मनुष्यों की आंखोंको नष्ट कर सकती हैं, शरीरमें घाव उत्पन्न कर सकतीं और खालको बिल्कुल जला देती हैं।

जब गैसोंसे रक्षा करनेके लिये थैलोंका प्रयोग होने लगा तो टीयर गैस (रुलाने वाली) का आविष्कार हुआ। यह आंखों में तुरन्त ही चिरमिराहट उत्पन्न कर देती है और उनसे आंसू टपकने लगते हैं, ऐसी दशामें सैनिकको कुछ दिखाई नहीं देता। वह नेत्रोंसे कुछ देख सके इसके लिये यह आवश्यक है कि वह उन्हें पोंछे; आंखें पोंछनेके लिये उसे अपना थैला उतारना पड़ता है।

गैस युद्धकी समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। **मस्टर्ड गैस** या **विलस्टर गैस** ही एक ऐसी गैस है जो कि गत महायुद्धमें सबसे अधिक मात्रामें दोनों ओरसे प्रयोगकी गई और सबसे अधिक उनके दृष्टिकोणों से सन्तोष जनक सिद्ध हुई। वैज्ञानिक भाषामें इसका नाम डाइ क्लोरोडाइथाइल सलफाइड है यह एक द्रव है जिसका क्थनांक (B. P.) ४४३० फा. है इसकी वाष्प लगभग गन्ध रहित होती है परन्तु वाष्प पहिचानी जा सकती है शरीर पर बड़ी बुरी प्रकारसे यह घाव उत्पन्न कर देती है और नेत्रोंको पूर्णतया नष्ट कर देती है व फेफड़ोंको भी हानि पहुंचाती है। $\frac{1}{50}$ माशा २० मिलिग्राम यह गैस मृत्युके लिये यथेष्ट है।

इसकी भयानकता इस बातसे और भी बढ़ जाती है कि यह अपना प्रभाव तुरन्त ही नहीं दिखाती तथा थोड़ी सी मात्रा यथेष्ट समय तक (कभी कभी हफ्ते और महीनों तक) अपने गुणोंको बनाये रखती है और जहां अवकाश पाती है प्रहार करती है। कपड़ों और बूट, जूतोंमें बहुत शीघ्र ही यह अपना अधिकार जमा लेती है। यह वायुयान से भी बहुत ऊंचाई से गिराई जा सकती है। गैसमास्क भी इसके विरुद्ध काम नहीं कर पाते, क्योंकि यदि वे गैसको अन्दर नहीं भी जाने दें तो भी जब कभी थैला उतारा जायगा गैस प्रहार करेगी। वास्तवमें यह उस शहदकी मक्खीकी तरह है कि जिसका छत्ता तोड़ दिया गया है और जो तोड़ने वालेका पीछा किसी प्रकार नहीं छोड़ती।

मस्टर्ड गैस सब गैसोंकी सम्राज्ञी है क्योंकि यह सस्ती होने के साथ ही चतुराईसे छोड़ी जा सकती है और प्रभावमें सब ही विषैली गैसोंसे बढ़ी चढ़ी है। इसकी इतनी तीव्रताका कारण इसका शरीरके अन्दर घुस जाना और शरीरके भागोंमेंसे जलके अंशको खींच कर नमकका अम्ल बनाना है जो कि शरीरको जला डालता और उसमें घाव उत्पन्न कर देता है।

परन्तु इन सब बातोंके अतिरिक्त मस्टर्ड गैसमें एक और विशेषता है। शान्तिके समयमें यह क्षयी रोगमें बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। युद्ध में काममें आने वाली और गैसें भी शान्तिके समयमें काममें लायी गयी हैं। उदाहरणके लिये क्लोरीन गैस जाड़े, बुखारमें उपयोग की गयी है।

ताता जल-विद्युत् कम्पनी

[ले० श्री दुर्गाप्रसाद करन, बी.ए.]

ताताकी आर्द्र-वैद्युत् शक्तिके उपजाने वाली कम्पनी बम्बईमें स्थापित की गई है। स्वर्गीय मिस्टर डेविड गोस्टलिंग (Mr. David Gostling) जब बम्बईके इञ्जिनियर थे तब उन्होंने मि० ताता को बात-बात में अपनी बुद्धि, चातुर्य तथा विचार से यह समझाया कि पश्चिम घाटका पानी व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। इस पानी को बिजलीकी शक्तिमें परिवर्तित करनेसे उसे व्यवहारमें लाया जासकता है। मि० ताता दूसरे विचारों के सदृश अनेकों वर्ष तक इसके ध्यानमें रहे और इस विचार के परिपक्व होने पर खूब जांच से इस कार्य्य में हाथ डाला। उनके जीवन-कालमें ऐसे विचारका मनन होना मानो बम्बईको गौरव तथा समृद्धिके शिखर पर पहुंचाना था। मि० ताताके ज्येष्ठ पुत्र सर दोराब जी ताताने—सन् १६११ ईस्वीमें जब लॉर्ड सीडेनहम 'लोनावला लेक' में नलकी नींव डालने चले थे—तब अपनी वक्तृतामें कहा था कि यद्यपि मेरे पूज्य पिताको इस पश्चिम घाट में नष्ट होने वाले पानीको व्यवहारमें लानेका विचार पहले पहल उत्पन्न ही नहीं हुआ था प्रत्युत मेरे पिताको इस विषयकी धुन कोई तीस वर्षोंसे सवार हो गई थी कि कैसे इस पानीको प्रयोगमें लाया जाए। उन्हें इसकी सफलतामें पूरा विश्वास था और समझते थे कि इससे कारोबारकी उन्नतिमें अपरम्पार लाभ होगा। यह भाव उनके हृदयमें उस समय उत्पन्न हुआ था जब वे एम्प्रेस मिलके लिये उपयुक्त स्थानकी खोजमें जबलपुर के सङ्गमरमरके निर्झरके समीप गए थे। तो भी सन् १८६७ ई० तक इस विचारकी पूर्तिके लिये कोई व्यावहारिक प्रयत्न नहीं किया गया। उसी साल एक पूर्व परिचित विज्ञान विशारदने जो यूरोपके स्थानीय कारखानेसे सम्बन्ध रखते थे और जिस कारखानेके पहले समयके मि० ताता दलाल थे, यह सलाह दी कि गोवाके दूधसागर प्रपात से भी विद्युत् पैदा हो सकती है, इस परामर्शने मि० ताताके पूर्व विचार को और भी सुदृढ़ कर दिया। भौतिक तथा वैज्ञानिक तत्त्वोंकी जांच से यह प्रमाणित हुआ था कि पश्चिम घाटका जल प्रपात बहुत ही निकृष्ट है। मि० आर० वी० ज्योनर, सी० आई० ई० जो विज्ञानके बड़े पण्डित हैं, उनका कहना था कि पश्चिम घाटकी प्राकृतिक घटना इस महत् उद्देश्य की जन्मदाता थी। यह स्थान बम्बईसे यद्यपि दूर नहीं है तथापि २००० फिटकी ऊंचाई पर स्थित है। सदासे यह बात समझी जाती थी कि खासिया पहाड़ी के चिरापुञ्जी स्थान पर संसारके सब स्थानोंसे अधिक वृष्टि होती है किन्तु जांचसे यह मालूम हुआ था कि झीलोंके सञ्चय करनेके स्थान के क्षेत्रफलपर ५३६ इञ्च पानी एक मौनसूनमें पड़ा था जिनमेंसे ४४० इञ्च अर्थात् लगभग ३७ फिट पानी ३१ दिनोंमें सञ्चित हुआ था। चिरापुञ्जी में इतना पानी कभी पांच छः महीनों के भीतर भी नहीं पड़ा है। इन समतल भूमिकी घाटियोंका तल पत्थर होनेसे पानी सञ्चय ही करनेके लिये उपयोगी नहीं है वरन् रखनेके लिये भी उपयुक्त है। पश्चिम घाटकी चोटियोंमें इन्हीं मूल भौतिक सिद्धान्तों के होनेसे चिरापुञ्जी से यह स्थान श्रेष्ठकर समझा गया था। इसके अतिरिक्त मि० ज्योनरने यह भी बताया कि अधिक घनफल का पानी सञ्चय करना जैसा कठिन है वैसा ही खर्चीला भी है। इसलिये लोनावलाका बांध मेघके पानी को सीधे टरवाइन्स में ले जायगा और इस प्रकार पानी शीघ्रही विद्युत् शक्तिमें परिवर्तित किया जा सकेगा। तब इस विद्युतका व्यापारिक मूल्य सहजमें ज्ञात कर लिया जायगा। इस प्रबन्धसे पश्चिम घाटका पानी खाराडला अधित्यका पर जमा किया जायगा फिर वहांसे खोपोली स्टेशन पर आवेगा, जहांसे पानी १७४० फुटकी धारसे गिरेगा जो धार दुनियाके बड़े-बड़े प्रपातोंमें से एक समझी जाती है। टरवाइन्सके द्वारा यह प्रपात विद्युत् शक्ति पैदा करेगा जो बम्बईमें एक स्थान पर जमा होकर कारखाने तथा व्यापारके कार्यमें वितरण की जायगी। मि० ज्योनरका कहना है कि जब यह पानी इतनी ऊंचाईसे एक लाख अश्वबलके साथ नलोंमें गिरेगा, तब यह घनफलमें टेम्स नदीकी समूची ग्रीष्म कालकी धाराके बराबर होगा। ये टरवाइन्स डाइनेमों तथा ट्रैन्सफौर्मों के द्वारा काम करते हुए विद्युत् शक्ति को ऐसे उच्च श्रेणीके तनावमें परिवर्तित कर देगें कि यह विद्युत् शक्ति तांबे के तारों द्वारा ऊंचे स्टील टावर्स पर चढ़ जायेगी जिससे बम्बईके चालीस मील तकके कारखाने और मिल्स चलेंगे। लाभ इससे यह हुआ कि बम्बईमें वाष्प द्वारा पैदा होने वाली विद्युत् शक्ति से अधिक परिमाण में सस्ती विद्युत् मिलने लगी। धुआं शहरको मैला कर देता था जिससे स्वच्छ वायु का मिलना दुष्कर हो गया था किन्तु अब इस कारखानेकी बदौलत नागरिकों को स्वच्छ वायु मिलती है क्योंकि इससे धुएंका अभाव हो गया है इसके अतिरिक्त पीनेके लिये साफ पानी मिलता है

और जमीनकी सिंचाईमें भी काम आता है। लगभग तीस-चालीस हजार एकड़ तककी भूमिके पौधे, फल तथा अन्य वनस्पतियां इस पानीसे सींची जाती हैं। यद्यपि आरम्भमें बहुत कम कारखाने इस विद्युत्से काम लेते थे तथापि ३० हजार अश्वबलका विद्युत् खर्च हो जाता था किन्तु आज कल तो सभी कारखाने इसीसे चलते हैं।

लोनावलामें डक्ट अर्थात् नलकी नींव सन् १९११ ई० के फरवरीमें रक्खी गई थी और ऐसी आशा की जाती थी कि सन् १९१४ के अप्रैलमें विद्युत्की पहली किस्त लोगोंको दी जायगी, किन्तु कई कारणोंसे उस समय कारखाना समाप्त नहीं हो सका। इस कामको मि० ताता अधूरा छोड़कर चल बसे थे, जिसको उनके सुयोग्य तथा पितृभक्त पुत्रोंने आशातीत सफलताके साथ समाप्त किया। पहले पहल यह विचार हुआ था कि इसके लिये पूंजी लण्डनमें एकत्रित की जाय परन्तु भारतके सौभाग्यवश इस मनोरथमें विफल होनेसे भारतवर्षमें ही दो करोड़ रुपयेकी पूंजी एकत्रित हो गई और यह बड़े हर्ष की बात है कि पश्चिमी भारतवर्ष के देशी राजाओं ने भी इस कार्य में उचित भाग लिया और इसमें सम्मिलित होगये। विद्युत्-शक्ति, वाष्प-शक्तिसे कहीं श्रेष्ठ तथा लाभदायक है। अमेरिकामें इसकी सहायतासे नित्य नये नये कार्य निकलते जा रहे हैं। टेलीफोन, टेलीग्राफ, बेतारके तार, एक्सरेके अलावे घर बुहारने का काम, होटलों में मांस, तरकारी काटनेका कार्य भी इसीसे सम्पादन किया जाता है।

यदि हमारे देशकी समस्त जलप्रपात शक्तियोंका सम्मेलन करके विद्युत् पैदा की जाय तो देशकी औद्योगिक अवस्थाकी उन्नति होगी, देशका कोयला भी बचेगा और देश समृद्धिके शिखर पर जा पहुंचेगा। जितनी ज्यादा देशीय पूंजी जो जमीन में गाड़ कर सञ्चित की जाती है अथवा जो धन किसी कार्य में नहीं लगाया गया है, उसे व्यापारिक कार्य्य में लगाया जाय तो उतनी ही ज्यादा तथा शीघ्रतासे देशके वाणिज्य तथा श्री में उन्नति होगी। सच्चा स्वदेशी प्रयत्न पूरा सोच विचारके साथ, अच्छी तरह परिपक्व होनेपर तथा व्यावहारिक आधारपर आरम्भ होनेसे अवश्य सफल होगा। तभी व्यापार तथा वाणिज्यकी सूखी हड्डियों और रगोंमें पूर्व रक्तका सञ्चार होने लगेगा और भारतवर्षमें ऐसे-ऐसे उपयोगी धन्धे तथा व्यवसायोंका नए उत्साहके साथ पुनर्जीवन प्रारम्भ होगा।

मि० ताताका उद्देश्य बम्बईके मिलोंको बिजलीसे चलानेमें यह नहीं था कि धन सञ्चय होगा वरन् बम्बईमें वाणिज्य तथा व्यापारको उन्नत अवस्थामें पहुंचाना था। उनका उद्देश्य धन सञ्चित करना अवश्य था परन्तु उनको पूरा निश्चय था कि धन कार्यका कारण मात्र है और कार्य देशवासियोंकी सेवामें इसे प्रयोग करना है।

अब जरा बिजलीके कारखानेकी ओर ध्यान दौड़ाइये और देखिये कि यह कारखाना कैसा विशाल है कि जिससे बम्बईके चालीस मीलके मध्य स्थित पुतलीघर तथा कारखाने चलते हैं। बिजलीको मिलोंमें भेजने के पूर्व चार कार्य होते हैं। पहिले पश्चिम घाट पर वर्षाका जल जमा किया जाता है वहांसे फिर घाटोंके नीचे लाया जाता है फिर इस हाइड्रोलिक शक्तिको विद्युत् शक्तिमें परिवर्तित करते हैं और तब बम्बई भेजते हैं और यहीं विद्युत् शक्ति मिलोंमें जाकर यान्त्रिक शक्ति में बदल जाती है।

विद्युत् उत्पन्न करनेका ढङ्ग बहुत चित्ताकर्षक है। वृष्टिका जल तीन झीलोंमें एकत्रित किया जाता है। ये झीलें लोनावला वाल्हवान और शरावतामें हैं। ये झीलें तीन ओर प्राकृतिक बंधनोंसे बंधी हैं और एक ओर कृत्रिम बांधों से बांधी गई हैं। लोनावला समुद्रतलसे २०५१ फिट ऊंची है। वाल्हन २०३४ फिट ऊंची है और शरावता २१५८ फिट ऊंची है अर्थात् इन तीनों झीलोंसे पानी नहरोंके द्वारा 'फोर्बे' नामक स्थानमें लाया जाता है जो समुद्र तलसे २०२३ फिट ऊंचा है। यहीं पानीका कारखाना है और यह स्थान जी. आई. पी. रेलवेके रिजिविंङ्ग स्टेशन पर बनाया गया है। फोर्बेके बांधमें नल लगे हैं जिनके द्वारा पानी विद्युत् गृहमें आता है जिसको अङ्गरेजीमें पावर हाउस (Power house) कहते हैं। विद्युत् गृह फोर्बे से तेरह हजार फिटकी दूरी पर है और १७२५ फिट उससे नीचा है। इस कारण जब पानी फोर्बेसे विद्युत् गृहको जाता है तो नीचे आनेके कारण वेग बढ़ जाता है और पानीका दबाव या चाप प्रति वर्ग इञ्च ७५० पौण्ड हो जाता है और इसी शक्तिके द्वारा टरवाइन्स अर्थात् पानीके पहिये घूमते हैं। ये टरवाइन्स सीधे इलेक्ट्रिक जेनरेटर्स (Electric Generators) से मिलाए हुए हैं। इसलिये टरवाइन्सके भ्रमण करनेसे जेनरेटर्स भी घूमते हैं जिससे पांच हजार वाट्सके चापकी विद्युत् शक्ति पैदा होती है। बम्बई विद्युत् भेजने में सुविधाके लिये चाप अधिक कर दिया जाता है और स्थिति परिवर्तन करने वाले

यन्त्रोंके द्वारा चाप का परिमाण एक लाख वाट कर दिया जाता है जिसके कारण पानीका (स्रोत) प्रवाह ४३ मील होकर पैरेल (Parel) पहुंचता है।

रिसीविंग स्टेशन (Receiving Station) अर्थात् ग्रहण करने वाले स्थान पर चाप कम करके ६,६०० वाट कर दिया जाता है तब विद्युत् प्रवाह जमीनके भीतर भीतर तारोंके द्वारा मिलोंमें भेजा जाता है जहां पर चाप कम करके २२०० वाट कर दिया जाता है। यही प्रवाह मिलके मोटर्समें जाता है और मिलके यन्त्रोंको चलाता है और इस प्रकार यान्त्रिक शक्ति में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार कार्यों का चक्कर जारी रहता है। वृष्टिका जल केवल थोड़ा अंश इस कार्यके लिये सञ्चित किया जाता है। पहले पहल यह जल यान्त्रिक शक्तिमें परिवर्तित होता है, तब विद्युत् शक्तिमें इसके अनन्तर मिलोंमें यही शक्ति यान्त्रिक शक्तिमें परिवर्तित हो व्यवहारके योग्य हो जाती है। इन तीनों झीलोंमें १०,५२०,०००,००० घन फिट पानी संचय करनेकी शक्ति है। शरावता तथा वाल्हवानके मध्य वाले टनेल की लम्बाई पांच हजार फिटसे अधिक है। नलोंमें पानीकी शक्ति एक लाख बीस हजार अश्वबल की है और इनकी लम्बाई २४,४०० फिटके लगभग है।

प्रत्येक मुख्य टरवाईन १३,७५० अश्वबल का है। पहले पांच टरवाइन्स थे और पीछेसे तीन और बनाए गए हैं। जिससे ११०,००० अश्वबल की शक्ति हो गई है।

बम्बई नगरकी समस्त मिलें बिजली से चलती हैं। जब कम्पनी बिजलीके सभी सामान अपनी तरफसे देती थी तो ·५५ आनाके हिसाबसे प्रत्येक यूनिट पीछे लेती थी और यदि सब सामान अपना रहे तो केवल आध आने यूनिटके हिसाबसे लेती थी।

उपर्युक्त कार्योंसे मि० ताता की सच्ची देश हितैषिताका पता चलता है। इनके कार्यसे भारतके सच्चे देशहितैषी सेठ तथा साहूकार शिक्षा ग्रहण कर नित्य नए नए धन्धे खोल रहे हैं। हर्षकी बात है कि श्रीयुत् ताताके लोहेके कारखानेके अलावे काश्मीर और मैसूरमें पानीसे विद्युत् बनाने वाले कारखाने खुल गए हैं पर तब भी हिमालय पर्वत पर काश्मीरसे लेकर आसाम तक कितने अधिक कारखाने खुलनेके अवसर हैं।

भविष्य में विकास

[लेखक—श्री चन्द्रिकाप्रसाद, बी. एस-सी.]

मनुष्यके विकासका अन्तिम परिणाम क्या होगा ? यह प्रश्न इसके मस्तिष्कमें तभीसे चक्कर काटने लगा, जब से उसमें विचार शक्तिका उदय हुआ। भिन्न भिन्न पुरुषोंने इस प्रश्नके भिन्न भिन्न उत्तर दिये हैं। आधुनिक सभ्यताके उत्कृष्ट नमूने क्या मानवीय विकासके इतिहासके अन्तिम पृष्ठ हैं या हम से भी श्रेष्ठ मनुष्य जातिकी उत्पत्ति होने वाली है ?

आज कलकी प्रवृत्ति देखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि हमारे शारीरिक तथा मानसिक विकासकी गति मन्द हो रही है। इसके विपरीत हमारा सामाजिक विकास अति तीव्र गतिसे हो रहा है, परन्तु एक सुव्यवस्थित समाजकी स्थापना—जो हमारा ध्येय है, अभी तक नहीं हो पाई है।

जीवित प्राणियोंका अपनेको बाह्य परिस्थिति (Environment) के अनुकूल बना लेना विकासका एक अंग है। वाह्य परिस्थितिके बदलने पर प्राणी वर्गमें भी इसीके अनुसार परिवर्तन हो गये हैं। अधिक ठंड पड़ने पर पशुओंके शरीर पर—ठंडसे बचनेके लिये—बालोंकी वृद्धि हो चुकी है। किसी एक प्रकारके खाद्य पदार्थकी कमी हो जाने पर दातों तथा पाचक यन्त्रोंमें नये खाद्य पदार्थके उपयुक्त आवश्यक परिवर्तन होगये हैं।

किन्तु आधुनिक मनुष्यके विकासमें वाह्य परिस्थिति इतनी प्रभाव शाली नहीं है जितनी यह शेष प्राणिवर्गके विकासमें है। अपने मस्तिष्ककी प्रखरताके कारण मनुष्य इस परिवर्तनशील परिस्थितिमें सुरक्षित रहनेके लिये प्रकृति पर निर्भर नहीं है। परिस्थितिके बदलने पर शारीरिक अवयवोंमें परिवर्तनकी आवश्यकता विज्ञानने दूर कर दी है। ठंडे स्थानोंमें मनुष्य इच्छानुसार गर्म कपड़े पहन सकता है। एक प्रकारके खाद्यकी कमी होने पर दूसरे खाद्योंको पचानेके लिये उसे दांत या आमाशयको बदलना नहीं पड़ता; वह जानता है कि जो खाद्य वह खाता आया है उसे किस प्रकार पैदा किया जाय, नये खाद्य पदार्थोंको किस प्रकारसे पका कर खाया जाय, जिसमें वे पच जांय। इस प्रकार मनुष्य अपनी परिस्थिति पर नियन्त्रण रखता है, इसलिये वाह्य परिस्थितिके परिवर्तनसे मनुष्यके विकास पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) या सबसे अधिक योग्य प्राणियोंके जीवित रहनेके सिद्धान्तको बहुतसे वैज्ञानिक जीवोंमें विकास करनेकी सबसे बड़ी शक्ति मानते हैं; परन्तु यह भी मनुष्य समाज पर बहुत कम प्रभाव रखती है विशेष साधनों द्वारा सरकारी संस्थाएं बुद्धिहीन, विक्षिप्त और दुर्बुद्धि मनुष्योंको सुरक्षित रखती हैं। हमारे (State-Shcool), पागल खाने, और जेलखाने इसके उदाहरण हैं। स्थानीय, जाती और राष्ट्रीय सार्वजनिक संस्थायें, दुर्बल और विकृत अंग वाले मनुष्योंकी सबल शक्तियोंके प्रभुत्वसे रक्षा करती हैं। अब कुछ कुछ हमारी समझ में आ रहा है कि प्राकृतिक चुनाव मनुष्यों द्वारा किया जाना चाहिये; और जो मनुष्य अयोग्य हैं उन्हें सन्तानें उत्पन्न करनेसे रोकना चाहिए। यह स्पष्ट है कि इस कृत्रिम चुनावसे जो अधिकसे अधिक आशा की जा सकती है वह यह है कि संपूर्ण मनुष्य जाति भूत और वर्तमान कालके सर्व श्रेष्ठ मनुष्योंके अनुरूप हो जायगी। दुर्भाग्यवश, धार्मिक संस्थाओंने इसका विरोध करके इस कार्यको कठिन बना दिया है। वर्तमान मनुष्यकी भावुकताको देखते हुये, निकट भविष्यमें, इस प्रकारके कृत्रिम चुनावका प्रयोगमें लाया जाना अधिक सम्भव नहीं जान पड़ता।*

इन हालतोंमें मनुष्यमें अपरिमित विकास होनेकी कल्पना अधिक आशा जनक नहीं प्रतीत होती। उन्नति करते करते हम किसी न किसी समय ऐसी सीमा पर पहुंच जाते हैं जिसके आगे बढ़ना असम्भव होता है। इसके आगे यदि उन्नति होती भी है तो अन्य दिशाओंमें होती है। कमसे कम पिछली १०० शताब्दियोंसे मनुष्योंकी शारीरिक बनावटमें कुछ उन्नति नहीं हुई है। यह इंगित करता है कि शारीरिक विकास सीमा तक पहुंच चुका है। यह होते हुये भी अपरिमित उन्नतिके मानने वाले हमें यह बतलाते हैं कि १०,००० वर्ष किसी विशेष परिवर्तनके लिये प्रर्याप्त नहीं हैं। उनका कहना है कि विकास धीरे धीरे हो रहा है और समय बहुत है। परन्तु फिर भी विकासके लिये जो समय है अनन्त नहीं है; और १०,००० वर्षोंमें, जिनमें तीन चार सौ पीढ़िया हुई होंगी काफी परिवर्तन हो सकते थे, जिनसे यह पता लगता है कि विकास हमें किधर ले जा रहा है।

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि प्रत्येक वस्तुके विकासमें उन्नतिकी गति पहले तीव्र होती है, पीछे मन्द हो जाती है और अन्तमें रुक जाती है, तब हम यह सोचनेके लिये बाध्य हो जाते हैं कि जिन दिशाओंमें मानवीय विकास दूर तक और शीघ्रतासे हुआ है इन दिशाओंमें विकास अपने अन्त पर पहुंच गया है। कमसे कम हम कह सकते हैं कि मनुष्यके हाथ आंख या मस्तिष्कके आज कलसे अधिक विषम या पूर्ण होने की आशा नहीं है। यों तो यह सम्भव है कि मनुष्यका मस्तिष्क और भी उन्नति कर जाय परन्तु मनुष्यके मस्तिष्ककी नाप २०,००० वर्षोंमें बढ़ी नहीं है।* आज कलकी बुद्धिमान जातियों में जो नाड़ीके रोग फैले हैं इनसे प्रकट होता है कि हमारा नाड़ी-संस्थान परिपूर्ण होगया है और शरीरके अन्य अवयवोंमें विकार पैदा किये बिना अब अधिक विकसित नहीं हो सकता। प्रत्येक संस्थाके विकासमें एक ऐसा समय आता है जब कोई अंग-विशेष संस्थाकी सहकारितामें बाधा दिये बिना उन्नति नहीं कर सकता।

बहुत सी बातोंमें मनुष्य एक विशेष प्राणी न होकर एक सामान्य प्राणी है। जहांतक हाथ, पैर, पाचक यन्त्र, दांत और ज्ञानेन्द्रियों जैसे शारीरिक अवयवोंसे मतलब है ऐसा जान पड़ता है कि विकासका ध्येय इनको और भी सरल और सामान्य बनाना है। हमारे बहुतसे अंग सबल बन रहे हैं और कई अंग धीरे धीरे छोटे और लुप्त हो रहे हैं। एक बहुत ही विकसित मस्तिष्क सरल और सामान्य शरीर मनुष्यके लिये बहुत उपयोगी है यह होनेसे मनुष्य चतुर होनेके साथ ही अपनेको किसी भी परिस्थितिके योग्य बना सकता है। किसीके दृष्टिकोणसे सब से पूर्ण मनुष्य वह होगा जिसके मस्तिष्क और बुद्धि बलका सब से अधिक विकास हुआ हो और शरीर अपेक्षाकृत सामान्य बनावटका हो।

उपयुक्त सहचरके चुनाव और वाह्य परिस्थियोंके नियन्त्रण से मनुष्यकी शारीरिक दशा सुधारी जा सकती है। बहुतसे रोग बिल्कुल मिटा दिये जा सकते हैं, मस्तिष्क और शरीरकी दुर्बलता दूर की जा सकती है, और पूरी मनुष्य जाति अधिक बलवान् बनाई जा सकती है। परन्तु कोई ऐसा लक्षण नहीं दिखलाई पड़ता कि भविष्यके मनुष्य आज कल या पिछली शता-

* भारतमें ही इस चुनावमें वाधा है विदेशमें उक्त चुनावके सिद्धान्तको व्यवहारमें लाया जारहा है। ह. श.

* नियण्डर्थल और क्रोमेग्नन जातिके मनुष्यकी मिली खोपड़ियों से तो आधुनिक मस्तिष्क विकासका प्रमाण मिलता है। ह.श.

ब्दीके बलवान् मनुष्योंसे अधिक बलवान् होंगे ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आदि कालसे अब तक बुद्धि का आश्चर्यजनक विकास हुआ है । इस बातके अनेकों प्रमाण हैं कि मनुष्यकी बुद्धिका विकास हुआ है और मनुष्योंकी कुछ जातियां अन्य जातियोंसे अधिक बुद्धिमान हैं इस बातका भी काफी प्रमाण है कि सबसे अधिक बुद्धिमान् मनुष्योंमें भी मस्तिष्कके विकासके लिये स्थान रहता है ।

उन्नति हो सकती है इसका यह अर्थ नहीं है कि मस्तिष्ककी उन्नति होगी । जिस प्रकार शारीरिक विकासकी एक सीमा है उसी प्रकार मस्तिष्कके विकासकी भी सीमा है जिसके आगे उन्नति हो नहीं सकती, परन्तु सीमा और पूर्णतामें बहुत अन्तर है । मनुष्यके बुद्धिबलका इतिहास इस बातका विरोध करता मालूम होता है । इतिहास यह दिखलाता है कि हमारे शरीरकी उन्नति नहीं हो रही है, परन्तु हमारे मस्तिष्ककी उन्नति हो रही है, क्योंकि हम अपने पूर्वजोंसे अधिक जानते हैं ।

परन्तु हमें ज्ञान और बुद्धिका अन्तर जानना चाहिये । जितना हम जानते हैं वह ज्ञान है, और जाननेकी शक्ति बुद्धि है*। भाषा और लेखनी द्वारा भूतकालके अनुभव वर्तमान और भविष्यमें जाने जा सकते हैं । इस प्रकार प्रत्येक पीढ़ी अपने पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान प्राप्त करती है । हमारा ज्ञानका भण्डार बढ़ रहा है, परन्तु क्या हमारी सोचनेकी शक्ति भी बढ़ रही है । क्या आपका विचार है २००० या ३००० वर्ष पहलेसे अब तक बुद्धिका ऐसा विकास हुआ है जैसा ज्ञानका हुआ है ?† क्या आज कलके सर्व श्रेष्ठ मस्तिष्क सुकरात, प्लेटो और अरस्तु के मस्तिष्कोंसे अच्छे हैं ? इसके विपरीत जिन्होंने इस विषयका अध्ययन किया है उनका यह कहना है कि पहलेके ग्रीक, मिश्र निवासी और भारतीयोंसे आज कलके मनुष्य किसी प्रकारसे बुद्धिमें श्रेष्ठ नहीं हैं । संभवतः भविष्यमें, अर्कमीडिस, गैलीलियो न्यूटन या आइन्सटाइन जैसे विचारवान् पुरुषोंसे बढ़ कर कोई हो ही नहीं सकते ।* सहचरोंके चुनाव और शिक्षासे साधारण जनतामें बुद्धि की वृद्धिकी जा सकती है, परन्तु अति-बुद्धिमान् मनुष्योंकी जाति एकाएक पैदा नहीं की जा सकती ।†

हमारे मस्तिष्क रूपी भण्डारमें भी ज्ञान भरनेकी एक सीमा है । हमारा ज्ञान दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है; परन्तु हमारे जानने की शक्ति नहीं बढ़ रही है; इसलिये प्रत्येक मनुष्य इस ज्ञान भंडार का एक अल्प भाग ही अपने मस्तिष्कमें भर सकता है । इसलिये इस युगमें किसी एक दिशामें विशेषता प्राप्त करना आवश्यक हो गया है बौद्धिक उन्नति भी विशेषताके साथ साथ सहयोगसे प्राप्त होती है । एक ही मनुष्य प्रत्येक दिशामें विशेष योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता । उन्नति तभी हो सकती है जब कि भिन्न भिन्न वस्तुओंके विशेष सहयोगसे कार्य करें । व्यक्तिगत विकास सम्भवतः समाप्त हो गया है, परन्तु मनुष्य समुदायके बौद्धिक विकासका अभी प्रारम्भ ही हुआ है ।

यदि मनुष्यका व्यक्तिगत विकास समाप्त हो गया है तो मनुष्य समाजका विकास निश्चय ही समाप्त नहीं हुआ है । सामाजिक विकासने एक नया रास्ता पकड़ा है जिसका छोर नहीं दिखाई पड़ता । विकास एक व्यक्तिसे कई व्यक्तियोंके समुदाय में फैल गया है । व्यक्तिगत सहयोगसे परिवार, जाति और राष्ट्र बने, और इससे भी बड़ी बड़ी संस्थाएं सहयोगसे बन रही हैं । एक एक राजनैतिक टुकड़ोंमें करोड़ों मनुष्य हैं और इसकी संभावना है कि इस समय जो महंगा पाठ हम सीख रहे हैं उससे शिक्षा ले कर निकट भविष्यमें पृथ्वी भरके सब मनुष्योंका एक संघ बन जाय । संभव है कि भविष्यके इतिहास लेखक यह लिखें कि असली सभ्यता युद्धके अन्त और पृथ्वी भरके मनुष्योंके सहयोग से आरम्भ हुई । कुछ भी हो यह प्रकट है कि मानवीय संस्कृति उन्नति कर रही है और इस उन्नतिका अन्त अभी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

* जाननेकी शक्ति बुद्धि नहीं, प्रत्युत विवेचनकी शक्तिको बुद्धि कहा गया है ।

† ज्ञानके साथ ही विवेकशक्ति बढ़ रही है इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है । (ह. श.)

* क्या आन्सटाइन, रदरफोर्ड, सरविलियम क्रूक्स आदि आजकल के मनुष्य नहीं ?

† विज्ञानविदोंकी संख्या का बढ़ना अति बुद्धिमान् मनुष्यों की जाति का चुनाव ही तो है, जो इसी शताब्दीमें पैदा हुए । (ह. श)

सरकार का आंवलों पर अनुसन्धान और च्यवनप्राश

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

युद्धमें गये हुए सिपाहियोंको जो भोजन दिया जाता है यद्यपि वह काफी पौष्टिक और अच्छा होता है तथापि उनको वहां प्रायः ताजे फल और सब्ज तरकारियां नहीं मिलतीं। बहुतसे लोगोंको इस बातका पता नहीं कि हरी सब्जी और ताजे फल कुछ समय तक न खाय जांय या दूध, दही, तक्र आदि पदार्थ न मिलें तो इनके अभावमें अग्निमान्द्य, रक्तकी कमी, दुर्बलता, हृदयोद्वेग, दमा, शीताद (Scurvy) आदि रोग हो जाते हैं।

आधुनिक अनुसन्धान द्वारा ज्ञात हुआ है कि खाद्य पदार्थों में कुछ ऐसे तात्विक अंश विद्यमान रहते हैं जिन्हें खाद्योज या विटैमिन (Vitamin) कहते हैं, यह अब तक ५ प्रकारके पाये गये हैं (A. B. C. D. E.)। अनुसन्धानसे ज्ञात हो गया है कि दूध, दही, ताजे फल, या हरी सब्जीमें खाद्योज (B और C) की मात्रा काफी होती है। जब मनुष्यको लगातार चार छः मास तक उक्त खाद्य प्राप्त नहीं होते तो उन खाद्योजोंकी कमीके कारण शरीरकी सात्म्यावस्थामें अन्तर पड़ जाता है। जब शरीर की क्षय-पूर्तिमें काम आने वाले पदार्थोंका संजनन और सात्म्यीकरण ठीक रूपसे नहीं होता तो उक्त रोगोंका प्रादुर्भाव होता है। विद्यमान सरकारको इस बातकी चिन्ता थी कि उन सिपाहियोंकी विटैमिन सी की कमीसे होने वाले रोगोंसे रक्षा की जाय। इस बातकी जांचके लिये भारत सरकारकी खाद्य अनुसन्धान समिति ने अपनी प्रयोग-शालामें अनेक सूखे फलों, सूखी सब्जियोंमें इस बातको देखने व समझनेकी चेष्टाकी कि किन किन चीजोंमें उनके सूख जानेके पश्चात् विटैमिन बी. और सी. की कितनी कितनी मात्रा विद्यमान रहती हैं।

मालूम हुआ है कि हरे आंवले में विटैमिन सी. की मात्रा बहुत होती है यदि इनको सुखालिया जाय तो भी उसकी मात्रा काफी बनी रहती है। यह भी ज्ञात हुआ है कि इन सूखे आंवलोंको चटनीके रूपमें दाल, भाजी या भोजनके साथ सेवन करते रहनेसे उक्त रोगोंके होनेका भय जाता रहता है। इस अनुसन्धान के पश्चात् विद्यमान सरकारने मद्रास सरकारके आधीन कुन्नूरकी आहार सम्बन्धी अनुसन्धान शालाके डाइरेक्टरको सरकारी रसद विभाग की ओरसे आर्डर दिया है कि आवंलोंको छायामें सुखा कर उसकी टिकिया बना फौजोंके लिये काफी मात्रामें भेजनेका प्रबन्ध करे।

आंवलोंकी इस विशेषताको इससे पूर्व भी देहरादूनकी सरकारी विज्ञानशालाने बतलाया था, किन्तु उस समय इस ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया था।

आंवलोंके इस महत्वको अब समझा गया है। हमारी सरकार आयुर्वेदकी उपेक्षा न कर इसके उपयोगी योगोंकी ओर ध्यान देकर यदि उसपर परीक्षा करती तो आशा थी कि सरकार को बहुत समय पूर्व ही इससे भी अधिक सुगमतासे इसमें सफलता मिल जाती। च्यवनप्राश नामक अवलेह आयुर्वेदमें एक प्रसिद्ध औषध है। यह हरे ताजे और पके हुए आंवलोंसे तय्यार की जाती है। इसमें कुछ अन्य उपयोगी औषधियां यत्किञ्चित् होती हैं, बहुत सा भाग इसमें आंवलोंका ही होता है। आयुर्वेदके इस प्रसिद्ध योगकी इतनी बड़ी महिमा है—कहते हैं कि च्यवनऋषि जब अत्यन्त वृद्ध, रक्त-हीन, निर्बल हो गये थे तो इसके ही सेवनसे उनके शरीरमें नया रक्त बल पौरुष आ गया था। आज भी इसके उपयोगसे अनेक बीमारियोंमें चमत्कृत लाभ देखा जाता है। इसका प्रधान कारण इन आंवलों में विद्यमान विटैमिन बी. और सी. की अधिकता है। जिनकी विद्यमानताके कारण आंवलोंसे बनी औषध इतनी उपयोगी है। क्या हम सरकारसे आशा कर सकते हैं कि वह अपनी प्रयोग शालामें आयुर्वेदकी इस महौषधिकी भी परीक्षा करेगी।

यदि इसकी सत्यता प्रमाणित हो जाय और सरकारको इस में उक्त आंवलेकी टिकियासे अधिक गुण मिल जांय तो सिपाहियोंके लिये इस स्वादिष्ट औषधको क्यों न भेजा जाय? जिसे वह खाना खानेके बाद उपयोग कर सकें। इससे सिपाहियोंको दो लाभ होंगे एक तो भोजनके बाद मुंह मीठा हो जाया करेगा दूसरे भोजनमें उक्त खाद्योजों (विटैमिनों) की कमीके कारण जिन रोगोंके होनेका भय बना रहता है वह भी जाता रहेगा।

शिशु की नेत्रशक्ति का विश्लेषण

[ले० श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दु विश्व विद्यालय काशी]

मस्तिष्क की सब प्रकारकी वृद्धियों की नींव इन्द्रियों की क्रियाशीलतामें है। बिना ऐन्द्रिक गतिके कोई मानसिक शक्ति विकसित नहीं होती। वैज्ञानिकोंका मत है कि इन्द्रियोंमें सर्व प्रथम क्रियान्वित होने वाली इन्द्री चक्षु है। सभी जानते हैं कि सद्यः प्रसूत बालक चल फिर नहीं सकता, बोल नहीं सकता। पर सम्भवतः यह बहुत कम व्यक्ति जानते होंगे कि प्रारम्भमें बालक कई दिनों (लगभग एक सप्ताह) बधिर रहता है। डाक्टर लोग इसका कारण यह बताते हैं कि प्रथम कई दिनों तक शिशु के कानकी ध्वनि वाहक नलीमें मोम जैसा पीला तरल पदार्थ भरा रहता है किन्तु लगातार श्वास प्रश्वास क्रिया होते रहने, जंभाई लेते रहने, दूध पीते रहने आदिसे पीत तरल पदार्थ हट जाता है उसका स्थान वायु ग्रहण कर लेती है, तब वाह्य ध्वनियां कानके पर्दोसे होकर मस्तिष्क तक पहुंचने में सफल हो पाती हैं। सद्यः प्रसूत २० दिन के बालकोंकी जिह्वा पर कुनैन, नमक, ऐसिड, शक्करकी शलाका रख कर देखा गया तो पाया गया कि बालकोंकी रसेन्द्रिय जन्मके ठीक बाद ही कार्यान्वित हो जाती है क्योंकि कुनैन, नमक, ऐसिडके रखने पर शिशुने असन्तोष, ह्वानि, विरोधके भाव प्रदर्शित किये, अप्रिय मुद्रा बनाई, पदार्थोंको उगल दिया और जब शर्करायुक्त शलाका जिह्वा पर रखी गई तो सन्तोष, तृप्ति, प्रसन्नता के भाव झलके, उसे चूसता ही चला गया। इसी प्रकार घ्राण तथा स्पर्श इन्द्रियों का विकास भी या तो जन्मके ठीक पश्चात् या कुछ समय पश्चात् होने लगता है किन्तु उन कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या नेत्र इंद्रिय की है। अतः सर्वप्रथम उसीकी विवेचना करके आगे अन्योंकी की जायगी

चकाचौंध

पहले दो तीन दिनों शिशुकी आंखोंमें चकाचौंधकी मात्रा अत्यधिक होती है। हम सभी व्यक्तियोंको अनुभव है—सोकर उठनेके पश्चात् यदि कोई तीव्र आलोक वाला लैम्प रख दिया जाय तो आंखोंमें पीड़ा, कड़वाहट, चकाचौंध आदि होने लगता है, तब फिर नवजात शिशुकी कोमल मृदुल पुतलियोंका कहना ही क्या है। यदि प्रसूतिकागृह रात्रिमें तीव्र प्रकाश वाला दीपक जलाया जाता है अथवा यदि शिशुकी शय्या ऐसी खिड़की के पास है कि दिनके अधिकांश भागमें सूर्य प्रकाश उसकी आंखोंके समीप पड़ता है तो निश्चय ही बालक उद्विग्न रहेगा, आंख मीच कर रोयेगा। तभी इस प्रकारकी व्यवस्था रखनी पड़ती है कि प्रसूतिकागृहमें प्रथमके कुछ हफ्तों अत्यधिक प्रकाश न पहुंच सके। दिनका साधारण प्रकाश जिन्हें हमारी अभ्यस्त आंखे बुरा नहीं समझतीं, बालकोंके नेत्रोंमें घातक परिणाम उपस्थित कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रात्रिमें दीपक जलाया ही न जाय, जलाया जाय किन्तु कड़वे तेलका और वहभी यदि हो सके तो नवें या ग्यारहवें दिनके पश्चात्। प्रेयर (Preyer) अपने पुत्रकी नेत्र शक्तिका अध्ययन करते हुए लिखता है 'कि मेरा पुत्र ग्यारहवें दिन बत्ती की लौ व प्रकाशसे अत्यधिक प्रसन्न होता पाया गया।' वह बत्तीको बड़े चावसे एकटक देखता रहा, यदि बत्तीको आंखोंके सामने से हटाया गया तो रोने लगा, जब लाकर रख दी तो पुनः प्रसन्न होने लगा। उसी निरीक्षक का आगे चलकर कहना है कि दो माहकी आयु होने पर तीव्र प्रकाश वाले पदार्थ यदि दृष्टि-पथ में आजाएं (जैसे उज्ज्वल फूलकी थाली, गिलास अथवा लाल पीली श्वेत रंगरूप) तो प्रसन्नताके साथ फुदकने लगता था।

शिशु नेत्रोंको रंगोंकी पहचान

इस विषयमें बहुत ही प्रयोग किये गए हैं कि शिशु को सबसे प्रथम कब व कौन सा रङ्ग दिखाई देता है। डाक्टर फ्लेजिग (Flechzig) का कहना है कि जन्म दिवससे लेकर तीन चार दिन तक आंखोंके भीतरकी वह नसें जो रंगोंकी पहचान करती हैं—संज्ञा हीन रहती हैं। वह अपना काम नहीं करतीं। प्रथमके तीन चार दिनमें लाल, नीली, पीली आदि रङ्ग की वस्तुएं श्वेत दीखा करती हैं। प्रेयरने अपने बालकमें तेईसवें दिन रङ्ग देख सकनेकी शक्ति पाई, जब वह (शिशु) द्वार पर पड़ी लाल रङ्गकी चिकको देख-देखकर हंसा, किलका, उधर हाथ बढ़ाया। इस दिनके पूर्व ऐसा कभी न हुआ था उसी शामको एक बार फिर उसी प्रकार प्रसन्न हुआ जब अपनी मां को लाल कोट पहने देखा। यदि मैं वे लम्बे लम्बे प्रयोग उद्धृत करने लगूं जो कई अवलोकन कर्ताओंने वर्णोंका क्रमिक विकास जानने

के लिये किये हैं तो पूरा पोथा बन जायेगा। अतः उसे न देकर केवल सारांश देता हूं। सात सौ त्रिसठवें दिन बालक 'लाल' व 'हरा' दो रङ्गोंमें ठीक ठीक उत्तर देनेमें समर्थ हो पाया—कि 'कौन लाल' 'कौन हरा' है। तत्पश्चात् इन दो रङ्गोंमें पीला और जोड़ा गया। अगले दो तीन दिनों तक बालक फिर गलतियां करता रहा अतः चौथा रङ्ग 'नीला' मिलाया गया। जब पूछा जाता नीला रङ्ग कहां है तो काफी देर तक चारों रङ्गोंको देख देख सोचता रहता। 'पीला' रङ्ग पूछे जाने पर तुरन्त सही सही बता देता, अन्य रङ्ग ठीक ठीक न पहचान पाता। अब पांचवां रङ्ग 'बादामी' जोड़ दिया व अन्य विधिसे परीक्षा ली। पूछा कि 'वह कौन रङ्ग है' उच्चारण तोतला होने पर भी 'पीला' रङ्ग ठीक पहचान लेता—अन्य रङ्गोंका नाम उच्चारण तो कर लेता था किन्तु हरेकी ओर सङ्केत करके पूछा जाता तो कहता 'लाल' आदि। अब समान रङ्गोंके गट्टोंको पृथक् पृथक् रखनेके लिये कहा गया तो सर्व प्रथम पीले पीले रङ्गके गट्टोंको चुनकर एक जगह रखा फिर लाल किन्तु हरा व नीलामें अशुद्धियां हो ही गईं। नीलेके साथ हरे गट्ठे व हरेके साथ कई एक नीले गट्ठे रख गया। आठ सौ पांच दिन (२ साल ६ माह) हो चुकने पर एक नए प्रकारसे परीक्षा ली गई। एक बक्समें सभी रङ्गके गट्ठे भर कर रख दिये गए और बालकसे कहा गया कोई सा गट्ठा उठा कर दो व उस रङ्गका नाम भी बताओ। बालकने सर्व प्रथम पीले रङ्गका गट्ठा दिया व नाम भी ठीक बताया, बादमें लाल किन्तु नीला रङ्ग सर्वथा गलत रहा। दो माह सब परीक्षाऐं बन्द रहीं, बालकभी देश विदेश घूमते रहे, फिर उपर्युक्त परीक्षायें ली गईं तो पीलेका सर्वथा सही, लाल का कुछ कुछ तथा नीला, हरा, बादामी सर्वथा गलत निकला। इन सब परीक्षाओंका फल व निचोड़ यह निकला कि दो ढ़ाई वर्ष का बालक पीला व लाल रङ्ग पूर्ण रूपसे देख लेता है किन्तु नीला, हरा, आदि नहीं, क्यों? कारण यह है कि **ढाई वर्षकी आयु तक शिशुकी आंखोंके भीतर वे रासायनिक तत्त्व तो आ जाते हैं जो 'पीले' व 'लाल' रंगको तुरन्त यथा रूप देख सकें किन्तु इसी आयु तक वे तत्त्व नहीं आपाते जो हरे व नीले पदार्थोंकी हरयाली या नीलिमा देख सकें।** साढ़े तीन वर्षके पश्चात् ये तत्त्व भी आ जाते हैं अतः तब सब रङ्गोंको समान रूपसे देख सकता है।

इस उपर्युक्त निर्णयसे हम यह लाभ उठा सकते हैं कि तीन वर्षकी अवस्था तक बालकके वस्त्र, खिलौने आदि पीले व लाल रंगके बनवाये जांय। मां, बहिन इत्यादि भी यदि हो सके तो वह बसन्ती, वैजयन्ती या गुलाबी रंगके वस्त्रोंका प्रयोग करें। ऐसा करनेसे बालक का हृदय-कमल सदा प्रफुल्लित बना रहेगा।

आंखोंका खोलना मीचना

बालकोंमें जन्मसे ही इस प्रकारकी प्रवृत्ति होती है कि सुख अनुभव करते समय आंखें खूब चौड़ाईसे खोल देते हैं व दुख अनुभव करते समय दृढ़तासे मीच लेते हैं। शीतल स्नान करते समय, मां का दूध पीते समय, नया बाजा सुनते समय, लाल पीली वस्तु देखते समय, किसीको अपने सामने सर मटकाते देखते समय, रात्रीमें दीपककी लौ देखते समय आंखोंको खोल कर एकटक देखनेसे प्रकट होता है कि भीतर आनन्दकी तरंगें उठ रही हैं। मुस्कराहट भी इक्कीस दिनकी आयुके पश्चात् खुली आंखोंके साथ साथ हो लेती है। इसके विपरीत बालोंमें कंघी करते समय, सोकर उठते समय, रगड़ कर स्नान कराते समय, कपड़ा पहनाते समय, चोट लग जाते समय आंखें बन्द करके मुखकी विकृत भाव भंगी बनाता है, इससे प्रकट होता है कि अन्तस्तल क्षुब्ध हो उठा है। रोना तो आंखोंके मीचनेका जन्म-क्षणसे साथ देता है।

पुतलियोंकी विस्मयजनक गतियां

अभी तक कही गई सब बातोंसे कहीं अधिक आश्चर्यमय बात यह है कि सद्यः प्रसूत बालककी पुतलियोंमें परस्पर कोई सहयोग नहीं होता। हम लोगोंकी दोनों पुतलियां एक समयमें एक ही दिशाकी ओर घूमती हैं किन्तु शिशुकी एक पुतली दाहिनी दिशाकी ओर घूम रही है तो दूसरी बांई दिशाकी ओर। जब बांई आंख नीचेको ताक रही है तो दाहिनी ऊपर को। और भी आश्चर्यजनक दृश्य तब होता है जब कि दाहिनी आंख तो अचल स्थिर दीख पड़ती है पर बाईं आंख चञ्चल होकर इधर उधर घूमा करती है, स्कोयलर (Schoeler) के मतानुसार।

किन्तु इस प्रकारकी विरोधी गतियां केवल तीन माह तक ही हुआ करती हैं। यदि जन्मसे तीन माह बीत चुकने पर चौथे या पांचवें माह भी इस प्रकारकी गतियां जारी रहें तो तुरन्त किसी डाक्टरसे उपचार कराना चाहिये वर्ना वह बालक आगे चल कर 'ऐंचाताना' हो जायगा।

देखनेकी चार सीढ़ियां

वास्तविक अर्थमें जिसे देखना कहते हैं वह चौथी सीढ़ी

है। इसके पूर्व तीन सीढ़ियां और हो लेती हैं। वह ये हैं जन्म क्षणसे लेकर कुछ दिनों तक तो वह पदार्थोंकी ओर घूरा करता है। बत्तीको बालकके सन्मुख रख दिया जाय तो वह उसकी ओर घूरता रहेगा—यह देखना नहीं है। दूसरी सीढ़ी-पहलीसे कुछ उन्नत यह है कि बालकके नेत्र एक अचल पदार्थ से हट कर स्वतः दूसरे अचल पदार्थ पर जा टिकें, जैसे कभी खिड़कीकी ओर कभी बत्तीकी ओर कभी मां की ओर आदि। इस अवस्थामें भी बालक नेत्र घुमाता भर है देखनेके निमित्त नहीं अपितु स्वाभाविक चञ्चलतावश, यह सीढ़ी जन्मसे ग्यारहवें दिन प्रारम्भ होती है। तीसरी सीढ़ी यह है कि बालक गतिमान् पदार्थोंके साथ साथ नेत्र घुमाता जाय। इस अवस्थामें अभी केवल लेटे लेटे आंखें ही घूमती हैं सर नहीं घूमता। कोई व्यक्ति कमरेसे बाहर जा रहा है, या सामने दीवाल पर घड़ीका पेन्डुलम हिल रहा है तो नेत्र भी साथ साथ घूमते जायंगे। यदि दीपक को उठा कर दायें पक्षमें रख दो तो उसकी आंखें उधर ही घूम जायेंगी—बांये पक्ष रक्खो तो बाईं ओर, ऊपर उठाओ तो ऊपर की ओर हो जायेंगी। स्मरण रहे यह क्रियायें मन्द मन्द गति द्वारा की जानी चाहिएं अन्यथा तेजीसे दायें बायें रख देने पर बालकके नेत्र दीपकका साथ न पकड़े रख सकेंगे। यह सीढ़ी—अर्थात् भ्रमणशील पदार्थोंके साथ साथ नेत्रोंका घूमते जाना, जन्मसे तेईसवें दिन प्रारम्भ होता है। इसके आगे यह तीसरी सीढ़ी कई सप्ताहों तक जारी रहती है। अभी यह बात नहीं आई कि अगर चारपाईसे गेंद नीचे गिर पड़े तो बालक भी नीचेको देखने लगे। पांचवें या सातवें सप्ताह कुछ अधिक तेजीसे गमन करने वाले पदार्थोंके पीछे पीछे आंखें घुमाते जानेकी क्षमता आ जाती है।

दसवें सप्ताह बालक गतिशील पदार्थोंको देख कर प्रसन्न होना प्रारम्भ करता है। मां का मुख देख देख कर मुस्कराता है। बस यहींसे चौथी सीढ़ी अर्थात् वास्तविक देखनेका श्रीगणेश हो जाता है। तीसरे माहसे बालक गतिमान् पदार्थोंकी ओर केवल आंखें ही नहीं घुमाता बल्कि साथ ही साथ सर और गर्दन भी घुमाता है। नवीन पदार्थोंके लिये आंख व सर दोनों घुमाता है। पिता यदि कमरेसे बाहर जा रहा है तो वह सर घुमा कर उसी ओर देखता रहेगा, कमरेमें यदि बिल्ली घूम रही है तो उसे देखता जायगा। किन्तु उड़ते कबूतर के साथ साथ नेत्र व सर घुमाते जाना उन्तीसवें सप्ताह (सवा सातमाह) के पूर्व नहीं हो पाता। तेतीसवें सप्ताह बालक अपने हाथसे टपक पड़ने वाली गेंदकी ओर जब तब देख पाता है। सैंतालीसवें सप्ताह (पौने बारह माह) हाथकी गेंदको नीचे फेंक कर उसकी ओर ध्यानसे देखता है। अब नेत्र शक्ति पूर्ण हुई।

निकट व दूरका देखना

शिशुको वस्तुयें दीखती तो हैं पर यह ज्ञात नहीं हो पाता कि वे कितने फासले पर हैं—निकट हैं अथवा दूर। तभी तो देखने में आता है कि वह दूरकी वस्तुओं (चद्रमा आदि) को छूनेके लिये हाथ बढ़ाया करता है। जान स्टुअर्टका कहना है कि कुछ जन्मान्ध व्यक्तियोंको ऑपरेशन द्वारा जब नेत्र शक्ति प्राप्त हो गई तो उन्हें ऐसा पता चलता था कि वाह्य वस्तुयें उनके नेत्रों को स्पर्श कर रही हैं अर्थात् वे वस्तुयें मानों आंखोंके भीतर रक्खी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि "नेत्रोंको सबसे प्रथम जो दीख पड़ता है वह रंग या वर्ण है। पास व दूरका अनुभव या ज्ञान तो तब होता है जबकि स्पर्श द्वारा हाथ फैला कर व चल कर पता लगाता है।" उपर्युक्त सज्जनकी ठीक यही उक्ति बालक नेत्रोंके साथ भी लागू होती है कि प्रारम्भमें पदार्थ आंखोंको स्पर्श करते प्रतीत होते हैं। अभी तक इस दिशामें जितनी खोजें हो चुकी थीं मैंने अङ्कित कर दी हैं। किन्तु अभी यह पता नहीं लग सका है कि शिशु पासकी ही वस्तुयें देख सकता है या दूरकी भी और कब। पर इतना निश्चित है कि दस बारह माह हो चुकने पर बालकको प्रातः सायं घुमाने भेजना चाहिये ताकि दूर दूरके पदार्थोंकी ओर नेत्रको प्रयुक्त करनेके अवसर आयें। चार दीवारीके भीतर बन्द रहने वाले बालकको समीप की ही वस्तुयें देखते रहनेका अवसर प्राप्त होता है जो कि दृष्टिके लिये हानि-कारक हो सकता है। पुस्तकको आंखोंके अति निकट रख कर पढ़ते रहनेसे या टेबुल पर अधिक झुक कर लिखते (यहां तक कि कापी पर सर रख कर लिखते) रहनेसे जो हानियां हमारी आंखोंको हो जाया करती हैं वही हानियां बालककी आंखोंको वर्षों घरसे बाहर न निकालनेसे भी हो सकती हैं।

बच्चों की मृत्यु संख्या

[कैप्टन उमाशंकर प्रसाद, एम. बी. बी. एस, आई. एम. एस.]

सामाजिक उन्नति व अवनति की सबसे बड़ी पहचान उस समाजके बच्चोंकी मृत्यु संख्यासे अधिक देखी जाती है। यदि बच्चोंकी पैदाइश और लालन पालन भली भांति हो तो उनकी मृत्यु संख्या नहींके बराबर हो जायगी।

अमेरिकामें सन् १९०० तक प्रत्येक ५ बच्चेमें १ बच्चेकी मृत्यु बाल्यकालमें ही—जब वह बोल और चल भी नहीं सकता था—हो जाती थी। १ वर्षकी अवस्थाके प्रत्येक १० बच्चोंमें १ बच्चे की मृत्यु होती थी। १९२२ में प्रत्येक १३ बच्चोंमें १ मरता था और १९३२ में प्रत्येक १७ बच्चोंमें १ मरता था। संसारका ध्यान बच्चोंकी असंख्य और अकारण मृत्युकी ओर अभी अभी आकर्षित हुआ है। १८७० में जब मर्दुमशुमारी का आंकड़ा लिया गया तो इन भोले बच्चोंकी असंख्य मृत्यु पर लोगोंने विचार करना शुरु किया। मनुष्यता, सामाजिक सुधार तथा आर्थिक (Economic) दृष्टिसे देखकर बच्चोंकी मृत्यु संख्या पर बहुत सावधान रहना चाहिये। यदि इस मृत्युके कारणोंको जानकर उनको रोकनेका प्रयत्न करें तो स्वयं ही सफलता मिलेगी।

प्राचीन समयमें लोगोंका विचार था कि सभी बच्चे जिन्दा नहीं रह सकते। पहलेसे तो अब अवश्य सुधार हो रहा है, पर अभी भी इस अकारण मृत्युकी संख्या बहुत ऊंची है। न्यूजीलैण्डमें ही सबसे कम बाल मृत्यु हुई। १९३० में वहां प्रत्येक हजार बच्चेमें से पैदा होनेके १ सालके भीतर ३५ मरे।

बच्चोंकी मृत्युके कारण ऐसे हैं जिन पर हमारा अभी कुछ वश नहीं है तब भी करीब आधी मृत्यु उन कारणोंसे होती है जिन्हें हम यदि समझ लें तो उनसे बालकों को बचा सकते हैं। गरीबी, अज्ञान, और लापरवाही सबमें मुख्य हैं। खास कारणों में मुख्यतर ये हैं:—गर्भावस्थामें उचित देखभाल न करना, बच्चा पैदा होनेके समयमें उचित रीतिसे या पूर्ण मात्रामें सहायता न मिलना, पैदा होने पर बच्चेकी पूरी देख भाल न करना, अप्राकृतिक भोजन (Artificial food) देना, ताजा, शुद्ध तथा स्वच्छ दूधके बदले बासी खुला रखा हुआ गन्दा, कीटाणुसे दूषित दूध पिलाना, अनुचित कुसमयमें आहार देना, गरम मौसममें, सफाईका विचार न रखना, रहनेके घरमें साफ हवा रोशनी तथा सफाईकी कमी, मां का अपने स्वास्थ पर ध्यान न रखना, माता-पितामें ऐसी बुराइयां जैसे शराब, नशा आदि पीना, उपदंश रोग या अन्य छूतकी बिमारियोंका लग जाना और इनकी छूतसे बालकोंको बचानेका ख्याल न रखना।

आज कल गांवके लोग शहरमें आकर बसने लगे हैं। गरीबीके कारण वैसे ही सब बातोंकी कमी रहती है उस पर शहरमें गन्दी दुर्गन्ध पूर्ण छोटी कोठरियां—जहां सूर्यकी किरणें सालमें १ बार भी नहीं पहुंचतीं, स्वास्थके लिये बहुत हानिकारक होती हैं। यह भी देखा गया है कि माताएं शहरोंमें काम करने चली जाती हैं और बच्चोंको ठीक समय पर अपना दूध पिलानेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता, इसलिये बोतलों में बन्द दूधको घर पर अन्य लोग बच्चेको पिला देते हैं, इससे भी बहुत अधिक हानि होती है।

गरीबके बच्चे बहुत अधिक मरते हैं। बच्चोंकी मृत्यु [illegible] बिमारी है जिससे अमीर लोग रुपयों द्वारा अपने बच्चोंको बचा लेते हैं। क्रे महोदयने यह दिखलाया है कि इङ्गलैण्डमें बड़े घरानोंमें पैदाइशसे प्रथम वर्ष की मृत्यु संख्या १०% है। साधारण लोगोंके बच्चोंमें २१% और मजदूरोंमें ३२% है। पेट की बीमारियां सबसे अधिक मृत्युका कारण हैं। हेल कहते हैं कि—१९०३-१९०४ में पेटकी बीमारियोंके कारण १७० बालकों की मृत्युयें हुईं, जिनमें १६१ गरीबोंके बच्चे थे तथा ९ साधारण लोगोंके बच्चे थे और अमीर घरानेका एक भी बच्चा नहीं मरा।

जहां बच्चोंकी मृत्यु छोटी अवस्थामें बहुत अधिक होती है, उनमें सबसे कमजोर तथा अयोग्य बच्चे ही पहले मरते हैं। पूरे माह होनेसे पहले ही पैदा हुए बच्चेके लिये बहुत कोशिश और ध्यानसे लालन पालनकी आवश्यकता पड़ती है। पर यह सोचना कि ऐसे बच्चे सदा नीरोगी और निकम्मे रहेंगे भूल है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटनकी पैदाइश पिताकी मृत्युके बाद और पूरे समय से पहले हुई थी। मां की बुद्धिमानी और अनुभव बहुत उपयोगी वस्तु है।

ऐसी मृत्यु पैदाइशके कुछ हफ्तोंके भीतरमें बहुत अधिक होती है। पहली सालके मृत्युमें २५% पैदाइशके पहले ही दिनमें होजाती हैं और ५०% मृत्यु प्रथम दो सप्ताहके भीतर। अधिकतर इन मृत्युओंका कारण पूरे समयसे पहले पैदा होना है या पैदा होनेके समय बच्चेको चोट लगना कठिनतासे देरमें बाहर आना आदि है। शरीरकी बनावटमें कमी आदिसे भी मृत्यु होती है।

बाल मृत्युके कारण—

कारण	प्रति १००० में उन बालकोंकी मृत्यु संख्या जो पैदा होने पर जीवित थे किन्तु बाद में मरे।
पूरे समयसे पहले पैदा होनेके कारण	१६·७
खांसी और निमोनियां	१०·६
दस्त, पेचिश	८·२
अंग विकार	५·३
पैदा होते समय चोट	४·८
पैदा होने पर दुर्बलता तथा अन्य बालरोग	४·७
अन्य सब कारण	१४·३
कुल	६४·६

ऊपरकी सूचीसे ज्ञात होगा कि प्रायः आधी मृत्यु संख्या का ऐसा कारण है जो पैदा होते समयसे ही है और बाकी आधी मृत्यु की संख्या उन कारणोंसे होती है जो बादमें उत्पन्न होते हैं। पिछले कारणोंमें करीब ⅓ तो फेफड़ेकी बीमारीके कारण हैं और उतनीही पेटकी बीमारियों से है। टिटेनसकी बीमारी तथा कीटाणु द्वारा आक्रमण अब बहुत कम होगया है क्योंकि आधुनिक शल्यमें सफाई पर सबसे अधिक जोर है। टीका लगानेकी प्रथाके कारण चेचकका प्रकोप भी बहुत घट गया है।

समयसे पहले पैदा होनेसे या पैदा होने पर बहुत दुर्बल रहनेसे प्रथम वर्षमें बहुत अधिक मृत्यु होती है इनका कारण उपदंश रोग तथा गर्भवतीके शरीरमें विषैली वस्तुका इकट्ठा होना (Toxaemia of Pregnancy) है गर्भकालमें अस्पताल में जाकर उचित उपाय करानेसे तथा उचित भोजन करनेसे न केवल लाभ ही होता है बल्कि बच्चेका वजन तथा शक्ति बढ़ती है।

खांसी और निमोनियांसे १६% बच्चोंकी मृत्यु होती है। भीड़में रहनेसे इस बीमारीका अन्देशा बहुत बढ़ जाता है। भीड़ साधारण जुकाम, ठंड लग जाना, और हल्की खांसी बच्चोंमें जल्द निमोनियांका रूप धारण कर लेती है।

पेटकी बीमारियों (दस्त, पेचिश आदि) से पहले सबसे अधिक मृत्युएं होतीं थीं परन्तु अब इनके द्वारा मृत्यु संख्या बहुत घट गई है क्योंकि स्वच्छता तथा बीमारियोंके रोकनेकी तरकीबों में अब बहुत उन्नति हो रही है।

पहले वर्षमें पेटकी बीमारीसे मृत्युके तीन मुख्य कारण हैं। हवाकी गर्मी, आहार देनेकी रीति में कीटाणुओंसे न बचाना, और शहरमें निवास। गर्मीमें खास कर जब हवामें नमी रहती है बच्चे दुबले हो जाते हैं।

सभी लोग अनुभव करते हैं कि शहरमें छोटे छोटे मकानोंमें जहां कई व्यक्ति पास पास रहते हैं, यही बातें उत्पन्न होंगी तो इस गर्म नम हवासे बच्चेका स्वास्थ्य खराब होगा। दूध पिलानेकी रीति पर भी दस्तकी बीमारी बहुत अवलम्बित है। बोतलसे दूध पिलानेकी रीतिसे पहले १०% तन्दुरुस्तीकी आशा रहती थी पर अब यह सुधर कर ३०% हो गई है। इसलिये मां का स्तन पान सर्वोत्तम है। होप महोदयने दिखलाया है कि १००० बच्चोंमें—पैदाइशके तीन माहके भीतर—मांका स्तन पान करने से दस्तकी बीमारीसे केवल २० की मृत्यु हुई, परन्तु बोतल द्वारा दूध पीने वाले बच्चोंमें १००० में ३०० बच्चे मर गये। बोतलसे दूध पिलानेसे मृत्यु होनेका कारण केवल यही नहीं है कि माताका दूध पीनेको नहीं मिला बल्कि अन्य बातेंभी शामिल हैं, क्योंकि अमीर घरानोंमें बोतलसे दूध पिये बच्चोंकी मृत्यु संख्या इतनी अधिक नहीं होती जितनी गरीबोंके बच्चोंकी, जो बोतलके दूध पर पाले जाते हैं। खराब दूध, तथा आहार, दूध पिलाने और खिलानेकी अनुचित रीति, मां को बच्चेका उचित ध्यान न रखना, रहनेके स्थानका स्वच्छ न होना, गर्मी, नमी, सफाई का उचित ध्यान न रखना, बहुत भीड़ जिससे छूत वाली बीमारियां बढ़ती हैं इत्यादि, ऐसी बातें जिनसे सफाईका सम्बन्ध है—बोतलसे दूध पिलानेमें मृत्यु संख्या बहुत बढ़ा देती हैं।

स्तनपान करानेमें विशेष ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती और गरीब तथा कम बुद्धि वाली स्त्रियां भी इसे निभा लेती हैं पर बोतलसे दूध सफलता पूर्वक पिलानेमें बहुत बुद्धि तथा अनुभवकी आवश्यकता है। साथ ही अच्छी दुकानकी चीजें खरीदनेके लिये अधिक धन भी चाहिये।

पालन पोषणका यह टेढ़ा काम उस समय और भी कठिन हो जाता है जब बालक पूरे समयसे पहले पैदा होता है, दुर्बल होता है या दस्त, फेफड़ेकी बीमारी आदि उसे आ घेरती है। भोजनमें बच्चोंके लिये विटैमिनकी मात्राको कभी भी भूलना न चाहिये।

माता-पिताके उपदंश रोगके कारण बच्चेकी मृत्यु १·२% होती है। छूतकी बीमारियोंसे ५·४ मृत्यु होती है। इसमें कूकर खांसी आधी मृत्यु संख्याका कारण है।

बच्चोंकी मृत्यु रोकनेके उपायमें मृत्युके कारणोंको ही काट फेंकना हमारा उद्देश्य रहना चाहिये। बीमारी रोकने वाले उपायों तथा मांके स्वास्थ्य पर बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिये। रोकने वाले इन उपायों पर ध्यान रखनेसे लाभ होगा—

१—इनमें चिकित्सासे विशेष लाभ न होगा—

अंग-विकार।

बहुत दुर्बलता या पूरे समयसे पहले पैदा होना (७ वें माह से पहले)। पैदा होते समयकी कोई दुर्घटना।

२—उचित स्वच्छता, तथा चिकित्सा द्वारा अच्छा सुधार किया जा सकता है।

क्षय रोग, उपदंश, फेफड़ेकी बिमारियां।

छूतकी बिमारियां जैसे—खसरा (Measles)

कूकर खांसी।

३—(अ) उचित भोजन और देख भालसे इनमें बहुत सुधार होगा।

पेटकी बिमारियां जैसे दस्त, पेचिश, सूखा रोग तथा भोजन। ७ माहके बाद पूरे समयसे पहले पैदा होना।

(ब) डिपथीरिया, चेचक, आदिके विशेष टीके।

निर्धनता तथा अज्ञानता दूर करनेका उपाय सामाजिक शिक्षा है। गर्भ-कालमें देख भाल, पूरे दिनसे पहले पैदा होने वाले बच्चोंके लिये विशेष अस्पताल, दूधका उचित प्रबन्ध, ऐसी संस्थायें जहां स्वच्छता आदिकी शिक्षा सबको दीजाय, मांके स्तन पान पर अधिक जोर डालना, अच्छे मकान बनाना, सीड़से बचना, बिमार बच्चोंको अलग कर देना, माताओंका सामाजिक संस्थाओं पर विशेष जोर रहना चाहिये।

किताब के कीड़े

आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि संसारमें जितनी किताबें तथा कागज आगसे जल कर या सीड़के कारण खराब होते हैं उससे बहुत अधिक संख्यामें कीड़ोंसे खराब होते हैं। उत्तरी प्रदेशोंमें तो किताबोंको कीड़ोंसे कम नुकसान होता है किन्तु उष्ण जल वायु वाले प्रदेशोंमें ये बहुत ही हानि पहुंचाते हैं।
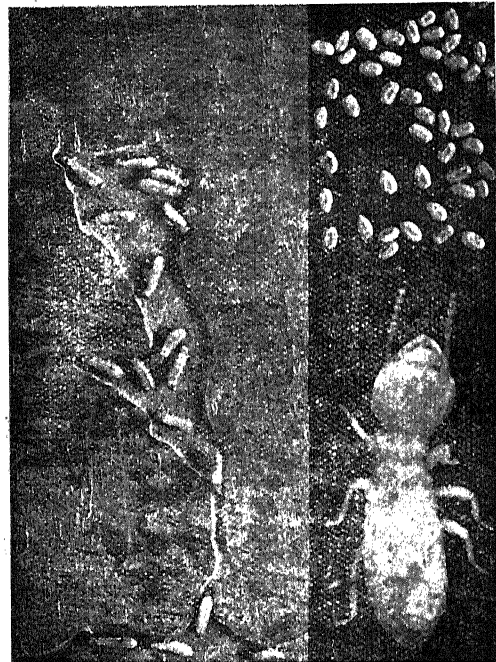
किताबके कीड़े

दाहिनी तरफ नीचे कीड़ा है (अपने आकार से काफी बड़ा बना कर दिखाया गया) और ऊपर उसके अण्डे हैं। बाईं तरफ कीड़ोंसे नुकसान का नमूना है।

जहांकी जल-वायु जितनी अधिक गर्म तथा नम होगी उतना ही वहां किताबोंको कीड़ोंसे नुकसान पहुंचनेका अधिक डर रहेगा। पुस्तकालयके वे विभाग जिनकी पुस्तकें अधिक काममें नहीं आतीं वहां पर ही ये कीड़े अधिक लगते हैं। जैसे छूतकी बिमारी लगातार बढ़ती चली जाती है इसी प्रकार जब कीड़ा एक किताबको लग जाता है तो दूसरी किताबोंमें भी बड़ी

शीघ्रतासे फैल जाता है। इसलिये लाइब्रेरियन बहुत होशियारी से प्रायः इन स्थानोंको देखा करते हैं कि किसी किताबमें कीड़ा लगना शुरू तो नहीं होगया। इसके साथ साथ जो किताबें बाहरसे आती हैं या पढ़ने वाले लौटाते हैं उन्हें भी ध्यानसे देखते हैं कि कहीं उनमें तो यह छूतकी बिमारी नहीं लग आई है।

संसारके महान् व्यक्तियोंकी हस्त लिखित पोथियां इन कीड़ों ने खाकर बर्बाद करदी हैं। इन कीड़ोंके विषयमें बहुतसे पुराने लेखकोंने लिखा है। अरस्तु सन् ३६५ पू० ई० में लिखता है कि जैसे कीड़ा ऊनी कपड़ोंमें लग जाता है इसी प्रकार पुस्तकोंमें भी लग जाता है। इसके अतिरिक्त और भी पुराने लेखोंसे पता चलता है कि उस समयके मनुष्य इस कीड़ेसे कितने डरते थे। उस समय प्रेस तो था नहीं ये ही हस्त लिखित पोथियां किसी राष्ट्रकी अमूल्य सम्पत्ति होती थीं।

बड़े बड़े दफ्तरों तथा पुस्तकालयोंमें बहुत सी पुस्तकें तह-खानोंमें बिल्कुल बन्द करके रख दी जाती हैं। इन तहखानोंमें हवा आने जानेका कोई ठीक तरीका नहीं रहता। इसके साथ साथ पृथ्वीके स्थलसे नीचे होनेके कारण प्रायः इनमें सीड़ भी अधिक रहती है। जब कभी इन तहखानोंके कागजोंकी आव-श्यकता पड़ती है तो प्रायः वे कीड़ेके खाये हुए ही मिलते हैं।

बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि कभी कभी कोई किताब बड़ी बुरी तरहसे कीड़ोंसे खाई हुई मिलती है किन्तु जब उस किताबको सावधानीसे देखा जाता है तो उसमें कीड़ेका नाम निशान भी नहीं मिलता। किन्तु इसमें कोई रहस्यकी बात नहीं। प्रकृतिने इन किताबके कीड़ोंको भी नष्ट करनेके लिये शत्रु उत्पन्न किये हैं ये बहुत छोटे छोटे होते हैं और खाली आंखोंसे दिखाई नहीं पड़ते, ये किताबके कीड़ोंको मार डालते हैं। उन्हें मारने के पश्चात् ये छोटे छोटे कीड़े स्वयं दूसरी जगह काम करने चले जाते हैं। मरे हुए कीड़ोंकी लाशोंको समाप्त करनेके लिए रेंगने वाले कीड़े उत्पन्न होते हैं। ये कीड़े मरे कीड़ोंके शरीर तथा किताबमें चमड़ा या जानवरकी चर्बी इत्यादि—यदि कुछ लगी हो तो उसे खा डालते हैं, इसके बाद ये कीड़े भी कुछ समय पश्चात् मर जाते हैं। इस प्रकार यदि कोई पुरानी किताब कीड़ों की खाई हुई मिले और उसमें कीड़ोंका नाम निशान भी न हो तो समझना चाहिये कि बहुत समय पहले यह पुस्तक भिन्न भिन्न प्रकारके कीड़ोंकी संग्रामभूमि रह चुकी है उस संग्राममें कोई भी लड़ने वाला बाकी नहीं बचा। यदि सूक्ष्म दर्शक-यन्त्रसे देखा जाय तो इन कीड़ोंके शरीरके छोटे छोटे टुकड़े कहीं न कहीं लगे मिल सकते हैं। इन टुकड़ोंकी परीक्षा करनेसे यह ज्ञात हो सकता है कि उस संग्राममें किस जातिके तथा कैसे कीड़ोंने भाग लिया था।

कभी कभी पुस्तकें इन कीड़ोंकी बिमारीको दूसरे देशोंमें भी अपने साथ ले जाती हैं। इसलिये पुरानी पुस्तकें खरीदने वाले आदमियोंको होशियारीसे काम लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि कम दामोंकी एक पुरानी पुस्तक लाकर अपने सारे पुस्तकालयको ही कीड़ोंसे बर्बाद कर दें।

एक बार सेन्ट लिओ-ऐब्बेके पुस्तकालयमें बहुत सी पुस्तकें कीड़ोंने खा डालीं। जब पुस्तकालयकी परीक्षाकी गई तो एक नये प्रकारका की मिला। अभी तक यहां पर जो कीड़ा मिलता था उससे यह बिल्कुल भिन्न था। बहुत समय तक उस की खोज की गई किन्तु ठीक ठीक पता नहीं चला। इसके बाद जब और अधिक ध्यानसे देखा गया तो पुस्तकालयके एक विभागमें कुछ ही साल पहले हवाना द्वीपके चर्चसे एक पोपकी बहुत सी हस्तलिखित पोथियां आई थीं। ये पोथियां ही सबसे अधिक खराब हुई थीं। इस बातका निर्णय करनेके लिये हवाना द्वीपके उस चर्चके पुस्तकालयकी जांचकी गई तो वहां पर उस प्रकारके कीड़ोंकी बहुत अधिक संख्या मिली। इतनाही नहीं हवाना द्वीपमें बहुत सी किताबोंकी दुकानोंमें भी वह कीड़ा पर्याप्त संख्यामें मिला।

किताबमें जितने कीड़े होते हैं वे सब ही किताबके पृष्ठोंको खराब नहीं करते। इन्हें तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। (१) जो वास्तवमें पुस्तकके पृष्ठोंको खराब करते हैं, (२) जो दीमककी जातिके हैं (३) जो पुस्तकके ऊपरी भागको खराब करते हैं।

वे कीड़े जो वास्तवमें पुस्तकके पृष्ठोंको खराब करते हैं बहुत छोटे होते हैं और प्रायः $\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{10}$ इञ्चसे अधिक बड़े नहीं होते। जो बड़े होते हैं उनका रंग कुछ काला या कत्थई सा होता है। किताब खोलनेपर ये अपने बनाये हुए छेदोंमें सिकुड़ कर बिल्कुल गोल गेंदके समान हो जाते हैं और ज्यों ही पृष्ठ पलटे जाते हैं यह या तो नीचे गिर पड़ते हैं या किताबके पन्नोंमें दब कर मर जाते हैं। ये कीड़े अपने अंडे पुस्तकके पुट्ठोंके पास देते हैं। जब ये बड़े होते हैं तो किताबके पिछले भागसे—जहां धागोंसे पुट्ठे बंधे रहते हैं—ये किताबके पिछले भागमें चले जाते

हैं। पहले ये इन धागोंको खाते हैं जिससे सारे पुस्तकके पन्ने अलग अलग हो जाते हैं फिर किताबोंके पीछेसे ही ये किताबको खाना प्रारम्भ करते हैं। ये किताबके पीछेसे कागजको खा खा कर एक छेद बनाते हुए आगे बढ़ते हैं, और इस छेदकी दीवारोंको अपने थूकसे मजबूत सा कर देते हैं इसलिये जब पुस्तक खोली जाती है तो पन्ने चिपकेसे मिलते हैं।

दीमककी जातिके कीड़े दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो पृथ्वीमें रहते हैं तथा एक वे जो सूखी लकड़ीमें रहते हैं। सूखी लकड़ीमें रहने वाले कीड़े 'दीमक' के नामसे पुकारे जाते हैं। ये सफेद रंगके चीटियोंकी शकलकेसे होते हैं। ये कीड़े पहले किताब रखनेकी अलमारीके तख्तेको भीतर ही भीतर खाना शुरू करते हैं। जब खाते खाते इनके छेदका मुंह तख्तेके धरातल तक पहुंच जाता है तो थोड़ा और खानेसे सुराखका मुंह खुल जाता है। इसके बाद ये अलमारीमें तथा किताबोंमें घूमने लगते हैं और किताबों तथा अलमारीके ऊपरी भाग दोनोंको खराब करना आरम्भ कर देते हैं।

पृथ्वीमें रहने वाले कीड़े इनसे इस बातमें भिन्न होते हैं उन्हें सीड़के लिये पृथ्वीमें जाना पड़ता है। आधुनिक पुस्तकालयों में इनसे रक्षाके पर्याप्त साधन किये जाते हैं। अलमारियां लोहेकी बनाई जाती हैं और दीवारें तथा फर्श इस प्रकार बनाये जाते हैं कि उसमें इन कीड़ोंके लिये छेद न हो सके। लेकिन फर्श या दिवारमें दरार पड़ जाने पर कीड़े इनमेंसे होकर इन पुस्तकालयोंमें भी पहुंच सकते हैं।

जिन घरोंमें ये पृथ्वीमें रहने वाले कीड़े होते हैं वहां पर लकड़ीके बक्समें बिल्कुल बन्द किताबें भी प्रायः चार महीनेमें कीड़ोंसे खराब हो जाती हैं। ये कीड़े जिस स्थान पर पुस्तकको खाते हैं वहां थोड़ी सी मिट्टी लगी रह जाती है, यह मिट्टी ये कीड़े अपने साथ पृथ्वीके निचले हिस्सेसे ले आते हैं और उसकी सहायतासे अपने लिये बनाये गये छेदोंको सुरक्षित रखते हैं।

सूखी लकड़ीमें रहने वाले कीड़े पृथ्वीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते—वे तो जहां उत्पन्न होते हैं वहींसे बर्बादीका कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। वे अपने सुराखोंकी दिवारें मिट्टीसे नहीं पोतते। किन्तु उनके छेदोंमें बहुत छोटे छोटे काले टुकड़े भरे रहते हैं। जो किताब खोलते ही एक दम बाहर निकल पड़ते हैं।

भाग्यवश कुछ कीड़े इस प्रकारके होते हैं कि वे किताबके ऊपरी चमड़े तथा पुट्ठोंको खानेके पश्चात् किताबमें अधिक दूर तक पन्नोंको खराब नहीं करते। यदि बहुत समय तक पुस्तक अपने स्थान पर ही रखी रहे तो वे पुट्ठेको खाकर उसके छोटे छोटे टुकड़ोंको छेदके बाहर निकालते रहते हैं। इस प्रकार किताबके पास इन छोटे छोटे टुकड़ोंका एक ढेर सा इकट्ठा हो जाता है।

एक और बहुत छोटे छोटे सफेदसे कीड़े पुस्तकोंमें घूमा करते हैं। ये बहुत कमजोर होते हैं और किताबको कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। न तो ये आदमियोंको काटते हैं और न किसी प्रकारकी बिमारी फैलाते हैं, लेकिन किताब पढ़ते समय उनसे बड़ी घिन होती है। ये गर्म और तर स्थानमें बहुत अधिक उत्पन्न होते हैं।

इन कीड़ोंसे बचानेके लिये पुस्तकोंको खास प्रकारकी धूनी (Fuminafion) देनेकी आवश्यकता है। एक खास प्रकार का बना यन्त्र होता है जिसकी सहायतासे कीड़ोंको मारने वाली गैस उससे निकल कर पुस्तकके कीड़ोंको मार डालती है। लायब्रेरियनको यह ध्यान रखना चाहिये कि पुस्तकालयका कौन सा भाग अधिक नम तथा अंधियारा है। वहां पर प्रायः इस प्रकारकी गैस छोड़नेसे पुस्तकोंकी रक्षा की जा सकती है। यदि किसी किताबमें सन्देह हो कि इसमें किताबको खराब करने वाले कीड़े हैं तो अकेली किताब भी धूनी देकर कीड़ोंसे मुक्त की जा सकती है।

(स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशनकी रिपोर्टसे)

समुद्र के तल पर

[श्री जगदीशप्रसाद राजवंशी, एम. ए. बी. एस-सी.]

कितने ही वैज्ञानिकों तथा अन्वेषणकर्ताओंने, समुद्रके अन्तस्तलकी खोजमें रबरके कपड़ों को पहन तथा धातकी अन्य आवश्यक वस्तुओंको लेकर उसकी तहमें जाते हुए अपने प्राण दे दिये किंतु फिर भी वे उसके वास्तविक रहस्यको न जान सके। अधिक गहराईमें सांस लेने तथा पानीके दबावसे बचनेके लिये जो उपाय किये गये सब निष्फल हुए, डुबकी लगाने वाला समुद्रके अन्दर जाकर किसी भी वस्तुकी परीक्षा नहीं कर सकता था।

इसके बाद डा० विलियम बीब (Dr. William Beebe) तथा ऑटिस बार्टन (Otis Barton) ने कुछ वर्ष हुए एक गोलेमें बैठकर, समुद्रके भीतर की स्थिति देखनेके लिये डुबकी लगाई थी। इस गोलेकी खिड़कियां बड़े मोटे शीशेकी बनी थीं। बैठनेसे पहले प्रकाश डाल कर यह देख लिया गया था कि कहीं कोई छिद्र तो नहीं रह गया; यदि प्रकाशकी एक पतली किरण उसमें अन्दर चली गई तो समझना चाहिये कि बहुत छोटा सा छिद्र अभी है और उसको बड़ी मजबूतीसे बन्द करना चाहिये। समुद्रमें पानीके नीचे ज्यों ज्यों हम गहराई में उतरते जाते हैं उतना ही पानीका दबाव प्रति वर्ग इञ्च बढ़ता चला जाता है। कुछ ही मीलकी गहराई पर इतना अधिक दबाव होता है कि आदमी पिचक कर बिलकुल दूसरे ही रूप का हो जाता है।

इन दोनों वैज्ञानिकोंने अपनी शीशेकी खिड़कीमें से समुद्र की बहुत सी ऐसी मछलियां देखीं जो उस समय तक ज्ञात न थीं। वे मछलियां बहुत थोड़ी देरको ही दिखाई पड़ती थीं किन्तु बहुत सी मछलियां ऐसी थीं जो प्रकाशके कारण उस गोलेके पास आ गई थीं।

एक युवक वैज्ञानिक ने जो डा० बीबे के साथ समुद्र में उतरा था—इस दृश्यका बड़ा अच्छा वर्णन किया है उस प्रकाश (fluoresceut light) पर मछलियां आकर्षित हो रहीं थीं। जैसे दीपक पर पतंगे खिंच कर आ जाते हैं इसी प्रकार ये मछलियां इस प्रकाशकी ओर खिंच रहीं थीं। कई प्रकारके रङ्गोंके प्रकाशका प्रयोग उसने किया। उसने देखा कि परा-कासनी (Ultra violet) प्रकाशने इन मछलियों पर बड़ा विचित्र तथा घातक प्रभाव डाला।

इस प्रकाशसे मछलियां एक प्रकारसे मोहित सी हो गई थीं। जैसे शार्क मछली रक्तकी ओर आकर्षित होती है उसी प्रकार ये मछलियां बहुत दूरसे उस प्रकाशकी ओर आकर्षित होती थीं। पहले तो प्रकाश में एक आध मछली दिखाई पड़ती थी किन्तु धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ती चली गई और अन्तमें केवल मछलियोंका ही एक जमघट सा दिखाई पड़ता था।

पराकासनी प्रकाश आंखोंसे दिखाई नहीं पड़ता, यह इन मछलियों पर नशेका सा प्रभाव करता था। मछलियां इस प्रकाशमें लगातार चक्कर काटने लगती थीं, जैसे उन्हें नशा हो गया हो। वे उस प्रकाशके मार्गसे कभी भी बाहर नहीं होती थीं। धीरे धीरे उनकी शक्ति भी कम होती चली जाती थी और जब एक जाल उन्हें फांसनेके लिये डाला गया तो वे उससे भी बचकर नहीं भागीं।

एक बार वह चल-चित्र कैमरा तथा प्रकाश करनेका यन्त्र लेकर समुद्रमें उतरा। बड़ी कठिनतासे उसने प्रकाश किया और अपना कैमरा उस प्रकाश पर ठीक किया। प्रकाश करने के पश्चात् कुछ सेकेण्ड तक छोटी छोटी मछलियों के आनेकी प्रतिक्षा करने लगा छोटी छोटी मछलियां आईं और प्रकाश में चक्कर काटने लगीं। एकाएक एक बहुत बड़ी सी कोई चीज़ अन्धकारमें से निकली और प्रकाशकी ओर बड़े जोरसे झपटी। कैमरा तो एक ओर जाकर गिर पड़ा और वह भी एक ओर को लुढ़क गया। यह मछली प्रकाशको निगलनेके लिये आई थी, इस मछलीने समझा था कि प्रकाश कोई खानेकी बड़ी अच्छी चीज है, किन्तु उसके खानेसे पहले ही वह समाप्त हो गई। इसके पश्चात् बहुत धीमा प्रकाश किया गया।

एक बार यह युवक अपना सब सामान लिये उथले पानी में घूम रहा था कि एकाएक एक सांप जैसी चीज किसी अन्धेरी गुफामेंसे निकल कर उसके चारों ओर लिपट गई। यह एक अष्टपाद का हाथ था। इसके बाद दूसरा, फिर तीसरा इस

प्रकार वह बिलकुल अष्टपादके हाथोंमें फंस गया। उसने सोचा कि भागना बेकार है। वह जानता था कि अष्टपादको कोई नई चीज दीख जाय तो उसे जाननेकी बड़ी जिज्ञासा होती है, इसलिए वह सांस बन्द करके बिलकुल चुपचाप पत्थरसा खड़ा रहा, अष्टपादका हाथ बराबर आगे बढ़ता गया। जब वह हाथ कैमरे पर पड़ा तो कुछ रुका मानो वह कुछ देख रहा है। इसके बाद धीरे धीरे वह हाथ हट गया। अष्टपादने समझा कि यह कोई हानि पहुंचाने वाली वस्तु नहीं है तब उसे छोड़ फिर अन्धकारमें विलीन हो गया।

इन प्रयोगोंके आधारपर उस पामर (Palmer)ने अर्थात् उसी नवयुवकने दो विधियां निकालीं जिनकी सहायतासे समुद्र की इन मछलियों के विषयमें जाना जा सके। इनमें सरल विधि यह थी—पहले एक जाल नियत गहराई पर पानी में डाला गया। फिर एक किश्ती से बहुत तेज बिजली का प्रकाश फेंकने वाली दो टॉर्च इस प्रकार ठीक की गईं कि उनका प्रकाश जालके स्थान पर एक जगह मिल जाय। इन दोनों प्रकाशोंके मध्यसे घातक पराकासनी प्रकाश इसी स्थान पर डाला गया। प्रकाशके कारण मछलियां इस स्थान पर आकर्षित हुईं। पर बैंजनी प्रकाशके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गई और उस जाल द्वारा वे ऊपर को खींच ली गईं।

दूसरी विधि जो समुद्रके अन्दरकी मछलियों तथा बनस्पतिको जाननेके लिये की गई वह सिनेमाके कैमरा द्वारा थी। एक चल-चित्र लेने वाला सिनेमाका सा कैमरा एक खास बक्स में बन्द किया गया—क्योंकि पानीका दबाव इस गहराई पर बहुत अधिक था। यदि यह एक मजबूत बक्समें बन्द न किया जाता तो पिचककर टूट जाता। इस कैमरेके साथ एक पराकासनी प्रकाश करनेका यन्त्र लगा हुआ था। प्रकाशका यन्त्र तथा कैमरेका शीशा इस प्रकार रखे गए थे कि प्रकाश वाली वस्तु का चित्र कैमरेमें आ सके। कैमरा तथा यह प्रकाश विद्युत् द्वारा कार्य करते थे, जो नावसे तारों द्वारा इन तक पहुंचती थी। बहुत सी ऐसी मछलियां थीं जो जालसे निकल भागती थीं और उनका ठीक परिचय प्रथम विधिसे प्राप्त नहीं हो सकता था। वे मछलियां इस विधिसे जानी गईं।

इसके अतिरिक्त समुद्रकी नीचे की सतह पर बड़े भयङ्कर जीव रहते हैं। जब डुबकी लगाने वाला अधिक गहराई में उतरता है तो उसे इन जीवोंका सर्वदा डर बना रहता है।

इतनी गहराई पर कोई भी हथियार काम नहीं कर सकता। इस गहराई पर कोईभी नं० २२ की राइफलके सामने ६ फुटकी दूरीपर खड़ा होसकता है किन्तु उसको गोलीकी चोट नहीं लग सकती वास्तवमें पानीका दबाव इस स्थान पर इतना अधिक हो जाता है कि यदि भाला या चाकू चलाया भी जाय तो वह बहुत धीरे धीरे चलता है जिसके कारण जरा भी चोट नहीं पहुंच सकती। किन्तु इस स्थानके रहने वाले जीव प्राकृतिक रूपसे ऐसे बने होते हैं कि वे बड़ी तेजीके साथ आसानीसे चल फिर सकते हैं और बड़ा घातक प्रहार करते हैं।

ऊपर ही बैठे बैठे नावमें बटन द्वारा इस यन्त्रसे काम किया जाता है। जितना प्रकाश करना चाहो वह भी यहींसे कर सकते हो। प्रकाश तेज तथा धीमा करके देखनेसे कुछ समयके बाद यह मालूम हो जाता है कि मछलियां कितने तेज प्रकाशमें सबसे अधिक आती हैं फिर उतनाही तेज प्रकाश किया जाता है।

इस नवयुवक वैज्ञानिकके विचारमें पराकासनी प्रकाश एक दिन समुद्रके अन्तरकी खोजके लिये बहुत आवश्यक वस्तु हो जायगी, इसके साथ साथ इसका शस्त्रके रूपमें भी उपयोग किया जा सकेगा। पराकासनी प्रकाश समुद्रमें बहुत दूर तक चला जाता है तथा धाराओंका भी इसकी दिशा तथा जाति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
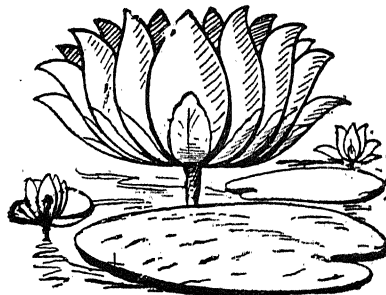
द्विअणुओं की शिल्प-कला

[लेखक—श्री गिरीशचन्द्र शिवहरे बी० एस-सी०]

वनस्पति संसारमें यों तो बहुत आश्चर्य जनक पेड़ पौधे आदि हैं लेकिन इस संसारका एक विभाग बहुतही अद्भुत है। इस विभागकी वनस्पति अन्य पेड़ोंकी भांति तने, पत्ती और जड़ोंमें विभाजित नहीं होती, यह बहुतसे कोष्ठकों (Cells) का समूह होती है। प्रत्येक कोष्ठक को स्वयं ही अपनी आवश्यकताओंको पूरा करना पड़ता है और वे भोजन, ओषजन आदि के लिये एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहते, द्विअणु इसी विभागके अन्तर्गत है। अन्तर केवल यही है कि इसके अधिकतर साथी समूह बनाकर रहते हैं परन्तु इसके प्रत्येक कोष्ठक एक दम अलग अलग रहते हैं और एक दूसरेसे बिलकुल सम्बन्धित नहीं रहते।

द्विअणु एक कोष्ठक वाले 'पेड़' हैं। यह इतने छोटे होते हैं कि कोरी आंखसे नहीं देखे जा सकते; इनको देखने और अध्ययन करनेके लिये सूक्ष्म वीक्षण यन्त्रकी आवश्यकता होती है। यह इतने छोटे होते हैं कि एक आलपिनके सिर पर सौ—बल्कि इससे भी अधिक रखे जा सकते हैं। संसार भरके खारी और स्वच्छ पानीमें यह पाए जाते हैं लेकिन ठण्डे प्रदेशोंमें यह प्रचुर संख्यामें पाए जाते हैं।

यह छोटे 'पेड़' बहुत शीघ्रतासे संख्यामें बढ़ते हैं। आधे ही दिनके समयमें प्रत्येक कोष्ठक दो कोष्ठकों में विभाजित हो जाता है। यह दो कोष्ठक फिर चार कोष्ठकोंमें बंट जाते हैं और इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। दो या तीन सप्ताहमें तो यह संख्या बहुत ही बढ़ जाती है। यह अनुमान किया गया है कि इङ्गलिश चैनलमें, प्लाईमथके समीप एक एकड़ पानीकी सतहके नीचे साढ़े पांच टन (१५४ मन) द्विअणु प्रतिवर्ष पलते हैं।

दक्षिणी ध्रुवके कुछ भागोंमें द्विअणु-स्रव (Diafom-ooze) की १५ फिट मोटी बरफके किनारेसहस्रों मील दूर तक फैली हुई पट्टी पाई जाती है। इस द्विअणु-स्रवमें भोज्य पदार्थ भी पाए जाते हैं। डा० नैन्सनने भी द्विअणुओंकी बहुतायत उत्तरी ध्रुवमें देखी थी। लेकिन दोनों ध्रुवोंके द्विअणुओं की जाति एक दम भिन्न है।

प्रकृतिने जीवनको सर्वदा एक दूसरे प्राणी पर निर्भर रखा है। जिस समय द्विअणु बहुत अधिक संख्यामें रहते हैं उसी समय जलके अन्य छोटे छोटे जानवर भी जन्म लेते हैं और इन बहते हुए द्विअणुओंको खाकर वे जीवित रहते हैं। यह जानवर बड़ी बड़ी मछलियोंकी भोज्य सामग्री हैं। इस प्रकार सामुद्रिक जन्तुओंके भोजनका भार बेचारे द्विअणुओंको उठाना पड़ता है और यह एक प्रकारसे समुद्रके 'चरागाह' हैं।

द्विअणुओंके कोष्ठकोंकी दीवालमें शैलिका (Silica) पाई जाती है इसलिये दीवालका टूटना कठिन होता है। यह बहुत अल्प समय तक जीवित रहते हैं। मरनेके पश्चात् कोष्ठकके अन्दरका भाग गल जाता है और खोल रह जाता है यह समुद्र या झील की तलहटीमें एकत्रित होते जाते हैं।

अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखी जाने वाली वस्तुओंमें कदाचित् द्विअणुओंके खोल सबसे अधिक सुन्दर होते हैं। इनकी सुन्दरतासे प्रभावित होकर कई वैज्ञानिकोंने केवल द्विअणुओंके बारेमें ढ़ढ़-खोज करनेके लिये अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया है। इन्होंने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके बहुतसे लुप्त और जीवित द्विअणुओंका पता लगाया है। सर अरनैस्ट शैकलेटन और सर डगलस ऑसनने तो केवल द्विअणुओंको इकट्ठा करने ही के लिये दक्षिणी ध्रुवकी यात्रा की। कहा जाता है कि अब तक ८००० भेदके द्विअणुओंका पता और वर्णन ज्ञात हो सका है। इनमेंसे बहुतसे तो यूनाइटेड स्टेट्सके राष्ट्रीय चिड़ियाखानेमें एकत्रित हैं; लेकिन कदाचित् बृटिश चिड़ियाखानेमें इससे भी अधिक द्विअणु इकट्ठा हैं।

कारनेगी इंस्टिट्यूट, वाशिंगटनके खोज सम्बन्धी कार्यकर्ता, डा० एलबर्टमानने द्विअणुओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

'सौ वर्ष पूर्व—जबसे अणुवीक्षण यन्त्र कोरी आंखसे न दिखने वाली वस्तुओंको दिखलानेमें सफलीभूत हुआ है, मनुष्योंने एक नए संसारको ढूंढ निकाला है। इस नए संसारकी अनेक आश्चर्यजनक कृतियोंमें द्विअणुओंकी सुन्दरता भी सम्मिलित है, इन द्विअणुओंके शरीरकी सुन्दर और सुडौल बनावटको देखकर वनस्पति विभागके वैज्ञानिक चकित रह गए। द्विअणुओंके बारेमें जाननेके लिये वैज्ञानिक उत्सुक हो उठे और उनकी खोजों

के वर्णनसे पत्रिकाओंके पन्ने पर पन्ने भरने लगे । द्विअणुओंकी जांच करनेके लिए बहुत तीक्ष्ण ताल वाले अणुवीक्षण यन्त्रोंका बनाना आरम्भ हो गया । यहीं तक ही नहीं लेकिन कुछ विशेष द्विअणुका दीख जाना ही तालकी तीक्ष्णता का प्रमाण माना जाने लगा ।'

इस शताब्दिके आरम्भमें द्विअणुओंके बारेमें कुछ विशेष बातें मालूम हुईं । अभी तक द्विअणुओंको केवल सुन्दर शिल्प-कला और कोमलता का नमूना ही समझा जाता था लेकिन अब मालूम हुआ कि यह सामुद्रिक जीवनके लिये बहुत आवश्यक हैं । इसलिए पिछले २० वर्षोंसे वैज्ञानिक द्विअणुओंके व्यावसायिक महत्त्वके बारे ही में खोज कर रहे हैं ।

द्विअणुओंकी प्रसिद्धिके दो कारण हैं, प्रथम उनके शरीर की बनावट और दूसरा उनमें तरह तरहके नमूने । अभी तक ८००० प्रकार के द्विअणु खोजे जा चुके हैं । इनमें करीब सभी भिन्न प्रकारके हैं । जितनी भी तरह की बनावट और नमूने मनुष्य विचार कर सकता है करीब करीब उन सभी प्रकारके द्विअणु पाये जाते हैं । गोलाई लिए हुए बनावटमें गोल, वृत्ताकार, चन्द्राकार, अण्डाकार, लहरियेदार आदि अनगिनत बनावटके द्विअणु पाये जाते हैं । समरूप द्विअणुओं (Symmetrical Diatoms) में दो, चार, छः आठ यहां तक कि बीस किनारे तक पाए जाते हैं । यह किनारे सीधे, गोलाई लिए हुए उन्नतोदर, नतोदर (Concave) आदि होते हैं । इनकी गोलाई आदि उचित परिमाणमें चारों तरफ एक समान और बड़ी सफाईसे बनी होती है । इस सफाई को देख पहले तो जौहरी और सुनार बहुत प्रसन्न होते हैं लेकिन जब वे बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी प्रतिलिपि नहीं बना पाते तो निराशाकी एक आह खींचकर रह जाते हैं । द्विअणुओं की सुन्दरता शरीरमें ऊंचाई निचाई होनेसे और बढ़ जाती है । यह ऊंचाई निचाई गोल लहरोंके समान चारों ओर समान रूप से फैली होती है । यद्यपि द्विअणुओंके चित्रोंमें उतनी तीक्ष्णता नहीं आ सकती है फिरभी इन्हें देखकर आप उनकी सुन्दरताका कुछ अनुमान कर सकते हैं ।

लेकिन द्विअणुओं के धरातलकी सुन्दरता (Surface ornamentation) और भी बढ़ी हुई है । यह इतनी गहन और इतने प्रकारकी होती है कि उसका सन्तोषजनक वर्णन एक प्रकार से असम्भव है । कई द्विअणुओं में धरातल चमकती हुई छड़ोंसे—जो सीधी या मुड़ी होती हैं—ढंका रहता है । दूसरोंमें छड़ोंकी जगह मोती होते हैं । यह मोती झुण्डोंमें, या समानान्तर रेखाओंमें या सीधी रेखामें इधर उधर छितरे रहते हैं, कई द्विअणुओंमें यह कांच पर पड़ी ओसकी बून्दोंके समान दिखाई पड़ते हैं । एक विशेष जातिमें जाल सा बन जाता है । कभी कभी इस जालमें खाली स्थानों पर छोटे छोटे मोती पड़े रहते हैं जिससे द्विअणुकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है ।

द्विअणु

चित्रमें दो प्रकार के द्विअणु दिखलाए गए हैं । वस्तुतः द्विअणु बीसों प्रकार के होते हैं ।

जब हम यह देखते हैं कि द्विअणुके एक ही कोष्ठकमें ईश्वर ने इतनी सुन्दरता कूट कूट कर भर दी है तो बड़ा आश्चर्य होता है । सबसे सुन्दर फूल गुलाब तथा और भी सुन्दर वस्तुएं असंख्य कोष्ठकोंसे मिलकर वह सुन्दरता नहीं प्राप्त कर सकीं, जो द्विअणुके केवल एक ही कोष्ठक को प्राप्त है ।

असली शर्बत बनाने के नुसखे

[लेखक—श्री श्रीचरण वर्मा, एम. एस-सी.]

अब हम शर्बत बनानेके कुछ चुने हुए नुसखे लिखते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य फलोंके शर्बत भी इसी प्रकार बनाये जा सकते हैं। इन नुसखोंमें मिश्री और गुलाबजलकी जगह साफ की हुई चीनी और पानी इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि मिश्री और गुलाबजल ही का प्रयोग करो तो ध्यान रखना चाहिए कि मिश्री पीस कर खूब गर्म गुलाबजल में मिलानी चाहिये।*

(१) शर्बत अखरोट—

अखरोटकी मींगी	१ सेर
गुलाब जल	३ सेर
मिश्री	२ सेर

मींगीको अच्छी तरह पीसो कुचलो फिर उसको २ सेर गुलाब जलमें डाल कर पन्द्रह मिनट तक धीमी आंच पर गर्म करके छान कर दूध निकालो। मिश्रीको बाकी गुलाब-जलमें पकाओ। जब खौलने लगे तो निकले हुए दूध को उसमें डाल दो तथा पन्द्रह मिनट तक और खौलने दो। इसके बाद उतार लो और ठंडा होनेके बाद बोतलोंमें भर लो।

(२) शर्बत अनन्नास—

अनन्नासका गूदा	१ सेर
गुलाब जल	३ सेर
मिश्री	१ सेर

(१) अनन्नासको अच्छी तरह छीलो और बीचकी डण्ठल निकाल कर छोटे छोटे टुकड़े करो। इनको २ सेर गुलाब-जलमें आधे घंटे तक पका कर आगसे उतार लो। फलोंको गुलाब जलमें लकड़ीके डण्डे या मूसलसे कुचलो और कपड़ेमें छान लो।

* किसी भी शर्बत को तय्यार करो, चाशनी बनाते समय इस बातका खूब ध्यान रखो कि चाशनी न ज्यादा पतली रहने पावे न बहुत गाढ़ी हो जाय, यदि चाशनी पतली होगी तो शर्बत कुछ दिनके बाद खटास देने लगेगा और चाशनी गाढ़ी होगी तो शर्बत जम जायगा। इसलिये चाशनी बनाते समय पकते हुए शर्बतको अंगुली पर लगाकर चाशनीकी तार देखो अगर चाशनी एकतार सी बंध जाय उस समय ठीक समझो और उसे उतार लो।　　　　ह० श०

अब मिश्रीको पीस कर बाकी गुलाब-जलमें दस मिनट तक पकाओ और अनन्नासका रस उसमें मिला कर पन्द्रह मिनट तक और खौलनेके बाद बोतलों में भरलो। एक या दो तोले शर्बत पानीमें पीने से पाचनमें सहायता मिलती है।

(२) अनन्नास छांटलो और उनको भली भांति धोकर छीलो, तब फलके छोटे टुकड़े करलो। उनको लकड़ीके डण्डेसे पत्थरकी कूंडीमें रख कर कुचलो। फिर रस निकालने वाली मशीनमें दबा कर रस निकाल लो। यदि तीन बोतल रस हो तो छः सेर चीनी और थोड़ा सा खालिस ऐसेटिक ऐसिड (Acitic Acid) मिला कर धीमी धीमी आंच पर रख कर उतना चलाओ कि सब चीनी घुल जाय। इसके बाद उतार कर ठंडा होने पर बोतलोंमें भर दो।

अनन्नासको कुचल कर २४ घंटे रक्खा रहनेके बाद रस आसानीसे निकल आता है।

(३) शर्बत अनार—

कन्धारी अनारका रस	१ सेर
गुलाब जल	१ सेर
मिश्री	१ सेर

(१) अच्छेसे अच्छे कन्धारी अनारके दाने साफ करके मजबूत कपड़ेमें थोड़े थोड़े रख कर कपड़ेको मरोड़ दबा कर किसी चीनी के बर्तनमें रस निकाल लो और तोल लो। गुलाब-जलको आग पर रक्खो। जब गर्म होजाय धीरे-धीरे मिश्री मिलाओ और बीस मिनट तक धीमी आग पर पकने दो। तब छाना हुआ रस उस में मिला कर दस या पन्द्रह मिनट तक फिर पकाओ जब तक कि वह शर्बतके समान गाढ़ा न हो जाय।

यह शर्बत दिल और दिमागको ताकत देता है। अगर वायु का विकार हो, पित्तका विकार हो अथवा भूख कम लगती हो तो सुबह शाम एकसे दो तोले तक शर्बत पाव भर पानीमें मिला कर पीनेसे बहुत फायदा होता है।

(२) अगर मीठे अनारका शर्बत बनाना हो तो २½-३ पाव तक मिश्री काफी होगी।

(४) शर्बत अमरूद—

अमरूद	१ सेर
साफ पानी	२½ सेर
मिश्री या चीनी	३ पाव

ठीक पके हुये अमरूद छांट कर धो डालो और छील कर छोटे छोटे टुकड़े कर लो। उनको २ सेर पानीमें धीमी आंच पर आधा घंटा पकाओ और ठडा होने पर मलमलके कपड़ेमें अमरूद के टुकड़ोंको डालकर बिना दबाये हुये छान लो। दूसरे बर्तनमें बाकी पानी और मिश्रीको गर्म करो जब उबाल आने लगे तो वह रस उसमें डाल कर बीस-पच्चीस मिनट तक पकाओ। जब शर्बत ठीक हो जाय तो उतार लो।

यह शर्बत दो तोले थोड़ेसे पानीमें मिला कर सोते समय पीनेसे कब्जको दूर करता है।

(५) शर्बत आम—

कलमी आमके टुकड़े	१ सेर
गुलाब-जल या स्वच्छ पानी	३ सेर
मिश्री या साफ चीनी	१ सेर

आम ज्यादा पके न होने चाहियें और न कम पके ही हों। टुकड़ोंको २ सेर गुलाब-जलमें धीमी आंच पर आध घंटे तक पकाओ। इसके बाद टुकड़ोंको मल लो और कपड़ेमें छान कर जितना रस हो सके निकाल लो। बाकी गुलाबजलमें मिश्रीकी चाशनी विधिपूर्वक बनाओ। जब चाशनी तैयार हो जाय आम का निकाला हुआ रस उसमें मिला कर १५-२० मिनट और पकाओ।

फायदा–१ तोला शर्बत आध पाव पानीमें मिला कर पीनेसे प्यास बुझ जाती है यह शर्बत गर्मीमें इस्तेमाल करनेसे लपट नहीं लगती और बच्चोंको थोड़ा थोड़ा रोज पिलानेसे उनकी प्यास शान्त रहती है।

(६) शर्बत आलूबुखारा—

आलूबुखारा	१ सेर
पानी	२ सेर
शक्कर	१ सेर

आलूबुखारोंको धोकर १ सेर पानी या गुलाबजलमें २० मिनट तक पकाओ और छान कर रस निकाल लो। इसके बाद शक्कर या मिश्रीकी चाशनी तैयार करो और काढ़ेको उसमें मिला कर १५ मिनट तक धीमी आंच लगाकर शर्बत तैयार करो।

१ तोला शर्बत आध पाव पानीमें डाल कर पिलानेसे प्यास बुझती है और शरीरकी गर्मी कम होती है। बुखारमें यह शर्बत लाभदायक होता है।

(७) शर्बत अंगूर—

अंगूरका रस	१ सेर
गुलाबजल	१ सेर
मिश्री	१ सेर

अच्छे और साफ अंगूर छांट कर उनको दबा कर मशीन या हाथसे रस निकाल लो और मिश्रीकी चाशनी तैयार करके अंगूर का रस उसमें डाल दो। इसको उस समय तक पकाओ जब तक कि शर्बत सा गाढ़ा न होजाय। चाहो तो थोड़ा साइट्रिक ऐसिड (Citric Acid) मिला देनेसे शर्बतका स्वाद अच्छा हो जाता है और वह जल्दी खराब भी नहीं होता।

(२)	अंगूर	५ सेर
	मिश्री या दानेदार शक्कर	२½ सेर
	पानी	२ सेर

छांटे और साफ किये हुये अंगूरोंको किसी पत्थरके बर्तनमें रख दो। पानीको खौलाकर उनके ऊपर डाल दो। जब ठंडा हो जाय उनको अच्छी तरह मल डालो और तीन रोज तक गर्म जगह पर जैसे—चूल्हे या भट्टीके पास रख दो। उसके बाद कपड़ेमें छान कर रस निकाल लो। मिश्रीको पीस कर या शक्कर को मिला कर गर्म करो जब एक उबाल आजाय, फिर उसी पत्थरके बर्तनमें डाल दो और एक सप्ताहके बाद ऊपरके झाग और मैलको हटा कर छानो और बोतलोंमें भर कर एक सुराख-दार काग लगा दो। जब खमीर उठना बन्द हो जाय फिर छान लो और साफ बोतलोंमें कड़ा काग लगा कर ठंडी जगहमें लिटा कर रख दो।

यह शर्बत घरेलू व्यवहारके लिये विशेष रूपसे भोजनके साथ इस्तेमाल करनेके लिये बहुत अच्छा है।

(८) शर्बत किशमिश—

किशमिश	१ सेर
गुलाबजल	२ सेर
मिश्री	२ सेर

किशमिशोंको साफ करके धोओ और सुखाओ। १ सेर गुलाबजल में उनको तोड़ कर या कुचल कर डाल दो और इतनी देर तक पकाओ कि उनका रस उस जलमें खिंच आये फिर छानो

चीनी या मिट्टीके बर्तनमें बाकी गुलाबजलमें मिश्रीकी चाशनी बनाओ। चाशनी जब खौलती रहे तब ही किशमिशोंका निकला हुआ रस मिला कर उस समय तक पकाओ जब तक कि गाढ़ा न हो जाय।

(९) शर्बत केला—

केला (छिला हुआ)	१ सेर
पानी	२½ सेर
शक्कर	१½ सेर

केलोंको काट कर टुकड़े करलो और उनको १½ सेर पानी में धीमी आंच पर ३० मिनट तक औटाओ। जब ठंडा हो जाय तो साफ कपड़ेमें मल कर छान लो। शक्करकी बाकी पानीमें चाशनी बनाओ। केलेका रस उसमें डाल कर चलाओ और तेज आग पर गाढ़े होने तक खौलाओ।

(२) छाँटे हुये केलोंको छीलो और टुकड़े करो, उनको चीनी के बर्तनमें रख कर उनके ऊपर मिश्री या शक्कर अच्छी तरह छिड़क दो। बर्तनको ढक कर दूसरे पानीके बर्तन (Steam bath) में रख कर आग पर रखदो। जब बाहरी बर्तनका पानी खौलने लगे तो आगसे उतार कर ठंडा होने दो और केलेके रस को छान लो। इसको अपने मन चाहे सादा चाशनी बनाये हुए शर्बतमें मिला दो। चार केलोंका रस एक बोतल चाशनीके लिए उपयुक्त होता है।

(१०) शर्बत केवड़ा—

केवड़ेके फूल (बाल) ताजे या अध सूखे	५/८ सेर
गुलाबजल	२½ सेर
मिश्री	१ सेर

केवड़ेकी बालोंके ऊपरके पत्ते निकाल कर छोटे छोटे टुकड़े करलो। १½ सेर गुलाबजलमें २४ घंटे भीगने दो। बादमें उस को १५ मिनट तक धीमी आंच पर गर्म करो और ठंडा करके छान कर बाकी गुलाबजलमें मिश्रीकी चाशनी बना कर उसमें केवड़ेका छाना हुआ वह रस मिला दो। १५ मिनट तक खौलाओ।

(११) शर्बत खस—

खस	१ पाव
पानी	२ सेर
मिश्री	१ सेर

खसको धोकर किसी चीनीके बर्तनमें १ सेर साफ पानीमें २४ घंटे भीगने दो। फिर १०-१५ मिनट धीमी आंच लगाओ जिससे कि खसका काढ़ा बन जाये। छानो। काढ़ेको दोबारा जोश दो। जब दो तिहाई रह जाय तो बाकी पानीमें मिश्रीकी चाशनी बना कर मिला दो और पकाओ। एक उबाल आजाने पर उतार बोतलमें बन्द कर लो।

(१२) शर्बत खूबानी—

खूबानी	१ सेर
स्वच्छ पानी	२ सेर
दानेदार चीनी	१ सेर

(१) उम्दा खूबानी १ सेर पानीमें पकाओ और छान कर काढ़ा बना लो। बाकी पानी और चीनीकी चाशनी तैयार करो। खूबानीका काढ़ा उसमें मिला कर जोश दो। जब उसमें शर्बत सा गाढ़ापन आजाय, उतार लो।

(२) खूबानी (Apsicof) का गूदा २ बोतल लेकर खूब मलकर साफ कलई किये तांबेके बर्तनमें छान लो। चीनीकी सादा चाशनी १० बोतल खौलती हुई उसमें डालो और मिलाते जाओ थोड़ा सा साइट्रिक ऐसिड (Citric Acid) भी घोल कर मिला दो। थोड़ी थोड़ी देर बाद चलाते रहो। जब ठंडा हो जाय बन्द कर लो।

(१३) शर्बत गन्ना—

गन्नेका रस	१ सेर
गुलाबजल	३ सेर
चीनी	१ सेर

गन्नेके रसको २ सेर गुलाबजलमें १ घंटे तक धीमी आग पर पकाओ और चीनीकी चाशनी गुलाबजलमें बनाओ। कुछ मिनटोंके बाद रस भी मिला दो और सबको तेजीसे खौलाओ। जब गाढ़ा हो जाय उतार लो।

(१४) शर्बत गुलाब—

(१) देशी गुलाबके सूखे फूल	½ सेर
शुद्ध पानी	२ सेर
साफ शक्कर	५ सेर

फूलकी पंखड़ियोंको साफ करके १२ घंटे पानीमें भीगने दो बादमें छान कर पत्तियोंको निकाल दो। साफ रसको धीरे धीरे खौलाओ। जब एक तिहाई जल जाय, तब उसमें शक्कर मिला कर पकाओ जब तक कि शर्बत जैसा गाढ़ा न हो जाय।

(२) गुलाबकी पंखड़ियां (ताजी) १ सेर
शक्कर १५ सेर
पानी १० सेर

फूलोंको साफ खरलमें कुचलो और ६ सेर पानी डाल कर दूसरे पानीके बर्तन (Water bath) में रख कर ३० मिनट के लगभग जोश दो। बादमें थोड़ी देर आगसे उतार कर चलाते रहो। ठंडा होने पर छानो। छनी हुई पंखड़ियोंको दोबारा पहले की तरह बाकी पानीमें खौलाकर १२ घंटे रक्खा रहने दो। तब छान कर दोनों अर्कोंको मिला दो। शक्कर डाल कर आंच लगाओ। जब गाढ़ा शर्बतसा होजाय उतार लो।

अगर शर्बतमें गुलाबी रंग देना चाहो तो १० बूंद सलफ्यूरिक एसिड (Sulphuric Acid) मिला दो।

(१५) शर्बत चन्दन—

चन्दन सफेद १ सेर
गुलाबजल ४ सेर
मिश्री ४ सेर

चन्दनका बुरादा करलो फिर उस बुरादेको २४ घंटे तक गुलाबजलमें चीनीके बर्तनमें भीगने दो। १०-१५ मिनट धीमी आंच पर गर्म करो और कपड़ेमें छानलो। अर्कमें पिसी हुई मिश्रीको मिला दो फिर १५-२० मिनट तक जोश दो। जब शर्बत सा गाढ़ा हो जाय उतार लो *।

इस शर्बतके दैनिक सेवनसे दिल और दिमाग ठीक रहता है।

(१६) शर्बत चिरौंजी—

साफ चिरौंजी १ सेर
मिश्री २ सेर
पानी ४ सेर

चिरौंजीको कुचल कर पानीमें इतनी देर तक जोश दो कि पानी आधा रह जाय। फिर छान लो और पिसी हुई मिश्रीको उसमें मिला कर १५ मिनट और गर्म करो।

आधी छटांक शर्बत एक पाव गुनगुने दूधमें मिला कर पीने से ताकत देता है और खून बढ़ाता है।

(१७) शर्बत चेरी (विलायती मको)—

चेरी १ सेर
पानी ४ सेर
चीनी ४ सेर

चेरीको कुचल कर उसके बीज निकाल दो। गूदेको ३ रोज तक ऽ२ सेर पानीमें भिगोदो कभी कभी चलादो। इसके बाद रस निचोड़ो और रात भर उस रसको रक्खा रहने दो। फिर शक्करकी चाशनी बना कर रस उसमें मिला दो और १०-१५ मिनट तक जोश दो लेकिन जैसे ही उबाल आने लगे उतार लो और साफ बोतलोंमें बन्द कर दो। काली चेरी अधिक स्वादिष्ट होती है। उसीका शर्बत भी अधिक अच्छा होता है।

(१८) शर्बत नारंगी—

नारंगीका रस १ सेर
गुलाबजल ½ सेर
मिश्री ४ सेर

नारंगीके रसमें गुलाब जलको मिलाकर उसको छानलो और शक्कर मिला कर शर्बत तयार करो। इन्हीं नारंगियोंके ताजा छिलकोंका उपरी पीला भाग चाकूसे छील कर खरलमें थोड़ी सी शक्करके साथ रगड़ डालो। इसमेंसे इच्छानुसार स्वादके लिये उस शर्बतमें मिला दो।

(२) मीठी नारंगी १५
नीबू बड़े २
बना हुआ सादा शर्बत १ सेर

नारंगियोंका रस ताम चीनीके बर्तनमें निकालो। दोनों नीबुओंको छिलके सहित कुचल लो और नारंगीके रसमें अच्छी तरह मिलादो और बारीक चलनीमें छान लो। तैयार किये हुये शर्बतमें इसको मिला कर हल्का जोश देकर उतार लो।

(१९ शर्बत नीबू—

नीबूका रस १ सेर
स्वच्छ जल १ सेर
साफ दानेदार चीनी १ सेर

उम्दा दानेदार नीबू छांटने चाहियें। उनको साफ करके काट कर रस निकालो। शक्कर और पानीको १५-२० मिनट खौलनेके बाद नीबूका रस मिला दो और गाढ़ा होने तक और आंच लगाओ।

---

* इस तरह शर्बत बनाने पर कड़ुआहट देता है इसलिये चन्दन बुरादेका अर्क भभके (परिश्रुत यन्त्र) से खींच कर उस ऽ।– अर्कमें ऽ१ सेर मिश्री डालकर मन्द मन्द आंच पर शर्बत तय्यार करना चाहिये। ह० श०

(२) नीबूका रस　　१ सेर
गुलाबजल　　१ सेर
शक्कर　　२ सेर

नीबूके छिलकोंको अन्दाजसे शक्करके साथ खरलमें रगड़ो। नीबूके रसमें मिला कर छानलो और शक्कर डाल कर धीमी आंच लगाओ। जब शक्कर घुल जाय फौरन उतार लो। ध्यान रक्खो कि शर्बत खौलने न पाये। जहां तक हो सके कम आंच लगाओ।

(२०) शर्बत पपीता—

पपीता पका हुआ　१ सेर
चीनी　२ सेर
पानी　३ सेर

पपीते को छीलकर काटकर बीज निकालो। धोओ और छोटे-छोटे टुकड़े काटो। उन टुकड़ोंको २ सेर पानीमें धीमी आंचपर १५-२० मिनटके लगभग जोश दो। बादमें छानकर रस निकाल लो लेकिन पपीते के टुकड़े हाथसे मींजने नहीं चाहिये। बाकी पानी और चीनीकी चाशनी बनाओ, उसमें पपीते का निकला हुआ रस मिलाकर इतनी देर गर्म करो कि शर्बत सा गाढ़ा हो जाय।

(२१) शर्बत बादाम—

बादाम कागजी (मींगी) १ सेर
गुलाब जल　२ सेर
मिश्री　१ सेर

बादामोंको पानीमें भिगोकर छिलका उतार दो। तब डंडा से कूंडी में पीस डालो। पिसे हुए बादामोंका दूध निकाल लो, छानकर १ सेर गुलाबजल में मिलाकर १०-१५ मिनट तक पकाओ। मिश्रीकी चाशनी शेषगुलाब जलमें बनाओ और बादाम का दूध उसमें मिलाकर १५ मिनट पकाओ। *

यह शर्बत दिमाग और शरीरको ताकत पहुंचाता है।

(२२) शर्बत बेल—

बेलका गूदा (बीज और ल्हेसदार वस्तु निकाल कर) १ सेर
चीनी　२ सेर
पानी　३ सेर

बेल पका होना चाहिये। उस गूदेको २ सेर पानीमें १ घण्टेके लगभग खौलाओ। कपड़ेमें छानकर अर्क निकाल लो। बाकी पानी में चीनीकी चाशनी बनाओ। बादमें बेलका अर्क भी मिला दो और गाढ़ा होने तक फिर जोश दो।

(२३) शर्बत मुनक्का—

शर्बत किशमिशकी विधिसे तैयार किया जाता है जो पहले वर्णन किया जा चुका है।

(२४) शर्बत रसभरी—

रसभरीका रस　१ सेर
चीनी　३ सेर
पानी　१ सेर

ताजी रसभरी लेकर उनको कपड़ेमें दबाकर रस निकाल लो। तब उसमें चीनी और पानी मिलाकर धीमी आंचपर इतना गर्म करो कि खौलने लगे। ठण्डा करके छानो। इस शर्बतमें यदि प्रति सेर में ½ मुनक्के भी मिला दिये जांय तो अधिक स्वादिष्ट होजाता है।

(२) रसभरी　१ सेर
चीनी　२ सेर
पानी　८ छटांक

फलोंकी एक तह कांच या चीनीके बर्तनमें बिछाकर थोड़ी सी चीनी छिड़को। फिर तह लगाओ और चीनी छिड़को। इसी प्रकार सब फलोंकी तहें लगाकर चीनी छिड़क कर कई घण्टे तक रक्खा रहने दो फिर कपड़ेमें दबाकर रस निकाल छानलो फिर गूदको थोड़ा पानी डालकर और निचोड़ो, जब सब रस निकल आए तो बाकी पानी चीनीमें मिलाकर पकाओ। जब गाढ़ा शर्बत होजाय तब उतार लो।

(२५) शर्बत लीची—

लीचीका गूदा　१ सेर
साफ पानी　२ सेर
चीनी　२ सेर

लीची के गूदे को १ सेर पानी में १५ मिनट के लगभग औटाकर महीन कपड़े में छानकर गूदेको बिना मले ही रस निकाल लो। बाकी पानीमें चीनीकी चाशनी बनाओ और लीची का रस उसमें मिलाकर थोड़ी देर और जोश दो। जब ठीक गाढ़ा हो जाय तो उतार लो।

---

* एक सेर मिश्री के लिये १० तोला बादाम की मींगी काफी होती है। १ सेर बादामकी मींगी के लिये ८ सेर मिश्री डालनी चाहिये। तब शर्बत ठीक बनेगा।　　ह० श०
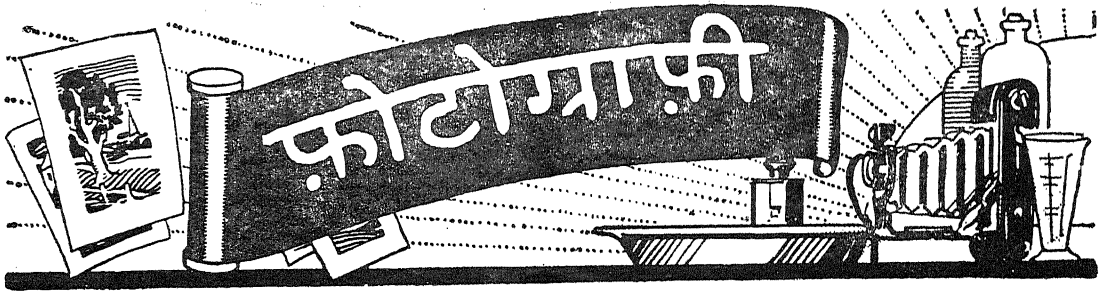
फ़ोटो छापना

प्रारम्भिक—पहले बतलाया जा चुका है कि ब्रोमाइड पेपरसे मिलता-जुलता एक दूसरा कागज भी होता है जिसे गैस-लाइट कहते हैं। कई कारणोंसे इसी पर फोटो छापनेमें सुविधा होती है। इसलिये नौसिखियेको पहले इसी पर छापना सीखना चाहिये।

सामान—गैसलाइट कागज इतना तेज नहीं होता कि अँधेरी कोठरीके बिना काम न चले। किसी भी कोठरीमें रातके समय काम किया जा सकता है, परन्तु कोई बक्स खड़ा कर लेना चाहिये और उसीकी आड़में काम करना चाहिए जिससे बत्तीकी सीधी रोशनी कागज पर न पड़े। इसके अतिरिक्त कागजको खुला न रख छोड़ना चाहिए, नहीं तो आड़में भी वे काफी समय तक पड़े रहने पर खराब हो जायेंगे। यदि अंधेरी कोठरी हो तो उसमें लालके बदले पीली रोशनी करके काम अधिक सुविधासे किया जा सकता है।

यदि बिजलीका प्रकाश न हो तो कुछ मैगनीसीयमका तार भी खरीद लेना चाहिए। इसे जलानेके लिये स्पिरिट लैंप रहे तो बड़ी सुविधा होगी, परन्तु इसके अभावमें दिया या मोम-बत्तीसे काम चल जायगा।

काम आरम्भ करनेके पहले डेवेलप करने, धोने और स्थायी करनेके लिये तीन तश्तरियां क्रमसे रख लेनी चाहिये। एकमें डेवेलपर रहे। उसी नुसखेसे काम यहां भी चल जायगा जो फिल्मके लिये पहले बतलाया जा चुका है परन्तु कागजकी प्रयोग विधिके अनुसार बने डेवेलपरसे किसी-किसी कारखानेके कागजमें रंग अधिक अच्छा आता है, हाइपोका घोल भी पहले जैसा या थोड़ा अधिक पतला (फीका) रहे।

पहले अपने सबसे अच्छे नेगेटिवसे छापिये। छापनेके चौखटेमें सादा स्वच्छ शीशा रख उस पर फिल्म रखना चाहिए।
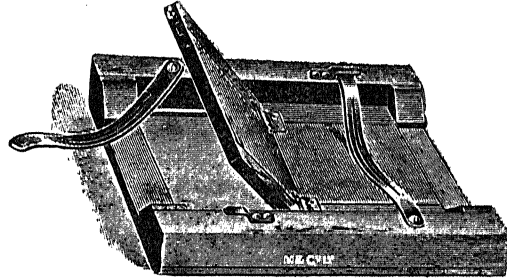
चित्र नं १—छापने का चौखटा

(प्लेटसे छापना हो तो सादे शीशेकी आवश्यकता नहीं है)। नेगेटिवकी बिना चमक वाली सतह भीतर रहे (अर्थात् उधर रहे जिधर कागज रक्खा जायगा)। इस पर गैसलाइट कागजका एक टुकड़ा रखना चाहिए, मसालेदार सतह नेगेटिवकी ओर रहे। पहचानके लिये उल्टी ओर कई कारखाने वाले अपना नाम छाप देते हैं। न पता चले तो कागजके एक छोटे टुकड़े को तेज रोशनीमें देखो, या उसे गीले हाथसे छू कर देखो, या इस पर ध्यान दो कि ऐंठनसे कागज किधरकी ओर नतोदर (गहरा) हो गया है (मसालेदार तह नतोदर रहता है)। ग्लॉसी कागजोंमें मसालेदार सतह चमकदार होती है। कागज रखनेके बाद पीठ लगा कर चौखटा बन्द करो।

अनुमानसे कुछ प्रकाश दर्शन दो, अर्थात् चौखटेको रोशनी

देखो (चित्र २)। उदाहरणात: ६० मोमबत्तीके ताकत की बत्ती से १२ इञ्चकी दूरी पर रख एक भागको ४ सेकण्ड, एक को ८ सेकण्ड १ को १६ सेकण्ड प्रकाश-दर्शन दो (बारी-बारी से इतनी देरके बाद दफ्तीसे नेगेटिवके भिन्न-भिन्न भागों को ढकना काफी होगा।
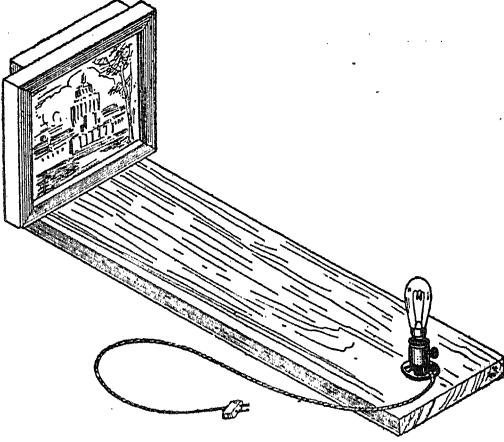
चित्र नं २—गैस लाइट पर छापना चौखटे पर नेगेटिव के पीछे गैस लाइट कागज़ बंद करके चौखटे को प्रकाश के सामने कुछ समय तक रक्खो।

अब कागजको ठंडे डेवेलपरसे ६० सेकण्ड तक (या प्रयोग विधिमें बतलाये समय तक) डेवेलप करो (कागज काला हो चले तो भी पूरे समय तक डेवेलप करना चाहिए अन्यथा ठीक प्रकाश-दर्शनका अन्दाज न मिलेगा)। फिर कागजको पानीमें झपला लो (शीघ्र धो डालो) और हाइपोमें डाल दो। तीन-चार मिनट बाद तेज सफेद रोशनीमें देखो, ठीक प्रकाश-दर्शनका पता चल जायगा। अब दूसरा समूचा कागज नेगेटिव पर रक्खो (मसालेदार सतह नेगेटिवकी ओर रहे) और उचित प्रकाश-दर्शन दो, डेवेलप करो, पानीमें झपलाओ, हाइपोमें डालो, कई छाप तैय्यार हो जानेके बाद, और जब प्रत्येक छाप हाइपोमें कमसे-कम ६-७ मिनट रह ले, तो छापोंको बहते पानीमें या दस-पंद्रह बार पानी बदल कर धोओ और सूखनेके लिये लटका दो।

हाइपोमें जब तक छाप रहे तब तक कभी कभी तश्तरीको हिलाते रहना चाहिए और जब जब तश्तरीमें नयी छाप डाली जाय तब-तब तश्तरी खूब हिलाई जाय जिसमें हाइपो नई छापके सब स्थान पर अच्छी तरह लग जाय, नहीं तो धब्बे पड़ जायेंगे। डेवेलपरसे निकालने हाइपोमें डालनेके बीच दस ही बीस सेकंडका समय लगे। यदि हाइपोके घोलमें आउंस पीछे १० ग्रेन पोटैसियम मेटा-बि-सलफाइट पड़ा रहे तो और भी अच्छा होगा। ऐसे घोलको ऐसिड फिक्सिंग बाथ कहते हैं। इससे कागज पर धब्बे पड़नेका डर बहुत कम हो जाता है।

नोट—(१) यदि प्रकाश-दर्शनकी जांच करने पर पूरा कागज डेवेलपरमें काला हो जाय तो समझना चाहिये कि तीनों प्रकाश-दर्शन अधिक थे। इसलिये दुबारा जांच करनी चाहिये, परन्तु अबकी बार लैंपसे चौखटेकी दूरी २ फुट या ३ फुट कर देनी चाहिए (दूरी दुगुनी करनेसे प्रकाश चौथाई, तिगुनी करनेसे नवम अंश हो जाता है, इत्यादि)। यदि सब कागज डेवेलपरमें सफेद रह जांय तो समझना चाहिए कि सब भागोंको प्रकाश-दर्शन कम मिला था। इसलिये तेज बत्ती लगा कर या दूरी ६" करके जांच करनी चाहिए, परन्तु दूरी कभी ६" से कम न की जाय, नहीं तो नेगेटिवके सब भागों पर रोशनी बराबर न पड़ेगी। यदि बिजली की बत्तीका प्रयोग किया जाय तो अन्धे या दूधिया शीशे वाली बत्तीसे काम करना चाहिए, सादा बत्तीके प्रकाशमें कहीं-कहीं परछाईं रहती है यदि सादी बत्तीसे ही काम करना पड़े तो नेगेटिव और बत्तीके बीचमें मोमी कागज रखलो।

(२) अन्दाज मिल जानेके बाद शुद्ध प्रकाश-दर्शनका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है। तब ऊपरकी रीतिसे जांच करनेकी आवश्यकता न रहेगी।

(३) यदि बिजलीकी रोशनी न हो तो छापनेके चौखटेसे ३ फुट पर १ इंच मैगनीसियमका फीता (Magnesium ribbon) जलाकर कागज डेवेलप करना चाहिए और परिणाम के अनुसार दूरी घटानी-बढ़ानी चाहिए।

(४) यदि छापोंको स्वच्छ कपड़े पर औंधा (मुंहके बल) सूखनेको रख दिया जाय तो सूखने पर वे बहुत कम ऐंठेंगी।

(५) नौसिखियेको कुछ समय तक तो अवश्य एक ही प्रकार के कागज पर छापना चाहिए। परन्तु कुछ अनुभव हो जानेके बाद उसे कमसे-कम तीन विभिन्न प्रकाशांतरोंका कागज रखना चाहिए, (१) साधारण (Normal), (२) कड़ा (Vigorous), (३) नरम (Soft)। कुछ कम्पनी वाले सात या आठ विभिन्न प्रकाशांतरके गैसलाइट कागज बनाते हैं। यदि हर तरहका कागज थोड़ा-थोड़ा रक्खा जाय तो और भी अच्छा होगा।

(६) यदि छापनेका चौखटा पासमें न हो तो दो शीशोंके बीच नेगेटिव और कागजको दबा कर भी गैसलाइट या ब्रोमाइड

चित्र छापे जा सकते हैं (देखो चित्र ३)।
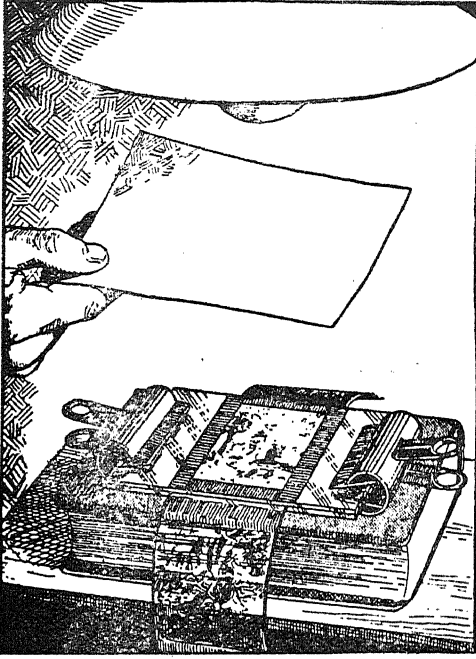
चित्र नं० ३—दो शीशोंमें दबाकर छापना।

(७) छापनेकी मशीन बिकती भी है और आसानीसे बनाई भी जा सकती है (चित्र ४)। इसमें बिजली वाला बल्ब बक्स के भीतर रहता है, नेगेटिव रखनेका स्थान बक्सके ऊपर। हैंडल
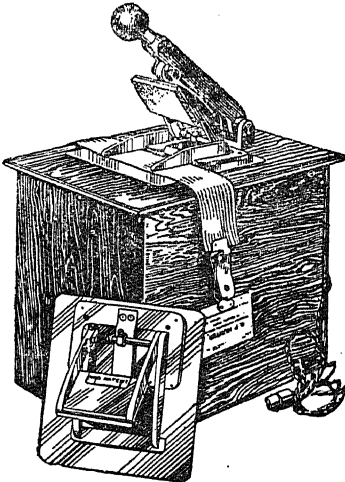
चित्र नं० ४ छापनेकी मशीन।

दबानेसे नेगेटिवके ऊपर रक्खा गैसलाइट या ब्रोमाइड कागज दब जाता है और भीतरकी सफेद रोशनी जल जाती है सफेद रोशनी नेगेटिव द्वारा आकर कागज तक पहुंच सकती है परन्तु और कहींसे बाहर नहीं निकल सकती। इससे सुविधा यह होती है कि शेष कागजको बार-बार काले कागजमें लपेटना नहीं पड़ता मशीनसे समय बच जाता है।

कागज किसी विश्वसनीय दूकानसे खरीदना चाहिए। और वह ताजा हो, धराऊं कागजमें धुन्ध उत्पन्न हो जाता है। एक हद तक डेवेलपरमें पोटेसियम ब्रोमाइडकी मात्रा बढ़ानेसे धुन्ध रोका जा सकता है, परन्तु अधिक ब्रोमाइडसे रंग काले के बदले मैला हरा हो जाता है। बहुत पुराने कागजपर किसी प्रकार भी अच्छा चित्र नहीं आ सकता।

(७) कागज कई प्रकारकी सतहों के बनते हैं, चमकदार (ग्लासी), अधिक चमकीले, चमकरहित, खुरदरे, इत्यादि। छोटे चित्रोंके लिये साधारणतः ग्लासी और बड़े चित्रों और इन-लार्जमेंटोंके लिये चमक रहित कागज पसन्द किया जाता है।

(८) छापोंके धोनेकी सबसे अच्छी रीति यह है कि दो तश्तरियां ली जांय। एकमें स्वच्छ जल भरा जाय, और दूसरी तश्तरीसे निकाल कर छापें पहलीमें रक्खी जांय। जब सब छापें इस तश्तरीमें आ जांय तो खाली हो गई तश्तरीका पानी फेंक कर उसमें नया जल भरा जाय। तब बारी बारी से सब छापें उसमें डाली जांय इत्यादि। प्रत्येक छाप निकालनेके बाद पानीको यथा सम्भव निथार देना चाहिए, इसी प्रकार एक तश्तरी से दूसरी तश्तरीमें बदलते रहनेपर छापें पंद्रह बीस मिनटमें धुल जाती हैं।

छापोंको धोनेके लिए मशीनें भी मिलती हैं। उनमें छापों को रख कर पानी खोल देनेसे छापें आपसे आप धुल जाती हैं।

(९) बहुत समय तक (बीस-पचीस मिनटसे अधिक समय तक) हाइपोमें छापोंके पड़े रहनेसे उनके खराब हो जानेका डर रहता है।

असफलताके कारण—(१) छाप बहुत काली है या मैली है। कारण दो हो सकते हैं—अधिक प्रकाश-दर्शन पुराना कागज, अधिक समय तक डेवेलप करना, अशुद्ध बना डेवेलपर, डेवेलपरमें पोटेसियम ब्रोमाइड की कमी, गरम डेवेलपर, अंधेरी कोठरीमें अनुचित प्रकाश, नेगेटिवमें प्रकाशांतर की कमी, (अधिक कड़े कागज पर छाप कर देखो)।

(२) छाप बहुत हल्की है—कम प्रकाश-दर्शन, नेगेटिव

में प्रकाशांतरकी कमी (अधिक कड़े कागज पर छाप कर देखो)।

(३) **ब्योरेका अभाव**—छापमें काले और सफेद भाग उपस्थित हैं, परन्तु इन भागोंमें ब्योरा नहीं है—अधिक प्रकाशांतर, नेगेटिवको नरम गैसलाइट या नरम ब्रोमाइड पेपर पर छाप कर देखो (नरम ब्रोमाइड पर नरम गैसलाइटकी अपेक्षा कम प्रकाशान्तर आता है)।

(४) **धब्बे**—पुराना डेवेलपर, गरम डेवेलपर पूर्णतया स्थायी न होना, हाइपोमें डालने पर छापको न हिलाना, छापमें (धोने के पहले) हवा लगना, प्लेटकी पीठ या फिल्मके साथ लगे शीशे का गन्दा रहना, नेगेटिव पर धब्बे; पुराना खराब हुआ कागज।

(५) **फफोले**:—गरम डेवेलपर, हाइपो या पानी, कागजका मुड़ जाना या उस पर जोरसे पानी गिरना।

(६) **छापका पीला या गुलाबी रंग जाना**—कम प्रकाश-दर्शन और बहुत समय तक डेवेलप करना, हाइपोमें डाल ने पर छापको न चलाना, पूर्णतया स्थायी न होने पाना (फीका हाइपो या थोड़े हाइपोमें बहुत-सी छापें), अच्छी तरह न धोना या धोनेके पहले ही हवा लगना।

ब्रोमाइड पर छापना—ब्रोमाइड पेपर पर भी छापना अवश्य सीख लेना चाहिए क्योंकि इसी पर एनलार्जमेंट (प्रवर्द्धित फोटो) बनाये जाते हैं।

ब्रोमाइड पर छापनेकी क्रिया ठीक गैसलाइट पर छापने-जैसी है, अन्तर केवल इतना ही है कि ब्रोमाइड पेपर बहुत तेज होता है। इसलिये इसे अंधेरी कोठरीमें छापना पड़ता है, और अंधेरी कोठरीमें पीलेके बदले केवल चटक लाल या नारंगी प्रकाश रक्खा जा सकता है। प्रकाश-दर्शन बहुत कम (गैसलाइटका केवल $\frac{१}{५०}$ या $\frac{१}{१००}$ या कम) लगता है; इसलिये बिजली बत्तीके अभावमें मैगनीसियमके बदले साधारण लैंपसे काम चल सकता है, परन्तु इसे बार-बार जलाना-बुझाना पड़ेगा। यदि कोई ऐसा बक्स बना लिया जाय जिसमें वायुके आवागमनका प्रबन्ध भी हो और एक दरवाजा हो जिसे बन्द करने पर प्रकाश बाहर न निकल सके तो सुविधा होगी। ब्रोमाइड पेपरको डेवेलप १$\frac{१}{२}$ मिनट तक किया जाता है (जब तापक्रम ६५° या ७०° हो)। शेष बातोंमें ब्रोमाइड कागज ठीक गैसलाइटकी तरह होता है।

पी० ओ० पी० पर छापना:—अब पी० ओ० पी० पर छापनेका रिवाज प्रायः उठ गया है। इस कागजको डेवेलप नहीं करना पड़ता, यह बड़े सुविधेकी बात है। परन्तु इसे धूपमें या दिनके तेज उजालेमें कई मिनट या घंटे तक छापना पड़ता है, यही विशेष असुविधा है। पी० ओ० पी० पर छापनेकी इच्छा हो तो पहले सेल्फटोनिंग पी० ओ० पी० पर छापना चाहिए क्योंकि साधारण पी०ओ०पी० की अपेक्षा इसमें सुविधा अधिक रहती है। कागजके साथ प्रयोग विधि मिलती है। उसी के अनुससार सब काम करना चाहिए।

सीधा करना—सूखने पर छापें अक्सर बहुत ऐंठ जाती हैं, ऐसी छापोंको कुछ समय तक भारी पुस्तकों से दबा कर रख छोड़ना चाहिए। जल्दी हो तो छापोंकी पीठ पर चित्र ५ में दिखलाई गई रीति से रूलर (पटरी) फेरनेसे भी छापें सीधी की जा सकती हैं।
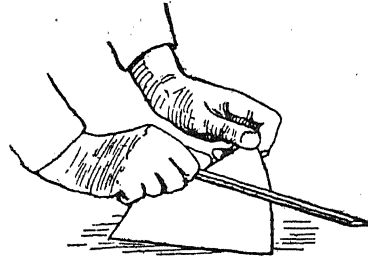
चित्र नं० ५ छापोंको सीधा करनेकी रीति

ग्लेज करना:—ग्लॉसी कागज पर छपे चित्रोंकी चमक और भी बढ़ाई जा सकती है। इसके लिये उनको ग्लेजिंग फ्लुइडमें (यह बिकता है) डुबा कर, स्वच्छ की गई क्रोमियमकी चादर या फेरोटाइप प्लेट या मोटे शीशे पर मुंहके बल रखके
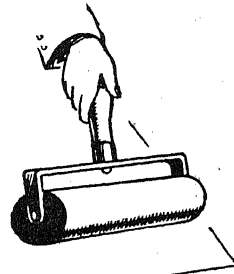
चित्र नं० ६ ग्लेज करनेके लिये छापको क्रोमियम प्लेट पर औंधा रखकर रबड़के बेलनेसे दबा देना चाहिये।

बेलनेसे चिपका देते हैं। सूख जाने पर फोटो आपसे-आप उखड़ आता है और इसकी सतह शीशेकी तरह चिकनी और चमकदार हो जाती है ग्लेजिंग फ्लुइडके बदले निम्न योगसे भी काम चल

सकता है—

फॉरमैलिन	६० मिनिम
मेथिलेटेड स्पिरिट	६० मिनिम
पानी	५ आउंस

क्रोमियमके प्लेट या फेरोटाइप प्लेट या शीशेको खूब स्वच्छ रखना चाहिए। और इस्तेमालके पहले जरा सा निम्न पालिस सर्वत्र लगा कर तथा रेशमी कपड़े या नरम सूती कपड़ेसे रगड़ कर उसे खूब चमका लेना चाहिए।

मोम	२० ग्रेन
तारपीन	१ आउंस

काटना और चिपकाना—विशेष कतरनी Tirmener या पटरी या तेज चाकूसे चित्रके किनारोंको काट कर सीधा किया जा सकता है या आवश्यक अंग निकाले जा सकते हैं। यह पता लगानेके लिये कि कितना अंश रक्खा जाय और कितना निकाल दिया जाय, अंग्रेजी अक्षर L के आकारके दो काले कागजोंकी सहायता ली जा सकती है। चित्र ७ देखो।
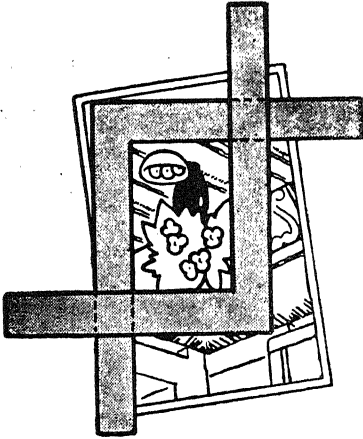
चित्र नं० ७—L आकार के दो कागजों से देखा जा सकता है कि छाप का कितना अंश रखनेसे चित्र अधिक सुन्दर लगेगा।

साधारण मैदे की लेई से या इसी काम के लिये बिकने वाली लेईसे चित्र ऐलबम (चित्र पुस्तक) में या माउंट (रंगीन दफ्ती) पर चिपकाया जा सकता है। ग्लेज किये चित्रोंका ग्लेज लेईसे चिपकाने पर मिट जाता है केवल उनके किनारों पर लेई लगाई जाय या उनके लिये ऐसे ऐलबम या माउंटका इस्तेमाल किया जाय जिसमें फोटोको दो परत कागजोंके बीच खिसका भर देना पड़ता है।

फुटकर—(१) नेगेटिव और कागज के बीच पतला काला कागज, जिसमें उचित आकारका छेद कटा हो, रख कर छापनेसे चित्रके चारों किनारों पर सफेद हाशिया छोड़ा जा सकता है। ऐसे कागजको मास्क (Mask) कहते हैं। ये स्वयं बनाये जा सकते हैं या बने-बनाये खरीदे जा सकते हैं (चित्र ८) या ऐसा चौखटा खरीदा जा सकता है जिसमें इच्छानुसार कम या ज्यादा हाशिया छोड़नेके लिये प्रबन्ध रहता है।
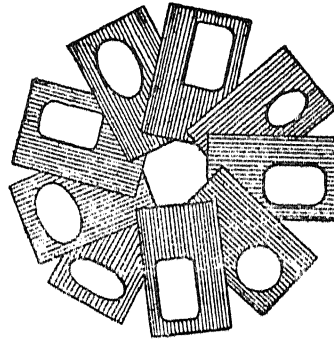
चित्र नं० ८—कुछ मास्क।

(२) छापते समय नेगेटिवके हलके भागों पर दफ्तीसे आड़ करके गाढ़े भागोंको अधिक प्रकाश-दर्शन देनेसे अक्सर अधिक अच्छा चित्र छप सकता है, परन्तु दफ्तीको थोड़ा बहुत बराबर हिलाते रहना चाहिए, नहीं तो छापमें आड़ करनेकी रेखा दिखलाई पड़ेगी।

(३) नेगेटिवके मसाले पर रि-टचिंग मीडियम (Retouching medium) जरा सा घिस देनेके बाद उस पर साधारण पेंसिलसे काम किया जा सकता है। पेंसिल खूब नुकीली बनाई जाय और बहुत फुलफुले हाथ चलाई जाय। इस प्रकार रि-टचिंग करने में बहुत अभ्यास और कौशलकी आवश्यकता है। मोटे कामके लिये प्लेट पर बने नेगेटिवोंकी पीठ पर पतला कागज चिपकाया जा सकता है और उस पर काम किया जा सकता है। फिल्म नेगेटिवोंको सादे शीशे पर रख कर किनारोंको कागजकी पट्टियोंसे चिपकाया जा सकता है। फिर शीशे पर पतला कागज चिपका कर काम किया जा सकता है। नेगेटिवको जहां गाढ़ा करना हो वहां पेनसिलका चूर या कालिख मला जा

(शेष पृष्ठ ११८ के दूसरे कालमके नीचे)
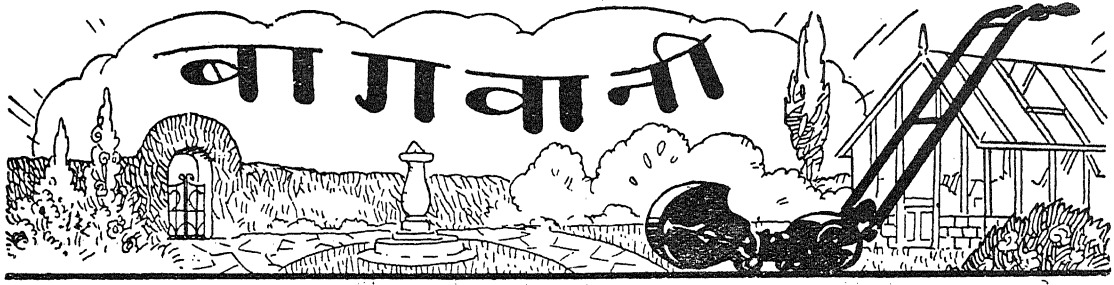
लीची

लीची—एक मौसमी फल है जिसका फल सुगन्धयुक्त और मीठा होता है। लीची शब्द वस्तुत: चीन देश से आया है। चीनमें यह फल बहुत होता है और सम्भवत: इसका वृक्ष भारत वर्षमें पहले पहल वहींसे आया हो।

लीचीका फल और इसकी पत्तियां कवर पर चित्रमें दिखलाई गई हैं। पत्तियां भाले के आकार की और दो तीन इञ्च लम्बी होती हैं ऊपरकी ओरसे गहरे हरे रङ्गकी और चमकीली होती हैं। नीचेकी ओर पत्तियोंका रङ्ग कुछ हल्का होता है।

फलका स्वाद इतना अच्छा होता है कि इसे सभी पसन्द करते हैं। भारतवर्षमें यह फल सैंकड़ों वर्षोंसे उत्पन्न किया जा रहा है और इतनी आसीनीसे होता है कि यह किसी प्रकार विदेशी वृक्ष नहीं कहा जा सकता।

चीनमें इस फलको धूपमें सुखा भी लेते हैं और तब इसे दफ्तीके डिब्बोंमें बन्द कर बाहर भेजते हैं। परन्तु सुखाए हुए फलोंका स्वाद उतना अच्छा नहीं होता, जितना ताजे फलोंका चीनमें इसका मुरब्बा भी बनता है सुखाये फलोंसे यह अधिक स्वादिष्ट होता है और बहुत अधिक मात्रामें चीनसे अन्य देशों में जाता है।

भारतवर्ष में लीची मुख्यत: बिहार और देहरादूनमें पैदा की जाती है। चीन और भारतवर्ष के अतिरिक्त लीची केवल थोड़ी ही बहुत मात्रामें अन्य देशोंमें उत्पन्न होती है। इन देशों में ऑस्ट्रेलिया, फॉरमोसा, दक्षिणी जापान, हवाई द्वीप, वेस्ट इण्डीज और ब्राजील प्रमुख हैं। अमेरीकामें इसे उत्पन्न करने की चेष्टा अवश्य की गई परन्तु अधिकांश स्थानोंमें वृक्षमें फल ही नहीं लग पाये, केवल सैंटा बारबरामें एक-दो वृक्षोंमें थोड़ेसे फल पहले-पहल १९५४ में पक पाये।

लीचीका पेड़ आम, जामुन आदि पेड़ोंकी अपेक्षा छोटा होता है, पेड़ छतदार (छातेकी तरह फैला हुआ) होता है। भारतवर्षमें फूल फरवरी में लगता है और फल मई तक तैयार होता है। चीनमें फूल मईमें लगता है और फल जुलाईमें तैयार होता है। फूल छोटे होते हैं परन्तु बहुतसे लगते हैं। फल गुच्छोंमें लगते हैं और एक-एक गुच्छेमें दो-तीन से लेकर बीस पचीस लीचियां रहती हैं। अच्छे फल लगभग १½ इञ्च व्यास के होते हैं। पकने पर फल गाढ़े गुलाबी रङ्गका रहता है, परन्तु फलके कुछ सूख जाने पर रङ्ग भूरा हो जाता है। छिलका पतला और चुरमुरा होता है। कलमी लीचीमें बीज बहुत छोटा और पिचका हुआ होता है, परन्तु बीजू (बीजसे उत्पन्न किये) पेड़ोंके फलोंमें बीज बड़ा होता है और इसलिये उनमें गूदा कम रहता है। गूदा सफेद, नरम और रससे भरा रहता है, स्वाद मीठा, परन्तु कुछ-कुछ खटास लिये रहता है।

लीचीके पेड़के लिये अच्छी मिट्टी (न एक-दम बालू ही और न एक-दम बालू रहित मिट्टी) चाहिये और खाद खूब रहना चाहिये। जड़में पानी खूब पहुंचना चाहिए। चीनमें इसे अक्सर नहरोंके किनारे बोते हैं। भारतवर्षमें लीची मुजफ्फरपुर, हाजीपुर, देहरादून, सहारनपुर आदि स्थानों में होती है जहां जमीनमें पानी इतनी कम गहराईपर निकलता है कि सम्भवत: वृक्षकी जड़ें पानी तक पहुंच जाती होंगी। जहां कुएंसे पानी खींचनेके लिये दस पन्द्रह हाथसे अधिक लम्बी रस्सी लगती है वहां बिना खूब सींचे लीची नहीं हो सकती। जहां पानी ३५ इञ्च प्रति वर्षसे कम बरसता है वहां सींचनेपर भी लीची अच्छी नहीं हो पाती।

बारी और बगीचे में वृक्षों को बीस-बीस हाथ पर लगाना चाहिए। पन्द्रह-पन्द्रह हाथसे अधिक पास लगे वृक्षोंमें अच्छा फल नहीं लग पाता। वृक्षोंको छांटने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती। यदि फल लगने पर कुछ मसल कर नष्ट कर दिये जायें या काटकर निकाल लिये जायें तो शेष फल अधिक बड़े होते हैं और उनका स्वाद भी अधिक अच्छा होता

है। बीजू पेड़ सात से नौ वर्षमें फलते हैं, परन्तु कलमी पेड़ तीन से लेकर पांच सालमें ही फलने लगते हैं। चीनमें इन वृक्षोंमें खूब खाद दिया जाता है। वहां हर तीसरे या चौथे महीने वृक्षोंको तरल खादसे (उदाहरणतः गोबर को पानीमें रख कर अच्छी तरह सड़ा कर उसके बने घोलसे) सींचते हैं।

वृक्षोंको उत्पन्न करने के लिए साधारणतः मुठिया बांधी जाती है। इसको कुछ लोग गुट्टी भी कहते हैं। * चीन और भारतवर्ष दोनों स्थानोंमें साधारणतः इसी रीतिका प्रयोग किया जाता है। इसके लिये कोई बढ़िया और स्वादिष्ट फल वाला स्वस्थ पेड़ चुन लिया जाता है। फिर पत्ती निकलनेके लिए जहां आंख होती है उससे जरा नीचे (जड़की ओर) हटकर छिलकेकी पतली धज्जी चारों ओरसे निकाल दी जाती है। इसके ऊपर चिकनी (अर्थात् प्रायः बालू रहित) मिट्टी बांध दी जाती है। मिट्टीके ऊपर नारियलकी जटा या बोरेका टुकड़ा बांध दिया जाता है। इस मिट्टीके पिण्डको मुठिया कहते हैं। मिट्टीको बराबर तर रखते हैं। वस्तुतः मिट्टीको तर रखनेके लिए मुठिया पर नरम मोटी रस्सी लपेट देते हैं और इस रस्सीके दूसरे छोरको किसी गमले या अन्य मिट्टी के बरतन की पेंदीमें बने छेदमें ठूंस देते हैं या छेदमें डालकर भीतर गांठ लगा देते हैं। इस बरतनको मुठियासे कुछ ऊंचे पर लटका देते हैं और बरतनमें पानी भर देते हैं। रस्सी इस बरतनके छेदमें इतना कसकर घुसी रहती है कि पानी केवल बूंद-बूंद होकर निकल पाता है और रस्सीसे होकर मुठिया तक पहुंचता है। केवल पानी वाले बरतनको प्रति दिन या प्रति दूसरे दिन भर देना पड़ता है। मुठिया फरवरीमें बांधी जाती है। तीन चार महीनेमें शाखसे जड़ें निकल आती हैं। जब मुठिया जड़ोंसे भर जाय, और कुछ जड़ बाहर दिखलाई पड़ने लगें तो डालको काटकर अलग कर लेते हैं और जहां पेड़को लगाना होता है लगा देते हैं।

भारतवर्षमें 'दब्बा' या दाब कलम लगाते हैं। इसके लिये, यदि डार भूमि तक झुकाई नहीं जा सकती तो बांसका मचान बना लेते हैं। उस पर मिट्टी पाट लेते हैं। डालके नीचे की ओर खत काट कर डालको कटे स्थानके पास मिट्टीमें दबा देते हैं। सुबह शाम सींचकर मिट्टीको बराबर तर रखते हैं

आमकी तरह लीचीको भेंट कलमसे भी उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार बीजसे उत्पन्न लीचीके पौधेको कलमी लीची बना लेते हैं बीजसे उत्पन्न पेड़के फल कभी मीठे कभी खट्टे निकलते हैं और इसलिये बीजू पेड़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यदि बीजसे पौधे उगाने हों तो पक्के फलोंसे बीज लेकर तुरन्त बो देना चाहिये। रक्खे रहनेसे बीज मर जाते हैं।

लीचीकी कमसे कम आठ प्रसिद्ध जातियां हैं जिनमें से बेदाना सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस जातिके फलोंमें बीज बहुत ही छोटा होता है। एक हरी लीची भी होती है जो पकने पर भी हरी रहती है। इसका स्वाद बहुत मीठा और विशेष होता है।

—०—

* विज्ञान-परिषद्से प्रकाशित कलम-पेवंद नामक पुस्तकमें इन रीतियोंका ब्योरेवार और सचित्र वर्णन मिलेगा।

(शेषांक पृष्ठ ११६ का)

सकता है। जहां हलका करना हो वहां वैसलीन या तेल मला जा सकता है।

(४) पैंसिल से, या ब्रुश और रंग से, कहीं-कहीं रंग कर अकसर छापोंकी छोटी मोटी त्रुटियां, सूई-छिद्र, इत्यादि मिटाये जा सकते हैं।

लैनटर्न स्लाइडः—गैसलाइट और ब्रोमाइड कागजका मसाला शीशे पर चढ़ा हुआ भी मिलता है। इन्हें लेनटर्न स्लाइड कहते हैं। पर ठीक गैसलाइट या ब्रोमाइड कागजकी तरह छापा जाता है। सूखने पर मसालेदार सतह पर मास्क रख कर एक दूसरा शीशा उसी नापका रक्खा जाता है और तब कागजकी पट्टी चिपका कर दोनोंको बांध दिया जाता है जिसमें मसाले पर पीछे खरोंच न पड़े। स्लाइडोंको मैजिक लैनटर्नमें डाल कर इनका प्रवर्द्धित चित्र दीवार या परदे पर दिखलाया जा सकता है सिनेमा घरोंमें नोटिस वगैरह इसी प्रकार परदे पर डाले जाते हैं। वे साधारणतः पारदर्शक रंगोंसे हाथसे रंगे भी रहते हैं। इस कामके लिये चिकने वाले विशिष्ट रंगोंके इस्तेमालमें सुविधा होती है।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

अग्नि से रक्षा—यूनाइटेड स्टेट्स फारेस्ट सर्विस के अनुसार एक भाग तीसी (अलसी) के तेल में दो भाग सोहागा और आवश्यकतानुसार सफेदा, रंग, तारपीन आदि घोंटकर बनाये रंग से रगी लकड़ी शीघ्र ही जल नहीं पाती। इसलिये जहां लकड़ी के काम में आग लगने का डर हो वहां सोहागा मिले रग से रंगना चाहिये।

धुएँका खर्चा—युनाइटेड स्टेट्समें ६,५००,०००,००० रुपये प्रति वर्ष धुंएके कारण व्यर्थ जाते हैं। फैक्टरियों तथा अन्य कलाघरोंकी चिमनियोंसे जो धुआं बाहर निकलता है वह वास्तवमें बेजले कोयलोंके छोटे छोटे कण होते हैं। अगर इन कणोंको जलाया जाय तो बहुत अधिक कोयलेकी बचत हो सकती है। इसके साथ साथ कोयलेके कारण खराब हुई चिमनियोंको साफ करनेमें भी बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। ऊपरकी संख्या इन सब खर्चोंको मिला कर लिखी गई है।

बन्दूकों से आग बुझाना—लन्दन में आग बुझाने वाली संस्थामें स्त्रियां कार्य करती हैं। ये स्त्रियां आग बुझानेके लिये दो खास ढङ्गकी बनी बन्दूकें लेकर आग लगे स्थान पर पहुंच जाती हैं। जहां पर आग लगाने वाला बम पड़ा होता है वहां इन बन्दूकों को काममें लाया जाता है। इन बन्दूकों से गोलियोंके स्थान पर बड़े जोरोंसे एक रासायनिक पदार्थ निकलता है जिससे अग्नि तुरन्त बुझ जाती है। ये स्त्रियां टीनके टोप पहिने रहती हैं।

रेतके बम—इङ्गलैण्डमें बहुत भारी भारी बमोंको ठीक निशाने पर डालने के लिये उतने ही रेतके भारी बम बनाये गए हैं इन बमोंमें बारूदके स्थान पर रेत भरा रहता है। देखने में ये असली बम जैसे ही होते हैं किन्तु गिरकर फटते नहीं। बल्कि बमोंसे बचाव करते हैं।

खुलने वाली मोटर—एक मोटर इस प्रकार बनाई गई है कि ड्राइवरके एक बटन दबाने पर मोटरका अगला ढक्कन उठ जाता है। इस प्रकार ड्राइवर यह देख सकता है कि मोटर के इञ्जनमें कोई खराबी तो नहीं है। इञ्जनको ड्राइवर अपनी सीट पर बैठा बैठा ही देख सकता है।

अति-पारदर्शक शीशा

अमेरिकाकी एक शीशे की कम्पनी ने एक नए प्रकारका शीशा बनाया है जो अब तक बने शीशोंसे बहुत अधिक पारदर्शक है। यह शीशा इतना स्वच्छ है कि २४ इञ्च मोटे इस शीशेसे वस्तुएं ऐसी साफ दिखलाई पड़ती हैं जैसे कि शीशा बीचमें हो ही नहीं। इस शीशेसे ६१ प्रतिशत प्रकाश पार हो जाता है। साथ ही, यह शीशा प्रकाश की सब रश्मियोंके लिये बराबर मात्रा में पार दर्शक है; नीली और बैंगनी रश्मियोंके लिये मामूली शीशेसे यह कहीं अधिक पार दर्शक है।

पैट्रोलका सवाल

आजकल योरपके देशों का मुख्य ध्येय सब वस्तुओं को अपने देशमें ही बनाना है जिससे युद्धके समय उन्हें दूसरे देशों का मुंह देखना न पड़े। इसलिये प्रत्येक देशने अपने प्राकृतिक उद्गमों की सहायता से यह प्रयत्न किया है कि देश में प्राप्त साधनों द्वारा ही अपनी सारी आवश्यकताओंको पूरा कर सकें।

युद्धके लिये आज कल सबसे अधिक आवश्यक वस्तु पैट्रोल है। बिना इसके न तो वायुयान ही चल सकते हैं और न टैङ्क ही। इसलिये पैट्रोलको इकट्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रश्नको सुलझानेके दो रास्ते हैं। एक तो किसी ऐसे पदार्थ की खोज करना जिसे पैट्रोलके स्थान पर प्रयुक्त किया जा सके। दूसरा मार्ग है कि संसारके पैट्रोलके जो उद्गम स्थान हैं उन्हें अपने आधीन किया जाय, दूसरी रीति प्रत्येक देशके लिये युद्ध करने से पूर्व सम्भव नहीं, इसलिये पहिली रीति को काममें लाया गया।

सन् १९३७ में १८ प्रतिशत मोटरोंमें पैट्रोलके स्थान पर बनावटी वस्तुओंका उपयोग किया जाता था। इसके पश्चात् सन् १९३८ और ३९ में इस प्रकारके मोटर चलानेके पदार्थमें प्रति दिन उन्नति होती गई।

इन उपयोगमें आने वाली वस्तुओंमें लकड़ी, कोयला तथा मिश्रित गैस हैं। पहले पहल शराब या स्प्रिटका प्रयोग पट्रोलमें मिलाकर किया गया था। किन्तु धीरे धीरे इसका प्रयोग प्रति दिन कम होता गया। इसका एक कारण तो यह था कि योरप में स्प्रिट अधिक नहीं होती फिर मोटर चलाने वालोंका ऐसा

मिश्रित पदार्थ इस्तेमाल करनेसे खर्चा भी अधिक बैठता था। इसके अतिरिक्त ये बातें युद्धके समयके लिये ही सोची जाती हैं और युद्धमें शराब या स्प्रिटका खर्चा और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि दवाइयोंमें इसका बहुत अधिक उपयोग होता है।

लकड़ी, लकड़ियोंका कोयला, पत्थरका कोयला तथा अन्य मिश्रित गैस; आजकल योरपमें मोटर चलानेके काममें आती हैं। बहुत सी मोटरोंमें इनको रखने के लिये जो स्थान बनाये जाते हैं उनके कारण मोटरकी शकल ही बिगड़ जाती है। किन्तु संसार के सामने एक यह भी तो समस्या है कि इतना अधिक पैट्रोल प्रति दिन निकालनेसे कभी ऐसी अवस्था न आजाय कि पृथ्वी का सारा पैट्रोल ही समाप्त हो जाय।

जर्मनीमें, अधिक दबाव पर गैससे भरे सिलैंगडर, मोटरोंमें पैट्रोलकी टंकीके स्थान पर लगा दिये जाते हैं। २५००० मोटरें सन् १९३९ में जर्मनीमें इसी प्रकारके पदार्थसे चलती थीं। हर एक खाली सिलैंगडरका वजन ११४ पौंड होता है और गैस भरने पर उसका वजन २१५ पौंड हो जाता है। जितनी दूर तक मोटर ६०० पौगड गैससे चलती है उतनी दूर तक १८ गैलन अर्थात् १८० पौंड पैट्रोलसे चलती है।

किन्तु कुछ मोटरें ऐसी बनाई गई हैं कि उनमें लकड़ी ही काम में आती है। इस प्रकारकी मोटरों में स्वयं लकड़ी जल कर गैस बन जाती है और फिर यह गैस सिलैंडरोंमें जाकर काम करती है।

लेकिन इस प्रकारकी मोटरोंको साफ करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। बहुत जल्दी ही सारी मशीन खराब हो जाती है। इसके अतिरिक्त लकड़ीमेंसे गैसके साथ साथ तेजाब, तारकोल तथा अन्य पदार्थ भी निकलते हैं। उनको अलग अलग स्थान पर जमा करना पड़ता है।

२५ पौंड लकड़ीसे उतनी ही दूर तक मोटर चल सकती है जितनी दूर तक १० पौंड पैट्रोलसे। इसके साथ एक यह भी सुगमता है कि जहां चाहा रास्तेमें लकड़ीकी टाल लगा दी और मोटर उसको भर कर चल सकती है।

केलों पर फिसलना—केप लुक आउट नामक ७४०० टनका जहाज जब बननेके बाद पानीमें ढकेला गया तो सौ मन केलोंकी आवश्यकता पड़ी। केलोंको रास्तेमें बिछा देनेसे जहाज के ढकेलनेमें उतना जोर नहीं लगाना पड़ा जितना इनके अभाव में लगाना पड़ता।

लंगड़ा ड्राइवर:—एक लंगड़ा व्यक्ति स्वयं मोटर चलाना चाहता था। उसने एक साधारण डॉज मोटर-कारको इस प्रकार बदलवा लिया कि ऐकसिलरेटर क्लच और ब्रेक तीनों हाथसे चलते हैं। वस्तुतः हाथसे ऐसे यन्त्रोंका चलाना आरम्भ किया या रोका जाता है जो इंजन के वैक्युअम से संचालित होते हैं और ये ही यन्त्र ब्रेक लगाते हैं क्लच दबाते हैं।

बिजलीके धक्के:—अफीमची लोग धीरे-धीरे करके इतनी अफीम खाने लगते हैं जितनेमें दूसरोंकी मृत्यु हो जाती है। इस अभ्यास शक्तिको देखकर यह बात सूझी कि—क्या बिजलीके तारको छूनेसे जो धक्का लगता है उसे बरदास्त करनेकी शक्ति किसी प्रकार प्राप्त की जा सकती है? कैलिफोर्निया मेडिकल स्कूलके अनुसन्धानोंसे पता चलता है कि बार-बारके अभ्यास से वस्तुतः मनुष्य अधिक तेज बिजली के धक्के सह सकता है। केवल २० से लेकर ७५ बोल्ट तककी बिजलीका ही प्रयोग किया गया क्योंकि अधिक तेज बिजलीसे मृत्यु हो जाती है। कमजोर बिजलीसे पहले भुन भुन सी जान पड़ती है। अधिक तेज बिजलीके छड़को पकड़ने पर हाथ बे काबू हो जाता है और वह व्यक्ति स्वयं बिजली वाले छड़ोंको छोड़ नहीं सकता। देखा गया कि धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाने से प्रायः सभी व्यक्ति इतने तेज बिजलीसे अपना हाथ छुड़ा सकते हैं जितनेमें नये आदमी का हाथ अवश्य लिपट जायगा।

फरफराता झंडा—सभा आदि के अवसरों पर अकसर छोटे झंडे मेज पर शोभा बढ़ानेके लिये रख लिये जाते हैं। एक कम्पनीने अब ऐसा झंडा बनाना आरम्भ किया है जिसका डंडा पोला होता है। झंडेकी जड़ बक्सके आकारकी होती है उसमें छोटा सा बिजलीका पंखा लगा रहता है। हवा वहांसे चल कर पोले डंडेमेंसे ऊपर चढ़ती है। जहां झंडा बंधा रहता है वहां डंडेमें कई एक छेद झंडेकी दिशामें रहते हैं इसलिये जब पंखा चालू कर दिया जाता है तो झंडा फरफराता रहता है। झण्डा बारीक रेशमका बना रहता है जिसमें बहुत तेज हवाकी जरूरत न पड़े।

———०———

भाग ५४ | जनवरी, १९४२ मकरार्क, सं० १९९८ वि० | पूर्ण संख्या ३२
५ मूल्य ३) रु० | | संख्या ४

(बाग के हौज का एक दृश्य)

प्रयाग
की
ान-परिषद्
का
मुख्य-पत्र
जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान
भी
म्मलित है।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

मिट्टीके बरतन

मिट्टी, पत्थर और पोरसोलेनके सामानोंके तैयार करनेके कच्चे माल, यंत्रों और विधियोंकी पुस्तक

लेखक—प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा, एम० एस-सी० ए० आई० आई० एस० सी०

१७५ पृष्ठ, सजिल्द, मूल्य १)

लकड़ीपर पॉलिश

ले०—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामयत्न भटनागर

लकड़ी पर पॉलिश या वार्निश करने पर क्रियात्मक तथा ब्योरेवार पुस्तक, ३१ चित्र, सजिल्द; २१८ पृष्ठ, मूल्य १॥)

वायुमंडल

ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, डी० फिल०

वायुमंडल में कौन-कौनसे गैस हैं, इसकी ऊँचाई कितनी है. जो गैस नीचे मिलते हैं वे ही ऊपर भी मिलते हैं या कोई परिवर्तन हो जाता है, बादल कितने ऊँचे हैं, बादलोंमें बिजली कैसे उत्पन्न होती है, आकाशवाणी इतने दूर-दूर स्थानोंमें कैसे जाती है, इत्यादि प्रश्नोंका रोचक उत्तर। सजिल्द, १८६ पृष्ठ, २५ चित्र, मूल्य १॥)

कलम-पेवंद

लेखक—श्री शंकरराव जोशी।

बागबानी तथा कृषि-सम्बन्धी हर तरहके कलम-पेवंद पर ब्योरेवार पुस्तक, चित्र ५०, २०० पृष्ठ, मूल्य १॥)

चर्म बनाने के सिद्धान्त

लेखक—श्री देवीदत्त अरोड़ा, बी० एस-सी। रायल अठपेजी साइज़, पृष्ठ संख्या, २१६। सजिल्द, सचित्र। मूल्य ३) इस पुस्तक में योग्य लेखकों ने चमड़ा सिझाने और तैयार करने की वैज्ञानिक रीति बतलायी है। हिन्दी में अभी तक इस प्रकार औद्योगिक पुस्तकें नहीं निकलीं और यह पुस्तक हिन्दी के इस अभाव को पूरा करने में प्रथम प्रयास है।

जन्तु-जगत

लेखक—श्री ब्रजेश बहादुर बी० ए०, एल०-एल बी०। रायल अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५०२, चित्र-संख्या ६ रंगीन और १३३ हाफ़टोन, सजिल्द, मूल्य ६॥);

अत्यन्त रोचक और उपयोगी। प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ना चाहिये।

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० की दो पुस्तकें

यांत्रिक चित्रकारी

इस पुस्तक के प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइङ्ग' कहते हैं। बिना इस विषयके जाने कोई भी इंजिनियर अथवा कारीगर अपना काम नहीं चला सकता। इसके जोड़की पुस्तक अँग्रेज़ीमें भी नहीं है।

३०० पृष्ठ, ७० चित्र, जिनमें कई हाफ़टोन हैं। ८० उपयोगी सारिणियाँ

सस्ता संस्करण २॥); राज-संस्करण, बढ़िया कागज़ और सजिल्द, ३॥)

वैक्युम—ब्रेक

यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इञ्जन-ड्राइवरों, फ़ायरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

१६० पृष्ठ, ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं; मूल्य २)

भूतपूर्व विज्ञान-सम्पादक स्वर्गीय श्री रामदास गौड़का लिखा

विज्ञान हस्तामलक

इसी पुस्तकपर लेखकको १२००) का मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक मिला था

मूल्य सजिल्द ६॥), अजिल्द ६)

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

अन्य पुस्तकें

वैज्ञानिक परिमाण—नापकी इकाइयाँ, ग्रहोंकी दूरी आदि, देशोंके अक्षांश, तत्वोंका परिमाण, घनत्व आदि, पदार्थोंके घनत्व, उनकी तनान शक्तियाँ, स्निग्धता तथा द्रवांक, शब्द संबन्धी अनेक परिमाण, दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंको वैद्युत बाधायें, बैटरियोंकी विद्युत-संचालक शक्तियाँ इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकों तक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी—प्रत्येक वैज्ञानिकके बड़े कामकी चीज़ । ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी० ॥।)

विज्ञान प्रवेशिका—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक ।)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० १॥)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके सम्बन्धमें १२ लेख—ले० डा० आत्माराम, डी० एस-सी० ॥)

प्रकाश रसायन—प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओंपर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री वि० वि० भागवत १॥)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी०, चतुर्थ संस्करण ॥=)

चुंबक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी० ॥)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यन्त रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ॥)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १)

समीकरण-मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।)

दूसरा भाग ॥=)

निर्णायक (डिटर्मनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे, एम० ए० और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री, बी० ए०-सी० ॥)

बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

ज्वर मीमांसा—स्वामी हरिशरणानन्दकी नवीनतम कृति १)

त्रिदोष मीमांसा—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

औषध-गुण-धर्म विज्ञान—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय-ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयों का खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और जलवायु भारतको स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

मधु मक्खी—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार पृष्ठ १८ =)

उद्योग और व्यवसाय—विज्ञानका विशेषांक—इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १३० पृष्ठ, १॥)

विज्ञान परिषद् और हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य—पृष्ठ ५२ चित्र ८ ।)

मनुष्यका आहार—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त ।=)

अरिष्टक गुण विधान—लेखक डा० गणपति सिंह वर्मा ।=)

दुग्ध गुण-विधान—ले० गणपति सिंह वर्मा १)

हुन्नर प्रचारक—ले० गणपति सिंह वर्मा १)

मिलने का पता—विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५४ | मकरार्क, संवत् १९९८ विक्रमी | जनवरी, सन् १९४२ | संख्या ४

दो नए चमत्कारी रासायनिक पदार्थ

रासायनिक चिकित्साके क्षेत्रमें अन्वेषण बहुत ही कम हो पाया है जो भी दवायें खोजी गई हैं उनका प्रभाव कीटाणुओं पर कुछ भी नहीं होता। ऐसी दवायें जिनका प्रभाव सीधे कीटाणुओं पर होता है बहुत कम हैं जैसे—कुनैनका मलेरिया बुखारमें तथा संखिया से बनी औषधियोंका उपदंश में।

यदि ऐसी रासायनिक औषधियोंका अन्वेषण होता है कि जिनसे बहुत शीघ्र ही कीटाणुओं को नष्ट किया जा सके तो समझना चाहिये कि आयुर्वेद विज्ञानमें एक नया युग आरम्भ होता है। केवल चार वर्षोंमें इस प्रकारके दो रासायनिक पदार्थों का अन्वेषण हुआ है।

इनमेंसे एक सलफैनिल अमाइड (Sulfanilamide) है जिसका कई बिमारियोंके कीटाणुओं पर सन्तोषजनक प्रभाव होता है और वे बिमारियां जो बहुत पुरानी तथा एक प्रकारसे असाध्य थीं इसके द्वारा ठीक की गई हैं। खूनकी खराबी, गला खराब रहना, बच्चे पैदा न होना...इत्यादि बिमारियां जिन कीटाणुओं से उत्पन्न होती हैं उन पर तो इसका बहुत ही घातक प्रभाव होता है। सुजाककी बिमारीमें तो यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है निमोनिया (Pneumonia) के विषयमें अभी सन्देह है कि यह कहां तक लाभदायक सिद्ध होती है।

दूसरी औषधि सलफैपाइरिडीन (Sulfapyridine) है जो प्रायः उसके समान ही लाभदायक है, जिन बिमारियोंमें पस (राद) उत्पन्न करने वाले कीटाणु होते हैं उनमें सलफैपाइरिडीन बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। निमोनिया (Pneumonia) के विषयमें इसका प्रभाव भी अभी सन्देहजनक है, जब तक और अधिक प्रयोग न किये जांय तब तक कोई भी स्थिर मत स्थापित नहीं किया जा सकता, कि यह इस रोगमें कहां तक लाभकारी सिद्ध हो सकती है। निमोनियाके लिये तो चूहों और घोड़ोंसे प्राप्त किये गये टीके ही अधिक लाभदायक हैं।

किन्तु निमोनियाकी बिमारीके लिये यह रासायनिक-औषधि अधिक लाभकारी हो सकेगी या नहीं इससे इस औषधि के अन्य लाभकारी गुणों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

सलफैनिल अमाइड (Sulfanilamide) के पश्चात् बहुत जल्दी ही उसी विभागकी सलफैपाइरिडीन (Sulfapyridine) औषधिका अन्वेषण होना यह सिद्ध करता है कि इस विभागके अन्य रासायनिक पदार्थ भी औषधि के रूपमें पर्याप्त लाभकारी होंगे। जब इस विभागका एक रसायन इतना प्रभावशाली है तो इस विभागके दूसरे रासायन भी ऐसे ही प्रभावशाली होंगे और यही नहीं कि वे भी उन्हीं बिमारियोंके कीटाणुओंके लिये, जिनके लिये पहले रासायन, बल्कि अन्य बची हुई बिमारियोंके लिये भी।

कीटाणु तीन प्रकारके होते हैं। शलाकाकार (Yods), कर्षणयाकार (Spirals) और गोल विन्द्राकार (Globuls) किन्तु यह कोरी आंखसे दिखाई नहीं पड़ते। उनको देखनेके लिये सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्रकी आवश्यकता पड़ती है।

ये गोल रूपके कीटाणु तथा इनसे उत्पन्न इन्हींके समान कीटाणु मनुष्यके लिये सबसे अधिक भयंकर कीटाणु हैं। वे प्रायः हर स्थान पर रहते हैं इसलिये इनके कारण भय और अधिक बढ़ जाता है। इन्हींके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारकी छूतकी बिमारियां फैलती हैं—दूसरे प्रकारके कीटाणुओंसे इतनी अधिक बिमारियां नहीं फैलतीं। इनमेंसे एक कीटाणु होते हैं जिनका नाम हिमोलाइटिक् (Hemolytic) है—ये रक्तके लाल कोष्ठों पर घातक आघात करते हैं। इन हिमोलाइटिक्की भी बहुत सी किस्में हैं जो भिन्न भिन्न बिमारियां फैलाती हैं जैसे खून खराबी सदा गलेमें खराश रहना, गदूद फूलना, खाल पर सूजन आना, लाल बुखार...इत्यादि।

सुजाकमें भी यही गोलाकार कीटाणु बढ़ते चले जाते हैं और एक कीटाणु पहले दो गोल गेंदके समान जुड़े हुए रूपमें परिणित हो जाता है फिर वह विभाजित होकर उनकी संख्या बढ़ती चली जाती है। सलफैनिल अमाइड इस रोगमें लाभकारी तो बहुत है किन्तु समाचार पत्रों में लिखे—'तीन रोजमें सुजाकसे आराम' जैसी शीघ्रताके साथ ठीक नहीं करती। इसके द्वारा इलाजमें कई सप्ताहकी आवश्यकता पड़ती है और कभी-कभी तो यह बिमारी ठीक भी नहीं होती। किन्तु फिर भी इसके अतिरिक्त और दूसरी औषधि भी नहीं है जो इन कीटाणुओंपर अधिक प्रभाव करती हो। सलफैपाइरिडीनका अधिक प्रयोग विषैला है, नहीं तो यह सलफैनिल अमाइडके स्थान पर पूर्णतया उपयोग की जाया करती, कमसे-कम सुजाककी बिमारीमें तो जरूर ही।

सलफैनिल अमाइड तथा सलफैपाइरिडीन दोनों पदार्थ ही नशा पैदा करते हैं और साथ ही साथ विषैले भी हैं। वास्तवमें जिस औषधिका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है वह विषैली अवश्य होती है क्योंकि विषका और सजीव कोषोंका बहुत निकटका सम्बन्ध है। इस नशेके कारण ही सरकारी नियम बनाया गया है कि ये औषधियां डाक्टरों के सिवाय और कोई न ले सके, सलफैपाइरिडीन तो अब भी कोई दवाई बेचने वाला स्टोर नहीं रख सकता। इसको केवल थोड़ेसे सिद्धहस्त डाक्टर ही इस्तेमाल कर सकते हैं—क्योंकि इसके अभी बहुत प्रभाओंका ठीक ठीक पता नहीं चला है, अभी तो इस पर प्रयोग ही किये जा रहे हैं। बहुतसे अवसर पर बिमार व्यक्तिने स्वयं बिना डाक्टरकी रायके इसका प्रयोग प्रारम्भ किया, उस बिमारने ठीक होनेके स्थान पर अपनी मौत अपने हाथों बुलाली है।

डाक्टर रयुबन ओटन बर्ग (Dr' Reuben Otten berg) के शब्दोंमें इस औषधिकी विशेषतायें जो बहुत सी बिमारियों पर प्रयोग द्वारा प्राप्त हैं, वह इस प्रकार हैं—"हम एक अजीब सी औषधिको काममें ला रहे हैं। यह औषधि इतनी अधिक लाभकारी है कि इसको हम छोड़ भी नहीं सकते, लेकिन डाक्टरकी जरा सी ही गलतीसे इसका प्रभाव बहुत घातक हो सकता है। यह समझकर कि इससे बिमारियां बहुत जल्दी ठीक हो जाती हैं, डाक्टरको हर एक बार इसका ही उपयोग न करना चाहिये। उपयोग करनेसे पूर्व बहुत अधिक सावधानीकी आवश्यकता है। जो कीटाणु बहुत शीघ्रतासे फैलते हैं, तथा जो खाल के ऊपरी भाग पर ही अधिक संख्यामें पाये जाते हैं उन कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये तो यह बहुत अधिक लाभदायक है।

सलफैनिल अमाइड तथा सलफैपाइरिडीन उन बिमारोंको देनी चाहिये जो अस्पतालमें ही रहते हों अथवा उन मरीजोंको दी जाय जो किसी डाक्टर या होशियार नर्सकी बराबर निगरानीमें रहें। मरीज की हालत बड़ी होशियारीसे देखनी चाहिये नहीं तो कभी कभी इसका बड़ा घातक प्रभाव होता है।

जिन बिमारों को सलफैनिलअमाइड दी जाती है उनको मोटर चलानेसे बिलकुल रोक देना चाहिये—क्योंकि इस औषधि के बादका असर बड़ा खराब होता है। इसके बादके प्रभावके कारण चिड़चिड़ापन, प्रकाश न सह सकना, यकायक पीलियापन हो जाना, बुखार, सिरदर्द, रक्तके सफेद कोषोंका नष्ट हो जाना,

तथा कुछ दिनोंके लिये पागलपन इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि किसी होशियार डाक्टर द्वारा यह औषधि दी जाय तो इन सब असरसे बिमार बच सकता है—इसके अतिरिक्त इसके बादके असरसे प्रायः मृत्यु नहीं होती है और उसका उपचार भी शीघ्र ही हो जाता है।

नशा करनेमें सलफैपाइरिडीन तथा सलफैनिल अमाइड दोनों करीब करीब एक सी हैं, परन्तु सलफैपाइरिडीन अधिक खतरनाक है। ये दोनों रसायन रवोंमें, चूर्ण रूपमें तथा घोल रूपमें प्राप्त हैं। अच्छा यही है कि औषधि मुंहसे खिलाई जाय किन्तु बीमारका हाजमा बहुत अधिक खराब हो गया हो तो इन्जैक्शन द्वारा भी इसे शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं। खानेका सोडा अर्थात् सोडियम बाइकार्बोनेट (Sodium bi carbonate) इस औषधिमें खार उत्पत्तिको रोकने के लिये अवश्य देना चाहिये।

बिमारके जल्दीसे-जल्दी ठीक होनेके लिये यह आवश्यक है कि अधिकसे-अधिक मात्रामें यह औषधि उसके शरीरमें जा सके। इस औषधिकी एक विशेषता यह है कि यह सारे शरीरमें एक सार तथा एक दम बड़ी शीघ्रतासे फैल जाती है तथा उन स्थानोंमें जहां पर कीटाणु सबसे अधिक संख्यामें रहते हैं जल्दी पहुंच जाती है।

सुजाकमें तो यह कभी-कभी बड़ा आश्चर्यजनक कार्य करती है। बिमारी बहुत जल्दी ठीक हो जाती है और बिमारके शरीर के सारे कीटाणु भी मर जाते हैं। इसीलिये प्रायः इसके इलाज का 'तीन दिनमें सुजाक को आराम' करने वाला नाम पड़ा है, किन्तु यह ठीक ठीक जाननेके लिये कि बिमार कीटाणु रहित हो गया है हमें समझदारीसे काम लेना चाहिये, नहीं तो वह बिमार देखनेमें तो लगेगा कि ठीक हो गया परन्तु अपने भीतर कीटाणुओंके लिये स्थिर स्थान बना देगा। इस बातका पूर्ण विश्वास करनेके लिये कि बिमार बिल्कुल ठीक हो गया है और अब कोई भी कीटाणु शेष नहीं रहा है उस बिमारको पूरे छः महीने तक इलाज करना चाहिये।

इस रसायनके अणुओंका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, यदि इसका ठीक-ठीक पता लग जायगा तो चिकित्सा सिद्धान्तमें एक नया परिवर्तन होनेकी सम्भावना है। देखना है कि कहां तक हमारी आशायें पूरी होती हैं। [सांयटिफिक अमेरिकन से]

——०——

साबुन-विश्लेषण

[लेखक—श्री विद्यासागर]

प्रारम्भिक विचार—साबुन अनुद्रायी चार्बिकाम्लों के क्षारीय लवण होते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिसे चार्बिकाम्लों के सभी धात्विक लवण साबुन हैं। परन्तु, उनमें से अधिकतर पानीमें अघुलनशील हैं, इसलिये उन्हें कपड़े आदि धोने तथा अन्य सफाईके कामोंमें प्रयुक्त नहीं करते।

साबुन बनानेके लिये रेजिन (बिरोजा आदि), जान्तविक या वानस्पतिक चर्बियां और तेल काममें लाते हैं। रासायनिक दृष्टिसे ये चर्बियां और तेल चार्बिकाम्लोंके ग्लिसराइल एस्टर हैं, इनकी दाहक क्षारोंके साथ क्रिया होने पर चार्बिकाम्लोंके सोडियम या पोटाशियम लवण और साथ ही ग्लिसरोल बन जाते हैं। इस क्रियाको जलविच्छेदन के उदाहरण रूपमें उपस्थित कर सकते हैं, परन्तु चर्बियों और क्षारोंकी क्रियासे साबुन नामक पदार्थ उत्पन्न होनेके कारण सामान्य तौर पर इस क्रिया को 'साबुनीकरण' के नामसे पुकारते हैं।

$CH_{२}.$	$OOC.\ C_{१७}H_{३५}$ Na	OH
$CH\ .$	$OOC.\ C_{१७}H_{३५} +$ Na	OH
$CH_{२}.$	$OOC.\ C_{१७}H_{३५}$ Na	OH

ग्लिसराइल

$$\rightarrow ३C_{१७}H_{३५}COO\,Na \quad + \quad CH_{२}OH \cdot CH\,OH \cdot CH_{२}OH$$

सोडियम स्टीयरेट　　　　ग्लिसरोल.
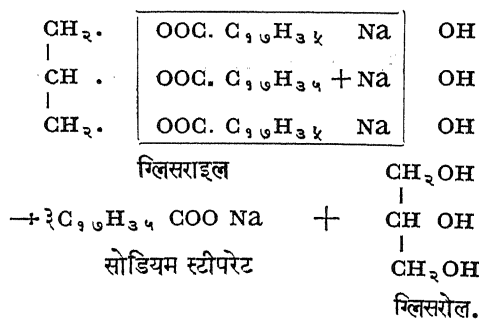
चर्बी और दाहक क्षारोंके घोलको गरम करके साबुन प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु वे चर्बियां या तेल जिनमें अधिकतर कम अणुभारके अम्लोंके ग्लिसराइड होते हैं—बिना उबाले हुए साबुनीभूत हो जाता है। तेल और क्षारोंकी क्रियासे इतना ताप प्राप्त हो जाता है कि तेल अधिकतम मात्रामें साबुनीभूत हो जाता है। परन्तु फिर भी इस ठण्ढी विधिसे स्वतन्त्र क्षार और असाबुनीभूत तेल पाया जाता है और साथ ही इनमें चर्बी या तेल और क्षार की सभी अशुद्धियां तथा ग्लिसरोल भी पाए जाते हैं। उबाल कर तैयार किये हुए साबुनोंको—क्योंकि नमक आदि की सहायतासे पृथक् कर लिया जाता है, इसलिये वे

अधिकतर ग्लिसरीन तथा अन्य अशुद्धियोंसे रहित होते हैं।

दाहक क्षारोंके अतिरिक्त साबुनीकरणके लिये सोडियम या पोटाशियम कार्बोनेट भी काममें लाये जाते हैं। इस विधिमें पहले चर्बियों या तेलोंमें से जल-वाष्प द्वारा किसी उत्प्रेरक की सहायतासे चार्बिकाम्लों को पृथक् करते हैं फिर उन्हें कार्बोनेटों से उदासीन कर लेते हैं।

(क)
$$\begin{array}{l|lll|l} CH_2. & OOC._{17}CH_{35} & & H & OH \\ CH. & OOC._{17}CH_{35} & + & H & OH \\ CH_2. & OOC._{17}CH_{35} & & H & OH \end{array}$$

ग्लिसराइल एस्टर

$$\rightarrow 3C_{17}H_{35}COOH + \begin{array}{l} CH_2\ OH \\ CH\ \ OH \\ CH_2\ OH \end{array}$$

स्टीरिक एसिड ग्लिसरोल

(ख) $2C_{17}H_{35}COOH + Na_2CO_3 \rightarrow 2C_{17}H_{35}COONa + H_2O + CO_2$ ।
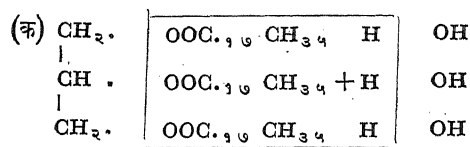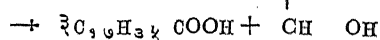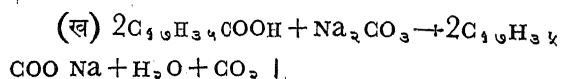
इस विधिका साबुन बहुत अच्छा नहीं गिना जाता तथा इसका अधिकतर प्रयोग ग्लिसरोल प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

किसी भी विधि से तैयार किए गए साबुनोंका श्रेणीकरण हम निम्न प्रकारसे कर सकते हैं।

(क) **सुगन्धित**—इनमें अधिकतर बाद में उद्वायी (Volant) तेल मिला दिया जाता है। इन तेलोंकी मात्रा का निर्धारण बहुत कम किया जाता है।

(ख) **रंगीन**—साबुन तैयार हो जाने के बाद उसकी दिखावट सुन्दर करनेके लिये रङ्ग मिला देते हैं। इन रङ्गोंकी मात्राका निर्धारण बहुत कम किया जाता है।

(ग) **औषधिमिश्रित**—इनमें अधिकतर कार्बोलिकएसिड, अजवाइन का सत, कपूर, आयोडाइड तथा पारद समास मिला दिये जाते हैं।

(घ) **कपड़े धोनेके साबुन**—इनमें अधिकतर मैदा, नमक, सोडियम कार्बोनेट (सोडा), सिलखड़ी, सुहागा, केसीन, सोडियम सिलिकेट आदि सम्बर्धक पदार्थ मिलाये जाते हैं।

(ङ) **पारदर्शक**—साबुन, अलकोहल, खाण्ड और ग्लिसरीनके मिश्रण होते हैं।

(च) **द्रव साबुन**—ये पोटाशियम साबुन होते हैं।

विश्लेषणके लिये इनमेंसे किसी भी प्रकारका साबुन लिया जा सकता है, उनका विश्लेषण निम्न विधियों के अनुसार कर लेना चाहिये। निम्न विधियां अमेरिकन कैमीकल सोसायटी (A. C. S.) तथा अमेरिकन ऑयल कैमिस्ट्स सोसायटी (A.O.C.S.) के अनुसार हैं।

नमूना संग्रह—साबुन टिकियाओं, लम्बी छड़ों, चूर्ण, परत, कतरन, लेईरूप तथा द्रव रूपमें पाया जाता है, इसलिये विश्लेषणार्थ नमूना प्राप्त करनेके लिये पदार्थ की अवस्थानुसार भिन्न भिन्न विधियां प्रयुक्त होती हैं।

टिकियाओं और लम्बी छड़ोंके साबुनको ठीक बीचमें से काट कर चार टुकड़े कर लो, अब उसके अन्दरके भागमें से चाकू द्वारा पतली पतली परत इकट्ठी करके किसी बोतलमें भर कर रख दो। चूर्ण, परत, और कतरन रूप साबुनको डब्बेमें से बिल्कुल निकाल कर चिकने कागज पर डालकर अच्छी प्रकार मिलाओ; परत और कतरनके टुकड़ोंको तोड़ कर बारीक कर लो फिर उन्हें मिलाओ; उसे अब कागज पर गोल घेरेमें फैला आमने सामनेके दो भागोंको अलग दूसरे चिकने कागज पर ले कर मिलाओ और उसे भी गोल घेरेमें फैला कर चार भागोंमें बांट कर आमने सामनेके दो भाग लेकर विश्लेषणके लिये बोतलमें भरकर बन्द कर लो। लेईरूप साबुनको डब्बेमें से निकाल कर अच्छी प्रकार सान लो, विश्लेषण के लिये एक भाग ले लो। द्रव साबुनका नमूना लेनेसे पहले उसे अच्छी प्रकार चम्मच आदिसे हिला लो।

यह ध्यान रखना चाहिये कि नमूने ऐसे स्थानमें रखे जाएं जहां पर कि वे सीधे वायुके सम्पर्कमें न आएं और उन्हें ठण्डे और अन्धेरे स्थानमें रखा जाय।

आर्द्रता—आर्द्रताके कारण मात्रा-निर्धारणके लिये निम्न परीक्षक तैयार करो।

(क) **जाइलीन**—२०० सी सी. जाइलीन लेकर २० सी सी. पानीके साथ अच्छी प्रकार हिलाकर स्रवण करो। यदि स्रवणके बाद भी जाइलीन और पानीकी दो पृथक् पृथक् तहें दिखाई दें तो उन्हें पृथक्कारक कीपसे अलग कर लो। यह जल संतृप्त जाइलीन होगा।

(ख) **अनार्द्र**—द्रवित सोडियम एसिटेट।

(ग) **उपकरण**—५०० सी सी. की एरलेन मेयर कुप्पी लेकर उसका सम्बन्ध घनीकारकसे करो; इस घनीकारकके साथ

एक चिह्नित ग्राहक नलिका का सम्बन्ध कर दो, यह ग्राहक नलिका २५° श० ठीक २० सी सी. की होनी चाहिये। इस ग्राहक नलिका के ठीक ऊपर लम्ब रूपसे लीबिग घनीकारक लगा दो जिससे पानी वाष्प बनकर बाहर न निकलने पावे। नलिका और कुप्पीको एसबेस्टस कपड़ेसे लपेट दो।

क्रिया—उपकरण की एरलेन मेयर कुप्पी में २० ग्राम (+०.०४ ग्राम) साबुन तोलकर लगभग १० ग्राम अनार्द्र द्रवित सोडियम एसिटेट मिलाकर १०० सी सी. जल संतृप्त जाइलीन मिला दो। अब लम्ब रूप लगे लीबिग घनीकारक द्वारा ग्राहक नलिकामें थोड़ा जलसंतृप्त जाइलीन डाल दो। कुप्पीको इस प्रकार गरम करो कि ग्राहक नलिकामें १ मिनटमें १०० बूंद प्राप्त हों। जब लगभग सभी पानी स्रवित हो चुके तो ताप इतना बढ़ा दो कि १ मिनटमें २०० बूंद स्रवित होने लगें। स्रवणके एक दम बाद लम्ब रूप लगे घनीकारकमें से थोड़ा सा जाइलीन डाल कर उसकी दीवारोंमें लगे जल-वाष्पों को एक दम नीचे बहा दो। अब एक तांबे की तारको इसी घनीकारक में से डाल कर ग्राहक-नलिका तक पहुंचा कर तारको ऊपर नीचे हिलाओ जिससे जल-वाष्प नलिकाके तलेमें इकट्ठी हो जाए। नलिका का तापमान २५° श० पर करके जलका पठन ले लो और उससे उसकी प्रतिशतकता जान लो।

साबुनमें प्रतिशत आर्द्रता =

$$\frac{\text{२५° श० पर नलिकामें जलका आयतन} \times ०.९९७}{\text{नमूने का भार}} \times १००$$

उद्वायी पदार्थ—५ ग्राम साबुन लेकर उसे किसी एलूमीनियम की प्यालीमें पहले १०५° श० पर २ घंटे तक वायु-भट्टीमें सुखाओ, फिर १५०° श० पर भार स्थिर होने तक गरम करो (१५०° श० पर तभी गरम करना चाहिये जब कि साबुनके झुलसनेका भय न हो)। शुष्ककारकमें ठंढा करके तोल लो।

(क) प्रतिशत भारमें कमी =

$$\frac{\text{नमूनेका लिया गया भार—सुखानेके बाद भार}}{\text{नमूनेका लिया गया भार}} \times १००$$

(२) प्रतिशत उद्वायी पदार्थ=प्रतिशत भारमें कमी—प्रतिशत आर्द्रता।

राख—एक प्लाटिनमकी मूषामें २ ग्राम साबुन ले कर कम तापमान पर दहन करो। अब यदि कार्बन पूर्णरूपसे न जल रहा हो तो तापमान बढ़ा कर जोरसे दहन करो अथवा संवृत भट्ठीमें दहन करो। अथवा कार्बनके अपूर्ण ज्वलन पर पदार्थको उस स्थितिमें कई बार पानीके साथ चलाओ और छारणपत्र (जिसकी राखका भार ज्ञात हो) से छान लो। छारण पत्रको अवशेष सहित सुखा कर मूषामें जला लो, इस जले छारण-पत्रमें छना द्रव मिलाकर वाष्पी-करण करके शुष्ककर लो, अब अवशेषको उसी मूषामें दहन करो, प्राप्त राखको तोल लो।

राखकी परीक्षा—(१) अघुलनशील पदार्थ राखको पानीमें घोलो, और छारण-पत्र (जिसकी राखका भार ज्ञात हो) से छान लो। छारण-पत्र पर आये अवशेषको अच्छी प्रकार धो कर वायु भट्ठीमें सुखाओ और फिर उसको दहन करो। इस अघुलनशील पदार्थको तोल कर छारण-पत्रकी राखका भार घटा दो।

क्षार पदार्थ—(२) छने द्रवका आयतन १५० सी सी. कर लो। इसमेंसे २५ सी सी. लेकर उसका विलेयमापन स/२ हाइड्रोक्लोरिक ऐसिडसे करो, सूचक मिथाइल औरेञ्ज काममें लाओ।

१ सी सी. स/२ HCl = ०.०१५६ ग्राम Na_2O

१ सी सी. स/२ HCl = ०.०२३५ ग्राम K_2O

कुल चार्बिकाम्ल, चार्बिक निरुद, समस्त क्षार और अनार्द्र साबुन—३०० सी सी. की एक शंक्वाकार कुप्पीमें ५ ग्राम (+०.०१ ग्राम) साबुन तोलकर ५० सी सी. गरम पानी में घोलो, इसका आयतन १०० सी सी. करके ठण्ढा करो। तीन बूंद मिथाइल औरेञ्ज मिला दो, इसमें २५ सी सी. स/१० सलफ्यूरिक एसिड मिला कर जल-ऊष्मक पर गरम करो जिससे चार्बिकाम्लोंकी तह ऊपर साफ रूपसे तैरने लगे। इसमें ४० सी सी. इथाइल ईथर मिलाकर खूब हिलाओ और सारे पदार्थ को डाट लगी पृथक्कारक कीप में उलट दो। कुप्पीको बादमें पुनः ईथरसे धो कर उसे भी पृथक्कारक कीपमें डाल दो। पृथक्कारक कीप पर डाट लगा कर हिलाओ, कुछ देर स्थिर रख कर दोनों तहोंको पृथक् होने दो, दोनों तहोंके स्पष्ट रूपसे पृथक् हो जाने पर नीचेके पदार्थको एक दूसरी पृथक्कारक कीपमें डाल दो। इसे पुनः २५ सी सी. इथाइल ईथरसे धो लो, इससे प्राप्त ईथर घोलको प्रथम पृथक्कारकमें डाल दो इसप्रकार पीछे बचे द्रव का एक बार और ईथरसे निष्कर्षण करो। सम्पूर्ण ईथर घोलको प्रथम पृथक्कारक कीपमें इकट्ठा करके देख लो कि घोल साफ है

या नहीं। साफ न होने पर उसे छान लो और स्रवण द्वारा ईथरको पृथक् करके चार्बिकाम्लको वाष्प भट्ठीमें ६०° श० (+२°श०) पर भार स्थिर होने तक शुष्क करो।

(१) कुल चार्बिकाम्ल % = $\frac{\text{चार्बिकाम्लका भार}}{\text{नमूने का भार}} \times 100$

इस चार्बिकाम्लको ४० सी सी. गरम उदासीन आलकोहल में घोल कर कुछ बूंद फिनोलफ्थलीन घोल की मिला दो। उसका स/₃ सोडियम हाइड्राक्साइडसे विलेयमापन करो।

(२) चार्बिकाम्लकी जल तुल्यता% = $\frac{NaOH \text{ विलेयमापन} \times 0.9}{\text{नमूनेका भार}}$

(३) चार्बिकाम्ल 'निरुद'% = कुल चार्बिकाम्ल% - जलतुल्यता%

(४) समस्त Na_2O % = $\frac{NaOH. \text{ विलेयमापन} \times 3.1}{\text{नमूनेका भार}}$

अथवा समस्त K_2O % = $\frac{NaOH \text{ विलेयमापन} \times 4.7}{\text{नमूनेका भार}}$

(५) अनार्द्र साबुन% = चार्बिक निरुद % + समस्त क्षार%

चार्बिकाम्लोंमें रेजिन अम्लोंकी मात्रा-निर्धारण—निम्न विधियोंका आधार यह है कि चार्बिकाम्लोंको उचित क्रिया द्वारा इथाइल एस्टरोंमें बदल दिया जाता है जब कि रेजिन अम्लों पर उस क्रियाका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(क) **वोल्फ विधि**—५ ग्राम साबुनको पानीमें घोल कर सलफ्यूरिक एसिडकी सहायता से चार्बिकाम्लों को पृथक् कर के ईथरमें घोल कर प्राप्त कर लो। इस ईथरके घोलको थोड़े थोड़े स्रवित पानीसे तब तक धोते रहो जब तक कि धोनेसे प्राप्त पानी मिथाइल औरेञ्जके प्रति उदासीनता न प्रकट करे। अब इस ईथर घोलका स्रवण करके इथाइल ईथर पृथक् कर दो और चार्बिकाम्लको वायु-भट्ठीमें १०५° श० पर गरम करके भार स्थिर करो और तोल लो। इसे २० सी सी. शुद्ध आलकोहलमें घोलो।

१ भाग सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड (वि ६ गु. १·८४) और चार भाग शुद्ध इथाइल आलकोहल मिला कर एक परीक्षक तैयार करो। इस परीक्षकके १० सी सी. उपरोक्त आलकोहल और चार्बिकाम्लके घोलमें मिलाओ। इस सारे घोलको एक कुप्पी में डाल कर उसके ऊपर लम्बरूपसे घनीकारक लगा कर जल ऊष्मकमें ठीक चार मिनट तक उबालो, जल-ऊष्मक परसे हटाकर इस घोलके आयतनका ७ गुना उसमें १०% सोडियम क्लोराइड घोल मिला दो इसे अच्छीप्रकार हिला कर, मिला कर, पृथक्कारक कीपमें डाल दो। कुप्पीको थोड़ेसे ईथरसे धोकर उसे भी पृथक्कारक कीपमें डाल दो। इस कीपमें ३० सी सी. इथाइल ईथर मिला कर हिलाओ, जलीय भागको पृथक् करके चार पांच बार और दस दस सी सी. ईथरसे धो लो। जलीय भागको छोड़ कर ईथर घोलोंको इकट्ठा करके उनमें ५० सी सी. १०% सोडियम क्लोराइड घोल मिला कर हिलाओ और पांच मिनट तक रखा रहने दो, फिर दोनों तहोंको पृथक् करलो। इस ईथर घोलको इस प्रकार लवण-युक्त पानीसे तब तक धोते रहो जब तक कि प्राप्त लवण-युक्त पानी मिथाइल औरेञ्जके प्रति उदासीनता प्रगट न करे। प्रक्षालित सभी लवण-युक्त पानी इकट्ठे करके ५० सी सी. ईथर मिला कर जोरसे हिलाओ, और ईथर तहको पृथक् करके पहले ईथर घोलमें मिलाओ। इसमें ३ ग्राम अनार्द्र सोडियम सलफेट मिला कर घोलको जल रहित कर लो। इस ईथर घोल का स्रवण करके ईथरको पृथक् कर लो।

स्रवणसे प्राप्त अवशेषको पुनः २० सी सी. शुद्ध इथाइल आलकोहलमें घोल कर उपरोक्त विधिको दोहराओ। अन्तमें प्राप्त अवशेषको ३० सी सी. उदासीन आलकोहल (९४%) में घोल कर स/₂ क्षारसे विलेयमापन करो।

१ सी सी. स/₂ क्षार = ०·१७३ ग्राम रेजिन
अथवा ०·१८८ ग्राम बरोजा साबुन

(ख) **ट्विचेल विधि**—साबुनका सलफ्यूरिक एसिड द्वारा विच्छेदन करके २ ग्राम चार्बिकाम्ल प्राप्त करो। उसे २५ सी सी. शुद्ध आलकोहलमें मिला कर हलका गरम करके घोल तैयार करो। इस कुप्पीको चलते हुए पानीमें रखो और कुप्पी में से शुष्क हाइड्रोक्लोरिक गैस लगभग १ घंटे तक गुजारो। क्रियाके पूर्ण होने पर द्रवका रंग गहरा हो जायगा और गैस भी बाहर निकलने लगेगी अब कुप्पीको पानीमें से निकाल आधा घण्टा रखा रहने दो और निम्न विधियोंमें से कोई एक विधि काममें लाओ।

(१) **सन्तोलन विधि**—उपरोक्त कुप्पीमें कुल द्रवका पांच गुना पानी मिला कर जल ऊष्मक पर गरम करो जिससे ऊपर की तह—जो कि रेजिन अम्ल और इथाइल एस्टरका मिश्रण है—साफ हो जायगी। इस कुप्पीको ठंढा करके उसमें ४० सी सी. पेट्रोलियम ईथर मिला दो। इस सारे पदार्थ को डाट लगी पृथक्कारक कीपमें डाल दो और कुप्पीमें १० सी सी. पैट्रोलियम

ईथर डाल कर अच्छी प्रकार हिला कर पृथक्कारक कीपमें डाल दो। पृथक्कारक कीपको हिला कर कुछ देर स्थिर रख दो, बाद में निचली तहको पृथक् कर लो। इस निचली तहके द्रवको एक बार फिर २५ सी सी. पैट्रोलियम ईथरसे अच्छी तरह धो कर ईथर घोलको उसी प्रथम ईथर घोलमें मिला दो इस ईथर घोलको पानीसे तब तक धोते रहो जब तक कि प्रक्षालित पानी मिथाइल औरेञ्जके प्रति उदासीन न हो जाय। इसमें अब ५० सी सी. आलकोहलिक पोटाश घोल* मिला कर कीपको धीमे धीमे घुमाओ, यह ध्यान रक्खो कि इनका समलयन न बनने पाए। अब इन्हें पृथक् होने दो। इथाइल एस्टर तो पेट्रोलियम ईथरमें घुले रहेंगे और रेजिनोंका साबुन बन जायगा। निचली रेजिन साबुनकी तहको दूसरी पृथक्कारक कीपमें इकट्ठा कर लो। प्रथम पृथक्कारक कीपमें २० सी सी. आलकोहलिक पोटाश घोल मिला कर हिलाओ और घोलको दूसरी पृथक्कारक कीपमें प्राप्त कर लो। इस दूसरी कीपमें–जिसमें रेजिन साबुन है ४० सी सी. हल्का सलफ्यूरिक ऐसिड मिलाकर हिलाओ, जिस से रेजिन साबुनका विच्छेद न होकर रेजिन अम्ल पृथक् हो जाय। इसमें ५० सी सी. मिथाइलेटिड ईथर मिलाकर हिलाओ ईथर घोल पृथक् कर लो। पीछे बचे घोलको एक बार फिर २५ सी सी. मिथाइलेटिड ईथरके साथ हिलाओ, इस ईथर घोल को पृथक् करके प्रथम घोलमें मिलाओ और ईथर घोलको तब तक धोते रहो जब तक कि प्रक्षालित पानी मिथाइल औरेञ्जके प्रति उदासीन न हो जाय। इस घोलका स्रवण करके ईथर पृथक् कर लो और रेजिन अम्लोंको वायु-भट्ठीमें १०५° श० पर भार स्थिर होने तक गरम करो। शुष्क कारकमें ठण्ढा करके तोल लो, रेजिन अम्लों के भार से उनकी प्रतिशतकता निकाल लो।

(२) **विलेयमापन विधि**—सन्तोलन विधि (१) में ईथरके स्रवणके बाद प्राप्त रेजिन अम्लोंको ३० सी सी. उदासीन आलकोहलमें घोल कर स/२ क्षारसे विलेयमापन करो।

असाबुनीभूत और असाबुनीभवनीय पदार्थ—एक बीकरमें ५ ग्राम साबुन लेकर उसमें १५० सी सी. ५०% पुनः स्रवित इथाइल आलकोहल मिलाओ ६०° श० तक गरम करके हिलाते हुए घोल तैयार करो। यदि अघुलनशील पदार्थ हो तो उसे एसबेस्टस लगी गूच-मूषासे छान लो। अवशेषको ५०% आलकोहलसे तीन बार धो कर ५ सी सी. गरम ६५% आलकोहलसे धो लो फिर अन्तमें ५ सी सी. पैट्रोलियम ईथरसे धो लो। इस सम्पूर्ण-छने द्रवको पुनः स्रवित आलकोहलसे १६० सी सी. कर लो। इसे शीशेकी डाट लगी ५०० सी सी. की पृथक्कारक कीपमें डाल दो, बर्तनको कुछ पैट्रोलियम ईथरसे धो कर उसे भी पृथक्कारक कीपमें डाल दो और कीपमें ५० सी सी. पैट्रोलियम ईथर मिला दो। इस पर डाट लगाकर जोर से हिलाओ, फिर स्थिर रख दो। निचली तहको यथा सम्भव पूर्ण रूपसे पृथक् करके दूसरी पृथक्कारक कीपमें ले लो, इसे अब फिर ५० सी सी. पैट्रोलियम ईथरसे धोकर प्राप्त ईथर घोल को प्रथम पृथक्कारक कीपमें मिला दो। इस प्रकार निचली तहको ५ बार और धो कर प्राप्त ईथर घोलोंको प्रथम पृथक्कारक कीप में मिला कर २५ सी सी. १०% आलकोहल मिला दो और कुछ फिनोलफ्थलीन मिला दो। डाट लगा कर इसे जोरसे हिलाओ, स्थिर रख कर आलकोहलको पूर्ण रूपसे पृथक् कर दो। इस प्रकार ईथर घोलको १०% आलकोहलसे कई बार धो लो जिससे घोलमें उपस्थित क्षार या साबुन बिल्कुल निकल जांय। इस ईथर घोलको अब किसी तुली कुप्पीमें ले लो, पृथक्कारक कीपको कई बार पैट्रोलियम ईथरसे धोकर उसे भी इसी कुप्पीमें मिला कर ईथरका स्रवण करो। अवशेषको वायु-भट्ठीमें १०५° श० पर शुष्क करो, ठण्ढा करके तोल लो।

अवशेषका जो भार प्राप्त हो उसमें से निम्न भारोंको घटा कर शेषको "असाबुनीभूत और असाबुनीभवनीय पदार्थ" के नामसे लिख लो।

(१) जितना पैट्रोलियम ईथर ऊपर प्रयुक्त हुआ है उतने को उड़ा कर देखो कि पीछे कुछ अवशेष तो नहीं रहता, यदि रहता है तो उसका भार घटा दो।

(२) प्राप्त अवशेषको ५० सी सी. गरम उदासीन (फिनोलफ्थलीनके प्रति) इथाइल आलकोहलमें घोलो। और कुछ बूंद फिनोलफ्थलीन की डाल दो। इसका विलेयमापन स/२५ सोडियम हाइड्राक्साइड घोलसे तब तक करो जब तक कि घोल का रंग मूल आलकोहलके रंगका सा न हो जाय। परिणामको ओलियक एसिडके रूपमें उपस्थित करो, इसका भार घटा दो।

असाबुनी भवनीय पदार्थ—५ ग्राम साबुन एक

* १० ग्राम शुद्ध KOH को पानी में घोल कर १०० सी सी. शुद्ध आलकोहल मिला कर पानी से १ लिटर कर लो।

कुप्पीमें तोल कर ३० सी सी. पुनः स्रवित ९५% इथाइल आलकोहल मिला दो और १० सीसी. २५% पोटाशियम हाइड्राक्साइडका जलीय घोल मिला दो। इस पर लम्ब-रूपसे एक घनीकारक लगा कर एक घंटे तक गरम करो। कुप्पीके पदार्थको पृथक्कारक कीपमें डाल कर कुप्पीको पहले ९५% आलकोहलसे धो कर उसे कीपमें डाल दो, फिर कुप्पीको पैट्रोलियम ईथरसे धो कर उसे भी पृथक्कारक कीपमें डाल दो। कीपमें ५० सी सी. पैट्रोलियम ईथर मिलाकर उपरोक्त विधिसे निष्कर्षण करो। ईथर घोलसे प्राप्त अवशेष असाबुनी भवनीय पदार्थ है।

"असाबुनीभूत और असाबुनीभवनीय पदार्थ" में से असाबुनीभवनीय पदार्थको घटा देनेसे असाबुनी भूत पदार्थका भार ज्ञात हो जायगा।

स्वतन्त्र क्षार या स्वतन्त्र चार्बिकाम्ल—१० ग्राम नमूना एरलेनमेयर कुप्पीमें लेकर २०० सी सी. गरम उदासीन ९५%आलकोहलमें घोलो। इसे छारण-पत्रसे छान लो। यदि कुछ पीछे अवशेष रह जाये तो उसे तीन बार गरम उदासीन ९५%आलकोहलसे धो लो। घोलको गरम करके केवल एक उबाल दो। इसमें अब थोड़ी सी बूंद फिनोलफ्थलीन मिलाकर गुलाबी रंग न आने पर स/१० सलफ्यूरिक एसिडसे विलेयमापन करो। परिणाम को स्वतन्त्र Na_2O या स्वतन्त्र K_2O रूपमें प्रकट करो। गुलाबी रंग न आने पर स/१० सोडियम हाइड्राक्साइड घोलसे विलेयमापन करो, स्वतन्त्र चार्बिकाम्लोंको ओलियक एसिडके रूपमें प्रगट करो, यदि नारियल तेलका साबुन हो तो लारिक ऐसिडके रूपमें प्रकट करो।

आलकोहल अघुलनशील पदार्थ—५ ग्राम साबुन को २०० सी सी. ताजे उबाले हुए गरम, उदासीन ९५% आलकोहलमें घोलो। इसे छारण-पत्र लगी गूच-मूषासे छानो अवशेषको गरम उदासीन आलकोहलसे धो लो। इसे १००° से १०५° श० पर तीन घंटे तक शुष्क करके ठंढा करो और तोल लो।

ये पदार्थ कार्बोनेट, बोरेट, सिलिकेट, फासफेट और सलफेट होते हैं, कभी कभी निशास्ता भी पाया जाता है।

क्षार लवण—ये अधिकतर कार्बोनेट, सिलिकेट, फासफेट, बोरेट, क्लोराइड और सलफेट होते हैं, उनकी मात्रा का निर्धारण निम्न प्रकारसे किया जाता है।

(क) **सोडियम कार्बोनेट**—१० ग्राम साबुनको २०० सी सी. गरम, उदासीन, ९५% आलकोहलमें घोलकर छारण पत्रसे छानो। अवशेषको गरम आलकोहलसे धो कर गरम पानी में घोलो, छान लो। अवशेषको गरम पानीसे धो लो। पानी वाले घोलका विलेयमापन स/१ सलफ्यूरिक एसिड घोल से करो। सूचक मिथाइल औरेञ्ज काममें लाओ। परिणाम को Co_2 के रूपमें उपस्थित करो।

अथवा आलकोहलसे छाननेके बाद अवशेषको हलके हाइड्रोक्लोरिक एसिडके साथ गरम करो। जो कार्बन डायक्साइड पैदा हो उसे कास्टिक पोटाशमें चूस लो। कास्टिक पोटाशके भारमें वृद्धि-उत्पन्न Co_2 के भारको बतलायेगी।

(ख) **सिलिकेट**—कार्बोनेटके मात्रा-निर्धारणके बाद शेष छने द्रवमें ५ से १० सी सी. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर उसका जल-ऊष्मक पर वाष्पी-करण करो और शुष्क कर लो। ठंढा होने पर अवशेषको सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड से गीला करके दस मिनट रखा रहने दो, यदि अवशेषमें कुछ डलेसे हों तो उन्हें कांच-छड़ीसे तोड़ दो। इसमें लगभग २५ सी सी. गरम पानी मिला कर कुछ मिनट तक गरम करो फिर राख रहित छारण-पत्रसे छान लो, अवशेषको अच्छी प्रकार गरम पानीसे धो लो। छने द्रवको वाष्पी-करण द्वारा शुष्क करो, इस पर उपरोक्त क्रिया दोहरा कर दूसरे छारण-पत्रसे छान लो। छने द्रवको फासफेटके मात्रा निर्धारणके लिये रख लो।

दोनों छारण पत्रोंको जिनमें अवशेष है, प्लाटिनम मूषामें रख कर १५०° श० पर शुष्क करो। फिर कम तापमान पर दहन करो जिससे छारण-पत्र बिल्कुल जल जाय। अब इसे संवृत भट्ठीमें रख कर तापमान बढ़ा कर भार स्थिर होने तक गरम करो। शुष्क-कारकमें ठंढा करके तोल लो। अब मूषामें रखे अवशेषको पानीसे गीला करके ५ सी सी. हाइड्रोफ्लोरिक एसिड और चार बूंद सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड मिलाकर वाष्पीकरण द्वारा शुष्क करो, पहलेकी तरह दहन करो। शुष्ककारक में ठंढा करके तोल लो। भारमें अन्तर sio_2 को सूचित करेगा।

$$\text{सोडियम सिलिकेट}\% = \frac{sio_2 \times १\cdot३०८}{\text{नमूनेका भार}} \times १००$$

(अवशेष अगले अङ्कमें)

बुद्धि नापने का पैमाना

[लेखक—श्री जगदीशप्रसाद राजवंशी, एम. ए. बी. एस-सी.]

मनोविज्ञानका प्रायौगिक अङ्ग, बुद्धिकी मनोवैज्ञानिक परिभाषा, प्रश्नावलि, वातावरण का प्रभाव, परंपरागत विशेषतायें, महान् व्यक्तियोंके उदाहरण, स्कूलों की आवश्यकता की पूर्ति।

पाठशालाओंमें बच्चोंकी बुद्धि परीक्षाके लिये एक ऐसे पैमानेकी आवश्यकता थी जिसके द्वारा यह मालूम हो सके कि कौन-सा बच्चा कितना कमजोर अर्थात् कितनी कम बुद्धि वाला है। जिससे उसको शिक्षा देनेके लिये अलग ही प्रबन्ध हो सके और जितना समय उसे किसी विशेष कार्य को करने के लिए चाहिए उतना समय भी दिया जा सके।

इस कठिनाईको दूर करनेके लिए बिनेट (Binet) तथा साइमन (Suimon) दोनों ने मिल कर एक पैमाना तैयार किया। ३० वर्षों तक इसके लाभ, इसकी उपयोगिता इसके प्रायौगिक मूल्यके विषय में आलोचना होते रहने पर भी आज यही अपने विषयमें अद्वितीय है।

इस पैमानेके छपनेके कुछ ही दिनों पश्चात् अमेरिका, कनैडा, इंग्लैंड, आस्ट्रलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, जर्मनी, स्वीट्ज़रलैंड, इटली, रूस, और चीनमें इसका उपयोग किया जाने लगा तथा जापानी और टर्की भाषामें इसका अनुवाद भी कर लिया गया। इस पैमानेकी इस प्रसिद्धिसे ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि यह पैमाना कितना उपयोगी है।

बुद्धिकी परिभाषा

इस पैमानेका वर्णन करनेसे पूर्व यह जान लेना चाहिए कि बिनेट (Binet) बुद्धिका किस अर्थमें प्रयोग करता था, क्योंकि 'बुद्धि' के इसी अर्थके आधार पर यह पैमाना बनाया गया था। बिनेट साहबसे पहले बुद्धि-परीक्षाके लिये निम्न स्तरकी मस्तिष्क शक्तिका उपयोग किया जाता था जैसे याद रखनेकी शक्ति, संख्याओं और वस्तुओंमें शीघ्रतासे भेद बतानेकी शक्ति, अभ्यास के पश्चात् अपने आप कार्य करनेकी शक्ति जैसे टाइप करनेमें अपने आप अंगुलियां चला करती हैं अथवा कम्पोजिंगमें स्वयं ठीक स्थान पर हाथ चला जाता है अथवा पोस्ट ऑफिसमें पत्रोंको उनके पतोंके अनुसार ठीक खानेमें बिना देखे हुए रखना इत्यादि। इस प्रकार की परीक्षाओं की कमियों को बताते हुए बिनेटने कहा कि 'हमें बुद्धि-परीक्षाके लिये उच्च स्तरके मस्तिष्क शक्तिकी परीक्षा करनी चाहिये जैसे—तर्क-बुद्धि, मनन-शीलता तथा निश्चयात्मक-बुद्धि; इन्हींके आधार पर हम किसीको अधिक बुद्धिमान् तथा कम बुद्धिमान् कह सकते हैं। मनकी एकाग्रता, बातोंको शीघ्रता से समझना तथा ठीक-ठीक निश्चय कर लेना यही बुद्धिकी विशेषतायें हैं। बिनेटके अनुसार बुद्धिके मुख्य अंग निर्णय, साधारण बुद्धि, नई बात आरम्भ करनेकी शक्ति तथा स्थान और समयके अनुसार कार्य करने की शक्ति हैं। अपनी शक्तिको ध्यानमें रखते हुए उसीके अनुसार कार्य चुनना, विषम परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको सहने योग्य बना लेना तथा कार्य चुन लेनेके पश्चात् दृढ़तासे उस पर लगे रहना भी किसी मनुष्यकी बुद्धिकी विशेषतासे सम्बन्ध रखते हैं।

नापनेकी विधि तथा कुछ नये शब्द—

किन्तु बिनेटने बुद्धिको इन भागोंमें विभाजित करके प्रत्येक भागके लिये अलग कोई परीक्षा नहीं रखी। उसने बुद्धिके सब अंगोंको नापनेके लिये एक प्रश्नावली तैयारकी थी। पहले पहल इस प्रश्नावलीमें केवल ३० प्रश्न थे। ये प्रश्न इस प्रकार क्रमबद्ध किये गए थे कि सहल प्रश्न पहले और कठिन प्रश्न बादमें आते थे। ये प्रश्न आयुके अनुसार किसी प्रकारके वर्गीकरणमें विभाजित नहीं किये गये थे। बिनेटने केवल इतना ही बनाया था कि किस उम्रके बच्चे से कितने प्रश्न अथवा समस्यायें पूछनी चाहिएं। किन्तु यह विधि त्रुटिमय थी। इसका विरोध किया गया। इसके पश्चात् इन प्रश्नोंको वर्गोंमें विभाजित किया गया। ये वर्ग आयुके अनुसार बनाये गये थे। केवल यों ही इनको वर्गों में विभाजित नहीं कर दिया गया किन्तु इसके लिये प्रयोग किये गये थे। मान लो ८ वर्षकी आयु के बच्चेके लिये कुछ प्रश्न तथा समस्यायें रखी गयीं। यदि आठ वर्ष की आयु वाले सारे के सारे लड़के उन प्रश्नों तथा समस्याओंमें सफल हो गये तो समझना चाहिये कि प्रश्न सहल थे। यदि सारेके सारे लड़के

असफल होगये तो समझना चाहिये कि प्रश्न और समस्याएं कठिन थीं। इस प्रकार प्रयोग करके आठ वर्ष वाले मध्य श्रेणी बुद्धि वाले बच्चोंके योग्य प्रश्नोंको चुन लिया गया।

इसके पश्चात् बिनेटने कुछ नये शब्दोंका भी प्रयोग किया। उसने आयुके दो भेद किये एक मस्तिष्कसे अनुसार तथा एक समयके अनुसार। मस्तिष्क आयुके लिये (म० आ०) का प्रयोग किया तथा सामयिक आयुके लिये (सा० आ०)का, किसी बच्चे की मस्तिष्क आयु (म० आ०) पैमानेमें दी गई परीक्षा पर निर्भर है। यदि वह बच्चा आठ वर्षकी आयुके बच्चेके लिये नियत परीक्षा में सफल होता है तो उसकी मस्तिष्क आयु (म० आ०) आठ वर्ष की हुई; चाहे उसकी सामयिक आयु (सा० आ०) इस समय इससे अधिक या कम क्यों न हो, यदि उस बच्चेकी सामयिक आयु (सा० आ०) ६ वर्ष है तो वह बच्चा मस्तिष्क आयु (म० आ०) में दो वर्ष बड़ा है अर्थात् बुद्धिमें वह आठ वर्षके बच्चेके समान है। यदि उसकी आयु दस वर्ष की है तो वह मस्तिष्क आयु (म० आ०) में दो साल छोटा है। यदि उसकी सामयिक आयु ८ वर्षकी है तो वह साधारण रूपसे पूर्ण है। यह परीक्षा विधि वास्तवमें बहुत अच्छी सिद्ध हुई। बहुतसे परीक्षक मनोविज्ञानसे परिचित नहीं होते थे उन के लिये तो यह मस्तिष्क आयुके आधार पर बना वर्गीकरण बहुत ही अधिक लाभदायक रहा।

सन् १९११ में बिनेटने जो बुद्धि परीक्षाके लिये पैमाना तैयार किया था वह इस प्रकार था—

प्रश्नावली

आयु ३ वर्ष—

१. नाक, आंख तथा मुखको बता सकता है।
२. दो अंकोंको दोहरा सकता है।
३. किसी चित्रमें चित्रित वस्तुओंको बता सकता है।
४. अपने घर वालोंका नाम बता सकता है।
५. छः शब्दों वाले वाक्य को दोहरा सकता है।

आयु ४ वर्ष—

१. यह बता देता है कि वह लड़की है या लड़का।
२. कुंजी, चाकू तथा पैसे इत्यादिको नाम लेकर बता सकता है।
३. चार अंकोंको दोहरा सकता है।
४. दो रेखाओंकी तुलना कर सकता है।

आयु ५ वर्ष—

१. दो वजनोंको जांच सकता है।
२. एक चतुर्भुजकी प्रतिलिपि कर सकता है।
३. दस खंड वाले एक वाक्यको दोहरा सकता है।
४. पैसे गिन सकता है।
५. दो भागोंमें कटे एक चतुर्भुजको जोड़ सकता है।

आयु ६ वर्ष—

१. सुबह और दोपहरके मध्यमें भेद कर सकता है।
२. जाने हुए शब्दोंकी परिभाषा उपयोगके अनुसार कर सकता है।
३. चौकोर आकृतिकी नकल उतार सकता है।
४. १३ पैसे गिन सकता है।
५. सुन्दर और भद्दे मुख वाले चित्रोंमें भेद बता सकता है

आयु ७ वर्ष—

१. दाहिना हाथ और बायां कान बता सकता है।
२. एक चित्रका वर्णन कर सकता है।
३. तीन क्रमानुसार आज्ञाओंका पालन कर सकता है।
४. पैसे और इकन्नियां गिन कर आने बता सकता है।
५. चार मुख्य रंगोंका नाम ले सकता है।

आयु ८ वर्ष—

१. अपनी स्मरण शक्तिसे ही दो वस्तुओंमें तुलना कर करता है।
२. २० से ० तक उलटी गिनती गिन सकता है।
३. यदि चित्रमेंसे कुछ भाग निकाल दिये जांय तो उनको बता सकता है।
४. दिन तथा तिथि बता सकता है।
५. पांच अंकोंको दोहरा सकता है।

आयु ९ वर्ष—

१. रुपयेसे कमका सौदा खरीदनेपर शेष पैसे वापिस कर सकता है।
२. परिचित शब्दोंकी परिभाषा उनके प्रतिदिनके व्यवहारसे भिन्न और अच्छे रूपमें कर सकता है।
३. धेला, पैसा, इकन्नी, चवन्नी... इत्यादि सारे सिक्कोंको पहचान सकता है।
४. सालके बारह महीनोंके नाम क्रमानुसार बता सकता है।
५. सरल प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है।

आयु १० वर्ष—

१. पांच टुकड़ोंको उनके वजनके अनुसार क्रमसे रख सकता है।
२. स्मरण शक्तिसे ही चित्र खींच सकता है।

३. पोले तर्कोंकी आलोचना कर सकता है।
४. गम्भीर तथा कठिन प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है।
५. तीन दिये गये शब्दोंको दो वाक्योंसे क्रममें ही प्रयोग कर सकता है।

आयु १२ वर्ष—

१. किसी सलाहका विरोध कर सकता है।
२. तीन दिये गये शब्दोंको एक वाक्यमें प्रयोग कर सकता है।
३. ३ मिनटमें ६० शब्दोंको बता सकता है।
४. कुछ दार्शनिक शब्दोंकी परिभाषा कर सकता है।
५. किसी वाक्यमें शब्दोंके स्थानके अनुसार उनके क्रममें न होनेको पहचान सकता है।

आयु १५ वर्ष—

१. सात अंकोंको दोहरा सकता है।
२. एक शब्दको तीन स्वरोंमें उच्चारण कर सकता है।
३. २६ खण्डोंके एक वाक्यको दोहरा सकता है।
४. किसी चित्रको देख कर उसमें दिखाई गयी वस्तुओं तथा भावोंका विषद वर्णन कर सकता है।
५. दिये गये विचारोंको अपने शब्दोंमें वर्णन कर सकता है।

तरुणावस्था १६—

१. कटे हुए कागजके टुकड़ों को जोड़ कर कोई विशेष चित्र अथवा शब्द जिसके वे टुकड़े हैं बना सकता है।
२. दिये हुए कोण तथा भुजाके आधार पर अपने आप ही दिमागमें एक त्रिकोण बना सकता है।
३. जोड़ेमें रखे गये समानार्थक शब्दोंमें भेदी कारक करके उनको वाक्योंमें प्रयोग कर सकता है।
४. एक राजा तथा एक सभापति में क्या भेद है यह दर्शाने के लिये तीन भेद बता सकता है।
५. यदि कोई पाठ, दूसरा व्यक्ति उसे पढ़ कर सुनाये तो वह उस पाठका तात्पर्य बता सकता है।

इन प्रश्नोंको बनानेमें बिनेटने इस बातका विशेष ध्यान रखा था कि वे काममें आसानीसे लाये जा सकें। प्रश्न छोटे हों तथा बुद्धि सम्बन्धी प्राय: सभी विशेषता रखते हों। इसके साथ साथ यह भी ध्यान रखा गया कि स्कूलकी पढ़ाईसे प्रश्नों का उत्तर देनेमें कमसे कम सहायता मिल सके।

बुद्धि विकास पर वातावरणका प्रभाव—

किन्तु बिनेटके इन प्रश्नोंके विषयमें बहुत सी आलोचना भी लगातार होती रहती है। बहुतसे मनुष्योंका विचार है कि इस परीक्षा में सफल होने में स्वाभाविक तथा जन्मागत-बुद्धि के स्थान पर वातावरण तथा शिक्षाका अधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार एक शिक्षित तथा सभ्य कुटुम्बका बच्चा, गंवार तथा अशिक्षित कुटुम्बके बच्चेसे अधिक आसानीसे इस परीक्षामें सफल हो सकेगा। वास्तवमें यह ठीक भी है। और खास तौर से जब कि दोनों कुटुम्बोंकी सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी स्थितिमें महान् भेद हो। जन्मागत विशेषतायें तभी अपना प्रभाव ठीक प्रकारसे दिखाती हैं जब कि उनके विकासके लिये वातावरण भी उनके योग्य मिल सके। यदि एक सभ्य जाति का बच्चा जंगलोंमें कोल या भील जातिके मध्यमें पाला पोषा जायगा तो वह बिनेटके पैमानेसे बुद्धिमें कम उम्रका ही होगा, चाहे वह वास्तवमें कितने ही अच्छे तथा सभ्य परिवारका ही क्यों न हो। अन्य प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि वातावरणका अर्थात् किस प्रकारके मनुष्योंमें बच्चा रहता है बच्चे पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यही नहीं बल्कि अच्छे स्कूल के लड़के, बिनेट के पैमाने पर, खराब स्कूलके बच्चोंसे अधिक आयुके उतरते हैं। इसलिये किसी बच्चेकी वास्तविक अर्थात् प्राकृतिक बुद्धि परीक्षाके लिये उसके प्रारम्भिक जीवनके वातावरणका भी ज्ञान होना अति आवश्यक है।

बिनेट स्वयं भी यह जानता था कि वातावरणके प्रभावको बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता। इसी कारण उसने अपने पैमानेके बनानेमें यह ध्यान रखा था कि वातावरणसे बच्चेको कमसे कम सहायता मिले। यदि एक बच्चा बहुत अधिक सभ्य तथा उन्नत वातावरणमें पलता है और दूसरा बहुत निम्न तथा असभ्य वातावरणमें पला है; अथवा एकके नैतिक आदर्शोंको ऊंचा रखनेका बहुत अधिक ध्यान रखा गया हो और दूसरे के नैतिक आदर्शों की कुछ भी परवाह न की गई हो, तब तो अवश्य उन दोनों बच्चोंकी नापमें महान् अन्तर होगा, किन्तु यदि बच्चे साधारण वातावरणमें पले हैं तो उनकी बुद्धि नाप प्राय: समान ही होती है, बिनेटके पैमानेमें सफलता पानेके लिये भाषा ज्ञानसे भी काफी सहायता मिलती है किन्तु फिर भी चतुरता, दूरदर्शिता तथा निश्चयात्मक बुद्धिसे ही अधिक सहायता मिलती है तोतेकी तरह कुछ खास-खास बातोंको रटा देनेसे काम नहीं चलता।

चरित्र तथा भाषा-सम्बन्धी अन्य त्रुटियां—

इसके अतिरिक्त बिनेटके पैमानेमें खराबी यह है कि यह

बच्चोंके चरित्रके विषयमें कुछ भी नहीं बता सकता। जैसे कुछ बच्चे बुरे स्वभावके होते हैं, आलसी होते हैं, काम सम्बन्धी बुरी आदतों वाले होते हैं। ये बातें भी प्रतिदिनके जीवनमें बुद्धि के समान ही स्थान रखती हैं। कुछ बच्चों में गायन-कला सम्बन्धी तथा कारीगरीकी विशेषतायें होती हैं उनका भी इससे पता नहीं चलता। किन्तु फिर भी साधारण कार्योंके लिये इससे बुद्धि-परीक्षा की जा सकती है। बच्चोंके अस्पतालों तथा शिशु गृहोंके अनुभवसे पता चला है कि कम बुद्धि तथा चरित्रके दोषोंमें बहुत निकटका सम्बन्ध है। बुद्धिके विकासके साथ साथ चरित्र-दोष भी प्रायः कम होते चले जाते हैं।

प्रायः ये सब प्रश्न मुँह जबानी पूछे जाते हैं। इसलिये जो बच्चे अंग्रेजी नहीं जानते, जो दूसरे देशोंके हैं, जो बहरे हैं, हकलाते हैं अथवा इसी प्रकारकी बोलनेसे सम्बन्ध रखने वाली कोई खराबी है तो उनके लिये ये प्रश्न ठीक नहीं रहते। मुँह जबानी पूछे जाने वाले प्रश्नोंमें यह खराबी तो सदा रहेगी ही। इसलिये इनके स्थान पर कुछ कार्य भी करवाया जाता है जैसे कुछ कटे हुए टुकड़ोंको एक तख्तेमें ठीक स्थान पर लगाना प्रहेलिका चित्रों (Puzzle Picsures) के भिन्न भिन्न भागों को ठीक रूपसे लगाना तथा अन्य मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याओं का सोच कर उत्तर देना जिनमें भाषा की कम से कम आवश्यकता पड़े।

किसीके विषयमें पूर्ण-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो इस बुद्धि परीक्षा फलके साथ साथ उस मनुष्यके जीवनकी अन्य विचित्रताओं तथा विशेषताओंकी जानकारी भी होनी चाहिये। यदि किसीकी इस प्रकारकी परीक्षा संभव हो सके तो उसकी आत्म-कथा, उसकी बिमारियोंका इतिहास, उसके किसी विषय पर लगातार कार्य करनेकी आदत, उसकी सामाजिक तथा चरित्र सम्बन्धी आदतोंके विषयमें जानकारी होनी चाहिये। बच्चोंके विषयमें, उनके खेलनेकी आदत तथा स्कूलमें खास प्रकार की आदतको बड़े ध्यानसे देखना चाहिये। इस प्रकार ध्यान देनेसे तथा बिनेटके पैमानेकी सहायतासे बच्चोंके विषयमें काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है। बहुतसे स्कूलोंमें इसी विधिसे बच्चोंकी परीक्षा की जाती है। जो बच्चे मन्द बुद्धि होते हैं उनके लिये विशेष प्रकारका काम करनेको दिया जाता है। यह कार्य उनकी योग्यताके अनुसार उनको दिया जाता है। जो बच्चे तीव्र-बुद्धिके होते हैं उन्हें आगेकी कक्षाका कार्य करनेके लिये दिया जाता है तथा वे ऊंची कक्षामें चढ़ा दिये जाते हैं।

बुद्धिका चरम विकास—

आपको यह जान कर विस्मय होगा कि १६ वर्षकी आयु में 'बुद्धि' प्रौढ़ावस्था अर्थात् पूर्णताको प्राप्त हो जाती है। जो मनो विज्ञानसे परिचित नहीं हैं उन्हें तो इस बात पर कभी भी विश्वास नहीं हो सकता कि १६ वर्षमें बुद्धि अपने चरम विकास पर होती है। उनका विचार होगा कि जैसे जैसे आयु बढ़ती चली जाती है उसी गतिसे बुद्धिमें भी विकास होता जाता है। जब उनसे कहा जाता है कि आप १६ वर्षकी आयुमें, अब ४० वर्षकी आयुसे अधिक विद्वान् थे तो उन्हें बुरा सा भी लगता है। किन्तु इस भ्रमका कारण यह है कि हम 'बुद्धि' तथा "प्रौढ़ता" के मनोवैज्ञानिक अर्थसे परिचित नहीं होते। यह ध्यान में रखना चाहिये कि "बुद्धि" से मनोवैज्ञानिकका तात्पर्य होता है—नई परिस्थितिके अनुसार कार्य करनेकी क्षमता, मस्तिष्क-जागरुकता, तथा दक्षता। बुद्धि से तात्पर्य ज्ञान तथा अनुभव का नहीं होता, यद्यपि ज्ञान और अनुभव इस बुद्धि की विशेषतासे ही आयुके साथ साथ प्रवर्धित होते रहते हैं। साधारण रूपसे एक अधिक उम्र वाले पितामें अपने १६ वर्षके लड़केसे अधिक वस्तुओंका ज्ञान होगा तथा वह अपने इस लम्बे अनुभवके कारण बहुतसे कार्य बहुत शीघ्रता तथा बहुत होशियारीसे कर सकेगा; किन्तु मनोवैज्ञानिक अर्थमें वह अपने लड़केसे न तो मस्तिष्क जागरुकतामें और न परिस्थितिके अनुसार कार्य करनेमें (जो कि वास्तवमें बुद्धिके अंग हैं) ही अपने लड़केसे अधिक होगा।

बहुतसे प्रयोगों द्वारा यह मालूम हुआ है कि बुद्धि मनुष्य के प्रारम्भिक वर्षोंमें अधिक शीघ्रतासे बढ़ती है और जैसे जैसे आयु बढ़ती चली जाती है उसी प्रकार बुद्धि विकासकी गति धीमी होती जाती है। १४ तथा १६ वर्षकी आयुके मध्यमें बुद्धि विकास प्रायः एक सा रहता है अथवा थोड़ी बहुत वृद्धि जो होती है वह बहुत कम होती है। इस प्रकार इस आयुके मनुष्यमें बुद्धि तीव्रता, मस्तिष्क जागरुकता तथा परिस्थितिके अनुसार कार्य करनेकी शक्ति सबसे अधिक प्रमाणमें होती है।

बहुतसे मनुष्यों की बुद्धि-परीक्षाके पश्चात् यह सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार अति तीव्र बुद्धि वाले मनुष्य बहुत कम होते हैं उसी प्रकार बिल्कुल बुद्धू भी बहुत कम होते हैं। प्रायः प्रतिशत संख्या इस प्रकार है—

	बुद्धि वाले	प्रतिशत जन संख्यामें
१.	अत्यन्त तीव्र बुद्धि वाले	१%
२.	तीव्र ,, ,,	१६%
३.	साधारण ,, ,,	६०%
४.	मन्द ,, ,,	१६%
५.	अत्यन्त मन्द ,, ,,	१%

तीव्र बुद्धि वाले बच्चोंकी विशेषतायें—

परीक्षाके पश्चात यह ज्ञात हुआ कि जो बच्चे अत्यन्त तीव्र बुद्धिके थे वे लम्बाईमें, वजनमें तथा स्वास्थ्यमें भी साधारण बुद्धि वाले बच्चोंसे अधिक अच्छे थे। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार तथा अन्य बातोंमें भी वे साधारणतः अधिक दक्ष थे। एक आधको छोड़ कर प्रायः सभी अच्छे खाते पीते घराने के थे और उनके माता पिता भी पढ़े लिखे थे। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि बच्चों की बुद्धि पर पैत्रिक गुण तथा वातावरण दोनोंका प्रभाव पड़ता है।

बुद्धि भी जन्मागत होती है और जिस प्रकार शरीरकी बनावट पर पूर्वजोंका प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार बुद्धि तथा उसकी स्थिरता पर पूर्वजोंका प्रभाव पड़ता है।

हमारे यहां जो प्रचलित कहावतें हैं—'होनहार बिरवानके होत चीकने पात" अथवा 'पूतके पैर पालनेमें दीख जाते हैं', ये वास्तवमें बहुत कुछ ठीक हैं। जो बच्चे बचपनमें बहुत अधिक तीव्र बुद्धि होते हैं—यदि उनके अनुसार वातावरण मिल जाय—तो वे महान् कार्य करते हैं। संसारके महान् व्यक्ति अपने जीवन कालमें भी तीव्र बुद्धि थे किन्तु इसके विपरीत भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत अधिक मन्द बुद्धि मनुष्योंकी जीवन-कथासे पता चलता है कि बचपनमें भी वे मन्द-बुद्धि थे। ऐसे भी कितने उदाहरण मिलेंगे कि मन्द बुद्धि बच्चोंको बाल्यकालमें सब प्रकारकी सहूलियतें दी गईं किन्तु फिर भी वे जीवनमें उन्नति नहीं कर सके और उसी प्रकार मन्द बुद्धि रहे। इसके अतिरिक्त वे बच्चे जिनको बाल्यकालमें हर प्रकारकी कठिनाइयां उठानी पड़ीं, जिनके माता पिता भी नहीं रहे। जिनके पास शिक्षा पूरी करनेके लिये भी धन नहीं था वे अपने प्रयत्न द्वारा जीवनमें सफल हुए तथा बड़े हो कर अपनी तीव्र बुद्धिका परिचय दिया। इसके अतिरिक्त एक ही परिवार के बच्चे जो साथ साथ रहते थे, जिनके लिये एकसे कपड़े बनते थे, खाना मिलता, तथा एकसे ही वातावरणमें रहते थे उनमें से कुछ बिल्कुल बुद्धू ही रहे हैं और कुछ बुद्धिमान् उन्नति कर गये। इसका कारण क्या हो सकता है? यह जन्मागत विशेषता का फल है।

इसके अतिरिक्त बिमारियां, बहरापन, आंखकी खराबी, बुरा व्यवहार तथा दूषित वातावरण सब मिलकर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि स्वभाव बड़ा ही जटिल हो जाता है। न तो उसमें जन्मागत विशेषता ही रह पाती है और न वातावरणका ही अकेला प्रभाव रह जाता है।

बाल्यकालमें ही बुद्धि तीव्रताका परिचय—

महान् व्यक्तियोंकी जीवनियां पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उनकी जन्मागत विशेषताओंका परिचय उनके बाल्यकालमें ही मिलना प्रारम्भ हो गया था। फ्रांसका महान् दार्शनिक तथा नाटककार वॉल्टेयर ३ वर्ष की आयु से पढ़ने लगा था और १२ वर्षकी आयुमें उसने एक दुःखान्त नाटक लिख लिया था। संसारका विख्यात गणितज्ञ सर आइजकन्यूटन खेलने के समयमें भी बहुतसी मशीनोंके बनानेके विषयमें सोचता रहता था। जर्मनका महाकवि गेटे संसारकी महान् कलात्मक रचनाओं से परिचित था; जर्मन, फ्रैंच, लेटिन तथा हेब्रु भाषाका उसने अध्ययन किया था; सारे योरोपका इतिहास वह समाप्त कर चुका था तथा पियानो बजानेमें बड़ा होशियार था, इन सब बातोंके कारण वह कलाका बड़ा अच्छा विद्यार्थी समझा जाता था। गणिताचार्य रामानुजन् आयंगर भी अपने बाल्यकाल में अत्यन्त शान्त और ध्यान मग्न रहा करते थे, ये अपनी कक्षामें सर्वप्रथम रहते थे। उनके माता पिता उन्हें बाहर जानेकी आज्ञा नहीं देते थे। इसलिये ये अपने साथियोंसे एक खिड़की से ही वार्तालाप किया करते थे।

कुछ अपवाद भी—

कुछ उदाहरण इसके विपरीत भी मिलते हैं। सब ही महान् पुरुष अपने प्रारम्भिक जीवनमें विशेषताओं वाले नहीं थे। विकासवादके लिये प्रसिद्ध डारविन स्कूलमें मन्द बुद्धि समझा जाता था क्योंकि वह अपनी कोटकी जेबमें छोटे छोटे जानवर तथा कीड़े रखकर ले जाता था और उन्हें निकाल-निकाल कर कक्षामें बड़ी गड़बड़ी किया करता था। नैपोलियन भी सैनिक स्कूलमें एक साधारण सा विद्यार्थी समझा जाता था। हिटलर भी बचपनमें अधिक बुद्धिशाली नहीं था। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर भी अपने स्कूलके जीवनमें पूर्णतया असफल रहे थे। गांधीजी

का भी प्रारम्भिक जीवन विशेषतायें विहीन ही था। अमरीकाका प्रसिद्ध वैज्ञानिक थोमस एडीसन अपनी कक्षामें सबसे पिछड़ा हुआ विद्यार्थी था।

बच्चों के विषयमें कुछ भ्रांतियां

बहुधा कक्षामें असफल होने पर माता-पिता तथा मास्टर बच्चे को बुद्धू समझने लगते हैं; किन्तु वास्तवमें इनकी धारणा बिलकुल गलत होती है। जिस समय उन्हें कक्षामें पाठ पढ़ाया जाता है—उसमें वे दिलचस्पी नहीं लेते उस समय वे अन्य बातोंका ध्यान करते रहते हैं। वास्तव में वे बातें एक बच्चे की बुद्धिसे बहुत ऊंची होती हैं। इसके अतिरिक्त वे शैतान भी हो जाते हैं, क्योंकि जो कुछ पढ़ाया जाता है तथा पढ़नेको होता है वह सब कुछ तो वे सीख लेते हैं बाकी समय वे खेल और शैतानीमें बिताते हैं।

बुद्धि नापनेके पैमानेके आधार पर मनोवैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जिस प्रकार तीव्र बुद्धि परंपरागत होती है इसी प्रकार मंद बुद्धि भी परंपरागत होती है। किसी किसी कुटुम्बमें एक संततिके पश्चात् दूसरी संततिमें यह रोग प्राय: चलता रहता है। इस प्रकार प्राय: ९० प्रतिशत मंद बुद्धि जन्मागत होते हैं। केवल १० प्रतिशत वातावरण, बिमारी तथा अन्य बाह्य कारणों से होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी परिवारके सारे व्यक्तियों में जो साम्य दिखाई पड़ता है तथा सामाजिक व्यवहारमें जो कुछ विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं वे भी परम्परागत विशेषताओं के कारण हैं। कइयोंमें जिस प्रकार शरीरकी बनावट, रूप-रंग, कद परंपरासे प्राप्त विशेषतायें हैं उसी प्रकार बुद्धि भी परंपरागत सम्पत्ति है। जोड़िया बच्चों के शरीरकी बनावट में साम्य होता ही है किन्तु उनकी आदतों और विचारोंमें तो और भी अधिक साम्य होता है।

इन सब बातोंके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिनेटके पैमानेमें बहुत सी कमी होने पर भी वह अत्यन्त उपयोगी यन्त्र है जिसके द्वारा काफी हद तक बुद्धि परीक्षा की जा सकती है। आशा है इसकी सहायतासे बच्चोंको उनकी योग्यतानुसार शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा। इसके साथ साथ जो बच्चे तीव्र बुद्धि हैं उनके लिये विशेष सुविधायें दी जा सकेंगी।

हास्य-का-रहस्य

[लेखक—श्री रामबिलास सिंह बी. ए.; सी. टी.]

हास्य मानव जातिकी निजी सम्पत्ति है। इसमें यह क्रिया प्राय: पायी जाती है, पर अन्यान्य जीवधारी इस कार्यमें सर्वथा असमर्थ हैं। नवजात शिशु जब कई दिनोंका ही रहता है तभी उसके अधरोष्ठ स्वत: इस प्रकार विकसित होते हैं जिसे हम मृदु हास्य या मुसक्यान कहते हैं। उस समय हास्य और रुदन ये दो ही कार्य उसके सुख-दु:खके बोधक होते हैं। जब तक बच्चेको शारीरिक सुभीता और सुपास रहता है तब तक वह हाथ पांव फेंक-फेंक कर खेलता तथा यदा-कदा हँसता भी है, परन्तु तनिक भी दैहिक असुविधा उपस्थित होने पर वह रो उठता है। इससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि निर्मल हास्य आनन्दका ही उद्गार है। जब आनन्दकी लहरें अन्तस्थलमें लहराने लगती हैं और उद्वेलित हो हृदयके बांधको तोड़कर पार कर जाती हैं, तभी वे हास्यके रूपमें अभिव्यक्त हो जाती हैं; यह आनन्द प्रवाह जितना ही प्रबल और तीव्र होता है, हँसी भी उतनी ही तरल और जोरदार होती है।

हम क्यों हँसते हैं? और हँसनेसे हममें कौन कौनसे बाह्य और आभ्यन्तरिक परिवर्तन होते हैं यह आजकलके मनोवैज्ञानिकों के लिए एक जटिल और गम्भीर प्रश्न हो गया है। इसके संबंध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के विचार भी भिन्न हैं। स्पेंसर (Spencer) साहबका कथन है कि अतिरिक्त स्नायविक शक्ति ही हास्यके रूपमें वहिर्गत हो जाती है। परन्तु उनकी यह उद्भावना इस बातको स्पष्ट नहीं कर पाती कि वह शक्ति उछल-कूद, नृत्य-गीत, चीत्कार-किलकार, आदिके रूपमें प्रकट न होकर हास्यका ही रूप क्यों धारण कर लेती है? हौबेस Hobbes साहबके मतानुसार दूसरों पर आकस्मिक विजय का अभिज्ञान ही हास्यका कारण है। परन्तु यह कल्पना भी व्यापक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि पहली बात तो यह है कि आकस्मिक विजय सदैव हास्योत्पादन करती नहीं पायी जाती, और दूसरी बात यह है कि जहां आत्म-गौरव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता वहां भी लोग बहुधा हँसते देखे जाते हैं। हास्य सम्बन्धी इन सुख-मूलक सिद्धान्तोंके अतिरिक्त बर्गसन (Bergson) साहब का सामाजिक सिद्धान्त भी है। वे कहते हैं,—"Laughter

serves the ends of social discipline, because we naturally laugh at whatever in behaviour is stiff, clumsy or machine-like." "अर्थात्—हास्य सामाजिक अनुशासनके उद्देश्योंकी पूर्ति करता है, क्योंकि हम स्वभावतः अशिष्ट, भद्दे अथवा यंत्रवत् व्यवहारों पर हंसते हैं।" परन्तु यह बात समझमें नहीं आती कि प्रकृति प्रथमतः वैयक्तिक उद्देश्योंकी सिद्धिका ध्यान न रख कर इतर व्यक्तियों की लक्ष्य-पूर्ति के निमित्त हमें क्यों विशेष सक्रिय यंत्र प्रदान करती है। साथ ही साथ इस सिद्धान्तके अपवादका आधार यह भी है कि हास्य-समाज-सुधारक भले ही हो, पर यह बात निश्चित है कि हम सामाजिक दोषों के निराकरणके विचारसे कदापि नहीं हँसते।

मकडौगल (Mc-Dougall) साहबके हास्य-सम्बन्धी नवीन विचारोंके अनुसार हम परम प्रसन्न रहने पर नहीं वरन् उदास चित्तवृत्तिके समय हँसते हैं; और जब हम जीवनकी चिंताओं और प्रपंचोंके भारसे दबे रहते हैं तभी हम ऐसे व्यक्तियोंका संग चाहते हैं जो हमारे मनमें गुदगुदी उत्पन्न कर उन्हें दूर कर सकें। इससे यह सूचित होता है कि हास्य हमें चिंताजन्य विचारों और उदासीन चिंताओंसे मुक्त करनेके निमित है, प्रकृतिने प्रथमतः जीवनोद्देश्यकी पूर्तिके अर्थ ही मनुष्यको यह विशेष सक्रिय यन्त्र प्रदान कर अनुगृहीत किया है न कि बर्गसन साहबके मतानुसार सामाजिक लक्ष्यकी सिद्धिके लिए। हास्य शरीर और मनको पुनः प्रफुल्लित और हरा भरा बनाकर प्रगाढ़ चिंता और कार्य्याधिक्य की क्लान्ति आदिसे उत्पन्न क्षयकारक प्रभावसे हमें उन्मुक्त कर देता है। यह स्वास्थ्यवर्द्धक नवीन शक्ति और स्फूर्ति प्रदान कर विनाशोन्मुख होनेसे बचाता है। हँसीके सुखात्मक सिद्धान्तको वे हास्यास्पद और तर्कशून्य बतलाते हैं क्योंकि उनके मतानुसार हम मनोनुकूल और प्रिय बातों पर हँसते नहीं, हालां कि मुसकरा सकते हैं। मुसकान और हास्य एक दूसरेसे बिल्कुल विभिन्न हैं; मुसक्यान मधुर और मनोरम है, पर हास्य विरूप और अशोभन। हम अशिष्ट, असङ्गत, बेमेल, बेतुकी, भ्रमपूर्ण, तर्कहीन और ख्याली बातों पर, अथवा एक शब्दमें यों कहिए कि हास्योत्पत्तिके अतिरिक्त और विचारोंसे प्रतिकूल विषयों पर ही हँसते हैं। पर हम क्यों इन बातों पर हँसते हैं? कारण ढूंढ़नेके लिए अधिक दूर नहीं जाना होगा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रकृति ने मनुष्य में सहानुभूति की मात्रा अधिक भर दी है जिसमें उसका सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न न होने पावे। परन्तु ऐसा करनेके उपरान्त उसे ज्ञात हुआ कि समाज रक्षा की धुनमें उसने व्यक्तिके प्रति अत्यन्त अन्याय किया है, क्योंकि यदि वह बेचारा अपने साथीके मामूलीसे मामूली दुःखों और दुर्भाग्यों पर समवेदना प्रकट करने लगेगा तो उसका अपना ही जीवन हदसे ज्यादा दुःखी हो जायगा। अतः उसने उससे कहा,—"Beloved child, if I wronged you by giving you on excess of sympathetic tendency for the preservation of your society, I will now counteract it by giving you the antidote of laughter. Hearken to me. Weep when your friend's misfortunes are great, and laugh when they are small. Weep when he breaks his neck by a fall, and laugh when he breaks only a finger. If your right-hand friend suffers heavily and left-hand friend lightly, then left your right eye weep and left eye laugh. Refreshing laughter will more than make up for the tears of depressing sympathy "अर्थात् प्रिय सन्तान, यदि मैंने तुम्हारी समाज-रक्षाके निमित्त तुम्हें समवेदनात्मक प्रवृत्ति अधिक मात्रामें प्रदान कर तुम्हारी बुराई की है तो अब मैं हास्यका प्रतिषेधक प्रदान कर उसकी प्रतिक्रिया भी करूंगी। मेरी बातों पर कान दो। अपने मित्रके बड़े दुर्भाग्यों पर रोओ और छोटों पर हँसो। यदि गिरनेसे उसकी ग्रीवा भग्न हो जाय तो रोओ और केवल एक उङ्गली टूटे तो हँसो। यदि तुम्हारी दाहिनी ओरका दोस्त भारी दु;खमें हो और बांयीं ओर का किञ्चित् कष्टमें तो अपने दाहिने नेत्रसे रोओ और बाएंसे हँसो। प्रफुल्लकारी हास्य खेदजनक सहानुभूतिके आंसुओं का बदला चुका आगे ही बढ़ जायगा।" (देखिए McDougall's Outline, PP. 165-170)।

हास्यके इस विचित्र सिद्धान्त पर मनन करनेसे ज्ञात होता है कि मनुष्यकी समवेदनात्मक वृत्ति उतनी नाजुक नहीं है जो बात बात पर प्रतिक्रिया उत्पन्न करे और एतदर्थ हास्यके रूपमें प्रतिषेधक की आवश्यकता हो। इसके अतिरिक्त हास्यका सुखात्मक सिद्धान्त

सन्तोषजनक भले ही न हो पर मकडौगल साहबके कथनानुसार वह हास्यप्रद प्रतीत नहीं होता। जब हम विदूषकके बेमेल वेष-विन्यास, बेतुकी बातों और कल्पित कष्टों पर ठहाका लगाते हैं तो अवश्य ही अतिशय आनन्द का अनुभव करते हैं, चाहे इस पर मकडौगल साहबको कितनी ही आपत्ति क्यों न हो। यहां विदूषकके प्रति सहानुभूतिका कोई सवाल ही नहीं उठता; कौन कह सकता है कि उसकी असङ्गत बातों और बनावटी दुर्भाग्यों पर हँसे बिना दुःखसे हमारा कलेजा टूक-टूक हो जायगा। साथ ही साथ निस्सीम निराशा, प्रतिकारके गम्भीर चिन्तन आदि से उत्पन्न हास्यकी व्याख्या करना तो दूर रहा, उनका सिद्धान्त गुदगुदी और सहज अनुकरणसे उत्पन्न हास्यके कारणों का भी उल्लेख नहीं करता। मुसक्यान और हास्यके बीच उनके तीव्र सीमा-रेखा निर्धारित करनेका भी कोई यथेष्ट कारण प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः यों ही मुसक्यानको सुन्दर और हास्यको असुन्दर कहने का कोई भी कारण लक्षित नहीं होता। पक्का धूर्त मुसकाने के सिवा कदाचित् ही कभी हँसता है; तो क्या उसकी मुसक्यान सुन्दर है? मुस्कराहटें कुटिल होती हैं, घृणात्मक होती हैं, उपहासमूलक होती हैं, व्यंगसूचक होती हैं और भ्रामक भी होती हैं; तो क्या ये सभी सुन्दर कही जा सकती हैं। दूसरी बात मैं यह पूछता हूँ कि दिल खोल कर अट्टहास करना क्या अशोभन है? क्या हास्य मुसक्यानसे बहुधा निष्कपट नहीं होता? मकडौगल महाशयको यह समझना चाहिए कि हास्य अथवा मुसक्यान का सौन्दर्य अधिक परिमाणमें हृदयके भावों पर निर्भर रहता है, न कि बाह्य रूपों पर।

विशिष्ट शारीरिक उत्तेजना, विजयोल्लास, सहज अनुकरण, प्रहसन या हास्यप्रद दृश्य, विनोद या चुहल, व्यंग, हास्यास्पद व्यवहार, वेष-भूषा आदि, हास्यके अनेकों कारण हो सकते हैं। हास्यजनक गैस (laughing gas) से तथा पेटमें गुदगुदाने अथवा कांख और पैरके तलवेको सहलानेसे भी कितने लोग हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं। एक आदमीको तो मैंने ऐसा पाया कि गुदगुदानेके लिए किसीके दूरसे उपक्रम करने पर हँसीसे उनका दम फूलने लग जाता था। ऐसे व्यक्ति स्वयं ही नहीं हँसते वरन् साथ-साथ दूसरोंको भी हँसाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसी गुदगुदी साधारण मात्रा तक तो सुखप्रद होती है पर परिमाणकी अधिकता उसे दुःखप्रद बना देती है और हँसने वाला व्यक्ति अश्रुपूर्ण नेत्रोंके साथ बेतरह छटपटाने और हाथ-पांव पटकने लग जाता है। शारीरिक उत्तेजनाके अतिरिक्त और किसी ढङ्गसे कदाचित् ही ऐसी हँसी उत्पन्न की जा सकती है। खिलाड़ियोंको खेतमें विजय पाने पर और मुकदमेबाजोंको मुकदमा जीत जाने पर विजयोल्लाससे हँसते प्रायः सभी देखते हैं। यह हास्य भी सुखप्रद होता है। अब अनुकरणात्मक हास्य का उदाहरण लीजिये। तीन-चार महीनेका बच्चा किसीकी मंद मुसक्यान पर स्वयं मुसकरा देता है। हम लोग भी जब किसी सभा या समाजमें लोगोंको हँसते पाते हैं या अपने साथियोंको हँसते हुए देखते हैं तो स्वयं भी आप अकारण ही हँसने लग जाते हैं। यह हास्य भी सुखद ही होता है, पर विचक्षणा नामक दासी की नाईं कभी फेरमें पड़ जाने पर दुखद भी बन सकता है। नाटक, सिनेमा, सरकस आदिमें प्रहसन अथवा स्वांगको देखकर कौन नहीं हँसता; अतएव इस पर कहनेकी कुछ जरूरत नहीं है। विनोदके लिये व्युत्पन्न मतिकी आवश्यकता है जो अनुकूल अवसर पर दोअर्थी बातोंसे हास्य उत्पन्न कर सके। इसके लिए एक विशेष ढंगके स्वभावकी भी आवश्यकता है जो सबमें नहीं पाया जाता; पर हर समाजमें एक-दो विनोद-शील व्यक्ति निकल आते हैं जो अपने वाक्चातुर्य्यसे अपनी मण्डलीको मुरझाने न देकर सदैव हरा भरा बनाए रखते हैं। सचमुच ऐसा व्यक्ति समाजके लिए निआमत है। कहते हैं कि अकबरके दरबारी वीरबल बड़े ही विनोदी थे; पं० प्रताप नारायण मिश्र और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भी कम दिल्लगीबाज नहीं थे। पर हदसे ज्यादा हँसी दिल्लगी भी अच्छी नहीं होती। क्योंकि तनिक भूलसे भयङ्कर दुष्परिणाम उपस्थित हो सकता है। व्यंग दूसरोंको हँसाता है पर जिसके प्रति व्यंग किया जाता है उसके दिलमें तीरकी तरह चुभता है; अतः व्यंग मधुर नहीं वरन् कटु है। इसलिए इससे जहां तक बचा जाय उतना ही अच्छा है।

अब हास्यास्पद विषयों पर विचार कीजिए। विदूषक अपनी हास्यप्रद विचित्र वेष-भूषा, भाव-भङ्गी, दिल्लगी आदिके कारण हास्यास्पद नहीं कहा जा सकता; परन्तु यदि एक बना ठना नवयुवक, शौकसे छड़ी घुमा-घुमा कर गर्वसे इठलाता हुआ, इधर उधर ताक-झांक कर चलते समय अचानक केलेके छिलके पर जूता पड़ जानेसे धीरेसे जमीनकी धूल, गोमय आदि पर तनिक लुढ़क जाय तो वह हास्यास्पद बन जाता है, कोई भी उसे देख कर हँसे बिना नहीं रह सकता। यहां ध्यान देनेकी बात यह है कि तनिक भी सहानुभूति हँसी को काफूर कर देती है। यदि

वही नवयुवक चोट खानेसे बेहोश हो जाय या उसीके स्थान पर हमारे कोई मान्य नेता अथवा गुरुजन हों तो वही दृश्य हास्यास्पद होनेके बजाय करुण हो जायगा और हम सहानुभूति तथा अफसोस प्रकट करने लग जायंगे। ऐसे स्थलों पर हास्यका रहस्य किसी आडम्बर-पूर्ण घमण्डी व्यक्तिकी मामूली भूलोंसे उत्पन्न किंचित् कष्टोंमें भरा है क्योंकि ऐसा कष्ट दूसरों के लिए दुःखद न होकर सुखद ही होता है। यदि कोई शुद्ध पढ़नेकी डींग हांकने वाला शीघ्रतासे पढ़ते समय 'लकड़ी' के स्थानपर 'लड़की' या 'परिमाण' की जगह पर 'परिणाम' पढ़ दे तो अन्यान्य सहपाठियोंकी दृष्टिमें वह हास्यास्पद हुए बिना नहीं रह सकता; लेकिन यदि एक भोंदू लड़का वैसा पढ़ दे तो लोग उस पर तरस खायेंगे। ऐसा हास्य असली पतन पर नहीं वरन् बनावटी बड़प्पनके पतन पर निर्भर करता है। ऐसे आदमीके प्रति घृणा, सङ्कोच अथवा किञ्चित् भयका भाव रहनेसे स्नायु और मांसपेशियों पर जो प्रतिबन्ध लगा रहता है वह उसके आकस्मिक पतनसे एकाएक हट जाता है और परिणाम स्वरूप हास्यकी सृष्टि होती है। एक बार एक मजिस्ट्रेट साहब छात्रोंके बीच कुछ कहनेको उठे और जब उन्होंने नकिया नकिया कर तथा तुतला कर कहना प्रारम्भ किया तो छात्रोंने ठहाका लगा दिया और वे बिचारे सिट-पिटा कर बैठ गए। निस्सन्देह उनके स्वर भङ्गने उन्हें हास्यास्पद बना दिया, परन्तु आशाके विपरीत परिणामका अनुभव भी उसमें सन्निहित था, क्योंकि छात्रोंने स्वप्न में भी ऐसी उम्मीद नहीं की थी कि एक मजिस्ट्रेटकी बोली ऐसी हो सकती है। ऐसी विवशतायुक्त विकृति अचानक और अनजाने ही एकाध बार हास्य उत्पन्न कर सकती है, सदैव नहीं। इसी प्रकार मिथ्या भय भी किसीको हास्यास्पद बना देता है। छोटे छोटे बच्चे बहुधा अपने साथियोंको अंधेरेमें रबड़के सांपसे अथवा अचानक चिल्ला कर डरा दिया करते हैं और खिलखिला कर हंस पड़ते है। एक बार एक शरारती लड़केने एक बूढ़े गुरुजी की पीठ पर चुपकेसे अचानक दो मेंढक छोड़ दिये; वह बेचारा घबराहटके मारे जोरसे कूद कर भागा और लड़के हहाकर हंस पड़े। अतः ऐसी घटनाओं पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि भूल अथवा विकृतिसे उत्पन्न अज्ञात विपरीतता ही हास्यास्पद बनानेका कारण है।

मैं पूर्व ही कह चुका हूं कि आनन्दोद्रेक ही हास्य अथवा मुसक्यानका मुख्य कारण है; शैशवसे लेकर जीवन पर्यन्त हम सुख और आनन्दके समय ही हंसते हैं, चाहे वह हर्ष विमल हो या कलुषित। कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो प्रति-दिन दो-चार बार भी न हंसता हो। वस्तुतः अमल और निष्कपट हास्य मानव जीवनके लिये संजीवनी बूटी है। यह सांसारिक चिन्ता और संतापसे झुलसे हुए शुष्कप्राय जीवनको तत्काल ही सरस और प्रफुल्लित बना उसमें नवीन शक्ति और स्फूर्तिका संचार कर देता है। श्री ऊडवर्थ (Woodworth) महाशय कहते हैं कि हास्य हमारी पाचन शक्ति बढ़ा कर हमें पूर्ण स्वस्थ बनाता है; कदाचित् इसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध हो कर लौर्ड बेडेन पावेलने इसे बालचर-जीवनका एक प्रधान अंग मान लिया है। हम स्वभावतः कभी ऐसे मुहर्रमी सूरत वालेका चेहरा देखना पसन्द नहीं करते जो हास्यानुकूल अवसर पर भी अपने ओष्ठोंके आवरणकी ओटमें अपनी दत-पंक्तियोंको छिपाये ही रखता है। परन्तु यह संसार विचित्र है; यहां श्री बार्थोलोम्यू (St. Bartholomew) की हत्याका प्रिय संवाद सुन कर अपने जीवन कालमें केवल एक बार हंसने वाले द्वितीय फिलिप (Philip II) की तरह भी लोग मिलते हैं जो अपनी गम्भीरता और रोब-दाबकी रक्षाके लिये हास्यकी हत्या करते नहीं हिचकते। ऐसे ही लोग समाजमें मनहूस गिने जाते हैं।

स्वाभाविक मन्द हास्य मनोहर होनेके कारण शत्रुको भी मित्र बना लेता है, पर बनावटी हास्य असह्य हो जाता है। इसीसे श्री गार्डिनर (Gardiner) महाशय कहते हैं—"Smiles like poets. are born, not made. If they are made, they are not smiles, but grimaces and convict us on the spot. The most memorable smiles are those which have the quality of the unex pected. A smiles that is habitual rarely pleases, for it suggests policy. And among politicians it is notorious that a popular smile is the shortest cut to the great heart of democracy. The essence of smile is its spontaneity and lack of deliberation." अर्थात् मुसक्यान कवियों की नाईं स्वभावजन्य होती है, निर्मित नहीं। नकली मुसक्यान मुसक्यान नहीं वरन् मुखकी विकृति मात्र है जो तत्काल ही हमें दोषी बना देती है। अप्रत्याशित मुसक्यान सबसे अधिक स्मरणीय है। अभ्यस्त मुसकराहट कदाचित् ही कभी आनन्ददायी होती है चूंकि वह नीतिकी ओर संकेत करती है और नीतज्ञोंके बीच यह विख्यात है कि प्रिय मुसक्यान प्रजातन्त्रके महान् हृदय तक पहुंचनेका लघुतम मार्ग है। स्वाभाविकता

और विचाराभाव ही मुसक्यानका सार है । हमारे यहां भी आमतौरसे यह बात प्रसिद्ध है कि सदैव हंस-हंस कर बोलने वाला विश्वसनीय नहीं है ।

मनुष्य विचारशील प्राणी होनेके कारण अपने भावोंको छिपानेके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है और हास्य उन्हें गुप्त रखनेको चोगेका काम देता है । इसीसे कुछ हास्य और मुसक्यानोंकी तहमें हम असीम दुःख, निराशा, प्रतिहिंसा, घृणापूर्ण-क्रोध, उपहास, उपेक्षा, वासना, चापलूसी आदिको अन्तर्हित पाते हैं । श्री प्रेमचन्दजी 'राजा हरदौल' की कहानीमें एक दुःखपूर्ण हास्यका उल्लेख करते हैं । अपने पति जुझारसिंहको दक्षिण जानेके लिये बिदा करते समय जब रानी रोने लगी तब उन्होंने कहा—"प्यारी, बुंदेलोंकी स्त्रियां ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं ।" इसे सुन "रानी कलेजे पर पत्थर रख कर आंसू पी गई और हाथ जोड़ कर राजाकी ओर मुस्कराती हुई देखने लगी । पर क्या वह मुस्कराहट थी ? जिस तरह अंधेरे मैदान में मशालकी रोशनी अंधेरेको और भी अथाह कर देती है, उसी तरह रानीकी मुस्कराहट उसके मनके अथाह दु;खको और भी प्रकट कर रही थी ।" 'वज्रपात' नामक दूसरी कहानीमें वे मुहम्मद शाहकी घोर निराशामयी मुस्कराहटका जिक्र करते हैं । "अपने वजीरकी सम्मतिसे उसने प्यारे मुगल आजम हीरेको अमामेमें छिपा रक्खा था । लेकिन उसी वजीरकी गुप्त मंत्रणासे जब नादिर शाहने अन्तमें मुहम्मद शाहसे अमामेको बदलनेका प्रस्ताव कर झट उसे आगे बढ़ा दिया तो बादशाहके हाथोंके तोते उड़ गये और लाचार हो कर उसे भी अपना अमामा नादिरशाहकी ओर बढ़ाना ही पड़ा । उस समय उसके मुख पर ऐसी मुस्कराहट झलक रही थी 'जो अश्रुपातसे भी करुण और व्यथापूर्ण थी ।"

धनापहरणके लिए स्वार्थपूर्ण बनावटी मुसक्यान वेश्याओंमें पायी जाती है और वासनायुक्त मुस्कराहट गुंडों और बदचलन औरतोंके मुखड़ों पर । चापलूसीकी हंसी आप बाबू साहबोंके मुसाहिबोंकी जमायतोंमें देखें । शेक्सपीयर (Shakespeare) के ओथेलो (Othello) नामक नाटकके यागो (Yago) की तरह पक्के धूर्त और दुष्टात्मा अपनी बुरी चालोंकी सफलता की कल्पना करके भी हंसते पाए जाते हैं । इस तरह मुसक्यान और हास्य स्वभावतः मधुर और मनोहर होने पर भी अन्यान्य कुरुचिपूर्ण भावोंके मिश्रणसे विषमें बुझाए हुए तीरसे भी तेज और घातक तथा ज्वालामुखीके विस्फोटसे भी बीभत्स और भयानक हो जाता है ।

परिभ्रमण

[ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, एम. एस-सी 'विशारद'

१—परिभ्रमण क्या है ?—संसार परिवर्तनशील है । प्राणियों और पेड़-पौधोंकी उत्पत्ति- रक्षा और विनाशका सिलसिला निरन्तर चलता रहता है । नए शरीर बनते हैं, बढ़ते हैं और अपने सरीखे शरीर उत्पन्न कर फिर नष्ट हो जाते हैं । प्रत्येक शरीर अपनी तृप्ति एवं सुखके लिए दूसरे प्राणियों या उद्भिजों के शरीरको नष्ट करता है और नष्ट शरीरोंको अथवा अन्य जीवों के विनाश्य पदार्थोंको किसी न किसी रूपमें ग्रहण करता है । कहा भी है कि 'जीवो जीवस्य जीवनम्' 'बिना जीव जीवै नहीं ।' उद्भिज खनिजों और अन्य उद्भिजोंका भोजन करते हैं । प्राणीका प्रधान भोजन उद्भिज है और प्राणी मृत्युके अनन्तर खनिजों एवं गैसों के रूपमें फिर उद्भिजोंका भोजन बनता है । शरीरमें पाए जाने वाले सभी मूल पदार्थ एकसे दूसरे शरीरमें, दूसरेसे तीसरे शरीरमें परिभ्रमण किया करते हैं, चक्कर लगाते रहते हैं । इसी भांति प्रत्येक पदार्थ नित्य नूतन रूप धारण कर रहा है । असलमें विनाश किसी वस्तु का नहीं सभी द्रव्य अविनाशी हैं; केवल नाम और रूपमें परिवर्तन होता रहता है । यह प्रकृति परिवर्तनका महाचक्र निरन्तर चला करता है, इस क्रियाको 'परिभ्रमण' कहते हैं ।

२—परिभ्रमण-द्वारा परिमाणमें वृद्धि—मान लीजिये थियेटर वाले किसी युद्ध-क्षेत्रमें प्रयाण करती सेनाका दृश्य अपने दर्शकों को दिखाना चाहते हैं पर उनके पास न तो उतने सैनिक ही हैं और न उतना विस्तृत स्थान ही । भला इन इनेगिने दो दर्जन सैनिकोंसे अपार सेनाकी भीषणता का प्रदर्शन वे कैसे कर सकते हैं । ऐसी अवस्थामें स्टेज-मैनेजर 'परिभ्रमण' क्रियासे लाभ उठाता है । वह ऐसी व्यवस्था करता है कि ये दो दर्जन सैनिक नाट्यशालाके एक द्वारसे प्रवेश करके स्टेज पर आते हैं और दूसरे द्वारसे बाहर निकल जाते हैं फिर स्टेजके पीछे चक्कर काट कर पहले द्वारसे पुनः नाट्यशालामें प्रवेश कर दूसरे द्वारसे बाहर निकल जाते हैं । ये मुट्ठी भर सैनिक जब इस भांति बार-बार नाट्यशालामें आते जाते हैं तो दर्शकों को निश्चय ही मार्च करती हुई एक बड़ी भारी सेनाका आभास

होता है । सैनिकोंके परिभ्रमणके कारण दर्शकोंको सेनाके अधिक परिमाण का बोध होता है ।

३—बैङ्कके नोट भी परिभ्रमणशील हैं ।—बैङ्कके नोट भी परिभ्रमणशील हैं । बिना इस विचारके कि दो व्यक्तियों के बीच एक नोटका विनिमय कितनी बार हुआ है, अंतमें वह नोट उसी बैङ्क को वापस आता है जहां से वह पहले-पहल चला था ।

४—जल कणके विविध रूप—सृष्टिमें जलका विविध अवस्थाओंमें रूपांतरित होना भी प्रकृतिमें परिभ्रमण-क्रियाका एक अत्यन्त अनूठा उदाहरण है । बहुत सम्भव है कि मेंहके जलका एक कण उन लाखों कणोंमें से एक हो जिन्हें हम कुछ समय पहले पी चुके हैं । जल ग्रहण करनेके पश्चात् हमारे रक्तमें पहुंचता है । फिर रक्तके साथ वह हमारी धमनियों, केशिकाओं और शिराओं की दीर्घ कुण्डली में चक्कर काटता हुआ या तो वृक्कमें पहुंच कर मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाता है अथवा हमारे फुफ्फुसोंमें पहुंच प्रश्वास द्वारा वाष्पके रूपमें शरीरसे बाहर आ जाता है । प्रश्वास द्वारा निकले हुए वाष्पकणोंको हम शीतकालमें प्रातः काल नित्य देखते हैं । इस भांति इञ्जीलमें जिस प्रकार वर्षाका वर्णन है कि 'मेंह और पाला गगनसे पृथ्वी पर पतित होकर फिर वहां वापस नहीं जाते' वह जल परिभ्रमणकी एक ही अवस्था का सच्चा वर्णन है असलमें यह जल कण वाष्प बनकर बादलका रूप ग्रहण कर आकाशमें इधर उधर उड़ने लगता है; फिर द्रवीभूत होकर पुनः पृथ्वी पर जल बिन्दुके रूपमें बरस पड़ता है। तदनन्तर नदी, नालेमें बहकर समुद्रमें जा मिलता है अथवा किसी जीव या बनस्पतिके शरीर में पहुंच जाता है और पुनः मूत्र . स्वेद अथवा भाफ बनकर आकाशमें उड़ जाता है कभी वह ओस या कुहरा बन कर फिर पृथ्वी पर आ पहुंचता है तो कभी पहाड़ों पर या ठण्डे देशोंमें गिरकर बर्फका रूप धारण कर लेता है । इस भांति वह नन्हा सा जल कण भूमण्डलमें निरन्तर चोले बदल कर चक्कर काटता रहता है ।

५—रक्त परिभ्रमण—रक्त परिभ्रमण भी हमारा नित्य का जाना हुआ उदाहरण है । रक्तका एक बिन्दु अपनी यात्रा हृदयसे आरम्भ करता है, वहां से चल कर धमनियोंमें होता हुआ वह केशिकाओंमें आता है और उसके बाद शिराओंमें होता हुआ पुनः हृदयमें लौट आता है । रक्तकी यह परिभ्रमण क्रिया अबाध रूपसे होती रहती है ।

श्री विलियम हार्वेने रक्त-परिभ्रमणकी सत्ताका पहले-पहल अनुसन्धान किया था जो आधुनिक शरीर-विज्ञान, औषध-शास्त्र का आधार बना । उसने अपने विरोधियोंकी शङ्काका समाधान इस प्रकार किया था कि यदि यह वही रक्त नहीं है जो शरीर में बार बार चक्कर काट रहा है तो इस बातको स्वीकार करना निरी भूल है कि एक घण्टेमें जितना रक्त हृदयसे शरीरमें जाता है उसकी मात्रा शरीर प्रस्तुत समस्त रक्त की मात्रा से कहीं अधिक है । हार्वे साहबने केवल प्रयोगों द्वारा और चीर फाड़ करके ही इसका अनुसन्धान नहीं किया वरन् उन्होंने उसकी गणना भी की ।

६—रक्त वही है—हमारे शरीरमें प्रस्तुत समस्त रक्तकी मात्रा लगभग साढ़े तीन लीटर होती है । अधिकसे अधिक हम पांच लीटर मान लेते हैं । हृदयकी प्रत्येक धड़कनमें लगभग ६० घन सेण्टीमीटर रक्त हृदय से शरीर में प्रवेश करता है । हृदय प्रत्येक मिनटमें लगभग सत्तर बार धड़कता है । अतः एक घण्टेमें ६० × ७० × ६० अर्थात् २५२०,०० घन सेंटीमीटर या २५२० लीटर रक्त हमारे हृदयसे शरीरमें प्रवेश करता है । किन्तु, जैसा हम ऊपर बता चुके हैं, हमारे शरीरमें पांच लीटरसे अधिक रक्त किसी भी दशामें नहीं होता है । तब फिर यदि वही रक्त घूम फिर-कर हृदयको नहीं लौट आता है तो हमारे शरीरमें जितना रक्त मौजूद है उसका पांच सौ गुना रक्त हमारा हृदय एक घंटे ही में कहां से पाता है ।

७—कर्बन चक्र—जब हम कर्बन (स्वच्छ कोयला) के परिभ्रमण पर विचार करते हैं तो यहां भी हम वही क्रम पाते हैं। जो शक्कर हम अभी खा चुके हैं उसके कर्बनके एक कणका भ्रमण वृत्तांत सुनिये । कर्बनका यह कण जठराग्निकी सहायता से रसादिमें परिणत होकर हमारे रक्तमें प्रवेश करता है । रक्तके साथ साथ वह हमारे यकृत् (जिगर) में पहुंचता है जहां वह एक प्रकारके स्टार्चके रूपमें कुछ समय तक जमा रह सकता है अंतमें वह फिर शक्करका रूप धारण कर यकृत्से विदा होता है और रक्तकी धारामें पड़ हमारे मांस तथा अन्य पेशियोंमें पहुंचता है । यहां पर दहन-क्रिया द्वारा वह कारबोनिक एसिड गैसका रूप धारण कर लेता है । यह गैस रक्तमें प्रवेश करती है । रक्त द्वारा यह गैस हमारे फुस्फुसोंमें पहुंचाई जाती है जहांसे प्रश्वास द्वारा बाहर आकर गैसकी अदृश्य अणुकणिकाके रूपमें आकाश

में विचरण करती है। इस भांति कर्बनका वह परमाणु जिसने शक्करके एक ठोस कणके रूपमें अपनी यात्रा आरम्भ की थी अब गैसके अणुका अङ्ग बनकर वायुमें विहार कर रहा है। आकाशमें वह इस रूपमें कब तक सैर करेगा, इसका किसीको पता नहीं है। किन्तु हां, यह बात निश्चित है कि आखिरको एक दिन कोई हरा पौधा इसे अपनी उदर-दरीमें स्थान देगा। फिर पौधेकी हरी पत्तियोंके सजीव भाग पर प्रकाशके प्रभाव पड़नेके कारण वह हाइड्रोजन और ओषजनसे मिलकर घनीभूत हो जावेगा और पुनः स्टार्चका रूप धारण कर लेगा। तत्पश्चात् यह पौधा इस स्टार्चको शक्करमें परिणत कर देगा। इस प्रकार हमारी खाई हुई शक्कर अनेकों चोले बदल कर एक बार फिर हमें उसी स्वरूपमें प्राप्त हो जाती है जिसमें उसकी राम कहानी आरम्भ हुई थी।

८—नाइट्रोजनका परिभ्रमण चक्र—सृष्टिमें इस भांति का क्रम उस समयसे निरन्तर चला आ रहा है जबसे इस भूमण्डल पर पौधे और जीव-जन्तु साथ साथ रहने लगे। घास की प्रत्यमिन (प्रोटीन) का प्रधान तत्त्व नोषजन (नाइट्रोजन) होता है। इसका भ्रमण चक्र तो और भी दीर्घ और पेचीदा होता है। घास बकरी खाती है; बकरीका मांस मनुष्य खाता है। कुछ नाइट्रोजन मल मूत्रके रूपमें मानवीय शरीरके बाहर आता है जो भूमिमें मिलकर अमोनिया और जलका रूप धारण करता है। पौधोंकी जड़ें अमोनिया का भूमिसे शोषण कर लेती हैं और उसके नाइट्रोजन अंशसे फिर प्रोटीन बनाती हैं। अन्य पदार्थोंकी भांति नाइट्रोजनका चक्र भी निरन्तर चला करता है।

९—फास्फोरसका भ्रमण चक्र—पौधे पृथ्वीसे फास्फोरस ग्रहण करते हैं। पौधोंको पशु और मनुष्य भोजनके रूपमें खाते हैं। हमारे भोजनमें जो अनाज, तरकारी, फल और चारा काम आता है वह सब हमें खेतों ही से प्राप्त होता है। हमारी हड्डियोंके अंश प्राय: फास्फोरिक एसिडही के बने होते हैं शरीर के सड़ने व जलने पर वह फासफेटमें परिवर्तित होकर पृथ्वीमें मिल जाता है। अतः पृथ्वीसे अपनी यात्रा आरम्भ करके पौधों और जीव जन्तुकी सेवा करता हुआ वह फिर अपने पूर्व स्थानको पहुंच जाता है।

१०—भूमि, पौधों और प्राणियों में तत्त्वों का निरन्तर भ्रमण—ऊपरके विवरणसे यह बात स्पष्ट हो गई कि अखिल ब्रह्माण्डके मूल तत्त्वों (द्रव्यों) का परिभ्रमण भूमिसे पौधों, पौधोंसे जीव जन्तुओं और जीव जन्तुओंसे फिर भूमिमें अजस्र रूपसे हुआ करता है। गत पतझड़में पतित आमके पल्लव सड़ गल कर और विटपोंकी जड़ों द्वारा शोषित होकर अबकी बसंतमें नवीन पल्लव और आम्र फलोंके रूपमें अवतरित होंगे। आज हम जिस शवकी दाह क्रिया करते हैं अथवा दफनाते हैं वह किसी न किसी समय अपने विविध मौलिक उपकरणोंमें विभाजित हो जाता है। उसके अनन्तर पौधे इन समस्त उपकरणों को मां वसुन्धरासे लवणोंके रूपमें जड़ों द्वारा अथवा आकाशसे गैसोंके रूपमें पत्तियों द्वारा शोषण करते हैं। ये पौधे भोज्य पदार्थके रूप में माता के शरीरमें घुल पचकर भावी सन्तानके शरीर निर्माणमें पुनः भाग लेते हैं। किसीने कहा है कि—

'छूटै प्रान, मिलै तनु माटी, द्रुम लागै तिहि ठाम।
सुनि अब सूर, फूल फल साखा, लेत उठै हरिनाम॥'

११—परिमित सामग्री से सृष्टिका सारा खेल—सृष्टिमें जो क्रिया एक बार होती है वही क्रिया अनन्त काल तक सतत रूपसे घटती रहती है, अबाध और अभंग रूपसे जारी रहती है। सृष्टिके चतुर सिरजनहारने यदि परिभ्रमण क्रियासे लाभ न उठाया होता तो उसका यह चर्खा ही रुक गया होता। क्योंकि संसारमें जितना द्रव्य (मसाला) है वह घटता बढ़ता नहीं। उतने ही मसालेसे सृष्टिकर्ता करोड़ों वर्षोंसे बड़ी खूबी के साथ उसका सञ्चालन कर रहा है—'ज्याय पालि मारत केहि भांती, धन्य अखिल रखवाल।' उसे नित्य अनगणित प्राणियों और पौधोंको बनानेके लिये सामग्री कहांसे प्राप्त होती।

१२—पाँच तत्त्वोंसे विश्व रचना—कवियोंकी भाषामें यही भाव—'Dust to dust and ashes to ashes' 'खाकका पुतला है यह फिर खाकमें मिल जायगा।' 'जो माटी सों बनों फेरि वामै मिलि जैहै।' 'अनिल, अनल, जल, गगन रसा है, इन पांचोंमें विश्व बसा है', आदि शब्दोंमें व्यक्त किया गया है। यदि आधुनिक विज्ञानकी भाषामें इन मन्तव्योंका उल्था किया जाय तो वह पृथ्वी, जड़ और चेतन—इन तीनों पदार्थोंके अति घनिष्ट सम्पर्कके महत्त्वपूर्ण 'सत्य' को दृढ़ करेगा।

मैला दूर करने का प्रबन्ध

[लेखक श्री त्रिलोकीनाथ बी. एस-सी.]

सभ्य देशोंकी आवश्यकता, वैज्ञानिक रीतिसे प्रबन्ध, शहरको दुर्गन्ध रहित करके स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद करना, खादके लिये भी उपयोगी है।

जैसे जैसे शहरों की जन संख्या में वृद्धि होती जाती है वैसे वैसे ही शहरों के मैलेकी समस्या भी बढ़ती जाती है। स्वच्छता सभ्यताका मुख्य अंग है। इसलिये शहरोंको साफ सुथरा रखनेके लिये भी वैज्ञानिकों ने तरकीब खोजी है। वर्तमान सफाईके तरीकोंसे पहले शहरके लोग मैलेको किसी दीवारके सहारे इकट्ठा करते थे और जब वह काफी तादादमें इकट्ठा हो जाता था तो उसे अच्छे दामोंमें बेच देते थे। इस प्रकार वह मैला सड़ कर बहुत सी बिमारियां फैलाता था। कमसे-कम मक्खियोंके अंडा देनेके लिये तो अच्छा स्थान था ही। जब पहले पहल मैलेको इस प्रकार जमा न करनेके लिये कानून बनाया गया तो लोगोंने उसका खूब विरोध किया था।

अब बड़े बड़े शहरोंमें यह मैला बहुत मोटे नलों द्वारा सफाई करनेके स्थान पर या अन्य स्थान पर जहां इसे डाला जा सके लेजाया जाता है। साफ करनेके पश्चात् जो इससे पानी प्राप्त होता है वह खेती बाड़ीके काममें भी लाया जा सकता है।

मैलेको इस प्रकार ले जानेमें इससे बिल्कुल भी दुर्गंध नहीं फैलती। जिन स्थानोंकी जन संख्या कम है और जमीन आसानीसे मिल सकती है वहां मैलेको काममें लानेके लिये, वैज्ञानिक विधि पर फार्म बनाये गये हैं।

आजकल भी फैक्टरियों और शहरोंके मलको नदियोंमें बहाया जाता है किन्तु नदियोंमें डालनेसे पहले उस मलकी परीक्षा कर ली जाती है। जो मल नदीमें गिर कर गंदगी पैदा न करे वही मल नदियोंमें डाला जाता है। इससे पहले शहर और फैक्टरियोंसे मैला सीधा नदियोंमें चला जाता था। इससे सारी नदीका पानी तो खराब हो ही जाता था उसके साथ साथ नदीके किनारों पर यह मैला जम कर बहुत दुर्गंध फैलाता था अब पानीमें तैरते हुए मलको नदियोंमें डालनेकी सख्त मनाई होगई है। जो पानी भी नदियोंमें डाला जाता है उसमें ·००३ प्रतिशतसे अधिक ठोस तैरते हुए मलके टुकड़े नहीं होने चाहियें। इसके लिये नलके मैलेकी ऑक्सीजनकी सहायतासे परीक्षा की जाती है। मैलेको पांच दिनमें दो भाग प्रति १००,००० घुली हुई ऑक्सीजनसे अधिक नहीं सोखना चाहिये। मैला जितनी अधिक ऑक्सीजन सोखता है उतनी ही अधिक उसमें गंदगी ज्यादा है, क्योंकि ये गन्दगीके कारण ऑक्सीजनको सोख कर स्वयं ओषजनीन (Oxidised) हो जाते हैं।

इस प्रयोगको करनेके लिये नलके मैलेका थोड़ा सा भाग एक बोतलमें भर लिया जाता है। इसमें नलका पानी मिला दिया जाता है और बोतलको एक नियत तापक्रमके स्थानमें रख दिया जाता है, यह एक नियत समय तक इस स्थान पर रखा रहता है; इसके पश्चात् घुली हुई ऑक्सीजनकी परीक्षा की जाती है।

मैला दूर करनेके साथ साथ कम खर्चकी कोशिश भी—मैला पूर्ण रूपसे साफ तथा दुर्गंध रहित तो किया जा सकता है किन्तु ऐसा करनेमें व्यय बहुत अधिक होता है। इसलिये मैलेको इतना साफ कर लिया जाता है कि जिससे वह हानिकारक भी न हो और साथ ही साथ ऐसा करनेमें बहुत व्यय भी न हो।

इसके अतिरिक्त और भी कई तरीके हैं जिनकी सहायतासे नलोंके मलकी परीक्षा की जाती है। एक प्रयोगके आधार पर मैलेमें प्रति भाग १०००, ००० से अधिक एलब्युमिजॉइड अमोनिया (Albuminoid ammonia) नहीं होनी चाहिए किन्तु इन परीक्षाओंमें एक कमी है, ये परीक्षायें यह नहीं बता सकतीं कि ऐसे मैलेके कणों और पानीके मिलनेपर क्या प्रभाव उत्पन्न होगा। यह सम्भव हो सकता है कि मैला परीक्षासे तो नदीमें छोड़ने लायक सिद्ध हो जाय किन्तु नदीमें छोड़ने के पश्चात् वह सड़ने लगे और दुर्गन्ध फैले। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मैला यदि नदीमें छोड़ दिया जाय तो उससे गंदगी न फैले किन्तु परीक्षामें यह ठीक ठीक नहीं उतरता।

कठिनाइयाँ—जैसा ऊपर बताया गया है कि मैलेको

दुर्गन्ध रहित करनेके साथ साथ व्यय पर ध्यान देना पड़ता है। जो मैला अधिक गन्दा होता है उसमें उतना ही अधिक वे घुला भाग रहता है। इसको साफ तथा दुर्गन्ध रहित बनानेके लिये बहुत कीमती सफाईके कारखानेकी आवश्यकता पड़ेगी।

दूसरी कठिनाई यह है कि सदा ही तो मैलेकी तादाद एक सी नहीं रहती। कभी मैलेके साथ पानी अधिक आता है और कभी कम। जब शहरके किसी भागमें आबादी बढ़ती है तो मैले और पानीकी तादाद भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त घरकी नालियोंसे मैलेके अतिरिक्त मूत्र, कागज, बाल, साबुनका पानी इत्यादि भी इसमें मिल जाते हैं।

इस मैलेसे छुटकारा पानेके कई तरीके हैं। जो शहर समुद्र के किनारे हैं वहां मैलेको समुद्रमें डाल दिया जाता है। दूसरा तरीका इस मैलेको पहले निथरने वाले तालाबों (Settling tank) में भरा जाता है। रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे मैलेका बहुत सा भाग इनमें बैठ जाता है, जो बचता है वह छान लिया जाता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीमें सोखनेकी विधि भी काममें लाई जाती है। मैलेको पृथ्वीमें सोखनेके लिये छोड़ दिया जाता है। कीटाणुमय नलीका भी उपयोग किया जाता है।

समुद्रमें मैला डालना—किन्तु इन तरीकोंमें सबसे खराब तरीका मैलेको समुद्रमें छोड़नेका है। क्योंकि जो मैला समुद्रमें डाला जाता है वह लहरों और ज्वार भाटा द्वारा लौट कर किनारे पर आ जाता है। यह मैला किनारेकी चट्टानोंसे चिपक जाता है और सड़ कर बहुत गंदगी फैलाता है। प्रायः ज्वारभाटा की भी आवश्यकता नहीं पड़ती केवल हवा ही इसको किनारे पर लगा देती है इसलिये इस तरीकेको काममें लाते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि नल समुद्रमें उतनी दूरी तक ले जाया जाय कि जो लौटनेकी संभावना न रहे। इसके अतिरिक्त इस प्रकार इन्तजाम करना चाहिये कि मैला केवल भाटा (उतरते समुद्रको कहते हैं) के समय ही समुद्रमें छोड़ा जाय। जब ज्वार (समुद्रके चढ़नेको कहते हैं) का समय हो तो एक अपने आप काम करने वाले कपाट (Valve) की सहायतासे नलका मुंह स्वयं बन्द हो जाय और मैला निकलना बन्द हो जाय। नल बहुत मजबूत ढले हुए लोहेके होने चाहिएं नहीं तो लहरोंके कारण ढीले पड़ जायेंगे और बीचमें से ही मैला निकलना आरम्भ हो जायगा। यदि जमीन कड़ी होनेके स्थान पर दलदली हो तो नलोंको मजबूत खम्बोंकी सहायतासे अपने स्थान पर रखना चाहिये।

स्वयं साफ होना—जब मैलेको समुद्रमें छोड़ा जाता है तो इस तरीकेको 'जल मिश्रण' (Dilution) करना कहते हैं। इस प्रकार मल पानीमें घुल कर साफ हो जाता है। किन्तु इसके साथ साथ एक और बहुत मुख्य क्रिया होती है। यह मैलेका ओषजनीकरण हो जाता है। पानीमें ऑक्सीजन घुली रहती है, जब मैलेके कण इस घुली हुई ऑक्सीजनसे मिलते हैं तो ओषजनीन हो जाते हैं। ओषजनीन हो जानेके पश्चात् दुर्गंधयुक्त कण दुर्गंध रहित कणोंमें बदल जाते हैं। इसी प्रकार नदियोंका पानी स्वयं साफ होता रहता है और गन्दा नहीं होता। नदीके पानीमें १ भाग प्रति १००,००० के ऑक्सीजन घुली रहती है ऑक्सीजनकी घुलनशीलता तापक्रम पर निर्भर रहती है, ठंडे पानीमें यह अधिक मात्रामें घुल सकती है। इसके अतिरिक्त रुके हुए पानीसे चलते रहने वाले पानीमें ऑक्सीजन अधिक घुली रहती है। जिस नदीका पानी बहुत तेज बहे तथा उसमें बहुत सी भवरें पड़ें उतनी उस नदीकी सतह वायुके संसर्गमें अधिक आयेगी और उतनी ही अधिक ऑक्सीजन पानीमें घुल सकेगी। यही कारण है कि तेज बहने वाली नदियोंका जल बहुत स्वच्छ होता है।

जीवाणुओंका कार्य—दुर्गंधको दूर करनेका काम अधिकतर जीवाणु ही करते हैं। मैला बड़े बड़े तालाबोंमें भर दिया जाता है। इसके बाद कीटाणु उसको दुर्गंध रहित कर देते हैं।

ये कीटाणु दो प्रकारके होते हैं; (अ) पराश्रयी (Parasite) और (आ) कुणपभोजी (Sacrophytic)। पराश्रयी जीवाणु अन्य जीवित जीवाणुओं पर निर्भर रहते हैं। किन्तु कुणपभोजी जीवाणु मैलेमें मिले जीवन रहित भाग पर निर्भर रहते हैं। ये कुणपभोजी जीवाणु भी दो प्रकारके होते हैं इनमें से एकको जीवित रहनेके लिये वायुकी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु दूसरे बिना वायुके भी जीवित रह सकते हैं। तापक्रमके बढ़ानेसे इनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। यदि तापक्रमके साथ साथ सीड़ भी हो तो इनकी संख्यामें और भी अधिक वृद्धि हो जाती है।

छलनीकी आवश्यकता—मैलेको अच्छी तरह साफ करनेके लिये पहले उसको छानना चाहिए जिससे मोटा ठोस पदार्थ अलग हो जाय। यह छलनी मोटे मोटे सलाखोंसे बनाई

जाती है। सलाखोंको इस प्रकार सीधे और आड़े रक्खा जाता है कि जिससे उनके बीचके छेद ½ से ¾ इञ्चके चौकोर हों। यह जाली बिल्कुल सीधी नहीं रक्खी जाती किन्तु मैलेकी गति की दिशाकी ओरको झुकी रहती है। इस प्रकार रखनेसे यह आसानीसे साफ भी की जा सकती है।

यह जाली प्राय: हाथसे या मशीनकी सहायतासे साफ की जा सकती है बहुत छोटे कसबोंको छोड़ कर प्राय: बड़े शहरोंमें इसे मशीनकी सहायतासे ही साफ करते हैं। जो छानस होता है वह जला कर दूर किया जा सकता है या उसे खादके लिये बेचा जा सकता है किन्तु खादकी तरह बेचनेमें फिर गन्दगी फैलनेका डर रहेगा। जो तरल पदार्थ इस जालीमें होकर निकल जाता है उसमें भी बहुतसा तैरता हुआ ठोस पदार्थ रहता है इस पानीको फिर जालीदार हौजमें ले जाया जाता है। यहां पर ठोस पदार्थ बैठ जाता है और साफ पानी ऊपरसे निथरता रहता है; इन हौजोंका तल भी जालीके समान मैले की गतिकी दिशामें ढलुआ होता है।

इन जालीदार हौजोंसे मैलेका पानी जिसमें अब भी बहुत छोटे छोटे कण रह जाते हैं, जमने या निथरने वाले हौजोंमें जाता है। ये निथरने वाले हौज दो प्रकारके होते हैं। (१) जिनमें मैला लगातार चलता रहता है, (२) जिनमें मैला आ कर कुछ समयके लिये रुक जाता है। पहलेमें मैला लगातार चलता रहता है और ये मैलेके कण हौजकी तलीमें जमते जाते हैं किन्तु (२) में कई तालाबोंमें मैला भर दिया जाता है। या तीन घंटे पश्चात् इन परसे जल निथार लिया जाता है और ठोस कण तलीमें जमे ही रह जाते हैं। इसी प्रकार फिर और मैलेके पानीको भरा जाता है, दो तीन घंटे बाद फिर उसे निथार लेते हैं।

नीचे जमे हुए मैलेको जीवाणु उत्पन्न होनेसे पहले ही साफ कर देते हैं। यदि यह जमा हुआ भाग पहले ही सड़ने लगे तो इसमेंसे गैसके बुलबुले उठेंगे जिसके कारण मैलेके तैरते हुए कण तलीमें नहीं जमेंगे। ये बुलबुले एक प्रकारसे पानीको बिलोनेका काम करते रहेंगे।

लगातार मैला बहने वाले हौज दूसरी प्रकारके हौजोंसे अच्छे रहते हैं। इस प्रकारके हौजोंके बनवानेमें खर्चा भी कम लगता है और मैला आने वाले और निकलने वाले नलोंका मुख भी प्राय: एक ही धरातल पर होता है। इसके कारण हौजों की तली अधिक ढलुंवा बनानेकी आवश्यकता नहीं होती लगातार बहने वाले हौजोंमें झागोंके लिये तख्ता लगाना चाहिए इससे सतह पर एक तो झाग नहीं आयेगी और भंवर भी अधिक नहीं पड़ेंगे।

रासायनिक अवक्षेपण—ऊपर वर्णित जालीदार और जमने वाले हौजोंके पश्चात् यह मल अब अपनी अन्तिम अवस्था पर पहुंचता है। यहां पर एक विधिके अनुसार रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे इसमें तैरने वाले कणोंको बैठा देते हैं। किन्तु यह तरीका अब अधिक उपयोगमें नहीं लाया जाता। इस अवस्था पर पहुंचने पर भी द्रवमें दो प्रकारकी गन्दगीके कण स्थित रहते हैं (१) जो तलीमें बैठने वाले होते हैं (२) जो नहीं बैठने वाले। न बैठने वाले कणोंके लिये रासायनिक पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है जिससे वे बैठ सकें। इन रासायनिक पदार्थोंके कारण हौजमें से तो अधिक दुर्गंध नहीं निकलती किन्तु हौजकी तलीमें जो मैला जम जाता है वह बहुत अधिक होता है, और इस मैलेको निकालनेमें काफी दुर्गंध फैलती है। मैलेमें जितनी गन्दगी होती है उसीके अनुसार रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं।

रासायनिक पदार्थ या तो हौजमें अलगसे डाल दिये जाते हैं या मैला लाने वाले नलके साथ साथ ही हौजमें डाले जाते हैं इनमेंसे कुछ रासायनिक पदार्थोंमें चूना है, चूनेको पानीमें घोल कर दूध सा बना कर मिलाते हैं। अल्यूमीनोफैरिक (Alumino ferric, यह पदार्थ गंधकके तेजाबके बौक्साइट Bauxite पर क्रिया करने से बनता है), फैरोजोन (ferrozone), या फैरिक (Ferric) फैरस (Ferrous) सल्फेट (Sulphates) या तो सब मिला कर काममें लाये जाते हैं या अलग अलग भी काममें लाए जाते हैं।

जब चूनेको मिलाना होता है तो एक विशेष प्रकारकी मिलानेकी मशीनकी सहायतासे इसको नलके मैलेमें मिला देते हैं। एल्यूमिनो फैरिककी सिल्लियोंको आने वाले मैलेके सामने रख दिया जाता है। मलका पानी इनको छूता हुआ इनके आस पाससे निकलता रहता है। और ये इस पानीमें लगातार घूमती रहती हैं। एक तो रासायनिक पदार्थोंके कारण सारे फैंटे हुए कण बैठ जाते हैं इसलिये जमे हुए मलका परिमाण बढ़ जाता है फिर रासायनिक पदार्थ स्वयं भी तलीमें बैठ जाता है। जब रासायनिक पदार्थोंमें चूनेका उपयोग किया जाता है

तो जमा हुआ मल बहुत अधिक दुर्गंधयुक्त होता है।

इसके पश्चात् मैलेका रूप—रासायनिक विधिसे फंटे हुए भागको बैठानेसे यह भाग तो मैलेमें अधिक नहीं रहता किन्तु घुली हुई वस्तुओंमें और बढ़ोतरी हो जाती है क्योंकि रासायनिक पदार्थ भी स्वयं घुल जाता है। अब जो द्रव मैला जमने वाले हौजसे बाहर जाता है उसमें बहुतही छोटे छोटे मैलेके कण रहते हैं। इनसे जाली पर जमकर बंद होनेका डर नहीं रहता।

यद्यपि इस रीतिको रासायनिक रीति कहते हैं किन्तु वास्तव में यह कृत्रिम रीति है। रासायनिक पदार्थ एक पर्दा सा बना लेता है और नीचे बैठते समय अपने साथ फंटे हुए मैलेको भी ले बैठता है। इसके साथ जो मैला रहता है वह खादके काममें नहीं आ सकता क्योंकि इसमें एक तो पानीकी बहुत मात्रा रहती है फिर जो पदार्थ रहते हैं वे भी उपजके लिये लाभदायक नहीं होते।

सैपटिक टैंक—इस रासायनिक विधिके स्थान पर आज कल तो सैपटिक टैङ्क (हौज) अधिक काममें लाए जाते हैं। इस रीतिसे आखीरमें बचा मैलेका पानी बहुत साफ रहता है। इस रीतिमें मैला हौजमें बहुत धीरे धीरे चलता रहता है। और इसी बीचमें उसपर जीवाणु कार्य करते रहते हैं। इसके कारण विभाजन होता है तथा साथ ही साथ मैलेके पानीकी मात्रा भी कम हो जाती है। नीचे जमा हुआ मैला कभी कभी खोलकर निकाला जा सकता है।

ट्रैविसका हाइड्रोलाइटिक टैंक—ट्रैविसका हाइड्रोलाइटिक टैंक आजकल अधिक काममें लाया जाता है। इसका सिद्धान्त इस बात पर है कि नलके मैलेमें केवल तैरता हुआ मल ही नहीं होता किन्तु कलोद पदार्थ भी होते हैं (कलोद जैलीके समान पदार्थ होते हैं। ये न तो पानीमें पूर्ण रूपसे घुलते हैं और न फंटी हुई वस्तुओंके समान तैरते ही रहते हैं किन्तु दोनों के मध्य की स्थितिमें रहते हैं। फंटी हुई वस्तुयें छाननेके कागजमें छान कर दूर की जा सकती हैं किन्तु कलोद प्रायः दूर नहीं किये जा सकते।) इसलिये ट्रैविसने इन कालोदिक पदार्थोंको जमानेका भी अच्छा प्रबन्ध किया है। उसकी रीतिसे मैला साफ करनेके लिये तीन हौजों की आवश्यकता होती है। एक जिसमें तैरता हुआ पदार्थ बैठाया जा सके। दूसरा जिसमें तैरता हुआ ठोस पदार्थ अवकरित (reduced) कर दिया जाय अथवा द्रव रूपमें परिवर्तित कर दिया जाय। तीसरा जिसमें ऐसी तह रहती है जो कलोद पदार्थको खींचकर इकट्ठा कर सके।

उस हौजकी तली जिसमें मलका ठोस भाग बैठनेके लिये मलको रख छोड़ा जाता है अङ्गरेजी अक्षर V के आकारकी होती है। इसमें दो छेद होते हैं जिनमें होकर बैठा हुआ ठोस भाग उस हौजमें जाता है जहां यह द्रवित किया जाता है। इस टङ्कीके भर जाने पर जो तरल भाग बाहर गिरता है वह तीन दीवारों परसे होता हुआ जाता है। इसलिये कोई ठोस भाग अंतिम टङ्की तक नहीं पहुंच पाता। अंतिम टङ्कीमें ऐसी सतहें रहती हैं जो कलोद पदार्थोंको आकर्षित कर लेती हैं और जिनमें ऐसे पदार्थ चिपक जाते हैं।

सैपटिक टैंक

आज कल घरोंमें सारे शहरके लिये सैपटिक टैंक काममें लाये जाते हैं।

क—साफ हवा आनेका मार्ग। ख—मैला बैठाने वाला हौज, ग—बैठा हुआ मैला यहाँ इकट्ठा होता है, घ—कंकड़ पत्थरकी सहायतासे छानने वाला हौज।

डॉर्टमुंड (Dort mund) टंकियोंका भी बहुत उप-

योग होता है। ये टंकियां छोटी होती हैं किन्तु गहरी होती हैं। इनकी पेंदीमें बैठी हुई तलछट आसानीसे निकाली जा सकती है। ऐसा समय समय पर किया जाता है और तलछट निकालते समय गंदे पानीके बहावको रोकनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

गंदापानी बीचके पाइपसे आता है और टङ्कीकी पेंदीके पास पहुंचता है। यहां उसका कलोद भाग जम जाता है और इस प्रकार जमा हुआ भाग पेंदीके पास रहता है। न जमने वाला प्रायः स्वच्छ तरल भाग ऊपर उठकर टंकियोंकी ऊपरी सतहसे होता हुआ बाहर निकल जाता है।

अन्तिम शुद्धिकरण—उपरोक्त किसी भी मेलकी टङ्कीसे मलका ठोस पदार्थ अलग हो जाता है और सैपटिक टैङ्ककी क्रियासे ठोस भाग सड़ गलकर पानी सा हो जाता है। अन्तमें जो गंदा पानी रह जाता है वह ऐसी दशामें रहता है कि ऑक्सीजन शीघ्र ग्रहण कर सकता है। इस अंतिम शुद्धि करणके लिये कई तरीकोंका इस्तेमाल किया जाता है। यहां पर हम केवल एक दो का ही वर्णन कर सकेंगे।

पहला तरीका सिंचाई का है। इस तरीके में टंकियों से निकला पानी सिंचाईके काममें इस्तेमाल किया जाता है। गंदे पानीको ढालू जमीन पर छोड़ दिया जाता है। पानी जमीनमें घुस जाता है। और जो कुछ थोड़ा बहुत ठोस पदार्थ रहता है वह जमीनकी ऊपरी सतह पर रह जाता है।

सतहके ऊपर बचा हुआ ठोस पदार्थ शीघ्र सड़ जाता है और हवाके ऑक्सीजन को सोखकर शुद्ध हो जाता है। भूमिमें जब कोई फसल या पौधे बोये जाते हैं तो सड़ा हुआ मल खादका काम करता है यदि जमीनमें कोई चीज बोई न जायगी तो कुछ दिनोंमें जमीन मलसे भर जाती है और तब अधिक मल ग्रहण नहीं कर सकती।

एक दूसरी रीति यह है कि गंदे पानीको जमीन पर इतना डाल दिया जाता है कि तालाब सा बन जाता है मिट्टीसे छन कर स्वच्छ जल नीचे चला जाता है जहां नालियां लगी रहती हैं। ये नालियां दूर तक लगी रहती हैं और इस प्रकार जल दूर निकल जाता है।

कभी कभी टंकियोंका निकला गंदा पानी छानने वाली टंकियोंमें डाल कर छान दिया जाता है। इन टंकियोंमें कंकड़ पत्थर रहता है। अच्छा तो यह होता है कि गंदापानी तीन बार छाना जाय अन्तमें छाननेसे प्राप्त जल किसी नदीमें बहाया जा सकता है या इस जलको खेतमें सींचने के काममें लाया जा सकता है।

गंदे पानीको हवाके स्पर्शमें लाकर भी स्वच्छ किया जा सकता है किन्तु इसमें इञ्जनोंकी आवश्यकता होती है। इस प्रणालीमें टंकियोंसे निकले गंदे पानीमें पंप द्वारा वायु घुसाया जाता है। वायु असंख्य बुलबुलोंके रूपमें ऊपर उठता है। इस प्रकार गंदे पानीमें सर्वत्र वायु पहुंचता है। वायुका ऑक्सीजन गंदगीको जला देता है इसलिये पानी स्वच्छ हो जाता है और उसकी गंदगी दूसरे रासायनिक पदार्थोंमें परिवर्तित होकर नीचे बैठ जाती है। इस रीतिसे गंदा पानी कुछ घण्टोंमें ही स्वच्छ किया जा सकता है। विशेषता यह भी है कि इस रीतिमें दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं हो पाती और मक्खियां भी आकर्षित नहीं होतीं। इसलिये इस रीतिसे मल शुद्धिकरणकी क्रिया निवास स्थानोंके पास भी करनेमें किसीको बुरा नहीं लगता। अंतमें जो पानी निकलता है उसमें सड़ने वाली कोई चीज रह ही नहीं जाती और इसलिये उसमें किसी प्रकारकी बदबू पीछे नहीं निकल सकती। इस क्रियामें जो तलछट बैठती है वह अच्छी खाद होती है और इसलिये वह आसानीसे बेची जा सकती है।

कैसोवरी

[लेखक—श्री अशोक कुमार]

उन बड़ी-बड़ी चिड़ियोंमें से जो अधिक नहीं उड़ सकतीं एक कैसोवरी भी है। यह ऑस्ट्रेलिया, न्युगिनी, सीरम तथा आसपासके टापुओं में मिलती है। एमु (एक दूसरी ऐसी ही बड़ी ऑस्ट्रेलिया की चिड़िया) के समान इसके भी दोहरे पर होते हैं। किन्तु इस चिड़ियाकी विशेषता यह है कि इसके मुखपर एक छत्र होता है। इन चिड़ियोंके सिर पर सीधा, खाल-चढ़ा बड़ासा भाग होता है। यह खोपड़ी की हड्डियोंका ही विकसित भाग होता है और नर मादा दोनोंके सिरोंपर होता है। मुंह और गलेकी खाल पर बाल नहीं होते। यहांकी खाल बड़ी चमकदार कई रङ्गोंकी होती है। गर्दनके निचले भागमें थोड़ी खाल भी लटकी रहती है।

एक गर्दनकी खाल लटकी कैसोवरीके वर्णनसे आप इस तरहकी चिड़ियोंके विषय में बहुत कुछ जान सकेंगे। गर्दनके पिछले पीठकी ओर के भागका रङ्ग नारङ्गी और हलका गुलाबी मिला हुआ होता है। इसके सिरका सबसे ऊपरी भाग गहरा नीला होता है। लटकी हुई खाल मैले गुलाबी रङ्गकी होती है और उस पर थोड़ीसी नीले रङ्गकी झलक भी रहती है।

कैसोवरीके पर बहुत छोटे होते हैं। किन्तु ये एमुके समान न होकर बीच में से थोड़े मुड़े रहते हैं। इसके पर और चिड़ियोंके समान नहीं होते, वे साहीके समान काले-काले कांटे जैसे होते हैं। ये परोंके समान न लगकर मोटे-मोटे चमकदार रुयेंके समान लगते हैं।

बड़ी जाति की अन्य चिड़ियां या तो मैदानोंमें रहती हैं या इसी प्रकारके अन्य खुले भागोंमें; किन्तु कैसोवरी घने जङ्गलोंमें रहती है। इन जङ्गलोंके रहने वाले इस चिड़ियाके बच्चोंको पकड़ लेते हैं और पालते हैं। ये चिड़ियां बड़ी होकर पालतू चिड़ियोंके समान (जैसे सारस) रहती हैं और अपने मालिक तथा घरसे बहुत प्रेम रखती हैं।

कैसोवरीका नर प्रेमी तथा स्त्री-वश जीव होता है। यही अण्डोंको सेहता है और जब वे अण्डोंसे निकल आते हैं तो इनकी रखवाली भी करता है। लेकिन इसका मिजाज बड़ा तेज होता है और परेशान होने पर अपनी तेज चोंचसे अच्छी तरह बदला भी ले लेता है।

कैसोवरी

कैसोवरीके सिरपर खाल-का चढ़ा बड़ा-सा भाग होता है तथा पर कांटेदार रुयें के रूपके होते हैं।

भारतके धातु उद्योगकी उन्नति

वायुयान बनानेके लिये विशेष प्रकार का इस्पात

भारतीय इस्पात-उद्योग अब कुछ विशेष प्रकारके इस्पातोंको छोड़कर भारतीय सेनाकी इस्पातकी प्राय: समस्त आवश्यकताएं पूरी कर सकता है, इन्हें पूरी करने के बाद भी उसके पास साम्राज्यके अन्य देशोंको भेजनेके लिए पर्याप्त इस्पात बच रहता है ॥

अगस्त सितम्बर १९४० में बृटेनने भारतसे १,२५,००० टन कच्चे लोहेकी मांग की थी । उस समयसे प्रति मास ५०,००० टन कच्चा लोहा भारतसे बृटनको भेजा जा रहा है ।

सेना तथा सरकारकी विस्तार योजनाके लिये केवल लोहे के ढांचों, रेलों और टीनकी चादरों का नियमित उत्पादन ही आरम्भ नहीं कर दिया गया, वरन् गोलियोंके खोल बनानेके लिये विशाल परिमाणमें विशेष प्रकारकी छड़ें भी बनाई जाने लगी हैं । विशेष प्रकारके मिश्रित इस्पातके परतोंको लपेट कर और तपा कर ऐसी चादर बनायी गई है जिस पर गोलीका असर नहीं होता । इन चादरोंको युद्ध गाड़ियोंमें लगाया जा रहा है । अंग्रेजी चादरोंको पास करनेके लिये उन पर धुआंधार गोली वर्षा करनेके जो प्रयोग होते हैं उनमें भारतीय चादरें भी पास हो गई हैं । सरकारके मतसे ये चादरें बृटेनमें बनी चादरोंके बराबर ही मजबूत हैं ।

भारतीय सेनाके शिरस्त्राण बनानेके लिये विशेष प्रकारके मिश्रत इस्पात और कवच भेदी गोलियां और छर्रे बनानेके इस्पात मशीनगनें बनानेके इस्पात, वायुयान विध्वंसिनी तोपोंके कारतूसोंके क्लिप, तोप गाड़ियों और तोप रखनेके चबूतरोंके लिये निकिल इस्पातकी चादरोंके उत्पादनमें उन्नति की जा रही है । भारतमें वायुयान बनानेके लिये क्रोम मोलिबडेनम इस्पात की झलाईके सम्बन्धमें भी सफल परीक्षण किये जा चुके हैं ।

तार और तारके रस्से

शाही भारतीय नौसेनाके लिये विशेष प्रकारका तारका रस्सा, भारत तथा निकट पूर्व स्थित सेना और शाही वायुसेना के लिये साधारण तारका रस्सा, तार और रस्सेके बल और गोला-बारूदके कारखानोंके लिये विशेष प्रकारकी तारकी कीलें बनायी जा चुकी हैं । टेलीग्राफके तार बनानेके लिये एक विशेष प्रकारका इस्पात तैयार किया जा रहा है । बिजलीके तारोंका उत्पादन बढ़ानेके विषयमें भी विचार किया जा रहा है ।

मिलोंके इस्पाती बेलन अभी तक अमेरिका और यूरोप से मंगाये जाते थे परन्तु अब भारतमें ही बनाये जा रहे हैं ।

स्वदेशी वस्तुओंसे अम्ल इस्पातका बनाया जाना औद्योगिक क्षेत्रकी एक और उल्लेखनीय बात है । तोपें ढालने, तोप गाड़ियोंके धुरे बनाने तथा इंजनोंके पहिये, टायर, धुरे आदि बनानेमें इस इस्पातका उपयोग होता है । सरकारकी युद्धकालीन आवश्यकताएं पूरी करनेके लिये यह वस्तु बड़ी महत्वपूर्ण है । एक फर्म अपने स्टील बनानेके कारखानेका विस्तार कर रही है। इससे उसके इस्पातके उत्पादनमें प्रति वर्ष २,००,००० टन की वृद्धि हो जायगी जिसमें अनुमानत: ७०,००० टन अम्ल इस्पात होगा ।

प्रति मास ५०,००० औजार

टाटाके कारखानेमें 'ए' श्रेणीकी एक नयी भट्ठी बनाई गयी है, जो संसारकी सबसे बड़ी और श्रेष्ठ भट्ठियोंमें से है । इसमें प्रति दिन १,७०० टन माल तैयार किया जा सकता है । अनुमान है कि इससे कम्पनीके कच्चे लोहेके वार्षिक उत्पादन में १२,५०,००० टनकी वृद्धि हो जायगी । अकेला यही कार-

खाना सेनाके लिये प्रतिमास विभिन्न प्रकारके ५०,००० औजार बना रहा है।

युद्ध रसदके लिये जिन अन्य वस्तुओंके आर्डर प्राप्त हुए हैं और जो विशाल परिमाण पर बनायी जा चुकी हैं उनमें ये भी हैं—बैटरियां और सेलें, बिजलीके पंखे, तेलसे चलने वाले इंजन, पक्की सड़क बनानेका सामान, हल्की स्टीलकी मोटी और पतली चादरें, इस्पातके खूंटे, पानीकी टंकियां मंच तथा झोपड़ियां बनानेका इस्पातका सामान, सैनाके लिये मालगाड़ियां टेलीफोनका सामान आदि।

पंजाबके कुछ कारखानोंने रसद विभागके आर्डर पूरे करने के लिये पीपे, बाल्टियां, तसले, मक्खन आदिके डिब्बे बनाये हैं। डाक्टरी औजार तथा अस्पतालकी मेज-कुर्सियां आदि बनाने वाले कारीगर बराबर व्यस्त हैं।

एक लाख रुपयेके चाकू

बंगालके छुरी-कांटे-चम्मचके उद्योगोंको भी युद्ध रसदके आर्डर मिले हैं। कलकत्तेकी एक फर्मको दस्तेदार चाकूके लिये १,००,००० रुपयेका आर्डर मिला है।

दिसम्बर १९४० से अलूमीनियमके एक कारखानेमें बेलन बनानेकी मशीन भी चालू हो जायगी।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी और इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी दोनोंको ही उनकी सामर्थ्य भर आर्डर दिये जा चुके हैं। इस उद्योगके इंजीनियरी विभागको विभिन्न प्रकारकी युद्ध सामग्री बनानेके लिये सरकार द्वारा विशाल आर्डर दिये गये हैं। यह युद्ध सामग्री विदेशी खरीदारों के लिये है। देशमें गोला-बारूदके उत्पादनमें विस्तार हो जाने तथा युद्धके करण औद्योगिक हलचलको स्फूर्ति मिल जानेके कारण समस्त प्रकारकी लोहे और इस्पातकी वस्तुओंकी देशमें भी मांग बढ़ गयी है। १९३७-३८ में कच्चे लोहेका जितना उत्पादन हुआ था, १९३९-४० में उससे अधिक हुआ, जिसका परिमाण १८,३८,००० टन था।

[भारतीय समाचार से]

घरेलू डाक्टर

(लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद)

मुख्य धमनी (subclavian artery = अन्नकाधोवर्तिनी धमनी) हाथको रक्त पहुँचाती है। यह पहली पसली परसे घूमकर छातीसे बाहर निकलती है। यहाँपर यदि अँगुली रक्खी जाय तो यह धमनी धड़कती हुई स्पष्ट जान पड़ेगी; इसके लिए हँसुलीके मध्य विंदुसे एक अंगुल (अँगुली की चौड़ाईभर) ऊपरकी तरफ खिसककर अँगुली रखनी चाहिये। जब यह धमनी चलकर काँखके आगे बढ़ती है तो इसे कक्षीया धमनी (axillary) कहते हैं। काँखके पास यह धमनी भुजाकी भीतरी ओर (छातीकी ओर) रहती है और त्वचाके जरा-सा ही नीचे रहती है। यहाँ से भुजाकी भीतरी ओर रह कर ही यह कोहनी तक पहुँचती है; परन्तु कोहनीके पास यह धमनी बहुत गहराईमें रहती है और इस लिए वहाँ अँगुली रखनेसे धमनीके धड़कनेका पता नहीं चलता। यहाँसे इस धमनीकी दो शाखाएं होजाती हैं। इनमें से एकतो माँसके इतने नीचे रहती है कि उसकी धड़कनका, अँगुलीसे टटोलने पर, पता नहीं चलता। दूसरी, जिसे बहिःप्रकोष्ठिका धमनी (radial artery) कहते हैं कलाईके पास त्वचासे जरा-सी ही नीचे रहती है। यहाँ अँगुली रखनेसे इसके धड़कनका स्पष्ट पता चलता है। इसी पर अँगुली रखकर वैद्य, हकीम और डाक्टर लोग नाड़ी या नब्ज (pulse) देखते हैं।

जाँघकी मुख्य धमनी ऊरुधमनी (femoral) कहलाती है। यह ऊरुसंधि (groin) के मध्यके पास जाँघमें घुसती है। वहाँ यह त्वचाके पासही रहती है और इस लिए अँगुलियोंसे इसकी धड़कन का वहाँ पता लगता है। यहाँसे घूमती हुई यह घुटनेके पीछेकी ओर (लगभग बीचमें) जा पहुँचती है। यहाँ यह दो शाखाओं में बँट जाती है और दोनों शाखाएँ गहरेमें रहती हैं। ये टाँग और पैरमें रक्त पहुँचाती हैं। इनमें से एक घुट्टी (टखने) के भीतरी उभरे गाँठ और एड़ीके मध्यमें अँगुली रखनेसे धड़कती हुई देखी जासकती है।

हृदय बहुत मजबूत पंपका काम करता है और आसपासकी धमनियोंमें रक्तका चाप लगभग दो पाउंड प्रति वर्ग इंच होता है। इसलिए धमनियाँ बहुत मजबूत रहती हैं।

अन्तमें रक्त धमनियोंसे निकलकर नन्हीं-नन्हीं नलिकाओं में घुसता है। इन नलिकाओंको कोशिका (capillaries)

कहते हैं। इन केशिकाओंकी दीवार बड़ी पतली होती है; इसीलिए रक्तसे ऑक्सिजन और खाद्य पदार्थ तन्तुओं तक पहुँच सकता है और तन्तुओंसे रद्दी माल खूनमें आसकता है। इन केशिकाओंमें से होकर रक्त शिराओं (veins) में जाता है, और इनमें चलकर रक्त फिर हृदयमें वापस आजाता है। केशिकाओंके रक्तका चाप बहुत कम हो जाता है और शिराओंमें पहुँचनेपर तो चाप और भी कम हो जाता है। इसीलिए शिराओंकी दीवारें धमनियोंकी दीवारोंसे बहुत पतली और कमज़ोर रहती हैं (चित्र देखें)।

प्रत्येक प्रधान धमनीकी बगलमें एक शिराभी रहती है, परन्तु इन शिराओंके अतिरिक्त अन्य छोटी शिराओंका एक जालभी फैला रहता है। ये शिराएँ ठीक त्वचाके नीचेही रहती हैं और इसलिए वे आँखसे दिखलाईभी पड़ती हैं।
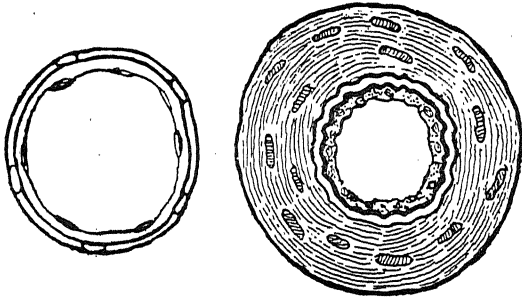
शिरा और धमनी

शिराकी दीवार पतली और कमजोर होती है, परन्तु धमनियोंकी दीवार मोटी और मजबूत होती है। बाईं ओर शिराको काटकर दिखलाया गया है, दाहिनी ओर धमनीको।

साधारण बोल-चालमें अक्सर शब्दोंका ठीक प्रयोग नहीं किया जाता। उदाहरणतः, संक्षिप्त शब्द सागरके अनुसार धमनी = शरीरके भीतरकी वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदिका संचार होता रहे, नाड़ी। शिरा = रक्तकी छोटी नाड़ी। नाड़ी = साधारणतः शरीरके भीतरकी वे नलियाँ जिनमें होकर रक्त बहता है; धमनी; हठयोगके अनुसार ज्ञानवाहिनी, शक्तिवाहिनी और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नालियाँ। नाड़ी-चलना = कलाईकी नाड़ीमें स्पंदन या गति होना।
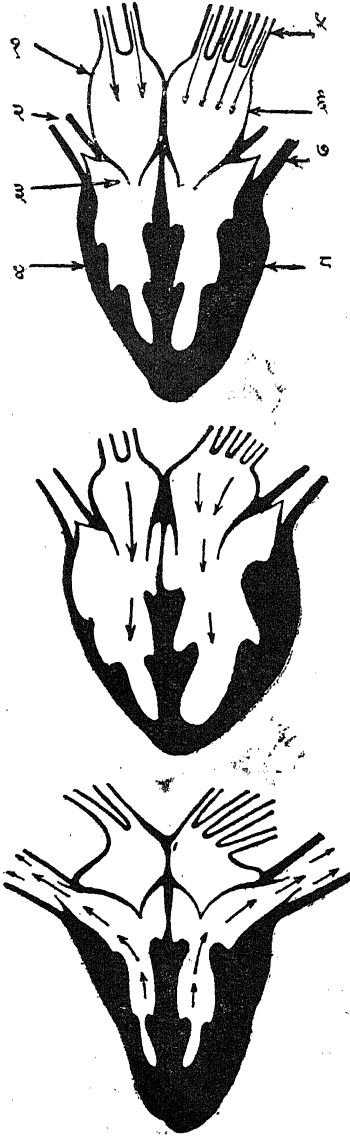
हृदय पंपका काम करता है।

यहाँके तीन चित्रोंमें हृदयको तीन क्रमानुसार समयोंपर दिखलाया गया है। ऊपर के चित्रमें १ बड़ी शिरा है, २ छोटी धमनी है। ३ कपाट (वाल्व) है, ४ दाहिना कोष्ठ है, ५ फेफड़ेसे आने वाली शिरा, ६ बाम शष्कुली, ७ बृहत् धमनी, ८ बायाँ कोष्ठ है। जब हृदय प्रसारित होता है तो इसका बायाँ कोष्ठ शिरा ५ द्वारा फेफड़ेसे शुद्ध रक्त खींचता है (मध्य वाला चित्र देखो)। जब फिर हृदय संकुचित होता है तो कपाटके बंद हो जानेके कारण यह शुद्ध रक्त बृहत् धमनीसे होकर बाहर जाता है (नीचे वाला चित्र देखो)। साथही साथ दाहिना कोष्ठ भी प्रसारित और संकुचित होता है। प्रसारित होनेपर कपाट खुल जाता है और शिराओं से आया दूषित रक्त दाहिने कोष्ठमें आजाता है (मध्य वाला चित्र देखो)। जब हृदय संकुचित होता है तो यह दूषित रक्त धमनी २ से फेफड़े में चला जाता है (नीचे वाला चित्र देखो)। और वहाँ जाकर शुद्ध होता है। सरलताके विचारसे इन चित्रोंमें सब अंग ठीक-ठीक अपने स्थानपर नहीं दिखलाये गये हैं।

नस—साधारण बोल-चालमें कोई शरीर-तन्तु या रक्त-वाहिनी नली। इस प्रकार धमनी, शिरा, नाड़ी, नस ये सभी शब्द पर्यायवाची जान पड़ते हैं, परन्तु अच्छा यही होगा कि धमनी शब्द केवल उन्हीं रक्त वाहिनियोंके लिए प्रयुक्त किया जाय जो रक्तको हृदयसे शरीरके अन्य भागोंमें पहुँचाती हैं। इसी प्रकार शिरा शब्द केवल उन्हीं रक्त-वाहिनियोंके लिए प्रयुक्त किया जाय जो रक्तको केशिकाओंसे हृदय तक वापस ले जाती हैं। नाड़ी शब्द धमनियों और शिराओंके स्पंदनके लिये प्रयुक्त किया जाय और यथासंभव नस शब्दका इस्तेमालही न किया जाय।

रक्तस्राव अपने आप रुक सकता है—जब कोई धमनी कट जाती है तो रक्तस्राव अपने आपभी बंद हो जा सकता है। इसके तीन कारण हैं—

(१) वह मांस-पेशी जो धमनीकी दीवारमें रहती है जोरसे संकुचित होती है और इस प्रकार धमनीका मुँह बंद हो जाता है, (२) रक्तमें स्वयं धमनीके बाहर निकलनेपर जम जानेकी शक्ति होती है, (३) बड़ी धमनीके कटनेपर इतना रक्त निकल पड़ता है कि रक्त-चाप कम हो जाता है और तब कटी धमनीके मुँह पर जमा हुआ रक्त रक्तधाराको आसानीसे रोक सकता है। प्राथमिक चिकित्सा करने वालों को स्मरण रखना चाहिए कि ९९ प्रतिशत आहतोंमें रक्त-स्राव आप-से-आप रुक जायगा। इसलिए अंगको खूब ज़ोर से बाँधकर रक्तको तुरन्त रोकनेकी चेष्टा करना बेकार है। आगे चलकर बतलाया जायगा कि कसकर बाँधनेसे भयंकर हानि हो जानेका क्या-क्या डर रहता है।

तीन प्रकारके रक्तस्राव—रक्त-स्राव तीन प्रकारका होता है, धमनीसे, शिरासे और केशिकाओंसे, जब धमनीसे रक्त निकलता है तो जोर से छरक-छरक कर बाहर निकलता है और रक्त चटक लाल रंगका रहता है। शिरासे निकलनेपर रक्त अटूट धारामें और शांतिसे निकलता है, और उसके रंगमें कालापन रहता है। धमनी और शिरासे जब रक्त निकलता है तो उद्गम स्थानकी जाँच करनेपर पता चलता है कि रक्त किसी एक बिंदुसे निकल रहा है, परन्तु केशिका-ओंसे रक्त निकलनेपर सारी कटी सतहसे रक्त चुचाता या रसता हुआ दिखलाई पड़ता है।

रक्तस्रावके लक्षण—जब तक आध सेर या ढाई पावसे अधिक रक्त नहीं निकल जाता तब तक उस व्यक्ति को विशेष कमजोरी नहीं जान पड़ती। इससे अधिक रक्त जानेपर मचली आती है और कमजोरी जान पड़ती है। उसे बहुत बेचैनीभी जान पड़ती है। ज्यों ज्यों अधिक रक्त जाता है त्यों-त्यों उसकी त्वचा ठंढी होती जाती है और उस पर ठंढा पसीनाभी चिपचिपा जाता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और वह हाँफनेभी लगता है। यदि नाड़ी देखी जाय तो पता चलेगा कि नाड़ी बहुत बेदम है और इतनी शीघ्र चलती है कि गिनना कठिन हो जाता है।

उपचार—जब रक्त किसी शिरासे या केशिकाओंसे निकलता हो तो कटे स्थान पर कपड़ेकी गद्दी रख कर उस पर पट्टी बाँध देना काफी होता है, या अँगूठेसे कुछ समय तक स्थानको दबाये रखनेसे काम चल जाता है। कटे स्थान को दबाने या बाँधने के पहले देख लेना चाहिए कि घावमें कोई वाह्य वस्तु या टूटी हड्डी तो नहीं है। यदि हड्डी टूटी हो या वाह्य वस्तु हो और वह तुरन्त निकाली न जा सके तो कटे स्थानसे हृदयकी ओर कुछ हटकर पट्टी बाँधनी चाहिए। यदि अग्रभुजा या घुटनेके नीचे कहीं पर टाँगमें से किसी धमनीसे रक्त निकलता हो तो भी उपरोक्त उपचार पर्याप्त होगा, क्योंकि इन स्थानोंमें धमनियोंमें भी रक्तचाप अधिक नहीं होता। परन्तु जब हृदयके पासकी कोई बड़ी धमनी कटती है, जैसे कक्षीया धमनी या बाहरी शिरोधीया धमनी, तो केवल पट्टी बाँधनेसे रक्त नहीं रुकता। अँगूठेसे कसकर दबानेसे रक्तस्राव रुक तो जायगा, परन्तु कब तक कोई अँगूठेसे दबाए रहेगा। ऐसे स्थानसे रक्तस्राव रोकनेके लिए घावके ओष्ठोंको फैलाकर देखना चाहिए कि ठीक किस स्थान से रक्त निकल रहा है। कभी-कभी तो घावको नश्तर (तेज चाकू) से बड़ा करनेपर ही रक्तस्राव का उद्गम स्थान दिखलाई पड़ता है, विशेषकर जब घाव छुरा घोंपनेसे हुआ रहता है। जब रक्तस्राव का उद्गम स्थान दिखलाई पड़ जाय तो धमनीको जर्राही चिमटी (forceps) से पकड़ कर दबाना चाहिए। ऐसा करने से जब रक्तस्राव बंद हो जाय तब कीटाणुरहित किया हुआ मजबूत तागा (हो सके तो सूतके बदले लिनेनका तागा) धमनीपर चिमटी से जरा-सा उस पार (हृदककी ओर) हटकर कसकर बाँधना

चाहिए, परन्तु इतना कसकर नहीं बाँधना चाहिए कि धमनी कट जाय। तब चिमटी हटाई जासकती है। यदि तागा ठीक तरहसे बाँधा गया होगा तो रक्तस्राव रुकाही रह जायगा। तब फालतू तागेको गाँठके पाससे काटकर निकाल देना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार तागेसे बाँधना तभी आवश्यक होता है जब इतनी बड़ी धमनी कटी हो कि न बाँधनेपर थोड़ेही समय में अधिक रक्त निकल जाने से मृत्यु हो जाने का डर हो।

रक्तस्राव
रोकनेके लिए कहाँ दबाना चाहिए। उचित स्थान वाले विंदुओंसे सूचित किया गया है।
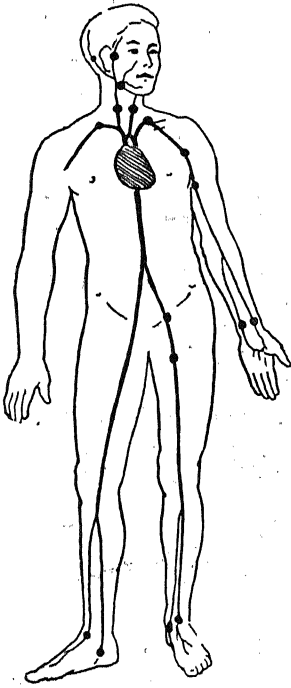
जिन्हें रक्तस्रावके उपचार का अनुभव नहीं होता उन्हें नन्हीं-सी धमनीसे रक्तके छरकने परभी डर लगता है, चाहे धमनी सींकके समान पतलीही क्यों न हो। ये लोग बड़ी धमनीके रक्तस्रावको रोक सकें ऐसी आशा करना व्यर्थ है। इसलिए अनुभवहीन व्यक्तिके लिए यही उचित होगा कि कटे स्थानसे जरा ऊपर (हृदय की ओर) हटकर कस कर पट्टी बाँध दे, और धमनी को किसी सुविधाजनक स्थानपर जोरसे दबाये (चित्र देखो)।

यदि हाथ या परमें घाव हो तो नागफाँस या टूर्निकेट (tourniquet) बाँधकर रक्तस्राव आसानीसे रोका जा सकता है। इसके लिए रूमाल या अन्य वस्त्र एक-दो बार लपेटकर बाँधनेके बाद गाँठमें छड़ी या कोई लकड़ी छोड़कर इतना पेरना चाहिए कि बंधन खूब कस उठे। रबड़ के मोटे डोरसे नागफाँस बाँधना सबसे उत्तम होता है। स्मरण रहे कि नागफाँस अधिक-से-अधिक आधे घंटे तक बँधा रहे। अधिक समय तक बाँधनेसे पीड़ाके अतिरिक्त यह डर रहता है कि रक्त-संचारके पूर्णतया रुक जानेके कारण बंधनके नीचेका अंग मर न जाय (अर्थात् उसमें गैनग्रीन (gangrene) न होजाय। यदि ऐसा हो जायगा तो फिर उस अंगको काटही डालना पड़ेगा। यदि नागफाँस का प्रयोग किया जाय तो कटे स्थान पर कस कर पट्टीभी बाँधनी चाहिए। १५ मिनटमें नागफाँस ढीला करके देखना चाहिए कि रक्तस्राव रुका या नहीं। आवश्यकता हो तो १५ मिनट तक इसे और रहने देना चाहिए। घाव परकी पट्टी अधिक समय तक बँधी रहे तो हरज न होगा। उसे बँधी रहने देनी चाहिए। आधा घंटा बीत जानेके बाद रक्तस्राव बहुत जोरका नहीं हो सकता।

यह तो सब रक्तस्रावके रोकनेका उपचार है। इसके अतिरिक्त आहत व्यक्तिका साधारण उपचारभी करना चाहिए। उसके शरीरसे बहुत-सा तरल पदार्थ निकल जाता है। इसलिये उसे ग्लूकोज या चीनी मिलाकर कुनकुना दूध, चाय या कड़वा पीनेको देना चाहिए। उसे ठंढ न लगने पाये। इसके लिए उसे आवश्यकतानुसार चादर, कंबल या रजाई ओढ़ा देनी चाहिए और गरम पानी भरी रबड़ की बोतलोंसे या अन्य रीतिसे सेंकना चाहिए। उसे जराभी हिलने-डुलने न देना चाहिए। आघात (shock) की जो चिकित्सा पहले बतलाई जा चुकी है उसे करना चाहिए। जिस चारपाई पर आहत व्यक्ति लिटाया गया हो उसका पैताना सिरहानेकी अपेक्षा तीन-चार इंच ऊँचा रक्खा जाय तो अच्छा है। जब तक रक्तस्राव बंद न हो जाय तब तक ब्रडी या अन्य उत्तजक पदार्थ नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे रक्तचाप बढ़ता है और रक्तचाप बढ़नेसे रक्तस्राव बढ़ जाता है। जब रक्तस्राव बंद हो जाय तबभी आहत अंग को हिलाना नहीं चाहिए। पट्टी खोलकर यह देखनेकी अकसर प्रबल इच्छा होती है कि रक्तस्राव रुका या नहीं, या यह इच्छा होती है कि खूनसे तर पट्टी खोलकर दूसरी बाँधी जाय, परन्तु इन दोनों इच्छाओंको रोके रहना चाहिए। पट्टी खोलनेसे हानि ही होगी। पट्टी बँधी रहने परही प्रकृति को क्षतपूर्तिका अवसर मिलेगा।

प्राथमिक चिकित्सा करने वालेको बराबर ध्यान रखना चाहिए कि सब काम स्वच्छतासे हो और घावमें यथासंभव कीटाणु न पहुँचने पावें। घावको कीटाणुरहित गाज (कपड़े) और रूईसे ढँका रखना चाहिए।

कमल और कुईं के लिये हौज़

(लेखक—श्री डाक्टर गोरखप्रसाद जी)

बागकी शोभाके लिए हौजकी आवश्यकता, कमल कुईंके साथ साथ मछलियों का पालन भी प्रत्येक मनुष्य आसानी से कर सकता है।

तालाब या हौजसे बागकी शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती है। छोटा सा हौज कई एक डिजाइनका बनाया जा सकता है। साथके चित्रोंमें तरह तरहके डिजाइन दिखाए गए हैं। इनमेंसे कोई एक पसन्द किया जा सकता है। या आप कोई नया डिजाइन अपनी रुचिके अनुसार बना सकते हैं।

हौज ईंट और सीमेंटसे भी बन सकता है और सीमेंट कङ्क-रीटसे भी तैयार किया जा सकता है। ईंटसे बनाना आसान पड़ता है। अच्छे अव्वल ईंटका इस्तेमाल करना चाहिए। पेंदी में कमसे कम दो तह ईंट जमानी चाहिएं और दीवार कमसे कम ९ इञ्च मोटी रहे। गारेके स्थान पर एक भाग सीमेंट और तीन भाग मोटे बालूका इस्तेमाल करना चाहिए। जुड़ाई इस प्रकार की जाय कि ईंटोंके बीच कहीं भी रिक्त स्थान न रहे। सब सीमेंटसे भरा रहे। हौज तैयार हो जानेके बाद उसके भीतर ऊपर बतलाई मात्रा के अनुसार सीमेंट और बालू का पलस्तर कर देना चाहिये और बिना बालू मिले सीमेंटसे पोतकर करनी से घोटाई कर देनी चाहिए।

ऊपर कही रीतिसे बने हौजमें एक अवगुण यह रहता है कि यदि यह पानीसे प्रायः लबालब भरा न रहे तो पानीकी सतहके पास चटक जाता है, इसका कारण यह है कि पानीके बाहर वाले भाग पर धूप लगनेसे तापके कारण थोड़ा बहुत प्रसरण होता है और पानीमें डूबा भाग कम तापक्रमके कारण प्रसरित नहीं होता इसलिये कहीं न कहींसे दीवार चटक जाती है। इसके लिये यह नितांत आवश्यक है कि तालाबके बनने पर इसकी सतहको बराबर पानीसे तर रखा जाय और लगभग एक सप्ताह बीतने पर हौजको पानीसे भर दिया जाय। इसके बाद इसे कभी खाली न होने दिया जाय।

सम्भव है कि बराबर पानी भरे रहने पर भी तालाब कभी कहींसे चटक जाय। इसलिये ऊपरकी रीतिसे यह अच्छा है कि पेंदी और दीवार तैयार करते समय लोहेकी छड़े बतौर री-इन-

चित्र १—हौज बनाने की विधि
सब से ऊपर के चित्र में पृथ्वी पर निशान लगाने की विधि दिखाई गई हैं; क-अ = अक, अ-अ=कक खूंटियाँ गाड़ कर रस्सी से निशान लगाने चाहियें; दूसरे चित्रमें हौज खोदना दिखाया गया है, तीसरे चित्रमें दिखाया गया है कि किस प्रकार हौजमें लोहेकी सलाखें लगाई जायं, सबसे नीचे के चित्र में तली बनानी बताई गई है।
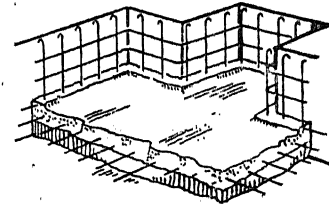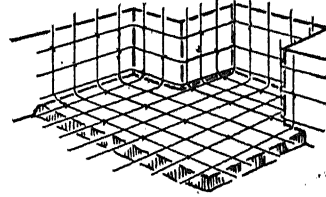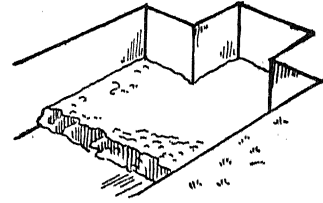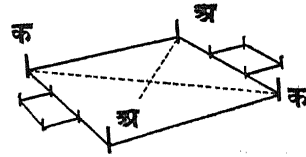
फोर्समेंट (re-in forcement) डाल दी जाए। पेंदी और दीवारके जोड़के पास छड़ोंके जोड़ न पड़ने पाय। वस्तुतः उचित

तो यही है कि इन छड़ोंमें कहीं जोड़ रहे ही नहीं। छड़ एक दीवारसे होती हुई पेंदीमें जाय और पेंदीसे होती हुई सामने की दीवारमें निकले। यदि इतने लम्बे छड़ न मिल सकें तो जोड़ोंके पास छड़ एक दूसरे पर लगभग एक फुट चढ़े रहें जैसा सब जगह सीमेंटके काममें किया जाता है। छड़ ¼ इञ्च मोटा और गिट्टी ¾ इञ्चसे मोटी न हो।

कङ्करीटके हौज—ईंटसे हौज बनानेके बदले उसे सीमेंट कङ्करीटसे बनाया जा सकता है अर्थात् पत्थरकी गिट्टी, सीमेंट और बालू एक साथ सानकर दीवार और फर्श ढाली जा सकती है। चार हिस्सा गिट्टी, दो हिस्सा मोटा (ककराता) बालू और एक हिस्सा सीमेंट पहले सूखा ही मिलाना चाहिये कि यह दही की तरह गाढ़ा हो जाय। कङ्करीट लगानेके दो तरीके हैं। एक तो यह कि दीवार अलगसे ढाल कर ठिकाने पर बैठा दी जाय और दूसरा यह कि दीवार अपने स्थान पर ही ढाल दी जाय। यदि काफी लकड़ीका प्रबन्ध किया जा सके तो दूसरी ही रीति
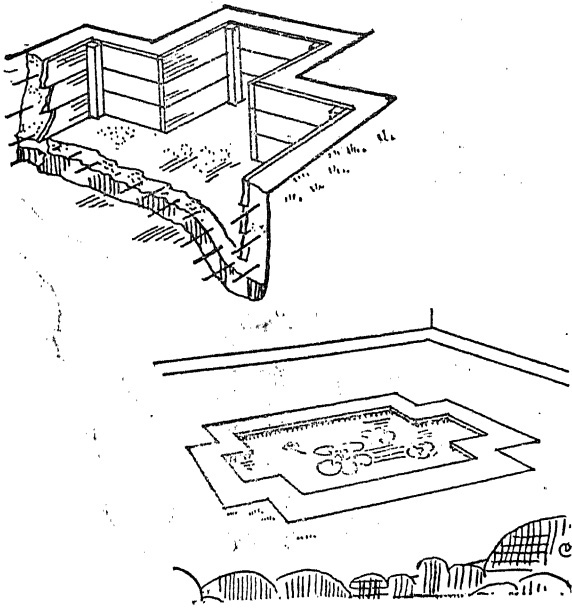
चित्र २—हौज बनानेकी विधि

ऊपरके चित्रमें हौज की दिवारें ढालनेकी विधि दिखाई गई है। ढालने के लिये जिन लकड़ी के तख्तों की आवश्यकता पड़ती है वे चित्रमें दिखाई पड़ते हैं, नीचे का चित्र तैयार, फूल खिले हौज का है।

अच्छी पड़ेगी क्योंकि इसमें कहीं जोड़ नहीं होता और इसलिये इसके चटकनेका डर नहीं रहता।

चाहे ईंटका हौज बने, चाहे कङ्करीटका इसपर विशेष ध्यान दिया जाय कि यह सच्चा चौकोर हो और दीवारों का ऊपरी सिरा ठीक एक क्षितिज धरातलमें रहे। यदि ऊपरी सिरा तिरपट बनेगा तो पानी भरने पर एक ओर दीवार कम दिखाई पड़ेगी और दूसरी ओर अधिक और हौजकी खूबसूरती चली जायगी।

साथमें दिये गए चित्रोंको देखकर कोई भी कारीगर समझ जायगा कि हौज कैसे बनाना चाहिये और लोहेकी छड़े किस प्रकार देनी चाहिएं। इसलिये कङ्करीट ढालने की रीतिके विषयमें यहां अधिक ब्यौरा नहीं दिया जा रहा है।

इन दिनों तरह तरह के रङ्गीन सीमेंट मिलते हैं। यदि आखरी पलस्तर करने के लिए किसी रङ्गीन सीमेंटका प्रयोग किया जाय तो हौज और भी सुन्दर लगेगा।

हौजकी गहराई इस बातपर निर्भर है कि इसमें कौनसे पौधे बोये जायँगे। कमलके लिये कमसे कम ढाई या तीन फुट गहराई चाहिए। कुईंके लिए डेढ दो फुटकी गहराई से भी काम चल जायगा।

सीमेंटकी दीवार या ईंटकी दीवार पर सीमेंट के पलस्तर द्वारा कुछ न कुछ पानी पार चला जाता है। इस त्रुटिका उपाय यह है कि पलस्तरके ऊपर जल अभेद्य करने वाला मसाला (water proofing can found) लगाना चाहिये यह रङ्ग रहित होता है और पानीमें घोलकर सीमेंटके ऊपर कूचीसे पोत दिया जाता है। कलकत्ते बम्बई आदि शहरोंकी दुकानों पर यह बिकता है।

हौजके चारों तरफ कुछ दूर तक सीमेंटका फर्श रहे तो अधिक अच्छा रहता है जैसा कि साथके चित्रोंमें दिखाया गया है। इसे अपनी रुचिके अनुसार रङ्गीन मोजैइक (चित्तीदार) बनाया जा सकता है। हल्के रङ्ग, गाढ़े रङ्गोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर लगते हैं। हौज ऐसी जगह बनाना चाहिये जहां धूप खूब लग सके क्योंकि कमल आदि फूल साएमें अच्छी तरह उग नहीं पाते। हौजके तैयार हो जाने के पश्चात् इसे दस पन्द्रह दिन तक पानीसे लबालब भरा रखना चाहिये और फिर पानी बदल डालना चाहिये।

हौजमें पौधे लगाना

जब तक हौजमें चार पांच बार पानी न बदला जा चुके

तब तक इसमें कोई पौधा नहीं लगाना चाहिए क्योंकि पानीमें चार (चूना) घुल जाता है और इसमें पौधे मर जाते हैं।

बसन्त ऋतु पौधे लगानेके लिए सबसे उत्तम समय है। यदि हौजमें मछलियां भी पालनी हों तो उन्हें पौधा उगनेसे

बागके लिये हौज डिजाइन नं० १

पहले नहीं छोड़ना चाहिए। जब पौधे उग जायें और मछलियों के लिये प्रर्याप्त ऑक्सीजन का इन्तजाम हो जाय तब फिर मछलियां छोड़नी चाहिएं। ताजे पानीमें मछलियोंके लिए भोजन नहीं रहता है। उस पानीको मछलियों के योग्य बननेके लिए एक नियत समयकी आवश्यकता है। पौधे लगानेके तीन महीने पश्चात् मछलियोंको हौजमें छोड़ा जाय तो अच्छा रहेगा।

हौजमें पानी भरने से पूर्व ही पौधे की जड़ें लगा देनी चाहिएं। हौजकी तहमें चारसे छः इंच मोटी मिट्टीकी तह होनी चाहिए। यह मिट्टी चार भाग—बागकी चिकनी मिट्टी और एक भाग सड़ा हुआ गोबरका खाद मिलाकर बनानी चाहिए। जड़ें लगानेके पश्चात मिट्टी के ऊपर एक इञ्च मोटी कङ्करीट की या रङ्गीन पत्थरोंकी बजरीकी तह लगा देनी चाहिये। इसकी वजह से हौजका पानी गंदला नहीं होगा। हौजको भरनेके लिये नलके मुंह पर दोहरे टाटका एक थैला बांध देना चाहिये। नलमें पानी कम दबावसे आना चाहिये। यदि नलके ऊपर बोरे बांध कर धीरे धीरे नहीं खोला जायगा तो नलकी मोटी धारसे हौज के तलकी बहुत सी मिट्टी अपने स्थानसे हट जायगी और सारा पानी भी गंदला हो जायगा और उस स्थानकी जड़ें भी मिट्टीसे निकल जायेंगी।
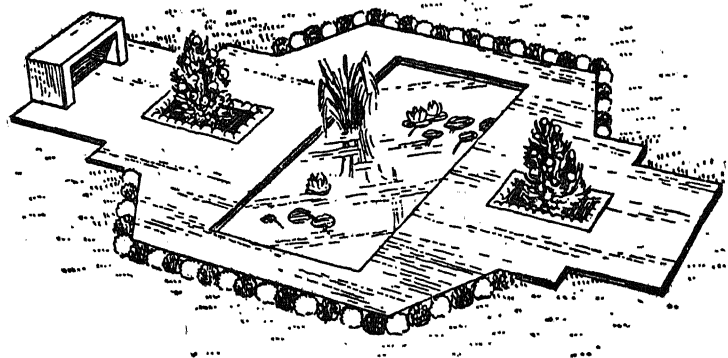
बड़े फूलों वाली कुईके लिये लगभग १८ इञ्च गहरे पानी की आवश्यकता होती है और पत्तों के फैलने के लिये पानी की सतहके तीन-चार फुट चौकोर भागकी आवश्यकता होती है। इसलिये पौधा लगाते समय दो पौधों के बीच कम से कम १८ इञ्च जगह जरूर रखनी चाहिये। गड्ढा करके उसमें जड़ लगा देनी चाहिये और पौधेको इस प्रकार लगाना चाहिये कि उसका बढ़ने वाला सिरा मिट्टीकी सतह तक आ जाय। यदि यह गहरी मिट्टीमें दब जायगा तो प्रायः पौधा मर जायगा। हौजकी सारी तलीमें मिट्टी बिछानेके बदले मिट्टी बिना ढक्कनके बक्सोंमें भरकर और उसमें जड़ गाड़ कर धीरेसे पानीमें रख दिये जा सकते हैं।

बाग के लिये हौज डिजायन नं० २

पानीके नीचे रहने वाले पौधेभी इसी प्रकार बक्सोंमें रखी मिट्टीमें रोपकर पानीमें डाल दिये जा सकते हैं। यदि तलीमें मिट्टी रखी गई हो तो पौधेकी जड़में पत्थर बांधकर उसे नीचे

गिराया जा सकता है। वे छोटे, पानी वाले पौधे जिनमें फूल लगते हैं छिछले पानीमें उगते हैं। ऐसे पौधोंके लिये मिट्टीको बक्समें रखना चाहिए और हौजमें कङ्कड़ पत्थर या ईंट रखकर बक्सोंको इस प्रकार रखना चाहिए कि मिट्टीकी ऊपरी सतह पानी की ऊपरी सतहसे ५-६ इञ्च नीचे रहे। पानीमें पानी वाले पौधों के रहनेसे एक लाभ यह होता है कि जब मछलियोंके अण्डोंसे नई मछलियां उत्पन्न होती हैं तो अपने माता पितासे निगले जानेसे बच जा सकती हैं। ये पौधे हवासे ऑक्सीजन चूसकर पानीमें ऑक्सीजन डालते हैं और इसलिए भी उपयोगी होते हैं।

हौजमें डालनेके लिए रङ्गीन छोटी मछलियां अच्छी होती हैं। इञ्चोंमें मछलीकी लम्बाईका पता लगाकर उसीके हिसाबसे न्यूनतम पानीकी मात्रा आंकी जा सकती है। प्रत्येक इञ्चके लिये कमसे कम एक गैलन पानी चाहिये, उदाहरणतः यदि तीन तीन इञ्चकी दस मछलियां हैं तो कमसे कम २० गैलन पानी चाहिए (१ गैलन पानी बराबर है पांचसेर पानीके)। इससे जितना पानी अधिक हो उतना अच्छा है।

कुंई और कमलका पालन पोषण—एक या दो वर्ष में कमल और कुंईके पौधे इतने बढ़ जाते हैं कि इसका कुछ उपाय करना पड़ता। अच्छे फूलोंके लिये यह आवश्यक है कि पुराने पौधे निकाल दिये जांय। पुराने पौधोंकी जड़ोंमेंसे नये और सबल पौधे निकल आये होंगे उन्हींमें से आवश्यक संख्या को रख लेना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो पौधे एक दूसरेका गला घोट डालेंगे और फूल बहुत छोटे छोटे लगेंगे या न लगेंगे।

पानी कैसे स्वच्छ रखा जाय—हौजमें पानी भरने के बाद कुछ ही दिनोंमें पानी हरा और गन्दा हो जाता है। इस से लोग समझते हैं कि किसी बातकी गड़बड़ी हो गई। यदि वे पानी बदल देंगे तो नया पानी भी कुछ दिनोंमें इसी प्रकार गन्दा और हरा हो जायगा। बात यह है कि इस प्रकार पानी का हरा होना एक आवश्यक परिवर्तन है जिसके बिना पानी परिपक्व नहीं हो सकता।

स्वच्छ पानी डालनेके बाद पहले पानी कुछ गंदा (अपारदर्शक) हो जाता है। इसके बाद धीरे धीरे यह सुन्दर हरा हो जाता है। यदि पानीमें कोई पौधे न भी लगें तो भी ऐसा होता है, परन्तु यदि पौधे लगे हों तो यह सब परिवर्तन शीघ्र होते हैं। हरा रंग एलगी नामक अति सूक्ष्म पौधोंके कारण होता है। ये पौधे इतने छोटे होते हैं कि वे केवल सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र (खुर्दबीन) से ही देखे जा सकते हैं। इनके बीजाणु हवामें उड़ते रहते हैं। पौधे केवल पानी और प्रकाशमें ही बढ़ पाते हैं। यदि धूप हो तो इनकी संख्या बहुत शीघ्र बढ़ती है। इन एलगीसे मछलीको कोई हानि नहीं होती। सच पूछिये तो लाभ ही होता है क्योंकि इनमें वायुसे ओषजन खींच कर पानीमें इस गैसको डालनेकी शक्ति होती है। परन्तु केवल इन्हींका रहना काफी नहीं है। तालाबमें जितने ही पानी वाले पौधे (सिवार आदि) अधिक होंगे उतना ही शीघ्र पानी परिपक्व होगा। पानीके परिपक्व होने की पहिचान यह है कि पानी गदला होनेके पश्चात् आपसे आप स्वच्छ हो जाय और फिर बराबर स्वच्छ रहे। यदि हौजमें पानी वाले पौधे काफी न लगाये जांयगे तो पानीके आपसे-आप परिपक्व होनेमें १½ से ले कर ३ साल लग सकते हैं। काफी पौधों के लगनेसे (इतना कि पानीकी सतह प्रायः पत्तियोंसे छिप जाय) पानी छः ही महीनों में परिपक्व हो जायगा जब पानी इस प्रकार परिपक्व हो जाय तब इनको निकाल कर इनके बदले दूसरे और अधिक सुन्दर पौधे लगाये जा सकते हैं। जब पानी परिपक्व हो जाय तो उस पानीको बाग सींचने के काममें नहीं लाना चाहिये क्यों कि ऐसा करनेसे हौज कुछ खाली हो जायगा और इस कमीको

बाग के लिये हौज डिजाइन नं० ३

मछलियोंको केवल उतना ही खाना एक बारमें देना चाहिये जितना वे आसानीसे खालें। बहुत भोजन खिलानेसे मछलियां मर जाती हैं। केवल उतना ही भोजन एक बारमें पानी पर छितराना चाहिये जितना मछलियां दस मिनटमें खा जाती हैं। यदि अधिक समय तक खाना पड़ा रहे तो समझना चाहिये कि आवश्यकतासे अधिक भोजन दिया जा रहा है।

पानीको कभी नहीं बदलना चाहिए हौजमें केवल उतना ही पानी छोड़ते रहना चाहिये जितना धूप और गर्मीके कारण उड़ जाता है। अकसर थोड़ा थोड़ा पानी छोड़ना अच्छा है। बहुत बहुत दिनोंमें एक एक बारमें अधिक पानी छोड़नेसे पानी हरा हो जायगा और मछलियोंको नुकसान होगा। मछलियोंका एक रोग ऐसा होता है कि मानो उनके शरीर पर रूई चिपक गई है। वस्तुतः यह एक प्रकारकी भुकड़ी (फफूंद) होती है इसका उपाय यह है कि मछलियोंको निकाल कर नमकीन पानीमें रख दिया जाय। ऐसा पानी बनानेके लिए पांच सेर पानीमें चायके चम्मचसे एक बारमें जितना नमक उठ सके डालना चाहिए और चला कर घोल डालना चाहिए। जब तक मछली पूर्णतया नीरोग न हो जाय उसे अलग ही रखना चाहिए। क्योंकि यह रोग छूतका है और बहुत सम्भव है कि एक मछलीको इस रोगके होने पर सारी मछलियोंको यह रोग हो जाय और सब मर जांय। नई मछलियोंको खरीदते समय, मछलियोंके स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

पूरा करनेके लिये ताजा पानी छोड़ना पड़ेगा जिसके परिपक्व होने में काफी समय लगेगा और तब तकके लिये पानी फिर हरा हो जायगा।

हौजके लिये मछलियां—यह आवश्यक है कि किसी मातवर दुकानसे मछलियां खरीदी जांय और वे स्वस्थ्य हों। मछलियां बाहरसे भी मंगाई जा सकती हैं इसके लिए वे कनस्तरोंमें बंद करके भेजी जा सकती हैं जिनमें आधा पानी भरा हो किन्तु ढक्कनमें आठ दस छेद अवश्य होने चाहियें जिस से हवा आ जा सके। यदि कनस्तरका पानी हौजके पानीसे गरम या ठंडा हो तो मछलियोंको तुरन्त कनस्तरसे निकाल कर हौजमें डाल देनेसे उनके मर जानेका डर रहता है। ऐसी दशामें यह चाहिये कि कनस्तर हौजमें रखा जाय (यह डूबने न पाय) जब कलस्तरके पानीका तापक्रम हौज जैसा हो जाय तो मछलियों को हौजमें डाला जा सकता है। एक सप्ताह तक तो मछलियां बिना कुछ बाहरसे खाना पाये रह सकेंगी क्योंकि हौजमें उन्हें छः सात दिन तक पेट भरनेके लिये काफी मच्छड़ोंके अंडे बच्चे मिलेंगे। परन्तु उसके बाद उन्हें कुछ खानेको बाहरसे बराबर देना पड़ेगा। मछलियोंको सूखी चीजें न खिलानी चाहिएं क्यों कि यह पेटमें जाकर फूलती हैं। मछलियोंको लोग आटे या बेसनकी गोलियां या लावा खिलाते हैं। परन्तु अधिक अच्छा होगा यदि किसी अच्छी दुकानसे मछलियोंको खिलानेके लिये विशेष भोजन खरीदा जाय। इसमें वे सब आवश्यक पदार्थ रहते हैं जो मछलिकोंका स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये आवश्यक होते हैं।

बागके लिये हौज डिजायन नं० ४

शत्रु—हौजमें अकसर मछलियों या पानी वाले पौधोंके शत्रु पहुंच जाते हैं और बड़ा नुकसान करते हैं। इनमेंसे एक पनचपड़ा (पानी वाला चपड़ा Water beetle) जो मछलियोंको मार डालता है। यह अकसर रात को उड़ कर हौजमें आ जाता है। जब कभी ये दिखलाई पड़ें इन्हें जालसे पकड़ कर मार डालना चाहिए। कुछ नन्हे नन्हे जानवर भी होते हैं जो मछलियोंमें चिपट जाते हैं और उनका खून चूसते रहते हैं जब कभी ये दिखाई पड़ें उन्हें छुड़ा कर अलग कर देना और मार डालना चाहिए।
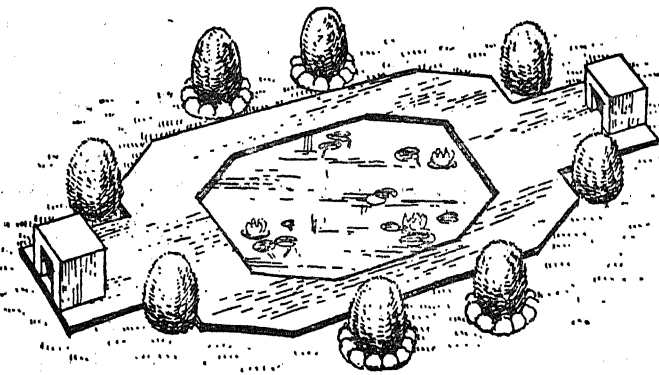
नेगेटिवों के दोष और उनकी चिकित्सा

[लेखक—डा० गोरखप्रसाद]

प्रारम्भिक—अधिकांश नेगेटिव कम प्रकाशदर्शनके कारण खराब होते हैं, कुछ प्रकाशदर्शन देते समय कैमरा हिल जानेके कारण, और थोड़ेसे अधिक प्रकाशदर्शनके कारण। इसलिये (१) प्रकाशदर्शन मापक या सारिणीका निरन्तर उपयोग करना अच्छा है और (२) खटका इस प्रकार दबाना चाहिये कि कैमरा न हिले। कैमरेकी पेंदीके नीचे चार अंगुलियां रख कर और शटर पर अंगूठा रख कर खटका दबाना चाहिये। इससे कैमरा हिलने की सम्भावना कम रहती है। कुछ कैमरोंमें घोड़ा उदरमें रहता है (body-release) ऐसे कैमरे घोड़ा दबाते समय कम हिलते हैं।

प्रकाशदर्शन देना ही भूल गये, या शटरका कांटा I के बदले भूलसे B पर या T पर लगा रह गया, या कैमरेमें कहीं छेद है, ये दुर्घटनायें भी हो सकती हैं। एक ही फिल्म पर दो बार प्रकाशदर्शन दिया गया, या फिल्म लगाते समय रोल (पुलिंदा) खुल गया ऐसा भी असवधानीके कारण कभी-कभी हो जाता है। अशुद्ध फोकसके कारण भी नेगेटिव खराब हो सकते हैं।

इन सब कारणोंसे खराब हो जाने पर नेगेटिवको देखते ही पता चल जाता है कि वे क्यों खराब हुए। नीचे कुछ कारण ऐसे गिनाये गये हैं जिनका पता शीघ्र नहीं चलता।

(१) नन्हे-नन्हे सुई छिद्र। कारण-गर्द। बचनेका उपाय—कैमरेके भीतरी भागोंको और प्लेट घरोंको नरम ब्रश से झाड़ कर साफ रक्खो, अंधेरी कोठरीमें जरा भी गर्द न रहे; उसके दरवाजों पर परदे न रहें।

(२) बड़े सफेद धब्बे। कारण—हवाके बुलबुले। उपाय—सम्भाल कर डेवेलपर उँडेलो; आवश्यकता जान पड़े तो खौलाये पानीसे फिल्म तर और डेवेलप किया करो।

(३) काले विंदु। कारण—डेवेलपर पूर्णतया घुल नहीं पाया था, या कैमरेके भीतरसे कहींका मुर्चा छूट कर फिल्म पर पड़ता है। उपाय प्रत्यक्ष है।

(४) डेवेलपर बराबर न पड़नेके धब्बे। कारण—कम डेवेलपर, या असावधानी, या (प्लेटों को डेवेलप करते समय) तश्तरी न हिलाना। उपाय प्रत्यक्ष।

(५) अंगुलियोंके धब्बे। कारण—असावधानी। उपाय—फिल्म, प्लेट, नेगेटिव, कागज, आदिको केवल किनारों के बल पकड़ो।

(६) नख इत्यादिके घाव। कारण-असावधानी।

(७) झालर, फफोले, गड्ढे। कारण—गर्मी। उपाय—डेवेलपर करनेके पहले ही फॉरमेलिनका प्रयोग करो और पानी तथा सब घोल ठंडे रहें। शीघ्र सुखाओ।

(८) जिलेटिनका जालीदार हो जाना। कारण—कम ठंडे घोल या पानीमें जिलेटिनके फूल जानेके बाद बहुत ठंडे पानीमें फिल्म या प्लेटको डालनेसे, या फूल जानेके बाद जिलेटिन को कड़ा करनेकी चेष्टासे ऐसा होता है। उपाय-प्रत्यक्ष है।

(९) चितकबरापन। कारण—डेवेलपरमें फिल्म काफी जल्द-जल्द नहीं चलाया गया, या (प्लेटको डेवेलप करते समय) तश्तरी काफी हिलायी नहीं गई, या नेगेटिवके कुछ भाग शीघ्र सूखे, कुछ बहुत देर में।

(१०) रंग जाना। कारण—पुराना डेवेलपर, या अनुचित नुसखा, या डेवेलपर पड़नेके बाद और अच्छी तरह घुल जानेके पहले नेगेटिव बहुत समय तक हवामें रहा है। उपाय—ठीक डेवेलपर इस्तेमाल करना चाहिए और फिल्मको घोलोंमें बराबर चलाते रहना चाहिए। हाइपो इतना पुराना न हो कि नेगेटिवोंके स्थायी होनेमें बहुत समय लगे।

(११) धुन्ध (Fog)—यदि नेगेटिवके किनारे भी कुछ काले हो गये हैं तो कारण ये हो सकते हैं—

सफेद रोशनीका लग जाना (कैमेरेकी पीठ चपक कर न बैठती हो, अंधेरी कोठरी ठीक न हो, प्लेट घर खराब हो गया हो, रेल खुल गया हो या ढीला हो गया हो, इत्यादि); लाल रोशनी ठीक न हो, या बहुत चटक हो, या उसके सामने फिल्म या प्लेट बहुत समय तक रखा गया हो (यथा सम्भव साधारण प्लेटों और फिल्मों पर भी लाल प्रकाश न लगने दिया जाय; कुछ अभ्यासके बाद बहुत काम टटोल कर किया जा सकता है; पैनक्रोमैटिक फिल्मोंके लिये सब काम अंधेरेमें किया जाता है ही); डेवेलपरमें पोटैसियम ब्रोमाइड या अधिक सोडियम कारबोनेट डालना, डेवेलपरका काफी ठंढा न रहना, पूर्णतया स्थायी होने के पहले सफेद रोशनी लगने देना; बहुत अधिक समय तक डेवेलप करना; पुराना प्लेट या फिल्म (इस दशामें अकसर प्लेट के किनारे वाले भागोंमें अधिक धुंध रहता है), बहुत अधिक प्रकाश दर्शन; नये कैमरोंमें रंग या वार्निसकी भापसे भी धुन्ध उत्पन्न होता है।

यदि नेगेटिवके किनारे स्वच्छ हों तो ये कारण हो सकते हैं—

अधिक प्रकाशदर्शन, लेंजका गन्दा रहना; लेंज पर तेज प्रकाश या धूप पड़ना (लेंज पर हुड लगाना अच्छा है। ये बिकते हैं।) कैमरेका भीतरी भाग पूर्णतया काला न रहना या उस पर गर्द रहना; कैमरेके भीतर किसी छेद या संधिसे प्रकाश घुसना; विषय या कैमरेका बहुत हिल जाना।

कम प्रकाशांतर वाले हलके नेगेटिव—कम प्रकाशांतर वाले नेगेटिव हलके भी हो सकते हैं और गाढ़े भी। यदि नेगेटिवमें इतना कम प्रकाशांतर हो कि अल्ट्रा विगरस (खूब कड़े) गैस लाइट कागज पर छापने पर भी काम न चले और नेगेटिव गाढ़ा न हो तो उसे इनटेन सिफाई करना चाहिए। सबसे अच्छी रीति यह है—

दो घोल 'क' और 'ख' अलग-अलग बना कर रख लो। ये बहुत दिन चलेंगे।

क—पोटैसियम बाइक्रोमेट	२४० ग्रेन	
पानी	१० आउंस	
ख—हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	१ आउंस	
पानी	६ ,,	

कम या अधिक प्रकाशांतर लानेकी इच्छाके अनुसार नीचे दिये गये तीनमें से किसी नुसखेके अनुसार मिश्रण तैयार करो। नम्बर १ से सबसे अधिक, नम्बर २ से उससे कम और ३ से सबसे कम प्रकाशांतर उत्पन्न होगा।

	नुसखा नं० १	नुसखा नं० २	नुसखा नं० ३
घोल 'क'	१ भाग	१ भाग	१ भाग
घोल 'ख'	½ भाग	१ भाग	४ भाग
पानी	६ भाग	१ भाग	६ भाग

इन तीनोंमें से किसी नुसखेके अनुसार बने मिश्रणमें नेगेटिवको रक्खो और तश्तरी हिलाते रहो। जब नेगेटिवका कालापन पूर्णतया दूर हो जाय तो उसे बहते पानीमें इतना धोओ कि पीलापन दूर हो जाय। फिर इसे मेटल-हाइड्रोक्विनोन डेवेलपरसे डेवेलप कर डालो। यदि काम अंधेरी कोठरीमें किया गया हो तो यह आवश्यक है डेवेलप करनेके पहले नेगेटिव पर सफेद प्रकाश पड़ने दिया जाय, अन्यथा नेगेटिव फिर ठीक तरह काला न हो पायेगा।

यदि प्रकाशांतर और बढ़ाना हो तो इस प्रकार इनटेनसिफाई किये नेगेटिव को एक या दो बार फिर इनटेंव सिफाई किया जा सकता है।

गाढ़े नेगेटिव—यदि नेगेटिव गाढ़ा हो तो उसका प्रकाशांतर बढ़ानेके लिए उसे हाइपो और फेरीसाइनाइडसे रेड्यस करना चाहिए प्रकाशांतर बहुत तो नहीं बढ़ता परन्तु घनत्व (गाढ़ापन) काफी कम हो जाता है। घनत्व कम हो जाने पर नेगेटिवको फिर इनटेनसिफाई किया जा सकता है। स्मरण रखना चाहिए कि रेड्यस करनेमें नेगेटिवके खराब होनेका डर रहता है। एक तो यह कि यदि नेगेटिव अधिक रेड्यस कर दिया गया तो चित्र पूर्णतया या अंशतः मिट जा सकता है। दूसरे सब जगह एक रूपसे नेगेटिव रेड्यस न होनेके कारण भी कभी-कभी खराब हो जाता है, विशेष कर यदि नेगेटिव पुराना है और उसकी सतहको कभी हाथसे छुआ गया है। तो भी नेगेटिवोंका घनत्व कम करनेके लिये यह अत्यन्त सरल और उपयोगी रीति है। गाढ़े नेगेटिवोंसे अच्छे ऐनलार्जमेंट नहीं बन पाते। इसलिए यदि किसी नेगेटिवको एनलार्ज करना हो और वह गाढ़ा हो तो अच्छा यही होगा कि उसे कुछ रेड्यस कर लिया जाय। नुसखा नीचे दिया जाता है—

पहले दो घोल अलग-अलग बनाओ—

क—हाइपो लगभग	½ आउंस
पानी	४ ,,
ख—पोटैसियम फेरिसायनाइड	२४ ग्रेन
पानी	½ आउंस

घोल 'ख, को ताजा बनाना चाहिए।

रेड्यस करनेके लिये इच्छानुसार मात्रामें घोल 'क' लो (२½"×३½" के एक नेगेटिवके लिए लगभग २ आउंस) उसमें आउंस पीछे २५ से ६० मिनिम तक घोल 'ख' मिलाओ और तुरन्त काममें लाओ। घोल 'ख' जितना ही अधिक रहेगा नेगेटिव उतना ही शीघ्र रेड्यस होगा। अर्थात् उसका गाढ़ापन उतना ही शीघ्र कम होगा। दो मिनटमें यदि गाढ़ापन काफी कम न हो जाय तो मिश्रण को फेंक कर 'क' और 'ख' का नया मिश्रण डालना चाहिए। काम सावधानी से करना चाहिए। ज्यों ही घनत्व काफी कम हो जाय त्यों ही इसे निकाल कर खूब धोना चाहिए। अब यदि नेगेटिवमें कुछ पीलापन हो तो इसे सादे हाइपोके घोलमें कुछ समय तक रखना चाहिए। फिर साधारण रीतिसे १५ मिनिट तक धोकर नेगेटिव सुखाना चाहिए।

फीके घोलसे रेड्यस किये नेगेटिवोंमें प्रकाशांतर बहुत ही कम बढ़ता है। इसलिए यदि केवल घनत्व कम करना हो और प्रकाशांतर न बदलना हो तो २५ मिनिम 'ख' और १ आउंस 'क' वाले मिश्रणसे रेड्यस करना चाहिए। एक बार घोलका रंग देख लेनेसे फिर दोनों घोलोंको नाप कर मिलाने की आवश्यकता न रहेगी। केवल रंगके अनुमानसे मिला लेना काफी होगा। स्मरण रहे कि घोल मिलानेके बाद ही मिश्रण बिगड़ने लगता है और तीन चार मिनटमें खराब हो जाता है।

अधिक प्रकाशांतर वाले नेगेटिव—यदि किसी नेगेटिवके प्रकाशांतरको कम करना हो तो उसे इनटेनसिफाई करने के लिए बनाये बाइक्रोमेट और हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड वाले घोलसे सफेद कर लेना काफी होगा। यदि इससे प्रकाशांतर बहुत घट जाय तो इसे फीके डेवेलपरसे इच्छानुसार थोड़े समय तक डेवेलप करना चाहिए (अवश्य ही, पूर्णतया डेवेलप कर देनेसे प्रकाशांतर पहलेसे भी अधिक बढ़ जायगा)।

बहुत कम या बहुत अधिक प्रकाशदर्शन पाये नेगेटिव—यदि प्लेट या फिल्मको इतना कम प्रकाशदर्शन मिला हो कि नेगेटिवके हल्के भागोंमें ब्यौरा आया ही न हो या यदि इतना अधिक प्रकाशदर्शन मिला हो कि गाढ़े भागोंमें ब्यौरा मिट गया हो तो नेगेटिवको ठीक करनेका कोई भी उपाय नहीं है।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

टॉर्च दूरदर्शक यन्त्र भी बन जाती है—एक नई प्रकारकी टॉर्च बनी है। इसमें एक दो ढक्कन तो अधिक होता है किन्तु इन ढक्कनोंकी सहायतासे इससे कई काम लिये जा सकते हैं। इसके भागोंको विधिवत् जोड़नेसे यह दूरदर्शक यन्त्र में परिवर्तित हो जाती है। इन्हीं भागोंकी सहायतासे इससे आतशी शीशेका काम भी लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस टॉर्चकी लम्बाई भी १० इञ्चसे कम ही है।

रेडियो सेट जेबमें ले जा सकते हैं—दोहेड फ्रोन के बराबर एक रेडियो सेट बनाया गया है यह दोनों कानों पर लगा लिया जाता है। आकारमें यह बहुत छोटा होता है और जेबमें रखकर ले जाया जा सकता है। इस यंत्रमें बैटरियों की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। बैटरियों का कार्य रवे (crystal) से लिया जाता है।

जूतों पर पालिश करनेकी आवश्यकता नहीं—नए प्रयोगों के फल स्वरूप स्वयं चमकदार रहने वाले जूतोंका आविष्कार हुआ है। जूतों के चमड़ेमें चमकने वाला जूतोंका मसाला दबाव तथा अन्य रीतिसे भर दिया जाता है। जब जूता पहन कर चलते हैं तो पैरकी गर्मीसे वह मसाला पिघल पिघलकर जूतेकी सतह पर आता रहता है। केवल एक बार रगड़ देनेकी आवश्यकता पड़ती है जूता फिर पहलेके समान चमकने लगता है। यह चमड़ा किसी भी रङ्गका बनाया जा सकता है। इस प्रकार पालिश के चमड़ेमें भरनेके कारण इस चमड़े पर पानीका भी कोई प्रभाव नहीं होता। चमड़ा तड़क कर फटता भी नहीं।

स्त्रियाँ अधिक सहनशील होती हैं—डा० जैकब एक यंत्र द्वारा परीक्षा करनेके पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि स्त्रियां आदमियोंके मुकाबले अधिक सहनशील होती हैं। इस यंत्र द्वारा दो बातें ज्ञात होती हैं, (१) शरीरमें कितनी शक्ति बनती है और (२) कितना ताप शरीरसे बाहर निकलता है। डा० जैकबके प्रयोगोंसे पता चला कि साधारण अवस्थामें आठ घंटे उपवास रखनेके पश्चात् स्त्रियां, मनुष्यों से केवल आठवां भाग शरीरकी जमा की हुई शक्तिका व्यय करती हैं। इस यंत्र द्वारा खानेके ओषजनीकरणसे कितना ताप निकलता है यह भी ज्ञात हो सकता है। यह ज्ञात होने से भोजनकी पौष्टिक शक्ति मालूम की जा सकती है।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा

विज्ञान-परिषद् प्रयागके मूल सूत्र-पात कर्ता श्री महामहोपाध्याय डा० सर गङ्गानाथ झा की मृत्यु का दु:खद समाचार हमें सोमवार १७ नवम्बर १९४१ के प्रात:काल मिला। डा० झा हमारी परिषद्के सन् १९२७ से १९३० तक सभापति थे और आरम्भसे १९२१ तक आप हमारे उपसभापति भी रहे। परिषद्के समस्त कार्यों के प्रति आपकी सहानुभूति थी और हमें सदा आपका उदार सहयोग प्राप्त होता रहा डा० झाने परिषद्की ओरसे कई बार महत्त्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यान भी दिये और परिषद्से प्रकाशित कई पुस्तकोंकी भूमिकाएं भी आपने लिखीं।

डा० गङ्गानाथ झा इस देशके अग्रगण्य प्रकाण्ड पंडित थे। आपका जन्म २५ सितम्बर १८७२ को हुआ। आपके पिताका नाम पं० तीर्थराम झा और माताका नाम श्रीमती राम काशी देवी था। आपकी माता दरभङ्गा राजघराने के महाराज कुमार श्री वासुदेव सिंह जी की पुत्री थीं। तत्कालीन महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिंहजीके अनुरोध से डा० झाकी प्रारम्भिक शिक्षा दरभङ्गाके राजस्कूलमें हुई और वहांसे सन् १८८६ में आपने एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् १८८८ में क्वींस कालेज बनारसमें कलकत्ता विश्व-विद्यालयकी एफ.ए. परीक्षा दी। इसी समय प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और १८९० में काशी से आपने इस विश्व-विद्यालयकी बी. ए. परीक्षा सम्मान सहित उत्तीर्ण की और सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। क्वींस कालेजमें एम.ए की शिक्षा की व्यवस्था न थी अत: आपको स्वत: काशी के पंडितों की सहायतासे स्वाध्याय करना पड़ा और १८९२ में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। बादको १९०२ तक डा० झाने दरभङ्गाके राजकीय पुस्तकालयमें कार्य किया। डा० झाको साहित्य और दर्शनमें विशेष रुचि थी और इसी बीच आपने सांख्यतत्त्व कौमुदी, योगसार संग्रह, काव्यप्रकाश, योगभाष्य, श्लोक कार्तिक आदि कई ग्रन्थोंका अङ्गरेजी अनुवाद किया।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा।

सन् १९०२ में डा० थीबोके आग्रहसे आप म्योरकालेज प्रयागमें संस्कृतके अध्यापक होकर आ गये। सन् १९०९ में प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रभाकर-पूर्व मीमांसा पर विवेचनात्मक ग्रंथ लिखनेके उपलक्ष्यमें आपको डाक्टर आव्‌लेटर्सकी उपाधि मिली, और १९१० के नववर्षमें महामहोपाध्यायकी उपाधि। आपकी साहित्यिक सेवा के उपहार स्वरूप इस वर्ष (१९४१) सरकारसे अभी कुछ मास हुए आपको 'सर' की उपाधि मिलीथी डा० झा अपने समयके अद्वितीय विद्वान् थे आपके संस्कृत ग्रंथों के अङ्गरेजी अनुवाद तो प्रसिद्ध हैं ही, मौलिक ग्रंथ भी प्राच्य साहित्य से सम्बन्ध रखने वालोंके बड़े महत्व के हैं। कलकत्तासे प्रकाशित मनुस्मृति की मेधातिथि टीका, योग भाष्य, न्यायभाष्य, माबरका मीमांसा भाष्य, कमला व्याख्यान, हिन्दू लॉ इन इट्स सोर्सेज, शङ्कर वेदान्त सम्बन्धी व्याख्यान आदि साहित्यके अनमोल रत्न हैं। नागरी प्रचारणी सभासे प्रकाशित आपके लिखे न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन हिन्दी पाठकोंके लिये उपयोगी ग्रंथ है।

डा० झा सन् १९२३-१९३२ तक प्रयाग विश्वविद्यालय के वायस चैन्सलर रहे और आपने अपने समय में विश्वविद्यालयकी बड़ी उन्नति की। डा० झा के समान विनम्र, कर्मण्य और आचार निष्ठ बहुत कम व्यक्ति उपलब्ध होते हैं। हमें आशा थी कि आप और भी अधिक दिन जीवित रहके साहित्यकी सेवा करते पर इधर कुछ दिनोंसे आप विशेष अस्वस्थ रहने लगे थे। लगभग सत्तर वर्षकी अवस्थामें आपने दिवंगति प्राप्त की। परिषद्की ओरसे हम इस महान् आत्माके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हैं, और उनके कुटुम्बसे हमारी सहानुभूति है।
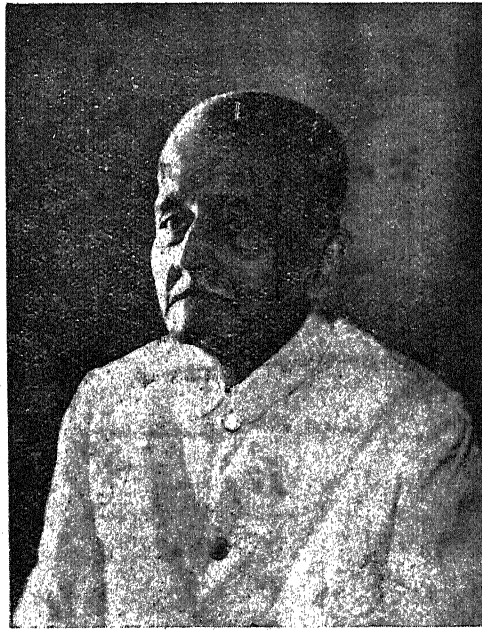
[सत्यप्रकाश १९-१२-४१]

भाग ५४ | फरवरी, १९४२ कुम्भार्क, सं० १९९८ वि० | पूर्ण संख्या

षिक मूल्य ३) रु० | संख्या

मधुमक्खियों के पकड़ने का एक दृश्य

मधुमक्खियों के पकड़नेका लेख पृष्ठ १७४ पर पढ़ें।

प्रयाग
की
विज्ञान-परिषद्
का
मुख्य-पत्र
जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान
भी
सम्मिलित है।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

क
१
२
ख
३
४
ग
घ

मिट्टीके बरतन

मिट्टी, पत्थर और पोरसीलेनके सामानोंके तैयार करनेके कच्चे माल, यंत्रों और विधियोंकी पुस्तक

लेखक—प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा, एम० एस-सी० ए० आई० आई० एस० सी०

१७५ पृष्ठ, सजिल्द, मूल्य १)

लकड़ीपर पॉलिश

ले०—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामयत्न भटनागर

लकड़ी पर पॉलिश या वार्निश करने पर क्रियात्मक तथा ब्योरेवार पुस्तक, ३१ चित्र, सजिल्द;

२१८ पृष्ठ, मूल्य १॥)

वायुमंडल

ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, डी० फिल०

वायुमंडल में कौन-कौनसे गैस हैं, इसकी ऊँचाई कितनी है, जो गैस नीचे मिलते हैं वे ही ऊपर भी मिलते हैं या कोई परिवर्तन हो जाता है, बादल कितने ऊँचे हैं, बादलोंमें बिजली कैसे उत्पन्न होती है, आकाशवाणी इतने दूर-दूर स्थानोंमें कैसे जाती है, इत्यादि प्रश्नोंका रोचक उत्तर। सजिल्द, १८६ पृष्ठ, २५ चित्र, मूल्य १॥)

कलम-पेवंद

लेखक—श्री शंकरराव जोशी।

बागबानी तथा कृषि-सम्बन्धी हर तरहके कलम-पेवंद पर ब्योरेवार पुस्तक, चित्र ५०, २०० पृष्ठ,

मूल्य १॥)

चर्म बनाने के सिद्धान्त

लेखक—श्री देवीदत्त अरोड़ा, बी० एस-सी। रायल अठपेजी साइज़, पृष्ठ संख्या, २१६। सजिल्द, सचित्र। ल्य ३) इस पुस्तक में योग्य लेखकों ने चमड़ा सिझाने और तैयार करने की वैज्ञानिक रीति बतलायी है। न्दी में अभी तक इस प्रकार औद्योगिक पुस्तकें नहीं निकलीं और यह पुस्तक हिन्दी के इस अभाव को रा करने में प्रथम प्रयास है।

जन्तु-जगत

लेखक—श्री ब्रजेश बहादुर बी० ए०, एल०-एल बी०। रायल अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५०२, चित्र-संख्या ६ रोन और १३३ हाफ़टोन, सजिल्द, मूल्य ६॥);

अत्यन्त रोचक और उपयोगी। प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ना चाहिये।

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० की दो पुस्तकें

यांत्रिक चित्रकारी

इस पुस्तक के प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइङ्ग' कहते हैं। बिना इस विषयके जाने कोई भी इंजिनियर अथवा कारीगर अपना काम नहीं चला सकता। इसके जोड़की पुस्तक अँग्रेज़ीमें भी नहीं है।

३०० पृष्ठ, ७० चित्र, जिनमें कई हाफटोन हैं। ८० उपयोगी सारिणियाँ
सस्ता संस्करण २॥); राज-संस्करण, बढ़िया कागज़ और सजिल्द, ३॥)

वैक्युम—ब्रेक

यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इञ्जन-ड्राइवरों, फ़ायरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

११० पृष्ठ, ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं; मूल्य २)

भूतपूर्व विज्ञान-सम्पादक स्वर्गीय श्री रामदास गौड़का लिखा

विज्ञान हस्तामलक

इसी पुस्तकपर लेखकको १२००) का मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक मिला था

मूल्य सजिल्द ६॥), अजिल्द ६)

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

विशेष सुविधा

मुफ़्त !

विज्ञानके नवीन ग्राहकोंको विज्ञानके पिछले बारह फुटकर अंक मुफ़्त दिये जायँगे।

यह रियायत तभी तक रहेगी जब तक हमारे पास बचे हुये विज्ञानके फुटकर अंक रहेंगे। जल्द ३≡) भेजें जिसमें ३) विज्ञान का वार्षिक चन्दा और ≡) मुफ्त दिये जाने वाले बारह अंकोंका डाक-व्यय है।

विशेष रियायत

आधेसे भी कम मूल्य पर !

निम्न दस पुस्तकोंके एक साथ मँगानेसे सब पुस्तकें १) में मिलेंगी

कृत्रिम काष्ठ =); उद्भिज का आहार ।); गुरुदेव के साथ यात्रा ।-); केदार बद्री यात्रा ।); दियासलाई और फ़ॉस्फ़ोरस (ले० रामदास गौड़) -); सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा -); पशु-पक्षियोंका शृंगार-रहस्य -); क्षय रोग -); ज्वर निदान और सुश्रूषा -); सर चंद्रशेखर वेंकट रमन =); वर्षा और वनस्पति ।); विज्ञान प्रवेशिका ।); चुंबक ॥)

यदि आप नवीनतम वैज्ञानिक साहित्यसे लाभ उठाना चाहते हैं या वैज्ञानिक साहित्य-वृद्धिके पुण्य कार्यमें हाथ बटाना चाहते हैं तो आप

विज्ञान-परिषद्के सदस्य बनिये

वार्षिक चन्दा केवल ५) है जिसके बदलेमें "विज्ञान मासिक पत्र" वार्षिक मूल्य ३) और परिषद्की प्रकाशित

सभी नवीनतम पुस्तकें मुफ्त मिलती हैं

परिषद् प्रति वर्ष २) से अधिक मूल्यकी पुस्तकें प्रकाशित करती है। पिछले बारह महीनों में ३॥) की पुस्तकें छपी थीं। प्रवेश-शुल्क ३) है

छप रही हैं

(तारीख २४ फरवरी १९४१)

(१) **घड़ीसाज़ी**—लेखक—व्रजवल्लभ शरण, एम० एस-सी०, मूल्य लगभग १)

(२) **जिल्दसाजी**—लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा एम० ए० कपड़े तथा चमड़े की, सादी और सुसज्जित जिल्द बाँधने, जुज़की सिलाई, आदिका सचित्र, सरल तथा क्रियात्मक वर्णन; लगभग १७५ पृष्ठ; मूल्य लगभग १)

(३) **भारतीय चीनी मिट्टियाँ**—लेखक—एम० एल० मिश्र, एम० एस-सी० अध्यापक, काशी विश्व-विद्यालय

(४) **खगोल ज्योतिष**—लेखक प्रोफ़ेसर श्यामाचरण, एम० एस-सी० (लण्डन) प्रोफेसर, आगरा कॉलेज, आगरा

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

अन्य पुस्तकें

वैज्ञानिक परिमाण—नापकी इकाइयाँ, ग्रहोंकी दूरी आदि, देशोंके अक्षांश, तत्वोंका परिमाण, घनत्व आदि, पदार्थोंके घनत्व, उनको तनान शक्तियाँ, स्निग्धता तथा द्रवांक, शब्द संबन्धी अनेक परिमाण, दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंको वैद्युत बाधायें, बैटरियोंकी विद्युत-संचालक शक्तियाँ इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकों तक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी—प्रत्येक वैज्ञानिकके बड़े कामकी चीज़। ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी० ॥।)

विज्ञान प्रवेशिका—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक ।)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० १॥)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके सम्बन्धमें १२ लेख—ले० डा० आत्माराम, डी० एस-सी० ॥)

प्रकाश रसायन—प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओंपर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री वि० वि० भागवत १॥)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी०, चतुर्थ संस्करण ॥=)

चुंबक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी० ॥)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यन्त रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ॥)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १)

समीकरण-मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १॥)
दूसरा भाग ॥=)

निर्णायक (डिटर्मनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे, एम० ए० और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री, बी० ए०-सी० ॥)

बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

ज्वर मीमांसा—स्वामी हरिशरणानन्दकी नवीनतम कृति १)

त्रिदोष मीमांसा—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

औषध-गुण-धर्म विज्ञान—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय-ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयोंका खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और जलवायु भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

मधु मक्खी—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार पृष्ठ १८ =)

उद्योग और व्यवसाय—विज्ञानका विशेषांक—इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १३० पृष्ठ, १॥)

विज्ञान परिषद् और हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य—पृष्ठ ५२ चित्र ८ ।)

मनुष्यका आहार—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त ।=)

अरिष्टक गुण विधान—लेखक डा० गङ्गपति सिंह वर्मा ।=)

दुग्ध गुण-विधान—ले० गङ्गपति सिंह वर्मा १)

हुन्नर प्रचारक—ले० गणपति सिंह वर्मा १।)

मिलने का पता—विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५४ | कुम्भार्क, संवत् १९९८ विक्रमी | फरवरी, सन् १९४२ | संख्या ५

बिजलीका बल्ब बनानेकी विधि

बल्बके तन्तुमें उन्नति, वैज्ञानिक सिद्धान्त, भिन्न भिन्न अंगोंके लिये ठीक वस्तुकी प्राप्ति, गैस बल्ब, शून्य बल्ब तथा बल्बोंका जीवन समय।

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम० ए० बी० एस-सी]

जैसे जैसे बल्बमें लगे पतले तन्तु (filment) के बनाने में उन्नति होती गई वैसे ही अधिक प्रकाश देने वाले लैम्पों और बल्बोंमें भी उन्नति होती गई। तन्तु बल्बमें लगे उस पतले तारको कहते हैं जो विद्युत् चालनके समय बहुत गर्म हो जाता है। पहले यह लाल होता है फिर अधिक गरम हो कर सफेद हो जाता है और प्रकाश देने लगता है। सबसे पहला बिजलीका लैम्प टी० ए० एडीसन और जे० डब्लू० स्वानने सन् १८७८ और सन् १८८० के लगभग बनाया था। इस बल्वका प्रकाशित होने वाला तन्तु कार्बनका बना हुआ था। जब तक ऑस्मीयम (osmium) (१८९८) और टैन्टैलम (१९०३) का पता नहीं लगा था तब तक अकेले कार्बनके तन्तु बल्ब बनानेके काममें लाये जाते थे। सन् १९०४ से तन्तुओं को बनानेके लिये टंगस्टनका उपयोग प्रारम्भ हो गया था।

तन्तुकी इस उन्नतिके साथ सारे बल्ब लैम्पके बनानेमें भी उन्नति होती गई। सबसे पहले बल्ब हाथके बनाये होते थे। उसके पश्चात् बल्बोंके बनानेमें और भी बहुतसे आविष्कार हुए। और बल्बोंके बनानेमें खर्चा भी कम होने लगा।

सन् १९२७ के लगभग संसारमें ६५००, लाख बिजली के बल्बोंकी प्रतिवर्ष आवश्यकता पड़ती थी। इसलिये इस मांगको पूरी करनेके लिये संसारमें बल्ब बनानेके बहुत बड़े कारखानोंकी आवश्यकता थी। इस लेखमें इस प्रकारकी अधिक संख्यामें बल्ब बनानेकी विधिका भी वर्णन करना अनुपयुक्त न होगा, किन्तु इस सबको समझनेके लिये हमें बल्ब बनानेके वैज्ञानिक सिद्धान्त जान लेने चाहियें।

पहले हमें यह देखना चाहिये कि तन्तुको शून्यमें गरम करने से क्या होता है ? देखा गया कि तन्तु को गरम करनेमें जो शक्ति व्यय होती है वह गर्मी और प्रकाश के रूपमें विस्फुरित होने लगती है । इस शक्तिका बहुत थोड़ा सा अंश तन्तुमें तापचालनकी क्रियामें भी व्यय होता है, जैसे जैसे तन्तु गरम होता जाता है वैसे ही प्रकाश तीव्र होता जाता है । इसलिये बल्ब ऐसा बनाना चाहिए जिससे तन्तु अधिक से अधिक गरम हो सके, किन्तु इतना अधिक गरम भी न हो कि स्वयं तन्तु ही जल जाय और उसका जीवन ही समाप्त हो जाय । तन्तुका जीवन लगभग १००० घंटे माना गया है, अर्थात् १००० घंटों तक बल्ब बिना खराब हुए जलना चाहिए ।

इसलिए तन्तु बनानेके लिये ऐसे पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है जो इतने अधिक तापक्रमको सह सके अर्थात् पिघले या जले नहीं । टंगस्टनमें ये विशेषतायें हैं, क्योंकि इसके पिघलने का तापक्रम बहुत अधिक अर्थात् (३,३८०°/० सेन्टीग्रेड) है ।

जिस तापक्रम तक गर्म होकर तन्तु प्रकाश देने लगता है वह तापक्रम तन्तुके पिघलनेके तापक्रमसे काफी कम है, लेकिन तापक्रमके अतिरिक्त औरभी बहुतसी बातें हैं जिनके कारण तन्तु अधिक समय तक अच्छी अवस्थामें नहीं रह पाता । तन्तु वाष्पीभूत होता रहता है अर्थात् उड़ने लगता है, इसके कारण तन्तु पतला होता जाता है । और बल्बका शीशा भी धुंधला होता जाता है । दूसरी खराबी यह हो जाती है कि तन्तु कमजोर हो जाता है उसमें पहले जैसी शक्ति नहीं रहती जिसके कारण वह बीचमें से टूट जाता है, तन्तुके टूटनेसे बल्ब भी खराब हो जाता है । इन दोनों कारणोंमें वाष्पीभूत होना अधिक मुख्य है । वाष्पीभूत होनेके कारण ही टंगस्टनके तन्तु को—१,००० घंटों तक कार्य लेनेके लिये—२,१००° सें० से अधिक गर्म नहीं किया जाता । कार्बनका पिघलनेका तापक्रम तो बहुत अधिक है—टंगस्टनसे भी अधिक, किन्तु कार्बनका तन्तु टंगस्टनके तन्तुके बराबर भी गरम नहीं किया जा सकता । क्योंकि कार्बन बहुत कम तापक्रम पर ही विस्फुरित होने लगता है और शीघ्र ही वाष्पीभूत हो जाता है ।

बल्बमें शून्य करनेकी आवश्यकता—बल्बमें शून्य रहनेसे यह लाभ रहता है कि तन्तुसे शक्ति विकरणके सिवा और किसी प्रकार खराब नहीं हो पाती । यदि बल्बमें शून्यके स्थान पर कोई ऐसी गैस भरी हो जिसका तन्तु पर कोई रासायनिक प्रभाव न हो तो गर्मी (शक्ति) और भी कई प्रकारसे खराब होती है । इस गैसकी सहायतासे तन्तु अधिक तापक्रम तक गरम किया जा सकता है । क्योंकि गैस अधिक दबाव पर भरे रहनेके कारण तन्तुके विस्फुरित होनेका डर कम हो जाता है । विस्फुरण चारों ओर की गैसके कारण कम हो जाता है । गैसके परमाणु टंगस्टनके अणुओंको तन्तुसे पहलेके समान आसानीसे अलग होनेसे रोक देते हैं । हालांकि गैसकी उपस्थितिके कारण टंगस्टनका तन्तु अधिक तापक्रम तक गरम किया जा सकता है, किन्तु विकरणके अतिरिक्त अब ताप चालन (conduction) और वहन (convention) की क्रिया से भी व्यर्थ होने लगता है ।

ऊपर लिखित विकरण चालन और वहन इत्यादि क्रियाओंका थोड़ा सा यहां वर्णन कर देना अच्छा है । तापचालनमें गर्मी एक कणसे दूसरे कणको छूकर चलती है जैसे ठोस पदार्थ गरम होते हैं । वहनमें ताप गसकी धाराओंके चलने से चलता है । तन्तुके पासकी गैस तापचालन विधिके कारण गरम हो जाती है, गरम होनेसे इसका घनत्व कम हो जाता है । जिसके कारण यह ऊपर उठती है और इसके स्थानको ठंडी गैस आकर पूरा करती है । गरम गैस लगातार ऊपरको उठती रहती है और अन्तमें यह गरम गैस बल्बकी ऊपरी सतहसे आ कर छूती है । इस सतहसे छूकर यह ठंढी हो जाती है और फिर नीचे चली जाती है, और फिर तन्तुको छूकर ऊपर उठती है । इस प्रकार एक पूरा चक्र बंध जाता है । इस क्रियाको वहन (convention) कहते हैं ।

अब जितनी बड़ी कोई वस्तु होगी अर्थात् उसकी सतहका जितना अधिक क्षेत्र फल होगा उतनी ही अधिक गर्मी वायु मंडलमें उस वस्तुसे अलग होगी । क्योंकि वायुके चारों ओर होने के कारण गर्मीसे वायुकी धारायें उत्पन्न हो जायेंगी और गर्मी इससे अलग होने लगेगी । सतह जितनी अधिक बड़ी होगी वायुकी धारा उतनी ही अधिक चौड़ी होगी । इस तरह उस वस्तुसे उतनी ही अधिक गर्मी बाहर निकलेगी । तन्तुके विषयमें यह सिद्धान्त पूर्णतया लागू नहीं होता । लैंग मुइर नामक एक वैज्ञानिकने यह साबित किया कि गर्मी गरम वस्तुसे वहन क्रिया द्वारा एक दम अलग नहीं होती । गरम वस्तु की सतह पर चारों ओर रुकी हुई हवा या गैसकी एक सतह बन जाया करती है, पहले गर्मी ताप चालनकी क्रियाके द्वारा इस

गैसकी तहमें होकर आती है फिर वह गर्मी वहन विधिसे अलग होने लगती है इसलिये गर्मीका निकलना गरम ठोस पदार्थ की सतह पर निर्भर न होकर इस रुकी हवाकी बाहरी सतह पर निर्भर होता है।

इसलिये ऊपर बताये अनुसार गर्मीका निकलना पतले तन्तु की सतह पर निर्भर न हो कर उसके चारों ओरकी रुकी हवा की सतह पर निर्भर होता है। इस रुकी गैसका व्यास तन्तुके व्यासके मुकाबले बहुत अधिक बड़ा होता है। इसलिये गैस से भरे बल्ब में तन्तुका तापक्रम अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। जितना अधिक तापक्रम बढ़ाया जायगा उतना ही अधिक ताप रुकी हवाकी सतहसे विस्फुरित होने लगेगा। अन्त में ऐसी स्थिति आ जायगी कि गरम करने के लिये जितनी गर्मी काममें लाई जायगी उतनी ही गर्मी वहन विधि से अलग हो जायगी और तन्तु का तापक्रम अधिक नहीं बढ़ सकेगा।

इसके अतिरिक्त मोटे तन्तुओंका भी उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि मोटे तन्तु बहुत अधिक शक्तिशाली विद्युत् के लिये ही काममें लाए जा सकते हैं। लेकिन इसके साथ एक और नवीन बात ज्ञात हुई। यदि पतले तन्तुको किसी चीज पर लपेट कर गोल मोड़ लिया जाय तो यह सर्पिल (Spiral) के आकार का होजाता है। इस सर्पिल तन्तुसे गर्मी इसी प्रकार विस्फुरित होती है जैसी उतने सर्पिलाकार मोटे तन्तु से निकलती। इस प्रकार काफी लम्बा तन्तु काम में लाया जा सकता है। विद्युत् में बाधा (resistance) तन्तु की लम्बाई पर निर्भर रहती है इसलिये विद्युत्के मार्गमें काफी बाधा उपस्थित की जा सकती है। इस तरह मोड़कर तन्तुको गैसके भरे बल्बोंमें लगाया जा सकता है। इस विधिसे तन्तुका तापक्रम भी अधिक बढ़ाया जा सकता है और उसके वाष्पीभूत होनेका डरभी कम हो जाता है।

गैससे भरे बल्ब बनाने का सिद्धान्त—गैससे भरे बल्बोंको बनानेका सिद्धान्त यह है। इस विधिसे पूरा पूरा लाभ उठानेके लिए उपयुक्त गैस चुननी चाहिए। छोटे छोटे बल्बों में आरगॅन गैस (कुछ नाइट्रोजन मिली हुई) काममें लाई जाती है। इस गैसके काममें लाये जानेके दो कारण हैं। (१) इस गैसका तन्तु पर रासायनिक प्रभाव बिलकुल नहीं होता और (२) इस गैसका घनत्व अधिक होता है जिसके कारण तन्तुसे अधिक गर्मी व्यर्थ नहीं जाती, यदि उसके स्थान पर कोई हल्की गैस काममें लाई जाती तो तन्तुसे अधिक गर्मी बेकार जाती। नाइट्रोजन इसलिए मिला दी जाती है जिससे अधिक वोल्टकी विद्युत् पर आरगॅनमें विद्युत् संचालन न हो सके। बड़े बड़े बल्बोंमें नाइट्रोजन और आरगॅन करीब करीब एक समानही लाभदायक है। किन्तु प्रायः काममें आरगन और नाइट्रोजन का मिश्रणही लाया जाता है। इसका कारण यह है कि नाइट्रोजन टंगस्टन पर रासायनिक क्रिया करती है। इसलिये अधिक खर्च होने परभी आरगॅन गैसको काममें लाया जाता है।

बल्ब बनानेके लिये आवश्यक पदार्थ तथा बनाने की विधि—बल्बके बनाने में सबसे पहले शीशेके बने अंगों पर ध्यान देंगे। ये कांचके बल्ब, नली और छड़ हैं। यहां इनके बनानेका पूरा पूरा ब्योरा नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह विषय अधिकतर शीशा बनाने और शीशा फूंकनेसे सम्बन्ध रखता है। यहां पर तो इतना जान लेनाही आवश्यक है कि इन अंगोंको बनानेके लिये कौनसा शीशा सबसे अधिक उपयुक्त होगा।

बल्ब अधिकतर क्राउन कांच या सोडे-चूने कांचके बनाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि यह कांच कम तापक्रम परही मुलायम हो जाता है। इस कांचके स्वयं कार्य करने वाली मशीन द्वारा अपने-आप बल्ब फूंककर बनाये जा सकते हैं। इस मशीनसे ही बल्ब बनते हैं और फिर बल्बके अन्दरके अन्य भाग इसके अन्दर बन्दभी कर दिये जाते हैं। अन्दरके अंगों के लिये जैसे-नली और छड़के लिये-यह कांच (क्राउन) काममें नहीं लाया जा सकता। कम ताप क्रम पर कांच विद्युत् चालक नहीं होता किन्तु जैसे-जैसे इसे अधिक गरम किया जाता है वैसे-वैसे यह विद्युत्का चालक होता जाता है। इसके अतिरिक्त यदि सोडा-चूना काममें लाया जाय तो उससे और कठिनाई उपस्थित होती है। इस कांचमें उपस्थित सोडियम (जो सोडेका एक भाग होता है) धातुके रूप अलग होने लगता है जिसके कारण लैम्पके जलनेमें रुकावट उत्पन्न होती है। सीसेका कांच यह कठिनाई उपस्थित नहीं करता। सीसा कांचमें यदि विद्युत्के द्वारा यह धातु अलगभी हो जाय तो यह सीसा होगी, जो कोई हानि नहीं पहुंचायेगी। इसलिये सीसा कांचसे वह नली और घुंडी बनाई जाती है जिसमें तन्तु रोकने वाले तार लगे रहते हैं।

बल्बके अन्दर विद्युत् ले जानेके लिये तारभी लगाने पड़ते हैं। तापके कारण प्रत्येक वस्तु बढ़ती है। किन्तु सब पदार्थ एक जैसे नहीं बढ़ते, पीतल लोहे से अधिक बढ़ता है। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे इन तारों में और बल्बके कांचके तापके कारण बढ़नेमें अधिक अन्तर न हो। यदि दोनोंके बढ़नेमें अधिक अन्तर होगा तो कांच तड़क जायगा और वह बल्ब काम नहीं दे सकेगा। इस लिये ऐसे कांचको चुनना चाहिये जिसकी तापके कारण बढ़न बिजली लेजाने वाले तारोंकी बढ़नके लगभग बराबर हो।

चूना-सोडा कांचको बड़ी बड़ी हौज जैसी भट्ठियोंमें पिघलाया जाता है। इन हौजोंमें ८०-८० (टन) तक पिघला हुआ कांच आजाता है। बल्ब बनानेका कार्य मशीन अपने आप करती रहती है। एक बल्बको बनानेके लिये जितने कांच की आवश्यकता होती है उतना कांच एक नली द्वारा मशीन इस हौजमें से हवा द्वारा खींच लेती है। यह नली उस मशीन की एक बांह जैसी होती है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद हौज के पिघले कांचमें अपने-आप डूबती रहती है। इसके बाद यह कांच अपने आप सांचोंमें चला जाता है। वहां पर अधिक दबावकी हवा अपने असली रूपमें आजाती है। गर्दनके पास जो फालतू कांच लग रह जाता है वहभी अपने आप मशीन द्वारा काट कर अलग कर दिया जाता है।

बल्बके अन्दर कांचकी नली और छड़ जो काममें आती हैं वह भी एक दूसरी मशीनकी सहायतासे अपने आप बनाई जाती हैं। ये नलियां पिघले हुए कांचकी एक घूमने वाली सलाखकी सहायतासे बनती रहती हैं। नली बनानेके लिये जो सलाख काममें लाई जाती है वह खोखली होती है और सलाख बनानेके लिये जो काममें लाई जाती है वह ठोस होती है। इस विधिसे इतनी जल्दी ये नलियां बनाई जाती हैं कि देखने से ऐसा लगता है मानों पहलेसे बनी नली ही सिर्फ काटी जा रही हैं।

जिन तारोंसे विद्युत् बल्बके अन्दर जाती है वे निकल और लोहेसे बनी संकर धातुके बने होते हैं। इनके ऊपर तांबेका पानी चढ़ा रहता है और तांबेके ऊपर पोटेसियम बोरेट रहता है संकर धातुमें लोहे और निकलकी एक परिमित मात्रा रहती है तांबा भी एक खास मोटाई तक चढ़ाया जाता है और पोटेसियम बोरेट भी एक खास मोटाई तक चढ़ाया जाता है। इन सब चीजोंका मिश्रण तथा मोटाई इस प्रकार ठीक की जाती है जिससे तापके कारण बढ़नेमें इन तारोंकी बढ़न और कांचकी बढ़न एक सी हो। जैसे ऊपर बताया गया है यदि कांच और तारोंकी धातुकी बढ़न बराबर नहीं होगी तो कांच तड़क जायगा। इन पदार्थोंमें से कुछ ऐसे हैं जिनकी बढ़न कांचकी बढ़नसे कम है और कुछ ऐसे हैं जिनकी बढ़न कांचकी बढ़नसे अधिक है इसलिये इन सबके मिश्रणसे ऐसा तार बन सकता है कि जिसकी बढ़न ठीक कांचके बराबर हो। बोरेट इसलिये काममें लाया जाता है जिससे पिघला हुआ कांच तारोंसे अच्छी तरह चिपक जाय। यदि बोरेटका परत नहीं होगा तो कांच और तार आपसमें अच्छी तरह नहीं चिपक सकते। यदि यह अच्छी तरह नहीं चिपकें तो उन दोनोंके बीचमें थोड़ी सी जगह रह जाती है। इस जगहके कारण बल्बमें पूर्णतया शून्य नहीं बनाया जा सकता और न गैस ही इनके अन्दर बंदकी जा सकती है।

जिन पतले पतले तारों पर तन्तु सदा रहता है वे मोलिबडिनम धातुके बने होते हैं। इसका कारण यह है कि यह धातु बहुत अधिक तापक्रम (२,६००°/०सें) पर पिघलती है यदि और कम ताप क्रम पर पिघलने वाली धातुके बनाये जांय तो गर्म तन्तुसे छूकर यह भी पिघल जाय और तन्तु इन तारोंसे चिपक जायं।

शून्य करना—यदि शून्य-बल्ब बनाने हों और यदि गैस बल्ब बनाने हों तो दोनोंके लिये ही इस क्रियाकी आवश्यकता पड़ती है। लेकिन दोनों प्रकारके बल्बोंमें शून्य बल्ब बनाने की विधि और सिद्धान्त दूसरे हैं। शून्य करनेमें सबसे अधिक कठिनाई बल्बकी दिवारों तथा अन्य अङ्गोंसे चिपटी हवाको निकालनेमें पड़ती है। जो हवा बीचके हिस्सेमें होती है वह तो आसानीसे खींची जा सकती है किन्तु जो हवा बल्बकी दिवार तथा अन्य अङ्गों के पास लगी होती है वह उनसे एक प्रकारसे उलझी सी रहती है इसलिये यह साधारण रीतिसे अलग नहीं की जा सकती। हवाके इस चिपटनेके लिये साधारणतया "occlusion" शब्द काममें लाया जाता है। आक्लूजन गैसकी उस स्थितिको कहते हैं जब यह या तो किसी ठोस पदार्थके सारे शरीरमें पेवस्त होकर अटकी रहती है या उसकी सतहके कारण अटकी रहती है। ऐसा क्यों होता है ? यह विषय तो स्वयं बहुत विस्तृत तथा कठिन है। यहां पर इसका वर्णन करना ठीक नहीं मालूम होता। मामूली तौरपर काम चलानेके लिये केवल इतनी बात ध्यानमें

रखनी चाहिये कि जिस प्रकार पानीमें गैस या हवा घुली रहती है उसी प्रकार कांच या धातुकी सतह पर हवा घुली-मिली अवस्थामें रहती है। इस चिपकी हुई हवाको कांचकी सतहसे अलग करने के लिये शून्य करते समय बल्बको लगभग ४००° शतांश तक गरम रखते हैं।

शून्य करनेका कार्य भी एक स्वयं चालित मशीन द्वारा किया जाता है। इस मशीनमें बहुत सी नलियां लगी रहती हैं। हर एक नली वायु खींचनेकी मशीनसे जुड़ी रहती है। ये नलियां क्रमानुसार लगाई जाती हैं। पहली नली थोड़ा शून्य कर सकती है, दूसरी उससे अधिक शून्य कर सकती है, तीसरी उससे भी अधिक............। इसलिये पहले बल्ब सबसे पहली नलीसे जोड़ा जाता है। जब इसकी थोड़ी सी हवा खिंच चुकती है तो यह मशीन द्वारा अपने आप दूसरी नलीसे जुड़ जाता है। दूसरी नली थोड़ी और हवा खींच लेती है फिर यह तीसरी नलीसे जुड़ जाता है। इस प्रकार एक खास दबाव का शून्य स्थापति किया जाता है। एक नलीकी सहायतासे यह कार्य सुचारु रूपसे नहीं हो पाता। इसलिये उक्त रीति काममें लाई जाती है किन्तु जितने शून्यकी आवश्यकता बल्बमें पड़ती है—·०००१ मिलीमीटर पारेके दबावके बराबर—उसे इस विधिसे हवा खींच कर करनेमें बहुत खर्चा पड़ता है। यदि इतना शून्य न किया जाय तो स्वयं बल्वकी वायुमें विद्युत् चालनका डर रहता है। इसलिये अधिक शून्य करनेके लिये भौतिक तथा रासायनिक दोनों विधियां काममें लाई जाती हैं। शून्य करने के लिए बल्बको शून्य करने वाले पम्पकी नलीसे जोड़ना चाहिये। बल्ब के कांचको पिघलाकर इस नलीसे जोड़ा जा सकता है। किन्तु इस तरह जोड़नेसे पहले बल्बके अन्दर तन्तु और तन्तुको धारण करने वाले तार तथा बिजली लेजाने वाले तार और कांचकी नली लगा देनी चाहिये। तन्तुको लाल फासफोरस, चिपकने वाला कोई पदार्थ तथा क्रोलाइट या कोई दूसरा फ्लोराइड (flowride) मिलाकर लगाना चाहिये। (क्लोराइट इसलिये लगाया जाता है जिससे गर्म करने पर जब लाल फासफोरस वाष्पीभूत होजाता है और उसके बाद बल्बकी भीतरी सतह पर जम जाता है तो यह इस फासफोरससे मिलकर ऐसा पदार्थ बन जाता है जो पारदर्शी होता है। इन पदार्थों से बने इस प्रकारके बल्ब धुंधले नहीं होंगे। इन मिश्रण को शोषक कहते हैं।

यह मिश्रण अर्थात् शोषक अंतिम तथा आवश्यक शून्य स्थापति रखनेका कार्य पूर्ण करता है। पहले पम्पकी सहायतासे बल्बकी हवा खींच ली जाती है। इसके बाद बल्बको पम्पसे हटा लिया जाता है। इसके बाद बल्बमें विद्युत चलाई जाती है। रुकावटकी सहायता से इतनी मात्रामें ही विद्युत् चलाई जाती है जिससे बल्बका तन्तु अधिक गर्म नहीं होता, केवल इतनाही गर्म होता है कि जिससे तन्तु पर लगा लाल फासफोरस विस्फुरित होने लग जाय। (वास्तवमें बल्ब जितने बोल्टकी विद्युत्के लिये बनाया जाता है, उसका ६०% बोल्टकी ही विद्युत् उसमें चलाई जाती है।) जब फासफोरस विस्फुरित हो चुकता है तो तन्तुमें अधिक बोल्ट वाली विद्युत् चलाई जाती है। इससे तन्तु बहुत अधिक गर्म हो जाता है। (इस समय बल्ब जिस विद्युत्के बोल्टके लिये बनाया जाता है उससे ११०% अधिक विद्युत् चलाई जाती है।) इस दूसरी बारके जलने को 'साफ होना' कहते हैं। इसके पश्चात् तन्तु अपने साधारण जीवनके योग्य हो जाता है। उसमें फिर किसी परिवर्तनकी अथवा रासायनिक या भौतिक क्रियाकी आवश्यकता नहीं रहती। यह सब कार्य भी अपने आप काम करने वाली मशीनके द्वारा होता है जैसे हवा निकालने वाली मशीन स्वयं सञ्चालित होती है इसी प्रकार यह मशीन भी अपने आप क्रमशः सारे कार्य करती रहती है।

इस साफ करनेकी विधिमें क्या क्या रासायनिक तथा भौतिक परिवर्तन होते है, उनका तो ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। किन्तु इस कार्यमें कैसे कैसे परिवर्तन होता होगा उसका कुछ ब्यौरा यहां पर दिया जाता है। सबसे पहले गर्म करनेसे लाल फासफोरस तन्तुसे वाष्पीभूत होकर बल्बकी अन्दरकी सतह पर लाल फासफोरसके रूपमें जम जाता होगा। इस जमनेकी क्रिया में अपने साथ गैसके बहुतसे अणुओं को भी अपनी सतहके नीचे दबा देता होगा और कुछ गैस या वायुके अणु उसकी खुली सतह पर चिपक कर इससे मिल जाते होंगे। यह कार्य कुछ ही मिनटोंमें समाप्त हो जाता है। किन्तु, यदि विद्युत अणुओंके प्रहारके कारण कुछ गैस इस लाल फासफोरस की सतहसे बच निकलती है तो फिर उसको यह लाल फासफोरस पकड़ कर अपने साथ जमा लेता है। इस प्रकार शून्य करनेका यह कार्य इन शून्य बल्बोंके जीवनमें सदा ही चलता रहता है।

यह क्रिया इस प्रकार होती है—विद्युत् अणुओंके प्रभाव

से लाल फासफोरस सफेद फासफोरस में परिणत होजाता है। सफेद फासफोरस फिर वाष्पीभूत होता है और फिर बल्बकी अन्दरकी सतह पर लाल फासफोरसके रूपमें जम जाता है। इस बार जमते समय फिर यह कुछ वायुके अणुओं या गैस को तो अपने नीचे दबा लेता है और कुछको अपनी दूसरी सतहसे चिपका लेता है। इस प्रकार जब कभीभी बल्बमें गैस या हवा स्वतन्त्र होने लगती है तो लाल फासफोरस उपर्युक्त विधिसे उस गैसको अपने साथ चिपका कर बल्बको नुकसान से बचा लेता है।

इस शोषकके उपयोगके विषयमें एक बात याद रखनी चाहिये। इसके बल्ब सदा अधिक वोल्टकी विद्युत्पर काममें लाए जायं। जिस वोल्टपर गैसोंका आयोनाइजेशन (Ionization, अर्थात गैसोंके आयन अलग होने लगते हैं) होने लगता है, उस वोल्टसे अधिककी विद्युतके लिए ही यह बल्व काम दे सकते हैं। साधारण रीतिसे यह याद रखना चाहिये कि ५० वोल्टकी विद्युत्से कम पर ये बल्ब काम नहीं दे सकते।

बल्बोंको टोपी पहनाना—बल्बोंके सिरेपर जो पीतल की टोपी होती है और जिसमें निकले दो तारोंकी ही सहायता से बल्ब होल्डरमें अटकता है, उसको लगानेकी विधि इस प्रकार है। पीतलकी टोपी, पीतलकी चादरकी एक सांचा ढालने वाली मशीनकी सहायतासे दबाकर बनाई जाती है। द्रव-काला-शीशा नामका एक पदार्थ होता है जो इस टोपीमें भर दिया जाता है। यह पदार्थ गर्म करने पर पिघल जाता है और ठंढा होने पर फिर अपनी कड़ी अवस्थामें आजाता है। इस गर्म पिघले पदार्थको टोपीमें भरकर इस टोपीको बल्बके सिरेपर दाब देते हैं। थोड़ी देर बाद ठंढी होकर टोपी अपने स्थान पर अपने-आप जम जाती है।

गैस भरे बल्ब—ऊपर गैसकी सहायतासे शून्य करने की विधिका जो वर्णन दिया गया है वह विधि गैस बल्बोंमें शून्य करने के काममें नहीं लाई जाती। इस विधिमें भी बल्ब से पहली सारी हवा तथा गैस निकालनी होती है। जब तक बल्ब से पूर्वस्थित गैस नहीं निकल जाती तब तक निष्क्रिय (inert) गैसको बल्बों में नहीं भरते। इसके लिये सबसे पहले गर्म करके बल्बके अन्दर वायुके दबावको कमसे कम कर दिया जाता है। उसके पश्चात् ठोस जमी नाइट्रोजन गैस से बल्बको बार बार धोया जाता है। इसके बाद इसमें निष्क्रिय गैस भर दी जाती है। जो गैस (नाइट्रोजन तथा आरगॅन) बल्बमें भरी जाती है वह बिलकुल शुद्ध होती है। इसके लिये बड़ी होशयारी की आवश्यकता है। इस गैस में से ऑक्सीजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा जल-वाष्पको पूर्णतया अलग कर दिया जाता है। यह कार्य विशद रासायनिक विधिसे किया जाता है। इन हानिकारक वस्तुओंमें सबसे अधिक हानिकारक जल-वाष्प है। दूसरी गैसभी इसलिए हानिकारक हैं क्योंकि वे भी हाइड्रोजन (जो सदाही थोड़ी बहुत मात्रामें रहती है अथवा बल्बकी अन्दरकी धातुसे उत्पन्न होती रहती है) से मिलकर जल-वाष्प उत्पन्न कर देती है। जल वाष्पकी तो बहुत थोड़ी मात्राभी बल्बमें बहुत अधिक हानि पहुंचा देती है। इसके कारण बल्बका जीवन बहुत थोड़ा होजाता है। इसका कार्य उत्प्रेरक (Catalyst) का कार्य होता है। (उत्प्रेरक उन पदार्थोंको कहते हैं जो किसी रासायनिक क्रिया में जैसे के तैसे रहते हैं, किन्तु रासायनिक क्रिया के लिये उनका वहां उपस्थित होना आवश्यक होता है। ये वास्तवमें किस प्रकार कार्य करते हैं इसके विषयमें अभी तक पूरी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। रसायन शास्त्रमें इनका स्थान बहुत ऊंचा है क्योंकि ये अनजानमें ही बड़ी कठिनाइयों के बाद ज्ञात होते हैं और इनकी सहायतासे कई घंटों और दिनों में समाप्त होने वाली रासायनिक क्रिया कुछ मिनटोंमें समाप्त हो जाती है।) जल वाष्प किस प्रकार बल्बको हानि पहुंचाता है उसका वर्णन यहां देना उचित होगा, इसकी एक वजह यहभी है कि अभी तक इस त्रुटिका उपचार नहीं हो सका है। यह अबभी बल्बके लिये हानिकारक वस्तुके रूपमें वर्तमान है।

(क्रमशः)

साबुन-विश्लेषण

गतांक से आगे

(ग) **फासफेट**—ऊपर प्राप्त छने द्रवको आयतनात्मक कुप्पीमें स्रवित पानी द्वारा २५० सी सी. कर लो। इसमें से बीकरमें इतना घोल लो कि उसमें फासफेट लगभग ०.७५ ग्राम हो। इसमें अमोनियम हाइड्राक्साइड कुछ अधिकतासे मिलाओ, प्राप्त निक्षेपको पुन: उसी घोलमें घोलनेके लिये कुछ बूंद नाइट्रिक एसिड मिलाकर जोरसे हिलाओ। निक्षेपके घुल जाने पर उसमें १५ ग्राम शुष्क अमोनियम नाइट्रेट मिलाओ। इस घोलको अब गरम करो, इसमें अमोनियम मालिब्डेट घोल इतना मिलाओ कि एक १ डेसीग्राम उपस्थित P_2O_5 के लिये ७० सी सी. मालिब्डेट प्रयुक्त हो। इसे अब १ घंटे तक ६५°श० पर पचाओ, फास्फोरिक एसिडके निक्षिप्त हो जाने पर ऊपरके द्रवमें थोड़ा सा मालिब्डेट मिला कर देखो कि और निक्षेप तो नहीं आता छान लो, १०%अमोनियम नाइट्रेट घोलसे धो लो। छारण-पत्रके निक्षेपको अमोनियम हाइड्राक्साइड (१:१) और गरम पानीमें घोल लो, घोलका आयतन १०० सी सी. से अधिक नहीं होना चाहिए। इस घोलको हाइड्रोक्लारिक एसिडसे उदासीन करो, सूचक लिटमस पत्र काममें लाओ।

इस घोलको ठंढा करके इसमें ब्यूरिटसे धीमे धीमे मैग्नेशिया मिश्रण (५५ ग्राम मैग्नेशियम क्लोराइड, $Mgcl_2$. ६$H_2$०, को पानीमें घोल कर १४० ग्राम अमोनियम क्लोराइड और १३०.५ सी सी. अमोनियम हाइड्राक्साइड—वि० गु० ०.९०—मिला कर पानी से १ लिटर कर लो) प्रति सेकंड एक बूंद मिलाओ और घोल को जोरसे हिलाओ—यह मिश्रण इतना मिलाओ कि प्रत्येक डेसीग्राम उपस्थित फास्फोरिक एसिडके लिये १५ सी सी. मग्नेशियम मिश्रण प्रयुक्त हो। मैग्नेशियम मिश्रणके मिला चुकने के १५ मिनट बाद १२ सी सी. अमोनियम हाइड्राक्साइड (वि. गु. ०.०९०) मिलाओ, इसे लगभग २ घंटे रखा रहने दो, जिससे ऊपरका द्रव बिल्कुल साफ हो जाय। छानो, निक्षेप को हल्के अमोनियम हाइड्राक्साइड (१:१) से तब तक धोते रहो जब तक कि प्रक्षालित द्रव क्लोराइड रहित न हो जाय। शुष्क करो, इसका दहन पहले कम तापमान पर फिर ऊंचे तापमान पर करो; यह अधिक उपयुक्त होगा कि दहन विद्युत्-भट्ठी में ९५०°–१०००° श० पर किया जाय। शुष्क कारकमें ठंढा करके तोल लो। यह $Mg_2P_2O_7$ है, गणना द्वारा P_2O_5 की प्रतिशतकता जान लो।

(घ) **सलफेट**—५० ग्राम साबुन ले कर पानीमें घोलो, इसमें ३५ सी सी. हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर साबुनका विच्छेदन करो। अघुलनशील पदार्थ तथा चार्बिकाम्लोंको छान कर पृथक् कर दो। यदि घोलमें सिलिकेट हों तो घोलमें से सिलिकेट वाष्पी-करण द्वारा और छारण द्वारा विधि (ख) की तरह अलग कर दो। सिलिकेट रहित द्रवको पानीसे १७५ सी सी. करके ५ सी सी. हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाओ और उबालो। इस उबलते हुए घोलमें २० सी सी. १०%बेरियम क्लोराइड घोलकर बूंद २ मिलाओ। निक्षेपको पूर्ण रूप प्रक्षिप्त करनेके लिये कुछ देर उबालते रहो, फिर एक घंटे तक ७०° श० का तापमान रख कर निक्षेपको बैठ जाने दो। इसे अब गूच मूषासे छान कर दहन करो, ठंढा करके तोल लो। यह बेरियम सलफेट है, गणना द्वारा सोडियम सलफेटकी मात्रा निकाल लो।

(च) **क्लोराइड**—५ ग्राम साबुनको ४० सी सी. गरम पानीमें घोल कर हलके सलफ्यूरिक एसिड (१:४) से विच्छेदित करो। अघुलनशील पदार्थ और चार्बिकाम्लोंको छान कर पृथक् करदो। छने द्रवका आयतन १०० सीसी. कर लो इस घोलको क्लोरीन रहित स/, सोडियम हाइड्राक्साइड घोलसे उदासीन करो, फिर स/, सलफ्यूरिक एसिडसे इतना अम्लीय करो कि उदासीन घोलसे अम्लकी १ बून्द ही अधिक हो। १ सी सी. १०% पोटाशियम क्रोमेट सूचकके तौर पर मिला कर स/१० सिलवर नाइट्रेट-$AgNO_3$—से विलेयमापन करो बीच बीचमें जोरसे हिलाते रहो। विलेयमापनकी सुविधाकी दृष्टिसे घोलमें थोड़ा सा गोंद (Gum arabic) मिला दो।

$$\text{सोडियम क्लोराइड}\% = \frac{\text{विलेयमापन} \times ०.००५८५}{\text{नमूनेका भार}} \times १००$$

पोटाशियम क्लोराइड $\%$ = $\frac{\text{विलेयमापन} \times 0.00745}{\text{नमूनेका भार}} \times 100$

(छ) **बोरेट**—सिलिकेटकी उपस्थिति और अनुपस्थिति से मात्रा-निर्धारणकी विधिमें भी विभिन्नता आ जाती है। दोनों प्रकारकी विधियां नीचे दी जाती हैं।

(१) **सिलिकेटकी अनुपस्थितिमें**—५ ग्राम साबुन बीकरमें लेकर ५० सी सी. पानी और ५० सी सी. स/१ सलफ्यूरिक एसिड मिला दो। इसमें थोड़ा सा मिथाइल ऑरेञ्ज मिला कर देखो कि घोल स्पष्ट रूपसे अम्लीय है, यदि अम्लीय न हो तो अम्ल तब तक मिलाओ जब तक कि घोल स्पष्ट रूप से अम्लीय न हो जाय। इसे गरम करो, परन्तु आवश्यकता से अधिक गरम कदापि न करो। चार्बिकाम्ल छान कर पृथक् कर लो। छने द्रवमें स/१ सोडियम हाइड्राक्साइड इतना मिलाओ कि मिथाइल ऑरेञ्जके प्रति उदासीन हो जाय। यह देख लो कि उदासीन करनेमें कितना क्षार व्यय हुआ है। अब घोलमें थोड़ी सी बूंद फिनोलफ्थलीन मिला कर सूचकके अन्तिम बिन्दु तक स/१ सोडियम हाइड्राक्साइडसे विलेयमापन करो। इसमें १ ग्राम उदासीन मैनीटोल मिलाओ और धीमे धीमे विलेयमापन करो। अब फिर एक ग्राम मैनीटोल मिलाकर विलेयमापन करो, इस क्रियाको तब तक दोहराते रहो जब तक कि मैनीटोल सूचकके अन्तिम बिन्दु पर आगे क्रिया करना बन्द नहीं करता। यदि बोरेटके साथ फासफेट भी उपस्थित हों तो विलेयमापनसे पूर्व मैनीटोलके साथ १ ग्राम सोडियम क्लोराइड भी मिला देना चाहिये। फिनोलफ्थलीन डालनेके बादसे जितने सी सी. सोडियम हाइड्राक्साइड घोलके व्यय हुए हों उन्हें लिख लो।

१ सी सी. स/१ सोडियम हाइड्राक्साइड = ०.०५०३ ग्राम $Na_2B_4O_7$ फासफेट उपस्थित होने पर उसके कारण विलेयमापनमें अशुद्धि होनेकी सम्भावना रहती है क्योंकि बोरेट के साथ फासफेटका भी विलेयमापन हो जाता है, इसलिये फासफेटकी मात्रा निर्धारण करके उसे घटा देना चाहिए।

(२) **सिलिकेटकी उपस्थितिमें**—५ ग्राम साबुन एक तुली हुई प्लाटिनमकी प्यालीमें लेकर ज्वाला पर दहन करो जिससे सभी कार्बनिक पदार्थ जल जायं, परन्तु यह ध्यान रहे कि सम्पूर्ण लवण राखमें परिवर्तित न होने पाये। इस प्याली को ठंढा करके बीकरमें रख दो, १०० सी सी. पानी बीकरमें डाल कर उबालो। जिससे प्यालीके सम्पूर्ण पदार्थ छुट कर बीकरमें आ जायं। बीकरके सभी पदार्थोंको ५०० सी सी. की स्रवण कुप्पीमें डाल कर १५ सी सी. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला दो, शुष्क होने तक स्रवण करो। स्रवित पदार्थको पुनः स्रवण कुप्पीमें डाल कर स्रवण करो। जिस बीकरमें स्रवित पदार्थ इकट्ठा किया गया हो, उसीमें कुप्पीके बचे अवशेषको ठंढा करके धोकर डाल दो। इस द्रवको छारण-पत्रसे छान कर अवशेषको अच्छी प्रकार धो लो। छने द्रवमें कास्टिक सोडाकी छड़ी रखो, द्रवके मिथाइल ऑरेञ्जके प्रति लगभग उदासीन होने पर कास्टिक सोडाकी छड़ी निकाल लो। इसे अब स/१ NaOH से मिथाइल ऑरेञ्जके प्रति पूर्ण उदासीन करके घोलमें कुछ बूंद फिनोलफ्थलीन मिला दो। अब स/१ NaOH से क्रिया (१) की तरह मात्रा-निर्धारण करो।

(ज) **पर बोरेट**—१ ग्राम साबुन ठंढे पानीमें घोल कर स/१ सलफ्यूरिक एसिडके २० सी सी. से अम्लीय करो, घोल का आयतन लगभग १०० सी सी. कर लो। इसका विलेयमापन स/१० पोटाशियम परमैनगनेटसे करो।

१ सी सी. स/१० पोटाशियम परमैनगनेट = ०.०००८ग्रामO_2

= ०.००७६९४ ग्राम $NaBO_3.4H_2O$

= ०.००४०६ ग्राम $NaBO_3$

अन्य पदार्थ—ये अन्य पदार्थ ग्लिसरीन, खाण्ड, निशास्ता, कार्बोलिक एसिड, आलकोहल आदि होते हैं जो कि प्रायः साबुनोंमें पाये जाते हैं।

(क) **ग्लिसरीन**—इसकी मात्रा-निर्धारणके समय खाण्ड और निशास्ता भी उपस्थित हो सकते हैं, इसलिये इसकी उपस्थिति और अनुपस्थितिमें भिन्न भिन्न प्रकारसे परीक्षा करते हैं।

(१) **खाण्ड और निशास्ताकी अनुपस्थितिमें**—२५ ग्राम साबुनका नमूना ले कर १०० सी सी. पानीमें घोलो, इसमें २५ सी सी. सलफ्यूरिक एसिड (१:४) मिला कर साबुन का विच्छेदन करो, इस घोलको आवश्यकतासे अधिक गरम मत करो। चार्बिकाम्ल छान कर पृथक् कर लो, छने द्रवका आयतन २५० सी सी. कर लो। इसमेंसे ५० सी सी. एरलेनमेयर कुप्पीमें डालो; इस कुप्पीमें पहलेसे ०.७४५६ ग्राम शुष्क बहुत सिद्ध पोटाशियम बाइक्रोमेट, १० सी सी. पानी और १५

सी सी. सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड पड़ा हो। कुप्पीको वर्तुलाकार कांचसे ढँक कर वाष्प-ऊष्मक पर दो घंटे तक ६३° से १००° श० पर गरम करो। यदि इस उपचयनमें घोल नीला हो जाय अथवा बादमें विलेयमापन ४ सी सी. से कम हो तो पोटाशियम बाइक्रोमेट १·४६१२ ग्राम काममें लाना चाहिये अथवा नमूना थोड़ा लेना चाहिये। घोलको ठंडा करके उसका विलेयमापन प्रमाणित फैरस अमोनियम सलफेट (३०० ग्राम प्रति लिटर) से करो। सूचक पोटाशियम फैरिसायनाइड वाह्य रूपसे काममें लाओ। इसके बाद एक रिक्त विलेयमापन अर्थात् नमूनेको छोड़कर सभी पदार्थोंकी उपरोक्त प्रकारसे क्रिया करके फैरस-अमोनियम सलफेटमें विलेयमापन कर लो।

$$\text{ग्लिसरीन}\% = \frac{२\ (\text{रिक्त विलेयमापन} - \text{नमूना विलेयमापन}}{\text{रिक्त विलेयमापन}}$$

नोट—फैरस अमोनियम सलफेट घोल की शक्ति इतनी होनी चाहिये कि घोलके १६·५ से २०·० सी सी. में उपस्थित लोहेको पूर्ण रूपसे उपचित करनेके लिये ०·७४५६ ग्राम पोटाशियम बाइक्रोमेट ही पर्याप्त हो। और इस घोलमें प्रति लिटर १०० सी सी. सलफ्यूरिक एसिड भी मिला लेना चाहिये।

(ii) निशास्ताकी उपस्थितिमें और खाण्डकी अनुपस्थित में—२५ ग्राम साबुन लेकर ७०° श० के १०० सी सी. गरम पानीमें घोलो। पानीमें अघुलनशील पदार्थ को छान लो, अवशेषको उसी ७०° श० के गरम पानीसे दो बार धो लो। छने द्रवमें २५ सी सी. सलफ्यूरिक एसिड (१:४) मिलाकर साबुनका विच्छेदन करो। चार्बिकाम्ल छानकर पृथक् कर लो, छने द्रवका आयतन २५० सी सी. कर लो। विधि (i) की तरह विलेयमापन करो।

(iii) खाण्ड और निशास्ताकी उपस्थितमें—२५ ग्राम साबुनको ७०° श० के १०० सी सी. गरम पानीमें घोलो, अघुलनशील पदार्थ निशास्ता को छान कर पृथक् करलो अवशेष को उसी ७०°२४० के गरम पानी से दो बार धो लो। छने द्रवमें २५ सी सी. सलफ्यूरिक एसिड (१:४) मिलाकर घोलको २० से ३० मिनट तक उबालो जिससे खाण्ड पूर्ण रूपसे विपर्यस्त हो जाय और उपस्थित आलकोहल भी निकल जाय। इसमें २.२३६८ ग्राम पोटाशियम बाइक्रोमेट २० सी सी. पानी और २५ सी सी. सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड मिलाकर उपरोक्त विधि (i) से गरम करो। अब इसके ५० सी सी. में (ख) विधिके निर्देशानुसार खाण्ड की मात्रा निर्धारण करनेके लिये ५० सी सी. घोलका विलेयमापन (i) विधि के अनुसार करो।

$$\text{ग्लिसरीन}\ \% = \frac{(\text{स२रिक्त विलेयमापन} - \text{नमूना विलेयमापन})}{\text{रिक्त विलेयमापन}}$$

$$- १७·५१\ \text{भ}$$

स=प्रयुक्त पोटाशियम बाइक्रोमेट का भार (ग्रामोंमें)
भ=५० सी सी. घोलमें विपर्यस्त खाण्ड का भार (ग्रामोंमें)

(ख) खाण्ड—२५ ग्राम साबुन को ७०° श० के १०० सी सी. गरम पानीमें घोलो, घोल को छानो, अघुलनशील निशास्ता को दो बार उसी गरम पानीसे धो लो। छने द्रवके साबुनके विच्छेदन तथा खाण्डके विपर्यासके लिये हाइड्रो क्लोरिक एसिड (१:१) काम में लाओ। घोलको छानकर सोडियम हाइड्राक्साइड से उदासीन कर लो, और घोल का आयतन २५० सी सी. कर लो।

एक शंक्वाकार कुप्पीमें फेहलिंग घोल सं० १ और घोल सं० २* प्रत्येक सीसी. लेकर ३० सीसी. पानी मिला दो, उबालो। ब्यूरिटसे थोड़ा थोड़ा करके उपरोक्त घोल मिलाओ, बाह्य सूचक पोटाशियम फैरोसायनाइड काममें ला सकते हैं, अन्तः सूचक मिथाइलीन ब्ल्यू काम में ला सकते हैं। कापर सलफेटके पूर्ण रूपसे अपचित होनेपर घोल डालना बंद कर दो।

१० सी सी. फेहलिंग घोल (५ सी सी. घोल सं० १, ५ सी सी. घोल सं० २) ०.०५ ग्राम विपर्यस्त खाण्डसे अपचित होता है।

(ग) निशास्ता—साबुनका इतना नमूना लो कि कमसे कम ३ ग्राम निशास्ता अवशेष में प्राप्त हो जाय। छानने के बाद प्राप्त निशास्तेको बिना सुखाये एरलेनमेयर कुप्पीमें गरम पानीके साथ डाल दो, इसका आयतन १५० सी सी. करके २० सी सी. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला दो। कुप्पी

---

* फेहलिंग घोल सं० १—६९·२७८ ग्राम शुद्ध स्फटिकाकार कॉपर सलफेट पानीमें घोलकर १ लिटर कर लो।

फेहलिंग घोल सं० २—३४६ ग्राम रोशिले लवण (सोडियम पोटाशियम टारटरेट) और १४२ ग्राम सोड़ियम हाइड्राक्साइड पानीमें घोलकर १ लिटर कर लो।

पर लम्बरूप से घनीकारक लगाकर २½ घण्टे तक उबालो, फिर सोडियम हाइड्राक्साइडके साथ उदासीन करके ठण्ढा करो। इसका आयतन २५० सी सी. करके द्राक्षोजकी मात्रा निर्धारण (ख) विधिके अनुसार करो।

१० सी सी. फेहलिंग घोल=०.०५ ग्राम द्राक्षोज

द्राक्षोजके भारको ०.६० से गुणा करने पर निशास्तेका भार मालूम हो जायगा।

(घ) **आलकोहल**—साबुनकी ज्ञात मात्रा पानीमें घोल कर उसे एक कुप्पी में डालकर सलफ्यूरिक एसिड से उसका विच्छेदन करो। चार्बिकाम्ल पृथक् करनेके बाद प्राप्त छने द्रव का कम तापमान पर (लगभग ८०° श० पर) स्रवण करो। प्रथम ५० सी सी. स्रवितका विशिष्ट गुरुत्व माप कर तालिका द्वारा आलकोहलकी प्रतिशतकता जान लो।

(ङ) **कार्बोलिक एसिड**—१०० ग्राम साबुन गरम पानीमें घोलो, इसमें कास्टिक सोडा घोल मिलाकर तीव्र क्षारीय कर लो। इसमें सोडियम क्लोराइड का संतृप्त घोल मिलानेसे जो साबुन पृथक् हो उसे पृथक् कर लो, अवशिष्ट द्रवको उबाल कर उसमें फिर सोडियम क्लोराइडका संतृप्त घोल मिलाकर बचा हुआ साबुन भी पृथक् कर दो। द्रवको छानकर उबाल कर थोड़े आयतनमें कर लो, इसमें शुष्क सोडियम क्लोराइड तब तक मिलाते रहो जब तक कि नीचे लवण अनघुली अवस्थामें न बैठने लगे। इसे अब सलफ्यूरिक एसिडसे अम्लीय कर लो। इसमें ५० सी सी. ईथर मिलाकर हिलाओ और पृथक्कारक कीपसे ईथर घोलको पृथक् कर लो, अवशेष द्रवमें २५ सी सी. ईथर और मिलाकर हिलाकर ईथर घोल अलग कर लो। ईथर घोलोंको मिलाकर ईथरका स्रवण करो, कार्बोलिक एसिडको वाष्प भट्ठीमें भार स्थिर होने तक गरम करो। ठण्ढा करके तोल लो।

द्रव साबुन—ये साबुन चार्बिकाम्लों के पोटाश लवण हैं। इनका विच्छेदन H_2SO_4 की अपेक्षा Hcl से किया जाता है। क्षार को हमेशा K_2O के रूपमें उपस्थित करते हैं। शेष मात्रा-निर्धारण की विधियां उपरोक्त ही काम दे सकती हैं।

परिशिष्ट

अ

अघुलनशील–Insoluble
अणु भार–Molecular weight
अनार्द्र–Anhydrous
अनुड़नशील–Non-volatile
अपचयन–Reduction
अम्ल–Acid
अवशेष–Residue
असाबुनीभवनीय–Unsaponifiable
असाबुनीभूत–Unsaponified

आ

आयतन–Volume
आर्द्रता–Moisture
आलकोहलशुद्ध–Absolute alcohol

उ

उड़नशील–Volatile
उत्प्रेरक–Catalyst
उदासीन–Neutral
उपकरण–Apparatus
उपचयन–Oxidation

क

कार्बनिक पदार्थ–Organicmatter
कीप–Funnel
कुप्पी–Flask
क्षार–Alkali
,, दाहक–Caustic
,, समस्त–Combined
,, स्वतन्त्र–Free
क्षारीय–Alkaline

ख

खाण्ड–Sugar
,, विपर्यस्त Invert.

घ

घनीकारक–Condenser
घोल–Solution
,, फहलिंग–Fehling

च

चर्बी–Fat
चार्बिकाम्ल–Fatty acid
,, स्वतन्त्र–Free

छ

छना द्रव–Filterate
छानण पत्र–Filtr Paper

ज

जल-ऊष्मक–Water-bath
जल-विच्छेदन–Hydrolysis
जाइलीन–Xylene
जान्तिवक–Animal
ज्वलन–Combustion

ट

ट्विचेल विधि–Twichell Process

त

ताप–Heat
तापमान–Temperature
तेल–Oil

द

दहन–Ignition
द्रवित–Fused
द्राक्षोज–Glucose

ध

धातु–Metal

न

नमूना संग्रह–Sampling
नलिका–Tube
ग्राहक–Receiving
निक्षेप–Precipitate
निरुद–Anhydride
निशास्ता–Starch
निष्कर्षण–Extraction

प

परीक्षक–Reagents
पानी–Water
प्रक्षालित–Washed
पारद–Mercury
पारदर्शक–Transparent
पृथक्कारक–Separating
प्याली–Dish
प्रमाण–Standard
प्रमाणित–Standardised

ब

बिरोजा–Resin

भ

भट्ठी–Oven
" जल–Water
" वायु–Air
" वाष्प–Steam
" विद्युत–Furnace, Electric
" संवृत्त–Muffle

म

मात्रा–Amount Quantity
" निर्धारण–Estimation
मिश्रण–Mixture
मूषा–Cruclible
" गूच–Gooch

र

राख–Ash
रासायनिक–Chemical
रिक्त–Blank

ल

लवण–Salt
लीड योजना–Lead scheme

व

वानस्पतिक–Vegetable
वाष्पीकरण–Evaporation
विच्छेदन–Decomposition
विपर्यास = Inversion
विलेयमापन–Titration
विशिष्ट गुरुत्व (वि.गु.)–Specific gravity
विश्लेषण–Analysis
वोल्फ विधि–Wolf Process

श

शंक्वाकार–Conical
शुष्क कारक–Desiccator

स

संतृप्त–Saturated
संवर्धक पदार्थ–Fillers
समलयन–Emulsion
समास–Compound
साबुन–Soap
" द्रव–Liquid
साबुनीकरण–Saponification
सूचक–Indicator
सुहागा–Borax
स्रवण–Distillation

—०—

सहायक पुस्तकें

1. Standard Methods of Chemical Analysis, Vol. II *By* Scott & Furman.
2. Applied Chemistry Vol. I *By* Tinkler & Masters.
3. Organic Analysis *By* Sherman.
4. Chemical Technology and Analysis of Oils, Fats & Waxes. Vol. III. *By* Dr. Lewkowitsch.
5. Chemical Industries *By* D. M. Newitt.
6. Quantitative Chemical Analysis *By* Clowes & Coleman.
7. Vegetable Fats and Oils *By* Jamieson.

साबुन का विश्लेषण-पट

(लीड-योजना के अनुसार)

५ ग्राम साबुनको १००° श० पर शुष्क करके उड़नशील पदार्थ और आर्द्रता का मात्रा-निर्धारण करो।

आर्द्रता और उड़नशील पदार्थ प्राप्त करनेके बाद पैट्रोलियम ईथरसे निष्कर्षण करो।

अवशेष में साबुन तथा अन्य घटक होंगे, इसका निष्कर्षण आलकोहलसे साक्सलेट उपकरणमें करो।

ईथर निष्कर्षण घोलका स्रवण करके ईथर पृथक् करो। अवशेष को १००° श० पर शुष्क करो और भार स्थिर होनेपर तोल लो इस अवशेष में स्वतन्त्र चर्बी और सुगन्धित तेल होंगे।

आलकोहलिक घोलमें साबुन, रेजिन तथा ग्लिसरीन हैं। इसमें कुछ बूंद फिनोलप्थलीन मिलाकर प्रमाण H_2SO_4 घोलसे उदासीन करो, यदि स्वतन्त्र क्षार होंगे तो सूचकके रंग से मालूम हो जायंगे।

स्वतन्त्र क्षारका विलेयमापन प्रमाण अम्लघोलसे करो।

पानी मिलाकर उबालो, आलकोहल निकल जायेगा। H_2SO_4 मिलाकर उबालो, चार्बिकाम्ल पृथक् हो जायंगे इन्हें धोकर पृथक् करलो।

जलीय भागमें अम्ल ग्लिसरीन होंगे, इसका सोडियम हाइड्रेटसे विलेयमापन करो।

चार्बिकाम्ल पृथक् करते समय प्रयुक्त अधिक H_2SO_4 की मात्रा ज्ञात होजायगी। व्यय हुए H_2SO_4 की मात्रा से साबुनीभूत क्षार की मात्रा गणना द्वारा निकाल लो।

विलेयमापनके बाद प्राप्त द्रवका वाष्पीकरण करो, पीछे प्राप्त शुष्क अवशेषको १ भाग क्लोरोफार्म २ भाग शुद्ध आलकोहलके साथ गरम करो। इस घोलको तुली हुई प्यालीमें वाष्पीकरण करके शुष्क करो। अवशेषको ग्लिसरीन रूपमें तोल लो।

नोट—प्राप्त ग्लिसरीन का दहन करो राखका भार ग्लिसरीन में से घटा दो

तलकी सी तहमें चार्बिकाम्ल और रेजिन अम्ल होंगे, इन्हें ११०° श० पर सुखा कर तोल लो।

इसका समभाग लेकर २० सी सी. शुद्ध आलकोहलमें घोलो और उसमें NAOH घोल मिलाकर साबुनीकरण करो, फिनोलप्थलीन द्वारा यह देखलो कि क्षार अधिकतामें है। इसे उबालो ठण्ढा करो, डाट लगे सिलण्डरमें डालकर ईथरसे इस का आयतन १०० सी सी. करलो। इसमें बारीक चूर्ण $AGNO_3$ मिलाकर १० मिनट तक हिलाओ और स्थिर होने दो।

निक्षेप में सिल-वरके स्टीयरेट्, या मिरेट्, और ओलियेट होंगे।

घोलमें सिलवर रेजिनेट होंगे। घोलमें से ५० सी सी. छान कर २० सी सी हल्का HCl (१:२) मिलाकर विच्छेदन करो। AGCL के नीचे बैठ जाने पर द्रवको नितारकर छान लो, छने द्रवका वाष्पीकरण करो और शुष्क करो। अवशेषको ११०° श० पर भार स्थिर होने तक गरम करो, ठण्ढा करके तोल लो। यह रेजिन है। प्रत्येक १० सी सी वाष्पीकृत घोलके हिसाब से ०.००२३६ ग्राम घटा दो, जिससे ओलियिक एसिडकी अशुद्धिका शोधन हो जाय।

घुले इस रेजिनकी मात्राको चार्बिकाम्ल और रेजिन मिश्रण में से घटाने से चार्बिकाम्लकी मात्रा ज्ञात हो जायगी।

साबुन का विश्लेषण-पट

अवशेष

अवशेष में NA_2CO_3, NACL, NA_2SO_4, सोडियम सिलिकेट, निशास्ता तथा अन्य अघुलनशील पदार्थ हो सकते हैं। इसे ६० सी सी. ठण्डे पानी में घोलो, छान लो।

छने द्रवमें NA_2CO_3; Nacl, NA_2SO_4, सोडियम सिलिकेट होंगे। इस घोलको १०० सी सी. करके चार भागों में कर लो।

NA_2CO_3

घोलका विलेयमापन स/१ H_2SO_4 से करो और गणना द्वारा NA_2CO_3 की गणना करलो। अथवा CO_2 गैस को पोटाश कास्टिक में घोल कर भार वृद्धि से गणना द्वारा NA_2CO_3 को जान लो।

NACL

इस घोलमें $AGNO_3$ मिलाकर AG CL पूर्ण निक्षिप्त करके शुष्क करके तोल लो। अथवा $AGNO_3$ से विलेयमापन द्वारा इस की मात्रा जान लो

NA_2SO_4

घोलको HCL से अम्लीय करके $BACL_2$ मिलाओ और $BA\ SO_4$ निक्षिप्त करलो। इसे शुष्क कर के तोल लो। गणना द्वारा NA_2SO_4 की मात्र निकाल लो।

SIO_2

घोलमें HCL मिलाकर वाष्पीकरण द्वारा शुष्क करो। अवशेष को पानीमें घोल कर छान लो। प्राप्त अवशेषको १५०° श० पर शुष्क करके तोल लो। इसमें ५ सी सी हाइड्रोक्लोरिक और ५ बूंद H_2SO_4 मिला कर वाष्पीकरण द्वारा शुष्क करो तोल लो। भार में कमी SIO_2 को सूचित करेगी

अवशेष

अवशेषमें निशास्ता तथा अघुलनशील पदार्थ हैं। १००° श० पर सुखाकर निशास्ता तथा अघुलनशील पदार्थ तोल लो।

इस अवशेषको पानीमें डाल कर १ सी सी तीव्र H_2SO_4 मिलाकर २½ घंटे तक उबालो। अब अम्लकी अधिकताको NAOH के हल्के घोलसे उदासीन करके फेहलिंग घोलसे द्राक्षोज की मात्रा निर्धारण करो। द्राक्षोजके भारको ०.९० से गुणा करने से निशास्ते की मात्रा ज्ञात होजायगी।

निशास्तेका भार घटा देने से शेष अघुलनशील पदार्थ का भार प्राप्त होगा।

मधु-मक्खियों का पकड़ना

[लेखक—पं० दयाराम जुगडान, भूतपूर्व अध्यक्ष, सरकारी मधुवटी, ज्योलीकोट]

मधुमक्खियों के प्रत्येक छत्तेमें एक रानी होती है, जो अन्य मधुमक्खियों से बड़ी होती है। यही अण्डे देती है जिससे नई मक्खियां उत्पन्न होती हैं। दूसरे कुछ नर होते हैं जो रानी मक्खीसे छोटे परन्तु अन्य मक्खियोंसे बड़े होते हैं, और तीसरे कई हजार 'कमेरी' मक्खियां होती हैं, यही मक्खियां मकरंद लाती हैं जिसके गाढ़ा हो जाने पर मधु बनता है, ये ही बाल बच्चोंकी सेवा करती हैं, ये ही छत्ते बनाती हैं और घरका अन्य काम काज करती हैं।

मक्खियोंकी जातियां

भारतीय मधुमक्खियों की चार जातियां होती हैं। सबसे बड़ी मक्खियां सारंग कहलाती हैं। इनके छत्ते बहुत बड़े होते हैं और उनमें मधुभी बहुत निकलता है परन्तु ये मक्खियां बहुत क्रोधी स्वभावकी होती हैं और इनके डङ्कमें बहुत विष होता है। इनके लिपट जाने पर मनुष्य क्या हाथी घोड़ों तककी मृत्यु हो गई है इसलिये ये मक्खियां पाली नहीं जातीं। सारंगसे कुछ छोटी मक्खियां वे होती हैं जिन्हें खैरा कहते हैं, ये बहुत भोले स्वभावकी होती हैं और काफी मधु एकत्रित करती हैं; ये ही साधारणतः पाली जाती हैं। तीसरी और चौथी जातियां वे हैं जिन्हें क्रमानुसार भुनगा और छोटी भुनगा कहा जाता है। चित्र (१) में चारों जातिकी मधु मक्खियां दिखलाई गई हैं।

खैरा मक्खियोंका स्वभाव ऐसा है कि वे अन्धेरा पसन्द करती हैं और अक्सर पेड़ोंके खोखलोंमें दीवालके दरारोंमें छत्ते बनाती हैं। जहां उन्हें काफी स्थान मिलता है वहां वे अक्सर चार पांच या अधिक छत्ते बनाती हैं (चित्र २)। इनके पालने के लिये लोग अक्सर खाली बक्स या ढोल रख देते हैं। इन्हें वैज्ञानिक रीतिसे पालनेके लिए विशेष रीति से बने बक्सों का उपयोग किया जाता है जिन्हें अङ्गरेजीमें हाइव कहते हैं। इसके लिए हिन्दीमें करण्ड शब्द बहुत उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि संस्कृतमें 'करण्ड' शब्द का अर्थ बक्स भी है और मधुमक्खियों का छत्ता भी है।
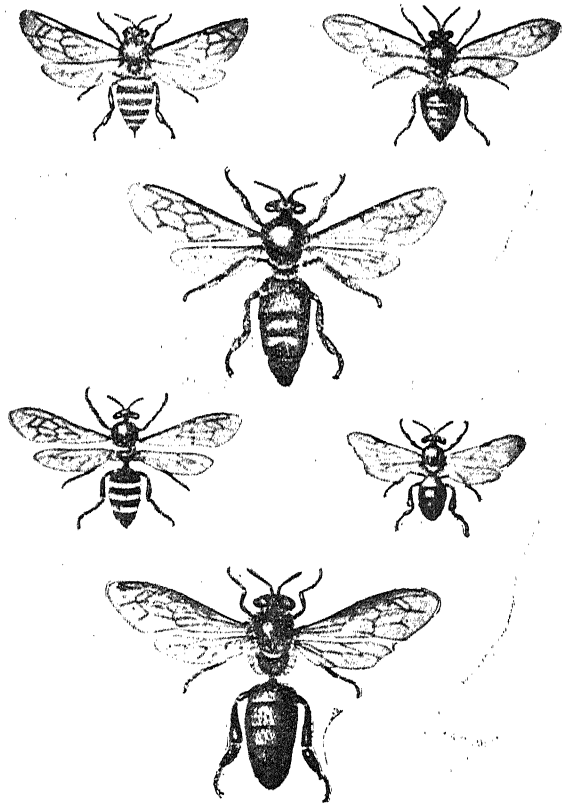
चित्र १—भारतीय मधुमक्खियां

ऊपरकी लाइनमें बाईं ओर खैरा कमेरी है, दाहिनी ओर खैरा नर और उसके नीचे खैरा रानी। तीसरी पंक्तिमें बाईं ओर भुनगा कमेरी और दाहिनी ओर छोटी भुनगा कमरी है। सबसे नीचे सारंग कमेरी है।
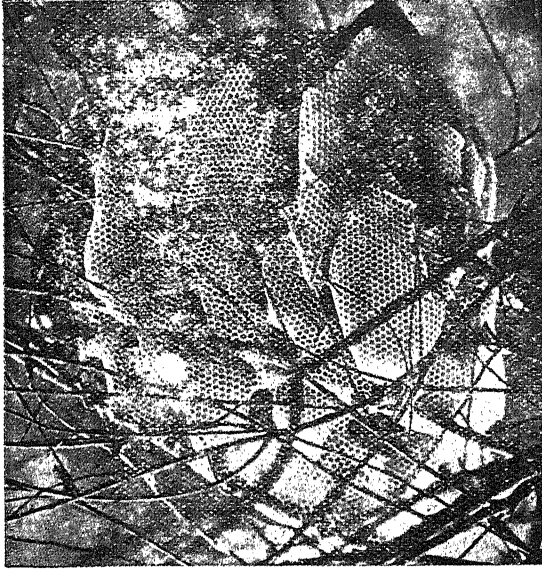
चित्र २—खैरा मक्खीका छत्ता।

खैरा मक्खी कई-एक आस-पास समानान्तर छत्ते लगाती है। गँवार लोगोंका विश्वास है कि छत्ते सदा सात होते हैं; इसलिए वे इस मक्खी को 'सातकोंचवा' कहते हैं।

छत्तमें नीचेके कोठे अर्थात् छोटे छोटे छः पहले कोष्ठ अण्डोंके लिए रहते हैं और ऊपरके कोष्ठोंमें मधु रहता है (देखो चित्र ३) अण्डे बच्चे वाले कोष्ठोंकी अवर्द्धित आकृति (चित्र ४) में दिखाई गई है।

आधुनिक करण्ड इन दिनों खरीदे जा सकते हैं। ज्योली कोट जिला नैनीतालके सरकारी एपियरीमें ये विकते हैं। वहां मधुमक्खियां भी बिकती हैं परन्तु बहुतसे लोग किसी प्राकृतिक छत्ते को डाल समेत काट लाकर (चित्र ५) या जालीदार कपड़ेमें केवल मक्खियोंको बांध लाकर (चित्र ६) उन्हें करण्डों में बसाते हैं। इस लेखमें करण्डोंमें मक्खियोंके बसानेका ब्योरे वार वर्णन दिया जायगा। करण्डों की बाहरी सूरत चित्र (७) से स्पष्ट हो जायगी जिस में ज्योलीकोट में मधुमक्खी पालन का एक दृश्य दिखाया गया है।

चित्र ३—का विवरण

रानी मक्खी का जन्म।

बाईं ओर, ऊपरके भागमें, कुछ कोष्ठ बंद हैं इनमें शहद भरा है। उनपर एक कमेरी मक्खी बैठी है। उसके नीचे वाले कोष्ठमें अंडे और ढोले हैं। इनसे भी नीचे वाले कोष्ठोंमें पराग भरा है। सबसे ऊपर, बीचमें, एक छत्ते से दूसरे छत्ते तक जाने के लिए रास्ता छूटा है जिसमें मक्खी (क) आरही है। इसके नीचे वाले कोष्ठ शहदसे भरे हैं जो कोष्ठ औरोंसे बड़े हैं उनमें नर उत्पन्न होंगे। मूंगफली के आकारके जो घर लटकते हुए दिखलाये गये हैं उनमें रानियां पैदा होती हैं। चित्रमें ऐसे छः घर हैं, जिन में एक घर (ख) बन्द है (इसमेंसे कुछ दिनोंमें रानी निकलेगी), एक घरसे मक्खी (ग) निकल रही है और दो घरों के (घ) मुँह खुले हैं, जिनमें से निकलीं रानियाँ उड गई हैं। नीचे (च) कमेरी है जो रानी उत्पन्नकरने के लिए ढोलेको राजसी भोजन खिला रही है।
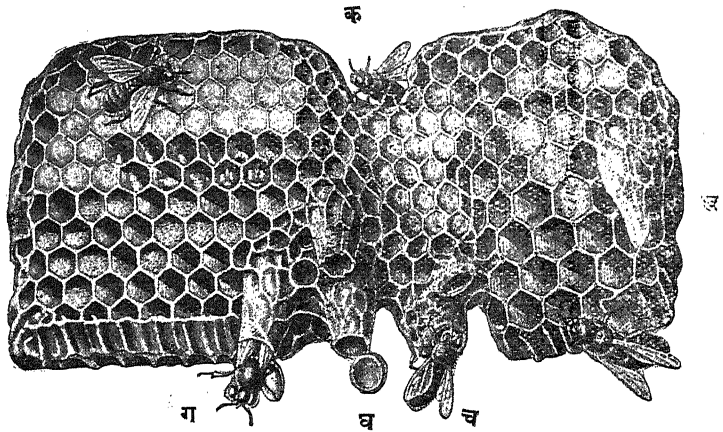
चित्र ३

रानी मक्खियोंका पर अक्सर काट दिया जाता है देखो (चित्र७) जिससे वे भाग न सकें। शेष मक्खियां अपनी रानीको छोड़कर कभी नहीं जातीं। हां वे किसी बच्चेको विशेष भोजन खिलाकर नई रानी उत्पन्न कर सकती हैं और उसके साथ भाग सकती हैं। परन्तु रानीके बड़े होनेके कारण रानी उत्पन्न करनेके लिए मधुमक्खियोंको मूंगफली सा घर बनाना पड़ता है जो तुरन्त पहचाना जा सकता है (देखो चित्र ३)। इनके नष्ट कर देनेसे या अन्य उपाय करनेसे, जिनका फिर कभी विवरण दिया
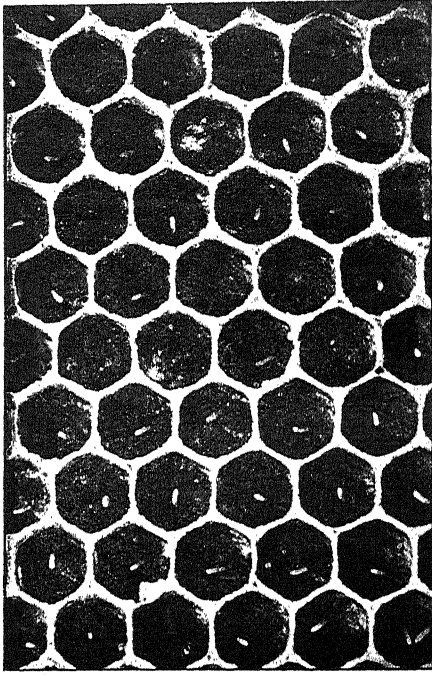
चित्र-४ छत्तेका वह भाग जहां नवीन अंडे रहते हैं।

असली छत्तेसे बड़े पैमानेपर यह चित्र बनाया गया है। देखो चित्र ४ के नीचेके बायें कोने वाले कोष्ठमें दो अंडे हैं और दाहिने वाले कोनेमें अंडेसे कीड़ा निकल आया है।

जायगा, नवीन रानीका उत्पन्न होना और मक्खियोंका भागना रोका जा सकता है। हां! यदि पुरानी रानी बूढ़ी हो गई है तो नवीन रानी उत्पन्न होने देना चाहिये।

मधुमक्खी की तलाश

जैसा ऊपर बताया गया है मधुमक्खियोंको पानेकी एक सस्ती रीति यह है कि किसी प्राकृतिक छत्ते की मक्खियों को पकड़ लिया जाय। परन्तु यह रीति नौसिखियों के लिए सुगम नहीं है, क्योंकि बिना अनुभवके मक्खियोंका शिकार करनेके लिए जाने पर संभवत: मक्खियोंका शिकार बनना पड़ेगा। हां, इसमें सन्देह नहीं कि अनुभवी मधुमक्खी-पालक को जङ्गली मक्खियोंको पकड़ लानेमें सच्चे शिकार का आनन्द आता है।

चित्र ५—प्राकृतिक छत्तेको काटकर मक्खियाँ इच्छानुसार स्थानमें ले जायी जा सकती हैं।

यदि छत्ता देख लिया गया हो तब तो कोई बात नहीं है, नहीं तो मक्खियोंके पीछे पड़ कर देखना चाहिए कि वे मकरंद इकट्ठा करके कहां जाती हैं। मकरंदकी ऋतुके पहले, या उसके बाद उनके छत्तेका पता पानेके लिए कहीं चीनीका शीरा फैला देना चाहिए। चीनीके बदले आधा मधु आधा पानी रहे तो अधिक अच्छा होगा। तब मक्खियां उधर जल्द आयेंगी। बिना पानी मिलाया मधु बहुत गाढ़ा होता है। उसे भर पेट पी लेने पर मक्खियां ठीकसे उड़ नहीं पातीं।

प्राकृतिक छत्ते दीवालमें या किसी वृक्षमें या किसी पुराने बक्स आदिमें लगे हो सकते हैं। इन सबोंसे आधुनिक करंड हाइवमें मक्खियां ठीक एक ही तरहसे स्थानांतरित (traosper) की जा सकतीं। इसलिए इन पर अलग अलग विचार किया जायगा।

चित्र ६—प्राकृतिक छत्तेसे मक्खियाँ जालमें फँसाकर भी इच्छानुसार स्थानपर ले जायी जा सकती हैं।

स्थानांतरित करनेके लिये उपयुक्त समय—क्या प्रत्येक ऋतुमें मधुमक्खी कुटुम्बोंकी बदली की जा सकती है? नहीं। ऋतुका प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है जिसका ख्याल रखना अत्यन्त आवश्यक है।

मक्खी कुटुम्बोंकी बदलीकी सबसे अच्छी ऋतु वह है जब उनके घरोंमें अण्डे बच्चे भी कम हों और मधु भी कम हो। इसलिये बसंतके आरम्भमें बदलीका सबसे अच्छा समय है। उस समय मधुमक्खी कुटुम्बोंमें साधारण संख्यामें बच्चे पलना प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि थोड़े ही दिन पहले जाड़े की ऋतु समाप्त हुई रहती है। जाड़ेमें न तो रानी ही घरमें अण्डे देती और न मक्खियां ही कुछ काम कर सकती हैं। ऐसी ऋतुमें बदली करनेसे मक्खियां भी नहीं मरतीं और उन्हें कष्ट भी कम होता है फिर बाहर फूल खिलना आरम्भ हो जाता है, जिससे अच्छी तरह भोजन मिल जानेके कारण स्थानांतरित होने पर भी शीघ्र वे अपने कार्यमें जुट जाती हैं।

मधुमक्खी कुटुम्बोंकी बदली दिनमें किसी भी समयकी जा सकती है, परन्तु स्मरण रहे दिन साफ हो, आसमानमें बादल न घिरे हों और आंधी अथवा तेज हवा भी न चल रही हो। दूसरे धूप कड़ी न हो, गरमीकी ऋतुमें ११ बजे से २ बजे दिन तक का समय छोड़ देना चाहिये। सुबह ८ बजेसे १० बजे तक और शामको २ से ५ बजे तक स्थानकी बदली की जा सकती है।

अधिक गर्मी और अधिक जाड़ेमें मक्खियां भी कष्ट अनुभव करती हैं। जब आसमान बादलोंसे घिरा रहता है, पानी बरसता रहता है या तेज हवा चलती रहती है तो मक्खियां अपने घरसे बाहर नहीं निकलतीं।
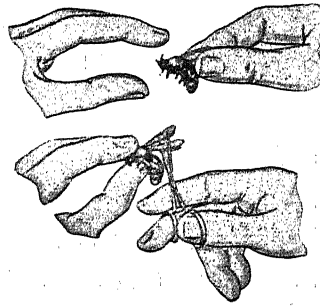
चित्र ७—रानीका पर काटना
पर काटकर रखनेसे रानीके भाग जानेका डर नहीं रहता, परंतु पर काटते समय ध्यान रखना चाहिए कि रानीका पेट जराभी न दबे; उसे पर या धड़के सहारे पकड़ना चाहिए।

स्थानान्तरित करनेके लिये सामग्री—

(१) करंड (मधुखण्ड हटाकर), (२) तार लगे हुए १० चौखटे;(३) भीतरी ढक्कन, (४) छोटी हथौड़ी, (५) मक्खियोंका बुरुश, (६) छोटी छोटी ४-६ कीलें, (७) साधारण चाकू, (८) टार्च, (८) और मक्खी परिवारों के साथ काम करने का पूरा सामान और कुछ रस्सी।

दीवालके खोखलोंमें मक्खी पकड़ना—काम प्रारम्भ करनेसे पहिले धुवांकर (देखो चित्र नं० ६) नियमानुसार जला लो, मक्खियोंके साथ काम करनेके लिए उचित वस्त्र पहिनो, अब खुर्पेसे उस दीवारको पीछेसे तोड़ो जहांसे मक्खियां निकालनी हों, करंडको मक्खियोंके छत्तेके ठीक नीचे रक्खो। ढक्कन हटाकर अलग कर दो। मधुखण्ड तो पहलेही अलग कर दिया गया था।
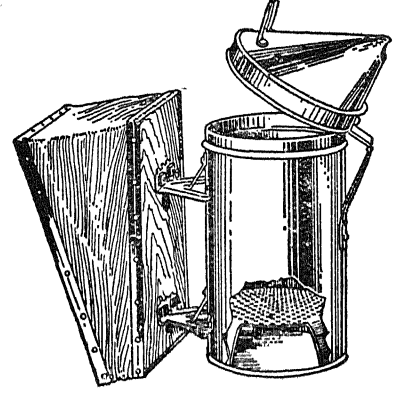
चित्र ८—ज्योलीकोट मधुवटी (एपियरी) में कृत्रिम छत्ते। लेखक छत्तोंका निरीक्षण कर रहा है।

चित्र ९ धुआँकार

अब शिशु-खण्ड-गृहसे चौखटोंको निकालकर पासही में रखदो। करंडके दरवाजेकी लकड़ी (द्वार दण्ड) को इस करवट रक्खो कि द्वार बंद हो जाय, जिस छत्तेसे आप मक्खियां निकाल रहे हों सबसे पहले उसे देखो कि उसमें कोई ऐसे छेद तो नहीं हैं जहां रानीके घुसकर गुम हो जाने का भय हो। यदि घरमें कोई ऐसे छेद दिखाई पड़ें तो उन्हें गोबर या गीली मिट्टीसे बंद करदो। अब धुआंकर उठाकर मक्खियोंको इस प्रकार धुआं दो कि वे अपने छत्ते को छोड़ दें। कई छत्ते हों तो पहले एक किनारे वाले छत्तेसे मक्खियों को हटाओ। अब इस छत्तेको जिससे मक्खियां हट गई हैं चाकूकी सहायतासे सीधा दीवारसे काटकर अपनी हथेलीमें रख लो और थोड़ी सी मक्खियां जो इस छत्तेमें आगई हों उनको बुरुशसे करंडमें डाल दो। काटे हुए छत्तेको तारयुक्त चौखटेपर सुतली या केलेके रेशोंसे तारके साथ इस तरह बाँधो कि छत्तेका चाकूसे काटा गया किनारा चौखटेके माथेकी ओर रहे। अब इस छत्तेयुक्त चौखटको एक किनारे शिशु खण्ड में रखकर ऊपरसे भीतरी ढक्कन रख दो। इसी प्रकार घरके सब छत्ते काटकर शिशु-खण्डमें रख दो। छत्ता काटनेका काम समाप्त करने पर पुराने घरसे मक्खियों को हाथसे निकाल निकाल कर शिशुखण्डमें भर दो, ऊपर से ढक्कन रख दो। लगभग सब मक्खियां घरसे निकल चुकनेके बाद भी थोड़ी सी मक्खियां पुराने घरमें घूमती दिखाई पड़ेंगी। ये अलग अलग पकड़ कर करंडमें नहीं डाली जा सकतीं। इसलिये थोड़ी देर तक चुप रहो, इन्हें तब तक न छेड़ो जब तक कि वे भुण्डमें न हो जांय। अब इन्हें निकाल कर करंडमें रक्खा जा सकता है। अब करंडकी दरवाजेकी लकड़ी को इस करवट रक्खो कि द्वार खुल जाय और मक्खियां भीरत बाहर आ जा सकें।

इसके पश्चात् पेंदी सहित करंडको उठाकर इस प्रकार पुराने घर के पीछे (जिधरसे घरको तोड़ा गया है) सटाओ कि करंडका दरवाजा पुराने घरसे ठीक मिल जाय। ऐसा करने से यह लाभ होगा कि जो मक्खियां काम करने बाहर गई होगीं वे जब लौटकर अपने घरमें वापिस आवेंगी तोअपने सारे कुटुम्ब को करंडमें पाकर वे भी करंडमें घुस आवेंगी। इस समय मुख्य बात जो ध्यान देने योग्य है, वह है रानी की उपस्थिति। यदि रानी सुरक्षित करंडमें चली गई होगी तो मक्खियां स्वयं बिना किसी दिक्कतके करंडमें चली जायंगी, और यदि रानीने करंडमें प्रवेश न किया हो तो मक्खियोंमें एक प्रकारकी विचित्र भिन-भिनाहट उत्पन्न हो जायगी और जो मक्खियां करंडमें गई भी होंगी वे शीघ्रतासे बाहर निकलना आरम्भ कर देंगी। इसलिये रानीका पता फिर पुराने घरमें लगाना पड़ेगा पाने पर वह निकालकर नये घरमें रक्खी जा सकती है।

पेड़ोंके खोखलों से मक्खियाँ पकड़ना—यदि मक्खियोंके छत्ते पेड़के खोखलेके भीतर हों तो तेज कुल्हाड़ी से लकड़ी इतनी काट दो कि छत्ते दिखलाई पड़ने लगें। फिर ऊपर की रीतिसे काम करो। यदि छत्ते बहुत ऊंचेपर हों तो उस स्थान पर करंडको पहुंचाने अथवा रखनेके बारेमें कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। यह ढंग हर एक दशामें अलग अलग होता है। इसलिये इस विषयमें आपको अपनी समझ और अनुभव पर निर्भर रहना चाहिये। यदि रानी आपके करंडमें चली गई होगी तो अन्य मक्खियाँ भी स्वयं अन्दर चली जायेंगी। यदि मक्खियां खोखलेसे बाहर आने में हिचकचाती दिखाई दें तो धुयेंका इस्तेमाल कीजिये। शुरूमें थोड़ा धुआं पहुंचाइये और बादमें अधिक। कभी तो मक्खियां उसी पेड़ की किसी टहनी अथवा पासके दूसरे पेड़में झुंड बनाकर बैठ जाती हैं। इससे मालूम होता है कि रानी वहां उड़कर चली गई है। अब आप इस झुंडको पकड़कर अपने करंडमें डाल सकते हैं। कीड़े लगे हुए अथवा गंदे छत्तोंको पेंदे में न रक्खा जाय।

करंडको पेड़ तक पहुंचाने अथवा ऊंचा नीचा करनेके लिये रस्सीका इस्तेमाल किया जा सकता है।

स्थानांतरित करनेकी दूसरी रीति—पहले कुल्हाड़ी से खोखलेका मुंह काटकर साफ कर दीजिये। अब छत्तोंको काटकर चौखटोंमें नियमानुसार बांध कर करंडमें रख दीजिये और करंडके ऊपर फिर भीतरी ढकना रख दीजिये। इसके पश्चात् करंडको कपड़ेसे इस प्रकार ढक दीजिये कि उसमें मक्खियोंके आने जानेके द्वारके अतिरिक्त और कोई छेद खुला न रहे। तब करंडको खोखलेके पास रस्सी आदिसे अच्छी तरह बांध दीजिये। इसी हालतमें अपने करंडको ३-४ दिन तक उसी स्थानपर छोड़ दीजिये। ऐसा करनेसे खोखलेकी मक्खियां करंडमें चली जायेंगी, इसके बाद आप करंडको अपने यहां ला सकते हैं। इस रीतिमें कठिनाई यह है कि यह आवश्यक है कि ३-४ दिन तक जब आपका करंड उस स्थान पर रहता है उसे कोई छेड़े नहीं। जब तक आपको इस बातका भरोसा न हो तब तक इस ढंगको इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

एक मार्गी द्वार (बी-इसकेप) लगाकर—तीसरी रीति जो मक्खियोंको पेड़के खोखलोंसे निकालनेकी है वह यह है कि जिस खोखलेमें मक्खियां हों उसके दरवाजेपर बी-इसकेप लगा दीजिये। यदि पेड़पर मक्खियोंका दरवाजा बड़ा हो तो गीली मिट्टीसे उसे इतना छोटा कर देना चाहिये कि केवल बी-इसकेपके लिये जगह रह जाय। बी-इस्केपको मक्खियोंके दरवाजेपर लगानेके लिये गीली मिट्टीका इस्तेमाल करना चाहिये, ताकि यह निकल कर जमीन पर न गिर जाय। यदि पेड़में मक्खियोंके मुख्य द्वारके अतिरिक्त अन्य छेद हों जिनसे मक्खियां बाहर-भीतर जा सकें तो उन्हें बन्द कर देना चाहिये। मक्खियों के दरवाजे पर जहां आपने बी-इस्केप लगाया है। उससे ठीक एक हाथ ऊपर कीलके सहारे टोकरी लटका देनी चाहिये और टोकरी में कुछ चीनीका शरबत अथवा मधु छिड़क देना चाहिये। बी-इस्केपके द्वारा खोखले से मक्खियां बाहर निकल सकती हैं लेकिन बाहरसे भीतर नहीं जा सकतीं। इस प्रकार खोंखलेसे जो मक्खियां बाहर निकलती हैं वे क्रमशः टोकरीमें जमा होती रहती हैं। टोकरीका मुंह रूमालसे बन्द करके आप अपने यहां ले जा सकते हैं जहां उनको करंडमें रक्खा जा सकता है। यदि इस प्रकार एकही दिन में पेड़से सब मक्खियां न निकल सकें तो ३-४ दिन तक बी-इस्केपका तरीका इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह निकाली हुई मक्खियोंको मक्खियोंके दूसरे घरसे मिलाना अधिक अच्छा होगा। मिलानेकी रीति आगे बतलाई जायगी।

मधु मक्खियोंको घर लेजाना—चाहे किसी भी तरह से मधु-मक्खियां पकड़ी जांय, स्मरण रखना चाहिये कि कभी कभी अनुकूल ऋतुमें मक्खियां रात तक काम करती रहती हैं, और चांद निकल आने पर घरका रास्ता लेती हैं। इसलिये ऐसी ऋतुमें रातके ९ बजे तक करंड आदिको उसी स्थान पर रखना चाहिये जब तक कि बाहर गई हुई सब कमेरियां घर में न आ जांय। यदि करंड आदिको इससे पहले ही उस स्थानसे हटा दिया जायगा तो ये मक्खियां वापिस आने पर कुछ देर इधर उधर भटकेंगी और फिर मर जायंगी। करंड को ले जानेके पहले इसका मुंह बन्द कर देना चाहिये ताकि मक्खियां बाहर न निकल सकें। अब करंडमें रक्खे हुए छत्ते और मक्खियों युक्त चौखटों को एक किनारे हटाकर दूसरी तरफ अंतिम चौखटे की बगलमें दोनों तरफ हथौड़ीसे छोटी छोटी दो कीलें ठोंक दो ताकि ले जाते समय करंडमें चौखटोंके हिलनेसे छत्ते टूट न सकें। ऊपर से हवादार ढक्कन रखकर करंडको बंद करनेके बाद रस्सियोंसे अच्छी तरह बांध दो ताकि दूसरे दिन सुबह ले जानेमें सुभीता

रहे। दूसरे दिन घरको जहां ले जाना चाहो ले जाकर उचित स्थान पर रख दो। उसी दिन शामको करीब ४½ बजे करंड का पैकिंग खोल कर पेंदीको कपड़ेसे बिल्कुल साफ कर देना चाहिये। चौखटोंमें बंधे छत्ते यदि रास्तेकी हलचल से कुछ ढीले पड़ गए हों तो उन्हें कस देना चाहिये। अब यह देखो कि करंडमें मक्खियां कितने चौखटों पर हैं—यदि कोई चौखटे खाली हों तो उन्हें निकाल लो। शेष सब चौखटोंको करंडमें ही करंड के दरवाजे की तरफ हटा दो, और अंत में झूठा चौखटा (डमी) लगा दो ताकि छत्तों वाले भागमें खाली जगह न रह सके। वहां खाली जगह रहने से एक तो ठण्ढसे बच्चोंके मर जानेका भय रहता है और दूसरे, घरके खाली स्थान में 'मोमी-कीड़े' wax-ruth जैसे भयानक शत्रु को जगह मिल जानेका डर रहता है। तबदीली के समय मक्खियों को आहार दिया जाना चाहिये क्योंकि उस समय वे बाहर जाकर भोजन नहीं ला सकतीं।

ढोलमें पाली हुई मक्खियों को आधुनिक करंडों में बदलना—लकड़ीके सन्दूक और ढोलसे आधुनिक करंडों में मक्खियोंको तबदील करनेके लिये यह देख लेना आवश्यक है कि वह जगह जहां पर करंडोंमें मक्खियोंको रखना है उस स्थान से कितनी दूर है जहांसे आप मक्खियोंको निकालेंगे। यदि दोनों जगह की दूरी एक मीलसे कम हो तो तबदीलीके लिये ढोलको कहीं दूर ले जाना पड़ता है। अन्यथा उन्हें अपना पुराना स्थान याद रहता है और वे मकरन्द सञ्चय करके वहीं लौटती हैं। ढोल को दूर ले जानेके लिये रातमें करीब ९-१० बजे ढोलका मुंह बंद कर दो ताकि मक्खियां भीतरसे बाहर न निकल सकें। दूसरे दिन सुबह ढोल को बोरे में बंद करके उस स्थान पर ले जाओ जहां आप तबदीली करना चाहते हों। ढोलको निश्चित स्थान पर रखनेके बाद बोरे को हटा दो, हो सके तो ऐसी ही दशामें ढोलको इस जगह पर कुछ दिन रहने दो, नहीं तो उसी दिन शामके करीब ३½-४ बजे भी तबदीली की जा सकती है। ढोलको खूब धुआं देकर उल्टा कर दो। नए करंड को तारयुक्त चौखटों सहित उसी स्थान पर रख दो जहां पर ढोल है, करंडमें चार-पांच चौखटोंकी पूरी छतनीव लगी होनी चाहिये। अब ढोल का वह ढकना निकाल दो जो इस समय ऊपर है और अन्दर इस तरह धुआं दो कि मक्खियां छत्तोंको छोड़कर नीचेके भागमें चली जांय। इसके पश्चात् छत्तोंको काटकर तारयुक्त चौखटोंमें बांधकर करडमें रख दो। नए करंडका भीतरी ढक्कन अलग रख दो और ढोलको इस प्रकार खड़ा करो कि खोला हुआ भाग ऊपरकी तरफ आ जाय। फिर इसके ऊपर भीतरी ढक्कनको रख दो। इसके बाद ढोलके दाहिनी और बाईं दोनों तरफ हथौड़ीसे धीरे-धीरे करीब १० मिनट तक खटखटाते रहो। कुछ देरके बाद घरकी सब मक्खियां ऊपर रक्खे हुए ढक्कनके नीचे जमा हो जाएंगी। अब इस ढक्कन को मक्खियों सहित उठाकर करंडमें रख दो मक्खियां अपने आप करंडमें रक्खे हुए छत्तोंमें फैल जाएंगी। यदि ढोलसे सब मक्खियां न निकली हों तो हथौड़ीसे खट-खटानेका यही तरीका फिर इस्तेमाल किया जा सकता है जो ऊपर बताया गया है। ऐसा करने पर भी यदि ढोलमें कुछ मक्खियां रह गई हों तो ढोलका मुंह करंडके दरवाजे पर लगा देना चाहिये। इससे ढोल की बाकी मक्खियां अपने साथियों को नए घरमें देखकर करंड में चली जायंगी। यही तरीका सन्दूकमें लगाये छत्तेकी मक्खियोंको भी करंडोंमें तबदील करनेका है तबदीलीके बाद ढोलको उस स्थान से हटा देना चाहिये।

मिस्टर जेम्सकी रीति—ढोलको धुआं देनेके बाद उल्टा कर दो और एक तरफका ढक्कन निकाल दो। अब इसे इस प्रकार खड़ा करो कि खोला हुआ भाग ऊपरकी ओर आ जाय। किसी आधुनिक करंडकी पेंदी हटाकर बाकी सारे करंड को ढोलके ऊपर रख दो। करंडमें रक्खे हुए सबके सब चौखटों में छतनीव लगी होनी चाहिए। ढोलमें फिर धुआं डालो और उसे हथौड़ीसे धीरे धीरे पीटना शुरू करो जैसा ऊपर बताया गया है। जब तक नीचेसे ढोलकी सारी मक्खियां ऊपर करंडमें न पहुँच जांय ऐसे ही खटखटाते जाओ। अब करंडको उठाकर देखो कि नीचेसे सब मक्खियां उसमें पहुँच गई हैं या नहीं। यदि मक्खियां करंडमें पहुँच गई हों तो उसको उठाकर उसकी पेंदी पर रख दो और दरवाजेकी लकड़ी (द्वार-दण्ड) को उचित ढंगसे लगा दो ताकि मक्खियां सदाकी भाँति बाहर-भीतर आ जा सकें।

नोट—तबदीलीके समय केवल शिशुखण्ड और ढक्कन ही करंडमें रहें। मधुखण्डकी आवश्यकता नहीं। फिर उन रीतियों में जिनमें छत्तोंको काटकर खाली फ्रेमोंमें बांधा जाता है शहद भरे या खाली छत्तोंको करंडमें नहीं रखना बदलना चाहिये। शहद भरे छत्तोंसे मधु निकाल कर इन खाली छत्तों और शेष

खाली छत्तोंको पिघला डालना चाहिये। इसमेंसे मोम प्राप्त हो जायगा। तबदीली के समय केवल अण्डे बच्चों वाले छत्तोंको ही करंडमें रखना चाहिये। बच्चोंके निकल आने पर इन छत्तोंको भी हटा देना चाहिये क्योंकि अधूरे और काटे हुए छत्तोंको घरमें रखनेसे कोई लाभ नहीं। इनसे चौखटोंमें छत्तोंकी बनावट भी टेढ़ी हो जाती है और ऐसे पुराने छत्तोंसे नर भी आवश्यकतासे अधिक उत्पन्न होते हैं। छतनीव लगे चौखटे ही भविष्यके लिये लाभदायक होते हैं।

ढोलके बिना ही तबदीली—करंडमें ६ चौखटोंमें छतनीवहो और १ चौखटा किसी चालू करंडसे ऐसा लिया जाय जिसमें बच्चे पल रहे हों। ऊपरसे बी-इसकेप लगा पटरा रख दो। ढोलको धुआं देकर इस तरह उल्टा कर दो कि ढक्कन निकाला हुआ भाग ऊपरकी तरफ हो जाय, ऊपरसे फिर कोई तख्ता रख दो जैसा कि पहले बताया गया है। अब ढोलको हथौड़ीसे खट-खटाना आरम्भ करो जब तक कि कुछ मक्खियां और रानी तख्ते के नीचे झुण्ड न बना लें। इस तख्तेको, जिसमें मक्खियों ने झुण्ड बनाया है उठाकर करंडके दरवाजेके आगे रख दो और इस बातकी जांच करो कि इन मक्खियोंमें रानी है या नहीं। यदि रानी न निकली हो तो ढोलको ऊपर लिखी रीतिसे फिर तब तक खटखटाओ जब तक रानी न निकले। रानी और मक्खियोंको करंडमें घुस जाने दो। अब ढोलको जिसमें आधी मक्खियां और सब छत्ते हैं करंडके ऊपर जिसपर बी-इसकेप वाला पटरा लगा है इस तरह रक्खो कि ढोलका मुंह बी-इसकेपको चारों तरफसे ढक ले। बी-इसकोप वाले पटरे और ढोल के मिलान पर मक्खियोंके निकलनेके लिये कहीं झरी रह जाय तो उसको गीली मिट्टीसे बंद कर दो। ढोलकी मक्खियां धीरे-धीरे बी-इसकेपके रास्ते नीचे करंडमें चली जायंगी जहां रानी है। तीन सप्ताहके बाद आप देखेंगे कि ढोलमें एक मक्खी भी शेष न रहेगी। अब ढोलको ऊपरसे हटा दो और उसके छत्तोंको काटकर मोम बना लो।

इस रीतिमें यह लाभ है कि बिना छत्तोंको काटे ही तबदीली हो जाती है। छत्तोंको न काटे जानेसे शहद भी नहीं टपक सकता—इससे मधु लूटनेके लिये अन्य मक्खियों के धावे का डर भी नहीं रहता और चींउटियां भी घरमें नहीं घुसतीं। इसके अतिरिक्त काटे हुए छत्तोंको करंडोंमें नहीं रखना पड़ता, इसलिये करंडोंमें टेढ़े छत्तोंके बनने का कोई डर नहीं रहता।

मि० हैडनकी रीति—मक्खियों वाले ढोलको अपनी जगहसे चार-पांच फुट हटा दो और उसके स्थान पर करंडको जिसमें चौखटोंमें छतनीव लगी हो रख दो। मक्खियों वाले ढोलको धुआँ देकर उल्टा कर दो। ऊपर लिखी गई रीतिसे हथौड़ीसे खट-खटाकर ढोलसे ⅔ हिस्सा मक्खियां रानी सहित निकालो। जिस तख्ते पर मक्खियां निकली हों उसको उठाकर करंडके दरवाजेके पास रख दो। इस समय यदि रानीको ध्यान पूर्वक देखा जाय तो पता लग सकता है कि वह करंडमें मक्खियोंके साथ जा रही है या नहीं। यदि रानी कुछ मक्खियों के साथ करंड में चली जाय तो ढोलमें काफी मक्खियां छोड़ देनी चाहियें ताकि ये मक्खियां उस घरके छत्तोंमें पैदा होने वाले बच्चोंकी देख-भाल अच्छी तरह कर सकें। अब ढोलको ठीक उसी हालतमें कर दो जैसा यह पहले था और उसे उठाकर करंडके दरवाजेसे ठीक दो फुट पीछे इस तरह रक्खो कि ढोल का दरवाजा करंडके दरवाजेसे ठीक विपरीत दिशामें हो जाय। २१ दिन तक ढोलको इसी स्थितिमें रहने दो। तब तक छत्तों से नई कमेरियां सब निकल आएंगी। अब घरमें नर-बच्चों (Drone brood) के सिवा कुछ शेष न रहेगा।

अधिक निश्चिन्तता के लिये करंड के दरवाजे पर ऐसी जाली लगाई जा सकती है जिसके द्वारा कमेरियां आ जा सकतीं हैं परन्तु नर नहीं आ जा सकते। ये बिकते हैं, इन्हें अङ्गरेजीमें drone excluding entrance guarb कहते हैं। यदि ढोल में कुछ कमेरियां रह गई हों तो उन्हें ऊपर लिखी गई रीति से ढोल से तख्ते पर निकाल कर करंड के दरवाजे पर रख दो। पुराने घरसे छत्तोंको काटकर मोम बना देना चाहिये।

प्रकृति की दूरदर्शिता

[लेखक—श्री अशोककुमार एम. ए]

किस प्रकार जानवर परिस्थितिके अनुकूल अपनेको बनाने की आदत डालते हैं, यह बड़ी ही मनोरञ्जक कहानी है। विकास वादके सिद्धान्तके अनुसार यह कार्य लगातार अब भी हो रहा है और भविष्य में होता रहेगा। हर एक प्राणी परिस्थिति के अनुसार अपनी आदत बदलता रहता है। इस आदतके साथ साथ उसके शरीरकी बनावट, शरीरका रङ्ग तथा अवयव भी बदलते रहते हैं। परिस्थितिके कारण जो परिवर्तन शरीर रचना व रङ्गमें आता है धीरे-धीरे वह परम्परागत चलता रहता है।

जाड़ोंमें कपड़े बदलते हैं—जिस प्रकार जाड़ों में हम लोग सूती कपड़ों को छोड़कर ऊनी कपड़ों का व्यवहार प्रारम्भ कर देते हैं, उसी प्रकार उत्तरी ध्रुवके जानवर भी जाड़ोंकी ऋतु प्रारम्भ होते ही अपने बाल बदल लेते हैं। जो बाल गर्मियोंमें थे वे गिरते नहीं बल्कि उनका रङ्ग बदल जाता है। जैसे किसी रङ्गीन द्रव पदार्थ को झकोला जाय और उसकी सतह पर सफेद रङ्गके झाग आ जांय उसी प्रकार इन जानवरों के शरीरके बाल केवल सिरे परसे ही सफेद हो जाते हैं। यह सफेद रङ्ग वर्फके समान ही होता है।

इससे दो लाभ होते हैं। (१) बाहरका सफेद रङ्ग होने के कारण ठण्ढका असर कम होता है। इसका कारण यह है कि सफेद वस्तुएं रङ्गीन वस्तुओं से कम ताप सोखती हैं। इसलिये बाहरकी ठण्ढ जो वास्तविक रूपमें नफी ताप है उसे भी कम सोखेगी। (२) इन जानवरोंका रङ्ग बर्फके समान होने से इनकी रक्षा आसानीसे हो सकती है। जाड़ोंके मौसममें सारी पृथ्वी सफेद बर्फसे ढक जाती है। झाड़ियां और पेड़ तक भी सूख जाते हैं, इसलिये आपत्तिके समय छिपनेके स्थानोंकी कमी हो जाती है। यदि इनका रङ्ग बर्फके रङ्गसे भिन्न रहे तो वे कहीं भी आसानी से दिखाई पड़ सकते हैं और इनके शत्रु इन्हें असानीसे मार सकते हैं।

इस प्रकार रङ्गसे प्रकृतिने अपने बहुतसे जीवोंकी रक्षा की है। इसी विधिकी नकलसे फौजमें वर्दियोंका खाकी रङ्ग बनाया गया है। लड़ाईके जमानेमें पानीके जहाजों पर ऐसा नी ा रङ्ग किया जाता है कि वे बिलकुल पानीकी लहरोंमें अदृश्य रहते हैं

प्रकृतिमें तो ऐसे कीड़े आपको असंख्यों ही मिल जायंगे। लकड़ी टिड्डा नामका एक टिड्डा होता है। इसका रङ्ग बिलकुल एक सूखी टहनी के समान होता है। इसकी लम्बाई लगभग ३ या ४ इञ्च के होती है। जब यह पर समेट कर बैठता है तो ठीक सूखी लकड़ी जैसा मालूम होता है। दिन भर यह कीड़ा किसी पेड़की शाखा पर बैठा रहता है। चिड़ियां इसे पेड़ की टहनी समझकर छोड़ जाती हैं। जब अँधेरा होता है तो यह भी अपने आहारकी खोजमें बाहर निकलता है।

बहुत-सी तितलियां ऐसी होती हैं कि जब वे पर बंद करके बैठती हैं तो मालूम होता है कि कोई सूखा पत्ता हो। दक्षिणी अमेरिकामें पाया जाने वाला नाइट जार (night jar) भी इसी प्रकार घण्टों तक चुप-चाप अपना नुकीला सिर आकाश की ओर किये बैठा रहता है। जब तक कि बिलकुल पाससे ही न देखो तब तक यह बिलकुल भी दिखाई नहीं पड़ता। दूरसे यह ऐसा मालूम होता है कि मानों उस पेड़की सूखी टहनी का टूटा हुआ भाग बच गया है। चीते और जैबरके ऊपर जो लकीरें पड़ी रहती हैं उनके कारण इनका घास के मैदानमें छिपना बहुत आसान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी विशेषताएं जानवरोंमें उनकी आवश्यकता के अनुसार पाई जाती हैं। सांप अण्डे खाता है इसलिये उसके अगले दांत नहीं होते। इन दांतोंके स्थानपर मुखकी बनावट इस प्रकारकी होती है कि वह आसानीसे अण्डा तोड़ सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ जानवर ऐसे हैं जो वातावरणके अनुसारही अपना रङ्ग बदल लेते हैं—जैसे गिरगिट, यदि यह लाल दिवार पर होता है और अपने दुश्मनोंसे बचना चाहता है तो दिवारकी तरह रंग बदल लेता है। इसी प्रकार वातावरणके अनुसार लाल, पीला, नीला रङ्ग बदल सकता है। कुछ जानवरोंका रङ्ग इस प्रकारका होता है कि जिससे देखने से ही मालूम हो जाय कि ये जहरीले हैं। यह अन्य जानवरों के

लिये चिह्न है जो उनसे कहता है 'दूर रहो'।

इसी प्रकार जानवरोंके शरीरके अङ्गोंका अनुमान होता है। जिराफेकी गर्दन लम्बी होती है जिससे वह बहुत ऊंची डालियों के पत्ते भी खा सकता है। जो घास खाने वाले जानवर हैं जैसे—गाय बैल, बकरी, भैंस इत्यादि इनके पैर छोटे और गर्दन मोटी होती है।

गोश्त खाने वाले जानवरोंके पंजे और दांतों की बनावट इस प्रकारकी होती है जिससे वे आसानीसे शिकार पकड़ कर खा सकें। रेगिस्तानके जानवरोंको जिन्हें भोजन बहुत दूरी पर तथा देरके बाद मिलता है—ऐसी थैलियां होती हैं जिनमें वे पानी और खाना जमा करके रख सकते हैं। ऊँट भी इसीप्रकार बहुत दूर तक बिना पानी और खाना खाये रेगिस्तानमें चल सकता है। जो जानवर उत्तरीध्रुवके पास रहते हैं उन्हें जाड़ोंमें बर्फके कारण खाना नहीं मिल सकता। बर्फ पड़ने से सारी वनस्पति सूख जाती हैं या बर्फसे दबकर नष्ट हो जाती हैं। इस स्थानके जानवर जाड़ोंका मौसम प्रायः सोकर ही काटते हैं।

हर एक जानवरको गर्मी और वायुकी आवश्यकता होती है। बिना इसके जीवन धारण करना असम्भव है पानी, स्थल तथा वायुके जानवर हवाको भिन्न रीतिसे लेते हैं। मछलियां पानीमें घुली हवासे ही सांस ले सकती हैं लेकिन मनुष्यमें इतनी शक्ति नहीं कि वह पानीकी वायुसे जीवित रह सके। इसलिये ऐसा देखनेमें आया है कि स्थल के जानवर पानी में अधिक समय तक नहीं रह सकते, किन्तु मेंढक एक अजीब ही जानवर है। यह जल में और पृथ्वी में एक समान रूप से रह सकता है। बरसातमें यह पानीमें रहता है किन्तु गर्मियों में जब पानी सूख जाता है तो यह पृथ्वी पर भी रहने लगता है। जब कड़ाके का जाड़ा पड़ता है तो यह तालावकी तहमें मिट्टीके नीचे चला जाता है और जाड़ोंमें कई महीनों तक इसी प्रकार बिना कुछ खाये पीये छिपा पड़ा रहता है। पहाड़ों पर रहने वाले जानवर सैंगा (saiga) की नाक ऊपरको उठी रहती है। पहाड़ोंपर वायुका दबाव कम होता है तथा वायु पतली होती है इसलिये कार्य करनेमें आदमी जल्दी हांप जाते हैं। इस उठी हुई नाक की वजहसे यह बहुत सी हवा खींच सकता है और पतली हवा के थकाने वाले प्रभाव को नष्ट कर देता है।

ऊँटको अपने जीवन-कालमें बड़ी कठिनाइयोंका मुकाबला करना पड़ता है। इसलिये उसमें विशेषतायें भी बहुतसी हैं। इसके एक उभरा हुआ पुट्ठा होता है। इस पुट्ठेमें बसा जमा रहती है। जब बहुत दिनों तक भोजन नहीं मिलता तो यह वसा ही इसको जीवन धारण रखने की शक्ति प्रदान करती है। इसी प्रकार इसके शरीरकी बनावट इस प्रकार की है जिससे जल शून्य रेगिस्तानी स्थानमें भी यह जीवित रह सके। इसके पेटके ३ भागोंमें से दो भाग केवल पानी ले जानेका ही कार्य करते हैं। इन पेटके भागोंकी दिवारें एक विशेष प्रकारके कोष्ठकोंकी बनी होती हैं। ये कोष्ठक जितने पेटको तरीकी आवश्यकता होती है उसीके अनुसार पानी भेजते रहते हैं। इसकी टांगें लम्बी होती हैं क्योंकि इसे बहुत अधिक रेतीला मार्ग तय करना होता है। इसकी गर्दन लम्बी होती है जिससे एक स्थान पर ही खड़ा होकर यह सीधी-सीधी उगी भाड़ियोंसे पत्ती खा सके। यह नथने बंद कर सकता है जिससे रेतकी आंधी—जो अक्सर रेगिस्तानोंमें बड़ी भयंकरतासे चला करती है—से अपनी नाकको बचा सके। इसके तो पैर भी ऐसे होते हैं जो रेगिस्तानके लिये विशेष उपयोगी हैं। जितनाही यह पैरोंपर बोझ डालता है उतने ही वे नीचेसे चौड़े हो जाते हैं। इस तरह वे रेतमें नहीं गड़ सकते।

इसके अतिरिक्त प्रकृतिने जानवरों के बचावके लिये भी बहुत सी रीतियां काम में ली हैं। पहाड़ी चूहे और साही के शरीर पर कांटे होते हैं। जब कोई खतरा होता है ये कांटे सीधे खड़े हो जाते हैं। कछुयेकी पीठ पर कठोर चमड़ा होता है। गैंडेके शरीर पर ऐसा मजबूत चमड़ा होता है कि उस पर तलवारका भी प्रभाव नहीं होता। इस प्रकार सैंकड़ों प्रकारसे प्रकृतिने जीवन रक्षाका प्रबन्ध किया है।

बाजार की ठग्गी का भांडा फोड़

पद्म–मधु क्या है ?

[लेखक—श्री आर० एन० मुट्टू बी० एस-सी एल० एल० बी अवैतनिक मन्त्री अखिल भारतवर्षीय बी कीपर्स एसोसियेशन, तथा डाइरेक्टर, ज्योलीकोट एपिअरी, नैनीताल]

भारतवर्षमें बहुतसे स्थानों पर लोग पद्म-मधु के नाम से कुछ शहद बेचते हैं। इसकी छोटीसी शीशी का भी बहुत अधिक मूल्य होता है। इन लोगोंके बड़े बड़े विज्ञापनोंसे पता चलता है कि इन लोगोंके विज्ञापनोंमें सादे असली शहदका नाम भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि असली शहदको ये इतने अधिक मूल्यमें नहीं बेच सकते।

सबसे पहला प्रश्न मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यह 'पद्म' मधु' के नामसे जो शहद बेचा जाता है, वह चीज क्या है ?

शहदका किसी विशेष फूलसे नामकरण होनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि यह शहद या इसका अधिकतर अंश उस फूलसे प्राप्त किया जाता होगा। क्योंकि पद्म-मधु में 'पद्म' नाम आता है इसलिये यह समझा जाता है कि यह शहद या इसका अधिकांश भाग कमलसे प्राप्त किया गया है। यदि ऐसा है तो मैं खुले आम उनसे दो सवाल पूछता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि वे उनका उत्तर देनेकी कृपा करें। सबसे पहला प्रश्न यह है "क्या भारतवर्षमें या इससे बाहर कोई स्थान है कि जहां, किसी भी मौसममें अन्य फूल तो हों नहीं और कमल के फूल इतनी बहुतायतसे होते हों कि मधुमक्खियां केवल उन्हीं से मधु सञ्चय कर सकें ?"

मैं यहां यह बता दूँ कि मधु-मक्खी मकरन्द की खोजमें अपने छत्तेसे दो मीलसे अधिक नहीं जाती। इसलिये पद्म मधुके लिये छत्तेके चारों ओर ३-४ मीलके व्यासमें किसी भी ऋतुमें केवल कमलके फूल ही होने चाहियें।

इस विषयमें कुछ सालोंसे मुझे भी दिलचस्पी हुई। मैं उत्तरीभारतवर्षमें बहुत घूमा भी लेकिन मुझे कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका।

दूसरा प्रश्न यह है, "यदि ऐसा स्थान कहीं है भी तो वे लोग इन स्थानों पर पद्म-मकरन्द किस प्रकार इकट्ठा करते हैं ? क्या उन्होंने इन स्थानों पर मधु-मक्खी पालनेके घर रख छोड़े हैं ?" शायद पद्म-मधुका विज्ञापन करने वाले इन प्रश्नों का उत्तर अवश्य देंगे जिससे उनके ग्राहकोंका विश्वास कायम रह सके और उनके व्यापारकी भी उन्नति हो।

इस विषय पर जनताका ध्यान आकर्षित कराने का एक और भी कारण है। अन्य देशोंमें इस प्रकारके धोखेबाजों के लिये कानून बने हुए हैं लेकिन हिन्दुस्तानमें बोतलोंमें कुछ भी भरकर झूंठा लेबिल लगाने वालोंके लिये कोई नियम काममें नहीं लाया जाता। जो प्रश्न मैं आज पाठकोंके सामने रख रहा हूं ये ही प्रश्न मैंने अन्य प्रमुख पत्रों के द्वारा भी जनताके सामने रक्खे हैं लेकिन मुझे इन प्रश्नोंका उत्तर आज तक नहीं मिल सका और पद्म-मधु का व्यापार अबभी पहले जैसा चल रहा है।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जनता क्यों इतने मूल्य पर भी पद्म-मधुको खरीदती है ? इसका उत्तर आयुर्वेदसे प्राप्त हो सकता है। आयुर्वेदके अनुसार पद्म-मधु आंखके कुछ रोगों के लिये बहुत लाभदायक बताया गया है। पद्म-मधु को लोग कमलका शहद समझते हैं और पद्म शब्दसे कमलका अर्थ लगाते हैं। मैं वैद्यों और संस्कृतके विद्यार्थियोंसे पूछता हूं कि क्या पद्म-मधुको कमलका शहद कहना उपयुक्त है ? क्या यह सम्भव नहीं कि पद्मका अर्थ पद्म वृक्षसे हो जिसे अङ्गरेजीमें चैरीट्री (Cherrytree) कहते हैं। मेरे प्रस्ताव का कारण यह है कि मुझे स्वयं अपने अनुभवसे मालूम है कि पद्म वृक्ष के फूलोंसे प्राप्त शहद स्वादमें बहुत अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त हिमालय पर्वतमें मुझे कोई भी स्थान ऐसा नहीं मिला कि जहां कमलका शहद प्राप्त किया जासके। किन्तु मुझे ऐसे बहुतसे स्थान मिले जहां पर पद्मके वृक्षोंके बहुत जङ्गल हैं और जिस मौसममें पद्मके फूल खिलते हैं उस मौसममें और कोई फूल भी नहीं खिलते।

यदि कोई सज्जन मुझे इस विषयमें कुछ भी सूचना दे सकेंगे तो इसके लिये मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ होऊंगा।

घरेलू डाक्टर

अब कुछ विशेष अंगोंसे रक्तस्राव पर ब्योरेवार विचार किया जायगा।

अँगुलियोंसे रक्तस्राव—यदि कोई अँगुली कट कर अलग हो जाय तो बचे हुए ठूँठ को कसकर बाँधनेसे रक्तस्राव रोका जा सकता है।

कांख—यदि काँखसे जोरका रक्तस्राव हो तो अन्नकाधो-वर्त्तिनी धमनीको दबाना चाहिए, इस धमनीकी स्थिति पहले बतलाई जा चुकी है। आहत व्यक्तिके सामने खड़े होकर अपने हाथको उसके कंधे पर इस प्रकार रक्खो कि तुम्हारा अँगूठा उसकी हँसली के ऊपर वाले गड्ढे पर पड़े और तुम्हारी अँगुलियाँ उसकी गरदनके पीछे पड़ें। अब अपने अँगूठेको कुछ नीचे की ओर और साथ ही कुछ पीछेकी ओर इस प्रकार दबाओ कि धमनी तुम्हारे अँगूठे और आहत व्यक्तिकी पहली पसलीके बीच दब जाय। यदि आहत व्यक्ति अपना सर अच्छे अंगकी ओर घुमा ले जिससे आहत ओर सामने उभड़ पड़े तो धमनीके दबाने में आसानी होगी।

कान—यदि किसी दुर्घटनाके बाद कानके भीतर से रक्त निकलता दिखलाई पड़े तो समझना चाहिये कि खोपड़ी टूट गई है। कान में रूई या कपड़ा ठूँसनेसे कुछ लाभ न होगा। केवल ऊपरसे डाक्टरी रूई बाँध देना चाहिए और तुरंत डाक्टरको बुलाना चाहिए। अवस्था शोचनीय है।

गदोरी—भुजाकी दोनों धमनियाँ गदोरी में आकर बड़ी असरल रीतिसे एक दूसरे में गुँथ जाती हैं। इस लिये गदोरी की किसी धमनी के कटने पर इसके दोनों छोरसे रक्तस्राव हो सकता है।

यदि घावमें टूटा शीशा आदि कोई वाह्य वस्तु न हो तो चटपट एक कड़ी गद्दी बना कर आहत गदोरी पर रख देनी चाहिए और रोगीसे कहना चाहिए कि इसको पकड़ो, और तब पतली धज्जी से कस कर अँगुलियोंको बाँध देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त या यदि घावमें कोई वाह्य वस्तु हो और गदोरी बंद कराकर बाँधी न जा सके, तो निम्न रीति से कलाई वाली धमनियों को दबाना चाहिए—

काग (corks) या पेनसिलकी तरह की दो छोटी-छोटी वस्तुएं लो और उनको कलाई वाली धमनियों पर रख कर कस कर बाँधो। एक धमनी कलाई पर अँगूठे की जड़के पास रहती है और टटोलने से आसानीसे भड़कती हुई पाई जा सकती है। दूसरी धमनी कानी अँगुलीकी ओर (कलाई परही) रहती है।

यदि इतने परभी रक्तस्राव न रुके तो भुजाके सम्बन्ध में बतलाये गये स्थान परभी धमनी को दबाना चाहिए।

गला—आत्महत्याके लिये या जान से किसी को मार डालने के लिए ही गला काटा जाता है। यदि गलेकी प्रधान शिराएँ और धमनियाँ कट जायँगी तो कुछ क्षणोंमें प्राण निकल जायगा। परन्तु अकसर ऐसा होता है कि ये शिराएँ और धमनियाँ नहीं कटी रहतीं। ऐसी दशा में यदि तुरंत उपचार किया जाय तो प्राण बच सकता है। इस लिए तुरंत डाक्टरको बुलाना चाहिये और तबसे रोगीको चित लिटा कर घावको अँगुलियोंसे इस प्रकार दबाना चाहिये कि रक्त-स्राव यथासम्भव रुक जाय। तब गाजको किसी कीटाणु-नाशक घोल (जैसे लाइसोल, या कारबोलिक, या ऐक्रिफ्ले-विन लोशन) में से निकाल कर और निचोड़ कर घावमें ठूंस देना चाहिये। फिर घाव पर बड़ा-सा गाज (या लिंट) और काफी रूई रख कर पट्टी बाँध देनी चाहिए। रोगीको ठंढ न लगने पाये। उसके पैतानेको थोड़ा ऊँचा कर देना चाहिये।

चेहरा—चेहरे से रक्तस्राव हो तो चेहरेकी धमनीको उस स्थान पर दबाना चाहिए जहाँ यह जबड़े की हड्डीको पार करती है। यह जबड़े के कोने से लगभग एक इंच सामनेकी ओर होता है। यदि होंठों से रक्त निकलता हो तो रक्त को रोकने के लिए सम्भवतः दोनों ओर जबड़ोंको दबाना पड़ेगा।

जांघ—जाँघ से रक्तस्रावको रोकनेके लिए जाँघकी धमनी को उस स्थानपर दबाना चाहिये जहाँ यह ऊरुसंधि (groin) के मध्य से होती हुई नीचे आती है। इसके लिये आहत व्यक्तिको चित लिटा देना चाहिये और टाँग ऊपर उठा देनी चाहिए। चिकित्सकको अपने घुटनोंके बल

बैठ जाना चाहिए और अपने हाथोंमें जाँघको इस प्रकार भर लेना चाहिए कि दोनों अँगूठे धमनी पर पड़ें। इस प्रकार धमनीको दोनों अँगूठोंसे दबाया जा सकता है। तबसे किसी सहायकको नागफाँस (टूरनिकेट) बाँधना चाहिए, परंतु पहले नारंगीके बराबर गद्दी बना कर धमनीपर रखनी चाहिए और वह नागफाँस के नीचे आ जाय। तब जब नागफाँस कसा जायगा तो धमनी पर पूरा दबाव पड़ेगा। इस नागफाँसको कमर के जितना ही पास बाँधा जायगा उतना ही अच्छा रहेगा, क्योंकि कमरसे नीचे उतर कर धमनी माँस के नीचे चली जाती है और वहाँ इस पर दबाव अच्छी तरह नहीं डाला जा सकता।
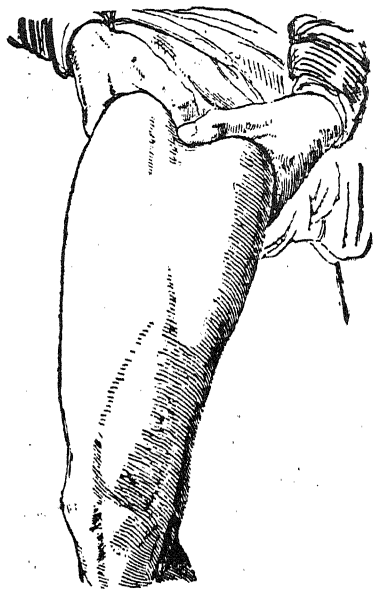
जाँघकी धमनीको कहाँ दबाना चाहिए

स्मरण रखना चाहिये कि जाँघकी धमनीका कटना अत्यन्त शोचनीय अवस्था है और इस लिए उपचार तुरंत करना चाहिये।

टांग और पाव—घावको अँगुली से दबाओ और गद्दी रखकर पट्टी बाँधो। यदि रक्त अधिक निकल रहा हो और केवल बाँधने से ही न रुके तो रोगीको चित लिटा दो और नारंगी के बराबर कपड़े की कड़ी गद्दी बनाकर घुटने के पीछे रख दो। अब घुटनेको उठाओ और वहाँसे टाँगको इतना मोड़ दो कि पिंडली जाँघको छू ले। अब पतली धज्जी से कस कर जाँघ और टाँगको एक में बाँध दो।

दांत—ठंढे पानीसे बार-बार कुल्ला करो। यदि दाँत निकल गया हो और उसके रिक्त स्थान से इतना रक्त बह रहा हो कि केवल ठंढे पानी से कुल्ला करने पर न रुके तो गढ्ढे में रूई ठूँस दो। फिर उसके ऊपर कपड़े की गद्दी रख दो और रोगी से कहो कि वह दाँत जोर से बैठा ले (अर्थात् नीचे और ऊपरके दाँतों को सटा ले)। इससे रक्तस्राव बंद हो जायगा। यदि हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (hydrogen peroxide) मिल सके तो उससे कुल्ला करने से भी रक्तस्राव बंद हो जायगा।

नाक—यदि नाकसे रक्तस्राव हो तो स्वच्छ ठंढा जल नाकोंसे सुड़कना चाहिए। यदि इससे रक्तस्राव न रुके तो नाकको अँगुलियोंसे दबा लेना चाहिए और मुँहसे साँस लेना चाहिए। साथ ही नाक पर ठंढी पट्टी रखनी चाहिए। अकसर बैठ कर सर पीछे करके नाक ऊपर उठा लेना और नाकके बदले मुँहसे ही कुछ समय तक साँस लेना काफी होता है। इस अभिप्रायसे कि नाकसे जो रक्त गिरे वह शरीरके किसी दूसरे अंग पर न गिरे अकसर लोग सर लटका लेते हैं। यह बुरा है।

बाँह (कंधेसे कोहनी तक)—यदि बाँहमें कहींसे रक्तस्राव हो और घावको दबानेसे रक्तस्राव न रुके तो काँखमें धमनी को दबाना चाहिए। इसके लिए किसी गोल कड़ी वस्तुको (जैसे रबड़के भरतू गेंदको, या कुछ न मिले तो गोल पत्थर को) कपड़ेमें अच्छी तरह लपेट कर नारंगीके बराबर कर लेना चाहिए और इसे काँखमें ऊपरकी ओर अच्छी तरह दबा कर कस कर पतली पट्टीसे बाँध देना चाहिए। इसके लिए पट्टीके मध्यको नारंगीके बराबर बनाई गई गद्दीके नीचे रक्खो। फिर पट्टीके एक आधेको सामनेसे और दूसरेको पीछेसे ले जा कर कंधे पर एकहरा गांठ दो। फिर पट्टी के किनारोंको दूसरे काँखके नीचे ले जाकर कसो और गाँठ लगा दो। फिर आहत ओरकी भुजा कोहनीसे नीचेके भाग को) मोड़ कर हाथको छाती पर रक्खो और तब आहत भुजाको छातीकी बगलमें कस कर बाँध दो।

भुजा (कोहनीसे कलाई तक)—भुजासे रक्तस्राव रोकने के लिए काँखके जरा नीचे पट्टी बाँधनी चाहिए, परन्तु पट्टी बाँधनेके पहले कपड़ेकी गद्दी इस प्रकार रखनी चाहिए कि वहाँ धमनी पर दबाव पड़े। इसके बदले कोहनी वाली संधिके भीतर गद्दी रख कर भुजाको इतना मोड़ा जा सकता है कि हाथ कंधे तक पहुंच जाय और तब भुजा और बाँहको

एकमें कस कर बाँध देना चाहिए। इससे भी धमनी दब जाती है।

शिरस्त्वचा—सरकी त्वचाके कटने या फटने पर रक्त खूब निकलता है और अकसर अवस्था आवश्यकतासे अधिक चिंताजनक जान पड़ती है। यदि खोपड़ी न फूटी हो तो सिरके चारों ओर से लाकर पतली पट्टी इस प्रकार बाँधनी चाहिए कि गाँठ कटे स्थान पर पड़े, या वहाँ पहले कपड़ेकी गद्दी रख ली जाय। यदि इतनेसे भी रक्तस्राव न रुके और घाव सामने की ओर हो तो आहत ओरके कानके सामने स्थित धमनी को कानके पास दबाना चाहिए। यदि घाव पीछेकी ओर हो तो उस धमनीको दबाना चाहिए जो कानसे लगभग चार अंगुल पीछे रहती है।

यदि आहत व्यक्ति अचेत हो गया हो, या यदि घाव विस्तृत हो, या यदि खोपड़ी फूट गई हो तो गेंडुरीके आकार की गद्दीका इस्तेमाल करना चाहिए [गेंडुरी = रस्सीका बना हुआ मेंडरा जिस पर घड़ा रखते हैं; इँडुरी, बिड़वा।] इसे बनानेके लिए पतली पट्टी लो और अपने हाथकी अँगुलियों पर कई बार लपेट कर छल्ला-सा बना लो। जब पट्टी लगभग दो फुट बाकी रह जाय तो बची पट्टीको इस छल्लेमें से बार-बार डाल कर इस पर लपेट डालो। जब गेंडुरी तैयार हो जाय तो इसे घाव पर इस प्रकार रक्खो कि घाव बीचमें पड़ जाय। अब दूसरी पट्टीसे कस कर इस प्रकार बाँधो कि गेंडुरी खिसके नहीं और खोपड़ी पर खूब दब जाय।

शिराग्रंथि (varicose vein)—कभी-कभी कहींका शिरा फूल आता है, गँठीला हो जाता है और सीधा न रह कर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। यह एक रोग है, जिसका वर्णन यथास्थान किया जायगा। फूले शिराको शिराग्रंथि कहते हैं। यदि दुर्घटनावश किसी शिराग्रन्थिसे रक्त निकलने लगे तो रोगीको चित लिटा देना चाहिए और रक्तस्राव होने वाले अंगको ऊपर उठा देना चाहिए। फिर उस पर गद्दी रख कर पतली धज्जीसे कस कर बाँध देना चाहिए। फिर एक धज्जी इस स्थानके कुछ ऊपर (हृदयकी ओर) हट कर और एक नीचे (उल्टी दिशामें) हट कर बाँधनी चाहिए। ऊपर और नीचे दोनों ओर बाँधनेकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि शिराग्रंथिके कटने पर इसके दोनों छोरोंसे रक्त आता है। १५ मिनट बाद पट्टियोंको खोल देना चाहिए।

आमाशयसे रक्तस्राव—यदि वमनके साथ रक्त आवे तो अधिक संभावना यही है कि आमाशयमें से रक्त आ रहा है। इसके दो कारण हो सकते हैं। (१) जैसे आमाशयमें फोड़ा; (२) चोट, जैसे गोली या छुरेसे छेद। जो रक्त निकलता है वह बहुत काला होता है और उसमें भोजनका कुछ अंश भी मिला रहता है। उपचार यही है कि रोगी चारपाई पर चुप-चाप पड़ा रहे। डाक्टरको यथासंभव शीघ्र बुलाओ। तबसे पेट पर ठंढी पट्टी या बरफकी थैली रक्खो। किसी प्रकारकी वस्तु खाने या पीनेको मत दो।

फेफड़ेसे रक्तस्राव—यदि थूकके साथ रक्त आवे और यह चटक लाल रंगका हो, तथा इसमें फेन मिला हो, तो समझना चाहिए कि रक्त फेफड़ेसे आ रहा है। इसके दो कारण हो सकते हैं। (१) क्षय रोग; (२) गोली या छुरीसे फेफड़ेमें घाव, या भारी वस्तुसे फेफड़ेका फट जाना।

अवस्था शोचनीय है। रोगीको चित लिटा दो और वह जरा भी हिले-डुले नहीं। यदि वह कोई चुस्त कपड़ा पहने हो तो उसे खोल या कतर दो। मिल सके तो बरफ चूसनेके लिए दो। डाक्टरको तुरन्त बुलाओ।

भीतर-ही-भीतर रक्त स्राव (internal haemorrhage)—गोली या छुरेके आघातसे या गाड़ी आदिसे दब जानेसे ऐसा भी हो सकता है कि शरीरके भीतर-ही-भीतर कहीं रक्तस्राव हो और रक्त बाहर न निकल पावे। इसके लक्षण ये हैं—(१) सरमें चक्कर और शीघ्र बढ़ती हुई दुर्बलता, (२) पीलापन, प्यास, बेदम नाड़ी, (३) बेचैनी और हाँफना। ऐसी दशामें डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिए। तब तक रोगीको चित लिटा कर उसके चुस्त कपड़ोंको ढीला कर देना चाहिए। उसे ऐसे स्थानमें रखना चाहिए जहाँ उसे स्वच्छ वायु बराबर मिलती रहे, पर ध्यान रखना चाहिए कि ठंढ न लगे। आवश्यकतानुसार कम्बल या रजाई ओढ़ानी चाहिए। चूसनेके लिए बरफ देना चाहिए, परन्तु अन्य कोई वस्तु खाने या पीनेको न देनी चाहिए। यदि मूर्च्छा आनेकी संभावना हो तो पैताना ऊँचा कर देना चाहिए। अँगुलियोंकी ओरसे आरम्भ कर हाथोंमें काँख तक और पैरोंमें ऊरुसंधि तक पट्टी बाँधना भी उपयोगी है।

वाह्य वस्तु (foreign bodies)—शरीरके किसी अंगमें स्थित ऐसी वस्तुको वाह्य वस्तु कहते हैं जो साधारणतः वहाँ

नहीं रहती; उदाहरणतः, शरीरके भीतर धँसी हुई टूटी सुई या आँखमें पड़ा फतिंगा वाह्य वस्तु है। नीचे विविध अंगों में पड़ी वाह्य वस्तुओंका उपचार दिया जाता है।

आंखमें—यदि आँखमें कुछ पड़ जाय तो आँखको मलना नहीं चाहिए। यदि बच्चेकी आँखमें कुछ पड़ जाय तो उसे आँख मलनेसे रोक देना चाहिए। इसके बाद नीचेकी पलक को नीचे खींचना चाहिए। यदि वाह्य वस्तु दिखलाई पड़े तो स्वच्छ रुमालके कोनेको स्वच्छ जलमें भिगो कर और उसे बत्तीकी तरह ऐंठ कर इस बत्तीसे वाह्य वस्तुको निकाल देना चाहिए। कुछ अन्य उपाय 'आँखके रोग' शीर्षक लेखमें पहले दिये जा चुके हैं। आँखमें चूना या तेजाब पड़नेका उपचार 'जलना' शीर्षक पैरामें ऊपर दिया जा चुका है।

कानमें—यदि कानमें कोई कीड़ा घुस जाय तो रोगीको इस प्रकार लिटा दो कि कीड़ा वाला कान ऊपर रहे। फिर इस कानमें कुन-कुना कड़ुए (सरसोंका), तिलका या गरीका तेल डालो। इससे कीड़ा मर कर उतरा आता है और तब आसानीसे हटा दिया दिया जा सकता है। यदि कानमें कोई अन्य वस्तु पड़ जाय तो डाक्टरकी राय लेनी चाहिए। भूल कर भी ऐसी अवस्थामें कान नहीं खोदना चाहिए या पिच-कारीसे धार मार कर उस वस्तुको बहानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए क्योंकि इन रीतियोंसे अकसर वाह्य वस्तु अधिक अन्दर चली जाती है।

गलेमें—यदि गलेमें भोजन या अन्य कोई वस्तु अटक जाय तो उस व्यक्तिकी पीठ पर घूँसा मारना चाहिए। बच्चा हो तो उसे टाँगके बल उठा कर पीठ थपथपाना चाहिए (टाँग के बल उठानेसे सर नीचे लटक जायगा)। यदि इन उपायों से लाभ न हो तो रोगीको तुरन्त अस्पताल ले जाना चाहिए।

त्वचाके नीचे—यदि चुभनेपर सुई टूट जाय और इसका एक भाग त्वचाके नीचे रह जाय तो त्वचा पर कोई कीटाणु नाशक घोल लगा कर कीटाणुरहित की गई दूसरी सुईसे खोद कर निकाल दी जा सकती है। देखो 'अस्त्रचिकित्सा' और 'अँगुलियाँ—पकी अँगुलियाँ'। परन्तु यदि सुई गहरी धँस गई हो तो डाक्टरसे निकलवानी चाहिए। यदि सुई पैरमें धँसी हो तो जब तक यह निकाल न दी जाय रोगीको चलने न देना चाहिए। काँटा भी सुईसे खोद कर निकाला जा सकता है।

यदि मछली मारनेकी कँटिया धँस जाय तो कँटियाको पीछे खींच लेनेकी चेष्टा न करनी चाहिए, क्योंकि कँटियाकी विशेष बनावटके कारण इसे पीछे खींचनेसे यह पीछे आयेगी नहीं, या जोर लगानेसे बहुत सा माँस फट जायगा। इसे निकालनेके लिए कँटियाको आगे ढकेल कर ऐसा प्रबन्ध करो कि त्वचाको छेद कर इसका मुँह बाहर निकल आये। तब अँकुशवत नोकको काट कर कँटियाको पीछे खींचलो। इस क्रियाके पहले और पीछे टिंकचर आयोडीन लगा लेना आवश्यक है जिसमें घावके पकनेका डर न रहे।

यदि कँटिया गहरी धँसी हो तो डाक्टरकी सहायता लेनी चाहिए।

नाकमें—यदि नाकमें कुछ घुस जाय तो दूसरे नथुनेको अच्छी तरह दबा कर नाक छिनकना चाहिए या सुँघनी या मिरचकी सहायतासे छींक लानेकी चेष्टा करनी चाहिए। यदि इतने परभी वाह्य वस्तु न निकले तो डाक्टरसे सलाह लेनी चाहिए।

विष—उन सब पदार्थोंको जिन्हें काफी मात्रामें खा लेनेसे मृत्यु हो जाती है या स्वास्थ बहुत खराब हो जाता है विष कहते हैं। कुछ विष ऐसे हैं कि उन्हें धीरे-धीरे बहुत दिनों तक खाते रहनेसे बहुत समय बाद कुपरिणाम दिखलाई पड़ता है। यहाँ प्राथमिक चिकित्साके संबधमें उनकी चर्चा नहीं की जा सकती। यहाँ केवल उन विषोंकी चर्चाकी जायगी जिन्हें एक बार खा लेनेसे मृत्यु हो सकती है। विष खाये व्यक्तिकी तुरन्त चिकित्सा होनेसे वह अकसर अच्छा हो जाता है, परन्तु देर हो जानेके बाद संभव है कोई उपाय सफल न हो। इसलिये आवश्यक है कि पता चलते ही उपचार तुरन्त आरम्भ किया जाय।

विष लोग या तो भूलसे खा लेते हैं, या आत्महत्याके अभिप्रायसे, या कोई हत्याके अभिप्रायसे उन्हें विष खिला देता है। भूलसे विष खा लेनेका कारण अकसर यह रहता है कि भोजन सड़ कर या कीटाणुओंके कारण विषाक्त हो जाता है जिसका पता खाने वालेको नहीं रहता, या लोग भूलसे किसी दूसरी शीशीकी दवा पी लेते हैं या भूलसे किसी दवाको अधिक मात्रामें पी लेते हैं। इसलिए विष और पीने या खाने वाली दवाओंको एक ही आलमारी या बक्समें न

रखना चाहिए। फिर जहाँ तक हो सके हमेशा ताजा खाना खाना चाहिए।

लक्षण—विविध विषोंके अनुसार विष खा लेनेके लक्षण भी बहुत विविध हो सकते हैं, परन्तु साधारणतः यही समझना चाहिए कि रोगीने विष खा लिया है यदि खाने या पीनेके थोड़ी देर बाद ही कोई स्वस्थ व्यक्ति एकाएक अस्वस्थ हो जाय या बेहोश हो जाय या छटपटा रहा हो, विशेष कर जब उसका मुँह या होंठ जल गया हो या पासमें कोई शीशी हो जिसमें विष रहनेका संदेह हो। बच्चोंमें वमन, हाथ पैरमें ऐंठन और मुखमें पीड़ासे भी विषका संदेह करना चाहिए।

विषकी चिकित्साके साधारण नियम—१—डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिए। बुलाते समय सूचना भेज देनी चाहिए कि क्या मामला है जिसमें वह तैयार होकर आ सके। यदि विषका अनुमान किया जा सके तो उसकी भी सूचना दे देना उचित होगा।

२—यदि साँस रुक गई हो तो कृत्रिम श्वासकी रीतिसे साँस चालू करनेका प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए।

३—विषकी पहचानके लिए जितने भी चिह्न हों सबको सुरक्षित रखना चाहिए। कोई कटोरी, गिलास, शीशी, बोतल पुड़िया, भोजन आदि जिसमें विष रहने या लगे रहनेका संदेह हो सुरक्षित रखना चाहिए। यदि रोगी वमन करे तो वमनको भी रक्खे रहना चाहिए। इसी प्रकार यदि कपड़े पर विष आदि गिर गया हो तो उसे भी रक्खे रहना चाहिए। इन सबकी आवश्यकता डाक्टरको और पीछे कचहरीमें भी पड़ सकती है।

४—यदि रोगीको होश हो, पानी पी सकता हो और उस का मुँह और होंठ जल न गया हो या उस पर फफोले न पड़ गये हों तो रोगीको किसी रीतिसे वमन कराना चाहिए। मुँह जलने या फफोले पड़नेसे समझना चाहिए कि संभवतः रोगीने तेजाब या अन्य क्षतकारी वस्तु खा ली है और यदि यह बात सच्ची है तो वमन करानेसे बड़ी हानि हो सकती है।

वमन करानेकी निम्न रीतियाँ हैं—

(१) गलेके भीतर अँगुली, पर, या कागजको लपेट कर बनाई बत्तीसे सहलाओ।

(२) यदि उपरोक्त रीतिसे वमन न हो तो वमनकारी औषध दो। इनमेंसे सबसे सरल नमक है। पाव भर गरम पानीमें एक या डेढ़ तोला नमक घोल कर पिलाओ। इसके बदले दो चायके चम्मच भर इपिकाकुआना वाइन (epecacuanha wine), चाहे नमक दिया जाय, चाहे यह, पाँच-पाँच मिनट पर इतना-इतना पिलाते रहना चाहिए। जब वमन आ जाय तब फिर पिलानेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि मुँह जला-सा दिखलाई पड़े तो पता लगाओ कि तेजाब खाया गया है या कोई क्षार (चूना, सज्जी, सोडा, कास्टिक इत्यादि)। यदि रोगी ने तेजाब खाया हो तो उसे हलका क्षार देना चाहिये, या खड़िका की तरह की वस्तु देनी चाहिये। इनसे तेजाब मर जाता है। खड़िया (chalk), मैगनीसिया (magnesia), या सफेदी की हुई दीवार से खुरच कर निकाला हुआ चूना, या काफी ज्यादा पानी मिलाकर पानके साथ खाने वाला चूना देना ठीक होगा। यदि रोगी कोई क्षार खा गया हो तो उसे हल्का अम्ल देना ठीक होगा, उदाहरणतः नीबू का रस या पानी मिला कर सिरका (vinegar)। यदि यह न पता चल सके कि रोगी ने तेजाब खाया है या क्षार तो उसे खूब अधिक मात्रामें ठंढा पानी पिलाना चाहिये।

५—यदि विषका पता चल जाय तो उसे उचित विष-मारक खिलाना चाहिए। इसका पता आगे दी गई सारिणी से चलेगा। यदि विषका पता न चले तो रोगीको खूब दूध पिलाओ, या अंडेको दूधमें मिलाकर पिलाओ। और कुछ न हो सके तो खूब पानी पिलाओ। इन सबसे विषका प्रभाव मंद पड़ जाता है।

६—कोई विशेष लक्षण उत्पन्न हो तो उसकी अलग चिकित्सा करो। उदाहरणतः आघात (shock) और मूर्च्छा के लक्षण दिखलाई पड़ें तो इनके लिए पहले बतलाई गई रीतियों से उपचार करो। यदि रोगीको नींद मालूम पड़े तो सोने मत दो। यदि गला बहुत सूज आये तो बाहर से गीला सेंक (fomentation) करो, अर्थात् खौलते या गरम पानीसे कपड़ा या रूई निकालकर और उसे अच्छी तरह निचोड़ कर गले पर रक्खो। साथही उसे बरफ चूसनेको या ठंढा पानी धीरे-धीरे करके पीनेको दो। इससे गला भीतर इतना न सूजने पायेगा कि दम घुट जाय।

विषोंकी जातियां—अपने परिणामके अनुसार विषों

को चार जातियोंमें विभक्त किया जा सकता है ।

जाति १—क्षतकारी विष, इनसे घाव होजाता है । इस जातिमें सभी तेजाब और क्षार हैं, जैसे गंधकका तेजाब (सलफ्यूरिक ऐसिड), नमकका तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड), शोरेका तेजाब (नाइट्रिक ऐसिड), ऑक्जैलिक ऐसिड (oxalic acid), सिरकेका तेजाब (ऐसेटिक ऐसिड), कारबोलिक ऐसिड, क्रियोजोट (creosote), लाइसोल (lysol) इत्यादि, और चूना, कॉस्टिक सोडा, कॉस्टिक पोटाश, अमोनिया इत्यादि ।

इन विषोंसे त्वचापर दाग पड़ जाता है, घाव हो जाता है, विशेषकर मुँहके भीतर, गला, आमाशय आदिकी भीतरी श्लैष्मिक कला जल या कट जाती है । इससे बड़ी पीड़ा होती है, सूजन के कारण दम घुटने लगता है और अंतमें मूर्च्छा आ जाती है ।

चिकित्सा—इन विषोंके खानेपर कोई वमनकारी औषध नहीं दिया जा सकता क्योंकि वमन करते समय आमाशय पर बहुत जोर पड़ता है और उसके कटे रहने के कारण उसके फट जानेका डर रहता है जिसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा । यदि ठीक ज्ञात हो कि विष ऑक्जैलिक ऐसिड है तो वमन कराया जा सकता है और उसके बाद किसी हल्के क्षारका घोल दिया जा सकता है ।

इस जातिके किसी भी विषके खा लेने पर खूब पानी पिलाना चाहिए क्योंकि इससे इन विषोंका जोर कम हो जाता है । यदि विष कारबोलिक ऐसिड, क्रियोजोट या लाइसोल हो तो दो या तीन तोला मैगनीसियम सलफेट (एपसम साल्ट) या सोडियम सलफेट (ग्लाउबर्स साल्ट), यदि इनमें से कोई आसानीसे मिल जाय, तो दिया जा सकता है । नहीं तो इनके लिये भी वही चिकित्सा करनी चाहिए जो अन्य तेजाबोंके लिए की जाती है, अर्थात् कोई हल्का क्षार पानी में घोल कर पीनेको देना चाहिए जैसा ऊपर तेजाबके संबंध में बतलाया जा चुका है ।

यदि विष कोई क्षार हो तो तुरन्त खूब पानी पिलाना चाहिए, और हो सके तो इसी पानीमें कोई हलका तेजाब मिलाना चाहिए; अन्यथा हलका तेजाब पीछेसे पिलाना चाहिए । उन हलके तेजाबोंका नाम जो ऐसे अवसर पर उपयोगी होते हैं पहले बतलाया जा चुका है ।

जाति २—प्रदाहकारी (irritants) । इस जातिमें कई एक विषैले लवण हैं, उदाहरणतः संखिया और संखिया पड़े विशेष विष जैसे चूहा मारनेकी दवा या घास जलाने वाली दवा (weed-killer); कपड़ा रंगने वाले रंग; सफेदा या तेलरंगों में पड़ने वाले कुछ रंग; पारेके लवण (मरक्यूरिक बाइक्लोराइड आदि) जिनका उपयोग फोटोग्राफी आदिमें होता है; तूतिया या ताँबेके अन्य लवण; फासफोरस (जो कुछ चूहा मारनेकी दवाओं में तथा दियासलाइयों के सिरोंमें पड़ता है); मिट्टीका तेल, पेट्रोल और आयोडीन । इसी जातिमें कुछ विषैले फल, सड़ा या भुकड़ी (फफूँद) लगा भोजन और विषैला छत्रक (कुकुरमुत्ता) भी गिने जाते हैं । माँस, मछली और डिब्बा बंद भोज्य पदार्थ कभी-कभी विषैले हो जाते हैं । इनमें टोमेन (ptomaine) नामक विष उत्पन्न हो जाता है । यदि एक ही भोजन खाने पर कई एक व्यक्तियोंको पेटमें मरोड़ और पतले दस्त हों तो समझना चाहिए कि टोमेन विषके कारण ये सब उपद्रव हुए हैं ।

लक्षण—इन सब विषोंसे आमाशय और अँतड़ीमें उत्तेजना (irritation) और प्रदाह (inflammation) उत्पन्न होता है । मचली, वमन, पतले दस्त (पेटझरी), मरोड़ (colicky pains) होता है । अंत में दम भी घुटने लगता है और मूर्छा हो जाती है । आयोडीन या टोमेन युक्त भोजन खाने पर बड़ी प्यास भी लगती है ।

चिकित्सा—पानी, चाय या दूध पिला कर विषको हलका कर देने की चेष्टा करो । वमन कराओ और (यदि विष फॉसफोरस न हो तो) तिलका तेल पिलाओ । तेलसे इन विषोंका असर कुछ कम पड़ता है, परन्तु फॉसफोरस तेल में घुलनशील है और इसलिए तेल पिलाने पर फॉसफोरस का असर बढ़ जाता है । यदि विष आयोडीन हो तो मैदा और पानी घोल कर (कच्चा ही) पिलाना चाहिए ।

जाति ३—निद्राकारी (narcotics) । इस जातिमें वे विष हैं जिनसे निद्रा उत्पन्न होती है, उदाहरणतः अफीम और अफीम पड़ी दवाएँ जैसे लॉडेनम, पैरेगोरिक, डोवर्स पाउडर, क्लोरोडाइन, आदि; कई सरदर्दकी दवाएँ; नींद लाने वाली दवाएँ जैसे क्लोरल, वेरोनल ।

इन विषोंसे शरीरके किसी अंगमें प्रदाह नहीं होता ।

ये रक्तमें मिल जाते हैं और तब स्नायु-मंडल (nervous system) पर इनका प्रभाव पड़ता है। तब नींद-सी आने लगती है और अंतमें बेसुधी (stupor) आ जाती है।

लक्षण—इन विषोंसे चेहरा पीला पड़ जाता है, नाड़ी धीरे-धीरे चलती है; साँस धीरे-धीरे परन्तु गहरी चलती है और घरघराहटके साथ। आँखकी पुतलियोंके बीच वाला छेद (iris) सिकुड़ कर बहुत छोटा, सुई छिद्रके समान, हो जाता है। मुँहसे गंध आती है।

चिकित्सा—यदि रोगी दवा पी सके तो उसे वमन कराओ और उसे पोटैसियम परमैंगनेट (potassium permanganate) का घोल पिलाओ। इसके लिये जितनी परमैंगनेट एक चाँदी वाली चवन्नी पर उठ सके उतनेको एक गिलास पानीमें घोलना चाहिए। रोगीको जगाए रक्खो और उसके मुँह तथा छाती पर ठंढे पानीके छींटे मारो। उसे खूब गाढ़ा कहवा (coffee) जितना वह पी सके पिलाओ।

यदि रोगी इतना बेहोश हो गया हो कि वह कुछ पी न सके तो डाक्टरके आने तक उसे करवट लिटाये रहो। यदि साँस रुकनेके लक्षण दिखलाई पड़ें तो कृत्रिम श्वासकी रीतिसे साँस चालू रक्खो।

जाति ४—प्रलापकारी (deliriants)। इस जातिमें कई विष हैं जिनमें प्रदाहकारी और निद्राकारी दोनों गुण वर्तमान होते हैं। वे आमाशय, अँतड़ी आदिमें प्रदाह भी उत्पन्न करते हैं और रक्तमें मिल कर स्नायु-मण्डल (nervous system) पर भी प्रभाव डालते हैं। इससे प्रलाप (delirium) या ऐंठन (convulsion) उत्पन्न होती है और अंतमें पूर्ण मूर्च्छा (coma) हो जाती है।

इस जातिके मुख्य विष नीचे दिये जाते हैं—

ऐकोनाइट—गठियामें मालिश करनेकी दवाओंमें अक्सर यह विष पड़ा रहता है। इस विषके खाने पर मुँहमें भुनभुनी जान पड़ती है और यह सारे शरीरमें फैल जाता है। चेतना मंद पड़ जाती है। विशेष कर आँखसे साफ दिखलाई नहीं पड़ता और कानसे साफ सुनाई नहीं पड़ता। साँस लेनेमें कष्ट होता है और अन्तमें हृदयकी गति रुक जाती है।

चिकित्सा— तुरन्त वमन कराओ। पीछे चाय, कहवा या थोड़ा ब्रैंडी दो। यदि यह वमनके रूपमें निकल पड़े तो गुदा द्वारा एनेमाके रूपमें देना चाहिए। रोगीको ठंढ न लगने पाये। साँस रुकने लगे तो कृत्रिम श्वासकी रीतिसे साँस चालू करो।

ऐट्रोपीन और बेलाडोना—आँखमें छोड़नेकी कुछ दवाओं में या मालिशकी दवाओंमें ये विष रहते हैं। इनमेंसे किसी एकके खानेसे बड़ी उत्तेजना होती है; मुँह और होंठ सूख जाते हैं; प्यास लगती है। आँखकी पुतली का छेद बड़ा हो जाता है। पीछे प्रलाप और अन्तमें मूर्च्छा हो आती है।

चिकित्सा—तुरंत वमन कराओ। मूर्च्छा न आने दो। गरम कहवा या चाय पिलाओ।

मदिरा—मदिराका उत्पात, संभव है, वर्षों तक अधिक मदिरा-सेवन के कारण हुआ हो। ऐसी दशा में प्राथमिक चिकित्सासे कुछ न होगा। डाक्टरकी आवश्यकता होगी। परन्तु संभव है किसी स्वस्थ व्यक्तिने एक बार अधिक मदिरा पी ली हो और उसे उत्तेजना या मूर्च्छा हो आई हो। ऐसी दशामें रोगीको चारपाई पर लिटा दो। ठंढ न लगने दो। यदि आवश्यकता जान पड़े तो डाक्टरको बुलाओ।

यह भी संभव है कि किसी दुर्बल व्यक्ति या बहुत भूखे व्यक्तिने थोड़ी-सी ही मदिरा पी हो और उसे नशा अधिक हो आया हो।

चिकित्सा—अधिक मात्रामें मदिरा वस्तुतः विष है और रोगीको इस ख्यालसे छोड़ देना कि कुछ समयमें अपने-आप नशा उतर जायगा हानिकारक है। पहले तो वमन कराना चाहिए जिसमें जो कुछ-भी मदिरा आमाशयमें पड़ी हो और पची न हो निकल जाय। फिर उसे गरम कहवा या चाय पीने को दो। उसे सोने न दो और बरफसे ठंढे किये जलका छींटा सर पर मारो। जब वह अच्छा हो चले तब उसे आराम से सोने दो, परंतु विशेष ध्यान रहे कि उसे ठंढ न लगने पाये।

सायनाइड—पोटैसियम सायनाइड (potasium cyanide), सोडियम सायनाइड, प्रसिक ऐसिड (prussic acid) आदि सबसे अधिक तीव्र विष हैं। इनका प्रभाव तुरन्त पड़ता है। इसी लिए ये बड़े भयंकर हैं। विष खातेही चक्कर आने लगता है और व्यक्ति लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। वह आंखें फाड़ कर देखने लगता है जैसे घूरता हो,

नाड़ी शीघ्र बंद हो जाती है। शरीर ठंढा पड़ जाता है, और ठंढा पसीना चिपचिपा आता है। साँसकी गति मंद पड़ जाती है। विष खानेके दो मिनटमें ही रोगी मूर्च्छित हो जा सकता है।

चिकित्सा—वमन कराओ। पोटैसियम परमैंनगनेटको कुनकुने पानीमें घोल कर खूब पिलाओ और वमन कराओ। हाइड्रोजन-परॉक्साइडभी पानीके साथ पिलाओ। सिर, मुँह और सीनेपर पानीका छींटा मारो। अमोनिया या स्मेलिंग साल्ट सुँघाओ। ब्रैगडी पिलाओ। शरीर गरम रक्खो। कृत्रिम श्वास कराओ। डाक्टरको तुरन्त बुलाओ।

स्ट्रिकनीन (strychnine)—कीड़े-मकोड़े मारने वाली बुकनियोंमें यह विष पड़ा रहता है। इसका स्वाद कड़ुआ होता है। इसके खानेसे आँखकी पुतलियोंका छेद बहुत बड़ा हो जाता है, बेचैनी जान पड़ती है, हाथ-पैरमें अपने-आप झटका लगता है या ऐंठन होती है। गरदन ऐंठ जाती है। साँस लेनेमें कठिनाई पड़ती है। अंतमें मूर्च्छा हो जाती है।

चिकित्सा—तुरन्त वमन कराओ। लकड़ीका कोयला पीस कर काफी अधिक मात्रामें पिला दो। चाय खूब गाढ़ी बनाकर पिलाओ। स्ट्रिकनीनकी दवा पोटैसियम ब्रोमाइड है। पानी में घोल कर आधा आउंस पोटैसियम ब्रोमाइड पिलाना चाहिये।

कुछ अन्य विष—कुछ अन्य विषोंकी प्राथमिक चिकित्सा नीचे दी जाती है। यहाँ उन उपचारोंकी चर्चा नहीं की गई है जिन्हें केवल डाक्टर कर सकता है, जैसे इनजेकशन आदि।

अफीम—पहले जिंक-सलफेट, राई, या नमकके पानी आदि किसीभी वस्तुसे तुरन्त वमन कराओ। फिर पोटैसियम परमैंनगनेट ४० ग्रेन, पानी ४ बोतल, खूब पिला-पिलाकर कई बार वमन कराओ। रोगीको नींद न आने दो। जगानेको सिर पर ठंढे पानीसे छींटे दो। हृदय-गति सुस्त न होनेके लिये गरम कहवा या चाय (खूब कड़ी बनाकर) पिलाओ। कृत्रिम श्वास कराओ।

ऐंटिमनी (आँजनम) के लवण, टारटर एमेटिक, बटर ऑफ ऐंटिमनी इत्यादि—

यदि आप-से-आप वमन न हो जाय तो वमन कराओ। एक चम्मच टैनिक ऐसिड (पानीमें घोलकर) या कड़ी चाय या कहवा पिलाओ। बादमें दूध, घी आदि चिकने पदार्थ पिलाओ। गरम रक्खो। हृदय-गति न रुकनेके लिए ब्रैगडी दो।

कनैर—वमन कराओ, उत्तेजक पथ्य जैसे ब्रैगडी, कड़ी चाय या कहवा पिलाओ, लक्षणोंका उपचार अलग करो।

कुचला—राई, जिंक सलफेट आदिसे वमन कराओ। पोटैसियम परमैंनगनेट या कोयलेकी बुकनी पानीमें मिलाकर पिलाओ। शोर-गुल थोड़ाभी न हो। हाथ-पैर ऐंठनेकी दवा क्लोरोफार्म सुँघाना है जिसे डाक्टरही दे सकेगा। आवश्यकता होने पर कृत्रिम श्वास कराओ।

कोकेन—वमन कराओ; कड़ा कहवा पिलाओ, स्मेलिंग साल्ट या अमोनिया सुँघाओ। ब्रैगडी दो।

क्लोरोफार्म—(पीनेपर)—वमन कराओ; मुँह पर ठंढे पानीके छींटे मारो; तिलका तेल पिलाओ। कड़ी चाय या ब्रैगडी दो; कृत्रिम श्वास कराओ।

(सूँघनेपर) मुँह खोलकर गला साफ करो; जीभ बाहर खींचो। रोगीको स्वच्छ वायुमें रक्खो, कृत्रिम श्वास कराओ।

जमालगोटा—वमन कराओ। दूध या ४ आउंस तिलका तेल १ बोतल पानीमें खूब झकझोर कर पिलाओ। चिकने पदार्थ, जैसे अंडेकी सफेदी (पानीमें), मक्खन या घी पिलाओ। हाथ-पैरको गरम रक्खो (आवश्यक हो तो सेंको)।

तम्बाकू (या गांजा, चरस)—वमन कराओ; लिटाये रक्खो। कृत्रिम श्वास कराओ।

तारपीन—वमन कराओ; मैगनीसियम सलफेट आध आउंस, पानी २ आउंसमें घोल कर पिलाओ; यह जुलाब है। घी, मक्खन या अंडेकी सफेदी खिलाओ।

तूतिया—वमन स्वयं होगा। यदि न हो तो वमन कराओ। अंडेकी सफेदी (कुनकुने पानीमें घोलकर) या दूध पिलाओ। दर्दके लिये पेट सेंको। फिर चिकनी वस्तुएँ, मीठा तेल, घी, अंडेकी सफेदी आदि दो। ऑक्जैलिक ऐसिड में कास्टिक सोडा या पोटैसियम कारबोनेट मत दो। कारबोलिक ऐसिडमें तेल, घी, आदि मत दो। ३ आउंस सोडियम सलफेट मिलाकर दो।

धतूरा—वमन कराओ, कड़ी चाय आदि दो, कृत्रिम श्वास कराओ; सिर पर ठंढे और गरम जलके छींटे बारी-बारी से मारो।

"वृक्षायुर्वेद"

[लेखक—श्रीचन्द्र कान्त बाली शास्त्री, प्रभाकर]

पाश्चात्य विद्वानोंका कथन है कि भारतमें वनस्पतिशास्त्र (Botany) सम्बन्धी ग्रन्थोंका अभाव है । पाश्चात्योंके चरण चिन्होंपर चलने वाले अहंमानी भारतीयोंने भी उनका समर्थन किया है । बड़े खेदके साथ लिखना पड़ता है कि भारतीयोंने अपने साहित्यका अनुशीलन किये बिना कैसे पाश्चात्योंका इंगितानुकरण किया है ? भारतमें वनस्पतिशास्त्र का अभाव कहने वालोंने क्या 'भावप्रकाश निघण्टु' मदनपाल निघण्टु, पथ्यापथ्य विवेक, राजनिघण्टु तथा शालिग्राम निघण्टु' सम्बन्धी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया ? न ही विविध विषय विभूषित 'अग्निपुराण' का ही दर्शन किया है । तब वे ऐसा क्यों न कहें ।

भारतीय शास्त्रोंमें वनस्पति शास्त्रभी एक अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है । लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व आचार्य व्यासजी ने अठारह पुराणोंका सृजन किया था । उन पुराणोंमें अग्नि पुराणका स्थान पृथक् और सत्तायुक्त है । कुछ समय पूर्व शास्त्रानुशीलन विमुख कुछ-एक लोगोंने पुराणोंके प्रतिकूल विष वमन किया था पर उन्हें क्या पता कि इन पुराणोंमें भी महार्ह रत्न छिपे रक्खे हैं । अग्निपुराणमें गवायुर्वेद और गजायुर्वेदके साथ वृक्षायुर्वेद पर प्रकाश डाला गया है । जिन ऋषियोंने आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व वृक्षायुर्वेद जैसे आवश्यक विषयकी खोज और निर्णय कर दिया था, तब कैसे कह सकते हैं कि भारतमें वनस्पति शास्त्रका अभाव था ।

ऐसा होनेपर भी हमें खेद प्रकाश करना पड़ता है कि कुछ धर्मान्ध जातियोंने हमारे शास्त्रोंको अग्निदेवके सुपुर्द करके हमें अज्ञानमें धकेलनेका प्रयत्न किया है । धन्यवाद है इस ब्राह्मण जातिका जिसने मांगे हुए रोटीके टुकड़ोंपर निर्वाह करके इन शास्त्रोंकी येन-केन प्रकारेण रक्षा की है । इन ब्राह्मणों की अपार दया है कि जिनके जीवन-मूल्यसे ये शास्त्र कुछ न कुछ तो बच पाए हैं । इन बचे हुए शास्त्रोंमें 'वृक्षायुर्वेद' का जितना अंश बच सका है, उसे 'विज्ञान' के प्रिय पाठकोंके मनो विनोदार्थ उद्धृत करते हैं ।

धन्वन्तरि उवाच

वृक्षायुर्वेदका प्रकरण शुरू करते हैं ।

............प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः,
प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्रः आप्यऽश्वत्थः क्रमेणतु ॥१॥

सबसे पूर्व वृक्षोंके योग्य दिशाकी अनुकूलता दिखाई है । यथा—पूर्वदिशामें बट, उत्तरदिशामें प्लक्ष, दक्षिणदिशामें आम्र और पश्चिमदिशामें अश्वत्थ वृक्ष श्रेष्ठ होते हैं ।

दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः समीपे कंटकद्रुमाः ।
उद्यानं गृहवासे स्यात्तिलान्वाप्य पुष्पितान् ॥२॥
गृह्णीयाद्रोपयेद्वृक्षं द्विजं चन्द्रं प्रपूज्य च ।
ध्रुवाणि पंच वायव्यं हस्तं प्राजेशं वैष्णवम् ॥३॥
नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे ।
प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यां तु कारयेत् ॥४॥

वृक्ष लगानेकी विधि इस प्रकार है । दक्षिणादि दिशाओं में लगाए हुए कंटकादि वृक्षोंसे सुरक्षित वृक्षोंको उद्यान में लगाना चाहिये । जब वृक्ष पुष्पित हो जावें तब उन्हें रोपित करना चाहिये । अर्थात् एक क्यारीमें लगे हुए वृक्षांकुर जब पुष्पित हो जावें तो उन्हें वहांसे हटाकर निश्चित स्थानपर लगा देना चाहिये । वृक्ष लगाते समय ब्राह्मणकी तथा चन्द्रमाकी पूजाभी करनी चाहिये । वृक्ष लगानेके लिये मूला धनिष्ठादि नक्षत्र प्रशंसनीय होते हैं ।

अरिष्टाशोक पुन्नाग शिरीषाः सप्रियंगवः ।
अशोकः कदली जम्बू तथा बकुल दाड़िमाः ॥५॥
प्रातः सायं तु घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षारात्रौ भुवः शोषे सेक्तव्याः रोपिता द्रुमाः ॥६॥

वृक्षोंको कब सींचना चाहिये । अरिष्टादि दाड़िम पर्यन्त वृक्षोंको ग्रीष्म ऋतुमें प्रातः और सायंकाल सींचना चाहिए । शीतकालमें मध्यान्हको सींचना चाहिए । वर्षाऋतु में रात्रीको सींचना चाहिए ।

उत्तमा विंशतिर्हस्ता मध्यमाः षोड़शान्तराः ॥

वृक्षोंकी ऊंचाईके विषयमें लिखते हैं । बीस हाथ ऊंचे

वृक्ष श्रेष्ठ होते हैं। सोलह हाथ ऊंचे वृक्ष मध्यम होते हैं। (इससे छोटे वृक्ष प्रशस्त नहीं होते)।

स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥७॥

वृक्षोंको एक स्थान पर लगाकर पुनः स्थानान्तर करना चाहिये। स्थानान्तर करनेकी विधि १२ दिनके बाद होनी चाहिये।

विफला स्युः घना वृक्षाः, शस्त्रेणादौ हि शोधनम् ॥

वृक्ष प्रथमावस्थामें यदि मर्यादातीत घना होजाय तो उसे भविष्यत् में फलहीन जानना चाहिये। अतः उसे शस्त्रसे छांट देना ही श्रेयस्कर है। अथवा—

विडंगघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् शीतवारिणा ॥८॥

वृक्षके अगल बगल में विडंग घृतकी खाद देकर ऊपर से शीतल जलसे सींचना चाहिये। इससे वृक्ष फलवान् हो ।

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैः मुद्गैः यवै स्तिलैः।
घृतशीत पयः सेकः फल पुष्पाय सर्वदा ॥९॥

जब फलनाश हो जाय तो कुलत्थ, माष, मूंग, जौ, तिल प्रभृति द्रव्योंकी खाद देनी चाहिये। अथवा इन पदार्थोंसे बनाए गए घृतका अथवा दूधका सेचन करना चाहिये। इन द्रव्योंके चूर्णसे अथवा घृतादिसे खाद व सेचन करनेपर वृक्ष अवश्यमेव फल देंगे। वृक्षोंको मलेरिया या हैजा वगैरा व्याधियां तो नहीं होंगी। उनकी व्याधि तो 'फलनाश' ही है। फलनाश पर यह योग अवश्य अमोघ रहेगा। अथवा—

आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च।
गोमांस मुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ॥१०॥

फलनाश अथवा पुष्पनाश नामक वृक्षव्याधियोंके लिये दूसरा योग सुनिए। आविका और अज की मेंगनियां, जौ और तिलोंके चूर्णकी खाद देनी श्रेयस्कर है। अथवा पशुमांस के धोवनसे उन्हें सींचना चाहिये। इससे वृक्ष पुष्प और फल देने लगेंगे।

मत्स्यांभसातुसेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः ॥

रोग निवृत्ति के अतिरिक्त मत्स्यमांस धोवनके प्रसेचन से प्रत्येक वृक्ष का बृंहण होता है। मत्स्य मांस धोवन वृक्षोंके लिये टॉनिक माना गया है।

विडंग तंडुलोपेतं मात्स्यं मासं हि दोहदम्।
सवषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम् ॥११-१२॥

अग्नि पुराण, अ० २८२ श्लोक ८३१६ से ८३२६ तक

यह योग वृक्षोंके सर्व विध रोगोंका शामक है। विडंग क्वाथ या स्वरस, तण्डुल जल और मांसरसकी खाद देनेसे वृक्ष स्वस्थ होते हैं।

अग्नि पुराणमें इतना मात्र वृक्षायुर्वेद है। वह पाठकोंके सम्मुख रख दिया है। यह कोई समस्त वृक्षोंका विधि और क्रमपूर्ण चिकित्साशास्त्र नहीं है। वह तो कालकवलित होचुका है। यह उस शास्त्रका एक चिन्हमात्र है जिसे स्मरण और अवलोकन करके अपनी पूर्वजोंकी गौरव मर्यादाका साभिमान स्मरण करनाही हमारा इति कर्तव्य रह जाता है। आशा है पाठक महोदय इसीपर अपना संतोष प्रकट करेंगे।

भारत वर्षमें कागज का व्यवसाय

इतिहास—कागज बनानेका व्यवसाय भारतवर्षमें सन् १८६७ से प्रारम्भ हुआ है। सबसे पहली कागज बनानेकी मिल इसी सन्में हुगली नदीके किनारे पर बनाई गई थी। पन्द्रह वर्ष तक यही अकेली मिल कागज बनानेका कार्य करती रही। इस मिलके द्वारा कागज बनानेकी विधिमें कोई विशेष वैज्ञानिक संशोधन कार्य नहीं हो सका। इसके पश्चात् सन् १८७९ में उत्तरी भारतवर्षमें एक दूसरी कागज बनानेकी मिल बनाई गई। इसके ३ साल पश्चात् सन् १८८२ में एक और मिल प्रारम्भ हुई। इस प्रकार कागजके व्यवसायमें ये तीनों मिलें सर्वप्रथम थीं।

कागजके लिये मूल पदार्थ—भारतवर्ष में प्रारम्भ में कागज फटे चिथड़ों और रद्दी कागजकी सहायतासे बनाया जाता था। किन्तु ये वस्तुयें इतनी अधिक तादादमें नहीं मिल सकती थीं कि जिससे भारतवर्ष की सारी कागज की आवश्यकता पूर्ण हो सके। सन् १८६० में राउट्लेज (Routledge) ने यह सिद्ध किया कि उष्ण देशमें पायी जाने वाली एस्पार्टो घाससे कागज बनाया जा सकता है। इसके पश्चात् १८७५-१८७६ में उसने यह भी बताया कि भारतवर्षके बांससे कागज बनाये जानेकी सम्भावना है। इस विषयकी तरफ और लोगों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। इसके पश्चात् वैज्ञानिकोंका ध्यान भारतवर्षमें प्राप्त अन्य घासोंकी ओर भी गया। दो फैक्टरियोंने कागज बनानेके लिये मूंज और सबाई घासका उपयोग भी करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भमें मूञ्जको खूब काममें लाया गया क्योंकि इससे बना कागज बहुत अच्छा होता था। सबाई घाससे बहुत अच्छा कागज तो नहीं बनता था किन्तु रसायनोंके द्वारा यह आसानीसे कागज बनाने योग्य हो जाती थी। इसलिये बहुत शीघ्र ही मिलोंमें इसको काममें लाया जाने लगा।

इन दो घासोंसे आसानी से कागज बनने के कारण बहुत समय तक राउट्लेजकी विधिके अनुसार बांसोंसे कागज बनानेका प्रयोग नहीं किया गया। किन्तु और देशोंमें बांसोंसे कागज बनानेका प्रयोग लगातार चलता रहा। इसके साथ-साथ वहां पर लकड़ी से भी कागज बनाने के लिए लुब्दी बनाने के प्रयोग लगातार होते रहे। कागज बनाने के लिए पहले मूल पदार्थोंको फेंटकर तथा रसायनोंकी सहायतासे लुब्दीके रूपमें बनाना पड़ता है। इन प्रयोगोंके फलस्वरूप बांस कागज बनाने के व्यवसायके लिये एक अमूल्य वस्तु सिद्ध हुई।

कागज बनानेकी विधि—क्योंकि भारतवर्षमें कागज बनानेका व्यवसाय बांसके ऊपर निर्भर है इसलिये बांससे कागज बनानेकी विधिका वर्णन ही यहां विशेष रूपसे दिया जाता है। कागज बनानेके लिये बांसकी लुब्दी (pulps) बनानेकी आवश्यकता होती है। एक प्रकारकी विशेष लुब्दी विदेशोंसे भी आती है। विदेशी लुब्दीकी अब कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, कभी-कभी किसी विशेष प्रकारके कागज बनानेके लिये इसे बांस की बनाई लुब्दीमें मिला लिया जाता है, किन्तु अब बहुत अच्छा कागज भी बिना इस विदेशी लेईकी सहायताके बनाया जाता है। आजकल की वैज्ञानिक खोजका विषय कागज बनानेका कोई नया पदार्थ निकालना है।

कागज बनानेके लिए सबसे पहला कार्य बांसोंको कुचलना या छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काटना है। ये टुकड़े काफी छोटे छोटे होने चाहिएं जिससे रेशे अलग अलग हो सकें और रासायनिक पदार्थोंका प्रभाव उन पर अच्छे प्रकार हो सके। ये रासायनिक पदार्थ घोलने (digestion) के कार्यके लिये काममें लाए जाते हैं। इन मिलोंके अनुभवसे यह फल निकला है कि बांस को लगातार बहुतसे बेलनोंसे कुचलने से लुब्दी अच्छी बनती है। बांसको टुकड़ोंमें काटनेसे लुब्दी बनानेमें दिक्कत होती है।

इससे अगला कार्य इन रेशोंको रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे घोलना या पकाना है। इस विधिसे बहुतसे छिद्रक पदार्थ घुलनशील हो जाते हैं। इन पदार्थोंमें अधिकतर पेक्टिनस् और लिग्निनस् (pectins and lignins) कई रूपमें सम्मिलित रहते हैं। इनको घोलनेके लिये दो विधियां काममें लाई जाती हैं, (१) अम्लविधि तथा (२) क्षारविधि।

(१) अम्लविधि या सल्फाइट विधिमें जो रसायन काममें लाए जाते हैं वे गन्धक और मैग्नेशिया हैं। इन दोनों पदार्थोंसे आम्लिक लवण मैग्नेशिया—सल्फेट तैयार किया जाता है। यह आम्लिक द्रव पम्पोंकी सहायतासे डाइजेस्टर अर्थात् घोलने वाले बर्तनोंमें ले जाया जाता है। इन डाइजेस्टरोंमें बांसके टुकड़े या कुचलन भरी रहती है। इसके पश्चात् अधिक दबाव पर गरम

की गई वाष्पकी सहायतासे इन डाइजेस्टरोंका तापक्रम बढ़ाया जाता है। ये डाइजेस्टर मध्यम श्रेणीके इस्पातके बने होते हैं। इनके अन्दरकी सतह ऐसी ईटोंकी बनी होती है कि उन पर अम्लका का कोई प्रभाव नहीं होता। ये डाइजेस्टर बड़े छोटे सब प्रकारके होते हैं।

पक चुकनेके पश्चात् इन डाइजेस्टरोंका मसाला फूंकने वाले गड्ढोंमें डाला जाता है। इन गड्ढोंमें वह द्रव जिसमें छिद्रक पदार्थका अंश नहीं होता अलग कर लिया जाता है और लुब्दी बनाने वाले पदार्थ बाकी बच जाते हैं।

(२) क्षार विधि को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (क) सोडा विधि, जिसमें मुख्य रासायनिक पदार्थ जो काममें लाया जाता है कॉस्टिक सोडा है और (ख) सल्फेट विधि—जो सोडा विधिसे अच्छी है तथा जिसमें मुख्य रासायनिक पदार्थ सोडियम सल्फाइड थोड़ी सी मात्रामें कॉस्टिक सोडा मिलाकर काममें लाया जाता है। इसके अतिरिक्त इन रासायनिक पदार्थोंको काममें लानेकी भी विभिन्न विधियां हैं। भारत वर्षमें 'झरना' तथा 'आंशिक' ये दो विधियां विशेष रूपसे काम में लाई जातीं हैं। साधारण रूपसे लुब्दीको चौदह पन्द्रह घण्टेमें पकाकर साफ कर लिया जाता है। जिन मिलोंमें क्षार विधिसे कागज बनाया जाता है उनमें रासायनिक पदार्थों को अलग किए द्रवमेंसे फिर निकाल लिया जाता है। इस प्रकार रासायनिक पदार्थ व्यर्थ नहीं होते।

डाइजेस्टरोंसे पकानेके बाद लुब्दी इनसे निकाल ली जाती है। इसके पश्चात् इसे साफ करते हैं और रासायनिक विधिसे इसकी गंदगी को तथा रङ्गको दूर करते हैं। इसके बाद लुब्दी गाढ़ा करने वाले बर्तनोंमें डाली जाती है। इन बर्तनोंमें इसका बहुत सा पानी उड़ा दिया जाता है और यह गाढ़ी हो जाती है। गाढ़ी होनेके पश्चात् इसे साफ किया जाता है। इस कार्य को ब्लीचिङ्ग कहते हैं।

जब घासों को कागज बनाने के काममें लाते हैं तो पहले इनकी धूल साफ की जाती है फिर ये डाइजेस्टरोंमें भर दी जाती हैं। इन घासोंको घोलने और पकानेका कार्य एक स्थाई दबाव पर कॉस्टिक सोडाके साथ 'आंशिक' विधिसे या अन्य विधिसे गरम करके किया जाता है। घुलने के बाद लुब्दी को फैलाया जाता है। उसके धब्बे हटाए जाते हैं तथा उसे धोया जाता है। लुब्दीको धोनेके तथा रङ्ग दूर करनेके पश्चात् 'पीटने'वाले कमरोंमें ले जाया जाता है। यदि विदेशी रङ्गहीन लुब्दी भी काममें लानी होती है तो वह भी इसी समय इस लेईमें मिला दी जाती है। लुब्दीको रंगहीन करनेमें ही सबसे अधिक होशियारी की जरूरत पड़ती है, क्योंकि कागजका अच्छा होना इस बात पर निर्भर रहता है कि सारी लुब्दीका रंग एकसा हो। यदि लुब्दी एक सी साफ नहीं होगी तो कागजमें धब्बे पड़ जायंगे और कागज अच्छा नहीं होगा। पीटनेका काम कितनी देर होना चाहिये यह उस पदार्थ पर निर्भर होता है जिससे लुब्दी बनाई गई है। कुछ पदार्थोंके लिये कम समय तक पीटने की आवश्यकता होती है और कुछ पदार्थोंकी लुब्दीके लिये अधिक देर तक पीटनेकी जरूरत पड़ती है। पीटनेके पश्चात् लुब्दी कागज बनाने वाली मशीनमें डाल दी जाती है। इस मशीनसे कागज बनकर बाहर निकलने लगता है।

अब फैक्टरियों में भारतीय कागज को विदेशी कागजों के समान अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिये पुरानी मशीनों को हटाकर बिलकुल नई वर्तमान विधिसे बनी मशीनोंको लगाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सारा कार्य भी मशीनों और बिजलीकी सहायतासे किया जाता है।

[इण्डिन-इन्फ़ौर्मेशन से]

—०—

मधुमेह पर एक अनुभूत योग

१. कान्तिसार २ तो. २. गिलोयका सत २ तो. ३. विदारीकंद २ तो. ४. आंवला ४ तो. ५. आमलक्य रसायन २ तो. ६. माजूफल कटैया ८ तो. ७. जायत्री २ तो. ८. इलायची ४ तो. ९. काला हंसराज ५ तो. १०. अफीम पाव तो. ११. भांग आध तो. १२. केलेकी जड़ ४ तो. १३. सफेद मूसली २ तो. १४. स्याह मूसली २ तो. १५. जामुनके बीज २० तो. १६. चांदीके वर्क २ तो. १७. शुद्ध शिलाजीत २ तोला।

उपरोक्त सत्रह चीजोंको पीस कर गुड़मार बूटी के रसमें ७ दिन तक घोटें, प्रति दिन २० तोला स्वरस डालें, फिर जामुन छालके काढेमें ३ दिन तक घोटें और जंगली बेरके बराबर गोलियां बनालें, दो दो गोलियां नित्य गुड़मार बूटी के पत्तों के ३ मा० चूर्ण के काढेसे १ मास तक सेवन करें। पुराने से पुराना रोगभी आराम हो जाता है।

पथ्य—यवकी रोटी, हरी पत्तियोंका साग खाना चाहिये।

जटाशंकर रघुराम पंड्या (भूतपूर्व जेलर)
अमरेली—काठियावाड़

अधिक दिन जीनेके लिये भूखे रहो

अमेरिकामें कार्नेल विश्वविद्यालयके विख्यात डाक्टर मैक्के 'भोजन और अधिक जीने' के विषय पर आठ वर्षसे प्रयोग कर रहे थे। इन प्रयोगोंके फलस्वरूप डाक्टर साहब इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि भूखे रहने वाले अधिक समय तक जीयेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि ये एक दम बिल्कुल खाना ही बंद कर दें। खायें तो लेकिन पेट भर कर न खायें। वह भोजन जिसमें शरीरके लिये आवश्यक पदार्थ तो सब हों किन्तु भोजन की मात्रा कम होनी चाहिये। कम खानेसे तुम पतले तो हो जाओगे—बहुत पतले नहीं—किन्तु यह पतला होना तुम्हारे जीवन-कालको बढ़ा देगा। यह प्रयोग डाक्टर मैक्के ने अपनी प्रयोगशालामें २,५०० सफेद चूहों पर किया था। क्योंकि चूहों पर भोजनका प्रभाव मनुष्योंके समान ही होता है इसलिये प्रयोगके लिये इनको चुना गया था। चूहेके जीवनके दस दिन मनुष्यके जीवनके एक वर्षके समयके समान समझने चाहियें।

सब चूहोंको खानेके लिये एकसे ही भोज्य पदार्थ दिये गए थे। उनको खानेके लिये केसीन, अनाजका श्वेतसार, कॉड मछलीके यकृत का तेल, खमीर (Yeast), चीनी, चर्बी, अल्फफा घासके पत्तोंसे बना भोजन, यकृत और कुछ फालतू भाग जैसे पिसी हुई छिद्रोज (cellulose) मिला हुआ भोजन दिया गया था। जिन चूहों को भूखसे आधा भोजन मिलता था वे अधिक समय तक जीवित रहे, किन्तु उनके भूखे रहनेके कारण उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण हो गई थी। उनके रक्तमें श्वेत अणु कम हो गए थे तथा उनके हृदय की धड़कन ४०० के स्थान पर ३०० रह गई थी। इस प्रकार उनका जीवन धीरे-धीरे चलता है जिसके कारण आयु बढ़ जाती है। किन्तु उनका मस्तिष्क उस समयमें अधिक कार्य करता था। शरीरकी कार्य करने की शक्ति कम हो गई थी किन्तु मस्तिष्ककी कार्य करनेकी शक्तिमें वृद्धि हो गई थी।

एक प्रयोगमें २०० चूहोंको चार ५०-५० के समूहमें रखा गया। ये सबके सब चूहे एकही कमरेमें और एकही परिस्थितिमें रखे गए थे सबको खानेकी चीजें भी एकसी दी गई थीं। यह भोजन शरीरके लिये आवश्यक पदार्थों से तो पूर्ण था किन्तु मात्रामें कम दिया जाता था। ये चूहे प्रयोगके प्रारम्भ होनेके समय ढलती उम्रके थे अर्थात उस अवस्थाके थे जिस अवस्था के ४० वर्षके मनुष्य होते हैं। क्योंकि इन चूहोंको आधे पेट भोजन दिया जाता है। इसलिये ये भूखे रह जाते हैं इस भूखको पूरा करनेके लिए इनको केवल एक भोज्य पदार्थ दिया गया। एक समूहको एक भोज्य पदार्थ दिया गया तो दूसरेको दूसरा और तीसरेको और कोई तीसरा। चूहोंके एक समूहको भूख पूरी करनेके लिए जो भोजन दिया गया वह केवल चीनी थी, दूसरे समूह के लिए श्वेतसार (starch) था, तीसरे समूहके लिए दूधका चूर्ण था और चौथे समूहके लिए यकृत था।

इस प्रकारका भोजन इसलिए दिया गया था कि जिससे यह मालूम हो सके कि किस प्रकारके भोजनसे अधिक दिन जीवित रहा जा सकता है और किस प्रकारके भोजनसे जल्दी मृत्यु हो जाती है। क्योंकि जो चूहे अधिक दिन जीवित रहते उनका भोजन अधिक दिन जीवित रहनेके लिये अच्छा होता और जो चूहे शीघ्र मर जाते वह भोजन हानिकारक होता, किंतु इन दोनोंमें से एकभी बात न हुई। प्रायः सभी चूहे बराबर दिनों तक जीवित रहे। इसके अतिरिक्त इस प्रकार भर पेट भोजन देनेके कारण सब चूहे जल्दी मर गए। जिन चूहोंको आवश्यक पदार्थोंसे पूर्ण भोजन कम मात्रामें दिया गया था और फिर पेट भरनेके लिये कोई दूसरा पदार्थ जैसे चीनी, स्टार्च इत्यादि नहीं दिया गया था वे चूहे अधिक दिन जीवित रहे। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक भोजन चाहे वह कुछ भी क्यों न हो हमेशा आयुको कम करता है।

इस प्रयोगके फलस्वरूप एक बात और भी ज्ञात हुई। जिन चूहोंको पेट भरनेके लिए बाकी खाना दूधका चूर्ण और यकृत दिया गया था वे अधिक दिनों तक बच्चे पैदा कर सकते थे। जिन चूहोंको पेट भरनेके लिये चीनी और स्टार्च (श्वेत-सार) दिया गया था वे इन चूहोंसे केवल आधे दिनों तक बच्चे पैदा करनेके योग्य रहे थे। दूधका चूर्ण और यकृत खाने वाले चूहे ६०० दिन तक बच्चे पैदा कर सकते थे किन्तु चीनी और स्टार्च खाने वाले केवल ३०० दिन तकही बच्चे देने योग्य रहे।

इन प्रयोगोंके फल स्वरूप और भी बहुतसे प्रश्नोंका उत्तर प्राप्त हो सका है, क्या प्रोटीन वाले भोजन आयुवर्द्धक हैं? क्या फालतू भोजन जैसे छिद्रोज अधिक दिन जीवित रहनेमें

सहायक है ? क्या व्यायामका भी कुछ प्रभाव पड़ता है ?

आठ वर्षों तक प्रयोग करनेके पश्चात डाक्टर मैक्केने बताया कि अधिक प्रोटीन या कम प्रोटीन वाले भोजनोंका आयुवर्द्धन या आयु कम करने पर कोई प्रभाव होता नहीं देखा गया। इससे पहले वैज्ञानिकोंका मत था कि अधिक प्रोटीन वाले भोजन जैसे मांस जीवनको कम कर देते हैं। डाक्टर मैक्के के अनुसार व्यायामका भी आयुवर्द्धन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। प्रयोग शालामें ६.५ मन भोजनमें जो चूहोंको प्रतिवर्ष दिया जाता था, फालतू पदार्थ—ब्रेन (brain) और गोल-सिल्लोज (Gound cellulose) के रूपमें—भिन्न मात्रामें मिलाकर दिया गया इस प्रकारकी मिलावटसे चूहोंकी आयु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं मालूम हो सका।

डाक्टर मैक्केसे एक प्रश्न पूछा जाता था कि यदि भूखे रहनेसे मनुष्य अधिक दिनों तक जीवित रहता है तो चीन निवासी जिनका भोजन ऐसा है कि वे सदा भूखे ही रहते हैं, संसारकी अन्य जातियोंके मनुष्योंसे अधिक समय तक क्यों नहीं जीवित रहते ? इसका उत्तर यह है कि चीन निवासियोंके भोजन में शरीरवर्द्धनके लिए आवश्यक सब पदार्थ मौजूद नहीं होते हैं। प्रयोगशालाके चूहोंको भोजन तो भर पेटसे कम दिया गया किन्तु उनके भोजनमें शरीरके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक सब पदार्थ मौजूद थे। जब इन चूहों को भरपेटसे आधा भोजन दिया गया तो शरीरमें तो ये कमजोर हो गए थे किन्तु जीवित अधिक दिनों तक रहे। यदि ८०० दिन या १००० दिन तक के बाद भी—यह चूहोंकी आयु मनुष्योंकी ८० या १०० वर्ष की आयुके समान है—इन चूहोंको पूरा भरपेट भोजन दिया जाय तो वे शरीरमें वैसे ही मोटे हो जाते हैं जैसे भरपेट भोजन खाने वाले चूहे रहते हैं। इस प्रयोगशालामें एक चूहा १,४३० दिन तक जीवित रहा। यदि इस अनुपातसे आदमी जीवित रहे तो उसकी आयु १४३ वर्षकी होगी।

डाक्टर मैक्के की खोजोंका अमेरिकामें बड़ा स्वागत हुआ है। एक संस्थाने उन्हें प्रयोग जारी रखनेके लिये १६०,०००) रुपये प्रदान किये हैं।

उनके प्रयोगोंका फल थोड़ेमें इस प्रकार कहा जा सकता है—

"पहले वह भोजन खाओ जो खाना आवश्यक है, फिर वह जो तुम्हें रुचता है—किन्तु कभी भी अति मत करो।"

[पॉपुलर साइन्स से]

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

बागमें दीमक—दीमक लॉन और बागोंको बहुत हानि पहुंचाती है। वे पृथ्वीमें नीचे नीचे जो सुरङ्गें बनाती हैं उनके कारण पौधोंकी जड़ोंको नुकसान पहुंचता है। इसके अतिरिक्त घर बनानेमें अपने छेदके पास जो ये मिट्टीका ढेर लगा लेती हैं वह भी देखनेमें बहुत बुरा लगता है। इन भागोंको फिर दुबारा बनानेसे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि फिर वे उसी प्रकार मिट्टी का ढेर और सुरङ्गें बना लेंगी। बोनेसे पहले सुरङ्गोंसे दीमकों को समाप्त कर देना चाहिये।

दीमक जैसे छोटे जानवरोंकी और भी कई जातियां हैं जो इसी प्रकार पौधों और लॉनको नुकसान पहुंचाती हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि हर प्रकारके ये छोटे छोटे जानवर कैलशियम सायनाइड द्वारा मारे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे रासायनिक पदार्थोंसे परीक्षा की गई। कुछोंको धूनी दी गई और कुछोंको खानेकी वस्तुओंमें मिलाकर खिलाया गया। किन्तु इन सबमें सबसे अधिक लाभदायक दानेदार granular कैलशियम सायनाइड ही सिद्ध हुई। बागकी गीली मिट्टी को छूते ही इसमेंसे एक गैस निकलती है जो दीमकों की सुरङ्गोंमें पहुंचकर उन सबको मार डालती है।

दानेदार कैलशियम सायनाइड टीनके पीपोंमें बंद बिकती है। इन पीपोंमें एक नली लगी रहती है जिसकी सहायतासे इसे काममें लाया जा सकता है। यह इतनी तेज होती है कि एक पैसे भरसे एक स्थानकी सारी दीमकें मर सकती हैं। कैलशियम सायनाइडको छेदोंमें डालकर उनके मुंह मिट्टीसे बन्द कर देने चाहियें ऐसा करनेके कुछ ही सेकेण्ड बाद सारी दीमकें मर जायंगी।

क्योंकि कैलशियम सायनाइड छेदोंसे मिट्टीके अन्दर डाला जता है इसलिये इससे बच्चों या पालतू जानवरोंको कोई हानि नहीं पहुंचती। इसके अतिरिक्त एकबार गैस निकलने के बाद वहां कोई भी जहरीली चीज नहीं बचती जिससे फिर कभी किसी प्रकारके डरकी सम्भावना हो।

टैंक—फौजी टैङ्कोंको बनानेके लिये पहले उसको प्रत्येक भागका नकशा बनाना पड़ता है। एक ५४० मनके टैङ्कके लिए सवा दो मन नकशोंकी आवश्यकता होती है।
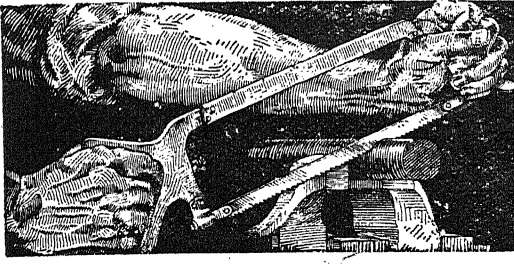
लकड़ी पर नक्काशी

[श्री चन्द्रिका प्रसाद, बी० एस-सी०]

लकड़ी पर नक्काशी करना चित्रकारीकी तरह बहुत मनोरञ्जक व्यसन है। यह कठिन नहीं है; थोड़े ही दिनोंमें इस कार्य में काफी योग्यता हो जायगी और आप कठिन वस्तुएं भी बना सकेंगे।

आरम्भमें बहुत से महंगे औजार खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं है, ये बादमें लिए जा सकते हैं। एक तेज नुकीले चाकू, एक छोटी रुखानी, शीशेके टुकड़े, हजामत बनानेके छुरे का फल और रेगमाल (बालूके कागज) के कुछ टुकड़ोंसे बहुत सी अच्छी चीजें बनाई जा सकती हैं। परन्तु चित्र १ में दिखलाए गए दो चाकू इस कार्य के अधिक उपयुक्त हैं और इनसे काम करनेमें सुविधा होगी।
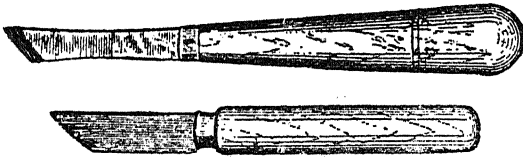
चित्र १ नक्काशी के लिये विशेष चाकू

नक्काशी करनेकी विधि चित्र २ में दिखलाई गई है। मान लो तिकोने गड्ढे काट २ कर निम्न चित्रका चौखटा बनाना है। इसके लिए चाकूको इस प्रकार खड़ा पकड़ो कि काटने वाली धार बाहरकी ओर हो और उसकी नोक त्रिभुजकी नोक पर हो। चाकूको नीचेकी ओर दबाओ जिसमें यह लकड़ीमें धँस जाय और फिर त्रिभुजकी भुजा पर चलाओ; चाकू तुम्हारी ओरसे बाहरकी ओर चले। अब चाकूको दूसरी भुजापर रख कर ऊपरकी बातोंको दुहराओ।
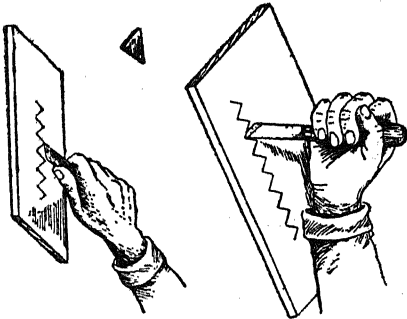
चित्र २ नक्काशी करनेकी विधि
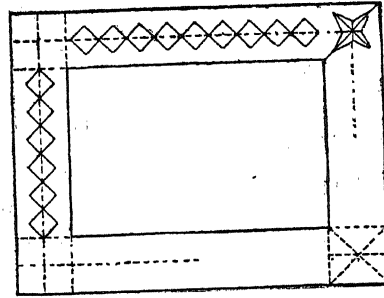
चित्र ३ सरल चौखटा फोटोके लिए

इस प्रकार तिकोनेकी नोक पर ही लकड़ी खूब गहरी कटेगी तब अब लकड़ीके इस तिकोने चिप्पड़को निकालना ही बाकी रह गया है। यह अपनी ओर या अपनेसे उल्टी ओर चाकू चलाकर निकाला जा सकता है। दोनों रीतियोंसे चाकू चलानेका अभ्यास कर लेना अच्छा है।

सरल लकड़ी करनेके लिये एक फोटोके चौखटेका चित्र दिया गया है। (चित्र ३) इसे कोई भी बालक उपरोक्त विधि से चाकू चलाकर बना सकता है। नक्काशी करनेके लिए शीशम की लकड़ी बहुत अच्छी होती है, परन्तु आरम्भमें तून या देवदारू जैसी मुलायम लकड़ियां लेनी चाहिएं।

नक्काशी काटनेके लिये चित्रोंका नकशा आप स्वयं बना सकते हैं। चित्र ४ में एक अधिक पेंचीदा चौखटा दिखलाया गया है। परन्तु इसे ध्यानसे देखने से मालूम पड़ेगा कि यह नकशाभी बहुतसे त्रिभुजोंसे बना हुआ है। साधारण त्रिभुज और इन त्रिभुजोंमें केवल अन्तर यही है कि इन त्रिभुजोंकी भुजाएं सीधी न हो कर गोलाकार हैं। इसी प्रकार त्रिभुजोंको भिन्न प्रकारसे सजा कर आप कई नकशे बना सकेंगे। बक्सों, छोटे टेबलों, शीशेके चौखटे आदिमें भी नक्काशी काट कर ये सुन्दर बनाये जा सकते हैं।

चित्र ५ आदमीकी मूर्ति बनानेके लिए इस आकारकी लकड़ियाँ चाहिएं।

चित्र ६ चित्र ५ में दिखलाई गई लकड़ियोंको इस चित्रमें दिखलाई गई रीतिसे सरेससे जोड़ना चाहिये।

चित्र ४ फोटोके लिए बढ़िया चौखटा

चाकूसे लकड़ीके खिलौने भी बनाये जा सकते हैं। मनुष्य या जानवरोंकी मूर्ति बनानेके लिये दो या तीन लकड़ीके टुकड़ों में मोटी तौर पर मनुष्य या जानवरकी शकल काट कर उन्हें सरेससे जोड़ दो। इस कामके लिये बिना रेशे वाली कोई मुलायम लकड़ी जैसे तुन, देवदारु या सागौन, लीजाय तो अच्छा होगा लकड़ी संशी आरी बो-सॉ, या मोटे फ्रेट-सा से काटी जा सकती है।

आदमीकी मूर्ति बनानेके लिये चित्र ५ में लकड़ीके दो टुकड़े दिखलाये गये हैं। जब दोनों सरेससे मजबूतीसे जुड़ जायं (चित्र ६) तब चाकूसे लकड़ी छील कर आदमीकी शकल बनाई जा सकती है। (चित्र ७) मेज पर किताबोंके टेकनेके लिये बनाई गई गोनिया या ब्रैकेट पर यह मूर्ति सुन्दरतासे लगाई जा सकती है।

छड़ी या छातोंकी मूंठ पर चिड़ियां, सांप आदिकी मूर्ति बना कर उन्हें आसानीसे चित्ताकर्षक बनाया जा सकता है।
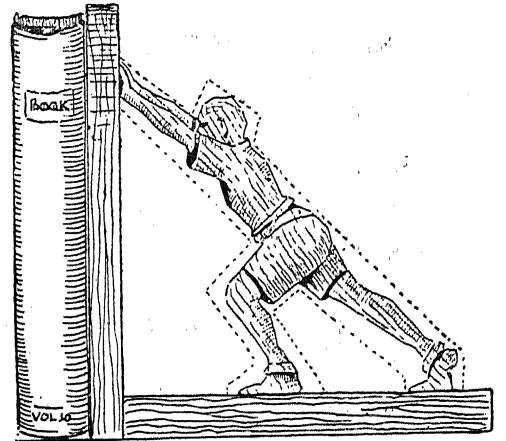
चित्र ७ अन्तमें लकड़ीको चाकूसे छील-घढ़ कर आदमी की मूर्ति बना लेनी चाहिये।

विज्ञान

ग ५४
मूल्य ३) रु०

मार्च, १९४२ मीनार्क, सं० १९९८ वि०

पूर्ण संख्या ३२९
संख्या ६

प्रयाग
की
विज्ञान-परिषद्
का
मुख्य-पत्र
जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान
भी
सम्मिलित है।

चम्पा का फूल

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें 'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद' के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

क
१
२
ख
३
४
ग
घ

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५४ | मार्च, सन् १९४२ मीनार्क, संवत् १९९८ विक्रमी | संख्या ६

भारत सरकार और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

गोरखप्रसाद, डी. एस-सी.

भारत सरकारके केन्द्रीय 'एडवाइजरी बोर्ड' ने सारे भारतवर्षके लिये यथासम्भव एक ही पारिभाषिक शब्दावली रखनेके सम्बन्धमें विचार किया है। बोर्डने इस प्रश्नके विचारके लिये जो उपसमिति बनाई थी, उसके सदस्य थे (१) सर अकबर हैदरी (२) सर के. रामुन्नी मैनन (३) श्री एस. सी. त्रिपाठी (डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग, उड़ीसा) (४) श्री डब्लू. एच. एफ. आर्म स्ट्रोंग (डाइरेक्टर शिक्षा विभाग पञ्जाब), (५) सर जियाउद्दीन अहमद, (६) पंडित अमरनाथ झा (वाइस चान्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय) (७) डाक्टर यू. एम. दऊद पोता (डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग, सिंध) और (८) एजूकेशनल कमीश्नर, भारतीय सरकार। इन्होंने निम्न तीन व्यक्तियों को अपनी समितिमें सम्मिलित कर लिया था। (१) डाक्टर अब्दुल हक (मन्त्री, अखिल भारतवर्षीय 'अंजुमन तरक्की उर्दू') (२) डाक्टर एस. एस. भटनागर (लाहौर) और (३) डाक्टर मुजफ्फर उद्दीन कुरैशी (प्रोफेसर उसमानिया विश्वविद्यालय)।

इस समितिने जो जो प्रस्ताव उपस्थित किये थे, वे कुछ हेर-फेरके बाद निम्न रूपमें १२ जनवरी सन् १९४१ को स्वीकृत हुए।

(१) इस अभिप्राय से कि भारतवर्षमें वैज्ञानिक शिक्षा अधिक उन्नति करे यह वांछनीय है कि यथा सम्भव सर्वत्र एक ही पारिभाषिक शब्द प्रणालीका उपयोग किया जाय और इस सम्बन्धमें उन सब चेष्टाओं पर ध्यान रखा जाय जो इस विषय को ध्येय मान कर अब तक की गई हैं।

(२) इस अभिप्रायसे कि भारतवर्ष की वैज्ञानिक उन्नति और अन्य देशोंकी वैज्ञानिक उन्नतिमें सम्पर्क बना रहे, भारतीय वैज्ञानिक शब्दावलीमें उन शब्दों को यथा सम्भव ज्योंका त्यों सम्मिलित कर लिया जाय जो अब संसारमें अंतर्राष्ट्रीय हो गए हैं। परन्तु इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि भारतवर्ष की सब भाषायें एक ही मूलसे उत्पन्न नहीं हुई हैं यह आवश्यक होगा कि उपरोक्त अंतर्राष्ट्रीय शब्दावलीके अतिरिक्त ऐसे भी शब्द ले लिये जांय जो उन दो मूल भाषाओं पर आश्रित हैं। जिनसे अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषायें निकली हैं, और ऐसे भी शब्द ले लिये जांय जो इन आधुनिक भारतीय भाषाओं में अप्रचलित हैं।

इसलिये भारतीय वैज्ञानिक शब्दावलीमें निम्न भाग रहेंगे—

(क) एक अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली जिसका रूप अङ्गरेजी ही होगा, और जो भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचलित होगा।

(ख) ऐसे शब्द जो किसी विशेष भारतीय भाषाके हों और जिनका रख लेना सार्वजनिक शिक्षाके लिये इन शब्दोंके परिचित हो जानेके कारण आवश्यक हो।

(३) इस अभिप्रायसे कि सारे भारतवर्षके लिये बनी वैज्ञानिक शब्दावली सुचारू रूपसे प्रस्फुटित होती रहे यह वांछनीय है कि कोई केन्द्रीय 'बोर्ड ऑफ रेफरेंस' हो, जिसकी विशेषज्ञ समितियां भी हों। सार्वजनिक प्रश्नों पर इस बोर्ड की सलाह और विशेष प्रश्नों पर निर्णय प्रान्तीय सरकारों और स्थानीय परिषदोंके लिये मानना अनिवार्य है।

(४) यह मानकर भारतीय भाषाओं को दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है, जिनमेंसे एक संस्कृतसे निकली है और दूसरी अरबी-फारसीसे, दो बोर्ड बनें (एक बोर्ड एक समूह के लिये, दूसरा दूसरेके लिये) और प्रत्येक बोर्ड अपने समूहों की भाषाओंके लिये एक ही वैज्ञानिक शब्दावली बनाने का प्रयत्न करे।

(५) एक-रूपताके विचारसे उर्दूमें भी गणितके साध्य और क्रियायें बाईसे दाईं ओर ही लिखी जांय।

(६) एक रूपताकी वृद्धिके लिये और नवीन शब्दावलीका भली भांति प्रचार करनेके लिये पाठ्य पुस्तकें स्वीकृत करने वाले बोर्ड आदि उन्हीं पाठ्य पुस्तकोंको स्वीकार करें जिनमें केवल इस नवीन शब्दावलीका प्रयोग है।

ऐडवाइजरी बोर्ड के उपरोक्त प्रस्तावों से स्पष्ट है कि वह चाहता है कि सरकार अपना जोर लगाकर जबरदस्ती सब स्कूलों और कालिजोंमें यथासम्भव अङ्गरेजी वैज्ञानिक शब्दावली का प्रचार करे। मेरी समझमें ऐसा करनेमें लाभकी अपेक्षा हानि की कहीं अधिक सम्भावना है। मातृभाषामें विज्ञान पढ़ानेका अभिप्राय यही है कि विद्यार्थी अधिक सुगमतासे ज्ञान प्राप्त करें। जब ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उसे अनेक ऐसे शब्दोंको स्मरण रखना पड़ेगा जिनका उसकी परिचित भाषासे कोई सम्बन्ध नहीं तो उसकी ज्ञानवृद्धिका प्रवाह अवश्य ही रुक जायगा। मस्तिष्क, नवीन, पूर्णतया अपरिचित, शब्दों के समझने में ही उलझ जायगा। संस्कृतके आधार पर घड़े शब्द अपने अर्थके कारण बिना परिभाषाके भी बहुत कुछ समझ में आ जाते हैं। उदाहरणतः फोटोग्राफी सीखने वाला अङ्गरेजी न जानने पर यह शीघ्र समझ सकता है कि लैंसों के भीतर छेद होता है जो आंखकी पुतलीकी तरह छोटा बड़ा हो सकता है और सस्ते लैंसोंमें रङ्ग दोष होता है जिसके कारण चित्र अतीक्ष्ण उतरता है। यदि पारिभाषिक शब्द सब अङ्गरेजीके हों तो यही निम्न रूप धारण कर लेगा।

लैंसोंके भीतर आइरिस डायाफ्राम होता है जो आइरिस की तरह छोटा बड़ा हो सकता है और सस्ते लैंसोंमें क्रोमैटिक अबेरेशन होता है जिसके कारण चित्र अनशार्प उतरता है।

कोई भी देख सकता है कि अङ्गरेजी पारिभाषिक शब्दोंसे विज्ञान की सार्वजनिक शिक्षा में कितनी कठिनाई पड़ेगी यह स्पष्ट है।

जिन्होंने कभी स्वयं कोई वैज्ञानिक पुस्तकें हिन्दीमें नहीं लिखी हैं या किसी अच्छी हिन्दी वैज्ञानिक पुस्तक का पूरा अध्ययन नहीं किया है वे समझते हैं कि नए घड़े शब्द निरर्थक और अत्यन्त जटिल होते हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। संस्कृत न जानने वाले भी नवीन घड़े अच्छे शब्दोंको देखते ही बहुत कुछ समझ जाते हैं। हिन्दी और संस्कृतमें इतना घना सम्बन्ध है कि कोई भी चाहे वह कुछ भी संस्कृत जानता हो और चाहे हिन्दी भी वह केवल उतनी ही जानता हो जितनी तुलसीकृत रामायणके मनन से जानी जा सकती है, विज्ञान परिषद् तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभाके कोषोंमें आए नवीन घड़े शब्दों के अर्थोंका अनुमान कर सकता है। एक बार हिन्दी में इन शब्दोंकी परिभाषा समझ लेने पर वह इन शब्दोंको शीघ्र न भूलेगा। परन्तु यदि ये ही शब्द अङ्गरेजी में रखे जांय तो वे जहां जहां आयेंगे नौसिखियेको परेशान करते रहेंगे, और बहुत परिश्रमके बाद ही वे परिचित हो पायेंगे। केवल फोटोग्राफी ही ऐसा विषय नहीं है जिसमें उपरोक्त बातें लागू हों। किसी भी विषयसे ऊपरकी तरह ही उदाहरण मिल जायंगे। जैसे, गणित लीजिये, बी० ए० और बी० एस-सी० की पाठ्य पुस्तकों में प्रायः प्रथमबार आने वाले कुछ शब्दोंका हिन्दी रूपान्तर नीचे दिया जा रहा है।

चल राशि, स्थिर-राशि, स्वतन्त्र चल-राशि, परतन्त्र चल-राशि, अविच्छिन्न चल-राशि, सीमा, अनंत, अनंत स्पर्शी, वक्रता, वक्रलेखन, महत्तम और लघुत्तम मान, अनिर्णीत मान।

हिन्दी द्वारा गणित पढ़ने वालेको क्या इनके बदले अग्रलिखित शब्द इतनी ही सुगमतासे स्मरण रह पायेंगे ? वेरियेबल, कॉन्स्टैंट, इनडिपेंडेंटवेरियेबल, डिपेण्डेण्टवेरियेबल, कॉनटिनुअस वेरियेबल, लिमिट, इनफिनिट, ऐसिम्पटोटकर्वेचर, कर्व-ट्रेसिंग, मैक्सिमा और मिनिमा, इनडिटर्मिनेट वेल्यू।

इनमें से बहुतेरे शब्द तो अङ्गरेजी उच्चारण के अनुसार ठीक-ठीक लिखे भी नहीं जा सकते।

केवल इतना ही नहीं। एक धातुसे निकले अनेक शब्दों को अलग-अलग लेना पड़ेगा ? उदाहरणात: वेरियेबल शब्द यदि लिया जायगा तो इतनेसे ही काम न चलेगा; इसके साथ साथ variablity, variation, variational, invariable, invariant और सम्भवत: variableness, variably, variance, variant, variate varied, variegate, varier, varietal, variety, variform, variometer, various, invariability, invariableness, invariably, co-variant, contravariant, आदि शब्दों को भी ज्योंका त्यों लेना पड़ेगा। परिणाम यह होगा कि भविष्य के व्याकरणोंको किसी दिये हुए विशेषणसे संज्ञा, क्रिया आदि, बनानेके नियमोंमें वे सब नियम देने पड़ेंगे जो आज अङ्गरेजी में होते हैं। फुट शब्दके साथ साथ आज हिन्दीमें इसका बहुवचन फीट भी चला आया है। इसलिये सम्भवत: भविष्यमें जितने शब्द लिये जांयगे उसमें से अधिकांश के बहुवचन भी लेने पड़ेंगे और तब हिन्दीकी जो छीछालेदर होगी वह देखने ही योग्य होगी।

यदि सारे भारतवर्षमें एक ही शब्दावलीके प्रचारके बहाने हिन्दीकी दुर्दशा करनी हो तो बात दूसरी है, नहीं तो यह नहीं समझमें आता कि जब कभी कोई विद्यार्थी अन्य भाषा सीखेगा तो वह जहां दो चार हजार साधारण नवीन शब्द सीखेगा वहां अपने विषयके दो चार सौ—या हजार दो हजार ही वही पारिभाषिक शब्द न सीख लेगा।

मेरीतो राय है कि भारतीय सरकारको हिन्दी आदि भाषाओं की उन्नतिमें रोड़े न अटकाना चाहिये और इसलिये ऐडवाइजरी बोर्डके प्रस्तावोंको कार्य रूपमें परिणत न करना चाहिये।

सरल विज्ञान

विद्युतका चुम्बक—वर्तमान युगमें बिजली के मालूम होनेसे चुम्बकका महत्त्व भी बढ़ता जाता है। चुम्बक और बिजलीका बड़ा निकटका सम्बन्ध है। सारी बिजलीकी मशीनों में प्राय: इसकी आवश्यकता पड़ती है। स्वयं डायनुमा जिससे बिजली बनती है—बिना चुम्बककी सहायताके कार्य नहीं कर सकता।

यदि एक मुलायम लोहेकी छड़ पर रबड़ चढ़ा तार लपेट दिया जाय और इस तार में एक बैटरी से बिजली चलाई जाय तो मुलायम लोहेकी छड़ चुम्बक बन जाती है। रबड़ चढ़ा तार इसलिये काम में लाया जाता है जिससे विद्युत् लोहे की छड़में न चलने लगे। यदि साधारण बिना रबड़का बिजली का तार लपेटा जायगा तो चुम्बक नहीं बनेगा।
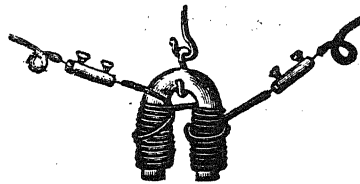
विद्युत का चुम्बक

इस प्रकार बनाये चुम्बककी शक्ति दो बातों पर निर्भर रहती है। (१) बिजलीके तारोंमें जो विद्युत् चल रही है वह कितनी शक्तिशाली है और (२) छड़ पर बिजलीका तार कितना लपेटा गया है। जितने अधिक तारके लपेट होंगे उतना अधिक शक्तिशाली चुम्बक बनेगा।

अधिक शक्तिशाली चुम्बक बनानेके लिये घोड़ेकी नालके आकारकी छड़ काममें लाई जाती है। इस छड़के एक कोनेसे तार लपेटना शुरू करते हैं। इस समय लपेट दाहिनी तरफ को—अर्थात् जिस दिशामें घड़ीकी सुइयां चलती हैं—होता है। जब लपेटते लपेटते नीचे मोड़ तक पहुंच जाते हैं तो लपेटना बंद कर देते हैं। अब तार को सीधे दूसरे सिरेकी तरफ को ले जाते हैं। अबकी बार ऊपरके बजाय नीचे से लपेटा जाता है इसके साथ साथ पहली बार दाहिनी तरफको लपेटा गया था, अबकी बार बाईं ओर को तार लपेटा जाता है।

जैसे बताया गया है अधिक शक्तिशाली चुम्बक बनाने के लिये चुम्बककी छड़ पर लपेटोंकी कई सतह होनी चाहियें।

दिये गये चित्र में इसी प्रकारका एक चुम्बक दिखाया गया है। विद्युत्के चुम्बक बहुतसे कार्यों में बहुत सहायता देते हैं। क्रेनों (बोझा उठाने की मशीनें) में लोहेका सामान उठानेके लिये विद्युत्के चुम्बकोंको काम में लाया जाता है। अधिक शक्तिशाली विद्युत्की सहायतासे यह बड़ी बड़ी लोहे की चीजोंको उठा सकता है। ट्राम गाड़ियोंमें ब्रेक के लिये विद्युत् के चुम्बक काम में लाए जाते हैं। ये विद्युत्के चुम्बक तभी तक लोहेको आकर्षित करते हैं जब तक इनमें विद्युत् चलती रहती है। जब विद्युत् चलनी बंद हो जाती है तो ये साधारण लोहेके टुकड़े जैसे रह जाते हैं। ट्राम गाड़ियोंमें जब इन चुम्बकोंमें विद्युत् चलाई जाती है तो वे बड़े शक्तिशाली चुम्बक बन जाते हैं और ट्रामकी लोहेकी पटरियों से चिपक जाते हैं—ट्राम गाड़ी रुक जाती है। अमेरीका में बहुत से लोग अपनी मोटरके निचले हिस्से में इस प्रकारके विद्युत् के चुम्बक लगा लेते हैं। चुम्बक सड़क पर पड़े पेचों और ढिबरियोंको इकट्ठा करता रहता है। जब घर आते हैं तो वे इन्हें छुड़ा लेते हैं। इस प्रकार वे बहुतसी बेकार हुई ढिबरियों और पेचोंको फिरसे काममें ले आते हैं या बेच देते हैं। डाक्टरीमें शक्तिशाली चुम्बक की सहायता से आंखमें चुम्बकीय पदार्थोंको निकाला जाता है।

भापकी टरबाइन—पानीके जहाज मशीनें तथा अन्य भापसे चलने वाली चीजोंमें भापकी शक्ति दो प्रकारसे काम में लाई जाती है। (१) पिस्टनकी सहायता से, (२) एक छोटे मुंहकी नलीके मार्गसे जोरसे निकलनेसे पहलीका उपयोग आपने रेलके इंजनोंमें देखा होगा। किन्तु दूसरी विधि का उपयोग मेले, तमाशोंमें खिलौने घुमाने में देखा होगा। दूसरी विधि से चलने वाली मशीनों को टरबाइन कहते हैं।

टरबाइन किस सिद्धान्त पर बनाई गई है यह दिये गये चित्रकी सहायतासे आसानी से समझा जा सकता है। पहले चित्रमें प्यालेकी शकलके एक बर्तन में पानी खौलाया जाता है। इससे जो भाप बनती है वह नालियोंकी सहायतासे गोलेमें
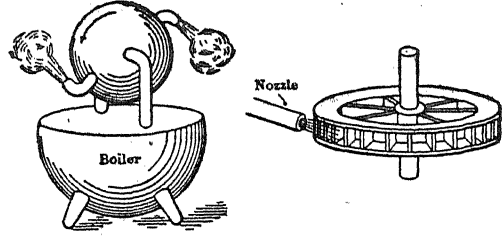
टरबाइन इस सिद्धान्तपर बनाई जाती है।

जाती है। गोलेमें दो नली और लगी हुई हैं। इन दोनों नलियोंका मुंह एक दिशाकी ओर मुड़ा हुआ है। जब इन मुड़ी नलियों से भाप निकलने लगती है तो गोला अपने आप घूमने लगता है। दूसरे चित्र में भाप एक नली की सहायता से दातेदार पहिये पर धारकी तरह डाली जाती है। इस धारकी शक्तिसे पहिया चलने लगता है।

पहले चित्रमें वही सिद्धान्त काममें आता है जिससे बंदूक चलाने वाले को बंदूक का झटका लगता है। जब गोली आगे नाल में से निकल कर जाती है तो उसी शक्तिसे बंदूकको पीछे को धकेलती है। बहुत दूर तक गोला छोड़ने वाली तोपें इसी लिये रेलकी लाइनों पर रक्खी रहती हैं। जब गोला छोड़ा जाता है तो तोप लाइन पर बहुत दूर तक पीछे को चली जाती है। इस तोपको फिर एक इंजिनकी सहायता से अपने पहले स्थान पर ले आते हैं। इसी तरह इस चित्रमें जब भाप आगे को निकलती है तो गोला पीछेको चलने लगता है।

गैसको भी पानीकी तरह उलट सकते हैं—जो गैस हवासे भारी है जैसे कार्बन डाइऑक्साइड उन्हें एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें पानी की तरह पलटा जा सकता है।
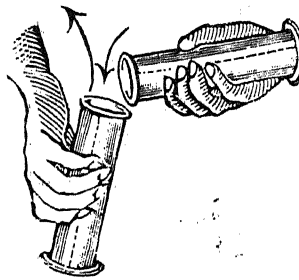
जिस बर्तन में भारी गैस भरी है उसे पानी डालने के समान दूसरे बर्तन में उलट दो। गैस दूसरे बर्तन में गिरती जायगी और उसकी हवा बाहरको निकलती रहेगी।

भारी गैस डालते समय हवा बर्तनसे बाहर निकल जाती है और उसका स्थान गैस ले लेती है।

गैसका फव्वारा—जो गैस पानीमें घुल जाती है, जैसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड गैस, क्लोरिन अमोनिया......इत्यादि उनकी सहायता से गैसका फव्वारा बनाया जा सकता है।

पानी में घुलने वाली गैसको एक फलास्कमें भर लो। उस फलास्कमें डाट लगा कर एक टोंटीदार नली लगा दो। इस नलीका फलास्कके अन्दर वाला मुंह बहुत पतला होना चाहिये। अब फलास्क को लो और चित्रमें दिखाये अनुसार उलटा करके नली का टोंटी वाला सिरा पानीके किसी बर्तन में रख दो। अब टोंटी को खोल दो और थोड़ा पानी चढ़ने दो। पानी ज्योंही अन्दर को जायगा और गैस से छुयेगा तब ही गैस इसमें घुलने लगेगी। गैसके घुलनेसे फलास्क में थोड़ा शून्य स्थापित हो जायगा और पानी उस शून्यको पूर्ण करने के लिए तेजीसे चढ़ेगा। फलास्कमें एक फव्वारा बन जायगा।
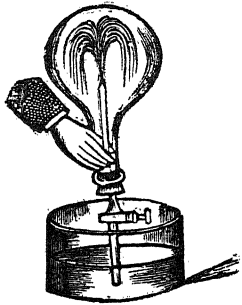
गैसका फुव्वारा

धावक बोतल—प्रयोग करते समय बर्तनोंको खंगालने के लिये बार बार थोड़े थोड़े पानीकी आवश्यकता पड़ती रहती है। जिससे पानी कम खर्च हो और धोने में हाथभी न भीगें। इसके लिये वाशबोतल अर्थात् साफ करने की बोतल काममें लाई जाती है। इस बोतल को बनाने के लिए तीन चार चीजें चाहिये।(१) कांचकी खोखली छड़ें, (२) अच्छा मोटा डाट (३) कुछ चौड़े मुँहकी बोतल या फलास्क और (४) एक रबड़का छल्ला।

कांचकी नली काटने के लिए नली पर रेतीसे एक खरोंच लगा दो खरोंच को आगे की ओर रखकर उसके पीछे दोनों अंगूठों को रखकर दोनों हाथोंसे हलका जोर लगाने से नली खरोंच लगी जगह से दो टुकड़ों में टूट जायगी। मोड़ने के लिये—जिस स्थान से मोड़ना हो स्प्रिटलैंप या गैस बर्नर में गरम करो। गरम करते समय नलीको घुमाते रहना चाहिए। मोड़ने के लिए नलीको शोले से बाहर निकाल कर धीरे धीरे मोड़ना चाहिये। पतले छेद वाली नली बनाने के लिए एक नली को घुमा घुमा कर गर्म करो और फिर शोलेमें से निकाल कर दोनों हाथोंसे गर्म स्थानके दोनों ओर के भागों को विरुद्ध दिशामें खींच दो। बीचका पतला हिस्सा तोड़ दो। दो पतले मुंह वाली नली बन जायगी। इस नलीका मुंह एक सार नहीं होगा। इसे चिकना और साफ करनेके लिए जरा शोले पर घुमाओ। मुंह चिकना हो जायगा। इस नली और पहली मोड़ी गई नलीको एक रबड़ की नलीके टुकड़े से जोड़ दो।
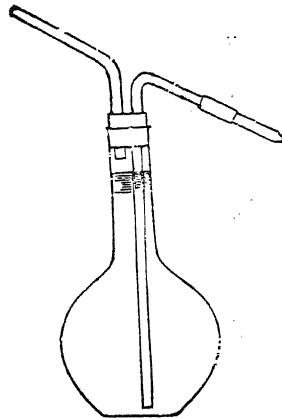
इसके बाद एक डाट को दबानेकी मशीनकी सहायता से मुलायम करो। यदि दबानेकी मशीन न हो तो जूते के तले से दबाते हुए रगड़ कर मुलायम कर लो। इस डाटमें दो छेद डाट छेदने वाली नली से करो।

धावक बोतल

सब चीजोंको चित्र में दिए अनुसार लगाने से बोतल तैयार हो जायगी।

मधुमक्खी-भक्षी हरी चिड़िया

[लेखक—श्री डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी]

मधुमक्खी-भक्षी हरी चिड़िया (the Green Bee-eater) एक छोटी चिड़िया है जिसका लैटिन नाम मेरोप्स ओरियेंटैलिस (Mer ops orientalis) है। यह लगभग ९ इंच लम्बी होती है। इस लम्बाईमें पूंछके अन्तसे निकले हुए दो केन्द्रीय परोंकी लम्बाई भी सम्मिलित है। नर और मादा पक्षियोंको देखनेमें एकही रूपकी होती हैं। पर सर्वत: चटक हरे रङ्गका होता है, परन्तु कहीं-कहीं इसमें नीलापन रहता है, विशेषकर ठुड्डी और गलेके पास। पीठके सर्वोच्च भागमें सुनहली आड़ी धारियां होती हैं। डैनामें सूक्ष्म धारियां होती हैं जो कुछ काले रङ्गकी होती हैं सामने और आंखोंके नीचे चिह्न होता है।
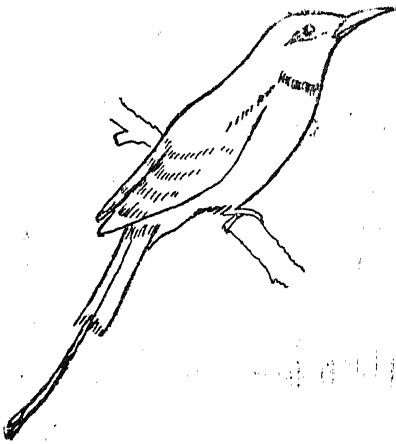
मधु-मक्खी भक्षी हरी चिड़िया

आंख रक्त वर्ण, चोंच काली और पैर सीसे की तरह मैले काले रङ्गके होते हैं।

चोंच लम्बी, पतली और टेढ़ी होती है। पैर दुर्बल होते हैं। पूंछके बीचसे दो लंबे और नुकीले पर निकले रहते हैं।

भारतवर्षके मैदानोंमें (गैर-पहाड़ी देशोंमें) यह चिड़िया बहुत होती है और अपने पतले शरीर, लम्बी चोंच, पूंछ से निकले दो पर और हरे रङ्गसे तुरन्त पहचानी जा सकती है। वृक्षों और तारके तारों पर बैठती है।

केवल भारतवर्षमें ही नहीं, यह मिश्रदेश, लङ्का, बरमा, सियाम, कोचीन-चाइना आदि देशोंमें भी पाई जाती है। भिन्न भिन्न देशोंमें इस पक्षीमें कुछ विभिन्नता देखी जाती है। परन्तु भारतवर्षमें केवल दो जातियां मिलती हैं। उपरोक्त वर्णन वाली चिड़िया भारतवर्षमें केवल सिंध, पञ्जाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और बलोचिस्तान को छोड़ प्राय: सर्वत्र पाई जाती है। सिंध, पंजाब आदि प्रांतोंमें जो जाति मिलती है उसका रंग कुछ हलका होता है और गला अधिक नीला होता है। यों तो यह पक्षी मैदानोंकी रहने वाली है, परन्तु ५००० या ६००० फुट या इससे भी ऊंचे प्रदेशोंमें भी इसको जाते देखा गया है।

मधुमक्खी-भक्षी हरी चिड़िया जंगलोंमें नहीं रहती, जहां पानी बहुत बरसता है वहांभी कम होती है। यह साधारणत: खुले मैदानोंमें रहना पसन्द करती है जहां चाहे खेती-बारी होती हो, चाहे न होती हो, भारतवर्षके पक्षियोंमें नि:सन्देह उसकी उन पक्षियोंमें गणना होनी चाहिये जो अधिक संख्यामें मिलते हैं, और यह अपने सुन्दर तथा चटक रङ्ग और तारों पर बैठनेके कारण तुरन्त ध्यान आकर्षित करती है। यह वृक्षों पर भी बैठती है, परन्तु भूमि पर केवल घोंसले बनानेके लिये उतरती है। इसकी टांगें इतनी दृढ़ नहीं होतीं कि भूमि पर यह दौड़ सके। वृक्ष आदि पर अपना अड्डा जमाती है और वहींसे झपट कर हवामें उड़ते हुए भुनगों और पतिंगोंको पकड़ लेती है। इन्हें पकड़ कर फिर अड्डे पर चली जाती है और वहीं उन्हें खाती है मधुमक्खियोंको भी पकड़-पकड़ कर खूब खाती है।

इसकी बोली सुहावनी होती है, परन्तु यह एक ही बोली बोलती है—ट्रि-ट्रि-ट्रि-ट्रि और साधारणत: यह तभी बोलती है जब उड़ती रहती है।

ये पक्षियोंके समूहोंमें रहना पसन्द करती हैं और रातको अकसर सटे-सटे वृक्षों पर दो-दो तीन-तीन सौ पक्षियोंमें बसेरा डालती हैं।

मार्चसे लेकर जूनके आरम्भ तक ये अण्डे देती हैं। अण्डे भूमिमें खोदे गए गोल घरों में देती हैं। घरों तक पहुंचने के लिये सुरङ्ग बनी रहती है। साधारणत: सुरङ्ग और अण्डा देने का घर किसी खड़ी करारके पृष्ठमें रहता है। सुरङ्ग ५ फुट तक लम्बी हो सकती है। इसका मुंह गोल होता है और यह बड़ी सफाईसे कटी रहती है। ये पक्षी स्वयं यह सब बनाते हैं। वे कोई घोंसला नहीं बनातीं। मिट्टी पर ही अण्डे दे देती हैं।

एक समूह में तीनसे पांच तक अण्डे रहते हैं। ये प्राय: गोल होते हैं और दूधकी तरह श्वेत होते हैं। ऊपर किसी प्रकार का चिह्न नहीं रहता। अण्डे कड़े और चमकीले होते हैं। नापमें वे लगभग ७/१० इंच व्यासके होते हैं।

क्या इस युद्ध में कीटाणुओं का उपयोग होगा ?

बिमारियां फैलाने वाले कीटाणुओंको काममें लाना बड़ा कठिन है, कई कारणों से बहुत कम डर है।

हवाई हमलेमें बमोंकी बौछारसे भी अधिक लोगोंको भय है कि दुश्मन रोग उत्पादक कीटाणुओंका उपयोग करेगा। इसके विषयमें बहुत भय उत्पादक बातें लोग आपसमें बैठकर किया करते हैं। बमोंसे तो उतने ही लोग मरते हैं जिन लोगोंके बचावके स्थानों पर या मकानों पर बम गिरते हैं, किन्तु इन कीटाणुओंसे डर है कि ऐसी बिमारियां फैल जांयगी जिससे घर पर और मैदानमें दोनों जगह दुश्मन समूल नष्ट हो जायगा। इस प्रकार दुश्मनको बिलकुल मिटानेका काम इन कीटाणुओं की सहायतासे बड़ी सुगमतासे और बड़ी पूर्णतासे हो जायगा। लोगोंको डर है कि यह कीटाणुओं की भयङ्कर लड़ाई मशीनों की लड़ाईसे भी अधिक भयङ्कर तथा विध्वंसकारी होगी। जब रासायनिक और जीवविज्ञानवेत्ता अपनी कीटाणुरूपी जादूकी पुटलियां खोलेंगे तो सारे संसारमें हाहाकार मच जायगा।

प्राचीन कालमें रणचण्डी अपनी प्यास सैनिकोंके ही रक्त को पीकर शांत कर लेती थी। असहाय बच्चे और स्त्रियोंके खून को पीते उसे भी लज्जा आती थी। उस समय में युद्धकार्य मैदान तक ही सीमित था। किन्तु संक्रामक रोगोंसे उस समय भी बहुत सी सेनायें नष्ट हो जाती थीं। भयानक से भयानक शत्रुसे भी उतने सैनिक नहीं मरते थे जितने संक्रामक रोगसे मर जाया करते थे। कभी-कभी तो सारी की सारी सैना बिना मार्च का हुक्म पाए ही एक स्थानपर संक्रामक रोगोंसे मर जाती थी। धीरे धीरे इन संक्रामक रोगों की चिकित्साका लोगों ने पता लगाया और उनको दूर करने का प्रयत्न किया। १८ वीं शताब्दीके यूरोपीय युद्धमें लड़कर जितने सैनिक मरे थे उससे छः गुना सैनिक संक्रामक रोगोंके कारण मरे थे। किन्तु धीरे धीरे संक्रामक रोगोंसे बचावके साधन खोज लिये गए। गत महायुद्धमें संक्रामक रोगोंका भय करीब-करीब बिलकुल खत्म हो गया था किन्तु युद्धके अन्तमें कुछ संक्रामक रोग फैलाने वाले कीड़ोंका उपयोग किया गया था।

अब फिर अफवायें आती हैं कि संक्रामक रोगके कीड़ोंको लड़ाईमें हारने वाला दुश्मन काममें लायेगा। इसके अतिरिक्त इस समस्याका महत्त्व वाशिंगटनकी 'हथियारोंकी पाबन्दी' पर होने वाली कॉनफ्रेन्स से और भी अधिक बढ़ जाता है। उस समय जो संस्था इसकी जांच के लिये बैठाई गई थी उसकी रिपोर्ट इस प्रकार थी :—(१) कीटाणुओंसे फैलने वाले रोगों को सीमित नहीं किया जा सकता। (२) वर्तमान पानी साफ करनेकी विधिसे टायफायड तथा हैजेके कीड़ोंको नष्ट किया जा सकता है। (३) प्लेगके कीड़े जो लोग दूसरेको मारनेके लिये काममें लाते हैं उन कीड़ोंसे उपयोग करने वालेकोभी उतनाही खतरा है जितना दुश्मनको। (४) वर्तमान सफाईकी विधियों से चलकर फैलने वाली बिमारियों का उपचार किया जा सकता है।

इसके पश्चात् लोगों का इस विषय की ओर से बिलकुल ध्यान हट गया था किन्तु जबसे लड़ाई शुरू हुई तबसे फिर इसकी चर्चा प्रारम्भ हो गई है। अब लोगोंको डर होने लगा है कि यदि कीटाणुओंकी लड़ाइयां चलती रहीं तो भावी सन्ततियोंके समूल नष्ट होनेकी सम्भावना है।

बीते युद्धोंका इतिहास बताता है कि युद्धके समय नैतिकता का कोई कुछभी ध्यान नहीं रखता था। युद्धसे पहले चाहे कैसे ही संधिपत्र और प्रतिज्ञाएं क्यों न लेली जायं युद्धके समय उन्हें भूल जाते हैं। इसलिये नैतिकताकी दुहाई देना इन युद्धोंमें बिलकुल बेकार सी बात है। यदि यह 'मन चाही' इसी प्रकार चलती रही तो इन युद्धोंके अंत होनेमें संशय है। यदि युद्ध चलते रहे तो युद्धका परिणाम और उनका मानवताके अस्तित्व पर प्रभाव विध्वंसकारी शस्त्रोंके अन्वेषणों पर निर्भर रहेगा। युद्ध के शस्त्रों का इतिहास यह बताता है कि विध्वंसकारी हथियारोंको लड़ने वाले तभी छोड़ते हैं जब या तो उनसे अच्छे हथियार मालूम हो जाते हैं, या उन हथियारोंके आक्रमणको रोकने वाले उपाय ज्ञात हो जाते हैं।

यदि कीटाणुओं द्वारा दुश्मन की सैनाको नष्ट किया जा सकता है, यदि दुश्मनके देशोंको संक्रामक रोगों और विषैले पदार्थोंसे नष्ट किया जा सकता है तो नैतिकताकी तनिक भी परवाह न करके दुश्मन अवश्य यह सब काम करेगा। इस नैतिकता को वे केवल भावुकता समझते हैं और उसकी तनिकभी परवाह नहीं करते। सन् १९२३ की जिनेवा की कॉनफ्रेंसमें कीटाणुओं और विषैली गैसोंके प्रयोगके विरुद्ध प्रस्ताव पास

किया गया था। इससे तो यह मालूम पड़ता था कि वे लोग इस प्रकारके युद्धको बहुत भयानक समझते थे, किन्तु ईश्वरकी कृपासे अब तक जितनी जानकारी प्राप्त है उससे यह युद्धविधि इतनी भयङ्कर प्रतीत नहीं होती है। यदि कोई नई कीटाणु पालनेकी विधि निकल आए तबतो कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस प्रकारके युद्धका जो प्रभाव हो सकता है वह कुछ उदाहरणोंसे बिलकुल साफ हो जायगा।

सबसे पहले हम छूतकी बिमारियां जैसे—हैजा, टायफाइड अतिसार, इत्यादि अंतड़ियोंकी बिमारियों को लेते हैं। प्राचीन कालके युद्ध में तथा शान्ति के दिनों में इन बिमारियों से बहुत हानि होती थी, किन्तु आजकल हैजे और अतिसारका इलाज तो प्रायः हर एक डाक्टर कर सकता है। इन बिमारियोंके कीड़े पानी तथा खानेकी चीजों पर डाले जा सकते हैं। किन्तु इससे भय की कोई विशेष संभावना नहीं। एक दो सैनिकोंको बिमारी होते ही इन कीटाणुओं का पता चल जाता है और फिर आसानीसे उसका उपचार भी किया जा सकता है। उपचार इतना सरल है कि हजारों वर्ष पहले अरस्तु भी जानता था। जब उसका मित्र सिकन्दर दिग्विजय करने निकला था तो उसने उसे शिक्षा दी थी 'पानीको उबाल कर पीना और मैलेको जलवा देना।' उस समय की यह बचावकी विधियां बिलकुल बच्चोंकी बातें लगती हैं। आजकल नए आविष्कारोंकी सहायतासे इन बिमारियोंको प्रारम्भ होनेसे पहले ही नष्ट किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त दूसरे भयंकर रोग—यदि उपयोग किये जा सकें—सांससे सम्बन्ध रखने वाले रोग हैं अर्थात् वे रोग जिनके कीटाणु हमारी सांस द्वारा फेफड़ोंमें जाकर रोग उत्पन्न कर सकते हैं, जैसे इन्फ्लुइञ्जा, निमोनिया तथा सर्दी। इसके लिये वायुयानोंकी सहायतासे कीटाणु-युक्त धूल वायुमें फैलायी जा सकती है जो सांसके साथ जा कर अपना प्रभाव कर सकती है। किन्तु हमें देखना यह है कि यह कितनी अधिक हानि कर सकती है। वास्तवमें इससे हानिकी कोई सम्भावना नहीं। हम साधारणतः जो वायु सांसके द्वारा खींचते हैं उसमें भी कीटाणु रहते हैं किन्तु वे कोई विशेष हानि नहीं पहुंचाते। रोग पैदा करनेके लिये औरभी बातोंकी आवश्यकता पड़ती है। ये कारण वास्तवमें क्या हैं? इसके विषय में तो पूरा पूरा ज्ञान अभी तक प्राप्त नहीं है और जब तक यह ही नहीं मालूम कि इन रोगोंका क्या कारण है तब तक कृत्रिम रूपसे इन रोगोंके फैलनेकी कोई सम्भावना नहीं।

बीते हुए युद्धोंमें सबसे भयंकर बिमारियां टायफायडका संक्रामक रोग और भयानक प्लेग थी। गत महायुद्धमें इन्हीं बिमारियोंसे रूसकी सेनाओंकी बहुत क्षति हुई थी। ये बिमारियां कीड़ोंके काटने या रोगी पिस्सु या जूं और अन्य जानवरों के शरीरमें रहने वाली मक्खियोंसे हो जाती हैं। वर्तमान युद्ध में यहभी संभव है कि इन बिमारियोंसे रोगी चूहे चूहेदानोंमें बंद करके पैराशूट या छतरीके सहारे दुश्मन के देशमें छोड़ दिये जायं और चूहेदान इस प्रकारका हो कि जमीनसे छूतेही खुल जाय और चूहा निकलकर भाग जाय। यह चूहा भाग कर पास के किसी मकानमें दाखिल होकर घुस जायगा इस प्रकार यह रोगके कीटाणुओंको अन्य चूहों और आदमियोंमें फला सकेगा। उस सारे भागमें भयानक प्लेग प्रारम्भ हो जायगी किन्तु इससे भी डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं। जिन जिन स्थानोंपर प्लेग फैली है वहां पर रहने वालोंको यह अनुभव है कि यदि मकानको साफ रखा जाय तथा सावधानीसे रहा जाय तो इस बिमारी से कुछ डर नहीं रहता।

टायफायड फैलानेके लिये रोगी जूं चाहिये। यह जूं कपड़ों में पैदा करके काममें लाई जा सकती है किन्तु यह तरीका कोई देश भी दुश्मनके विरुद्ध काममें नहीं ला सकता। यदि किसी प्रकार यह संभव भी हो तो जूं बड़ी आसानीसे मारी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कीटाणु हैं जिनसे शरीरपर फोड़े निकल आते हैं या शरीरके कुछ अंग काम करना बंद कर देते हैं। ये कीटाणु वास्तवमें बहुत अधिक भयंकर होते हैं और इनका प्रभाव भी बहुत भयानक होता है। इन कीड़ों से पैदा होने वाला छोटासा भी क्षत बहुत घातक होता है। लेकिन इन कीटाणुओंका प्रयोग भी सफल नहीं हो सकता। सब से पहली बात तो यह है कि इन कीटाणुओंसे उत्पन्न होने वाली बिमारियां छूतकी बिमारियां नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इन बिमारियोंको फैलानेके लिये फटने वाले गोलों में ले जाना पड़ेगा। जहांभी कीड़े डालने होंगे वहींपर यह गोला फटना चाहिए गोले के फटने में एक दम बहुत अधिक गर्मी उत्पन्न होती है। यह गर्मी इतनी अधिक होती है कि इस तापक्रम पर कोईभी कीटाणु जीवित नहीं रह सकता।

इन सब कीटाणुओंमें सबसे भयानक शलाकाकार कीटाणुओं

से उत्पन्न होने वाले विषाक्त रोग हैं। बैसिलस बोटूलिनस (bacillsubotulinus) से प्राप्त विषाक्त पदार्थ इतना भयंकर है कि आधा मिलिग्राम ही एक मनुष्य को मारने के लिये काफी होता है। चाहे खानेके साथ चला जाय या किसी जख्मके द्वारा शरीर में चला जाय या किसी श्लैष्मिक क्रिया से ही छू जाय, इसका प्रभाव प्रत्येक दशामें लगभग एकसा ही घातक होता है। इसकी एक चम्मचकी मात्रा एक सारे शहरको मारनेके लिए काफी होगी। एक वायुयान इस पदार्थ की इतनी मात्रा लेकर उड़ सकता है कि जिससे सारे संसार के प्राणी मारे जा सकें। किन्तु ये संख्यायें केवल गणितकी संख्याओंके समानही सार विहीन हैं। भयंकर पदार्थके प्रयोग करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। पहले तो अधिक मात्रामें इसका बनाना ही बहुत कठिन है, फिर इसे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जाना बहुत मुश्किल है। यह इतना घातक होता है कि स्वयं लेजाने वालोंको ही पहले नष्ट कर देगा। यदि यह समस्याभी सुलझाई जा सके तो इसको कैसे काममें लाया जाय यह और भी मुश्किल काम है।

गत महायुद्ध में जितनी गोलियां बनाई गई थीं यदि वे सब काममें आतीं तो संसारकी जन संख्याके ५० गुने आदमियों को मारनेके लिए काफी थीं। यही बात बोटूलिनके विषयमें कही जा सकती है। बोटूलिनसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनके चिन्ह हैजा और टायफायड बुखारके चिन्होंके समान होते हैं तथा इसका उपचार भी इन रोगोंके उपचारके समान ही है। जैसे जैसे हैजेको दूर करनेकी विधियां ज्ञात होती जाती हैं उसी अनुपातसे बोटूलिन का भय भी कम होता जाता है। बोटूलिनभी अन्य कीटाणुओं के समान अधिक तापसे नष्ट हो जाते हैं इसलिए गोलोंकी सहायतासे ये फैलाए नहीं जा सकते।

इस थोड़ेसे वर्णनसे ज्ञात हो सकता है कि कीटाणुओं के प्रयोगकी अधिक संभावना नहीं। कल्पनाका महत्त्व बनाने वाले लोग चाहे अपने दिमागमें इन कीटाणुओं के प्रभावके कितने ही भयंकर चित्र क्यों न खैंचें लेकिन वास्तवमें वे इतने भयंकर नहीं हैं। जब साधारण जीवनमें भी भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुओं के वातावरण में रहते हुए उनका हमारे ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता फिर कृत्रिम रूपसे उपयोग किए गए कीटाणु ही अधिक भयंकर होंगे यह विश्वसनीय बात नहीं है। [सायंटिफिक अमेरिकन से]

फल-संरक्षणका महत्त्व

[ले०—श्री कुंवर वीरेन्द्र नारायणसिंह, एम. एस-सी.,]

प्रत्येक सभ्य देश में 'फल-संरक्षण की आधुनिक कलाका भली-भांति प्रयोग हो रहा है जिसके द्वारा अधिकांश मात्रा से उत्पन्न हुए फल एवं शाक-भाजियोंको नष्ट होनेसे बचानेके अतिरिक्त उन सुरक्षित फलों द्वारा देशके व्यापारका एक बहुत बड़ा क्षेत्र स्थापित हो गया है। किन्तु भारतवर्ष की जलवायु और भूमि इतनी विस्तीर्ण होते हुए भी—यहां सम, शीतोष्ण एवं उष्ण कटिबंधमें उत्पन्न होने वाले प्रायः सभी फल और तरकारियां अधिकतासे उत्पन्न होती हैं किन्तु उनके सुरक्षित रखनेके विभिन्न साधनोंका उपयुक्त प्रयोग नहीं हो रहा है। यद्यपि अल्प-व्यय और सरलतासे मिल जानेके कारण उनका अन्य देशोंके अतिरिक्त यहां अधिक उपयोग भी होता है। उन प्रान्तोंमें जहां फल विशेष की बहुतायत होती है, गावोंके लोग कई दिनों तक फलों पर ही निर्वाह करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति प्रायः प्रतिदिन किसी न किसी रूपमें उनका सेवन करता है। किन्तु फलोंके प्रतिदिनके व्यवहार की अपेक्षा कहीं ज्यादा उनका व्यापारिक महत्त्व है। भारत में फलों की अधिकता होते हुए भी लाखों रुपयोंके ताजे फल और तरकारियां वैज्ञानिक साधनों द्वारा अल्प कालके लिये सुरक्षित रखकर प्रतिवर्ष विदेशों से आती हैं जो कि निम्नलिखित अङ्कोंसे विदित हैं:—

ताजे फलों एवं शाक भाजियोंका मूल्य

वर्ष	रुपये
१६३०	३३,५६,६१८
१६३१	३३,६६,६६१
१६३२	२६,६३,२४२
१६३३	३२,१७,५४३
१६३४	२८,२५,८८४

सम्भवतः जन-साधारणको इन अङ्कोंको देखकर आश्चर्य होगा। भारतमें इस अधिकता से फलों के उत्पन्न होने पर भी उनके विदेशोंसे आनेकी क्या आवश्यकता? यही क्यों, कितनी ही और वस्तुएं हैं जिनकी हमारे यहां अधिकता है, फिर भी वे विदेशों से आती हैं। कारण यह है कि फल और तरकारियां

अपनी ऋतुओं में यहां इतनी अधिकता से उत्पन्न होती हैं कि सबका उपयोग करना असम्भव हो जाता है जिसके फल-स्वरूप प्रतिवर्ष करोड़ों मन फल सड़ कर बरबाद हो जाते हैं। सन् १९३५ में केवल संयुक्त प्रान्तमें १॥ करोड़ मन फल सड़ गए थे और किसी-किसी वर्ष फल विशेषकर इस अधिकता से उत्पन्न होते हैं कि मनुष्योंकी कौन कहे, पशु तक उन्हें नहीं खाते। ऐसी दशामें बाहरसे ताजे फलोंका आना वास्तवमें आश्चर्य की बात है। किन्तु विदेशोंमें यह हाल नहीं है। वहां ऋतुफल पूर्ण रूपसे वर्द्धन होनेके पहले ही तोड़ लिये जाते हैं और कृमि रहित कागजके टुकड़ोंमें लपेट कर अलग-अलग अलमारियोंमें रख दिये जाते हैं। उस कमरे में एक प्रकारकी वायु जिसे कारबोनिक एसिड गैस कहते हैं, भर दी जाती है और उसका तापक्रम भी शून्य (०°) पर रखा जाता है। इस प्रकार अथवा अन्य वैज्ञानिक प्रयोगोंसे वे फल महीनों तक ताजे बने रहते हैं, उनके शीघ्र ही खराब होनेका भय जाता रहता है और ऐसी ही दशा में वे बाहर भेजे जाते हैं। ताजे फलोंके व्यापारके लिये हमारे देशमें कितना बड़ा क्षेत्र खुला हुआ है, यह उक्त आंकड़ोंसे भली भांति विदित है। वैज्ञानिक साधनों के द्वारा ऋतुके फल ताजे बनाये रखकर भारतके एक प्रांतसे दूसरे प्रांतमें भेजनेके अतिरिक्त दूसरे देशों को भी भेज सकते हैं। भारतीय ताजे फलों की विदेशोंमें अधिक मांग भी है पर उचित प्रबन्ध न होनेके कारण बाहर नहीं भेजे जा सकते।

ताजे फलोंके अतिरिक्त डिब्बे और बोतलोंमें बन्द फलोंकी भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ११-१२ लाख रुपये की खपत है जो निम्नलिखित आंकड़ोंसे विदित है:—

डिब्बों और बोतलोंमें बन्द आने वाले फलोंका मूल्य

वर्ष	रुपये
१९३१	८,३५,९१०
१९३२	९,९६,३३९
१९३३	९,५०,१०२
१९३४	१०,६६,९८५
१९३५	११,०२,७३६
१९३६	११,२३,०२५
१९३७	१०,१६,३९३
१९३८	१२,११,५९८

जैम, जेली आदिके रूपमें सुरक्षित-फलोंके भारतवर्षमें आने का मूल्य प्रति वर्ष निम्न है:—

वर्ष	रुपये
१९३१	४,३४,८०८
१९३२	३,८६,०२५
१९३३	६,४०,५७७
१९३४	६,२८,९४८
१९३५	६,८६,१९२
१९३६	६,७४,२८९
१९३७	७,३१,८८७
१९३८	६,५४,८४७

यही नहीं सुरक्षित फल, चटनी, अचार, मुरब्बे आदिके रूपमें प्रतिवर्ष ६-७ लाख रुपयोंका माल विदेशोंसे इस प्रकार आता है:—

वर्ष	रुपये
१९३१	४,२४,९४१
१९३२	३,८७,८२९
१९३३	६,२७,९१०
१९३४	७,०५,२९५
१९३५	६,७८,८३५
१९३६	६,४८,८७२
१९३७	७,१९,८८२
१९३८	६,२१,९७५

हमारे देशमें फलोंको मुरब्बे, चटनी, अचार आदिके रू सुरक्षित रखनेकी पद्धति बहुत दिनोंसे चली आ रही है। उसका छोटा मोटा व्यापार शहरके मुरब्बे वाले किया करते हैं जिनके बनानेकी विधि बेढङ्गी और गन्दी होती है। प्रत्येक घरमें उनके बनानेकी व्यवस्था होती है। किन्तु उनकी प्रणालीमें दो बातोंकी न्यूनता है। प्रथम इस प्रकारके सुरक्षित फल कुछ दिनों बाद खराब होने लगते हैं और द्वितीय यह कि उनका वास्तविक स्वाद जाता रहता है। मुख्यतः इन्हीं दो बातोंको ध्यानमें रख कर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालीका प्रयोग फल-संरक्षणमें और विशेषकर डिब्बे और बोतलोंमें बंद फलों के सम्बन्धमें होता है। निःसन्देह फलोंको सुरक्षित रखने की विधि हमारे देशमें बहुत पुराने समयसे है किन्तु वह अभी तक जैसी की तैसीही प्रचलित

है उसमें सुधार नहीं हुआ है और जो वैज्ञानिक पद्धति पाश्चात्य देशोंमें सफलतापूर्वक चल रही है वह भी अपनाई नहीं गई है। इन आधुनिक विधियों द्वारा आम, लीची, अंगूरका डिब्बा बंद करके, हरे चने, मटर, गोभी एवं अन्य शाक भाजियोंको सुखा करके, कैथा, अमरूद, करोंदा, पटुआ, जामुन, आदि की जेली बनाकर संतरें, नीबूको भारभलेड़के रूपमें व बेर, सेव, नासपाती, आम, पपीताका जैम बनाकर बहुत बड़ा व्यापार स्थापित किया जा सकता है। यथार्थमें कोई भी भारतीय फल किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की कोई व्यवस्था हमारे देशमें नहीं है। यही कारण है कि आज भारतमें करोड़ों मन फल सड़कर नष्ट हो जाते हैं और प्रतिवर्ष औसतमें प्राय: ६० लाख रुपयेके सुरक्षित फल-विभिन्न रूपोंमें विदेशोंसे आते हैं।

ऐसी अवस्थामें जबकि हमारे देशमें फलोंकी अधिकता है, फल-संरक्षणके काममें आने वाली रासायनिक वस्तुएं अल्प व्यय में, सरलतासे, अधिक मात्रामें मिल सकती हैं, सस्ती मजदूरी भी है, साथ ही शिक्षित तथा अशिक्षितोंमें बेकारी फैली हुई है, और देश ही में सुरक्षित फलोंकी अधिक मांग भी है, जैसा कि उक्त अङ्कोंसे विदित है। तब इस व्यापारकी सफलताकी तो यहां पूर्ण आशा है। अत: इस समय आवश्यकता है देशमें चारों ओर फल-संरक्षण के बड़े-बड़े कार्यालय स्थापित करनेकी और उनके संचालनके लिये एक बड़ी पूंजी लगानेकी। ऐसे दो एक छोटे कार्यालयभी स्थापित हैं, जो उत्साहके साथ अपना कार्य कर रहे हैं, किन्तु उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण विदेशोंकी अपेक्षा वे अपनी वस्तुएं कम मूल्यमें नहीं बेच पाते और वस्तुओंके मूल्य में अन्तर होने पर मनुष्य स्वभावत: अल्प मूल्य वाली वस्तु ही खरीदता है। यही कारण है कि वे विदेशोंकी प्रतियोगितामें ठहर नहीं रहे हैं। ऐसी दशामें फलोंके व्यापारको बड़े परिमाण में करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, और साथ ही साथ उनकी सफलताके लिये पूंजीपतिओंका सहयोग भी जरूरी है। फिर इन दिनों लड़ाईके जमानेमें किसी भी तरहके भारतीय सुरक्षित फलों को सरकार अधिक मात्रामें खरीद रही है और ऐसे कार्यालयों को विशेष प्रोत्साहन दे रही है।

मलायामें अनन्नास अधिकतासे पैदा होता है औ उसकी वृद्धिके लिये विशेष रूपसे ध्यान भी रखा जाता है। उन फलों की डिब्बा बंदी करके सुरक्षित रखनेके लिये मलाया में १६ कार्यालय हैं और प्रत्येकमें फलोंको छीलने काटने आदिके लिये ३०० मनुष्यसे ऊपर कार्य करते हैं। प्रत्येक कार्यालय डिब्बा बन्दीकी आधुनिक कलोंसे पूर्ण है हर एक कार्यालय अनन्नास भरकर १ लाख डिब्बे प्रतिदिन तैयार करता है। प्रतिवर्ष १ करोड़ ३०-४० लाख रुपये का माल इंगलैण्ड, अमरीका, फ्रांस, जर्मनी, जापान और दुनियांके अन्य प्रदेशोंमें भेजा जाता है। एवं प्रतिवर्ष उसकी वृद्धि हो रही है। केवल हमारे देशमें डेढ़ लाख रुपये प्रतिवर्षका डिब्बा बंद अनन्नास विदेशोंसे आता है। एक डिब्बेमें प्राय: एक अनन्नासके टुकड़े होते हैं जो यहां तीन चार आनेमें बिकते हैं किन्तु बड़े परिमाणमें बनने के कारण कार्यालयको इसका मूल्य १ आना प्रति डिब्बा पड़ता है। हवाई द्वीपोंमें तो और भी विराट रूपमें फल सुरक्षित किए जाते हैं वहां अनन्नासके अतिरिक्त अन्य फलोंकी भी डिब्बाबंदी की जाती है और केवल सुरक्षित अनन्नास २० करोड़ रुपयेका प्रतिवर्ष विदेशोंको जाता है। वहां का एक कार्यालय प्राय: ८ लाख डिब्बे अनन्नास भरकर प्रतिदिन तैयार करता है। इस व्यापारकी इतनी अधिक उन्नति हुई है कि कुछ ही वर्ष पहले जहां ५-७ सौ टन अनन्नास सुरक्षित किये जाते थे वहीं आज २ लाख टन अनन्नासों की प्रतिवर्ष डिब्बा बंदी की जाती है। प्रत्येक कार्यालयमें प्राय: १५०० मनुष्य कार्य करते हैं। और गर्मी के दिनों में सैंकड़ों स्कूलके लड़के व लड़कियां इन विराट कार्यालयों में कार्य करके अपने स्कूलका खर्च उपार्जन कर लेते हैं। न केवल वहांकी सरकार फलसंरक्षण के कार्यालयोंकी देख-रेख करती है बल्कि विद्यार्थियोंको अधिक संख्या में फलोंको उत्पन्न करने और उनको सुरक्षित रखनेकी भिन्न-भिन्न व्यापारिक विधियों की उच्च शिक्षा देती है।

खेदकी बात है कि हमारे यहां इन सब बातोंकी ओर किसी का ध्यान नहीं। दूसरे देशोंको फलोंका करोड़ो रुपयोंका व्यापार करते हुए देखकर भी हम नहीं देख रहे हैं। हमारे देशमें कितने ही फल और कितनी तरकारियां हैं जिनकी डिब्बा बन्दी करके सुखाकर अथवा रसायनों द्वारा सुरक्षित रखकर विदेशों में भेज सकते हैं यही नहीं कि भारतीय फलोंकी विदेश में मांग नहीं है, दो एक छोटे कार्यालय जो कि भारतवर्षमें स्थापित हैं दिन रात काम करके भी उनकी मांगोंको पूरा नहीं कर सकते हैं पिछले

कुछ वर्षोंमें विदेशोंको जाने वाले भारतीय सुरक्षित फलों का मूल्य इस प्रकार है :—

वर्ष	रुपये
१६३१	८, २१, १६६
१६३२	८, २६, ७६४
१६३३	८, ५७, ०२२
१६३४	६, ५५, ५५५
१६३५	४, ६१, ००८

किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है विदेशोंसे भारतमें आने वाले सुरक्षित फलोंका मूल्य इसका सात गुना अधिक है, जो कि इस प्रकार प्रतिवर्ष औसत में आते हैं।

	रुपये
सुरक्षित फलों का मूल्य	२४, २२, २६०
ताजे फलों का मूल्य	३०, ८६, ५८६
औसत प्रतिवर्ष	५५, ०८, ८४६

अतः इस व्यापारको बहुत बड़े परिमाणमें करना जरूरी है। भारतीय सुरक्षित फलोंको देश और विदेशमें लोगोंने पसंद किया है। पिछली अखिल साम्राज्य प्रदर्शनी लंदनमें भारतीय फलोंकी बनी हुई वस्तुओंकी विशेष रूपसे प्रशंसा की गई थी। डिब्बाबन्द आम, सेवका जैम, अमरूदकी जेली आदि यथेष्ठ रूप से प्रचलित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त लेखकने अधिकतासे उत्पन्न होने वाले अन्य भारतीय फलोंपर प्रयाग-विश्वविद्यालय की रसायनशालामें अनुसन्धान कर उनको आधुनिक फल संरक्षण विज्ञानके आधारपर सुरक्षित करनेका प्रयत्न किया है; जिनका सफलताके साथ व्यापार किया जा सकता है। यद्यपि विदेशी फलोंको सुरक्षित रखनेकी विभिन्न विधियोंपर बहुतसी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं किन्तु भारतीय फलों पर कोई भी प्रामाणिक पुस्तक नहीं है। यह बात ध्यान रखने योग्य है। विभिन्न फल-संरक्षण विधि देशी और विदेशी फलोंकी एक होते हुए भी प्रत्येक फलके सुरक्षित करनेके ढंगमें निःसंदेह थोड़ा बहुत अन्तर होता है और यही व्यापारिक सफलताकी कुंजी होती है। अतः 'फल-संरक्षण' की उचित सफलताके लिये प्रत्येक भारतीय फलोंको सुरक्षित रखनेकी विभिन्न विधियोंपर वैज्ञानिक अनुसन्धान और प्रत्येक ऐसे कार्यालयमें फल विशेषज्ञ का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

भारतमें फल संरक्षण कार्यालय स्थापित हो जाने से, जो करोड़ों मन फल सड़ कर बरबाद होते हैं उनकी रक्षा होगी और उनको अधिक मात्रा में उत्पन्न करने के लिये आधुनिक वैज्ञानिक विधियोंका प्रयोग किया जावेगा। अन्य स्वदेशी वस्तुओंकी—चीनी, शीशे के बर्तन, टीनके डिब्बे विभिन्न मसाले एवं रासायनिक पदार्थों की, जिनका कि फल-संरक्षण में प्रयोग होता है—अधिक मात्रामें खपत होगी। एक आधुनिक कार्यालय जिसकी लागत ५०-६० हजार रुपये की होगी, प्रतिवर्ष प्रायः दो लाख रुपये का माल तय्यार कर सकेगा, जिसके बिकने पर २० प्रतिशत का लाभ होगा। यदि इस प्रकारके ८-१० कार्यालय भारत के विभिन्न स्थानों में स्थापित हो जावें और वे फल एवं शाक भाजियों को सुरक्षित करें तो प्रतिवर्ष ५५-६० लाख रुपयोंको विदेशों में जाने से बचानेके अतिरिक्त उन सुरक्षित फलों को विदेशोंमें भेज कर यथेष्ट लाभ उठाया जा सकता है। सच तो यह है कि फल-संरक्षणके द्वारा भारतीय व्यापारका एक नया और साथही बहुत बड़ा क्षेत्र खुल जावेगा। हर्षका विषय है कि भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकार का ध्यान इस महत्त्व पूर्ण व्यापारकी ओर गया है और यहां परभी शून्य तापक्रम पर वस्तुओंको सुरक्षित रखने की विधिको अपनाकर कम से कम एक प्रांत से दूसरे प्रांत को ताजे फलों को भेजनेकी व्यवस्था कर दी गई है। भारतीय कृषि अनुसन्धान-विभाग के अधिकारी भी इस ओर प्रयत्नशील हैं। संयुक्त-प्रांत के किसी विभाग के डाइरेक्टर 'फ्रूट-डेवलपमेंट-बोर्ड, के द्वारा प्रांतके भीतर फलोंको अधिक मात्रा में उत्पन्न करने और उनके सुरक्षित रखनेका यथेष्ट प्रचार कर रहे हैं। बम्बईमें आमोंकी डिब्बाबंदी के लिये एक कार्यालय स्थापित हो गया है लायलपुरमें भारतीय फलों पर विशेष रूपसे वैज्ञानिक अनुसन्धान किया जा रहा है। कलकत्ता, आगरा, शाहजहांपुरमें फल-संरक्षण के कार्यालय आरम्भ होगये हैं। इलाहाबादमें भी प्रान्तीय सरकार की सहायता से फल-संरक्षण की आधुनिक कलें आगई हैं और शीघ्रही कार्य आरम्भ होने वाला है। इन सब प्रयत्नोंसे आशा है कि निकट भविष्यमें भारतके अन्दर फल-संरक्षण का व्यवसाय एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा।

सैनिकोंकी बुद्धि परीक्षा

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम. ए. बी. एस-सी.]

गत महायुद्धमें अमेरिकामें सैनिकोंकी बुद्धि परीक्षाके आधार परही उनके कार्य नियत किये गए थे। जो तीव्र बुद्धि साबित हुए उन्हें अच्छे स्थानके लिये चुना गया और जो मंद बुद्धि थे उनमें से बहुतसे तो बिलकुल अलग कर दिये गए और बाकी अन्य शारीरिक कार्यके लिये मजदूर रूपमें रखे गए।

परीक्षा लेनेसे पहले एक संस्थाने इस बातपर विचार किया कि परीक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये। अन्तमें वे इस निर्णय पर पहुंचे कि परीक्षाके लिये कुछ बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। वे इस प्रकार हैं :—

(१) जहां तक सम्भव हो परीक्षा इस प्रकारकी हो जिसमें स्कूल की पढ़ाई से कम से कम मदद मिल सके। क्योंकि इस परीक्षाका तात्पर्य यह जानना था कि किसी सैनिकमें जन्मागत कितनी बुद्धि है।

(२) यह परीक्षा विभागोंमें विभाजित होनी चाहिये :— सबसे कठिन विभाग उन मनुष्यों के लिए—जिन्हें मस्तिष्क सम्बन्धी उत्तरदायित्वके कार्य करने पड़ते हैं तथा सबसे हल्की उनके लिये—जिन्हें मस्तिष्ककी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, जसे मजदूरीका कार्य करना।

(३) परीक्षा साधारण होनी चाहिए, तथा शीघ्रता से होनी चाहिए किन्तु प्रश्न विचारशील हों। परीक्षा इस प्रकार हो जिससे उस आदमीको निर्णय करनेमें थोड़ा समय मिल सके।

(४) परीक्षामें कमसे कम लिखने की आवश्यकता पड़नी चाहिए जिससे लिखनेकी गतिका परीक्षा पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ सके।

(५) कई प्रकारकी समस्यायें होनी चाहिएं और सब समस्यायें लगभग बराबर ही कठिन हों। समस्यायें इस प्रकारकी दी जांय जिससे पढ़ाई और शिक्षासे कमसे कम सहायता मिले। इसके अतिरिक्त समस्यायें जन साधारणके लाभकी तथा दिलचस्प हों। इन बातोंका कहां तक ध्यान रखा गया था यह आपको आगे चलकर ज्ञात होगा।

काफी कोशिशके पश्चात् दो परीक्षा विधियें तैयार की जा सकीं (१) उनके लिए जो पढ़ और लिख सकते थे और (२) उनके लिये जो न तो पढ़ सकते थे और न लिख सकते थे।

जो परीक्षा पढ़े लिखों के लिए थी उसको आठ भागों में विभाजित किया गया था। वे विभाग इस प्रकार थे :—

(१) आदेशानुसार कार्य, (२) अंक गणितकी समस्यायें (३) प्रयोगात्मक निर्णय, (४) तथा पर्यायवाची शब्द, (५) टूटे हुए अव्यवस्थित वाक्य, (६) विवेकशक्ति जांचनेके लिए कुछ प्रश्न, (७) सादृश्यता, (८) साधारण ज्ञान। ये विभाग भी इस क्रमसे रखे गए थे कि जिससे सबसे सहल प्रश्न पहले आयें और सबसे कठिन सबसे बाद में। प्रत्येक विभागके लिये उत्तर देने का समय भी बहुत थोड़ा रखा गया था जिससे बहुत जल्दी कार्य करने वाला ही समाप्त कर सकता था। जो मनुष्य इन विभागोंका उत्तर समयसे पूर्व ही समाप्त कर देता था उसकी बुद्धिका भी ठीक-ठीक पता नहीं लगता क्योंकि यह मालूम नहीं कि अभी कितनी बुद्धि उनमें और अधिक है। जो इस समयमें बिलकुल भी ठीक नहीं कर पाता था उसके विषयमें भी ज्ञात नहीं हो सकता था कि वह अभी कितना और अधिक मंद बुद्धि है। इसके लिए परीक्षा कई विभागोंमें रखी गई। एक विभाग बहुत सहल तथा एक विभाग बहुत कठिन शेष इसके मध्य के।

उदाहरणकी सहायता से यह परीक्षा—विधि अच्छी प्रकार समझमें आ सकेगी। पहला विभाग लीजिए अर्थात् (१) आदेशानुसार कार्य। इस विभाग के दूसरे प्रश्नमें नौ गोले हैं और प्रत्येक पर १ से ९ तक नम्बर पड़े हुए हैं। आदेश इस प्रकार था।

"होशियार! नं० २ की ओर देखो हर एक गोले पर नम्बर पड़ा हुआ है। जब मैं कहूं 'चलो' तो १ गोले से ४ गोले तक एक रेखा इस प्रकार खींचो जो नं० २ गोलेके ऊपर और नं० ३ गोलेके नीचे होकर जाए। चलो!" (५ सेकण्ड से अधिक समय न दिया जाय) इस विभागके अंतर्गत १२ समस्यायें आसान तथा बादकी समस्यायें क्रमशः कठिन होती चली

गई थीं।

विभाग (२) रेखागणित की समस्यायें। इस विभागमें २० समस्यायें थीं, उनमेंसे दसवीं इस प्रकार थी।

(१०) यदि ६ आदमी तीन दिनमें १८० फुट लम्बी नाली खोदते हैं तो उतनी ही लम्बी नाली आधे दिनमें कितने आदमी खोदेंगे?......उत्तर। इस सारे विभागके लिये ५ मिनटका समय दिया गया था।

विभाग (३) प्रयोगात्मक निर्णय। किसी प्रश्नके लिये दिये गए तीन उत्तरोंमें जिसे ठीक समझते हो उसके सामने वाले घेरे में × का निशान बना दो। नं० ७ समस्या इस प्रकार थी—

(७) सब अनाजों में गेहूं क्यों सबसे अच्छा खाद्य पदार्थ है? क्योंकि—

☐ यह अधिक पौष्टिक होता है

☐ यह ज्यादा महंगा होता है

☐ यह बारीक पीसा जा सकता है

१६ समस्याओंके लिये १½ मिनट दिया गया था। यह एक प्रकारसे साधारण ज्ञानकी परीक्षा थी।

विभाग (४) पर्यायवाची तथा अपर्यायवाची शब्द। परीक्षा के लिये ये शब्द इसलिए रखे गए थे जिससे ज्ञात हो सके कि समान तथा असमान वस्तुओंमें वह कितनी शीघ्रतासे निर्णय कर सकता है। २६ और ३६ वीं समस्यायें इस प्रकार थीं:—

२६ असत्य—सच.........समान—विरोधी २६

३६ वक्रोक्ति-व्यंगोक्ति... समान-विरोधी ३६

आदेश इस प्रकार था—'समान' के नीचे रेखा खींचो, यदि दोनों शब्दोंका अर्थ प्रायः समान हो। यदि उनका अर्थ समान न हो तो 'विरोध' के नीचे रेखा खीचों। इस विभागमें ४० समस्यायें थीं और उत्तर देनेका समय १½ मिनट था।

विभाग (५) अव्यवस्थित वाक्य, यह देखनेके लिये रखा गया था जिससे टूटे फूटे वाक्योंको जोड़नेकी शक्तिका परिचय मिल सके। समस्या १६ उदाहरण स्वरूप ली जा सकती है।

१६ निनयानवे नहर पहले बनी पैनामा थी वर्ष।

......ठीक—गलत...१६

२४ समस्यायें थीं। प्रत्येक समस्याके उत्तरके लिये 'ठीक-गलत' में से एकके नीचे रेखा खींचनी पड़ती थी। २ मिनट दिये गए थे।

विभाग (६) सांख्यिक श्रेणीकी पूर्ति (number series completion)। यह परीक्षा तर्क-अनुमान शक्तिको ज्ञात करनेके लिये रखी गई थी। दी हुई श्रेणियों में क्रमिक संख्याओंको पूर्ण करना था। तेरहवीं और सोलहवीं समस्या इस प्रकार थी—

११ १३ १२ १४ १३ १५............

८१ २७ ९ ३ १ १/३............

बिन्दु वाली रेखाओंपर श्रेणीके आगेकी दो संख्याओंको लिखनेके लिये कहा गया था। इस विभागमें २० समस्यायें थीं और उत्तर देनेके लिये ३ मिनटका समय दिया गया था।

विभाग (७) साहश्य—'तर्क करने' तथा एक दम देखनेकी शक्ति को जांचनेके लिये यह विभाग रखा गया था। १७ और ३६वीं समस्या उदाहरण स्वरूप उपस्थित की जाती है

१७ शेर—जानवर गुलाब—सुगन्ध पत्ता पेड़ कांटा १७

३६ सहना—दुःख स्वागत करना—आनन्द मित्र देना...३६

पहले और दूसरे शब्द में सम्बन्ध स्थापित करना होता है फिर दिये चार शब्दोंमें से एक शब्द जो उस सम्बन्धके अर्थोंको पूरा करता हो उसे चुन लिया जाता है। यह शब्द दिखानेके लिये उस शब्दके नीचे एक रेखा खींच देनी चाहिये इस विभाग में ४० समस्यायें थीं और उत्तर देनेका समय ३ मिनट था।

साधारण बुद्धिकी परीक्षा (८) यह देखने के लिये थी कि कोई मनुष्य अपने चारों ओरके वातावरणसे कितनी शिक्षा ग्रहण करता है? इस परीक्षाके विषयमें बहुत सी आलोचनाभी हुई है। कुछोंका कहना है कि इस विभागमें उत्तीर्ण होने के लिये जन्मागत बुद्धिके स्थानपर अनुभव और शिक्षासे अधिक सहायता मिलती है किन्तु फिरभी बुद्धि परीक्षामें यह बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है। यदि हम यह मान लें कि सब मनुष्य एक से ही वातावरणमें पले हैं तो जो लोग तीव्र-बुद्धि हैं वे उस वातावरणमें रह कर अधिक बातोंको जानेंगे और जो भेद-बुद्धि हैं वे बहुत कम बातोंसे परिचित होंगे। इसके उदाहरणके लिये इस विभागकी २१ और ३७ वीं समस्यायें नीचे दी जाती हैं।

२१ डिक्टेफोन एक प्रकारकी टाइपमशीन, गुणक मशीन, ध्वनि लेखक, जोड़नेकी मशीन है......२१

३७ सोमरस एक औषधि, पेय मादक पदार्थ उत्तेजक का नाम है। ३७

जो शब्द वाक्यको पूरा करनेके लिये सबसे ठीक तथा उपयुक्त हो उसके नीचे एक रेखा खींच दो । इस विषय के अंतर्गत ४० समस्यायें थीं और उत्तर देनेका समय ४ मिनट था

सैनिककी बुद्धि परीक्षाके लिये इन आठों विभागोंमें प्राप्त अकोंकों जोड़ लिया जाता था ।

इस समय यह ध्यान देनेकी बात है कि इस परीक्षासे यह नहीं मालूम होता था कि कोई सैनिक शारीरिक कार्य करने में कितना निपुण है । परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति, अपने स्वभावपर अधिकार तथा साथीके साथ व्यवहार करनेकी आदतके विषयमें भी इस परीक्षासे कुछ ज्ञात नहीं होता था । इसके अतिरिक्त यहभी ज्ञात हुआ कि अफसरोंके इस परीक्षामें अधिक नम्बर आते थे । जो लोग शिलपकला सम्बन्धी विभागमें थे वे इस परीक्षामें सबसे प्रथम उत्तीर्ण होते थे । किन्तु एक बातसे बहुत विस्मय हुआ कि वैद्यक विभागके अफसरोंके नम्बर इस परीक्षामें बहुत कम थे । इसके लिये यहभी कहा जा सकता है कि डाक्टरी विभागमें या तो बहुत होशियार व्यक्ति ही थे या बिलकुल मंद बुद्धि थे । इसलिये मध्य श्रेणी की परीक्षा उनके लिये ठीक नहीं रह सकती थी ।

पाश्चात्य देशोंकी परीक्षाके अनुसार तो यह ज्ञात हुआ है कि गोरे सिपाहियोंके नम्बर काले हबशियोंसे अधिक थे । जो हबशी अफ्रीकाके उत्तरी भागके थे वे दक्षिणी भागके हबशियों से अधिक बुद्धिमान् थे । इसके लिये यहभी कहा जा सकता है कि हबशी सैनिक गोरे सैनिकोंके मुकाबले कम पढ़े लिखे थे और जैसा कि आप देख चुके हैं—दिये गये उदाहरणोंसे—शिक्षा का प्रभाव इस परीक्षा विधिपर पर्याप्त मात्रा में पड़ता है ।

किन्तु मनोवैज्ञानिकों में अभी दो मत हैं । एकतो यह कहते हैं कि इस परीक्षा विधि से केवल स्कूलमें पढ़े ज्ञानके विषयमें ही अधिक जानकारी होती है और दूसरों का मत है कि वास्तवमें ये मनुष्यकी बुद्धिकी परीक्षा करने की क्षमता रखते हैं । क्योंकि एकही स्थानके गोरे वे पढ़े सिपाहियों और पढ़े लिखे अफसरोंकी परीक्षा करने पर अफसरोंके बहुत अधिक नम्बर आये इससे यह स्पष्ट है कि पढ़ाई से बहुत अधिक सहायता मिलती है ।

वास्तवमें बुद्धि परीक्षाके लिये हमें किसी मनुष्यमें साधारण ज्ञान, सीखनेकी शक्ति तथा अनुभवसे लाभ उठानेकी शक्ति की जांच करनी चाहिये । केवल दिमागकी शक्ति जांचनेका तो अभी तक कोई उपाय मिल नहीं सका है और यदि मिलभी जाय तो उससे विशेष लाभकी उम्मेदभी नहीं । इसके साथ परीक्षकों को परीक्षा फल देनेसे पूर्व इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी मनुष्यको न पढ़ने के कारण कितनी असुविधा का सामना करना पड़ा है अथवा जिस परिस्थिति में रहा है उसके अनुसार उसने कितनी उन्नति की है । यदि इन बातोंको ध्यानमें रख कर परीक्षा की जाय तो बुद्धि परीक्षा का बहुत कुछ मतलब हल हो जाय ।

युद्धके पश्चात् इस सैनिक बुद्धि परीक्षा विधिको स्कूलके विद्यार्थियोंकी बुद्धि परीक्षाके लिये काममें लाया गया । यह बात अवश्य है कि कॉलिजमें सफल होनेके लिये केवल बुद्धि परही सब कुछ निर्भर नहीं रहता किन्तु फिरभी बुद्धि सबसे अधिक प्रभावशाली कारण है ।

कितनेही मनोवैज्ञानिक अबभी इन परीक्षाओंके विषयमें प्रयोग करते रहते हैं तथा अन्य प्रकारकी परीक्षाओंकी खोज के लिये भी अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं । दूसरे देशोंमें इस परीक्षा विधि तथा बिनेट साहबके बुद्धि नापनेके पैमानेकी सहायतासे बच्चोंकी बुद्धि परीक्षामें बड़ी सहायता मिली है । उनको स्कूलों में लगातार काममें लाया जाता है और इसके अनुसार बच्चोंकी नैतिक तथा सामाजिक उन्नतिमें जितनी तथा जिस प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता होती है देनेकी कोशिश की जाती है ।

कपड़े की धुलाई और रंगाई

[श्री फूलदेव सहाय वर्मा एम. एस सी.,

कपड़े की बनावट—कपड़े सूत, ऊन, रेशम, सनजूट और पाटके होते हैं। आजकल नकली रेशमके कपड़े भी बहुत बनने लगे हैं।

रुईके सूतके कपड़े—सूतके कपड़े बहुत प्राचीन काल से बनते आते हैं। ये कपड़े कपासकी रुईके सूतसे बनते हैं। कपास आज कल पृथ्वीके अनेक भागोंमें ऊपजता है। कपास की ऊपजके लिये अमेरीका, मिश्र और हिन्दुस्थान प्रसिद्ध हैं। कपास जब पकता है तब उसके बीजके चारों ओर सफेद रेशे होते हैं। ये बीजसे अलग किये जाते हैं और तब रुईके रूपमें बिकते हैं। इसी रुईसे सूत काता जाता है। उस सूत से कपड़े बुने जाते हैं। किसी रुईके रेशे छोटे होते हैं और किसी के बड़े, बड़े रेशों वाली रुई अच्छी जातिकी समझी जाती है।

रुई 'सेल्युलोज' नामक रासायनिक यौगिकका बना होता है इसमें अनेक अपद्रव्य (impurites) मिले होते हैं। सेल्युलोज कार्बन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन नामक तत्वोंसे बना हुआ एक यौगिक है। शुद्ध सेल्युलोज सफेद और पारभासक (trans lucent) होता है। इसका घनत्व १·५ होता है। यह जल, अल्कोहल, ईथर, बेंजीन इत्यादिमें बिलकुल घुलता नहीं। ६० से १००° श० तक गरम करनेसे इसमें से जल निकलता है। तब सेल्युलोजके रेशे टूटते हैं। प्रायः २५०° श० पर गरम करनेसे रुई झुलस जाती है। मरसर (mercer) ने पहले-पहल देखा कि कापर हाइड्रेटके अमोनिया के बिलयन में रुईके रेशे पहले फूलते और पीछे धीरे-धीरे घुल जाते हैं। यह घुलना ऑक्सी-सेल्युलोजके बननेके कारण होता है।

अम्लोंका रुई पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह प्रभाव अम्लोंके समाहरण (concenbralin), तापक्रम और क्रिया-काल पर निर्भर करता है। ठंढे गन्धकाम्लसे रुई जल्दी ही नष्ट हो जाती है। थोड़ी देर इस अम्लमें डूबाकर रखनेसे रेशे फूल जाते, लम्बाईमें सिकुड़ जाते और पारदर्शक हो जाते हैं। ऐसे रेशोंकी रंगोंके शोषणकी क्षमता बढ़ जाती है पर रेशे कुछ न कुछ जरूर कमजोर हो जाते हैं।

ठण्ढे और एक विशिष्ट घनत्व (१४०°TW.) के गन्धकाम्लमें कुछ सेकण्ड तक कागजोंके डुबानेसे और फिर काफी पानीसे धो देनेसे पर्चमेंट कागज तैयार होता है। ऐसे कागज अधिक टिकाऊ होते हैं। सरकारी नोटें पर्चमेंट कागजकी ही बनती हैं। अधिक समय तक गन्धकाम्लकी क्रियासे रुई डेक्स्ट्रिन नामक पदार्थमें परिणत हो जाती है पानी डालकर उबालने से जो द्राक्ष-शर्करामें परिणत हो जाती है।

गाढ़े और गरम नाइट्रिक-अम्लसे रुई ऑक्जैलिक अम्लमें परिणत हो जाती है। पर ठण्ढे अम्लसे रुईसे नाइट्रो-सेल्युलोज वा 'गन-कटन' प्राप्त होता है, जिस रुईमें अधिक नाइट्रो-मूलक प्रविष्ट करता है उसे ही "गन-कटन" कहते हैं। गनकटनको अविलेय पाइरौक्सीलिन भी कहते हैं। कम नाइट्रो-मूलक वाली रुईको विलेय पाइरौक्सीलिन कहते हैं यह अल्कोहल और ईथर के मिश्रण में घुल जाता है। ऐसे विलयन को कोलोडियन (collodion) कहते हैं। यह नकली रेशमके तैयार करनेमें पहले प्रयुक्त होता था। इसके सिनेमाके फिल्म भी बनते हैं।

गाढ़े हाइड्रोक्लोरिक-अम्लसे रुईके रेशे खण्ड खण्ड हो जाते हैं। तनुवा हल्के हाइड्रोक्लोरिक-अम्लका कोई असर नहीं होता। निम्न तापक्रम पर हाइड्रोक्लोरिक-अम्लका रुई पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण रुईके वस्त्रोंसे लोहे के धब्बेको छुड़ानेके लिए हाइड्रोक्लोरिकअम्लका व्यवहार होता है। हल्के अम्लोंकी रुई पर कोई विशेष क्रिया नहीं होती, पर पानी के सूख जानेसे अम्ल गाढ़े हो जाते हैं जिससे रेशे कमजोर हो जाते हैं। इस कारण अम्लोंसे धोने पर वस्त्रोंको खूब साफ कर लेना चाहिये।

मृदु अलकली (जैसे सोडियम कार्बोनेट) सोडियम बाईकार्बोनेट, बोरैक्स (सोहागा), साबुन इत्यादि की रुई पर कोई क्रिया नहीं होती। साधारण तापक्रम पर अमोनियाका भी कोई असर नहीं होता। बहुत हल्के दाहक क्षारोंका भी रेशों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। पर गाढ़े दाहक क्षारसे रुई पर एक अद्भुत क्रिया होती है जिससे रेशे लम्बाई में सिकुड़

जाते, मोटे हो जाते और कुछ अधिक पारभासक हो जाते हैं। यदि रुईको गाढ़े दाहक सोडामें डालकर खींचा जाय और इसी दशामें धो डाला जाय तो वे बहुत चमकीले हो जाते हैं। इस कार्यको 'मरसी करण' कहते हैं। और इससे मरसीराइज्ड कपड़े बनते हैं। यह देखनेमें अधिक सुन्दर और अधिक टिकाऊ होते हैं।

सन, जूट और पाटके कपड़े—सन, जूट और पाट के डंठलोंसे रेशे निकाले जाते हैं। डंठलोंको पानीमें कुछ दिन डुबाकर रखने वा गरम जल व भापके संसर्गमें कुछ समय तक रखनेसे रेशे अलग हो जाते हैं। रेशोंको फिर पानीमें खूब धो, सुखा और झाड़कर उससे सूत तैयार करते हैं।

सन, जूट और पाटके सूत सेल्युलोजके बने होते हैं। इन रेशोंकी लम्बाई और चौड़ाई भिन्न-भिन्न होती है। इन रेशोंको सूक्ष्म दर्शकसे देखने से वे बेलनाकार देख पड़ते हैं। इनके सूतोंमें अपद्रव्य (impuntes) अधिक मात्रामें—१५ से ३० प्रतिशत—रहते हैं। इससे इनके सूतों से रंग निकालने में कठिनाई होती है। ये रुईकी अपेक्षा अधिक तापचालक भी होते हैं। इससे इनके बने कपड़ोंको छूने से रुई के कपड़ों की अपेक्षा यह अधिक ठण्ढे मालूम होते हैं। इन पर अम्लों और क्षारों की प्राय: वही क्रियाएं होती हैं जो रुई पर होती हैं। अपद्रव्योंके कारण इन पर रंग उतना जल्दी नहीं चढ़ता।

नकली रेशम—नकली रेशमका व्यवहार आज दिनों दिन बढ़ रहा है। इससे सब प्रकारकी चीजें, मोजे, गंजी, रुमाल, मफलर, साड़ी, कोट और कमीजें बनती हैं। नकली रेशम सेल्युलोजका बनता है। यह सेल्युलोज या तो निकृष्ट कोटिकी रुईसे वा काठ-पल्वसे प्राप्त होता है। नकली रेशम कई विधिसे बनाए जाते हैं। इनमें चारडोने, क्यूप्रेमोनियम, विस्कोज और सीलेनीज पर्याप्त है। सबसे अधिक मात्रामें नकली रेशम आज विस्कोज विधिसे तैयार होता है।

चारडोने रेशम—सबसे पहले यही नकली रेशम बना था। इसे कोलोडियन रेशम वा नाइट्रो-रेशम भी कहते हैं। निकृष्ट रुईको गन्धकाम्ल और नाइट्रिकाम्लके मिश्रणके संसर्गमें लानेसे नाइट्रो-सेल्युलोज बनता है। इसे फिर जलसे धोकर अल्कोहल और ईथरमें घुलाकर 'विस्कोज विलयन' बनाते हैं। इस विलयनको बारीक सूराखोंमें दबाव द्वारा निकालनेसे इसके सूत बनते हैं। यह सूत बहुतही ज्वलनीय होता है। इस दोषको दूर करने के लिये सूतको अमोनियम सल्फाइडके विलयनमें डुबा कर देर तक रखते हैं। इस क्रियासे नाइट्रो-मूलक का लघ्वीकरण होता है जिससे अति ज्वलनीय नाइट्रोमूलक हट जाता। इससे इसकी ज्वलनीयता कम हो जाती है पर साथ ही उसकी तोल भी घट जाती है। इस रेशममें चमक अधिक होती है और इसका सूत बहुत महीन बन सकता है।

क्यूप्रेमोनियम रेशम—सेल्युलोजको कापरहाइड्रेटके अमोनियम विलयनमें घुलाते हैं। इसके सूत असली रेशम से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसके तैयार करनेमें बड़ी सावधानी की जरूरत होती है। यह अधिकांश अन्दरके पहरनेके वस्त्रों और मोजोंके तैयार करनेमें काम आता है।

विस्कोज रेशम—यह रेशम अच्छा होता है और सस्ता बनता है। काठ सस्ता और पर्याप्त मात्रामें हर स्थानमें पाया जाता है। काठको छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काटकर दाहक सोडाके विलयनमें घुलाते हैं। इस विलयनसे निकाल कर पीसनेके यंत्र में डालकर उसे पीसते हैं। इससे क्षारीय सेल्युलोज प्राप्त होता है। इसे फिर एक विशिष्ट तापक्रम पर रखकर उसमें कार्बन डाइ-सल्फाइड डालते हैं। इससे नारङ्गी रङ्गका सेल्युलोज जैन्थेट (cellulose xauttiate) नामक पदार्थ बनता है। इस जैन्थेट को हल्के दाहक सोडा के विलयन में डालने से विस्कोज विलयन प्राप्त होता है। इसे परिपक्व होनेके लिये कुछ देर तक छोड़ देते हैं फिर महीन सूराखों के द्वारा गन्धकाम्ल और सोडियम सल्फेटके विलयनमें गिराते हैं जिससे रेशमके सूत बन जाते हैं।

सीलेनीज रेशम—इसे सेल्युलोज ऐसिटेट रेशम भी कहते हैं क्योंकि यह सेल्युलोज ऐसिटेटका बना होता है यह अन्य रेशमों से भिन्न होता है। यह रुई से वा काठ-पल्वसे तैयार हो सकता है। सीलेनीजके रेशे सुन्दर होते हैं। यह ताप-चालक नहीं होता। यह अ-जलग्राहक भी होता है। इसके अन्दरके पहरनेके कपड़े अच्छे होते हैं, अधिक ताप से यह खराब हो जाता है। इससे रंगने और कलप करनेमें अधिक तापसे इसे बचाना चाहिये।

नकली और असली रेशमका भेद—सीलेनीज रेशम एसीटोन और क्लोरोफार्म में घुल जाता है। ८०° श० से ऊपर गरम करनेसे इसकी चमक धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है।

असली रेशम को आगमें जलाने से एक विशेष प्रकारकी गन्ध निकलती है और सूतके छोर पर एक छोटा काला गोला बन जाता है। मिश्रित असली रेशमसे भी ऐसी ही गन्ध निकलती है पर काले गोले के स्थानमें सूतके रंगकी ही राख बनती है। सीलेनीज रेशमके जलानेसे वह पहले पिघलता है और तब वह जलता है। इसके जलनेकी ज्वाला तेज और चमकदार होती है इससे जली हुई शर्कराकी नाईं गंध निकलती है। उसके छोर पर काला गोला जो बनता है ठंढा होनेपर वह कठोर हो जाता है। नाइट्रो-सेल्युलोज, विस्कोज और क्यूप्रेमोनिया रुईके सूतके सदृश ही जलते हैं और उनसे वैसी ही गंध निकलती है। इनका जलना बहुत तेज होता है।

पोटैसियम हाइड्राक्साइड वा सोडियम हाइड्राक्साइडसे भी असली और नकली रेशमका विभेद कर सकते हैं इनमें असली रेशम घुल जाता है और नकली नहीं घुलता।

सीलेनीज रेशमका अन्य नकली रेशमोंसे एसीटोन के द्वारा विभेद किया जा सकता है। सीलेनीज एसीटोनमें घुल जाता है अन्य नकली रेशम नहीं घुलते।

नकली रेशमके सूत पानीमें भीजनेसे बहुत कमजोर हो जाते हैं पर सूखने पर वे मजबूत हो जाते हैं। असली रेशमके सूत भीगने पर इतने कमजोर नहीं होते।

ऊन—भेड़ और बकरीके रोएंको ऊन कहते हैं। भेड़ें ३२ प्रकारकी पाई गई हैं और उनके ऊनमें कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य होती है। काश्मीरका ऊन तिब्बतमें होने वाली एक किस्मकी बकरीसे प्राप्त होता है जो अलपाका लामा नामक पशुका ऊन है। ऊंटके रोएंसे भी कपड़े बुने जाते हैं। एकही पशुके भिन्न भिन्न भागोंके रोएं भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। यदि ऊनकी लंबाई डेढ़ इंचसे अधिक हो तो ऐसे ऊन को लम्बी रेशे वाली ऊन कहते हैं। इससे कम लंम्बाईके ऊन को छोटी रेशे वाली ऊन कहते हैं।

सूक्ष्म दर्शकसे देखनेसे ऊनके रेशे छड़के जैसे देख पड़ते हैं। उनमें चौड़े चौड़े बाहरकी ओर निकले हुए छिलके (sceles) होते हैं। इन छिलकोंके आकार भिन्न भिन्न पशुओं के ऊनमें भिन्न भिन्न होते हैं। ये छिलके ऊनके मध्य भाग को घेरे रहते हैं। इस मध्य भागमें ही रंगीन ऊनका रंग रहता है। यदि भीगे ऊनके रेशेको वा ऊनके वस्त्रको रगड़ा जाय तो ये छिलके एक दूसरे में लिपट जाते हैं जिससे रेशे वा वस्त्र सिकुड़ जाते हैं। यह सिकुड़ना बहुत कुछ तापक्रम पर भी निर्भर करता है। पर तापक्रमसे अधिक रगड़ने पर निर्भर करता है। ऊनके रेशे १ इंचसे ७ इंच तक लंबे होते हैं। उनका व्यास ०·००४ से ०·००१८ इंच का होता है।

ऊनमें जल सोखनेकी क्षमता बहुत अधिक होती है। ४० से ५० प्रतिशत जल सोखने परभी यह भीगा नहीं मालूम पड़ता। ऊनको यदि १००° श० पर सुखाया जाय तो प्रायः १५ प्रतिशत जल उसका नष्ट हो जाता है। १००° श० पर ऊन बहुत कुछ नरम हो जाता है। इस तापक्रम पर इसे जो रूप दे दिया जाता है वह कायम रहता है। ऊन कठिनता से जलता है। जलने पर इसके छोरपर काला गोला बन जाता है जलनेपर इससे एक प्रकारकी गंध निकलती है। इस गंध द्वारा ही ऊनको वानस्पतिक रेशोंसे विभेद कर सकते हैं।

ऊनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और गंधक होता है। हल्के अम्लोंका ठंढमें ऊन पर कोई असर नहीं होता। गाढ़ा अम्ल विशेषतः तप्तावस्थामें ऊनके रेशेको खंड २ कर नष्ट कर डालता और अपने में घुला लेता है। हल्के अम्ल उबलती अवस्थामें ऊनको पीला कर देते हैं यह पीलापन जैन्थो-प्रोटिक-अम्ल (xantho proteic acid)के बननेके कारण होता है। ऊन पर नाइट्रस-अम्लकी रासायनिक क्रिया होती है। इससे ऊन पीला हो जाता है और डायजो-यौगिक नामक पदार्थ बनते हैं। इस पर क्षारीय फीनोलसे रंग बनता है। गन्धस-अम्लकी ऊन पर कोई क्रिया नहीं होती। इससे केवल ऊनका रंग कुछ फीका हो जाता है। कार्बनिक अम्लोंका ऊन पर कोई विनाशकारी प्रभाव नहीं पड़ता।

क्षारोंसे ऊन अधिक शीघ्रतासे प्रभावित होता है। बहुत हल्के विलयनसे भी ऊन कुछ न कुछ नष्ट हो जाता है। गाढ़े विलयन वा ऊंचे तापक्रम से तो वह बड़ा जल्द नष्ट हो जाता है। ऊन उनमें घुल जाता है। सोडियम कार्बोनेट सदृश मृदु क्षारोंका असर कुछ कम पड़ता है। ५०° श० से नीचे तापक्रम पर ऊनके साथ वे व्यवहृत हो सकते हैं। साबुन और सोहागेका प्रभाव ऊन पर बहुत कम पड़ता है।

क्लोरीन और हाइपो-क्लोराइट का ऊन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। वह इनसे पीला हो जाता और अन्तमें नष्ट हो जाता है। यदि ऊनको बड़ी सावधानीसे क्लोरीन के

संसर्गमें लाया जाय तो ऊनके सिकुड़नेके दोष बहुत कुछ नष्ट हो सकते हैं। ऐसे ऊनकी चमक बढ़ जाती है पर वे बहुत कुछ कड़े हो जाते हैं। ऐसे ऊन पर रंगभी जल्दी नहीं चढ़ता। इसी कारण फारमके रंगोंपर चमक लाने के लिये उन्हें हाइपो-क्लोराइटसे धोते हैं। नमक, सोडियमसल्फेट, कैलसियम—क्लोराइड और पोटैसियम सल्फेट इत्यादि लवणोंका ऊनपर कोई असर नहीं होता। अलुमीनियमसल्फेट, फेरससल्फेट क्रोमियम सल्फेट और कॉपरसल्फेट सदृश लवणोंके साथ उबालने से ऊन इन लवणों को ग्रहण कर लेता है। ऐसे लवण लिए हुए ऊनपर रंग जल्दी चढ़ता है।

प्रकाश किरणोंके कारण ऊनके रेशोंकी मजबूती कम हो जाती है इनका रोवां और ऊनी-प्रकृति नष्ट हो जाती है। रंगनेसे यह फिर मुलायम हो जाता है। ऊनको साधारणतया आम्लिक-जलमें ही रंगना चाहिये। उदासीन जलमें रंगने से वह कड़ा और भंगुर हो जाता है।

असली रेशम—रेशम एक प्रकारके कीड़ोंसे पैदा होता है। यह कीड़े अपने चारों ओर कोआ (cocoon) के रूप में रेशे उत्पन्न करते हैं। ये कीड़े आपसे आप पैदा हो सकते हैं अथवा पाले जा सकते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। शहतूतके पत्तों से पाले कीड़ेही रेशमके लिये अधिकांश प्रयुक्त होते हैं। रेशमका व्यवसाय अधिकतर भारत, चीन, जापान इटली और फ्रांस में होता है जहां इसके लिए कीड़े पाले जाते है। इन कीड़ोंके एक औंस अण्डोंसे प्रायः २५ से ३० हजार तक कीड़े पैदा होते हैं। उनसे १५० पाउन्ड तक कोआ प्राप्त हो सकता है। यह कीड़े ४ से ५ हफ्तेमें प्रायः अपनी तोलके ५० गुना पत्ते खा डालते हैं।

कोआका रंग—कोआके रंग भिन्न भिन्न प्रकारके हो सकते हैं। चीन और जापानमें यह सफेद होता है, फ्रांस और काश्मीर में हल्के पीले रंगका, इटलीमें गाढ़े पीले रंगका और बंगालमें प्रायः नारंगी रंगका होता है। यह रंगीन रेशम सफेदभी बन सकता है। इन कोओं से सूत काते जाते हैं और उनसे कपड़ा बुना जाता है।

रेशमके सूतकी बनावट—रेशमके कच्चे सूत रूखड़े और चमक हीन होते हैं। एक कोआसे ४०० से २००० गज तक सूत बन सकता है। ऐसे सूतका औसत व्यास ०·०००६७ इंच होता है। सूतके दो भाग होते हैं। एक भाग ऊपर का गोंदसा होता है। इसे सेरिसिन (sericin) कहते हैं। नीचेका दूसरा भाग रेशा होता है। इसे फाइब्रोइन (fibroin) कहते हैं। ऊपर का गोंदवाला भाग साबुन वा क्षार के साथ उबालने से दूर हो सकता है। इससे रेशमका प्रायः २५ प्रतिशत भाग निकल जाता है।

रेशम ऊनके सदृश जल-ग्राहक होता है। ३० प्रतिशत तक पानीको यह सोख सकता है। इतने पानीसे यह भीगा नहीं मालूम पड़ता। रेशमका विशिष्ट घनत्व १·३६७ होता है। सूखी दशामें यह बिजलीका कुचालक पर घर्षणसे यह विद्युन्मय हो जाता है।

रेशमपर अम्लोंकी क्रिया—समाहृत खनिज अम्ल रेशमको बड़ी जल्दी आक्रान्त कर घुला डालते हैं। हल्के हाइड्रोक्लोरिक-अम्लसे रेशमका सूत सिकुड़ता है। हल्के गन्धकाम्ल का भी ऐसाही असर होता है। पर पानीसे अम्ल के हटाने से पहले रेशे नष्ट हो जाते हैं। हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का रेशमपर कोई असर नहीं पड़ता। इस अम्लके द्वारा रेशम के सूतमें खनिज लवणोंकी मात्रा निर्धारित करते हैं। खनिज लवण सूतकी तोलको बढ़ाने के लिए कभी कभी इस्तेमाल होते हैं।

समाहृत नाइट्रिक अम्लसे रेशम घुल कर पीला विलयन बनता है। हल्के नाइट्रिक अम्लसे सूत पीले होजाते हैं। नाइट्रस-अम्ल से भी सूत पीला हो जाता है और डायजो यौगिक बनता है। हल्के अम्लोंमें डुबाने से रेशमके सूतमें चमक आजाती है और बिना धोए सुखाने से मरोड़नेपर उस से कड़कड़ाहटकी आवाज आती है।

अलकलीकी क्रिया—निम्न तापक्रम पर रेशमपर अलकली की कोई क्रिया नहीं होती और न उससे कोई हानिही होती है। पर गरम अलकलीमें रेशम बिलकुल घुल जाता है। कार्बोनेटोंका रेशम पर कम असर होता है। रेशमके सूतोंसे गोंद-से पदार्थको निकालनेके लिए साबुनके सोहागेसे उबालते हैं। थोड़ा उबालनेसे कोई हानि नहीं होती पर अधिक उबालनेसे रेशे कमजोर हो जाते हैं। अमोनियम कार्बोनेटका रेशम पर कोई असर नहीं होता।

रेशमके रंगको दूर करने के लिए क्लोरीन प्रयुक्त नहीं हो सकता। इससे सूत नष्ट हो जाता है। सल्फर डायआक्साइड

इसके लिये प्रयुक्त होता है।

बिना पाले कीडोंसे प्राप्त रेशमको टसर कहते हैं टसर अधिक भारत और चीनमें होता है। टसर के कीड़े सामान्य रेशमके कीड़ोंसे कुछ बड़े होते हैं। उनका कोआ भी बड़ा होता है। सूत का रंग कुछ कपिल (bronzy) वर्णका होता है। जिसे दूर करना कठिन होता है। हाइड्रोजन पेराक्साइड से रंग बहुत कुछ हल्का हो जाता है पर बिल्कुल जाता नहीं। टसरमें कुछ चमक होती है। इसके रेशे मोटे होते हैं। कच्चे रेशेमें पर्याप्त खनिज पदार्थ रहता है। उसमें दशांशतक रेत रह सकता है। रेशम की तुलनासे अम्लों और अलकलीका टसर पर कम असर पड़ता है। इन पर रंग भी जल्दी नहीं चढ़ता।

एक और प्रकारका जंगली रेशम होता है जिसे ऐरी (eri) कहते हैं। यह इस देशके अनेक भागोंमें होता है। टसरसे यह बहुत कुछ मिलता जुलता है। "मुजा" (muga) रेशम आसाममें होता है। इसका रंग हल्का होता है। और टसरकी अपेक्षा अधिक सरलतासे रंगा जासकता है। यामाँ-मई (yama mai) रेशम जापानमें होता है। यह शहतूतके रेशम से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

वृक्षोंकी कुछ कथा

[लेखक श्रीमती प्रभा अष्ठाना बी. ए.]

बड़े तथा छोटे दोनों प्रकारके वृक्षोंमें अस्वाभाविक बढ़न होती है। कोई सुन्दर कोई असुन्दर। इन्हें अङ्गरेजी में गॉल (gall) हिन्दीमें माजू कहते हैं और इनके होनेका कारण कीड़ोंका वृक्षों पर आक्रमण करना है। ऐसे कीड़े जैसे केंचुआ, बर्र तथा अन्य छोटे कीड़े जब पौधोंको काटते हैं तब गॉल की उत्पत्ति होती है यह दूसरे पौधोंसे अथवा फफूंदीसे भी हो जाता है। यह दो प्रकारका होता है। एकतो किसी विशेष भागका अस्वाभाविक रूपसे बढ़ जाना, जैसे एक पत्ती अथवा फूल हो जिसमें एककी जगह एक गुच्छा सा बनजाय और दूसरा वृक्षकी पूरी खाल फूल जाय जैसे आकके वृक्षमें बहुधा होजाता है। वृक्षों पर बाहरी बातोंका क्या प्रभाव पड़ता है, यह गॉलसे भली भांति विदित हो जाता है और यह भी कि वृक्षों और कीड़ोंका कहां तक सम्बन्ध है। इस आक्रमणसे कीड़े और वृक्ष दोनोंको लाभ पहुँचता है। कीड़ा वृक्षकी अस्वाभाविक बढ़नमें बन्द हो जाता है और वहां खाना पीना पाता रहता है और बन्द रहने के कारण वृक्षको हानि भी नहीं पहुँचा सकता है।

इङ्गलैण्डमें ओकका सेब इसी प्रकार बनता है यह एक बड़े और गोल फलकी भांति होता है जो मक्खी द्वारा ओककी कली में छेद करनेसे बन जाता है। यह मक्खी कलीमें छेद करके उसमें अपने अण्डे देती है। और फिर उस छेदको बन्द कर देती है। कुछ दिनों तक कली ज्योंकी त्यों रहती है फिर जब अण्डे सेये जाते हैं तब उनके चारों ओर वृक्ष एक घेरा सा बना देता है और इससे वह भाग वृक्षसे बिलकुल अलग हो जाता है। जालीके अन्दर रहनेसे यह चिड़ियों इत्यादिसे भी सुरक्षित रहता है और समय आने पर अपने आवरणको तोड़कर बाहर निकल आता है।

एक दूसरी प्रकारका गॉल (माई) होता है जो बर्च (जंडी) वृक्षपर पाया जाता है। इसमें यह लकड़ियोंका एक बड़ा सा गुच्छा होता है और एक वृक्षमें इतने अधिक गुच्छे पाये जाते हैं कि दूरसे वह घोंसलोंकी भांति ज्ञात होते हैं। यह लकड़ी के गुच्छे फंफूदीसे बनते हैं।

वृक्षोंके हथियार—ऐसे बहुतसे वृक्ष पाए जाते हैं जो अपने ऊपर आक्रमण करने वाले कीड़ों मकोड़ोंसे अपनी रक्षा करते हैं। पौधोंकी पत्तियां इत्यादि खाकर बहुतसे कीड़े अपना जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सभी पौधे इस प्रकार नष्ट हो जाते हों। बहुधा गाय, भैंस तथा बकरी इत्यादि बड़े जानवरभी छोटे छोटे पौधोंको खा जाते हैं। उनसे रक्षा करनेके लिये पौधोंके कांटे होते हैं और किसी-किसीमें ऐसी तीव्र गंध आती है कि पशु उनके पासभी नहीं जाते हैं। बहुधा विषैले पौधे भी होते हैं जिन्हें पशु नहीं खाते।

वृक्षोंका जीवित रहनेका प्रयत्न—संयुक्त-राज्यमें एक अत्यन्त आकर्षक फूल 'यात्रीका आनन्द' होता है। इसका एक और नाम 'क्लेमेटिस' है और इसके फूल बहुतसे एक साथ लगते हैं जो दूरसे देखनेमें समुद्रकी झाग से प्रतीत होते

हैं। कुछ दिनों बाद ये ही तारोंकी आकृतिमें फूल झड़ जाते हैं और उनके स्थानपर सफेद परोंकी तरहके फल निकल आते हैं।

वृक्षोंका सीढ़ियोंके समान उपयोग—क्लेमेटिसकी बेल अपने पासकी झाड़ियों पर चढ़ जाती है और इस प्रकार रोशनी पाती है। बहुत कम ऐसे पौधे हैं जो गहरे अन्धेरे में जीवित रह सकते हैं। जब कभी बहुतसे पौधे एक साथ लगाये जाते हैं तो उनमें जो सबसे अधिक लम्बे होते हैं उन्हीं को अधिक प्रकाश मिलता है। परन्तु छोटे पौधोंने भी प्रकाश पाने का एक यह ढंग निकाला है कि धीरे-धीरे अपनी जड़ों को मजबूत बनानेके स्थानमें वह एक दमसे पास वाले बड़े पौधे पर चढ़ जाते हैं। इसकी भी कई रीतियां हैं।

क्लेमेटिस, आइवी तथा हनीसकल के तने में काफ़ी कड़ी लकड़ी होती है तब भी वे किसी और बाहरी सहायताके बिना पनप नहीं पाते हैं। क्लेमेटिस अथवा हनीसकलकी बेलको यदि पृथ्वी पर गिरा दो तो वह बेजान सी लगने लगती है और यदि उसे बीचमें से काट कर देखो तो मालूम होगा कि वह अन्य मजबूत जड़ोंकी भांति नहीं होती है। इसका कारण यह है कि ये शीघ्रतासे बढ़ गई होती हैं इसलिये इनमें इतनी शक्ति नहीं होती है कि सहायक जड़ बन सकें। वे केवल एक ऐसी नली बनकर रह जाती हैं जो पृथ्वीमें से पानी खींचकर पत्तियों तक पहुँचा सकें। पौधोंका दूसरे पौधों पर चढ़नेका सबसे सरल मार्ग है अपने तनोंको दूसरे पौधेके चारों ओर लपेट देना। परन्तु एक और भी मार्ग है जैसे क्लेमेटिस करता है कि तनेके अतिरिक्त अपनी पत्तियोंके डण्ठल को भी दूसरे पौधेकी डालियोंमें फंसा देते हैं और डंठल अक्सर लोहे के तारोंकी तरह कड़े हो जाते हैं। आइवी ध्वंसावशेषोंकी रक्षा करती है। इसके तनेमें बराबर गुच्छेके गुच्छे बालदार छोटी-छोटी जड़ोंके रहते हैं। यह जड़ें पत्थरकी इमारतों अथवा पेड़ोंकी जड़ोंको चारों ओरसे घेर लेती हैं। ध्वंसावशेषोंमें यह जड़ें टूटे हुए अथवा अपनी जगहसे हटे हुए पत्थरोंको इस भांति जकड़ लेती हैं कि वह गिरने नहीं पाते। नैसटरशियमकी बेल अपने पत्तोंके डंठल द्वारा किसी भी स्थान पर चढ़ जाती है। कुछ और पौधे भी जैसे मटर, अंगूर की बेल तथा 'पैशनका फूल' चढ़ने वाले होते हैं। इनमें कुछ भाग विशेष होता है जिसको "टैनगिल" कहते हैं और इसीकी सहायता से यह बेलें किसी सहारे पर चढ़ती हैं। यह आकृतिमें कोमल हरे डोरेके समान होते हैं। वरजिनियाकी बेल में टैनगिल सहारेको घेरते नहीं हैं बल्कि अपने सिरे पर स्थित छोटी छोटी गद्दियोंके द्वारा दीवारों पर दृढ़तासे चिपक जाते हैं। सहारों पर चढ़नेका एक और भी मार्ग है जैसा काली बेरी तथा 'क्लीवर' घासमें होता है। इनमें हुककी भांति कांटे होते हैं जिनके द्वारा यह अन्य वृक्षों पर चढ़ती हैं।

फूलों के पराग—किसी किसी वृक्षमें एक फूलका पराग दूसरे फूलको जन्म देता है और किसीमें एक ही जातिके दो वृक्ष एक दूसरेको अपने फूलोंका पराग देते हैं। एक ही वृक्षमें परागका आदान प्रदान होनेसे जो नए फूल होते हैं, वह उतने मजबूत नहीं होते न उनके बीज उतने अधिक होते हैं जितने दूसरे वृक्षों द्वारा लाये हुए पराग से उत्पन्न फूलों के।

एक फूलसे दूसरे फूलमें पराग ले जानेके लिये कई उपाय हैं। उनमें कीड़े तथा वायु सबसे अधिक उपयोगी हैं। कभी कभी पानी भी इस कार्य्यमें सहायता देता है पर अधिक नहीं। बहुधा जानवर भी यह काम करते हैं, जैसे चिड़ियां चमगादड़ (यह गर्म प्रदेशोंमें) घोंघें तथा कई अन्य कीड़े मकोड़े।

फूलों के रंग और गंधका कीड़ों पर प्रभाव—सुन्दर और आकर्षक बागोंमें बहुत सी मधु-मक्खियां, तितलियां और भंभीरियां उड़ा करती हैं। हम बैजनीं रंगके लौंगके फूलोंकी और उनकी मीठी सुगन्धकी कल्पना बिना उन पर उड़ती हुई मधु-मक्खियोंके कर ही नहीं सकते। फूलके साथ इनका ऐसा ही सम्बन्ध है। यह नहीं कि मधु-मक्खियां पौधोंके उपकारके लिये उन पर जाती हैं बल्कि यह तो अपने लिये मधु संचय करती हैं। यह सदैव ही पौधोंको हानि न पहुँचाती हों ऐसा नहीं है। कभी-कभी यह मधु-नलियोंमें छेद करके उसका मधु ले लेती हैं और इस भांति वृक्षको हानि पहुँचाती हैं। परन्तु यदि अपना भोजन संग्रह करते समय इनके शरीरमें पराग लग जाता है तो यह एक फूलसे दूसरे फूलमें पराग ले जाने वाली बन जाती हैं। इसलिये इन्हें अपनी ओर आकर्षित करने में वृक्षोंका भी लाभ है और यह आकर्षण फूलोंका रंग तथा गंध है। यह प्रमाणित हो चुका है कि मक्खियोंमें रंग पहिचानने की तथा सुगन्धसे प्रभावित होने की शक्ति है।

फूलोंके रंग कई प्रकारसे दीखते हैं। चटकीले फूल धूपमें अधिक चमकते हैं और फीके रंगके सूर्यास्तके समय। बहुतसे फूलोंकी पंखुड़ियां अधिक चटकीली होती हैं और बहुतोंमें दूसरे

भाग जैसे पराग धूलसे भरे जीरे आदि। अक्सर मक्खियां ऐसे फूलोंसे अधिक आकर्षित होती हैं जो अलग अलग तो छोटे होते हैं पर जो एक साथ गुच्छे में निकलते हैं जैसे लिलॉक इत्यादि। बहुतसे चमकीले फूलोंमें गंध नाममात्र को भी नहीं होती है। और बहुतसे सुगंधित फूल देखनेमें चटकीले नहीं होते। परन्तु किसी किसी फूलमें दोनों बातें होती हैं। कीड़ोंकी सुगंध पहिचाननेकी शक्ति बहुत तेज होती है। तीव्र सुगन्ध वाले फूल दूर-दूरके कीड़ोंको आकर्षित कर लेते हैं। यह कीड़े अँधेरेमें भी बिना फूलका रंग देखे हुए केवल सुगंधके आकर्षण से उन फूलों पर मंडराया करते हैं। बहुत सी सुगन्धें धूपमें, वर्षामें अथवा रातको अधिक तीव्र हो जाती हैं।

फूल और मधु-मक्खियां—एक पौंड शहद बनानेके लिये न जाने कितने फूलोंसे मधु संग्रह किया जाता है। यह काम कामकाजी मक्खियां मधु लेते समय और एक फूल का पराग दूसरेमें पहुंचाते समय ठीक व्यवस्थासे करती हैं। यों ही एक फूलसे दूसरे पर नहीं उड़ जाती हैं। ये एक ही जाति के एक फूलसे दूसरे पर जाती हैं जिससे इन्हें भी मधु लेनेमें आसानी होती हैं क्योंकि इन सब फूलोंके मधुकोष एकही समान और एकसे ही स्थान पर होते हैं और एकही जातिके फूलोंका पराग आपसमें इधर उधर होता है।

जिस प्रकार मधु संग्रह करने वाले कीड़े कई जातिके होते हैं। उसी प्रकार फूलभी कई प्रकारके होते हैं। भिन्न प्रकारके कीड़ों के फूल भी अलग अलग होते हैं। कहनेका तात्पर्य्य है कि प्रत्येक जातिका कीड़ा हर फूलको पराग नहीं पहुँचा सकता है। किसी फूलका रस केवल तितलियां ही ले सकती हैं, किसीका मधु-मक्खी और किसीका बर्र और ये ही पराग भी इधरसे उधर पहुंचा सकती हैं।

'गंधक की वर्षा'—बहुतसे प्रान्तों में लम्बे लम्बे ताड़ तथा उसी जातिके अन्य वृक्षोंका पराग उड़ उड़कर नीचे गिरता है जिससे सब वनस्पति ढंक जाती है। इसका रंग गंधक की तरह होता है और इसीलिये प्रतिवर्ष इसके गिरनेको 'गंधक की वर्षा' कहते हैं। इन सदाबहार वृक्षोंमें जब फूल लगने का मौसम आता है तभी यह सुनहरी-धूल ढेरकी ढेर निकलती है और वायुमें उड़ती हुई दूर-दूर तक पहुंच जाती है। कई प्रकार की घास और अन्य वनस्पतियां जैसे दाल, राई और गेहूं इत्यादि गर्मीके मध्यमें पराग उत्पन्न करती हैं। यह बहुत हल्का होता है और वायुमें उड़कर इधर उधर पहुंच जाता है। कभी-कभी लोगों को इससे ज्वर (hay fever) आने लगता है। फूलोंका पराग सोलह हजार फुटकी ऊंचाई तक भी पाया जाता है

अजन्मे पौधे—ऐसे वृक्षों में वह सब आ जाते हैं जो डाल काटकर लगाने से—बीज से नहीं—होते हैं जैसे गुलाब इत्यादि। जिनकी कलम लगाई जाती है। देशी और विदेशी गुलाबकी कलमें एक दूसरेमें मिलाकर लगानेसे कई और नई तरहके फूल निकलते हैं आलूकी खेती भी इसी प्रकार होती है परन्तु उसमें कुछ समय बाद बीजकी आवश्यकता भी पड़ती है।

पत्तियोंका रंग बदलने का कारण—हेमन्त ऋतुमें पत्तियोंका रंग पीला, नारंगी लाल और भूरा होता है। भिन्न भिन्न वृक्षोंकी पत्तियां भिन्न प्रकारसे रंग बदलती है। साय्कमोर की पत्तियां हरी ही गिर जाती हैं परन्तु गिरनेसे पहिले बहुधा पत्तियोंका रंग बदल जाता है। यदि गिरी हुई पत्ती हरी हो तो यही सम्भव है कि वह समयसे पहिले ही वायुके कारण गिर गई है। किसी-किसी वृक्ष जैसे ओवा के बीचमें सूखनेके बाद भी पत्तियां नहीं गिरती हैं बल्कि दूसरे वर्ष तक डालोंमें चिपकी रहती हैं। साधारणतया ग्रेट बृटेनके वृक्ष—सदाबहारको छोड़कर बाकी की पत्तियां हेमन्त (autumn) ऋतुमें रंग बदलती हैं और फिर गिर जाती हैं। पत्तियोंमें जो हरा पदार्थ—क्लोरोफिल—होता है वही वृक्षका भोजन बनाने में सहायता देता है परन्तु हेमन्त ऋतुमें वृक्ष एक वर्ष मौसमके लिये कार्य शील जीवन रोक देते हैं इसलिये पत्तियां भी अपना भोजन बनानेका कार्य रोक देती हैं और उनकी हरियाली समाप्त हो जाती है। गिरने से पहले पत्तियों को उससे कहीं अधिक लाभदायक पदार्थ दे देती हैं जितना वे उससे लेती हैं। जैसे जैसे पत्तीमें से इस हरे पदार्थ की कमी होती जाती है उसके स्थान पर पीलापन और बैंजनी रंग आता जाता है। पत्तीका कुछ कुछ नीला रंग जाड़ेके कारण भी हो जाता है।

प्रकृति की विचित्रता—गिरनेके समय पत्ती बिल्कुल खाली रहती है। वह अपना सब सत्त्व वृक्ष को दे चुकी होती है परन्तु जिस डालमें वह लगी होती है उसका मुंह उसके गिरने से खुला रह जाता है इसके बन्द करनेके लिये प्रकृति वृक्ष के उस स्थान पर छोटे २ छालके घरसे बना देती है जिससे डाल का मुंह बन्द हो जाता है और यह पत्तीके गिरने से पहिले ही हो जाता है।

कावा

[लेखक—श्री हरिकिशोर एम. एस-सी.]

एक प्रकारका मादक पेय जिसे पौलिनीसिया के निवासी खींचकर एक उत्सवपर बड़े समारोह से पीते हैं

मनुष्य जातिमें मादक पेयोंका प्रचार कबसे हुआ ? यह कहना असम्भव है। सभ्यताके विकासके साथ ही साथ मनुष्य के जीवनमें सुखकी मात्रा बढ़ती गई उसकी जीवन-यापन की उलझनें कम होती गईं, खाली समय बढ़ता गया और इन सबके फल स्वरूप उसमें प्रत्येक प्रकारकी मौज अपने दैनिक जीवनमें ले आनेका ख्याल आया होगा। उसे प्रकृति निरीक्षणके फल स्वरूप "मादकीय" पौधोंके गुण ज्ञात हो चुके होंगे और धीरे धीरे वह इन्हें व्यवहारमें लाने लगा होगा। कालान्तरमें इनका प्रयोग तथा इनकी और जातियोंका उपयोग बढ़ता गया। यही कारण है कि हम प्राचीन कालसे ही बहुतसे मादक पेयोंके उपयोग का वर्णन सुनते हैं।

प्रत्येक देश तथा जातिमें इन मादक पेयोंके बनानेकी विधि भिन्न है और साथ ही भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के अंग इनके बनाने के काममें लाये जाते हैं। सोम, भांग, अफीम, शराब इत्यादिसे तो हम भली प्रकार परिचित हैं। इसी श्रेणीमें किन्तु मादक शक्तिमें बहुत ही कमजोर हम चाय, काफी इत्यादि को भी रख सकते हैं।

जिस प्रकारसे प्राचीन कालमें सोमका हमारे यहां प्रचार था अथवा आजकल भांगका है वैसे ही पौलिनीसिया द्वीप समूह में "कावा" नामक मादक पेयका है। प्राचीन कालसे ही उस द्वीप के निवासी इसका उपयोग करते आ रहे हैं। ये द्वीप दक्षिणी पसिफिक महासागर में ३०°-४० उ० तथा द० अक्षांश तथा १३५° यू० देशान्तरमें स्थित है।

कावा (आवा अथवा आभा) एक प्राचीन कालसे ही व्यवहृत मादक पेय है। यह कावा नामक पौधा (piper methysticum) के जड़ अथवा पत्तियोंको पीसकर बनाया जाता है। यह पौधा सुन्दर धीरे धीरे बढ़ने वाले झाड़ीके रूपमें पाया जाता है। पौलिनीसीया द्वीप समूहके सभी द्वीपोंमें समान रूपसे इसके पाये जाने का कारण प्राचीन काल के उन द्वीप वासियोंका एक ही द्वीप परसे सबमें फैलनेका द्योतक है।

कावाकी मादकता ऊंघने तथा निद्रा लाने वाली होती है। अधिक मात्रामें यह हानिकर है तथा थोड़ी मात्रामें यह टॉनिक का काम करता है। अपने इस गुण के कारण इसका व्यवहार दवामें भी होता है। इसका नशा एक बार उतर जाने पर नहाने अथवा पानी में पड़े रहने से फिरसे वापस आ जाता है।

पौलिनीसियाके विविध भागोंमें इसके बनाने तथा व्यवहार करनेके तरीकोंमें कुछ न कुछ भिन्नता है। कावा बनानेका उत्सव काफी सामाजिक समारोहके साथ प्रत्येक भागमें मनाया जाता है और उसके बाद सभी इसे पीते हैं। इसके बनानेके बीचमें किसीभी प्रकारकी बदमाशी तथा धोखेबाजी बहुत ही निन्दित कार्य समझा जाता है। आधुनिक मादक पेयोंका अधिक उपभोग होनेसे तथा वर्तमान सभ्यताके आगमनसे इन द्वीपोंसे कावा पीने का रिवाज कम होता जा रहा है। पर फिर भी कावा उत्सवों की प्रणाली अब भी वही है।

सामोआ द्वीपवासी अपने प्रत्येक उत्सव ('फोनो') पर इसका व्यवहार करते हैं। जब कभी कोई अतिथि उनके यहां आता है तो अपने "फाल." (घर) पर वे इसीसे उसका स्वागत करते हैं। कावा पिलाना उनके यहां उतनीही सभ्यता का चिह्न माना जाता है जैसा कि चाय।

कावा बनाने की प्राचीन काल से प्रचलित रीति बड़ी ही विचित्र है। पौलिनीसियाके अधिकांश भागोंमें अब भी यही रीति बरती जाती है। इसे तैयार करनेके लिये उनके सरदारोंकी कन्यायें बुलाई जाती हैं। वे कावाकी जड़को अपने मुखमें लेकर खूब थूकके साथ कुचलती हैं और जब यह भली प्रकार कुचला जा चुकता है तो वे इन्हें एक अमृतबान से बरतनमें थूकती जाती हैं। इस बरतनको 'टानोआ' कहते हैं और यह 'इफ़ीबिल' (afzelia bijuga) की लकड़ीका बना होता है। इस बरतनके चार पैर होते हैं और उस पर खूब नक्काशी की रहती है साथ ही ये सारे भाग लकड़ीके एक ही टुकड़े को खराद कर बने होते हैं। जब पर्याप्त कुचली जड़ इकट्ठी हो जाती है तो पानी डालकर उसे भली प्रकार मिलाते हैं और फिर छान कर व्यवहारमें लाते हैं। इसके बनानेका आधुनिक तरीका भी यही है और इसके बनाते समय बहुत सावधानी बरती जाती है। जो युवती कन्यायें इन्हें कुचलती हैं उनका रजस्वला होना आवश्यक है और साथ ही यह भी की वे स्वस्थ्य तथा कुमारी

हों। बच्चे कावाकी जड़ तथा उसके बनानेमें काम लाए जाने वाले बरतन नहीं छूने पाते। जो लोग भी कावा बनाते हैं वे न तो आपसमें बातें कर सकते हैं और न हंसी मजाक कर सकते हैं।

आधुनिकता के प्रचार के साथ ही साथ मुखसे कुचल करके कावा बनानेकी प्रणाली उठती जा रही है और उसके बनाने के स्थान पर इसे सिल पर भांगकी तरह पीसकर बनानेका प्रचार बढ़ता जा रहा है, पर इस रीति से बनाया गया पेय गुणमें प्राचीन रीतिसे बनाए पेयकी मादकतासे बहुत हीन होता है। शायद इसका कारण यह हो कि चबानेसे थूकके उत्प्रेरकों (euzymes) के प्रभावसे जड़ोंमें पाए जाने वाले द्राक्षसिद (glucosides) नशीले (nacrotics) पदार्थों में तथा चीनीके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। अतः इस क्रियाका पीसे हुए कावामें अभाव होनेसे वह उतना अच्छा नहीं बन पाता।

यह पेय तैयार होने पर मटमैला या पत्तियों से बनाए जाने पर हल्के मटमैले हरे रंगका होता है। पीने पर पहले यह तीखा और कड़ुआ लगता है। अधिकतर पीनेकी मात्रा केवल दो घूंट है। इसका नशा पीनेके करीब २० मिनट बाद होने लगता है और इसे पीने वाले उसके बाद अर्द्ध निद्रितसे होने लगते हैं। अधिक मात्रामें पीनेसे चमड़ीकी तथा अन्य कुछ बीमारियां हो जाती हैं इन टापुओंके निवासियोंमें कावा-उत्सव एक प्रसिद्ध उत्सव माना जाता है।। खास खास मौकों पर इसे खास सामाजिक रीतिसे मनाते हैं 'राक्षिक' अथवा 'राज कावा (kingkawa) शासक वर्गों के कावा उत्सवको कहते हैं। सबसे विचित्र कावा समारोह 'पवित्र कावा' (sacred kawa) होता है। यह केवल किसी बहुत खास अवसर पर ही मनाया जाता है जैसे—किसी नए शासकके कार्य ग्रहण करने पर, अथवा राज-तिलक इत्यादिके अवसर पर।

ऐसे उत्सवोंमें कावा बनानेमें कई मनुष्य भाग लेते हैं। एक बड़ा सा 'टानोआ' बीचमें रखा जाता है और इसके पीछे जो सज्जन कावा बनाते हैं वे बैठते हैं। यह स्थान बड़ी इज्जत का माना जाता है और इसे किसी बड़े सरदारकी कन्या या पुत्र ग्रहण करते हैं। इनके बाई ओर प्याला उठाने वाला तथा दाहिनी ओर पानी देने वाला बैठता है, बाईं ओर ही प्रधान भी बैठता है। पीछे की ओर इस घेरे के बाहर दो तीन और मनुष्य बैठते हैं जो कि छाननेमें मदद देते हैं। कावाका पीसा या कुचला हुआ भाग 'टानोआ' में सादा पानी या नारियल के पानीको डालकर खूब घोला जाता है। कभी-कभी इसमें तीखापन लानेके लिये मिर्च भी डाल देते हैं। थोड़ी देर तक खूब अच्छी तरह मिला चुकनेके बाद इसे छानते हैं। यह छनना 'फाऊ' (Hibiscus tiliaceous) नामक वृक्षकी छालसे बनता है। 'टफाऊ' अथवा मिलाने वाला छन्ने को बाहर निकालता है और अपने पीछेके आदमीको सिट्ठी बाहर फेंकनेके लिये दे देता है। कावाको कई बार तब तक छानते हैं जब तक वह साफ न हो जाय। छन जाने पर यह जैसा कहा जा चुका है मटमैले पानी सा दीखता है।

जब कावा तैयार हो जाता है तो इसकी घोषणा प्रधान जोरसे चिल्लाकर करता है। उसके बाद सभी उपस्थित तालियां बजाते हैं। यह कावा तैयार हो जाने के बाद बुलानेका एक तरीका है।

सबके इकट्ठे हो जाने पर प्रधान जिसका पहला नाम लेता है उस मनुष्यको 'टपाऊ' छननेको दबाकर पेयको 'ईपू' (नारियलका बना एक प्रकारका प्याला) में भरकर देता है और यह प्यालेको लेकर पहले पेयका थोड़ा सा भाग जमीन पर गिराकर कहते हैं "मानुइया" (आपके स्वास्थ्यके लिये) और उसके साथ ही और उपस्थित भी इसीको दुहराते हैं अथवा कहते हैं "सो आप फुआ" (आप चिरञ्जीव हों)। इसके बाद वह मनुष्य प्यालेका कावा पीकर प्यालेको लौटा देता है। यह प्याला क्रमशः फिर भरा जाता है और उसी भांति एकके बाद दूसरे कावा पीते जाते हैं। कावाके परसने तथा पीनेमें प्राचीन रीति बरती जाती है और प्रधान हर एक मनुष्यकी सामाजिक प्रधानता के अनुसार कावा देनेको कहता है। सबके कावा पी चुकने पर कावा बनानेके काममें ले आए गए बरतन वगैरह हटा दिये जाते हैं और उसी स्थान पर सभाका कार्य प्रारम्भ होता है।

'पवित्र कावा' इससे कुछ भिन्न होता है। उसकी खास बात होती है कावा पीनेके पहले प्रधानके कहने पर सबका उस समय चुप रहना तथा बिलकुल न हिलना डुलना, जब तक कि प्रधान बोलनेकी आज्ञा न दे। जो मनुष्य इस बीचमें बोल देता है उसे भालेसे छेद दिये जानेकी सजा दी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन द्वीपों में कावा पीने की प्रणाली कितनी विचित्र है। यह सब होने पर भी वैज्ञानिक अनुसंधानोंके अनुसार कावा पीना शराब पीनेसे कहीं अच्छा है क्योंकि थोड़ी मात्रामें यह लाभदायक होता है।

घरेलू डाक्टर

पारा या इसके लवण आदि—अंडेकी सफेदी पानी या दूधमें घोलकर पिलाओ। फिर तुरन्त वमन कराओ। बादमें अंडेकी सफेदी या मैदा (या आटा) पानीमें घोलकर पिलाओ।

पेट्रोल—वमन कराओ, शरीर गरम रक्खो, जुलाब दो।

बछनाग, सींगिया, या दुधिया विष—वमन कराओ, कोयलेकी बुकनी या टैनिक ऐसिडका घोल पानीमें पिलाओ। ब्रैण्डी या अन्य उत्तेजक दो। कम्बल उढ़ाओ। गरम पानी की बोतल रक्खो या सेंको। चित लिटाओ। कृत्रिम श्वास कराओ।

बिच्छू, बर्रे आदिका काटना—कटे स्थानसे कुछ दूर हृदय की ओर हट कर कसकर बाँध दो। डंक लगे स्थानको खरोंच कर खून निकालो। कपड़ेकी गद्दी अमोनियामें तर करके डंक लगे स्थान पर रक्खो। अमोनिया न हो तो नौसादर और चूना बराबर मिला कर कटे स्थान पर थोड़ा पानीके साथ मल सकते हो।

भांग, माजून—वमन कराओ; सिरपर ठंढे जलके छींटे मारो; कृत्रिम श्वास कराओ।

विषैली हवा, कोलगैस, दूषित वायु आदि—स्वच्छ वायु में रोगीको तुरन्त लाकर रक्खो। अमोनिया सुँघाओ। शरीर गरम रक्खो। उत्तेजक पदार्थ ब्रैण्डी, कहवा आदिके रूपमें दो। कृत्रिम श्वास कराओ।

संखिया—वमन कराओ। ताजा हाइड्रेटेड फेरिक ऑक्साइड (hydrated ferric oxide) बना कर खूब पिलाओ। बनानेकी रीति—डेढ़ आउंस टिंकचर फेरी क्लोराइडको आधा आउंस मैगनीसियम ऑक्साइड या अमोनियाके साथ पानीमें घोलकर कपड़छान करो। जो कुछ कपड़े पर जमा रहे उसे ही दो-दो चम्मच करके कई बार दो। बादमें पानी या दूध दो। प्यासके लिये बरफ चूसनेको दो। ब्रैण्डी पिलाओ।

सांप काटना—साँप काटे स्थानसे जरा हृदयकी ओर हटकर खूब कस कर बाँध दो, जिससे जहरीला खून हृदय तक न पहुँचे। कटे स्थानपर किसी धारदार वस्तुसे कई गहरे चीर लगाओ और घावका मुँह फैला दो। फिर पोटैसियम परमैंगनेट घावपर खूब रगड़ो। रोगीको दौड़ाओ मत, लेकिन मूर्च्छा या नींद न आने दो। कृत्रिम श्वास कराओ। डाक्टर विशेष दवा सुई द्वारा देगा, इससे डाक्टरका प्रबन्ध बहुत जल्द करो।

क्षार (कास्टिक सोडा आदि)—वमन कराने का प्रयत्न न करो। रासायनिक विषमारक काममें लाओ। सिरका या नीबूका रस, पानीके साथ पिलाओ। तिलका तेल, घी, मक्खन, दूध या अंडेकी सफेदी दो।

सड़ी गली खाद्य वस्तुएं—वमन कराओ; जुलाब (रेंड़ी का तेल १ आउंस) दो; गरम दूध या कहवा पिलाओ।

हृदय रोग—हृदयके दो रोग ऐसे हैं जिनमें प्राथमिक चिकित्साकी तुरंत आवश्यकता पड़ती है। पहला तो ऐन्जाइना पेक्टोरिस (angina pectoris) नामक रोग है जो हृदयका एक अत्यन्त भारी रोग है। यह अधिकतर अधेड़ लोगोंको होता है। रोगका दौरा एकाएक होता है, विशेष कर परिश्रम करनेपर। हृदयमें तीव्र पीड़ा होती है और बायें बाहुमें भी पीड़ा होती है। चेहरा पीला पड़ जाता है और साँस थोड़ी-थोड़ी ही चलती है।

चिकित्सा—ध्यान रक्खो कि रोगी गिरने न पाये। उसे चारपाई पर लिटा दो। यदि वह कोई चुस्त कपड़ा पहने हो तो उसे ढीला कर दो। विशेषकर गले और कमर के पास कोई कपड़ा चुस्त न रहे। ऐमिल नाइट्राइट (amyl nitrite) सुँघाओ। अकसर हृदय रोग वाले इस दवा को अपने पास रखते हैं। दवा शीशीकी नलीमें बंद रहती है। आवश्यकता पड़नेपर नली तोड़कर दवा रूमालपर गिरा ली जाती है।

कुछ आराम मिलनेके बाद रोगी यदि बैठना चाहे तो उसे बैठने देने में कोई हरज नहीं है।

हृदयके दूसरे रोग जिनमें प्राथमिक चिकित्साकी आवश्यकता पड़ सकती है, ऐसे हैं कि इनमें साँस लेनेमें विशेष कठिनाई पड़ती है। ऐसे रोगोंका दौरा होनेपर रोगीको तकिया और गद्दोंकी टेक लगाकर बैठा देना चाहिए, और तब डाक्टर बुलाना चाहिये। बराबर ध्यान रहे कि मूर्च्छित होकर रोगी मुँहके बल तकिए पर इस प्रकार न गिर पड़े

कि उसकी नाक और मुँह दब जाय और उसका दम घुट जाय।

आक्षेप (convulsion)—शब्दसागरके अनुसार आक्षेप एक रोग है, जिसमें रोगीके अंगमें कंपकंपी होती है। परंतु आक्षेप वस्तुत: कोई एक विशेष रोग नहीं है। यह केवल एक लक्षण है जो कई विभिन्न रोगोंमें दिखलाई पड़ता है। आक्षेपमें सारा शरीर या इसके कुछ अंग जोरसे और अनियमित रूपसे चलते हैं। इसका कारण यह है कि हाथ-पैरको संचालित करने वाली और साधारणत: मनुष्यकी इच्छाके आधीन रहने वाली माँसपेशियाँ आपसे आप पारी-पारीसे संकुचित और ढीली होती हैं। जैसे पृथ्वीमें भूकंप आता है तो पृथ्वी काँप उठती है, इसी प्रकार आक्षेपके कारण शरीरमें कँपकंपी हो जाती है। बचपनमें अकसर आक्षेपका आक्रमण होता है। इसे बालाक्षेप (infantile convulsions) कहते हैं। तांडव (St. Vitus's dance), अपस्मार (epilepsy) हनुस्तंभ (tetanus), गुर्देकी बीमारी (kidney disease), गर्भवतीकी मूर्च्छा (eclampsia), रजोनिवृत्ति (menopause) में आक्षेप होता है। इन सब रोगोंका वर्णन यथास्थान मिलेगा और वहींपर तत्सम्बन्धी आक्षेपका उपचार भी मिलेगा।

ऑक्सिजन (oxygen)—ऑक्सिजन एक गैस है। हमारे वायुमण्डलका लगभग पाँचवाँ भाग ऑक्सिजन है, शेष लगभग नाइट्रोजन है। अन्य अवयव बहुत थोड़ी मात्रामें ही हैं। केवल ऑक्सिजनके रहने पर जलती हुई वस्तुएँ जोरसे जल उठती हैं और शीघ्र जलकर भस्म हो जाती हैं। मनुष्य भी शुद्ध ऑक्सिजनमें अधिक समय तक न जी सकेगा।

परंतु कुछ रोग ऐसे हैं जिनमें शरीरका रक्त अपनी साधारण मात्रामें ऑक्सिजन नहीं ले जा पाता। ऐसे रोगोंमें साँस लेते समय भीतर जाने वाली वायुमें ऑक्सिजनकी मात्रा बढ़ा देनेसे बहुत आराम मिलता है। दम घुटनेमें, न्यूमोनिया (pneumonia) में, हृदय के कुछ रोगों में, रक्ताल्पता (anaemia) में और विष खा जाने पर अकसर ऑक्सिजन दिया जाता है। इसके लिये ऑक्सिजन इस्पातकी लंबी टंकियों (या बड़ी बोतलों cylinders) में दबा कर बन्द किया हुआ बिकता है। टोंटी को कम या अधिक खोल कर इच्छानुसार मात्रामें रोगीको ऑक्सिजन दिया जा सकता है।

आतशक (syphilis)—आतशक को उपदंश, गर्मी और फिरंग रोगभी कहते हैं। वेश्या प्रथा और आतशक में बहुत घनिष्ठ संबन्ध है। कहा जाता है कि यह बीमारी भारतवर्षमें विदेशियोंके आनेके बाद फैली। इस कारण ही इसे फिरंग रोग भी कहते हैं।

इसकी उत्पत्ति स्त्री-पुरुषके जननेन्द्रिय-समागम (मैथुन) से होती है। यदि किसीकी जननेन्द्रिय (योनि या लिंग) में किसी प्रकारकी खराश हो और वह ऐसे व्यक्तिसे समागम करे जिसको यह बीमारी हो तो उसे भी यह रोग हो जायगा।
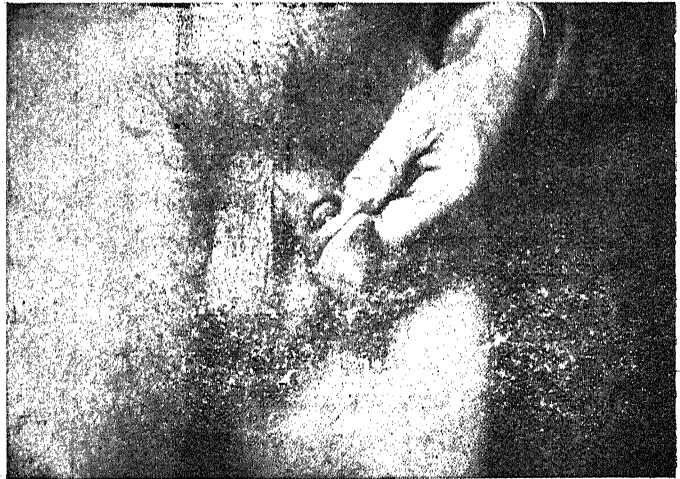
चित्र १—पुरुषके लिंग पर आतशकके कारण घाव।

अतएव बहुतायत से प्राथमिक घाव जननेन्द्रिय पर पाया जाता है (चित्र नं० १ तथा २)।

जखममें शीशी के डाट खोलने वाले पेंच की शक्ल के कीटाणु होते हैं (चित्र नं० ३)। इन्हें स्पाइरोकीटा पैलिडा (spirochaeta pallida) कहते हैं। यह बीमारी चूमनेसे, या जखमको चूसनेसे, या जखमके और किसी ऐसे

अंग से संघर्ष होने पर जहाँ खराश हो, हो जा सकती है। इसी लिये होंठ, ललाट या उंगलियों पर भी प्राथमिक व्रण पाया जाता है (चित्र नं० ४-७)। चुंबनसे, या होठों पर प्राथमिक व्रण वाले रोगी के प्याले से बिना उसे अच्छी तरह साफ किये कोई चीज खा या पी लेनेसे, आतशकका प्राथमिक व्रण होठों पर हो जा सकता है। वास्तविक संघर्षके २ से
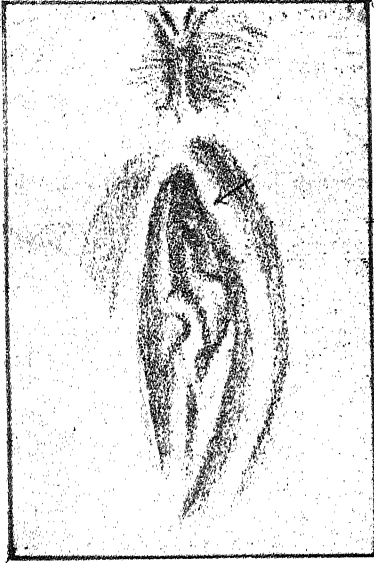
चित्र २—स्त्रीकी योनि पर आतशकके कारण घाव।

६ सप्ताह के अन्दर यह प्राथमिक व्रण दीख पड़ता है। पहले उठे हुए दाने जैसा इसका रूप होता है। फिर तीन-चार दिनों में यह चाँदी की दुअन्नीके बराबर चकत्तेके आकारमें परिवर्तित हो जाता है। दोनों ऊरुसंधि*या एक ही ऊरुसंधि की ग्रंथियाँ (glands) भी सूज उठती हैं। इसमें दर्द और तनावट होती है। कभी-कभी ये ग्रंथियाँ पक भी जाती हैं जिसे बाघी कहते हैं।

आतशककी तीन अवस्थाएँ होती हैं, प्रथम, द्वितीय और तृतीय। प्रथम अवस्थामें जननेन्द्रिय या अन्य अंग पर स्थानीय व्रण होता है। इसका रूप तथा आकार ऊपर बताया जा चुका है। यह घाव प्रायः संख्यामें एकही होता है परंतु कभी-कभी दो तीन जखम भी हो सकते हैं। जखमकी पेंदी बहुत कड़ी होती है और आस-पासके भाग भी कड़े हो जाते हैं।

द्वितीय अवस्था—प्राथमिक व्रण तीन-चार सप्ताह बाद आरम्भ होता है। सारे शरीरकी चमड़ी (त्वचा) पर लाल-लाल दाने, जो चिपटे और कनिष्ठ उँगलीके नाखूनके बराबर होते हैं, दिखाई पड़ते हैं। आरम्भमें बिना पूरी रोशनी के ये नजर नहीं आते। किन्तु चार-पाँच दिनोंमें ये छिपाए छिपते भी नहीं (चित्र नं० ८)। सरमें दर्द, हल्का बुखार और हड्डियोंमें दर्द रहता है या रक्ताल्पता हो सकती है। यदि प्राथमिक अवस्था की चिकित्सा ठिकानेसे हो तो इस दूसरी अवस्था तक रोग नहीं पहुँचने पाता है।

दूसरी और तीसरी अवस्था के बीच कुछ समय तक कोई विशेष लक्षण नहीं रहते। कभी-कभी तो दो से लेकर बीस वर्ष तक बीत जाते हैं। परन्तु तीसरी अवस्थामें बीमारी प्रायः छः महीने बाद पहुँचती है। इस अवस्था में शरीर के किसी भी भागमें उपद्रव हो सकता है। इस अवस्थामें छोटी-छोटी अर्बुदाकार वृद्धियाँ (बतौरी या बतौड़ा) हो जाती हैं जो किसी भी अङ्गमें हो सकती हैं (चित्र नं० ९)। इसके अतिरिक्त स्पाइरोकीट (spirochaet) अब शरीरके किसी भी अवयव पर आक्रमण कर सकते हैं। हृदय, रक्त-वाहिनियाँ, यकृत, हड्डी, मस्तिष्क (brain), त्वचा आदि किसी भी अंग पर वे अपना नाशक चिह्न दिखा सकते हैं। इन वृद्धियों को निर्यासा (gumma) कहते हैं। इनमें स्पाइरोकीट पेलिडा बहुत रहते हैं। यदि आतशककी चिकित्सा प्रारम्भिक अवस्थामें ही ठिकानेसे न की जाय तो यह भयंकर तीसरी अवस्था किसी-न-किसी अंग पर अपना प्रकोप दिखा ही देती है। हाथ-पैरके तलवोंके चमड़े कड़े तथा काले धब्बोंसे भर जाते हैं, हड्डी स्थान-स्थान पर उभरी सी मालूम पड़ती है जिसमें विशेष वेदना होती है। हृदयमें बड़ी कमजोरी आ जाती है। मस्तिष्क तथा स्नायु (nerve) पर तो इसका प्रकोप विचित्रही है। मनुष्य या तो पागल-जैसा (general paralysis of the insane) हो जाता है या मेरुदण्ड के

* पेड़ और जाँघकी संधिको ऊरुसंधि कहते हैं।

स्नायुकी विकृतिके कारण अपाहिज हो जाता है (tabes dorsalis)। निर्यासोंके नाकमें निकलने और फिर फूटनेसे नाक बैठ जाती है। तालूमें फूटनेसे छिद्र हो जाता है और फिर खाना-पीना बंद हो जाता है। मस्तिष्क की रक्तवाहिनियों में आतशक के कीटाणुओं का आक्रमण होने पर पक्षाघात (लकवा) हो जाता है। कान या आँख पर आक्रमण होनेसे रोगी बहरा या अन्धा हो जाता है। जिह्वा पर आक्रमण होनेसे वह फट जाती है या ऊपर की सतह मोटी हो जाती है और उस पर सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं।

माता-पिता का आतशक सन्तानमें भी जाता है। यह मौरूसी आतशक सन्तानमें या तो माताके खूनसे या पिताके वीर्यसे द्रवित होता है। या तो गर्भ ही नुकसान हो जाता है अथवा संतान जन्मसे ही रोगसे पीड़ित रहती है और कुछ दिनों बाद मर जाती है। यदि सन्तान जी भी गई तो आगे चलकर नाक, कान, दांत आदि अवयवोंमें भिन्न भिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—चिकित्सा के आधार पर आतशक दो अवस्थाओंमें विभाजित किया जाता है।

(१) प्रारम्भिक (early) आतशक।

(२) देरवाला (late) आतशक।

प्रारम्भिक आतशक जड़ से छूट सकता है, और यह संघर्ष से फैलता है। देर वाला आतशक कभी जड़से छूटता ही नहीं, किन्तु यह संघर्षसे नहीं फैलता। अतएव प्रारम्भिक अवस्थामें चिकित्सा जोरदार होनी चाहिए और देर अवस्था वाले आतशकमें चिकित्सा रोगके लक्षणोंकी निवृत्तिके लिये होनी चाहिये।
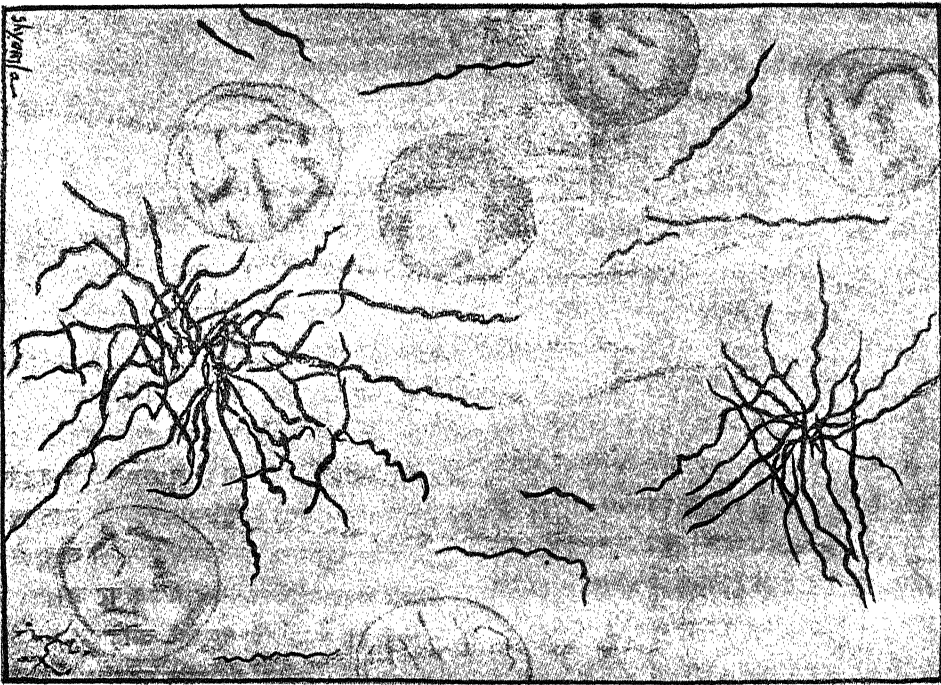
चित्र ३—आतशक के कीटाणु।
इनकी शकल बहुत कुछ उस पेंचकी-सी होती है जिससे बोतलोंका डाट खोला जाता है।

चित्र ४-५—होंठ पर आतशक के कारण घाव।

प्रतिशोध (prophylactic)—असाधारण जननेन्द्रिय समागमसे दूर रहने पर यह बीमारी नहीं होती। यह जरूरी नहीं कि यह समागम स्त्री-पुरुष का ही हो। पुरुष-पुरुष समागम (गुदा-मैथुन) से भी गुदास्थान पर आतशक का जखम पाया जाता है। यदि संदेहात्मक समागम से बीमारी की आशंका हो तो अच्छा होगा कि समागम के समय जननेन्द्रिय पर रबर की टोपीका व्यवहार किया जाय। ऐसे समागमके बाद जननेन्द्रिय पर कैलोमेल (calomel) का ३३ प्रतिशत मलहम लगाना उपयोगी है। साथ-ही-साथ स्टोवार्सल (stovarsol) के चार ग्रेन की चार गोलियाँ प्रातःकाल चार दिन तक खा लेनी चाहिए। ऐसे स्त्री-पुरुषको दो वर्ष तक विवाह करना उचित नहीं। बीमारीके प्रकोपकी प्रगतिका पता खूनकी वासरमैन जाँच (Wassermann reaction) से चलाते रहना चाहिए। इस जाँचसे डाक्टर को केवल यही नहीं पता चलता कि आतशक है या नहीं, यह भी पता चलता है कि दवासे कितना फायदा हो रहा है।

औषधि—संखियेकी भस्म (organic arsenic compounds), बिसमथ (bismuth) और पारा (mercury) के लवण, पोटैशियम आयोडाइड (potassium iodide) आतशकके लिए लाभदायक औषधि हैं। संखिया तथा बिसमथसे बनी औषधियाँ सुई (injection) द्वारा दी जाती हैं, पारासे बनी औषधियाँ सुई या मुख द्वारा अथवा त्वचा पर मालिश द्वारा व्यवहार में लाई जाती हैं। पोटैशियम आयोडाइड सदा मुख द्वारा दिया जाता है। संखियासे बनी दवा, जैसे नियोसालवार्सन (neosalvarsan), बिसमथ से बनी दवा, जैसे बिसमथ सैलिसिलास (bismuth salicylas), पारासे बनी दवा जैसे पारा का मलहम (mercurial cream, mercurial ointment) आदि का भी प्रयोग किया जाता है। ये औषधियाँ जहरीली हैं और इनका प्रयोग अच्छे अनुभवी चिकित्सक ही कर सकते हैं। (बद्रीनारायण प्रसाद)

पैदाइशी आतशक—आतशक वाले माता-पिताके बच्चों में अकसर वे लक्षण दिखलाई पड़ते हैं जो आतशक की तीसरी अवस्था में दिखलाई पड़ते हैं। शरीर के किसी भी अंग में उपद्रव हो सकता है। साधारणतः हड्डी, त्वचा, संधियों, और यकृतको ही विशेष हानि पहुँचती है। यदि बच्चे छोटेपनमें ही न मर गये तो पीछे उनकी आँखोंके नष्ट हो जानेका डर रहता है। कुछ बच्चे दस-पंद्रह वर्षकी आयुमें

चित्र ६—ललाट पर आतशक के कारण घाव।
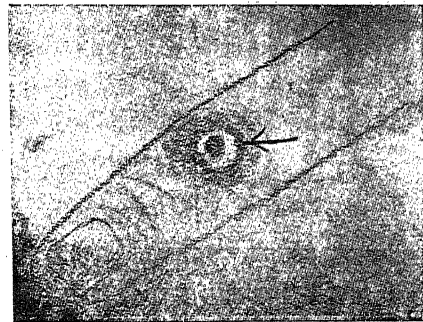
चित्र ७—अँगुली पर आतशकके कारण घाव

बहरे हो जाते हैं। पागलपन होना भी कोई असाधारण बात नहीं है और यह ग्यारह या बारह वर्षकी आयुके बाद होता है। पैदाइशी आतशककी चिकित्सा सरल नहीं है। बहुत कम ही बच्चे बचकर जवान हो पाते हैं (यूनिवर्सल होम डाक्टर से)।
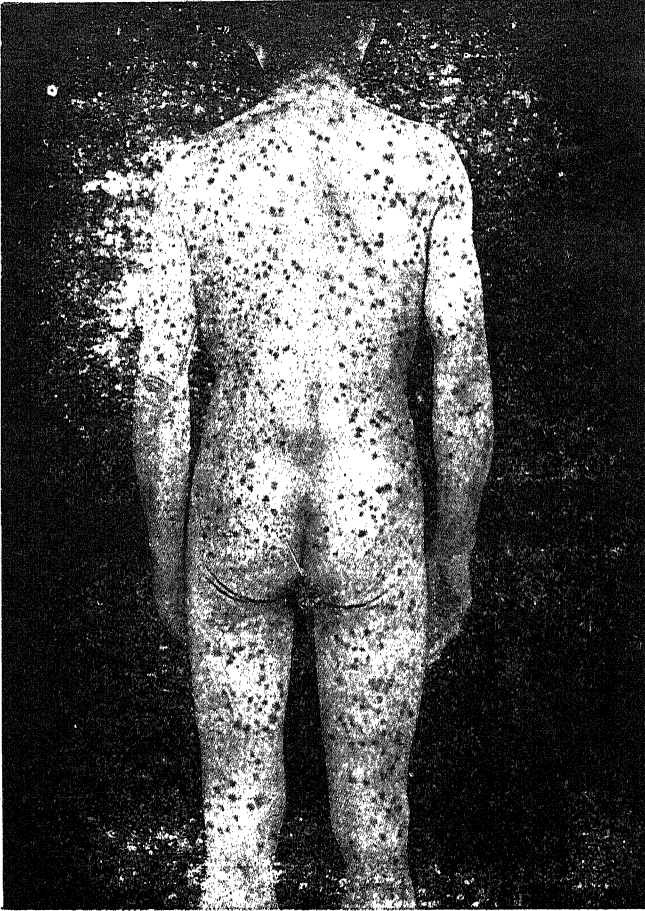
चित्र ८—आतशक की द्वितीय अवस्था
सारे शरीर पर लाल दाने निकल आते हैं।

बचने के उपाय—(१) आतशक छूत का रोग है। यहाँ व्यक्ति एक दूसरेको अपनी जननेन्द्रियों द्वारा छूते हैं अर्थात् आम तौर से रोग मैथुन द्वारा ही उत्पन्न होता है। बस, इस रोगसे बचनेकी सरल विधि यह है कि स्वस्थ व्यक्ति आतशक वाले व्यक्तिसे मैथुन न करे। यह रोग करीब-करीब हमेशा वेश्या-गमनसे होता है; वेश्याको अपनी जीविका प्राप्त करने के लिये सभी प्रकारके लोगोंसे मैथुन कराना पड़ता है। इस लिये वह कभी पवित्र और स्वस्थ नहीं रह सकती। एक आतशकी वेश्या पचासों पुरुषोंको आतशक दे सकती है। यदि लोगोंको इस रोगकी भयानकता का पूरा ज्ञान हो तो उनका जी वेश्या-गमनको न चाहे। वेश्या-गमनको लोग बुरा समझते हैं परन्तु जब वे शराब पी लेते हैं या कोई और नशा खा लेते हैं तो उनकी बुद्धि जाती रहती है; वह बुरे-भलेकी तामीज ही नहीं कर सकते।

(२) आतशकके जखमोंको छूना ही पड़े तो बड़ी सावधानीसे स्पर्श करो और स्पर्शके बाद साबुन और पारेके घोलों से हाथ साफ करो। जहाँ तक हो सके ऐसे व्रणों के छूनेके लिये रबरके दस्तानोंका प्रयोग करो।

(३) आतशकी रोगियोंका इलाज होना चाहिये और जब तक खूनकी परीक्षासे वे रोग-रहित न मालूम हों उनको स्वस्थ स्त्री पुरुषोंसे मैथुन न करना चाहिये और न उनको सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये।

(४) चुम्बन द्वारा, और आतशकियों के गंदे तौलिये द्वारा मुँह पोंछने से भी, रोग होने की सम्भावना है। इसलिये ये दोनों काम न करो। आतशकीके मुँहसे लगे हुए बरतन भी त्याज्य हैं।

(५) जान बूझकर आतशकी खानदान में विवाह न करो चाहे आपको कितनाही धन दहेज में मिले। (त्रिलोकीनाथ वर्मा कृत स्वास्थ्य और रोगसे।)

आतशकके प्रथम लक्षणके बाद ही तुरंत किसी होशियार डाक्टरके वहाँ जाना चाहिये और सब बातें साफ-साफ बता कर ठीक दवा करानी चाहिए।

आत्मीकरण (metabolism)—मनुष्य जो आहार

चित्र ९—आतशक की तीसरी अवस्था में छोटी-छोटी अर्बुदाकार वृद्धियाँ शरीरके किसी अंग में निकल सकती हैं

खाता है वह पचकर और कई रासायनिक क्रियाओं द्वारा रक्त में जा मिलता है और अंतमें शरीरके विविध अंगों की पुष्टि करता है। शरीरसे रद्दी माल मल, मूत्र, पसीना, साँस आदि के रूपमें निकलता है। आत्मीकरण (मेटाबॉलिज्म) से उन सब क्रियाओंका सामूहिक रूपसे बोध होता है जिनसे आहार से शरीरकी पुष्टि होती है और रद्दी माल दूर होता है। यदि आत्मीकरणमें कोई त्रुटि कहीं आजाय तो तरह-तरहके रोग हो जाते हैं, जिनमें मधुमेह (diabetes), गठिया (gout) मोटापा (obesity) आदि रोग हैं। आत्मीकरण में शरीरके पाचक अवयव (digestive organs) और प्रणाली विहीन ग्रंथियाँ (ductless glands) ही प्रमुख कार्य करती हैं। आत्मीकरण की मात्रा इन दिनों साँसके साथ निकली कारबन डाइऑक्साइड गसको नापकर या साँस लेनेके लिए आवश्यक ऑक्सिजन गसको नापकर की जाती है। भोजन करने पर आत्मीकरण की मात्रा बढ़ जाती है। इसी प्रकार शारीरिक परिश्रमसे भी आत्मीकरण की मात्रा बढ़ जाती है। संध्या समय भोजन करके रात भर सोने पर जब व्यक्ति जागता है और बिस्तर पर चुपचाप पड़ा रहता है और कोई विशेष बात नहीं सोचता रहता तो उस समय आत्मीकरण की मात्रा सब से कम रहती है। इसको मूल आत्मीकरण (basal metabolism) कहते हैं। कुछ ग्रंथियोंके रोगोंमें मूल आत्मीकरणके नापते रहने से रोगकी चिकित्सा में सहायता मिलती है।

आनाह—मल-मूत्र रुकनेसे पेटके फूलने को आनाह कहते हैं (शब्द सागर)। इसे अंग्रेजीमें acute abdomen कहते हैं। यह कोई विशेष रोग नहीं है, केवल एक लक्षण है। जिसके कई कारण हैं, जिनमें निम्न प्रधान हैं—

(१) प्रदाह; उदाहरणतः उपांत्र प्रदाह (appendicitis) अंत्रांकुर प्रदाह (diverticulitis), क्लोम प्रदाह (pancreatitis), उदरक कलाप्रदाह (peritonitis), इत्यादि।

(२) अवरोध अर्थात् रुकावट (obstructions)। उदाहरणतः गलाघुटी हुई अंत्रवृद्धि (strangulated hernia), या अँतड़ीके दोहरा हो जाने (intussusception) के कारण, अँतड़ी के भीतर-भीतर ही दब जाने (internal strangulation) या ऐंठ जाने (volvulus) के कारण, इत्यादि।

(३) छिद जाने (perforations) के कारण, उदाहरणतः अँतड़ी में घाव हो जाने पर। घाव पाचन शक्ति के खराब रहनेके कारण, क्षय के कारण या टाइफॉइड आदिके कारण हो सकता है।

(४) रक्तस्राव (haemorrhages) और ऐंठन (torsions), उदाहरणतः वहिर्गर्भाधान के फटने पर (ruptured ectopic gestation), बच्चेदानी के टेढ़े अर्बुद या गर्भाशयके गुल्म (twisted ovarian cysts or fibroids) के फूटने पर, इत्यादि।

चित्र १०—गुदापर अर्बुदाकार वृद्धि।

तीव्र आमवातीय संधिप्रदाह।
अँगुलियों की संधियाँ सूज आई हैं।

आम (mango)—आम (सस्कृंत आम्र) एक बड़ा पेड़ है जो सारे भारतवर्ष में होता है। इसका फल आषाढ़ से भादों तक मिलता है। कुछ आमके पेड़ बीज से उत्पन्न किये जाते हैं जिन्हें बीजू कहते हैं। इनके फल उतने अच्छे नहीं होते। अच्छे आम कलम लगाकर उत्पन्न किये जाते हैं, इनके फल कलमी आम कहलाते हैं। कलमी आमों की एक विशेष जाति लँगड़ा है जो स्वादिष्ट होता है और बनारस तथा आस-पासके जिलोंमें उत्पन्न होता है।

कच्चे आमका पन्ना लू लगनेकी अच्छी दवा समझी जाती है। आधुनिक खोजोंसे पता चला है कि आम बहुत लाभदायक फल है। उदाहरणत:; लँगड़ा आममें लगभग ५ प्रतिशत कर्बोज (कारबोहाइड्रेट), $\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रोटीन और $\frac{1}{4}$ प्रतिशत वसा के अतिरिक्त विटैमिन सी प्रचुर मात्रा में और विटैमिन ए काफी मात्रा में रहता है। बीजू आमों में प्रोटीनकी मात्रा कम होती है, अन्यथा वे भी वैसे ही लाभदायक हैं। बहुत से लोगोंका ख्याल है कि आम खाने से फोड़े-फुनसियाँ होती हैं, विशेष कर बच्चोंको; परंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। इस विश्वासका असली कारण यह जान पड़ता है कि बरसातमें आम होता है और बरसात में ही फोड़े-फुनसिग्राँभी बहुत होती हैं। हाँ, यदि सड़ा-गला आम खाया जाय, या आम इतनी मात्रामें खाया जाय कि अजीर्ण हो जाय तो बात दूसरी है। नहीं तो अच्छे फलको साधारण मात्रा में खानेसे लाभ छोड़ हानि नहीं हो सकती।

आम रक्तातिसार—आँव और रक्त के साथ दस्त होने के रोग को आमरक्तातिसार कहते हैं। यह रोग वस्तुत: आमातिसार से भिन्न नहीं है। इस लिए आमातिसार के सम्बन्ध में इस पर भी विचार किया जायगा।

आमवात (rheumatism)—हिंदी के कई आधुनिक लेखकोंने रूमैटिज्म (rheumatism) के लिए आमवात शब्दका प्रयोग किया है, यद्यपि कोशमें आमवात का अर्थ दूसरा ही लगाया गया है। इन लेखकोंके आधार पर यहाँ भी आमवातसे रूमैटिज्म ही समझा जायगा। इस रोग का प्रधान लक्षण गठिया (gout) से बहुत मिलता-जुलता है। दोनों रोगोंमें प्रधान लक्षण यही है कि शरीरके एक या अधिक जोड़ोंमें सूजन और पीड़ा होती है। परन्तु गठिया एक प्रकारसे सारे शरीरका (constitutional) रोग है। जब आत्मीकरण (metabolism) में ऐसी त्रुटि आजाती है कि प्रोटीन ठीक तरहसे नहीं पचता तो
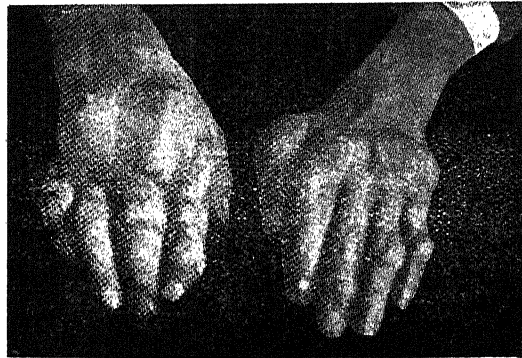
जीर्ण गठिया।
संधियों में, और उनके पास, सोडियम यूरेट जम गया है।

दमा और उसके कारण

[ले०—श्री ओम्मप्रकाश आयुर्वेदालंकार]

श्वास रोग कोई नवीन रोग नहीं है। यह बड़े प्राचीन काल से ज्ञात है। यह बड़ा घातक रोग समझा जाता है। यदि एक बार यह रोग हो जाय तो इससे छुटकारा पाना सहल नहीं है। यह कभी अच्छा होता देखा नहीं गया है। इसके लिये यह प्रसिद्ध है कि दमा दमके साथ जाता है। इस कारणसे बहुत से विद्वानोंका ध्यान इस रोगकी ओर गया। उन्होंने चिकित्सा और कारण के विषयमें नई नई गवेषणायें शुरू कीं। चिकित्सा में कई प्रकारके परिवर्तन एड्रिनैलाइन (adrenaline) का इन्जेक्शन इस रोगमें दिया जाने लगा है। श्वासके दौरेमें यह दवाई बड़ा आराम पहुंचाती है। पर इससे कोई स्थिर सफलता न मिली। तब विद्वानोंने कारणके विषयमें जाननेका प्रयत्न किया इस लेखमें इसी कारणकी विवेचना करेंगे।

श्वास रोग का अभिप्राय श्वासकी कठिनतासे होता है इसका मुख्य लक्षण श्वासावरोध है। इसका कारण यह प्रतीतहोता है कि श्वास नालीमें वायुका प्रवेश तथा निर्गमन सुगमतासे नहीं हो पाता है, जैसा स्वस्थ पुरुष में होता है। जब रोगीको दौरा होता है, लेटा रोगी बैठ जाता है और तकियाका सहारा ले कर कुछ आगे की ओर झुक जाता है। ये लक्षण किन शारीरिक दोषों (Physiological disorders) के कारण होते हैं यह देखना चाहिए। बात यह है कि श्वासनालियां (Bronchi) संकुचित हो जाती हैं। इतना ही नहीं यह संकोच सूक्ष्म श्वास प्रणालियों (Bronchiol) तक पहुंच जाता है। इससे फुफ्फुसके अन्दरकी वायु श्वास द्वारा निकल नहीं पाती और वायु कोष्ठक (Air vesieles) भरे रहते हैं। इसके परिणाम स्वरूप फुफ्फुस (Lungs) फैल जाता है। इस रोग के दौरे आते हैं यह सदा नहीं रहता है। दौरे प्रायः सायङ्काल या रात्रि में आते हैं। दौरा समाप्त होने के बाद फुफ्फुस पुन स्वस्थ (Normal) अवस्थामें आ जाता है।

अब, यह प्रश्न उठता है कि इसका दौरा क्यों होता है? ऐसा सम्भव है कि बार-२ एवं निरन्तर श्वासके दौरे होनेसे श्लैष्मिककला (Mucous membrane)से अधिक श्लेष्मा (Mucous) का स्राव हो और इसमें जीवाणु (Bacteria) आकर पल जायें जिससे श्वास नालीमें शोथ हो जाय। कई बार ऐसा होता है कि यदि श्वास प्रणालीमें चिरस्थायी शोथ हो तो धीरे धीरे श्वास नालीसे मांस पेशी (Musel) का क्षोभ (Irritability) बढ़ जाता है जिससे धूल धुआं आदि क्षोभक (Irritating) पदार्थसे श्वास रोगका दौरा आ जाता है। पर यह प्रधान कारण नहीं है। परन्तु श्वास नालीकी मांस पेशियोंमें उद्वर्त (Spisum) का होना इस रोगका प्रधान कारण मालूम होता है। इसी कारणसे श्वास नालीमें संकोच होकर श्वासमें कठिनता हो जाती है। किसी मांस पेशीका संकोच उसकी वात नाड़ी (nerves) पर निर्भर है। इसी प्रकार श्वासकी मांश पेशियों के उदवर्तका कारण वातनाड़ियां (nerves) हैं। श्वासके मांस पेशियोंकी शामक नाड़ी (Para sympathetic nerve) है। अर्थात् इस रोगका प्रधान कारण वातिक (nervous) है जिसकी माधवनिदानके इस श्लोकसे पुष्टि होती है।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफ पूर्वकः।
विश्वग् व्रजति संरुद्धः तदा श्वासान् करोति सः॥

अर्थात् विशेषतया यह रोग वायु प्रकोपसे होता है। कफ पूर्वक कहनेसे यह ज्ञात होता है कि वायु प्रकोपका कारण कफ है। माधव निदानमें श्वास रोगके कारणोंकी गणना करते हुए ऐसे पदार्थों तथा आहार विहारोंका वर्णन किया है जिनसे कफ बात प्रकुपित होते हैं।

विदाहि गुरु विष्टम्भि रुक्षाभिष्यन्दिभोजनैः।
शीतपानाशन स्थान रजोधूमातपानिलैः॥
व्यायामकर्म मारध्व वेगाघातापतर्पणैः।
हिक्का श्वास कासश्च नृणां समुपजायते॥

श्वास नालीमें सहसा कफका प्रकोप जन्य शोथ होकर सहसा वायुका प्रकोप हो जाता है। अर्थात पहले शरीरमें कफ प्रकोप जन्य विषका होना इस रोगके लिये आवश्यक है। शीत पित्त (Urticharia) के रोगियोंमें ऐसा देखा जाता है कि जब छपाकी नहीं निकलती है तो श्वासका दौरा हो जाता है।

शीत पित्त बना रहे तो यह दौरा नहीं होता है। अर्थात् शीत पित्तको करने वाला विष जब श्वास नाड़ी (Vagus) पर प्रभाव करता है, तब यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

वातिक निर्बलताका होना भी इस रोगमें आवश्यक है। क्योंकि कफ प्रकोप बहुतोंमें सम्भव है पर सबको श्वास रोग नहीं होता है। जितने श्वास रोगी मिलते हैं प्राय; उनके माता-पिता में इस रोगका इतिवृत्त मिलता है। या फिर उनके माता-पिता वातिक प्रकृतिके या अर्धावभेदक, मृगी आदि रोगोंसे पीड़ित होते हैं। जिनके माता-पिताको श्वास रोग बड़े तीव्र रूपमें होता है, उनके लड़कोंमें यह रोग बचपनसे प्रारम्भ हो जाता है। दो सहोदर भाइयोंमें दोनोंमें यह रोग पाया गया है।

साधारणतया यह रोग बच्चों में नहीं मिलता है। श्वास रोगियोंमें बचपनकी अवस्था का इतिवृत्त लें तो उनमें त्वचाके रोग या त्वचा विस्फोट (Skin creeptions) मिलते हैं। इन रोगोंको डा० जरनी (Dr. Czerny) ने a exwdatine diathesis नाम दिया है। और बड़ी आयु में शीत पित्त, मण्डल, अर्द्धावभेदक रोग पाए जाते हैं, खासकर आमाशय तथा आंतके विकार अधिक मिलते हैं। प्राय: यह रोग वात प्रकृतिके रोगियोंमें मिलता है, जो वातिक निर्बलता, पैत्रिक होती है। परन्तु स्वस्थ मनुष्य भी इसके शिकार बन जाते हैं। यदि ऐसे कारण उपस्थित हो जांय जो वातको प्रकुपित करदें। इस प्रकार वातिक निर्बलता सहज या आगन्तुक दोनों हो सकती है। इस अवस्थामें श्वास नाली, कण्ठ तथा नासिकामें थोड़ा भी कफ प्रकोप हो जाय तो इस रोगका वेग हो जाता है।

ऐसे उदाहरण वर्तमान हैं जिनमें सहज तथा आगन्तुक निर्बलता बनी हुई है परन्तु यह रोग नहीं होता है। ऐसा होता तो वात प्रकृति वालोंमें सदा श्वास रोगके दौरे हो जाया करते। इसलिये ऐसे विक्षोभक कारण (Stimuli) होने चाहिएं जो एकाएक इस दौरेको कर देते हैं। यदि ऐसे विक्षोभक कारणोंका वर्गीकरण करें तो ये चार प्रकारके हैं।

१. भौतिक (Machenical)
२. रासायनिक (Chemical)
३. ताप सम्बन्धी (Thermal)
४. मानसिक (Psychic)

१. भौतिक के कुछ उदाहरण—कई मनुष्यों में एक विशेष प्रकारकी गन्धसे ही इसका दौरा हो जाता है। कइयोंमें घोड़ेकी गन्धसे हो जाता है। कइयोंमें काफीकी गन्धसे हो जाता है, कइयोंको किसी तेज गन्धसे तथा कइयोंको गुलाबकी गन्धसे भी दौरा होता पाया गया है। कई बार धूल, ऊन एवं चूनेकी सुरखीके श्वास द्वारा चले जानेसे श्वास रोगके दौरे हो जाते हैं। हवामें उड़ते हुए धुआं; कूड़ा करकटकी गन्ध तथा अनाजों के छिलकोंकी गन्धसे भी यह रोग हो जाता है।

२. रासायनिक के कुछ उदाहरण—चमड़े तथा पखों के रंगने के कारखानों में काम करने वालोंको यह रोग होजाता है कइयोंको तो ऐसे कल कारखानों में घुसते ही इसका दौरा हो जाता है।

३. ताप सम्बन्धी कुछ उदाहरण—कुछ लोग जब पहाड़ पर जाते हैं तो उनको वहां श्वास रोग प्रारम्भ हो जाता है। इसके विपरीत मैदानों तथा गरम प्रदेशोंमें रहें तो अच्छे रहते हैं। कइयोंको मैदान तथा गरम प्रदेशोंमें यह रोग जाता है पहाड़ या शीत स्थान पर जांय तो ठीक रहते हैं।

४. मानसिक कारणोंके उदाहरण—कई रोगी ऐसे देखे गए हैं जो यह कहते हैं कि जब हम इसके विषयमें सोचते हैं कि इस प्रकार प्रारम्भ होता है तो इस प्रकारके ध्यानसे श्वास का दौरा आ जाता है।

इनके अतिरिक्त कुछ प्रारम्भिक क्षोभक कारण भी होते हैं जो नासिका, कण्ठ, श्वास प्रणाली एवं आमाशयादिमें होते हैं। जो कि दौरेके करनेमें सहायक कारण बनते हैं। या यों कहें शामक नाड़ी (Vagus) को विक्षुब्ध (Stemulat) करने में एक कारण बनते हैं।

ऐसे वातिक रोगी (Nervous patient) मिलते हैं जिन्हें मृगी का दौरा होता है। पर श्वास रोग का कभी नहीं हुआ कई वात प्रकृति वाले ऐसे पुरुष हैं जिन्हें मृगी नहीं और नाहीं श्वास रोग है। मतलब यह कि वात प्रकृति होने पर भी इतनी क्षमता रखते हैं कि ऐसे विक्षोभ (Stemuli) को सहन कर सकें। परन्तु कुछ नहीं रखते हैं। ऐसे रोगी भी मिलते हैं जिनमें वाह्य विक्षोभ (Stimuli) विद्यमान् है अर्थात् उनके निवास स्थानमें धूल, धुआं बेतहाशा रहता है। उनकी श्वास प्रणालीमें शोथके कारण खांसी रहती है, परन्तु श्वास रोगसे कभी पीड़ित नहीं हुए। इसके विपरीत ऐसे रोगी मिलेंगे जिनको जरा सी खुशबू सूंघनेसे दौरा हो जाता है। इसका कारण यह है कि कुछ मनुष्योंका वात संस्थान इन सबके लिये सहिष्णु

है दूसरोंका नहीं। अर्थात् दूसरोंमें प्रतिक्रिया (Reaction) हो जाती है। जिनमें यह असहिष्णुता या (nervousness) पितासे आती है उनकी इस अवस्थाको पैत्रिक असहिष्णुता (allergic state) कहते हैं। रक्तमस्तु (Serum) का सूचीवेध देने के पश्चात् कभी कभी शरीर में रोग क्षमता (Immunity) पैदा होनेके स्थानमें उसके लिये असहिष्णुता (Anaphy lexis) पैदा हो जाती है। जिससे दूसरी वार सूचीबेध करने पर या प्रथमबार सूचीवेध के समय भी सुई के स्थान पर लाली, शोथ, शरीर पर शीतपित्त, ज्वर, संधिशोथ ग्रंथि-वृद्धि आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्थाको हम रक्तमस्तु जन्य रोग (Serum Sickness) कहते हैं। क्वचित् कुछ मनुष्योंमें रक्तमस्तु (Serum) के प्रयोगसे इतनी असहिष्णुता पैदा हो जाती है कि मृत्यु भी हो जाती है इसको असहिष्णुता घात (Anaphy lacticshock) कहते हैं। रक्तमस्तु (Serum) के उपयोगसे उत्पन्न असहिष्णुता महीनों या सालों तक रह सकती है। अतः रक्तमस्तुका प्रयोग करते हुए उपर्युक्त वातकी जांच करनी चाहिये। यदि पहले सीरमका प्रयोग हुआ हो तो दूसरी बार प्रयोग करनेसे पूर्व असहिष्णुता निवारण उपायोंका प्रयोग एवं असहिष्णुताकी जांच करनी चाहिये।

असहिष्णुताकी पहिचान—जिस रक्तमस्तु (Serum) या जीवाणु विष (Vaccine) की असहिष्णुताका ज्ञान करना हो उसकी बहुत न्यून मात्रा त्वचामें डाल दी जाती है। एक दो दिनमें त्वचामें प्रतिक्रिया (Reaction) पैदा होती है जिससे उस स्थानकी त्वचा रक्तवर्ण हो जाती है और शोथ हो जाती है। जिससे यह समझते हैं कि इस रक्तमस्तु (Serum) या (Vaccine) के प्रति इस व्यक्तिमें असहिष्णुता पैदा हो गई है। इसके विपरीत यदि यह प्रतिक्रिया (Reaction) न हो तो यह समझा जाता है कि रोगी इसकी मात्राको सह सकता है।

असहिष्णुता दूर करने के उपाय—असहिष्णुता (Anaphy laxis) को हटानेके लिये पुनः उसकी थोड़ी थोड़ी मात्राका सूचीवेध देना चाहिये। तब असहिष्णुता नहीं रहती है और रोगी पूरी मात्रा लेनेके लिये क्षमता पैदा कर लेता है

ये असहिष्णुता चिकित्सा विज्ञान में भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ती है—उदाहरणतः—किसी एक व्यक्तिको थोड़ेसे धूल या धुएंसे क्षवथु या छिक्का रोग हो जाता है। जबकि उतने धूलसे दूसरेको यह रोग नहीं होता है, ऐसे ही किसी भोजन जन्य विषके रक्तमें फैल जाने से एक व्यक्ति को शीत पित्त रोग हो जाता है जबकि औरोंमें यह नहीं मिलता है। मलबन्ध होनेसे कइयोंमें शीत पित्त रोग हो जाता है परन्तु दूसरोंमें मलवन्धसे कोई रोग नहीं पैदा होता है।

यह असहिष्णुता किस कारण उत्पन्न होती है। इस विषयमें यह कल्पना की जाती है, उदाहरणके लिये रक्तमस्तु Serum से उत्पन्न असहिष्णुताको लेते हैं—रक्तमस्तु (Serum) कृमि विष (Vaccine) विष (Toxines) का प्रयोग प्रतिशक्ति (Immunity) पैदा करनेके लिये होता है। यह प्रति शक्ति प्रति पदार्थ (Anti bodies) के कारण होती है। जो विषके प्रति शरीरमें या रक्तमें प्रतिपदार्थ पैदा होता है उसे प्रति विष कहते हैं। जो (Vaccination) से पैदा होता है अर्थात् जो जीवाणुओंके विरुद्ध पैदा होता है उन्हें (Agglutinins) तथा Bacterio lysens कहते हैं। यह प्रतिशक्ति कुछ समय के लिये रहती है किसी से कुछ सप्ताह तक, किसीसे कुछ मास तक किसीसे कुछ सालों तक प्रतिशक्ति पैदा रहती है। उतने समयके बाद यदि उसी प्रकार पूरी मात्रा रक्तमस्तु (Serum) आदि की दे दें तो बड़ी प्रकिक्रिया होती है और कईवार इससे मृत्यु भी हो जाती है। इस असहिष्णुताके विषय में यह कल्पना है कि प्रतिपदार्थ (Anti bodies) कुछ समय बाद रक्तमें नहीं मिलते हैं और वे Tissue में चले जाते हैं। जो एक प्रकारसे विषकी तरह कार्य करते हैं। जिससे शरीर में असहिष्णुता (Anaphy laxis) पैदा हो जाती है।

कई प्राणियोंमें इस प्रकारकी असहिष्णुता कृत्रिम रूपमें पैदा की गई है उनकी परीक्षासे देखा गया कि उनकी श्वास नालियां संकुचित (Contracted) हो गई थीं।

इसी प्रकार शारीरिक असहिष्णुताके कारणकी ओर विचार करें तो यही मानना पड़ता है कि कोई ऐसा कारण होना चाहिये जो शरीरमें असहिष्णुता पैदा कर देता है। इस असहिष्णुताके कारण दो प्रकारके हो सकते हैं—

१. आगन्तुक, २. सहज।

१. आगन्तुक से उन कारणोंकी ओर संकेत है जो जीवाणु तथा वाह्य किसी प्रकारके विष से सम्बन्ध रखते हैं।

२. सहज वे कारण हैं जो पैत्रिक परम्परासे चले आरहे हैं, अर्थात् माता-पिता से किसी प्रकार का विष वंशमें चल रहा है

जो इस असहिष्णुता का कारण है । ऐसी असहिष्णुता (Anaphy laxis) को allergic कहते हैं allergic रोगों में अर्थात् असहिष्णुता के रोगोंमें श्वास रोग, शीतपित्त तथा अर्धावभेदक आदि रोग माने जाते हैं।

इस असहिष्णुता का कारण दो प्रकार की विषें ही हो सकती हैं। जीवाणुजन्यविष (Bacterial poison) तथा (Protein nature) की विष (Histamine) क्या है ? वह भी (Protein nature) की विष है। जिससे श्वासनाड़ी का संकोच रह जाता है अर्थात् (Vaso constriction Paralysed) हो जाता है। इसके साथ यदि सहज वातिक दुर्बलता हो तो श्वास रोग प्रगट हो जाता है। यह अत्यधिक वातिक दुर्बलता (Super sensitiveness) पैत्रिक परम्परा से आती है। और विष भोजन से पैदा होती है यह विष Protein या peptone श्रेणीकी होती है या अपरिपक्व प्रोटीन (undigested protein) ही विष का कार्य करती है। यदि इस विषका पता लगा सकें और त्वचामें प्रविष्ट करें तो असहिष्णुता के लक्षण प्रगट होंगे। जहां प्रविष्ट करेंगे वहां लाल चकत्ता हो जाएगा। जब पूर्ण रूपसे भोजनका परिपाक नहीं होता है तब अपरिपक्व (Amino Acids) बन जाते हैं ये (Amino Acids) प्रोटीनका अन्तिम रूप हैं जो पाचन क्रियासे बनते हैं। अपरिपक्व (Amino Acids) विषका काम करते हैं। जब यह शरीरमें अधिक हो जाता है तब नाना प्रकारके उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि कौनसी वस्तुएं ऐसी हैं जो न पचकर विषोत्पत्ति करती हैं। जिससे दमा, शीतपित्त आदि रोग प्रकट होजाते हैं।

(Scarification) त्वचाको खुरचकर शरीर में औषध प्रवेश या त्वचा में विष डालकर इसके परीक्षण किये गये हैं। ये विष दूध, दही, अण्डे, मांस कोई फल या कोई अन्न गेहूं चावल आदिके होते हैं। इनको त्वचामें डाल देते हैं। यदि चकत्ते बन जांय तो इनकी असहिष्णुता है। इस तरह पता करना कठिन है। क्योंकि वस्तुएं इतनी हैं कि, उनकी गणना असम्भव ही है। बहुतसी वस्तुएं रक्तके द्वारा नहीं अपितु नाड़ी मण्डलके द्वारा शरीर पर असर करती हैं। इनसे यदि नाड़ी मण्डलमें सीधा विक्षोभ हो तो श्वास रोग हो जाता है। नासा सम्बन्धी स्रोतसों में जीवाणु (Bactaria) रहते हैं। इनकी विषभी प्रोटीन प्रकृति (Protein nature) की होती है। इस लिए यह पता चलाना कठिन है कि भोजन विष (Indisested protein poison) कारण है या जीवाणु-विष (Bacterial poison) कारण या धातुपाक जन्य विष (Metabolic poison) कारण है।

जिन ऋतुओंमें अनाजकी धूल या पुष्पोंके पराग अधिक वायुमण्डलमें उड़ते हैं उन दिनों दमाके दौर अधिक पाये जाते हैं। कभी २ पशुओंके बाल, चमड़े, तथा उनके छोटे २ टुकड़ोंके विक्षोभसे ऐसा हो जाता है। इसलिए यह पता चलानेकी कोशिश करें कि किस व्यक्तिको किस विषकी असहिष्णुता है। इसके पता चलने पर उसको हटायें। कई बार तो स्थान परिवर्तन मात्रसे ही श्वास रोग ठीक हो जाता है। इससे पता चलता है कि बाह्य कोई विष था।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोगोंमें भी वातिक असहिष्णुता होती है। परन्तु उनको श्वास रोग नहीं होता है। अर्थात् जब श्वासनाली को जाने वाली नाड़ीमें असहिष्णुता हो तब श्वास रोग होता है। शामक नाड़ी (Vagus) श्वास नालीकी मांसपेशियां जाती है। अन्य रोगोंमें जैसे अन्य नाड़ियोंकी सहज निर्बलता पाते हैं इसी प्रकार इसमेंभी शामक नाड़ी (Vagus) की सहज असहिष्णुता तथा निर्बलता होती है।

प्रतिक्षिप्त क्रिया (Refex action) से भी श्वास नालीमें विषमता आ जाती है। फेफड़ेमें हिस्टामीन (Hestamine) सदृश विषके प्रवेशसे ही श्वास रोग पैदा किया जा सकता है।

इस प्रकार यदि कहीं परभी शरीरमें विष हो तो उसके प्रतिक्षेप (Reflex) के रूपमें श्वास प्रणाली में क्षोभ होकर श्वास रोग हो जाता है यथा—नासा सम्बन्धी स्रोतसमें विष या नासा स्रोतसों में शोथ तथा पूय या नासिकामें नासाग्रन्थि (Polypus) हो या नासापटल (nasal septum) में कोई विषमता हो, शुक्तिकास्थियोंकी अति वृद्धि होगई हो तबभी (reflex) तौरपर श्वास नालीमें क्षोभ होकर श्वासका दौरा प्रायः हो जाता है। आंत्र तथा दांतके भी विक्षोभ फुफ्फुसमें प्रतिक्षिप्त हो सकते हैं। यही कारण है कि जिनमें नासिका

(शेष २३७ पृष्ठ के नीचे)

चम्पा (नागकेशर)

चम्पाकी कई जातियां होती हैं। कुछ जातियां झाड़ी की तरह होती हैं और कुछ बड़े वृक्ष होते हैं जो बीस-पचीस फुट तक ऊंचे होते हैं। बङ्गाल प्रान्तमें यह अधिकतासे होता है। मूलनद प्रान्तमें या मैसूरके पर्वतीय भागमें चम्पाका वृक्ष अधिक ऊंचा और बड़ा होता है। कहीं-कहीं तो उसका वृक्ष १०० फुट ऊंचा और २० फुट परिधिका भी मिलता है। इनमेंसे अधिकांश सदाबहार है अर्थात् उनमें पतझड़ नहीं होता। सभीमें फूल लगता है और इनमें से अधिकांश में तीव्र सुगन्धि रहती है पत्तियां आमने-सामने न रहकर एकांतर रहती हैं; पत्तियां चिकनी होती हैं; उनका आकार अण्डाकार होता है। वे जामुन की पत्तियों की तरह होती हैं, परन्तु उससे कुछ छोटी, अधिक चिकनी और कुछ पतली होती हैं, ये आठ इञ्चसे दस इञ्च तक लम्बी होती हैं।

जाड़ों के प्रारम्भ में और अन्त में इस पर फूल आते हैं। फूल गुच्छे में न लगकर अलग-अलग लगते हैं, साधारणतः ये बड़े होते हैं और एक ही फूल में नर और मादा दोनों अंग रहते हैं (bisexual) डण्ठल लम्बा होता है। फूलका व्यास डेढ़ इञ्च से तीन इञ्च होता है। फूल सफेद या पीले रंगका होता है। पंखुड़ियां ६ से १२ तक होती हैं और कई तहोंमें लगी रहती हैं। प्रत्येक तहमें तीन-तीन पंखुड़ियां रहती हैं। पुंकेसर बहुत-से होते हैं और अलग-अलग रहते हैं। इन्हींको नागकेशर कहते हैं गर्भाशय भी बहुतसे होते हैं और सर्पिलाकार क्रमसे रहते हैं। (Torus) लम्बी होती है और उसी पर गर्भाशय लगा रहता है। प्रत्येक गर्भाशय में दो रजोविंदु (ouals) होते हैं।

फूलके आनेके बाद प्रत्येक छड़ पर बहुतसे फल लगते हैं। छड़ ६ से ८ इञ्च तक लम्बा होता है। बीज लाल या नारंगी रंगका होता है। बीज इतनी बहुतायतमें आता है कि इनके कारण पेड़ बहुत कमजोर हो जाता है और एक दो साल तक उसपर फूल नहीं आते। इसलिये बीजोंको पूरी तरहसे बढ़नेसे पहले ही तोड़ देना चाहिये।
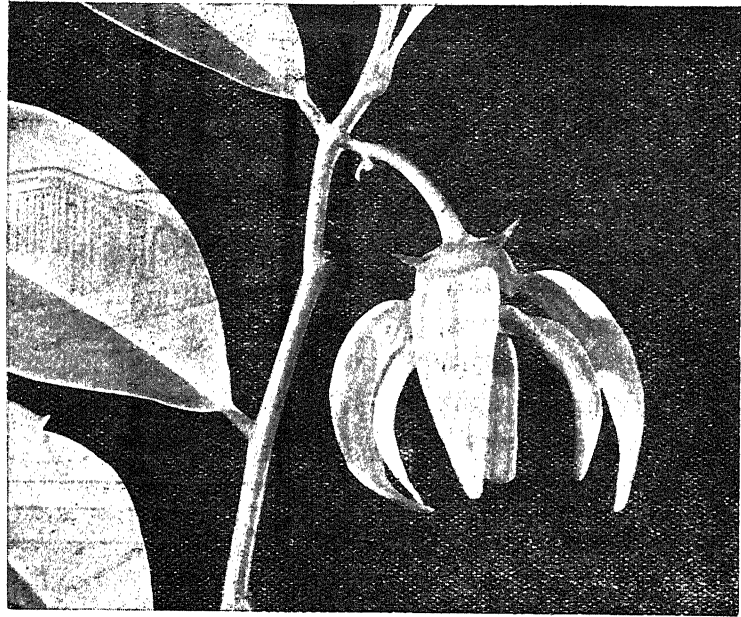
चम्पा का फूल

(अवशेषांक पृष्ठ २३६)

कंठ, एव आंत्र सम्बन्धी विकार होते हैं उनमें श्वास रोग प्रारंभ हो जाता है।

श्वास रोग के प्रकृति के पुरुषोंमें—जब कभी वर्षामें नदी नाल प्रदेशों में रहना पड़े, या गर्मी के आरम्भकी धूल युक्त वायु में रहना पड़े, या अति आयास या श्रम करना पड़े, या अजीर्ण, मलबन्ध पाण्डु आदि हो जाय, शोक चिन्तादि मानसिक आघात आपड़े, या किसी प्रकार से विष द्रव्यका शरीर में संचार हो जाय, या केवल विष्टम्भाजीर्ण कारक भोजन किया जाय, या कोई अति शीत पान या भोजन खालिया जाय तो—इस रोगका वेग हो जाता है।

—०—
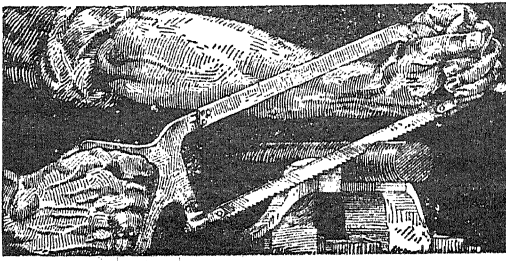
सुन्दर और आधुनिक ट्रे

श्री चन्द्रिकाप्रसाद, बी. एस-सी

यह आधुनिक चायकी ट्रे देखनेमें बहुत सुन्दर और बनाने में आसान है। पेंदीको छोड़कर बाकी अंग बची खुची लकड़ी से बनाए जा सकते हैं। शीशम या अखरोटकी लकड़ी लेकर इसे बनाना अच्छा होगा। १८ इंच लम्बा और १२ इंच चौड़ा रखना उचित होगा किन्तु इच्छानुसार इन नापों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। इसके सिर और फटियां ६/८ इंच ×७/८ इंच नापकी लकड़ीसे बनाये जाते हैं। चारों कोने ७/८ इंच मोटी लकड़ीसे काटे जा सकते हैं। प्रत्येक कोने के लिये १३/४ इंच × १३/४ इंच लकड़ी की आवश्यकता पड़ेगी। पेंदी १/४ इंच मोटी प्लाईवुड से बनाई जाती है। परंतु यह प्लाईवुड ऐसी हो कि इसकी एक सतह पर शीशम या अखरोट की लकड़ी चढ़ी हो। शीशम चढ़ी प्लाईवुड का मिलना कदाचित् संभव न होगा और अखरोट चढ़ी प्लाईवुड और अखरोट की लकड़ी बहुत अकरी मिलती है। इस लिये साधारण अच्छे मेलका प्लाईवुड लगा कर इसे ऐसा रंगा जा सकता है कि देखने में वह शीशम की सी जान पड़े, किन्तु असली शीशम की लकड़ी में जो सौन्दर्य होता है वह न आ सकेगा।

हेन्डल और कोने—हेन्डल आधे इंच मोटी लकड़ी से बनाया जाता है और इस मोटाई का आधा अर्थात् १/४ इंच तश्तरी के सिरों में डूबा रहता है। नीचे से पेंच कस कर ये जड़े रहते हैं। यदि आबनूस या अन्य कोई तश्तरी के रंग से भिन्न लकड़ी के बनाये जायें तो अधिक अच्छा होगा।

कोनों को जोड़नेकी रीति चित्र से स्पष्ट हो जायगी। गोल खूंटियां जो दो भागों को जोड़ती हैं लकड़ी या बांसकी बनाई जा सकती हैं। ये ३/१६ इंच मोटी हों। कोनों की भीतरी
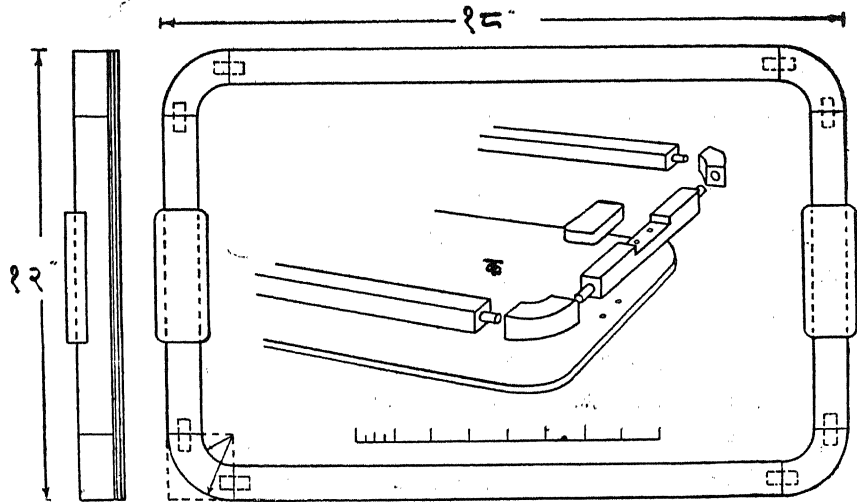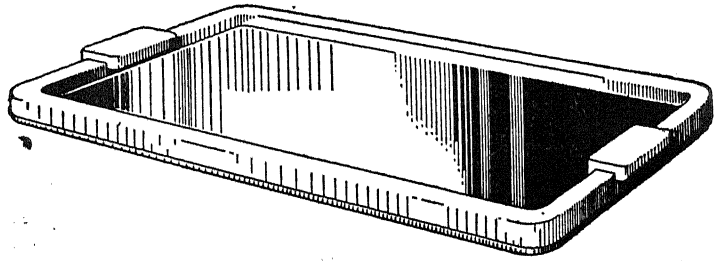
सुन्दर और आधुनिक ट्रे

चित्र में ट्रे के अन्य भाग तथा तनी (क) बनानेकी विधि दिखाई गई है।

कोर इनको (हैन्डलों को) जोड़नेसे पहले ही काट लेनी चाहिये किन्तु बाहरी कोर जोड़ने के बाद ही काटनी अच्छी है।

सिरा, पाटी और कोने सब सरेश से जोड़ और पेंचसे कस दिये जाते हैं। जब खूब सूख जाय तब कोनोंकी बाहरी कोर काटनी चाहिये। आरीसे काटने के बाद रूखानीसे छीलकर लकड़ी चिकनी कर देनी चाहिये। यदि गोल काम पर रंदा करने वाला यंत्र (स्पोकशेव (Spokeshave) हो तो इससे कोनों को चिकनाया जा सकता है। पेंच सब पेंदीकी ओरसे कसे जाय, परन्तु उनके कसने के पहले छेदोंके सिरों को इस प्रकार सूच्याकार कर देना चाहिये कि पेंदी सपाट बैठ जाय। अन्तमें समूची तश्तरी को खुरचनी (स्क्रेपर Scraper) से खुरच कर और बारीक बालुके कागजसे रगड़कर खूब चिकना कर देना चाहिये।

पॉलिश—यदि पेंदी और चौखटा सब कुछ अच्छी लकड़ी का बना हो तो अच्छा यही होगा कि लकड़ी का रंग न बदला जाय अर्थात् उसे स्टेन Stain न किया जाय केवल अलसी के कच्चे तेल में चिथड़ा तर करके और उसे अच्छी तरह निचोड़ कर ऐसे चिथड़ेसे काम को रगड़ दिया जाय। फिर लकड़ी के रंध्रोंको किसी उचित रंगके पूरक (फिलर filler) से भर दिया जाय और तब उस पर हल्के रंगके चपड़े का पॉलिश कर दिया जाय। (इन क्रियाओं का पूरा विवरण परिषद् से छपे 'लकड़ी पर पॉलिश' नामक पुस्तक में मिलेगा।)

ट्रे की सारी पेंदी में नीचे असली या नकली फलालैन चिपका देना अच्छा है क्योंकि तब इसे पॉलिश किये मेज पर रखनेसे खरोंच पड़ने का डर नहीं रहेगा।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

द्रव कोयला—एक नया द्रव कोयला प्राप्त हुआ है। ६० प्रतिशत तेल मिलाकर जलानेसे यह अकेले कोयले और अकेले तेल दोनोंसे अधिक गर्मी उत्पन्न करता है। आशा है जलयान चलानेमें इसका विशेष उपयोग किया जा सकेगा। इसकी सहायतासे जलयान बहुत दूर तककी यात्रा बिना कोयला लिये कर सकेगा। इससे आग लगनेकी भी कम सम्भावना है क्योंकि जहाजमें इसे पानीकी सतहके नीचे सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि आग लग भी जाय तो पानी से बुझाई जा सकती है।

बिटूमिनस कोयले (Bituminous coal, कोयलेकी एक जाति) को अम्लके संसर्गमें लाया जाता है। अम्ल खनिज पदार्थों तथा राखको कोयलेसे अलग कर देता है। तब इसे फरफुरल (Furfural) में घोला जाता है। फरफुरल एक रासायनिक पदार्थ है जो फार्मके कूड़े, नाजका भूसा तथा छानस से बनाया जाता है।

ऊनी कपड़ा बनाने वालोंको नई खुशखबरी—अभी तक ऊनके रेशों को बुनते समय चिकना करने के लिये जैतूनका तेल काममें लाया जाता था किन्तु यूरोपीय महायुद्ध के कारण जैतूनका तेल आना बन्द हो गया है। इस कारण बुनने वालोंको कुछ परेशानी हो गई थी। किन्तु अब मालूम हुआ कि मिट्टीका तेल और गोलेका तेल मिलाकर लगाने से और भी अच्छा कार्य होता है।

सैनिकों के पत्र कैसे जाते हैं?—पत्र भेजने की 'एयरग्राफ' प्रणाली, जो संसार में एक बिलकुल नई चीज है एक बहुत बड़ा आविष्कार है। कई महीनों से इसका प्रयोग किया जा रहा है। माइक्रो-फोटोग्राफी द्वारा ४,५०० हवाई पत्रोंका वजन १½ हण्डरवेटकी बजाय १ पौंड रह जाता है।

मध्यपूर्वके युद्ध क्षेत्रमें लड़ने वाले सैनिकोंको पत्र लिखने का एक खास प्रकारका कागज दिया जाता है। यह ११ इञ्च लम्बा और ८ इञ्च चौड़ा होता है। इस कागज पर हाथ से लिखे हुए पत्रों की एक छोटेसे फिल्म पर तस्वीर उतार ली जाती है। आकारमें यह फिल्म डाकके टिकटसे आधा होता है।

एक मशीन द्वारा एक घण्टे में २,००० पत्रों की अपने आप तस्वीर उतर जाती है और सारा फिल्म एक रीलपर लिपट जाता है जो वजनमें ६ औंस होती है। इन रीलोंको वायुयान द्वारा बृटेन लाया जाता है जहां इन तस्वीरोंको बढ़ाकर पोस्टकार्ड के आकारका बना लिया जाता है। एक सेकण्डमें एक पत्रका चित्र बढ़कर और छपकर तैयार हो जाता है। इस अद्भुत कार्य

के लिये अमेरिका की बनी एक खास मशीन काम में लायी जाती है। ये पत्र लम्बे-लम्बे कागजोंमें छपकर तैयार होते हैं और प्रत्येकमें १,००० इकट्ठे छपते हैं। बादमें उन्हें काटकर लिफाफोंमें बन्द करके डाकके पत्रोंकी तरह पाने वालोंके पास पहुँचा दिया जाता है।

टिड्डी-दल—अण्डे देनेके बाद मादा टिड्डीका कार्य समाप्त हो जाता है। वह उड़ती है और शीघ्र ही मर जाती है। एक वर्ग गजमें ५० से ७५ अण्डोंके ढेर पाए जाते हैं। इसका यह अर्थ है कि ३६ इञ्चके वर्गमें ५००० से ७५०० तक टिड्डियां उत्पन्न होंगी। इन अण्डोंको नष्ट करनेका यही एक अच्छा उपाय है कि भूमिको गोड़ दिया जाय। एक बार हवा लग जानेसे अण्डोंमें से टिड्डियां नहीं पैदा होतीं।

बोतलों के काँच पर लेबल छापना—कागज पर छपे लेबलोंके स्थान पर अब शीशेके ऊपर ही रङ्गोंसे लेबल बना दिया जाता है। जिस प्रकार और जैसे रंगका लेबल बनाना हो बन सकता है। इस लेबलमें से बोतलमें भरी वस्तु दीखती रहती है। यह लेबल जब चाहो धोकर मिटाया जा सकता है। इससे बोतल सुन्दर भी लगती है और इसके लगाने में आसानी भी अधिक होती है। एक ही लेबल ठीक एक रंगों में सैकड़ों बोतलों पर छापा जा सकता है। जिस प्रकार लीथोग्राफसे एक लेखकी बहुत सी नकलें ली जाती हैं ठीक उसी प्रकार यह मशीन इन लेबलोंको छापती है।

खब्बों को दाहिने हाथ से प्रयत्न नहीं कराना चाहिये—ऐसी कोशिश की जाती है, खासकर लिखनेके लिये कि खब्बे दायें हाथको काममें लायें। किन्तु उन्हें दायें हाथसे काम करनेके लिये बार-बार प्रयत्न करानेका सिद्धान्त ठीक नहीं। मस्तिष्क सम्बन्धी सिद्धान्तके अनुसार जो बच्चा दायें हाथ से काम करता है उसके मस्तिष्क का बांया भाग अधिक उन्नत है और जो बच्चा बायें हाथसे काम करता है उसके मस्तिष्कका दाहिना भाग अधिक उन्नत है। इसलिये यदि खब्बे बच्चे को दाहिने हाथसे लिखना सिखाया जायगा तो उसके मस्तिष्कके बांये भागको-जो कमजोर होगा—काम करना पड़ेगा। इस प्रकार उस बच्चे के सारे स्नायु-मण्डल पर इसका प्रभाव पड़ेगा जो बहुत हानिकारक होगा।

वर्तमानकालका टैलीविजन—पाश्चात्य देशोंमें टैलीविजनमें बहुत उन्नति हुई है। इस उन्नतिमें सबसे मुख्य बात यह हुई है कि इसके चित्र सिनेमाके पर्दे पर डाले जा सकेंगे। इसके द्वारा जो चित्र डाला जायगा वह २० फुट×१५ फुट पर्देको ढक लेगा। जिस यन्त्र द्वारा ये चित्र डाले जायेंगे, वह एक ढोलके समान है। अमेरिकामें तो एक नाटकको इसकी सहायतासे दिखाया भी जा चुका है।

इसके अतिरिक्त यह प्रयत्न किया जा रहा है कि चित्र में वही रंग हों जो वास्तवमें प्रदर्शित वस्तुओंके प्राकृतिक रंग हैं। यदि यह प्रयोग सफल हुआ तो एक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा और सिनेमाका सौंदर्य और अधिक बढ़ जायगा।

मामूली कागजसे स्याही सोख बनाना—यों तो स्याही-सोख सभी तरहके कागजसे बनाये जा सकते हैं पर कुछ मोटा और खुरदरा कागज इस कामके लिये अच्छा होता है। इसके लिये कोई विशेष सामान और परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती। कपड़ा साफ करने वाला थोड़ा सोडा और कुछ पानीसे ही काम चल जाता है। देखा जाता है कि बहुतेरे विद्यार्थी चित्रांकन पुस्तिका (Drawing Copy) पर चित्रांकन कर उसे यों ही फेंक देते हैं। पर वे तनिक परिश्रमसे उसके मोटे कागज से अच्छा स्याही-सोख बना सकते हैं। पहले उन्हें आवश्यकतानुसार छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिये। ५ इंच × ४ इञ्च का टुकड़ा अच्छा हो सकता है। टुकड़े वर्गाकार भी काटे जा सकते हैं। फिर एक कड़ाहीमें पानी भरकर उसमें अन्दाजसे थोड़ा कपड़ा साफ करने वाला सोडा घोल देना चाहिये। फिर कागजके सभी टुकड़ोंको उसमें भली भांति डुबोकर आग पर लगभग आधे घण्टे तक खौलाना चाहिये। फिर दो पतली लकड़ियोंके सहारे उन कागजके टुकड़ों को निकालकर धूपमें खूब सुखा देना चाहिये। कागज निकालते और उन्हें एक दूसरे से अलग करते समय सावधानी रखनी चाहिये जिसमें वे फटने न पावें। पूरी तरह सूख जाने पर वे स्याही-सोख बन जायंगे। बाहरी रूपमें कोई परिवर्तन नहीं होगा पर वे भली भांति स्याही सोखने लग जायंगे।

—o—

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का मुखपत्र

प्रधान सम्पादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी. एस-सी. (एडिन)

सहायक सम्पादक

श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस-सी.

विशेष सम्पादक—डा० श्रीरञ्जन, डी० एस-सी०, डा० रामशरण दास, डी० एस-सी०, श्री श्रीचरण वर्मा, एम० ए०, डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०, स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, श्री रामनिवास राय।

भाग ५५

मेष-कन्या १९९९, अप्रैल-सितम्बर १९४२.

अनुक्रमणिका

आयुर्वेद एवं चिकित्सा

उद्योग और कला-कौशल

कृषि-शास्त्र

छाया चित्रण (फोटोग्राफी)

ज्योतिष

प्राणि विद्या

बाग़बानी

भौतिक विज्ञान

रसायन

विविध

विकासवाद

५५	अप्रैल, १९४२ मेषार्क, सं० १९९९ वि०	पूर्ण संख्या ३२५
(य ३) रु०		संख्या १

प्रयाग
की
विज्ञान-परिषद्
का
मुख-पत्र
जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान
भी
सम्मिलित है।

एनलार्ज करने
का
लेख पृष्ठ ३९
पर पढ़ें।

स्वयं फोकस होने वाला एनलार्जर

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्द भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्ध बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबंध सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस अकाली मार्किट अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५५ | अप्रैल, सन् १९४२ मेषार्क, संवत् १९९९ विक्रमी | संख्या १

नवीन भौतिक दृष्टि-कोण

(सीमित सापेक्षवाद)

लेo—श्री देवेन्द्र शर्मा

मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

[मेघदूत ११०]

कालिदास ने न जाने किस भावावेश में यक्ष के मुँहसे ये शब्द कहलवा दिये। कविका कार्य प्रयोग करके सत्य प्रतिपादन करना नहीं, वह बालूकी भीत पर पक्के राजप्रसाद खड़े कर सकता है। 'कैसे ?' इस का उत्तर दिये बिना ही (उसको यह विचारने का न समय है और न अभ्यास ही) वह सत्य का प्रतिपादन करता है, बहुधा अनजाने ही, और यही वह दार्शनिक तथा वैज्ञानिकसे भिन्न है। उसकी उक्ति त्रुटिपूर्ण हो सकती है क्योंकि दृष्टिकोणोंमें अन्तर है। निमिषमात्रमें ही चार मास बीत सकते हैं यह एक विचित्र एवं विरोधाभासात्मक कथन प्रतीत होता है, और कदाचित ४० वर्ष पूर्वका वैज्ञानिक इसे अन्तिम श्रेणी का पागलपन कहकर छोड़ देता। परन्तु अब दृष्टिकोणमें बहुत परिवर्तन हो गया है, और यदि वैज्ञानिक क्षमा करे तो संसार में भी—एक महायुद्ध समाप्त हो गया और दूसरा पूर्ण विकास पर है।

व्योम, काल और पदार्थके विषयमें जन साधारणकी धारा प्रायः अस्पष्ट होती है। यदि मैं साधारण दृष्टि कोणसे देखनेमें गलत नहीं तो व्योमके साथ एक भ्रान्त, शून्यका ध्यान आता है जिसमें यूक्लिडका रेखागणित तथा न्यूटनके गति सम्बन्धी नियम ठीक बैठते हैं। कालकी उपमा प्रायः सरिता से दी जाती है जो अवलोकक की उपेक्षा करती हुई निरन्तर बहती है। इस विषयमें प्राचीन भौतिकज्ञ भी कोई भिन्न धारणा नहीं रखता था। पदार्थका ध्यान आते ही कोई मूर्त (संहत) वस्तु हमारे मस्तिष्कमें टपक पड़ती है।

जहां तक साधारण सांसारिक कार्योंका प्रश्न है यह धारणा ठीक ही है। समयका माप हम दो प्रकार करते हैं—एक मानसिक समय और दूसरा घड़ी आदि यन्त्रोंसे नापा हुआ, जिसे

एक खास नियन्त्रणके साथ हम भौतिक कह सकते हैं। मानसिक तथा भौतिक समय प्रायः भिन्न होते हैं। जैसा अभी पण्डित जवाहरलाल नेहरूने जेलसे छूटने पर कहा था, 'जेलमें रहने वालेके लिये समय रुका हुआ सा है, बाहर निकलने पर वह दुनियाको वहीं देखनेकी उम्मीद करता है जहां छोड़ आया था; पर वह बहुत आगे बढ़ चुकी होती है......' मानसिक समय प्रायः हमको धोखा देता है, तथापि उसको हम नितान्त झूठा नहीं कह सकते। जीवनमें उसका अपना महत्त्व है। नेहरूजीके ही शब्दों में, 'जिस समय में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई उसका समय की गणनामें कोई स्थान नहीं।' भौतिक जगतमें भी हम मानसिक क्रियाओंकी सर्वथा अवहेलना नहीं कर सकते, क्योंकि मस्तिष्ककी सहायताके बिना पार्थिव जगत्का ज्ञान प्राप्त करना सन्देह-जनक ही नहीं, असम्भव है। यन्त्र निरपेक्ष नहीं, वे केवल हमारी ज्ञानेन्द्रियोंके सहायक होकर निजी समीकरण कम कर देते हैं।

अभी हमने मानसिक कालमें सापेक्ष की कुछ विवेचना की। प्रश्न उठता है, 'क्या भौतिक कालमें भी सापेक्ष है?' यद्यपि यह विचार ही क्रान्तिमय प्रतीत होता है, पर अब जगत्की समस्त घटनाओंको सापेक्षिक कहा जाता है। उसमें केवल क्या है? यह विवादास्पद विषय है और अभी लानेकी आवश्यकता नहीं। पहले देखें सापेक्षवाद कहां ले जाता है; बहुत सम्भव है उसकी अन्तिम सीढ़ी ही केवल हो।

मैक्सवैल, फैरेडे और हर्ट्ज के अनुसन्धानों के फल स्वरूप प्रकाश-उर्मियों तथा विद्युत्-चुम्बकीय-तरङ्गों की समानता सिद्ध हो गई। हम प्रतिदिन देखते हैं कि तरङ्गोंकी गतिके लिये किसी माध्यमकी आवश्यकता है, यथा जल तरङ्गोंके लिये पानी और ध्वनिके प्रसारके लिये वायु। जहां तक प्रत्येक नैसर्गिक क्रियाकी प्रतिमा बनानेका प्रश्न है उक्त अनुसन्धानोंके समयको यन्त्रकारों का युग कहा जा सकता है। फिर प्रकाश आदिका गमन शून्यमें किस भांति होता है? एक सर्वव्यापी, भाररहित तरलकी रचना हुई, यह कहें कि उसका अस्तित्व मानकर वैज्ञानिक पण्डितों ने 'ईथर' नामसे उसका नामकरण संस्कार कर दिया। परन्तु भिन्न भिन्न घटनाओं की व्याख्या करनेके लिये उस ईथरको भिन्न-भिन्न गुणोंसे विभूषित करना पड़ा जो प्रायः एक दूसरे का विरोध करते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि जितने प्रकार के प्राकृतिक दृग्विषय हैं करीब-करीब उतनेही ईथर प्रगट हो गए। यह विज्ञानकी आत्माके सर्वथा प्रतिकूल है—एक ही जातिके परन्तु आपसमें भिन्न मनुष्योंके अस्तित्वके लिये आवश्यक है कि वे एक ही रज्जु (यदि सङ्गठनके लिये इसकी जरूरत है) तथा एक ही नियम से बंध कर रहें। यदि सब दृग्विषयों को रहना था तो बहुतसे ईथर नहीं रह सकते थे। सापेक्षवाद ने एकको भी अनावश्यक समझा।

माइकेल्सन-मौर्ले का प्रयोग—प्रश्न है-गङ्गामें बहाव के साथ और वापस नौका ले जाने में अधिक समय लगेगा अथवा उतने ही व्यवधानके दूसरी पारके एक बिन्दु तक जाने और आने में?

यदि नौका का वेग ५ मील प्रति घण्टा और गङ्गा का ३ मील प्रति घण्टा हो तो धाराके साथ एक मील जाने और उतना ही वापस आनेमें $\frac{१}{८} + \frac{१}{२}$ घण्टा लगेगा, अर्थात् $\frac{५}{८}$ घण्टा

दूसरी दशा में नाविक को क से १ मील दूरी पर सामने एक स्थान ख पर पहुंचने के लिये आवश्यक है कि वह अपना ध्येय ठीक सामने ख पर न रखकर गंगाके बहावके विरुद्ध ऊपर की ओर स्थान ग पर रक्खे, क ख ग एक समकोण बन जायगा
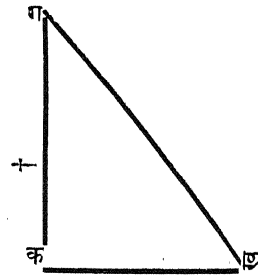
जहां क ग : ग ख : : ५ : ३। अतः स्थिर पानीमें नौका को क ग दूरी तय करनी होगी। यदि क ख १ मील हो तो सम-कोण—त्रिभुजके गुणोंसे क ग = $\frac{५}{४}$, जिस दूरीको तय करनेमें $\frac{१}{४}$ घण्टा लगेगा। यह स्पष्ट है कि वापस आने में भी इतना ही समय लगा। इस प्रकार कुल समय $\frac{२}{४}$ घण्टा हुआ।

धाराके साथ आने और जाने का समय पार आने जाने के समयसे $\frac{५}{८} : \frac{४}{८}$, अर्थात् ५ : ४ के अनुपात में अधिक है; या दूसरे शब्दों में —

$$\frac{१}{\sqrt{१-\left(\frac{३}{५}\right)^{२}}}$$

यदि दोनों दशाओं में आने जाने के समयों में कोई अन्तर नहीं तो एक कठिन समस्या खड़ी हो जाती है। यदि समय-मापकमें कोई दोष न हो तो हम यही कह सकते हैं कि प्रवाह की दिशामें मार्गमें कुछ सङ्कोच हो गया है—बाह्य दृष्टिसे एक क्रांतिकारी और सम्भवतः एक सीमा तक असङ्गत विचार! परन्तु प्रायः हमको विचार परिवर्तन करना पड़ता है। विज्ञान रूढ़िवादमें विश्वास नहीं रख सकता। जहां सिद्धान्त प्रयोगके प्रतिकूल जाता है वहां वह दोष पूर्ण है और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। आजसे प्रायः ४० वर्ष पूर्व वैज्ञानिक का दृष्टि कोण जनसाधारण से बहुत भिन्न न था। न्यूटनके व्यावहारिक ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त अनापवाद सत्य थे। मानव अनुभव बहुत सीमित होनेके कारण उसके सिद्धान्त भी सीमित हैं और नए प्रयोगके फल स्वरूप उसमें अन्तर करने होते हैं। आज जो पूर्ण सत्य प्रतीत होता है कलही नितान्त भ्रम सिद्ध हो सकता है।

सन् १८८७ में अमरीकामें माइकेल्सन और मौर्लेने प्रकाश नौकाकी सहायतासे ईथर प्रवाह जाननेका प्रयत्न किया। प्रकाश किरण एक अर्द्ध रजताच्छादित दर्पणके द्वारा दो समकोण मार्गों में विभाजित होकर सरिताके दोनों मार्ग तय करती है (अपने सादृश्यको ध्यानमें रखते हुए)। हम जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक वर्षमें जाती है जिसका अर्थ है प्रायः १८½ मील प्रति सेकण्ड। यदि वह एकाएक रुक जाय तो दोनों प्रकाश-किरणोंसे बनी व्यतिकरण धारियां स्थानान्तरित होंगी, क्योंकि सरिताका प्रवाह नहीं रहा। यद्यपि पृथ्वीकी गतिको रोक देना या बढ़ा देना असम्भव प्रतीत होता है तथापि हमको मिल है सकता—एक उत्तोलक जो पृथ्वीको उठाकर दूसरे मार्गपर कर दे। (A lever to uplift the earth and move it into another course.) उपकरणको ९० अंश के कोणसे घुमा देना पृथ्वीकी गतिको शून्यसे दुगुनी तक कर देने के बराबर है। किन्तु प्रयोग के फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि दोनों दिशाओंमें नौका बराबर समय लेती है। हो सकता था कि वर्ष के एक अमुक समय पर पृथ्वीकी गति ईथरकी अपेक्षा शून्य हो; अतः वर्षके विभिन्न भागोंमें प्रयोग दुहराया गया, पर परिणाम वही निराशामय। १९०५ में मौर्ले और मिलरने पुनः यह प्रयोग किया। इस बार उनके यन्त्रकी सूक्ष्मता २ मील प्रति सेकण्डकी गतिको भी मालूम कर लेती थी।

निरपेक्ष गति मालूम करनेका प्रयत्न निष्फल गया। विश्व में कोई निरपेक्ष गति नामक वस्तु नहीं, और यदि है भी तो प्रकृतिने उसका माप मानव शक्तिके परे रक्खा है—कमसे कम अभी वह असमर्थ है। उसके लिये प्रत्येक गति सापेक्षिक है।

प्रकृतिका दुराव तथा सापेक्षवाद—क्या हम जान सकते हैं कि प्रकृतिने हमारे इतने परिमार्जित यन्त्रों को भुलावेमें डालकर अपने रहस्यों को किस प्रकार छिपाकर रक्खा? मूक एवं निर्जीव प्रकृति सृष्टिकी सर्वोत्कृष्ट कृति, मानव मस्तिष्क को धोखा देने लगी? यह दुराव ही इस प्रश्न पर प्रकाश डालता है और हम किसी सीमा तक चोरका पता लगानेमें सफल हुए हैं।

माइकेल्सन एवं मौर्लेके प्रयोगके शून्यफलकी व्याख्या करने के लिये यह प्रतिपादित किया गया कि प्रत्येक वस्तु गतिकी दिशामें छोटी हो जाती है। इस सङ्कोचके कारण लम्बाईकी प्रत्येक इकाई $\sqrt{१ - ब^२/स^२}$ रह जाती है (ब = वस्तु की गति और स = प्रकाश की गति)। यह सङ्कोच लॉरेन्ट्ज फिजजैराल्ड—सङ्कोचके नाम से प्रसिद्ध है और, जैसा हम देख सकते हैं, माइकेल्सन-मौर्ले प्रयोग की सफलता पूर्वक व्याख्या कर देता है। परन्तु जब तक कि १९०५ में आइन्स्टाइन ने अपना सीमित सापेक्षवादका सिद्धान्त न दिया यह सङ्कोच एक समस्या रही। इस सिद्धान्तमें सङ्कोच द्रव्यके एक प्राकृतिक गुणके रूपमें आता है। यहां सिद्धान्तके गणितमें जाना सम्भव न होगा, परन्तु यह देखना कठिन नहीं कि सङ्कोच केवल काल्पनिक नहीं। पदार्थके कणोंको एक साथ रखनेमें वैद्युत् चुम्बकीय बल काम करते हैं और उनकी स्थिति ईथर में है। जब गति होगी तो आवश्यक है कि इन बलों का पुनः व्यवस्थान हो जिससे गतिकी दिशामें आकार-भेद होने की प्रत्येक सम्भावना है।

सीमित सापेक्षवाद * के दो मूल आधार—

(१) भौतिक माप से किन्हीं दो नियामक पद्धतियों में जिनमें सापेक्षिक समान गति है कोई वास्तविक भेद मालूम करना असम्भव है। और (२) प्रकाशकी गति सब दिशाओं तथा उन सब नियामक पद्धतियोंमें जिनमें पारस्परिक सापेक्षिक समान गति है स्थायी रहती है।

* यहां हम केवल समान गतिके लिये ही सिद्धान्तका विवेचन कर रहे हैं—अतः सीमित बादमें आइन्स्टाइनने वेगान्तरित गतिको ध्यानमें रखते हुए १९१६ में सापेक्षवाद दिया।

गणितज्ञ कुछ देर जन साधारण को भयानक लगने वाले उन संकेतोंके साथ खेलकर हमको उनके फलोंको देता है जिन्होंने एक नए युगकी रचना कर दी है। यथा, गतिकी दिशामें सङ्कोच, वेगके बढ़नेके साथ पदार्थ की मात्राका बढ़ना और एक चलते हुए अवलोकककेे लिये समयका धीरे धीरे चलना। इस प्रकार वेग व से चलने वाली स्थिर-मात्रा म॰ की वस्तु की मात्रा $म_० / \sqrt{१ - व^२/स^२}$ हो जायगी और उसी गतिसे चलने वाले के लिये वह कालावधि जो स्थिर अवलोकककेे लिये क है, होगी।

$$क = \frac{१}{\sqrt{१ - व^२/स^२}} (क - व य/स^२)$$

इस प्रकार एक स्थिर-अवलोकककेे लिये जो समय है वह चलते हुएके लिये नहीं। उस नियामक पद्धति में जिसमें हम स्थिर हैं जो समयका माप है उसे हम सुविधाके लिये सम्यक् समय कहते हैं—परन्तु अन्य किसी दृष्टिसे वह सम्यक् नहीं।

बहुत साधारणसा प्रश्न है कि अब तक ये जादूके से देश की बातें हमसे किस प्रकार छिपी रहीं। इसके दो कारण हैं। प्रथम जैसा हम देख आए हैं प्रकृतिने अपनी समस्त क्रियाओंको ऐसा छिपा रक्खा है कि हमारे इतने सूक्ष्मदर्शक यन्त्र भी प्रायः निष्फल होते हैं। दूसरा कारण है इन अन्तरों का अति सूक्ष्म होना। एक गज यदि १६१००० मील प्रति सेकण्डके वेगसे लम्बाईकी दिशामें चले तो एक स्थिर-दर्शक के लिये उसकी लम्बाई केवल आधा गज रह जायगी। पर क्या साधारणतया यह वेग सम्भव है? हो सकता है किसी युगान्तरमें जब जामवंत ने बढ़ते हुए प्रभु की

'उभय घड़ी महँ दीन्ह सात प्रदच्छिन धाइ'

उसकी गति इस श्रेणी की रही हो! परन्तु हमको स्मरण रहे कि रिच्छराज को अपने आकार में कोई भेद दृष्टि न आया होगा। क्योंकि साथमें उसकी आंखकी पुतली, नेत्रान्तपटल आदि अवयवोंमें भी अन्तर होना अनिवार्य था। देखने वालोंने कहा होगा कि उसकी पीठ और पेट निकट आ गए हैं तथा उसी दिशामें उसकी चौड़ाई घट गई है। उसकी मात्रा बढ़ गई होगी और समय की गति मन्द। बहुत सम्भव है जो उसके लिये 'उभय घड़ी' रहे हों जन साधारणके लिये महीने अथवा वर्ष हों और बहुतसे बालक वृद्ध होकर यह संसार भी छोड़ गये हों। यही नहीं हम और आगे जा सकते हैं, क्योंकि $\sqrt{१ - व^२/स^२}$ को व बढ़ाकर चाहे जितना छोटा किया जा सकता है, यहां तक कि जब व=स, वह शून्य हो जाता है। इस प्रकार प्रकाश वेगसे चलने वालेके लिये समय स्तब्ध हो खड़ा होजायगा, उसकी मात्रा अपरिमित होजायगी और गतिकी दिशामें माप शून्य वह द्विधाविस्तृत जीव संसारके लिये विचित्र होगा परन्तु स्वयं इसका कुछ अनुभव न करेगा। उसके लिये असंख्य युग निमिष मात्र होंगे। यदि यक्ष अपनी प्रेयसी को यह सूत्र बता देता तो वह चार मास ही क्या चार युग भी सुगमतासे पलक बन्द करते करते बिता देती, तथा स्वयं भी विलाप न करता,

चाहतु भारो रैन हू छिन समान कटि जाय।'

मालूम होता है जब कागभुसुण्ड मुनि समस्त विश्वमें उड़े पर बालक राम की भुजाने उनका पीछा न छोड़ा तब उनका वेग बहुत रहा होगा क्योंकि—

मूँदेउ नयन त्रसित जब भयऊँ,
पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ।

अस्तु, इन उदाहरणोंको उसी सीमा तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखनेकी आवश्यकता है जहां तक वे एक सिद्धान्तको समझने में सहायक हों, आगे जाना दुर्गम और कण्टकाकीर्ण पथ है।

सापेक्षवादके कुछ परिणाम—साधारणतया सापेक्षवादके अनुसार लम्बाई, मात्रा आदिमें जो अन्तर होते हैं वे न के बराबर हैं। पृथ्वी सूर्यके चारों ओर प्रायः १८½ मील प्रति सेकण्डके वेगसे जाती है जिससे उसके ८००० मीलका व्यास गतिकी दिशामें ढाई इञ्च कम हो जाता है। इसी प्रकार एक डेढ़ हजार मनका आधुनिक वायुयान जो २०० मील प्रति घंटा के वेगसे चलता है, मात्रामें आधी छटांकका प्रायः एक लाखवां भाग बढ़ता है। परन्तु ऋणाणु जिनका वेग प्रकाश-वेगकी श्रेणी का है अनुपातमें मात्रामें बहुत बढ़ जाते हैं; बुकेरर (१६०६) के प्रयोगोंने यह परिमाणात्मक रूपसे भी दिखा दिया है।

सीमित-सापेक्षवादका एक और परिणाम, जिसका हमने अभी उल्लेख नहीं किया, भेदमय विश्वमें एक अभेद दिखानेमें यथेष्ट सहायक हुआ है। हम देख आए हैं कि गति-वृद्धिके साथ मात्रा-वृद्धि भी होती है जिसके फलस्वरूप वस्तुकी गतिज शक्ति में भी वृद्धि होगी। यहां पदार्थ और शक्ति बहुत समीप आ जाते हैं तथा सापेक्षवादकी दृष्टिसे एक दूसरेमें परिवर्तनशील हैं। एक वस्तु जिसकी स्थिर-मात्रा म॰ ग्राम है पूर्ण रूपेण शक्तिमें परिवर्तित होने पर $म_० स^२$ डाइन शक्ति देगी, जिसे हम मात्रा

शक्ति कह सकते हैं। इसका अनुमान लगानेके लिये हम देखते हैं कि एक मजदूर अपने सम्पूर्ण जीवन में जो शक्ति काम में लाता है उसकी मात्रा अर्द्ध मिलीग्राम (एक तोले का दस हजारवां भाग) से भी कम है।

मात्राके शक्तिमें परिरिग्त होनेकी क्रियाको देखनेके लिये हमको परमाणु और उसके पिण्ड में जाने की आवश्यकता है। चिन्ताकी बात नहीं, अति सूक्ष्म होनेके लिये हमको प्रकाश-वेग से नहीं चलना होगा क्योंकि उससे तो एक ही विस्तार शून्य होगा। सूक्ष्म-दृष्टिका उपयोग ही यथेष्ट है। वैज्ञानिकने परमाणुको ही नहीं उसके अवयवोंको भी नाप-तोल रक्खा है। यहां उस स्केल अथवा तुला के विषय में सविस्तार लिखनेकी आवश्यकता नहीं। अलफा-कण सबसे दृढ़ परमाणु पिण्ड माना गया है। यह रेडियमधर्मी पदार्थोंके पिण्डोंसे निकलता है और हीलियम गैसका परमाणु-पिण्ड है। यदि हम मानें कि यह दो धनकणों (प्रोटोन) और दो उदासीनकणों (न्यूट्रोन) का बना है तो प्रश्न होता है कि इन चारों कणोंको बांधनेकी शक्ति कहांसे आई। पर हम देखते हैं कि इन चार कणोंकी मात्रा एक अलफा-कणकी मात्रासे अधिक है, तथा यह अन्तर ०·०३०५ परमाणु-मात्रा एकाङ्क * है जिसका अर्थ है २७·९६×१०^{६} ऋणाणु-वोल्ट † । इसी प्रकार डाइप्लोन (भारी हाइड्रोजन) का पिण्ड एक धनकण और एक उदासीन-कणका बना होता है। गामा-किरण जिनकी शक्ति २·६२×१०^{६} ऋणाणु-वोल्ट है इसको विभाजित कर देती हैं, परन्तु वे जिनकी शक्ति १·८×१०^{६} ऋणाणु-वोल्ट है असमर्थ हैं। इससे प्रतीत होता है कि दोनों कण प्रायः २×१०^{६} ऋणाणु-वोल्ट की शक्ति से बंधे हुए हैं, जिस निर्णय पर हम धनकण एवं उदासीनकण की मात्रा तथा डाइप्लोन-परमाणुकी मात्राके अन्तरसे पहुंचते हैं।

* एक परमाणु-मात्रा = १·६७×१०$^{-२४}$ ग्राम

† एक ऋणाणु के एक वोल्ट के विभवान्तर में गिरनेमें जो शक्ति काम आती है उसे एक ऋणाणु-वोल्ट कहते हैं।

मात्राके शक्ति में परिवर्तित होने का चित्ताकर्षक उदाहरण नक्षत्रादि से शक्तिका विकरण है। सूर्य प्रति मिनट दो अरब २५ करोड़ टन शक्ति शून्यमें बखेर देता है। बेथे की गणनाके अनुसार इस प्रकारकी मुक्तहस्तता (सम्भवतः यह कोई दोष नहीं) होते हुए भी नक्षत्रोंकी मध्यमान आयु १००,०००,०००,००० वर्षकी श्रेणीकी होती है, अतः हमको भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं। महाभारत के प्राचीन कालसे अब तक सूर्यकी मात्रा पृथ्वीके दस सहस्रवें भागसे अधिक कम नहीं हुई। और इसके पूर्व कि इस आगके गोले की समस्त हाइड्रोजन जल कर राख (हीलियम) हो जाय वह एक छोटेसे ग्रहके समान ८२५ ग्रह शून्यमें विकिरित कर देगा।

यही नहीं कि पदार्थ शक्तिमें परिवर्तित होता हो। उल्टी क्रिया भी देखनेमें आई है। सबसे पहले ऐण्डरसनने बहुत शक्तिशाली विश्व-किरणों को ऋणाणु-धनाणु युग्म (electron-positron pair) में परिवर्तित होते देखा। भौतिक विज्ञानसे भली भांति परिचित पाठक जानते हैं कि आविष्ट कणों पर वाष्प सुगमतासे द्रवीभूत हो जाती है, यहां तक कि उनके अणु होने पर भी यह सम्भव हो सकता है। जब शक्तिशाली किरणें अथवा कण एक घन-भवन (cloud chamber) पर पड़ती हैं तो वे अणु एवं परमाणुओंसे ऋणाणु निकाल कर उन्हें आविष्ट कर देती हैं। भवनमें वाष्पका आयतन बढ़ाने पर इन आविष्ट कणों पर द्रवीभवन होनेके कारण वे पतले मार्गों के रूपमें दिखाई देते हैं। इस सरल यन्त्रकी अधिक परिपक्व अवस्थासे ऋणाणु-धनाणु मार्गोंका सहसा किरणोंसे प्रकट होना हमारे अनुमानका यथेष्ट प्रमाण है। यहां उपकरणका सविस्तार वर्णन करना असङ्गत होगा।

हम देखते हैं कि आजसे ४० वर्ष पूर्वके पदार्थका नित्यताम्र और शक्त्यच्युतावाद—दो पृथक् सिद्धान्त—एक हो जाते हैं। पदार्थ तथा शक्ति एक दूसरेमें परिवर्तित होते हैं, पर उनका विनाश नहीं होता, वे एक ही अस्तित्वके दो रूप हैं।

भूखों मरना

[ले० श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम. ए. बी. एस-सी.]

स्वास्थ्य उन सब शारीरिक कार्यों पर निर्भर है जिनमें शरीरकी वृद्धि, शरीर रक्षा, और सारे शरीरकी या शरीर के अंगों की कमियों की पूर्ति होती है।

किस प्रकार ये कार्य हमारे शरीर में होते हैं, यह जानने के लिये हमें शरीर की उस अवस्था की परीक्षा करनी चाहिये जब कि शरीर अपना कार्य करनेके लिये अपने अन्दर जमा भोजन पर ही निर्भर रहता है। यह स्थिति उपवासमें होती है।

उपवास या भूखका मतलब यह है कि शरीरके लिये जो पदार्थ आवश्यक हैं वे हमें नहीं मिल रहे हैं। यदि हम पेट भर कर भी भोजन करें तो भी हम भूखे रह सकते हैं। यह कथन सुनने में तो गलत लगता है किन्तु वास्तव में बात ऐसी ही है। यदि किसी आदमीको केवल चीनी और कार्बोहाइड्रेट भोजनके लिये दिये जांय तो उसके शरीर में प्रोटीनकी भूख प्रारम्भ हो जायगी यदि किसी आदमीको पानी या कैल्सियम न दिया जाय तो उसको प्यास या कैल्सियम की भूख प्रारम्भ हो जायगी। पूर्ण उपवास या पूरी तरहसे भूखा रहना तब आरम्भ होता है जब शरीरके लिये जो आवश्यक पदार्थ हैं उन सबकी कमी हो जाती है। इस अर्थसे वह कुत्ता जिसे खानेके लिये न कोई खाना मिलता है और न पीनेके लिये पानी मिलता है वास्तव में भूखों नहीं मरता क्योंकि उसके शरीरके क्षयपूरक तन्तु (metabolized tissue) उसके पेशाब और पसीनेके लिये पर्याप्त जल देते रहते हैं। इसी तरह जब कुत्तेको केवल गोश्त ही दिया जाता है तो भी यह नहीं समझना चाहिये कि वह प्यासा मर रहा है। गोश्तमें स्वयं इतनी पानीकी मात्रा है जो उसके शरीरके व्यर्थ भागको घोल कर पेशाब बना सके। कुत्तों और बिल्लियोंके सारे शरीर पर पसीना बनाने वाली ग्रन्थियां नहीं होतीं। इन जानवरोंके पैरोंके तलुओं पर ही केवल पसीना बनाने वाली ग्रन्थियां होती हैं। आदमीके समान कुत्ते और बिल्ली के सारे शरीर पर पसीना नहीं आता। मनुष्यके शरीर की सारी खालसे पसीनेके रूपमें पानी निकलता रहता है इसलिये आदमीको पानीकी भूख अधिक सताती है और इन जानवरोंको उसके मुकाबले बहुत कम।

पानीकी भूखका प्रयोग करनेके लिये स्ट्रौब नामके एक डाक्टरने कुत्तेको पीसा हुआ सूखा गोश्त और चर्बी खानेको दी, प्रयोगके मध्यमें कुत्तेके तन्तुओंसे पानी खींच लिया जाता था जिससे शरीरमें जो यूरिया पैदा हो उसे घोलनेके लिये पानी न मिल सके। साधारणतया पुट्ठोंसे २०% पानीकी कमी हो जाने पर भी शरीरमें कोई विशेष अप्राकृतिक चिन्ह नहीं उपस्थित होते किन्तु उपरोक्त रीतिसे पानी खींचने पर शरीरमें प्रोटीन के क्षयपूर्ति करण* (metabolism) की बहुत वृद्धि हो गई थी। यह प्रयोग कुत्तेके प्यासके कारण मरनेके दिन तक नहीं चल सका। प्याससे मरनेके पहले ही कुत्तेने भोजनकी उल्टी करनी शुरू कर दी और कई दिन तक जब भी उसे यह भोजन दिया जाता वह उल्टी कर देता। इसका कारण यह था कि उस के शरीरमें पाचक रसों का उत्पन्न होना प्रायः बन्द होगया था। इसके अलावा अंतड़ियोंके मार्ग (in testinal canal) में भी कुछ परिवर्तन हो गया था। जब गोश्तके चूर्णकी उल्टी होने लगी तो कुत्तेका शरीर अपने भीतरके तन्तुओं पर निभर रहने लगा और जैसा पहले बताया गया है कि तन्तुओं पर निर्भर रहने से कुत्ता वास्तविक पानीकी भूखसे नहीं मरता है।

रूबनरने पता लगाया कि एक कबूतर प्यासके कारण चार-पांच दिन तक जीवित रहता है। इसलिये पानीकी प्याससे मृत्यु अन्य प्रकारकी भूखसे अधिक शीघ्रतासे होती है। भूखों मरनेके विषय पर प्रयोग करते समय पानी पीनेको दिया जाता है इसलिये प्यासकी वजहसे उत्पन्न होने वाले शारीरिक परिवर्तनोंका यहां विशेष वर्णन नहीं होगा।

यदि शरीरको आवश्यकता अनुसार जलकी मात्रा मिलती रहती है तो शरीर अपने ही अन्दरकी जमा वसा और प्रोटीनको खाने लगता है। किन्तु कुछ समयके पश्चात् यह कार्य भी समाप्त हो जाता है और मृत्यु हो जाती है। उपवासके दिनोंमें

* शरीरमें या शरीरके सेलोंमें होने वाली वह क्रिया जिसके द्वारा भोजन इस योग्य बन सके कि वह जीवित शरीरका अंग हो सके या जीवन मूल (प्रोटोप्लाज्म) की पूर्ति।

ठंढ लगनेसे मृत्यु अधिक जल्दी होती है; वास्तवमें जिन आदमियोंको हम यह समझते हैं कि ये भूखों रहनेके कारण मरे हैं असलमें वे ठंढ लगनेके कारण हैं।

भूखे रहनेके कारण भूखे पेटमें संचालन क्रिया होने लगती है। संचालन क्रियामें आमाशय सुकड़ने लगता है और इस सुकड़नेके ही कारण पेटमें भूखका दर्द हुआ करता है। इस क्रियाको जाननेके लिये आमाशयिक रस उत्पन्न करने वाले अगों पर प्रयोग करनेके लिये एक लड़केको भूखा रखा गया। भोजनके चौबीस घंटे पश्चात् आमाशयमें दो प्रकारकी संचालन क्रिया का पता चला। (१) लगातार लेकिन धीरे २ संकोचन, प्राय: प्रति ३ मिनटकी गतिसे। (२) आमाशयके उर्ध्वांशमें बहुत तेज संकोचगति जिसके कारण वास्तवमें भूखका दर्द उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकारकी संकोचगति और भूखके दर्दमें एक प्रकार का सम्बन्ध था। जैसे जैसे संकोचगति अधिक बढ़ती है वैसेही भूखका दर्दभी अधिक बढ़ता चला जाता है। जब संकोचगति अधिक होने लगती है तो पैरका झटका † (knee jeek) भी अधिक बढ़ जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि स्नायुमण्डल अधिक उत्तेजित हो जाता है। इस के कारण स्नायुओं में रक्त चापकी विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है।

भूखके स्नायुमण्डल पर इसी प्रभावके कारण उपवासमें मूर्छा आ जाया करती है। भूखके कारण जो संकोचगति उत्पन्न होती है और जिसके कारण भूखका दर्द उत्पन्न होता है वह इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (१) जो तन्तु-जायका बताते हैं उन पर प्रभाव करने वाले पदार्थोंसे-जैसे मीठे, कड़वे, नमकीन, और अम्लीय पदार्थ; (२) कोई भी पदार्थ चबानेसे चाहे वह जायकेदार हो, वदजायके हो या उसमें कुछभी जायका न हो; (३) तमाकू पीनेसे; (४) निगलनेकी क्रिया करनेसे। पानी, काफी, चाय, बियर, शराब और ब्रांडी यदि पी जाय तो भी भूखका दर्द मिट जाता है। इन सब वस्तुओंमें पानी भूखका दर्द दूर करनेमें सबसे कम लाभ करता है।

एक मनुष्यने दो उपवास रखे एक दस दिनका और दूसरा १५ दिनका। इस समयमें भूखके कारण संकोचगति बहुत अधिक और लगातार होती रही। इस समयमें शारीरिक और मस्तिष्क दोनों प्रकारकी शक्तियोंमें कमी हो गई। इसके अतिरिक्त उसका दिमाग भी कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। आमाशयिक रस लगातार बहता रहा, कोढ़ीमें तकलीफ होने लगी थी, मुंहका जायका भी खराब हो गया था। उसके मस्तिष्कमें लगातार खाने और पीनेकी बातोंका ख्याल आता रहता था।

इसके अतिरिक्त तीन आदमियोंने प्रयोग करनेके लिये उपवास रखा। उनमेंसे एक ३० दिन तक कई बार भूखा रहा, दूसरा ४० दिन तक और तीसरा ५० दिन तक। सबसे पहले आदमीने भूखका दर्द दूर करनेके लिये अफीमका उपयोग किया, किन्तु तीसरा आदमी केवल पानी पर ही रहा। उपवास का मनुष्यके अंत:करण पर कैसा प्रभाव होता है, यह हर एक उपवास रखने वाले पर निर्भर होता है। साधारणत: उत्साहकी मात्रा कम हो जाती है, काम करनेकी इच्छा कम हो जाती है, और वास्तवमें काम करनेकी शक्तिमें तो कमी आही जाती है। सबसे पहला व्यक्ति उपवासके दिनोंमें काफी चल फिर लेता था और फिर भी उस पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता था। जैसी गिरावट आदमी में आती है वैसी गिरावट कुत्तों में नहीं आती। शिकार खेलनेसे पहले यदि कई दिन तक कुत्तोंको भूखा रखा जाय तो भी वे शिकारके समय अच्छी तरह दौड़ कर शिकारका पीछा कर सकते हैं। कुत्ता आदमीसे अधिक भूख सह सकता है। एक कुत्ता—जिस पर प्रयोग किया गया था—अठानवें दिनके बाद मरा। इस कुत्तेका वजन १७ किलोग्रामसे घट कर ५°९६ किलोग्राम रह गया था। अर्थात् उसका वजन ६५ प्रतिशत कम हो गया था।

एक कुत्ता इससे भी अधिक दिनोंतक उपवास कर सका। कुत्ता ६ फरवरीसे २ जून अर्थात् ११७ दिन तक भूखा रहा। उपवासके दिनोंमें उसे प्रति दिन ७०० ग्राम पानी पीनेको दिया जाता था। उपवासके इन लम्बे दिनोंमें कुत्तेकी आदत बिलकुल भी खराब नहीं हुई थी। इसका वजन २६·३ किलोग्रामसे घट कर ९·७६ किलोग्राम रह गया था। मृत्युसे पहले पेशाबमें एक दम नाइट्रोजनकी मात्राका बहुत अधिक बढ़ जाना जैसी कोई बात इस कुत्तेके विषयमें नहीं हुई। उपवासके पहले चार दिनोंमें कुत्तेके पेशाबमें नाइट्रोजनकी मात्रा ६·२३ ग्राम थी या ०·२३ ग्राम प्रति किलोग्राम शरीरके वजनके अनुसार थी। उपवासके अन्तिम चार दिनोंमें कुल नाइट्रोजनकी मात्रा २°४४ ग्राम थी या ०·२३ग्राम प्रति किलोग्राम शरीरके वजनके अनुसार थी। इसके पश्चात् गर्मियोंमें कुत्तेको बहुत अच्छी जल वायुमें रखा गया और जाड़ों तक कुत्ते का स्वास्थ्य उपवास रखनेसे पहलेके स्वास्थ्यसे भी अच्छा हो गया था। इसके

पश्चात् इस कुत्तेको फिर १०४ दिन तक भूखा रखा गया। इस उपवासका फल भी हानिकारक नहीं था।

उपवासमें भूखे मरने वाले शारीरिक अवयवों पर तथा शारीरिक क्रिया पर क्या प्रभाव हुआ इसका वर्णन इस प्रकार है—

प्रोटीनके क्षयपूर्ति करण (metabolism) पर प्रभाव—प्रारम्भके दिनोंमें प्रोटीनके क्षयपूर्ति करण पर प्रभाव डालने वाली दो बातें हैं, (१) किसी आदमीके शरीरमें ग्लाई-कोजन कितनी मात्रामें जमा है तथा (२) भूखा रहनेसे पहले उसने कितनी प्रोटीन खाई या अन्य प्रकारसे ग्रहण की थी। पहली बातका प्रभाव देखनेके लिये १५ व्यक्ति (जिनमें अधिक-तर डाक्टरी पढ़ने वाले लड़के थे) साठ घंटों तक भूखे रखे गये। १२ घंटेके पश्चात् उनका पहले दिनका पेशाब इकट्ठा किया गया और उसकी परीक्षा की गई। इसी प्रकार प्रति दिन उनके पेशाबकी परीक्षा की गई, इस परीक्षासे ज्ञात हुआ कि उनमेंसे १२ व्यक्तियोंके दूसरे दिनके पेशाबमें पहले दिनके पेशाब से नाइट्रोजनकी मात्रा अधिक थी। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले दिन जो नाइट्रोजन शरीरसे कम निकली वह शरीरमें स्थित ग्लाइकोजनकी चीनीके कारण थी। शरीरने ग्लाइकोजन से चीनी प्राप्त की जिसके कारण शरीरका प्रोटीन वाला भाग नष्ट न हो सका (प्रोटीनमें नाइट्रोजन अमोनिक एसिडकी उप-स्थितिके कारण रहती है, और प्रोटीनके नष्ट होने पर प्रोटीन की नाइट्रोजन पेशाबके द्वारा शरीरसे निकलती है। इसलिये यदि पेशाबमें नाइट्रोजनकी मात्रा बढ़ती है तो समझना चाहिये कि या तो शरीरकी प्रोटीन अधिक नष्ट हो रही है या खानेमें प्रोटीनका भाग अधिक मिला हुआ है)। प्रयोगोंसे ज्ञात हुआ है कि चीनीके जलनेसे शरीरमें प्रोटीनके जीवनीकरणकी रक्षा होती रहती है। इसलिये शरीरको प्रोटीनकी भूख उपवासके पहले दिनसे प्रारम्भ न हो कर दूसरे दिनसे प्रारम्भ हुई।

ग्लाइकोजनका प्रोटीन पर प्रभाव उपवासके पहले और दूसरे दिन क्या हुआ यह निमांङ्कित प्रयोगके फलोंसे ज्ञात हो सकता है—

उपवासमें ग्लाइकोजनके जीवनीकरणका प्रोटीनके जीवनीरक्षण पर प्रभाव। संख्यायें ग्रामों में हैं।

आदमी का नाम	पहला दिन			दूसरा दिन		
	ग्लाइकोजन (met)		नाइट्रोजन जो निकली	ग्लाइकोजन		नाइट्रोजन जो निकली
	कुल	प्रति किलोग्राम		कुल	प्रति किलोग्राम	
अस० ए० बी०.........	१८१·६	३·१५	५·८४	२९·७	०·५२	११·०४
अस० ए० बी०.........	१३५·३	२·३१	१०·२९	२८·१	०·३१	११·९७
अस० ए० बी०.........	६४·९	१·०९	१२·२४	२३·१	०·३९	१२·४५
अच० सी० के०.........	१६५·६	२·३३	९·३९	४४·७	०·६४	१४·३६
अच० आर० डी०......	३२·८	०·५९	१३·२५	४१·६	०·७६	१३·५३

इससे यह सिद्ध होता है कि जब शरीर में ग्लाइकोजन पर्याप्त मात्रामें रहता है तो प्रोटीन कार्बोहाईड्रेट पदार्थके ओष-जनीकृत होनेके कारण शरीर से अलग नहीं होता; किन्तु जब ग्लाइकोजनकी मात्रा घट जाती है तो शरीरकी प्रोटीन नष्ट होने लगती है। इस सारणीसे यह ज्ञात होता है कि उपवासके पहले दिन भी यदि शरीरमें पर्याप्त मात्रामें ग्लाइकोजन नहीं थी तब भी शरीरके प्रोटीन पदार्थ अधिक मात्रामें नष्ट हुए थे।

(२) भूखा रहने से पहले कितनी प्रोटीन वाला भोजन खाया गया इसका प्रभाव कुत्तों पर विशेष रूपसे देखा गया। एक कुत्तेको जिसका वजन ३५ किलोग्राम था उपवास आरम्भ करनेसे पहले भिन्न-भिन्न मात्रामें गोश्त दिया गया (गोश्त में प्रोटीन विशेष मात्रामें वर्तमान रहती है)। उपवासके दिनों में प्रतिदिन उस कुत्तेके पेशाबकी परीक्षा की गई। इस प्रयोगकी परीक्षाका फल इस प्रकार था:—

उपवाससे पहले दिये गये भिन्न भिन्न भोजनों का मूत्रके यूरिया पर प्रभाव ।

	भिन्न-भिन्न भोजनों के देने पर उपवाससे जितना यूरिया (ग्राम में) प्राप्त हुआ ।				
	गोश्त २५०० ग्राम	गोश्त १८०० ग्राम वसा २५० ग्राम	गोश्त १५०० ग्राम	गोश्त १५०० ग्राम	रोटी
भोजन देने का आखरी दिन......	१८०·८	१३०·४	११०·८	११०·८	२४·७
१ उपवास का दिन.........	६०·१	३७·५	२९·७	२६·५	१९·६
२ ,, ,, ,, ...	२४·९	२३·३	१८·२	१८·६	१५·६
३ ,, ,, ,, ...	१९·१	१६·७	१७·५	१५·७	१४·९
४ ,, ,, ,, ...	१७·३	१४·८	१४·९	१४·९	१३·२
५ ,, ,, ,, ...	१२·३	१२·६	१४·२	१४·८	१२·७
६ ,, ,, ,, ...	१३·३	१२·८	१३·०	१२·८	१३·०
७ ,, ,, ,, ...	१२·५	१२·०	१२·१	१२·९	...
८ ,, ,, ,, ...	१०·१	... ...	१२·९	१२·१	...
९ ,, ,, ,, ...	... ...	... ...	... ...	११·९	...
१० ,, ,, ,, ...	... ...	... ...	... ...	११·४	...

ऊपर दिये गए प्रयोगके फलसे यह मालूम होता है कि उपवासके छठे दिन यूरियाकी मात्रा प्रत्येक भोजनके लिये एक ही थी, अर्थात् १३ ग्राम प्रतिदिन ।

इस प्रयोगके कारण वोइट (voit, जिसने ये प्रयोग किये थे) ने प्रोटीनोंको दो भागोंमें विभाजित किया । एक 'संचालक प्रोटीन' (circulating protein) जिसे शरीर खींच सकता है जो स्नायुओंमें पहुँचती है और बादको जलती है। दूसरी 'आंगिक प्रोटीन' (organized protein) या तन्तुओं में स्थायी रहने वाली प्रोटीन । वोइटने यहभी बताया कि क्षय-पूर्तिकरणके समय रक्तके कोष्ठोंमें जो निर्जीव प्रोटीन रहती है वही अधिक काममें आती है और तन्तुओंमें जमा प्रोटीन बहुत कम काममें आती है । एक प्रयोगमें, शरीरमें कृत्रिम रूपसे खून भरकर रक्तकी मात्रा अधिक कर दी गई थी । खूनसे जो पतला द्रव अलग हो जाता है उसकी प्रोटीन इस क्रिया से नष्ट हो गई और उसके नष्ट होनेके कारण पेशाबमें नाइट्रोजनकी मात्रा अधिक बढ़ गई थी; किन्तु रक्तके लाल कण—जिनमें 'आंगिक प्रोटीन' रहती थी—धीरे-धीरे नष्ट हुए । यदि शरीरमें केवल खून से निकला रक्त द्रव ही प्रविष्ट किया जाय तो इसके अन्दर की प्रोटीन और भी अधिक शीघ्रतासे नष्ट हो जाती है ।

उपवासमें भी 'संचालक प्रोटीन' तन्तुओंके भोजनके लिये काममें आती रहती है ।

उपवास रखने वाले व्यक्तिके पेशाबकी परीक्षा—

यदि आदमीको उपवाससे पहले भोजन ठीक तथा पेट भर कर मिला है तो उपवासके पहले दिनोंमें उसके पेशाबमें नाइट्रोजनकी मात्रा प्रायः समान ही रहती है । इससे यह सिद्ध होता है कि यदि आदमी ने अच्छा खाया पिया हो तो उपवासमें उसका क्षयपूर्ति-करण प्रायः एकसी दशामें रहता है । उस समय शारीरिक कार्यके लिये जितनी शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है, उसका १३ प्रतिशत भाग तो प्रोटीनसे प्राप्त होता है और बाकी ८७ प्रतिशत वसा से ।

यदि उपवास अधिक समय तक रखा जाय तो नाइट्रोजन का निकलना पहले दिनोंकी अपेक्षा बहुत अधिक कम हो जाता है । इस प्रकार एक २४ वर्षकी स्त्रीका १३ से २१ वें उपवास के दिनोंमें ४.१५ ग्राम प्रोटीन नष्ट करनेका हिसाब बैठता है ।

जंकर्स डोर्फ (Junkers dorf) और लिसनफैल्ड ने दो उपवास रखने वाले कलाकारों के नाइट्रोजनके क्षयपूर्ति-करणकी परीक्षा की । ये लोग ३९ दिन तक भूखे रहे और प्रदर्शनार्थ इन दोनोंको शीशेके पिंजड़ेमें रखा गया । दोनों पानी पीते थे, पीपरमेंट खाते थे (जिसमें अम्ल वृद्धि (acidosis) न हो) और सिगरेट पीते रहते थे । इनकी परीक्षाका फल नीचे दिया जाता है ।

भूखे रहनेके दिन	सक्को			मिया		
	वजन किलोग्राम	वजनकी कमी प्रतिशत	पेशाबमें नाइट्रोजन ग्राम	वजन किलोग्राम	वजनकी कमी प्रतिशत	पेशाबमें नाइट्रोजन ग्राम
१................	६५	...	...	५६	...	६-२०
१०................	५७	१२	...	५५	६	७·४१
२०................	५४	१७	३·२४	५३	१०	३·५२
३०................	५२	२०	४·६४	४७	२०	३·३४
३६................	५०	२३	४·८१	४१	३१	३·२३

नाइट्रोजनके अतिरिक्त पेशाबमें गंधक भी अधिक मात्रामें निकलने लगती है। गंधक केवल शरीरकी प्रोटीनके नष्ट होनेके कारण निकलती है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ कि यदि खानेके लिये ऐसे पदार्थ दिये जांय जिनमें प्रोटीन बिलकुल न हो, (जैसे साबूदाना ३०० ग्राम, चीनी १०० ग्राम जैतून का तेल १०० ग्राम) तो भी गंधक अधिक मात्रामें निकलने लगती है। इसका कारण यही है जो उपवासमें होता है अर्थात् मांसपेशियों की प्रोटीन नष्ट होने लगती है और उस प्रोटीनके नष्ट होनेसे ही गंधक भी निकलने लगती है।

इन सबके अतिरिक्त उपवास रखने वाले मनुष्यके पेशाब में फॉसफोरसकी मात्रा भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त कैल्सियम भी अधिक मात्रामें निकलने लगता है। इनकी वृद्धिका कारण हड्डियोंका ह्रास होता है। इन सब चीजों के अलावा उपवास रखने वाले मनुष्यके पेशाबमें एलब्युमन भी निकलती है।

उपवास रखने वाले व्यक्तिके मूत्रका विश्लेषण (वजन ग्राममें दे दिया गया है)।

	उपवास का दिन			
	पहिला	तीसरा	बारहवां	चौदहवां
कुल नाइट्रोजन	१०·५१	१३·७२	८·७७	७·७८
यूरियाकी नाइट्रोजन	८·६६	१२·२६	६·६२	५·६६
अमोनिया ,, ...	०·४०	०·७३	१·०५	०·७३
यूरिक एसिड ,, ...	०·१२	०.०६	०·१७	०·१७
प्युरिन ,, ...	०·०२६	०·०३२	०·०२३	...
क्रियेटिनीन ,, ...	०·४२	०·३४	०·३०	०·२४
क्रियेटिन ,, ...	०·०२	०·०६	०·०६	०·१०
कुल गन्धक ,, ...	०·६१४	०·८०१	०·५७७	०·५३६
कुल फोसफोरिक एसिड	२·२६	२·६८	१·५५	१·२५
क्लोरीन	३·२	१·५	०·१८	०·२४
कैल्सियम	...	०·२१६	...	०·०६६
मैगनेसियम	...	०·१३१	...	०·३७
पोटेशियम	...	१·३३	...	०·५१५
सोडियम	...	०·८६५	...	०·०६६

ऊपर दिये गए प्रयोगसे एक बात और ज्ञात हुई। एक दिन में जितनी नाइट्रोजन निकलती है और जितनी गंधक निकलती है, इन दोनोंमें एक खास अनुपात रहता है—अगर नाइट्रोजन १५ है तो गंधक १ है अर्थात् ये दोनों १५ : १ के अनुपात में रहती हैं। गंधक और नाइट्रोजन का लगभग यही अनुपात शरीरकी मांस-पेशियों में मिलता है। शरीरकी मांस-पेशियों में नाइट्रोजन १४ : गंधक १ के अनुपात में रहती है। पेशाब में पोटेशियमका निकलना यह सिद्ध करता है कि शरीरके तन्तुओं (tissues) का क्षय हो रहा है, क्योंकि इनमें ही पोटेशियम की सबसे अधिक मात्रा होती है। इसके अलावा सोडियमका कम निकलना यह बतलाता है कि उपवासमें शरीर नमकको रोके रख सकता है।

इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि अधिक भूखा रहने पर मूत्र में ऑक्सी ब्यूटिरिक एसिड और एसीटोनकी मात्रा भी अधिक बढ़ जाती है।

किस क्षयपूर्तिकरण से शक्ति उत्पन्न होती है?—

यदि भूखों मरने वाला शरीरावयव (organism) ही हैं इसको बतानेसे पूर्व मनुष्यके गोश्तमें कौनं कौनसे रासायनिक पदार्थ किस मात्रामें रहते हैं, यह जान लेना अच्छा होगा।

एक आदमी ने आत्महत्या कर ली थी। आत्महत्या के दिन उसके गोश्त में जितने रासायनिक पदार्थ मिले वे इस प्रकार थे:—

मनुष्यके ताजे गोश्तका रासायनिक विश्लेषण—

पोटेशियम ३·२०, सोडियम ०·८०, लोहा ०·१५, तापक्रम पर रहे और एकसा ही काम करता रहे तो दिन प्रति दिन उसमें प्रायः एकरूपता ही रहती है अर्थात् उसमें विशेष परिवर्तन नहीं होता।

उपवासके दिनोंमें नाड़ीकी धड़कन कम हो जाती है। एक मनुष्य पर प्रयोग किया गया तो मालूम हुआ कि जिस व्यक्ति की उपवासके प्रथम दिन नाड़ीकी धड़कन ५७ थी वह उपवास के सातवें दिन केवल ५१ रह गई थी।

एक मनुष्य जिसने ३० दिन तक उपवास रखा उसके अनुभवोंसे ज्ञात हुआ कि मस्तिष्ककी क्रियाओंमें कोई विशेष स्थायी परिवर्तन नहीं होता। उपवास के दिनों में सहनशक्ति बहुत कम हो जाती है, किन्तु एक साल पश्चात् प्रयोग करनेसे ज्ञात हुआ कि शरीर या मस्तिष्कमें कोई भी स्थायी खराबी नहीं उत्पन्न हुई थी। उपवास के दिनों में इस मनुष्य को पखाना बिलकुल नहीं हुआ था।

यदि उपवासके बाद पूर्ण खाना मिलने लगे तो शरीरावयव (organism) तुरन्त अपनी पहिली स्थिति पर नहीं आ सकते। इसके लिये एक कुत्ते पर प्रयोग किया गया:—

	कुत्ते का वजन किलोग्राम	कैलोरी प्रति घंटा
प्रथम क्षयपूर्तिकरण साधारण भोजन पर...	६·३	१५·५
उपवास का पन्द्रहवां दिन	७·५	१३·०
दूसरा दिन जब १४·३ कैलोरी भोजन प्रति घंटा दिये जाने लगा।	७·६	१२·६
आठ दिन के बाद, जब २८·६ कैलोरी भोजन प्रति घण्टा दिया जाने लगा।...	८·०	१३·६

इससे यह सिद्ध होता है कि शक्ति-उत्पादक जीवनीकरण खाने पर ही केवल निर्भर नहीं होता, किन्तु इस बात परभी निर्भर होता है कि शरीर उस भोजनमें से कितना भाग ग्रहण करता है।

उपवासका रासायनिक क्षयपूर्तिकरण पर प्रभाव— प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ कि मूत्र में निकलने वाले मैंगनेशियम और नाइट्रोजनमें एक खास अनुपात होता है। ये रासायनिक पदार्थ शरीरके किस अंगके क्षयके कारण आते कैल्शियम ०·७५, मैगनेशियम ०·२१२, फासफोरस ऑक्साइड ४·६८, क्लोरीन ०·७०, गंधक २·०८ इस अनुपात में पदार्थ रहते हैं।

इस आधार पर उपवासके दिनों में गोश्त के रासायनिक पदार्थोंकी मात्रा ज्ञात की जा सकती है। इस मात्रा में और पेशाबमें जितनी मात्रा में रासायनिक पदार्थ वास्तव में निकले उनका मिलान करने पर जो फल प्राप्त हुए, वे इस प्रकार है:—

जितने रासायनिक पदार्थ गोश्तमें होने चाहिये तथा जितने वास्तवमें मूत्रमें निकले। उसके आंकड़े ये हैं

	उपवासके दिन	पोटेशियम	सोडियम	कैल्शियम	मैगनेशियम	फॉसफोरिक ऑक्साइड	क्लोरीन	गंधक
३०८ ग्राम गोश्तमें ...	११	०·९८६	०·२४६	०·०२३	०·०६५	१·४४	०·२२	०·६४
पेशाब में		१·००६	०·१००	०·२२०	·०७२	१·९५	०·३६	०·६२
अन्तर		−०·०२०	+०·१४६	+०·००१	−·००७	−०·५१	−०·१४	+०·०२
२३८ ग्राम गोश्तमें ...	२२	०·७६२	०·१९०	०·०१८	०·८५०	१·११	०·१७	०·५०
पेशाब में		०·६४३	०·०६६	०·२३७	०·०५३	१·६०	०·१८	०·५१
अन्तर		+०·११९	+०·१२४	−०·२१९	०·००३	−०·४९	−०·०१	−०·०१
२०८ ग्राम गोश्तमें ...	३१	०·६६५	०·१६६	०·१६	०·०४४	०·९७	०·१५	०·४३
पेशाब में		०·६०६	०·०५३	०·१३८	०·०५२	१·३८	०·१३	०·४९
अन्तर		+०·०५९	−०·११३	+०·१२२	−०·००८	−०·३५	−०·०२	−०·०६

इससे यह प्रत्यक्ष है कि मूत्रमें जो पोटेशियम मैगनेशियम और गंधक निकलती हैं वे अवश्य ही शरीर के तन्तुओं के नष्ट होने से प्राप्त होती हैं। सोडियम शरीर में ही रुक जाता है। कैल्शियम और फॉसफोरसका निकलना हड्डियों का नष्ट होना प्रदर्शित करता है। लेकिन हड्डियोंमें २४·४८ प्रतिशत कैल्शियम होता है और मैगनेशियम ०·१ प्रतिशत ही होता है इससे यह मानना कि मैगनेशियम भी हड्डियों के क्षय से निकलता है, कुछ ठीक नहीं मालूम होता।

इससे यह स्पष्ट है कि मूत्रमें जो रासायनिक पदार्थ निकलते हैं, उनका अनुपात गोश्त और हड्डियोंमें पाए जाने वाले रासायनिक पदार्थोंके समान ही होता है।

उपवासमें कार्बोहाइड्रेटके क्षयपूर्तिकरण पर प्रभावः—

कुत्तोंमें, लम्बे उपवासके दिनोंमें भी रक्तकी चीनीमें कमी नहीं होती। इसके अतिरिक्त जब बाद को प्रोटीन के क्षयपूर्तिकरणमें उन्नति होती है तो चीनीकी मात्रा और भी अधिक हो जाती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि उपवासके दिनोंमें क्षयपूर्तिकरण प्राय: एक सा ही रहता है। यदि भूखे रखे गए कुत्ते को फ्लोरहीजीनकी सहायतासे मधुमेह (diabetes) से बीमार कर दिया जाय तो उसके शरीर से नाइट्रोजन और चीनी के निकलनेकी मात्राके अनुपातमें कोई अन्तर नहीं आता।

भूखा रहनेके दिनोंमें जानवरके शरीरकी ग्लाइकोजन काफी मात्रामें कम हो जाती है, लेकिन ७३ दिन तक भूखा रहने पर शरीरसे यह पूर्णतया समाप्त नहीं होती। इस समयमें भी शारीरिक परिश्रमसे ग्लाइकोजनकी मात्रा और भी अधिक कम हो जाती है।

जीते रहनेका समय तथा मृत्यु का कारणः—

भूखा रहकर कितने दिनों तक जीवित रहा जा सकता है? यह भूखा रहनेसे पूर्व शरीरमें स्थित वसा पर निर्भर रहता है। यदि उपवासके दिनोंमें प्रतिदिन जानवरके शरीरकी परीक्षा की जाय और मरनेके पश्चात् फिर बचे हुए सारे शरीरकी परीक्षा की जाय तो इससे ज्ञात हो सकता है कि उस जानवरके शरीरमें प्रोटीन और वसाकी कितनी मात्रा थी। जितनी मात्रामें वसा और प्रोटीन मरने के बाद बच जाती हैं तथा जितनी वे उस समय तक नष्ट हो चुकी हैं, यदि इन दोनोंको जोड़ लिया जाय तो यह मालूम हो सकता है कि उस समय वास्तव में शरीर में प्रोटीन और बसा किस मात्रामें थीं। इस प्रकार जोड़कर उपवास के दिनोंके मध्यके दिनोंमेंसे किसी भी दिनकी वसा और प्रोटीन की मात्रा ज्ञात हो सकती है। वॉइट (voit) को एक प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ कि एक खरगोश जिसमें प्रारम्भिक चीनी की मात्रा ७ प्रतिशत थी वह १९ दिन जीवित रहा और उसके शरीरकी ४९ प्रतिशत प्रोटीनका क्षय हो गया था। दूसरा खरगोश जिसके शरीर में चीनी २·३ प्रतिशत की मात्रामें थी

केवल १६ दिन जीवित रहा और उसके शरीरकी ३५ प्रतिशत प्रोटीनका क्षय हो गया। मरनेके पश्चात् इन खरगोशोंके शरीर में वसाकी मात्रा बहुत कम रह गई थी और अन्तिम दिनोंमें तो ये शरीरमें प्रोटीनके जलने पर ही जीवित रहे थे। दूसरे जानवरों में जिनका मृत्युके समय प्रोटीनका क्षय २२ से २६ प्रतिशत था, वसाकी मात्रा अधिक थी। इसके साथ साथ वाइटको यह भी मालूम हुआ कि शरीर में वसाकी मात्रा जितनी अधिक होती है प्रोटीनकी मात्रा उतनी ही कम होती है। जिन जानवरों में प्रोटीन और वसा एक मात्रामें होती हैं उनके शरीरमें उपवासके दिनोंमें प्रोटीन और वसा एकही मात्रामें जलती और नष्ट होती हैं। जब शरीरमें वसा नहीं रहती तो केवल प्रोटीनका ही क्षय होता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीरमें प्रोटीन की मात्रा इस बात पर निर्भर रहती है कि शरीरमें वसाकी कितनी मात्रा है।

शरीरका वजन उस समय बहुत जल्दी कम होने लगता है जब शरीरमें शक्ति केवल प्रोटीनके जलनेसे प्राप्त होती है। जब तक शरीर कार्य करनेके लिये शक्ति वसासे प्राप्त करता है तब तक वजन शीघ्रतासे नहीं कम होता। १०० ग्राम गोश्त की जब प्रोटीन जलाई जाती है तो केवल ८० कैलोरी गर्मी निकलती है, लेकिन जब १०० ग्राम वसा ओषजनीन होती है तो ६३० कैलोरी गर्मी निकलती है। इसलिये शरीरमें जितनी शक्ति १ भाग वसा के नष्ट होने से प्राप्त होती है उतनी ही ११½ भाग गोश्तके क्षय होनेसे प्राप्त होती है।

एक कुत्तेको वसाके भोजन पर रखा गया। उसको वसा की इतनी मात्रा दी गई जिससे उतनी ही शक्ति उत्पन्न हो जितनी शक्ति उस कुत्ते के शरीर के लिये आवश्यक थी। शरीरमें नाइट्रोजनकी मात्रा ३५८·३ ग्रामसे कम होकर केवल १६६ ग्राम रह गई अर्थात् ५३·७ प्रतिशतकी कमी हो गई। इसके अतिरिक्त शरीरमें स्थित १०० ग्राम नाइट्रोजनमें से ०·६ ग्राम नाइट्रोजनके हिसाबसे प्रतिदिन क्षय होती रही। यह नाइट्रोजनका क्षय होना पूर्ति की क्रियाका एक आवश्यक अंग था।

उपवास से मृत्यु होनेका कारण क्या है? उपवाससे शरीरके कोष्ठकोंमें कोई परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि अभी तक उनमें कोई भी रासायनिक परिवर्तन होता हुआ नहीं पाया गया है। तब मृत्युका कारण क्या हो सकता है? ई वॉइट (E. voit) ने जो कारण बताया है वह इस प्रकार है या तो मृत्यु सारे कोष्ठकोंके बेकार हो जानेके कारण होती है या शरीरके उन अंगोंको हानि पहुँचनेके कारण होती है जिन अङ्गोंका जीवित रहनेके लिये स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक है। यदि पहला कारण ठीक है तो मृत्यु तब होनी चाहिये जब प्रोटीनकी एक खास मात्राका क्षय हो चुकता है। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि शरीर में मृत्युके समय प्रोटीनका क्षय २० से ५० प्रतिशत पूर्वावस्थाकी प्रोटीनका पाया जाता है।

जब सैलमन (salmon) मछलीमें जननेन्द्रियोंकी वृद्धि होती है तो रक्तके द्वारा मांसपेशियों का अनावश्यकीय भाग द्रवावस्थामें परिवर्तित होता रहता है। उस समय इस मछलीकी मांसपेशियोंका एक भी कोष्ठक नष्ट नहीं होता, हांलाकि इस क्रियामें ५५ प्रतिशत उनकी प्रोटीनका क्षय हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उपवासके दिनोंमें इतनी प्रोटीनके क्षय होनेके कारण कोष्ठकोंकी मृत्यु होती होगी, कुछ ठीक सा नहीं जँचता। इसके अलावा यदि मृत्यु शरीरके किसी आवश्यक अंगके खराब होनेके कारण होती है तो इसके दो कारण हो सकते हैं या तो इन अंगों को भोजन बहुत कम मिलता है, जिसके कारण ये अपना कार्य सुचारू रूपसे नहीं चला सकते, अथवा वे इतने निर्बल हो जाते हैं कि भोजन होते हुए भी वे कार्य नहीं कर सकते। या ईंधन समाप्त हो जाता है या मशीन ही खराब हो जाती है।

नीचे दी गई संख्यायें शायद इस बातका कुछ उत्तर दे सकें। जिस जानवर में वसाकी मात्रा अधिक होती है उसको पहले रखा गया है और जिसमें कम उसको बाद में।

वसाका प्रोटीनके क्षयपूर्तिकरण पर तथा उपवासमें जीवित रहनेके समय पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

*जानवर	पहला वजन किलोग्राम में	वसाकी मात्रा प्रतिशत में		कितनी कम हुई प्रतिशतमें		भूखसे मरनेके दिनसे कितने दिन पहले
		आरम्भ में	अन्त में	जानवर में	शरीरकी नाईट्रोजन में	
कुत्ता	२०·६४	१६	१२	२८	२२	३०
चिड़िया	१·९५	२६	५	४२	२६	३५
कुत्ता	२३·०५	११	१·७	३४	३५	३८
चिड़िया	१·००	९·१	०·७	३६	३७	१२
खरगोश	१.५१	७·१	०·४	४६	४६	१६
खरगोश	२·५३	६·३	०·५	४४	४६	१६
खरगोश	२·३४	६·३	०·५	४१	४५	१६
चिड़िया	१·८६	२·७	०·७	३४	४	६
खरगोश	२·०८	२·३	०·४	३५	३८	८
खरगोश	२·६६	२·३	०·३	३२	३५	६

पहले दो जानवरों में मृत्यु के समय बहुत अधिक मात्रामें वसा उपस्थित थी। इसके कारण इनके तन्तुओंका क्षय बहुत कम हुआ। वसाकी उपस्थितिके कारण कोष्ठकोंके लिये पर्याप्त भोजनकी मात्रा वर्तमान थी ही। इससे तो यह मालूम होता है कि भूखा रहनेसे मृत्युका कारण शरीरके किसी अंगमें—जिसका कार्य करना शरीरके लिये आवश्यक है—कोई खराबीका होना होगा

प्रोटीनकी कमी—प्रोटीनकी इतनी मात्रा दें जो शरीरकी गर्मीके लिये पूर्ण न हो—तो जानवर अपने शरीरके अन्दरकी वसा पर जीवित रहता है। इस प्रकार दो कुत्तोंको २८ और ३८ दिन तक जीवित रखा गया और उनके शरीरकी नाइट्रोजनमें से केवल १८ और ७ प्रतिशतका ही क्षय हुआ। अन्तमें जाकर उनके शरीरमें शरीरकी वसाका केवल ०·४ से ०·५ प्रतिशत भाग बचा था। इन कुत्तोंके तन्तुओंके कोष्ठकोंमें कोई परिवतन नहीं हुआ था। इस आधार पर वॉइटने कहा कि मृत्युका पहला कारण तो यह है कि शरीरके उन अंगोंमें जिनका जीवित रहनेके लिये होना आवश्यक है कुछ पदार्थों की कमी हो जाती है किन्तु यह दशा इस कारण भी उपस्थित हो सकती है कि इन अंगोंको पूर्ण भोजन नहीं मिलता है।

एक कुत्तेको, जो खूब अच्छा खाया पिया करता और मोटा था, २६ दिन तक भूखा रखा गया। २५ वें दिन कुत्तेमें बहुत कमजोरी आ गई थी और सताइसवें दिन कमजोरी इतनी अधिक बढ़ गई कि उसके मरनेकी सम्भावना होने लगी। इसके बाद एक दिनमें ४०० घन सेंटीमीटर (c. c.) दूध दिया गया। दूधके बाद फिर चार दिन तक लगातार उसको ३०० ग्राम गोश्त प्रतिदिन दिया गया यद्यपि ये मात्रायें कुत्तेके शरीरकी वसाकी क्षय होने वाली मात्रा से काफी कम थीं, लेकिन फिरभी कुत्तेकी शारीरिक शक्तिमें वृद्धि होती गई और उसके शरीरकी प्रोटीन की नाइट्रोजनमें ७·३ ग्रामकी वृद्धि हुई। और इसके बाद वह फिर ६१ दिनके लिये भूखा रहा। दूसरी बारके उपवासमें उसके शरीरकी प्रोटीनकी मात्रा पहले उपवासके दिनोंसे बहुत कम रह गई थी। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ कि यदि खाना शरीरकी आवश्यकतासे कम भी दिया जाता है तो भी शरीर इसमें से थोड़ी वसाको जमा करनेके लिए प्रयत्न करता रहता है। जब शरीरकी सारी वसा समाप्त हो जाती है तब शरीरको गर्मी और शक्ति प्रदान करनेके लिये प्रोटीनका जलना प्रारम्भ होता है, इसमें जो प्रोटीन खाई जाती है वह तो समाप्तहोती ही है उसके साथ साथ शरीरकी जमा प्रोटीन भी नष्ट होने लगती है। इस प्रकार इस निर्णय पर पहुंचे कि भूखा रहनेसे जो मृत्यु होती है उसका कारण स्वयं विषाक्तता (autotoxemia) है। शरीरकी यह दशा गोश्त देने पर ठीक हो जाती है।

* एक एक जानवर का जो दो जगह वर्णन किया गया है वह भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगों के फल हैं।

दो अन्य वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके यह मालूम किया कि यदि लगातार कई बार उपवास रखा जाय तो सबसे पहले उपवासमें प्रोटीनकी सबसे अधिक मात्राका क्षय होता है और दूसरे उपवासों में इससे बहुत कम मात्रामें प्रोटीन क्षय होनेका हिसाब रहता है। इस प्रकार, एक कुत्तेकी, जिसका वजन ३·४ किलोग्राम था, मृत्युकी आशंका १५ दिनके उपवासके बाद ही होने लगी थी और शरीरका वजन ४५·८ प्रतिशतकी मात्रामें घट गया था। इसके बाद कुत्तेको ४७ दिन तक भोजन दे कर पहलेके समान वजन कर दिया गया। इसके बाद उसको फिर भूखा रखा गया। इस बार ३० दिन भूखा रहने पर उसका वजन ४६·६ प्रतिशतकी मात्रामें घटा। पहले उपवासके दिनोंमें उसके शरीरकी नाइट्रोजन २·३ ग्राम प्रतिदिनके हिसाबसे क्षय होती थी, किन्तु दूसरे उपवासमें १·३२ ग्राम प्रतिदिनके हिसाब से नष्ट होती थी।

उपवासका शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर प्रभाव:—

उपवास में सबसे अधिक प्रभाव शरीर के किस अंग पर पड़ता है इसके सम्बन्धमें बहुत सोच विचार किया गया है। बहुत समय हो गया, वॉइटने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया था कि बिल्लीके—जो १३ दिन तक भूखी रही—शरीर के अङ्गोंका इस प्रकार क्षय होता है; मांस पेशियां ३० प्रतिशत और दिल, दिमाग और रीढ़की हड्डी ३ प्रतिशत कम हुई। प्रयोग करनेसे यह ज्ञात हुआ कि उपवासमें सबसे अधिक वजन ग्रंथियोंका घटता है और सबसे कम हड्डियोंका। उपवासमें ग्रंथियों (glands) के कार्यमें बहुत कमी हो जाती है। जब एक व्यक्तिने ३० दिन का उपवास रखा तो आमाशयिक रसका निकलना बिलकुल बंद हो गया था। पित्त मृत्युके दिन तक निकलता रहा, लेकिन इसकी मात्रा भी जैसे जैसे कम भोजनके कारण—यकृत छोटा होता गया—कम होती गई। उपवासमें एक बकरीका दूध धीरे धीरे कम होता गया और पांच दिनके उपवासके बाद बिलकुल बंद हो गया। दूधमें वसाकी प्रतिशत मात्रामें वृद्धि हो गई थी यह वृद्धि रक्त, यकृत तथा अन्य अंगोंमें वसाकी वृद्धिके समान ही थी। शरीरके उपवासित अंग शरीरकी वसाके कोषसे वसाको रक्त सञ्चालनकी क्रिया द्वारा खींच लेते पाये गये। ग्लूकोज (अंगूरोंकी चीनी) तो रक्तमें मरनेके दिन तक मिलती है। यह ग्लूकोज सम्भव है लगातार प्रोटीनके रक्तवारि (plasma) में बनता रहता हो। उपवासमें खूनके रक्त-वारिके संगठनमें प्रोटीन की मात्रामें परिवर्तन होता रहता है। लेकिन यह परिवर्तन बहुत थोड़ा होता है। उपवासमें सबसे मुख्य परिवर्तन तो प्रोटीनकणों (globulim) की मात्राका बढ़ जाना है। इसका कारण तन्तुओंके प्रोटीनकणों का रक्तमें आ जाना बताया गया है। उपवासके दिनोंमें कुत्तों और बिल्लियोंके रक्तमें प्रोटीनकणों की मात्रा बढ़ जाती है, लेकिन खरगोश बैल और घोड़ेमें अलब्युमन-कण (albumuis) बढ़ते हैं। रक्त-रंजक (hemoglobin) और रक्त कणों (corpuscles) में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि उपवासमें रक्त अपने मिश्रित पदार्थोंकी तो नियत मात्रा ही लेता है, लेकिन वसाको सजीव कोषोंके लिये अधिक मात्रामें ले जाता है। जीवित रहनेके लिये सजीव कोषोंको जितना भोजन मिलना चाहिये, इतना तो सजीव कोषोंको प्राय: उपवासमें भी मिलता रहता है। इसलिये भूखका कारण सैलोंकी भूख नहीं कही जा सकती, इसका कारण आमाशयकी नली (intestines) में आमाशयिक-रसकी उपस्थिति है। इसीके कारण आदमी को भोजन खाने की इच्छा होती है।

परिश्रमका प्रभाव:—उपवासके पहले दिनोंमें शारीरिक परिश्रम करनेसे नाइट्रोजनकी मात्रामें एकदम बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है, किन्तु धीरे धीरे दूसरे दिनों में यह मात्रा घटती चली जाती है और फिर शारीरिक परिश्रम करनेका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

एक व्यक्तिके शरीरमें उपवासके दिनोंमें प्रोटीनके क्षयपूर्तिकरणमें कोई वृद्धि नहीं हुई। उपवासका ११ वां दिन उसने बिस्तरे पर लेट कर बिताया। १२ वें दिन एक घण्टा चालीस मिनट तक घोड़ेकी सवारी की, आठ मिनट तक एक लड़के के साथ दौड़ा और शामको कुछ और खेल भी खेला। दिनभरमें वह १६,६०० कदम चला। ११ वें दिन (अर्थात् आराम वाले दिन) उसके मूत्रमें नाइट्रोजनकी मात्रा ७·८८ ग्राम थी; बारहवां दिन (जिस दिन उसने शारीरिक परिश्रम किया था) ७·१६ थी और इसके बाद क्रमश: ३·५०, ५·३३, ५·१४, ५·५ ग्राम प्रतिदिनके हिसाबसे रही। इससे यह सिद्ध होता है कि उसने जो परिश्रम किया। उसका खर्चा वसाके ऊपर पड़ा। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोगोंसे भी ज्ञात हुआ कि उपवासमें कार्य करनेसे प्रोटीनके क्षयपूर्तिकरणमें तो कोई वृद्धि नहीं होती, किन्तु वसाका क्षय बहुत अधिक बढ़ जाता है। यह नीचे दी गई संख्याओंसे भली भांति सिद्ध होता है :—

	दिन	रात्री
	आठ बजे सुबहसे आठ बजे शाम तक	आठ बजे शाम से आठ बजे सुबह तक
दिनमें आराम किया गया...	११६ ग्राम	६४ ग्राम
दिनके ६घंटोंमें काम किया गया...	३१२ ग्राम	७० ग्राम

जिस दिन कार्य किया उस दिन वसाके क्षय होनेकी मात्रा आरामके दिनकी क्षय होनेकी मात्रासे ढाई गुनी अधिक है इससे यह ज्ञात होता है कि यह अधिक मात्रामें जली हुई वसा शारीरिक परिश्रममें व्यय होने वाली शक्ति उत्पन्न करनेके काम में आई। काम वाले दिन रात्रीको वसाकम नष्ट हुई है और काम न करने वाले दिन रात्रीको वसा अधिक नष्ट हुई है इससे यह ज्ञात होता है कि काम वाले दिन रात्रीको नींद बहुत गहरी आई होगी।

दूसरा प्रभाव शरीरसे निकली कार्बनडाइऑक्साइड पर है पांच दिनके उपवासमें प्रति दो घंटामें किस हिसाबसे कार्बन-डाइऑक्साइड निकली यह निम्न लिखित संख्याओंसे ज्ञात हो सकता है।

जिन संख्याओंके नीचे रेखा खींच दी गई हैं वे सोनेके समयमें निकली कार्बन डाइऑक्साइडके लिये समझनी चाहियें—

	दिनका समय				रातका समय	
समय	१०–१२	१२–२	२–४	२–६	६–८	८–१०
कार्बन डाइआक्साइड (ग्राममें)	५४·८	५७·२	५४·१	५७·८	५६·५	६६·४
समय	१०–१२	१२–२	२–४	४–६	६–८	
कार्बन डाइआक्साइड (ग्राममें)	४६·५	३७·५	६९·१	४०·७	६८·६	

इसके अतिरिक्त मूत्रमें भी निद्राके समयमें कम नाइट्रोजन निकली और कार्य करनेके समयमें अधिक।

उपवासका दिन	नाइट्रोजन मूत्रमें ग्रामोंमें	
	दिन	रात्रीं १० बजे रातसे १० बजे सुबह तक
पहला	७·११	४·६३
दूसरा	६·८७	५·८५
तीसरा	६·८२	६·६५
चौथा	७·९१	५·६५
पांचवाँ	६·३६	४·६८

दिन और रात्रीमें क्षयपूर्तिकरणमें अन्तरका कारण शारीरिक परिश्रम ही है। बैठे रहने से भी क्षयपूर्तिकरणमें वृद्धि होती है और खड़े रहनेसे यह और भी अधिक बढ़ जाती है। जब दिनमें कोई बिस्तरे पर बेचैन पड़ा रहता है तब भी यह बढ़ जाता है। आरामकी अवस्थामें भी रोशनीका दृष्टि पटल retina पर पड़नेसे या आवाजके कारण भी क्षयपूर्ति करण बढ़ जाता है।

उपवासके दिनोंमें शरीरका तापक्रम करीब करीब स्वस्थावस्थाके समान ही रहता है। मृत्युसे कुछ दिन पहले तापक्रम भी कम होने लगता है। दिनमें तापक्रमका थोड़ा और कम होना नियमानुसार चलता रहता है। इसके अतिरिक्त शरीरका तापक्रम कार्बन डाइआक्साइडकी मात्रा पर अधिक निर्भर रहता है। यदि शरीरसे अधिक कार्बन डाइ आक्साइड निकलती हो तो तापक्रम अधिक बढ़ जाता है।

यदि दिनमें आदमीसे कोई शारीरिक परिश्रम न लिया जाय तो उसके रात्री और दिनके तापक्रममें कोई अन्तर नहीं पड़ता। शारीरिक परिश्रम न करनेसे तापक्रम ०·६ डिग्री तक कम हो सकता है।

भूखा रहनेसे शरीर पर तथा शरीरके अङ्गों और क्षयपूर्ति करण पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसका वर्णन प्रयोगोंके फल सहित दिया गया है।

अमर-जीवन

[ले०—ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, एम. एस-सी,]

१–उत्पत्ति और विनाशका क्रम–सृष्टि को कायम रखनेके हेतु प्रकृतिमें दो क्रियायें निरंतर हुआ करती हैं, अर्थात् उत्पत्ति और विनाश। जो पदार्थ आज उत्पन्न हुआ है, वह एक-न-एक दिन अवश्य नाशको प्राप्त होगा। यही होते हुए हम आदि-कालसे देखते चले आए हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार हमारा शरीर भी "बनता-बिगड़ता" रहता है। इस जगत्में जो व्यक्ति आज मुट्ठी बांधे आता है, वह दस, बीस, पचास, सौ वर्षमें अवश्य ही हाथ पसारे जायगा।

२–अमर-जीवनका सुख-स्वप्न–ऐसी दशामें इस लेख का शीर्षक बहुतोंको अत्यन्त विस्मयजनक प्रतीत होता होगा। किन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। मनीषीगण बहुत पहलेसे ही इस बातकी घोषणा कर रहे हैं कि 'जीवन सत्य है, जीवन अमर है। मृत्यु इसका लक्ष्य नहीं है।' आज भी अनेकों वैज्ञानिक 'अमर-जीवन' का सुख-स्वप्न देख रहे हैं। उनके मतमें तो मृत्यु एक आकस्मिक घटना है। फ्रांसके एक प्रसिद्ध जीव-तत्त्ववेत्ता का कहना है कि नन्हे नन्हे जीवित कोषोंमें यह विशेषता होती कि वे अनन्त-काल तक जीवित रह सकते हैं। आधुनिक शोध कर्ताओंने भी प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि अनेकों नन्हीं नन्ही जीवित सेलें (कोष) जिनसे हम सबका शरीर बना हुआ है, तब तक जीवित रह सकती हं, जब तक उनके आस-पासकी परिस्थिति (वातावरण) जीवनके उपयुक्त एवं अनुकूल बनी रहती है, अर्थात् जबतक उनके आस-पासका तापक्रम जल्दी जल्दी घटे-बढ़ेगा नहीं अथवा उनके सम्पर्कमें कोई विषैला पदार्थ न आ जायगा, तब तक ये सेलें नवीन सेलोंमें विभाजित होती रहेंगी और ये नवीन सेलें भी उसी भांति बढ़कर औरोंमें विभाजित होती जांयगी। यह क्रम, अनुकूल परिस्थिति में अनन्त-काल तक जारी रह सकता है। उनकी स्वाभाविक मृत्यु कभी नहीं होती. पाश्चुर इन्स्टीट्यूटके डाक्टर मेटालनिकोवका कहना है कि "जीवित कोषोंकी विशेषता अमरता है"।

अब प्रश्न यह है कि क्या अंतमें प्राणीका मरना अनिवार्य है? हम आगे चलकर देखेंगे कि अनेकों प्राणियोंके संबन्धमें यद्यपि मरना जरूरी नहीं है, तथापि मनुष्य जैसे उच्च श्रेणीके प्राणियोंमें मृत्यु अटल है।

३–बेक्टीरियाकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होती–ऐसे प्राणियोंका एक उदाहरण "बेक्टीरिया" है, जिनकी मृत्युसे बिलकुल रक्षा की जा सकती है। बेक्टीरिया नन्हें नन्हें कोष होते हैं। एक कोष (बेक्टीरिया) दो अर्द्धांशोंमें विभाजित होजाता है। कुछ समयके उपरांत प्रत्येक अंश बढ़कर नवीन बेक्टीरिया बन जाते हैं। ये दोनों बेक्टीरिया भोजन करते हैं, बढ़ते और पुनः दो अर्द्धांशोंमें टूट जाते हैं। यह सिलसिला तब तक जारी रहता है, जब तक जलका तापक्रम अथवा उसमें उपस्थित रासायनिक पदार्थ उनके जीवनको हानिकारक सिद्ध नहीं होते, तब तक उनकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होती हां, यदि उनके पोषक घोलमें विष मिला दें अथवा उसका तापक्रम अत्यधिक बढ़ा दें तो निःसंदेह वे मर जांयगे।

४–उनके जीवनका दूसरा पहलू–अब हम इन्हीं प्राणियोंकी जांच पड़ताल दूसरे पहलूसे करेंगे। हम एक जीवित बेक्टीरियाको लेते हैं। यह बेक्टीरिया तो उस बेक्टीरिया का एक अर्द्धांश है, जो कल दो समान भागोंमें विभाजित हुए थे और कल वाला जीवाणु परसों वाले जीवाणुके दो अर्द्धांशोंमेंसे एक था। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि जो बेक्टीरिया आज हमारे सामने है वह उस बेक्टीरियाकी सगी सन्तान है युगों पहले जीवित थे। साथ ही, इसका भी कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि इस बेक्टीरियाके सगे भाई, चचा और चचेरे भाई ही क्यों मरते, यदि उनके आस-पासके असहनीय तापक्रम और हानिकारक पदार्थों में उनका आजकल ही विनाश कर दिया होता? यदि उनका भी वातावरण अनुकूल बना रहता तो कुटुम्ब का कुटुम्ब आगे भी, युगों तक, बार बार विभाजित होकर दुगुन होता रहता।

कुछ जीवाणुओंकी मृत्युका असली कारण–एक समय लोगोंकी यह धारणा थी कि जब किसी कुटुम्ब-विशेषके जीवाणुओंको इस प्रकार विभाजित होते हुए अधिक काल बीत जाता है तो वे शिथिल हो जाते हैं। उनकी विभाजन-क्रिया मंद पड़ जाती है और अंतमें वे मर जाते हैं। किन्तु अब उनकी शिथिलता एवं मृत्यु के असली कारणका पता चल गया है। यथार्थमें उनके मलोत्सर्ग (Excretions) से उनका वाता-

वरण दूषित होकर विषाक्त हो जाता है और इसी कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। यदि उनका वातावरण (पोषक-घोल) इस विषैले पदार्थसे सुरक्षित रक्खा जाय, तो उनकी विभाजन-क्रियामें शिथिलता कदापि न आयेगी। अमरीकाके प्रसिद्ध जीववेत्ता श्री उडरफ महोदयने एक जीवाणुको क्रमशः दस हजार पीढ़ियों तक पाला था। ये जीवाणु (Infusoria) दिनमें दुबारा दो अर्द्धांशोंमें विभाजित होते हैं और उनके पोषणका कार्य लगातार पन्द्रह वर्ष तक जारी रहा। इस कार्यमें एक कुशल व्यक्ति दिनमें दो बार जीवाणुओंके दो अर्द्धांशोंमें से एकको, पोषक-घोलमें से निकाल कर बाहर फेंक देता था ताकि घोलमें उनकी भीड़ न हो जाय।

इस प्रयोगसे लाभ यह हुआ कि पन्द्रह वर्षके अन्तमें भी ये अणु-वीक्षणीय जीवाणु उतने ही चुस्त थे जितने उस अवधि के आरम्भ में। वे अब भी उतनी ही फुरतीसे तैरते थे और पहले ही जैसे ठीक समय पर दो अर्द्धांशोंमें विभाजित होते थे। और यह विश्वास होता था कि आगे भी, जब तक वे उस प्रयोगशालाके विलासयुक्त एवं अनुकूल वातावरणमें रहेंगे, तब तक उनकी उत्पादनशक्ति उतनी ही प्रबल रहेगी और वे उसी तेजीसे बढ़ते रहेंगे।

६—जनन-क्रियाओंमें भेद—अब हमें देखना है कि इन तुच्छ जीवाणुओंके द्विखंडित होने और उच्च श्रेणीके प्राणियों में होने वाली जनन-क्रियामें क्या भेद है। जीवाणु एक-कोषमय प्राणी है। यह दो समान अंशोंमें विभाजित होता है। इनमें से हर एक अंश बढ़ कर फिर पूरा जीवाणु हो जाता है। विलग होने वाला कोष भी पूर्ण हो जाता है; जिससे अलग हुआ है वहभी पूरा हो जाता है। शेष कुछ नहीं रह जाता। उच्च श्रेणीके जीवाणु अनगिनत सेलों (कोषों) के बने होते हैं और उनमेंसे बहुत कम कोष विभाजित होकर नवीन कोषों को उत्पन्न करते हैं। इन प्राणियोंके शरीरके सभी कोष, जीवाणुओंकी भांति सन्तान उत्पन्न करनेके योग्य न होंगे। दोनों श्रेणीके प्राणियोंकी जनन-क्रियामें यही अन्तर है। पूरे जीवाणुसे दो शिशु-प्राणियोंका उदय होता है, किन्तु उच्चश्रेणीके शरीरके निर्माण करने वाले लाखों कोषोंमें थोड़े ही कोष बीज-कोष (germ cells) विभाजित होकर शिशु प्राणीके रूपमें अवतरित होते हैं, इस प्रकार प्राणीके शरीरके अनेकों कोषोंमेंसे इन्हीं बीज-कोषोंका विनाश नहीं होता; अगर होता है, तो शेषके भाग्यमें एक-न एक दिन मरना ही बदा है। किन्तु जब हम मादाके अणुओं अथवा नरके शुक्राणुओंका ध्यानपूर्वक निरीक्षण-परीक्षण करते हैं, तो हम देखते हैं कि उनका और जीवाणुओंका अन्तिम परिणाम प्रायः एक-सा रहता है। हां, इसमें सन्देह नहीं कि उच्च प्राणियोंके इन बीज-कोषोंकी जीवन-लीलामें एक और जटिलताका समावेश हो जाता है।

७—देहकोष और बीजकोष—वह यह कि इनके विभाजन (बढ़ने) से पूर्व मादा-कोष (डिम्बाणु) का नर-कोष (शुक्राणु) से संयोग होना अत्यावश्यक होता है। मादा विशेषके गर्भाशयके अनगिनत डिंब-कोषोंमेंसे कोई भी एक कोष नरके बीज-कोषसे मिल कर दूसरी पीढ़ीका एक नवीन व्यक्ति हो सकता है। जिस समय नवीन व्यक्ति बनाने के हेतु भ्रूण विभाजित होने लगता है, उसी समय कुछ कोष अलग हो जाते हैं; अर्थात् उनसे देह नहीं बनती। उनसे नवीन व्यक्तिके केवल बीज-कोषोंकी उत्पत्ति होती है। माता और पिताके बीज-कोष ज्योंके-त्यों सन्तानमें चले आते हैं। इस भांति हमारे शरीरके देह-कोषोंका तो नाश हो जाता है किन्तु बीज-कोषका नाश नहीं होता; वह तो पीढ़ी दर पीढ़ी धरोहरके रूपमें चला जाता है। हां, यह दूसरी बात है कि सन्तान उत्पन्न होनेसे प्रथम ही कोई व्यक्ति मर जाय। बीज-कोषोंकी यह धारा अनादि कालसे प्रवाहित होती चली आ रही है। इस भांतिके जीवन के अजर-अमर होनेकी बातें कोरी कल्पना ही नहीं हैं।

८—बीज-कोष जीवाणुओंकी भांति अमर हैं—ऊपरके विवेचनसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारे शरीरके वे बीज-कोष-जिन्हें सन्तानोत्पादनमें भाग लेनेका सुअवसर प्राप्त होता है, जीवाणुओंकी भांति सम्भवतः अजर-अमर हैं और शेष कोषों (देह-कोषों) के भाग्यमें "प्रत्यक्षतः" मरना अवश्यम्भावी है।

९—देह-कोषके विनाशके कारण—हमने ऊपर 'शेष कोषों' के भाग्यमें "प्रत्यक्षतः" मरना अवश्यम्भावी है' एक विशेष कारणसे कहा है। जीव विभागकी आधुनिक खोजोंसे एक बात बड़े मार्केकी मालूम हुई है कि हमारे शरीरके प्रायः समस्त कोष इस हेतु नष्ट होजाते हैं कि उनके आसपासकी परिस्थिति कुछ समयके उपरान्त उनके जीवनके अनुपयुक्त हो जाती है। प्राणियोंके शरीरसे कुछ कोष बाहर निकल कर प्रयोगशालामें, शरीरके भीतरकी परिस्थितिकी अपेक्षा अधिक अनुकूल परिस्थिति

में, उनका पोषण किया गया। 'अधिक अनुकूल परिस्थिति' इस कारण कहा कि प्रयोगशालामें उन कोषोंका विभाजन, उनके वृद्धि और पुनः विभाजनका क्रम अनिश्चित काल तक जारी रहा। प्रोफेसर उडरफके जीवाणुओंकी भांति इन कोषोंमें भी जरा-मरणके कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुए। यदि यही कोष शरीरके भीतर अपने असली स्थान पर बने रहते तो उत्तरोत्तर उनकी विभाजन-क्रिया रुक जाती और वे सिकुड़ कर अन्तमें शरीरके साथ नष्ट हो जाते।

१०–मुर्गीके देह-कोष तेरह वर्ष तक जीवित रहे– इस विषयको हम एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट करेंगे। मुर्गी के शरीरसे कुछ अणुवीद्य जीवित कोष निकाल कर प्रयोगशाला के भीतर ऐसे पोषक-घोलमें जीवित रक्खे गये जिसका रासायनिक रूप मुर्गीके रक्त-रस (blood serum) के समान था। इस घोलमें वे कोष लगातार विभाजित होते रहे और संख्यामें बढ़ते रहे। जब घोलमें कोषोंकी अधिक भीड़ बढ़ जाती थी तो उन में से कुछ कोष छांट कर बाहर निकाल दिये जाते थे। समय-समय पर घोल बदल दिया जाता था। क्योंकि वह बढ़ते हुए कोषोंके निर्गत अनुपयोगी पदार्थोंसे भर जाता था। ये निर्गत पदार्थ अन्तमें उनके जीवनके हेतु विषैले सिद्ध होते। इस प्रयोग में ये कोष लगातार तेरह वर्ष तक जीवित रक्खे गये। इतने काल तक साधारणतया मुर्गी जीवित नहीं रह सकती। तब भी इन कोषोंमें निर्बलताके चिह्न नहीं दिखाई दिए।

इससे यह स्पष्ट है कि शरीरसे निकाले हुए कोष प्रयोग-शालाके भीतर न वृद्ध होते हैं और न मरते हैं। तो फिर शरीर के भीतर उनके वृद्ध होनेका क्या कारण है? अब हम इस संबंध में किए गये कुछ प्रयोगोंके आधार पर इस समस्याको हल करने का प्रयत्न करेंगे।

११–शरीरके भीतर कोषोंके वृद्ध होनेके कारण– मान लीजिये, अबकी बार हम एक प्रकारके कोषोंके बदले मुर्गीके शरीरसे दो प्रकारके कोष ले कर प्रयोगशालामें एक साथ पोषणार्थ रखते हैं। अबकी बार हम मुर्गीसे कुछ योजक-तन्तु (connective tissue) और वृक्क का एक क्षुद्रांश लेते हैं। जब हम इन दोनों तरहके तन्तु-कोषोंका अलग अलग नलीमें पोषण करते हैं तब वे बिलकुल उपयुक्त कोषोंकी भांति व्यवहार करते हैं अर्थात् वे अनिश्चित-काल तक द्रुत गतिसे बढ़ते हैं और उनमें तनिक भी शिथिलता नहीं आती इसके विपरीत जब हम उन दोनों प्रकारके तन्तु-कोषोंका पोषण किसी एक नलिकामें साथ-साथ करते हैं, तो आरम्भमें तो उनका विभाजन वेगसे होता रहता है किन्तु कुछ समयके उपरान्त यह क्रिया मन्द पड़ जाती है और अन्तमें रुक जाती है। फिर सब कोष मर जाते हैं।

१२–अमरकोषोंसे निर्मित हमारा नाशवान शरीर– इससे हमें सारे रहस्यका पता चल जाता है। हमारा अथवा किसी जीवधारीका शरीर इस कारण बूढ़ा होता और अन्तमें मर जाता है कि उसके विविध भांतिके कोष एक दूसरेकी उपस्थिति को बरदाश्त नहीं कर सकते: एक प्रकारका कोष एक दूसरे प्रकारके कोषका सहायक नहीं होता। अतः जब तक किसी विशेष प्रकारके कोष—यकृत, वृक्क, मांसपेशी अथवा मस्तिष्क एकाकी रहते हैं तब तक तो वे संभवतः नित्य होते हैं किन्तु अपने पड़ोसी कोषोंकी उपस्थितिमें वे अनित्य हैं—हो सकता है कि हर भांति के कोषोंसे कुछ ऐसे विनाश्य-पदार्थ (waste products) उत्पन्न होते हैं जो उनके पड़ोसी कोषोंके हेतु विषैले सिद्ध होते हैं। सारांश यह कि जीवधारीका पूरा शरीर अनित्य है और यह नित्य अवयवों (कोषों) का निर्मित है। केवल इसके बीज-कोष (डिम्बाणु और शुक्राणु) मृत्युसे सुरक्षित रह सकते हैं। इस भांति अजर-अमर होनेकी बात जीव-विज्ञानसे भी पुष्ट होती है।*

१३–कैन्सर रोग ग्रस्त कोष भी अमर हैं—उप-संहारमें हम उस भीषण ध्वंस-लीलाके उल्लेख करनेका लोभ संवरण न कर सकेंगे जब जीव-देहके कोषोंमें से कोई कोष अथवा कोष-समूह, शरीरके सांघातिक नियन्त्रणसे परे होकर मनमानी वृद्धि करने लगते हैं। अर्थात् अपने समीपवर्ती कोषोंके अवरोधी प्रभावों से मुक्त होकर कहीं अधिक वेगसे बढ़ने लगते हैं; उनके प्रदेश पर छापा मारते हैं और अन्तमें शरीरके पूरे कोष-साम्राज्यकी व्यवस्थाको ही लोट-पोट कर देते हैं। हमारा तात्पर्य अबुर्द (ट्यूमर tumour) से है। कैन्सर भी एक प्रकारका अबुर्द ही है कैन्सरके कोष उन पोषित कोषों (tissue-culture) के तुल्य होते हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं अर्थात् जीव-देहसे अलग करके प्रयोगशालामें अनुकूल वातावरणमें पोषे हुए किसी विशेष प्रकारके कोष! उन कोषोंकी भांति कैन्सरके कोष संभवतः अमर हैं।

[शेष २३ पृष्ठ के नीचे]

* The phrase 'Life everlasting' is not confined. to the vocabulary of the theologian, and potential immortality is more than a mystical hope of believing humanity. They are based upon demonstrable biological facts,"—
Genetics by Walter.

सोडावाटर का व्यवसाय

प्रीस्टले अपनी प्रयोगशालामें प्राकृतिक झरनोंके जलके सदृश्य जल बनानेका प्रयत्न कर रहा था। उसी प्रयत्नके फल स्वरूप सन् १७७२ ई० में पहले पहले उसे सोडा वाटर बनाने की विधि ज्ञात हुई। उसके पश्चात व्यापारके लिये सोडा वाटर बनानेका कार्य पॉल नामके व्यक्ति द्वारा सन् १७९० ई० में जिनेवा शहरमें प्रारम्भ हुआ था।

सबसे पहले जो सोडावाटर तैयार किया जाता था वह आज कलका खारी सोडा वाटर था। इसके पश्चात् मीठा सोडा बनाया जाने लगा। सन् १८०७ से सोडा वाटरमें जायका और सुगंध लानेके लिये फलोंके रसका भी उपयोग किया जाने लगा। गत बीस वर्षों में सोडा वाटरके व्यापारमें बहुत उन्नति हो गई है। अपने घरके लिये सोडाडाटर भी आप आसानी से कम खर्चमें बना सकते हैं। इससे पहले तो बड़ी-बड़ी बोतलें भरनेकी ही मशीनें काममें लाई जाती थीं।

सोडावाटरके विषयमें एक महत्वपूर्ण बात जो इसके नाम से सम्बन्ध रखती है; जान लेनी चाहिये। सोडावाटरमें सोडा का अंश बिलकुल भी नहीं होता। खारी सोडावाटरका नाम खारी उसके स्वादके कारण पड़ा है। यह सादे पानीमें कृत्रिम रूपसे कार्बनडाइआक्साइड गैस घोलकर बनाया जाता है। इस का यह जायका इसमें गैसके घुलनेके कारण होता है। किन्तु प्रश्न यह होता है कि फिर इसका यह नाम क्यों पड़ा? इसका कारण यह हो सकता है कि प्रायः पेटको ठीक करनेके लिये लोगोंको सीडलीज पावडर दिया जाता था। इसमें एक चीज सोडियमबाइकार्बोनेट (जिसे खानेका सोडा कहते हैं) होता है और दूसरी वस्तु टाटरी (जिसे नींबूका सत भी कहते हैं) होती है। इन दोनोंके मिलानेसे झाग-सी निकलती है और इनसे बने पेयको पीने से वह सोडावाटरका सा ही लाभ करता है। जायकेमें भी यह सोडावाटर जैसा ही होता है। वास्तवमें इसका भी तात्पर्य वही है जो असली सोडा वाटरका है। सोडि-यम-बाइ-कार्बोनेट और टाटरीके मिलनेसे रासायनिक क्रिया प्रारम्भ होती है, जिसके फल स्वरूप कार्बनडाइआक्साइड गैस उपत्न्न होती है। इस गैसका बहुत सा भाग तो झागोंके रूपमें बाहर निकल जाता है, किन्तु बहुत सा भाग घोलमें रह जाता है। इसी सोडावाटरके नामसे बोतलोंके कार्बन डाइऑक्सा इड घुले पानीको भी सोडावाटर कहते हैं।

मूल पदार्थ—सोडावाटर बनानेके लिये इन पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है, जल, कार्बन डाइऑक्साइड, चीनी या अन्य मीठा करने वाले कृत्रिम पदार्थ, अम्लपदार्थ, फलोंका रस, फलोंकी कृत्रिम रूह, एसेन्शियल आयल, वनस्पतियोंका सत,
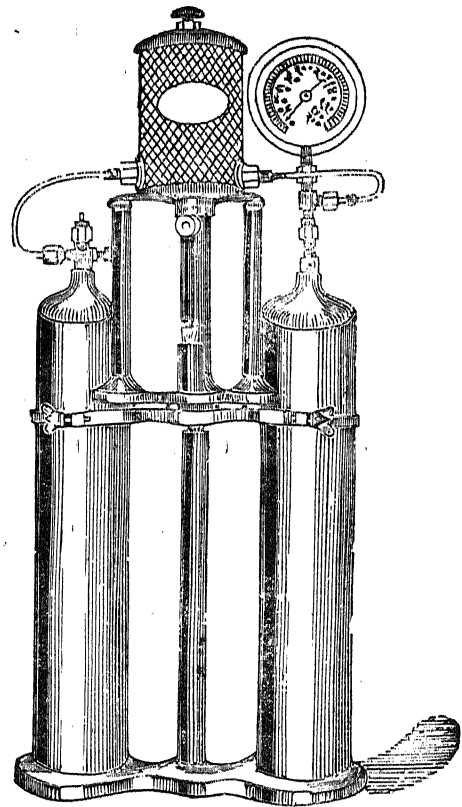
सोडावाटर बनानेकी बड़ी मशीन इधर उधर कार्बन डाइ ऑक्साइडके सिलेण्डर हैं। घड़ी गैस का दबाव दिखानेके लिये है। यदि गैस का दबाव अधिक होगा तो बोतल फट जायगी।

अन्य खनिज लवण तथा झाग पैदा करने वाले इसमें पदार्थ। पानी पूर्णरूपसे साफ होना चाहिये। साफसे यह तात्पर्य है कि पानीमें जीवाणु और रासायनिक पदार्थ (घुले हुए) नहीं होने चाहिये। इसलिये साफ पानी करनेके लिये साधारण कुए या नलके पानीको विशेष प्रकारके छन्नेमें छान लिया जाता है। यह छन्ना छेददार चीनी मट्टी का, कैलस गुहर, (एक प्रकारकी सोखने वाली मिट्टी) या फिल्टर पेपरका होना चाहिये। इसके अतिरिक्त पानीमें बदबू, या किसी प्रकारका रंग भी नहीं होना चाहिये। जो पानी सोडावाटटरके लिये लिया जाय, उसका स्वाद भी अच्छा होना चाहिये।

जो पानी अधिक भारी अथवा अधिक हल्का होता है उस की इस अधिकताको दूर करनेका भी प्रयत्न करना होता है। कुछ विशेष प्रकारका सोडावाटर बनानेके लिये कभी कभी स्रवित जलकी भी आवश्यकता पड़ती है।

कार्बन-डाइआक्साइड कई विधियोंसे प्राप्तकी जा सकती है। चूना फूकने की भट्टीमें कोक (एक प्रकारका कोयला) के जलने से यह गैस प्राप्त की जाती है। गंधकके कार्बोनेट पर रासायनिक कार्यसे भी यह गैस प्राप्तकी जाती है। शराब तथा सड़ा कर बनाई गई वस्तुओंको बनाते समय सड़ने पर यह गैस निकलती है। यह गैस या तो सोडावाटर बनानेकी फैक्टरीमें ही एक स्थान पर एक खास गैस बनाने वाली मशीन द्वारा तैयार होती रहती है या लोहेके मोटे सेलेन्डरमें अधिक दबाव पर भरी हुई तरल रूपमें खरीदी जा सकती है। चाहे गैस सोडावाटर फैक्टरीमें तैयार की जाय और चाहे उसे सैलेन्डरोंमें भरे हुए ही खरीदा जाय किन्तु गैसमें किसी प्रकारका खराब स्वाद नहीं होना चाहिये।

गैस भरनेसे सोडावाटरमें गैसका दबाव ४० से ८० पौंड प्रति वर्ग इंच रखा जा सकता है। पानीको ठंडा करके गैस भरने से गैसका दबाव और भी अधिक हो सकता है।

मीठा करने वाले पदार्थ—सोडावाटरके लिये एक विशेष प्रकारकी चीनी बनाई जाती है। इस चीनीको हड्डियोंके कोयलेसे साफ किया जाता है। चीनीको साफ करनेके लिये कई विधियां काममें लाई जाती हैं। जैसे कपड़ेको अधिक सफेद करनेके लिये धोबी नील देते हैं, इसी प्रकार चीनीको भी साफ करने के लिये नीला रंग दिया जाता है, किन्तु सोडावाटरके लिये काम में लाई जाने वाली चीनीमें यह रंग नहीं होना चाहिये। इसके अतिरिक्त जब चीनीका शर्बत बनाया जाय तो वह ऐसा हो कि न तो उसमें कुछ जमे और न ऊपरकी सतह पर ही कोई वस्तु तैरती रहे।

चीनीके अतिरिक्त उसे मीठा करनेके लिये सैकरीनका भी उपयोग किया जाता है। बहुतसे देशोंमें सोडावाटरके लिये इसका उपयोग सरकारकी ओरसे वर्जित है, किन्तु फिर भी कुछ विशेष कारणोंसे कुछ विशेष प्रकारके सोडावाटरके लिये इसे काममें लाया जाता है। चीनी वाली सोडावाटरकी बोतलें अधिक दिनों तक ठीक नहीं रह सकतीं, क्योंकि कुछ समयके पश्चात् चीनीके घोलमें सन्धान शुरू हो जाता है; इसलिये अधिक दिनोंतक सोडा-वाटर रखनेके लिये सैकरीन काममें लाई जाती है। इसके अलावा जब जब चीनी मिलनी कठिन होती है—जैसे लड़ाईके जमानेमें—तो भी सैकरीनको काममें लाया जाता है। सैकरीन चीनीसे ५५० गुना अधिक मात्रा में मीठी है। यह इतनी अधिक मीठी होती है कि यदि खाली सैकरीनको चखा जाय तो वह अधिक मीठेके कारण कड़वी लगेगी। चीनी से दो लाभ होते हैं, एक तोजायका अच्छा होजाता है दूसरे चीनी शरीरके लिये आवश्यक भी है। किन्तु सैकरीनमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो शरीरके लिये लाभकारी हो या उससे शरीरका कोई भाग बनता हो। इसी कारणसे यह बहुतसे देशोंमें काममें नहीं लाई जाती।

सोडावाटरमें जो अम्ल पदार्थ काममें लाये जाते हैं वे साइट्रिकएसिड, टारटैरिक एसिड, मैलिक एसिड और फोसफोरिक एसिड हैं। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि इन अम्लोंमें धातु और संखिया (Arsenic) का अंश घुला हुआ न हो।

फलोंका रस तथा उनका सत—सोडावाटरके काममें लानेके लिये फलोंके रसको भी साफ कर लेना चाहिये। साफ करनेकी वस्तुओं में एलब्युमन तथा पैक्टीनस पदार्थ उत्तम हैं। इनके द्वारा साफ करनेके बाद रस बिलकुल शुद्ध हो जाता है और उनसे बना सोडावाटर भी पूर्णतया पारदर्शी रहता है। किन्तु फिर भी कुछ फल ऐसे हैं कि उनका रस सदा ही कुछ धुंधला सा रहता है। फलोंके सत में फलोंका रस और फलोंका तेल मिला होता है। फलोंका तेल फलोंके छिलकेसे निकाला जाता है या फलोंके एस्टरकी सहायता से बनाया जाता है। एसेन्शियल आयल जैसे नींबू, नारंगी या जंबीरके तेलोंको भी सोडावाटरमें खुशबू देनेके काममें लाया

जाता है। इन तेलोंको पहलेसे आंशिक स्रवण (fractional distillation) से न घुलने वाले कुछ पदार्थों (तारपीन, सस्क्‌ तारपीन) से अलग कर दिया जाता है।

वानस्पतिक अर्क, चाहे वे मादक हों या मादक न हों, सब के सब पत्तियों जड़ों या बीजोंसे प्राप्त किये जाते हैं; जैसे अदरक का सोडावाटर बनानेके लिये अदरक, जो अदरकके पेड़की जड़ है, काममें लाई जाती है। खनिज-लवण जैसे सोडियम बाइ-कार्बोनेट, सोडियम सल्फेट, कैल्शियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड—इत्यादि, सोडावाटर बनानेके काममें लाये जाते हैं।

कुछ देशोंमें झाग लानेके लिये साबुनके समान कुछ पदार्थों का भी प्रयोग किया जाता है।

गोंद जैसे चिपचिपे पदार्थ भी कुछ सोडावाटरोंमें डाले जाते हैं। सोडावाटर प्रायः रंगीन ही होते हैं। इसके लिये ये पदार्थ काममें लाये जाते हैं; कत्थई रंगके लिए जली हुई चीनी और अन्य रंगोंके लिये कोलतारसे प्राप्त रंग काममें लाये जाते हैं।

बोतलें भरनेकी विधि—जिस मशीनसे सोडावाटरकी बोतलें भरी जाती हैं वह बहुत बड़ी और बड़ी जटिल होती है। सोडावाटर भरनेसे पहले बोतलें साफ की जाती हैं। यह काम भी एक मशीन द्वारा किया जाता है। ये मशीनें एक घंटेमें १२०० बोतलें तक साफ कर सकती हैं। बोतलोंमें कितना शर्बत भरा जाय, यह भी मशीनसे ही नापा जाता है। मशीनसे ही बोतलों पर लेबिल चिपकाये जाते हैं।

बोतलों पर डाट लगानेकी चार विधियां हैं; (१) कोड की बनाई बोतलें, इनमें शीशेकी एक डाट और रबड़का एक छल्ला होता है। गैसके दबावके कारण कांचकी डाट रबड़के छल्ले पर कस जाती है और शीशीका मुंह बिलकुल बन्द हो जाता है। हिन्दुस्तानमें प्रायः ऐसी ही बोतलें काममें लाई जाती हैं। (२) दूसरी बोतल बन्द करनेकी विधिमें टीनका डाट काममें लाया जाता है। ऐसी सोडावाटरकी बोतलें प्रायः बड़ी दुकानों पर या रेलगाड़ीमें देखनेको मिलेंगी। टीनके डाटमें कार्कका एक परत सा लगा रहता है। डाटको बोतल पर रख कर एक मशीनकी सहायतासे कस दिया जाता है। डाटके किनारों पर सलवटें पड़ जाती हैं और हवाके दबाव होते हुए भी अलग नहीं हो सकता (३) इस विधिसे बन्दकी गई बोतलोंके डाटमें पेचके समान चूड़ियां होती हैं। ये डाट बोतलोंके मुंह पर पेंचके समान कस दिये जाते हैं। डाट और बोतलके मुंहके बीचके हिस्सेमें रबड़की एक गद्दी रहती है। डाटके पेंच कसने पर इस गद्दीसे बोतलका मुंह बहुत कसकर बन्द होजाता है और उसमेंसे गैस निकलनेका डर नहीं रहता। (४) इस विधिसे बोतलें बन्द करनेके लिये चीनीके डाट काममें लाये जाते हैं। डाट लोहेके मोटे तारकी सहायतासे बोतलके मुंह पर लगे रहते हैं। इस प्रकारकी बोतलें हाइड्रोजन पर ऑक्साइडकी देखी होंगी। इनमें भी डाट और बोतलके मुंहके बीचमें रबड़का एक छल्ला रहता है। तारोंको इस प्रकार लगाया जाता है कि एक ओरसे तारको दबाव देनेसे डाट बिलकुल बन्द हो जाता है। जब तक तार इस ओरसे न उठाया जाय तब तक अन्दरके अधिकसे अधिक दबावका भी कोई असर डाट पर नहीं पड़ता।

इसके अतिरिक्त घर पर भी सोडावाटर बनाया जा सकता है। इसके लिये एक खास प्रकारकी बनी बोतलें बिकती हैं। इन बोतलोंको और मजबूत करनेके लिये इनके चारों ओर लोहेके तारोंकी जाली कसी रहती है। सोडावाटर बोतलको उलटी कर के नहीं निकाला जाता। बल्कि गैसके कारण एक नलीकी सहायतासे जितना चाहो निकाल सकते हो। गैसके लिये कार्बनडाई ऑक्साइड गैसके भरे बहुत छोटे २ लोहेके ट्यूब बाजारमें बिकते हैं। एक ट्यूबसे ३-४ गिलास सोडावाटर बनाया जा सकता है।

सोडावाटर बनानेके लिये बहुत सी चीजोंका उपयोग किया जाता है। वे कितनी मात्रामें और किस प्रकार करनी चाहियें। यह तो ग्राहकोंकी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु निम्न लिखित कुछ नुसखे अधिकतर उपयोगमें लाये जाते हैं।

सोडियम कार्बोनेट १० भाग, सोडियम क्लोराइड १० भाग सोडियम सल्फेट १ भाग, मैगनेशियम क्लोराइड ८ भाग और कुछ अन्य खनिज-नमक जो दवाइयोंकी तरह काममें आते हैं। इन सब चीजोंके मिश्रणको १⅞ छटांककी मात्रामें लो और दस गैलन (५० सेर) पानीमें घोलो। इसके बाद उसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड गैसको भर कर बोतलें बन्द कर लो।

जर्मन टेबल वाटर—सोडियम कार्बोनेट १० भाग, सोडियम सल्फेट १ भाग, मैगनेशियम क्लोराइड ८ भाग, कैल्शियम क्लोराइड ५ भाग इन सबके मिश्रणको २⅞ छटांककी मात्रामें लो और उसमें १० गैलन (५० सेर) पानी मिला कर बोतलें तैयार करो।

सोडावाटरको मीठा करनेके लिये शर्बत काममें लाया जाता है। इस शर्बतमें थोड़ा भाग अम्ल पदार्थोंका, थोड़ी सी खुशबू और कुछ रंग मिला होता है। अकसर शर्बतमें ६०% चीनी होती है। यह शर्बत एक बोतलके लिये, जिसमें कुल सोडावाटर

२ से ६ छटांक आता है, ½ से १ छटांक तक शर्बत काममें लाया जाता है। युनाइटेड स्टेट्समें सोडावाटरोंकी बोतलोंमें प्रायः ११% चीनी होती है। इससे यह ज्ञात हो सकता है कि सोडावाटरमें भोज्य पदार्थ किस मात्रामें रहता है। ४ छटांक वाली बोतलमें ८०-१०० कैलोरी (जिससे भोजनकी मात्रा नापी जाती है) भोजन रहता है। बोतलमें अम्ल पदार्थकी मात्रा 1% साइट्रिक एसिडके बराबर रहती है। यदि अम्ल प्रधान फलोंका रस काममें लाया जाता है तो इस अम्लताको अन्य विधियोंसे कम कर दिया जाता है। रंगकी मात्रा इस बात पर निर्भर रहती है कि बोतलमें किस फलका सोडावाटर तैयार किया गया है। एसेन्स या फलोंकी रूह जो सोडावाटर बनानेके काममें आती हैं, एक खास प्रकारसे बनाई जाती है। इनकी तेजी एक खास मात्रा तक रखी जाती है जिससे प्रत्येक रूहकी ½ से १ छटांक तककी मात्रा ही प्रति गैलन (५ सेर) शर्बतके लिये ठीक रहे। इस प्रकार लाइमजूसके बनानेके लिये जो शर्बत तैयार किया जायगा उसमें एसेन्सके लिये ये चीजें उपयुक्त की जांयगी :—

जंबीर (lime) स्रवित तेल १ भाग
मद्यसार(alcohal) ६% की २८ ,,
स्रवित जल १५ ,,

यह रूह १ छटांक प्रति गैलन शर्बतके लिये काफी होगी। अदरकका या इसी प्रकार जड़ों या पत्तियोंके सोडावाटरको बनाने के लिये शर्बतकी मात्रा कम करदी जाती है। सोडावाटरमें थोड़ी सी मात्रामें झाग पैदा करने वाले पदार्थ भी मिला दिये जाते हैं।

१४—ट्यमरका पेबन्द लगाना—इन कोषोंके संबन्धमें एक विचित्र बात यह है कि कैन्सर रोग-ग्रस्त कोष शरीरके एक स्थानसे निकल कर शरीरके अन्य स्थानमें विकसित हो सकते हैं। एक अबुर्द (ट्यूमर) वृद्ध चूहेके शरीरसे निकाल कर दूसरे तरुण चूहेके शरीरमें पेबन्दके रूपमें लगाया जा सकता है। इस चूहेके बूढ़े हो जाने पर उसे पुनः निकाल कर दूसरे चूहेके शरीरमें जोड़ सकते हैं। इस प्रकार इन कोषोंको अनेक बार एक शरीरसे निकाल कर दूसरे शरीरमें जोड़ सकते हैं और इन कोषोंकी वृद्धिमें तनिक क्षीणता नहीं आती।

१५—कैन्सर रोगका प्रतिकार—जिस दिन हमें प्रयोग शालाके तन्तु-पोषणोंके अध्ययनसे यह ज्ञात हो जायगा कि किसी एक प्रकारके कोषोंसे निकाला हुआ वह कौन-सा पदार्थ है जो अपने पड़ोसी कोषोंकी असीम वृद्धिका नियन्त्रण करता है, उस दिन हम कैन्सर जैसे भयानक रोगका प्रतिकार भी खोज लेंगे।

लड़ाईके दौरानमें मितव्यायिता

[ले०—श्री योगेश्वरदयालु वैद्य, एम. ए., बी. एस-सी.]

आज-कल चारों ओरसे लड़ाई के दौरान में मितव्ययिता (War Economy) के नारे सुनाई दे रहे हैं। कागज बचाकर रक्खो, पैट्रोल देख-भालकर व्यय करो, रद्दी लोहा ढूंढ़ ढूंढ़कर इकट्ठा करो आदि अनेकों नारे सुनाई अथवा लिखे हुए दिखलाई पड़ते हैं।

वस्तुओंकी महंगाई, अथवा अभाव, छोटे बड़े सब ही अनुभव कर रहे हैं। आज-कल यही एक मुख्य प्रश्न है कि लड़ाई के दौरान में किस प्रकार छोटी-छोटी चीजों की कमी पूरी की जाय अथवा उनके सर्वथा अभावमें किस प्रकार काम चलाया जाय।

इस लेखमालामें दैनिक व्यवहारकी कुछ छोटी-छोटी चीजों पर प्रकाश डाला जायगा।

टूथ-ब्रुश—लड़ाईसे पहले टूथ-ब्रुश प्रायः जापान, जर्मनी और इंगलैण्डसे आते थे। आज कल इनकी आमद बिलकुल बन्द है। कुछ टूथ-ब्रुश देशी भी बनने लगे हैं। लेकिन खर्चके अनुपातके मुकाबलेमें वे नहीं के बराबर हैं। अब केवल दो ही रास्ते हैं (१) टूथ-ब्रुशोंको छोड़कर दतौनका प्रयोग बढ़ाया जाय या (२) ब्रुशको इस प्रकार रक्खा जाय कि एक ब्रुश वर्षों काम दे सके।

(१) दतौनका प्रयोग—हमारे देश में दतौनकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आती दतौन, ब्रुश और दन्तमञ्जन दोनों का काम देती है। नीम अथवा कीकरकी दतौन बहुत प्रयोग की जाती है। इसके अलावा जहां पर दूसरे पेड़ों की सुविधा है, वहां पर तेजपात, पहाड़ी अरण्ड, मौलश्री, बांसा और महुएकी दतौनका भी प्रयोग किया जाता है। दतौन दो श्रेणियोंमें बांटी जा सकती हैं। एक वह जिनमें कीटाणुओं को मारनेकी शक्ति प्रधान रूपसे पाई जाती है और दूसरी वह जिनमें दांतोंकी जड़ोंको मजबूत करनेकी शक्ति प्रधान रूपसे पाई जाती। नीम, तेजपात, मौलश्री, बांसा प्रथम श्रेणीमें आते हैं; बबूल, पहाड़ी अरण्ड, महुआ दूसरी श्रेणीमें आते हैं।

दतौन हरी होनी चाहिये, और नीरोग पेड़से लेनी चाहिये। उसको धोकर, गांठों को छीलकर काम में लाना चाहिये। फिर अगले भागको खूब चबाकर कूंची बना लेनी चाहिये। कूंची बहुत नरम और बारीक रेशों की होनी चाहिये ताकि मसूड़ों को हानि न पहुँचे। दतौनको खूब चबानेसे एक प्रकारका रस मुँहमें इकट्ठा हो जाता है जिससे मुँह, गले और दांतोंको लाभ पहुँचता है।

दतौनकी कूंचीसे ब्रुशके समान ऊपरसे नीचे और नीचे से ऊपरकी ओर दांत साफ करने चाहिएं। दांत साफ करनेके बाद दतौनको दो भागों में चीरकर जीभ साफ करने के काम लानी चाहिये।

दतौनकी कूंचीके साथ किसी अच्छे मञ्जनका प्रयोग करनेसे दांत बहुत साफ होते हैं।

क्या मञ्जन बिना ब्रुशके काममें लाया जा सकता है?— वह मञ्जन जो खड़ियाके ऊपर बने होते हैं उनका बिना ब्रुश या दतौनकी कूंची में प्रयोग एक प्रकारसे निरर्थक सा ही है। लेकिन कुछ देसी दवाओंसे बने मञ्जन ऐसे आते हैं जिनका प्रयोग उँगलीसे करने पर भी दांत साफ और चमकीले हो जाते हैं जहां तक लेखकको मालूम है इस समय बाजारमें दो मंजन ऐसे आ रहे हैं जिनका प्रयोग उंगलीसे किया जा सकता है— (१) दतौन दन्त मंजन (२) अक्सीर दन्दां।

(२) ब्रुश की सम्भाल—ब्रुशको प्रति दिन अथवा यह संम्भव न हो तो तीसरे चौथे दिन तो अवश्य ही नमकीन पानी में उबाल लो। ऐसा करनेसे ब्रुश काफी दिनों तक ठीक बना रहेगा।

(३) पंजाबमें मुरमाक नामसे एक लकड़ी दतौनके लिये एक दो पैसेमें बिकती है जिसकी कूची ब्रुशसे भी अच्छी बनती और एक बारकी बनाई हुई कूची ८-१० दफा तक ब्रुशवत् धोकर प्रयोग में लाई जाती है। एक दतौन २-३ मास तक चल जाती है। इसके द्वारा मञ्जन का उपयोग किया जा सकता है।

नेल कटर—खुंटल नेल कटर तेज करके प्रयोग लायक बनाये जा सकते हैं। जिन दो टुकड़ोंके बीचमें नाखून दब कर कटता है उनको जरासे रेगमारके टुकड़ेसे सावधानीके साथ खूब रगड़ो कुछ देर रगड़नेसे नेल कटर तेज हो जाता है। पुनः काममें लाओ।

कंघे—१५ वर्ष पहले उत्तरी भारतमें देसी बनी हुई कंघियों और कंघों का बहुत प्रचार था। ये सींग और चिकरी नामक लकड़ी तथा चन्दनकी लकड़ी के बनाये जाते थे। जब सैलुलायड के कंघे, कंघियां आने लगीं तो इनकी बिक्री कम होती चली गई।

इस समय सैलुलायडकी बहुत कमी है, इसलिये जैसोर आदि में जो भारतीय कारखाने हैं, वे भी बहुत कम माल बना रहे हैं। इसलिये क्यों न सींग और लकड़ीके बने कंघे कंघियोंको अपनाया जाय? यदि इस धन्धेकी ओर ध्यान दिया जाय तो यह काफी उन्नति कर सकता है।

सेफटी रेजर ब्लेड्स—इनकी दिन प्रति दिन कमी होती जा रही है। यदि जरा सावधानीसे काम लिया जाय तो पुराने ब्लैड तेज किये जा सकते हैं और काफी दिन तक काम लिया जा सकता है।

सपाट कांचके गिलासमें अन्दरकी तरफ ब्लैड को रख कर उंगलीके सहारे दे कर रगड़ने पर काफी तेज हो जाता है पहिले जरासे गरम पानीमें भिगो कर रगड़ना चाहिये, फिर इक बूंद तेल लगा कर।

हजामत करनेसे पहले ब्लैडको जरासे गरम पानीमें भिगो लो, इसके बाद जब तक हजामत पूरी न कर लो उसको पानीमें मत डुबाओ।

हजामत बनानेके बाद ब्लेडको फौरन ही सेफ्टी रेजरमें से निकाल कर खूब सूखा कर कागजमें लपेट कर रख दो।

जिस ब्लेडको आज काममें लाओ उसको कमसे कम दो दिन तक काममें न लाओ। नये ब्लेडसे एक वार हजामत बनाने के बाद जब भी उसको इस्तेमाल करो, उसको तेज अवश्य कर लो।

ऊपर लिखी बातोंका ध्यान रखनेसे पुराने ब्लेड भी काम में लाये जा सकते हैं और उनसे काफी दिन काम लिया जा सकता है।

घरेलू डाक्टर

गठिया हो जाता है (देखो आत्मीकरण)। प्रोटीनके ठीक न पचने से यूरिक ऐसिड बनता है और इस लिए सोडियम बाईयूरेट (sodium bi-urate) के रवे (crystals) संधियोंमें जम जाते हैं जिससे संधियोंमें सूजन (संधिप्रदाह) हो जाता है। जब आत्मीकरण में ऐसी त्रुटि होती है कि शर्करा ठीक नहीं पच पाती तो डायाबिटीज़ (diabetes) या मधुमेह हो जाता है। इस प्रकार गठिया और मधुमेह दोनों ही आत्मीकरण में दोष आ जाने से उत्पन्न होते हैं, परंतु एक में प्रोटीन नहीं पच पाता, दूसरे में शर्करा।

गठिया

बाहरसे देखनेमें यह आमवातीय संधिप्रदाह-सा हीं दिखलाई पड़ता है, परन्तु इसका कारण एक-दम दूसरा ही है।

रूमैटिज्म या आमवात क्यों होता है इसका अभी ठीक पता नहीं, परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह या तो किसी विशेष कीटाणु (जर्म) के कारण होता है जिसे अभी डाक्टर लोग भी नहीं देख पाए हैं, या गलग्रंथि (टॉनसिल, tonsil), मसूड़े (gums), या अँतड़ी आदि में कहीं मवाद बनते रहनेसे और उसके विषैले अंशके रक्तमें प्रविष्ट होकर संधियों तक पहुँचनेके कारण यह होता है।

संधिप्रदाह—संधिप्रदाह (arthritis) अर्थात् जोड़ोंमें सूजन और पीड़ा केवल एक लक्षण है जो गठिया और आमवात में ही नहीं, अन्य कई रोगोंमें दिखलाई पड़ता है। उदाहरणतः, यह लक्षण संधिके पकनेमें, न्यूमोनिया (pneumonia) के कीटाणुओं के कारण, सूजाकके कारण, संध्यस्थि-प्रदाह (osteo-arthritis) में जिसमें हड्डीमें खराबी आ जाती है, संधियोंमें क्षयरोग (tuberculosis) में, आतशक (उपदंश) में, लड़खड़ाने के रोग (tabes dorsalis) में, सुषुम्ना-रोग (syringo myelia) में, संधियोंमें रक्त उतर आने पर, अर्बुद में, और कुछ अन्य रोगोंमें दिखलाई पड़ता है।

आमवात संभवतः कीटाणुओंके कारण और उनके द्वारा उत्पन्न हुए विषके कारण होता है। यह विष रक्त-धारामें मिलकर शरीरके सभी भागोंमें पहुँच जाता है। ठण्ढ, सीड़ और थकावटसे रोग उभड़ता है। कई भिन्न रूपोंमें यह रोग प्रकट होता है। इसलिए इसके चार विभिन्न नाम पड़ गए हैं (१) तीव्र आमवात (acute rheumatism) या आमवातीय ज्वर (rheumatic fever); (२) जीर्ण आमवात (chronic rheumatism)। साधारणतः इसीको आमवात या रूमैटिज्म कहते हैं; (३) मांसपेशियोंका आमवात या मांसपेशी-तन्तु-प्रदाह (muscular rheumatism or myalgia); (४) आमवातीय संधिप्रदाह (rheumatoid arthritis), जो संभवतः कोई एकदम दूसरा ही रोग है।

तीव्र आमवात—तीव्र आमवातको साधारणतः आमवातीय ज्वर कहा जाता है क्योंकि इसमें ज्वर आता है। यह टेढा रोग है और इसकी चिकित्सा सावधानी से होनी चाहिए, अन्यथा इसके कई दुष्परिणाम हो सकते हैं।

जैसा पहले बतलाया गया है अभी यह ठीक-ठीक पता नहीं कि यह क्यों होता है। एक जमाना था जब पाश्चात्य डाक्टर लोग भी ठण्ढ और सीड़के कारण इसके उत्पन्न होने की बात सच मानते थे, परन्तु १६१४ के यूरोपीय महायुद्ध में बहुतसे सिपाहियोंको सीड़से तर खाइयोंमें कड़कड़ाते जाड़े में बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ी, परन्तु इतने पर भी वहाँ तीव्र आमवात कुछ अधिक मात्रामें होता नहीं देखा गया। अब अनुमान किया जाता है कि यह किसी विशेष परन्तु अभी तक अज्ञात कीटाणुओंके कारण होता होगा और रोग
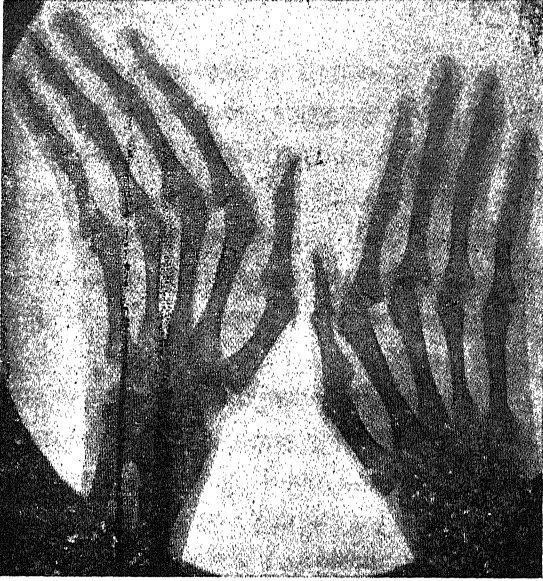
तीव्र आमवातीय संधिप्रदाह।

यद्यपि रोग इतना भीषण है कि हड्डियाँ टेढ़ी हो गई हैं, तो भी एक्स रश्मि चित्रसे पता चलता है कि न तो हड्डियाँ ही कुरूप हुई हैं और न कहीं सोडियम यूरेट ही जमा है।

ठण्ढ तथा सीड़से अधिक जोर पकड़ लेता है। सम्भव है कीटाणु गलेसे होकर भीतर पहुँचते हैं और वहाँसे रक्त द्वारा हृदय, संधियों या मस्तिष्क आदि तक पहुँचकर वहाँ अपना अड्डा जमा लेते हैं। ऐसा देखा गया है कि अकसर परिवारोंके हिसाबसे यह रोग चलता है। जिस परिवार में यह रोग होता है तो उस परिवार के प्रायः सभी व्यक्तियोंको होता है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि सम्भवतः उस परिवारके भोजन या रहन-सहनमें कोई ऐसी त्रुटि है कि उसके सभी सदस्योंमें इस रोगके आक्रमणसे बचनेकी क्षमता नहीं रहती। बच्चे और लड़के-लड़कियों को, तथा स्त्रियों को, यह रोग जवानों और पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक होता है। यह रोग अकसर गरीबोंको और उनको जिन्हें रहनेके लिये उचित मकान नहीं हैं अधिक होता है। कभी-कभी तो यह रोग महामारी (epidemic) का रूप धारण कर लेता है, अर्थात् एक ही समयमें एक ही जिला या प्रांतके बहुतसे लोगों को हो जाता है और अकसर इनफ्लूएन्ज़ा की महामारी के बाद फैलता है। परन्तु महामारी के रूपमें आमवातीय ज्वर भारतवर्ष में बहुत कम देखने में आता है। शीतप्रधान देशोंमें ऐसा अकसर होता है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि भारतवर्षमें आमवातीय ज्वर कोई असाधारण रोग है। लखनऊ मेडिकल कॉलेजके लेफ्टिनैण्ट-करनल स्टॉट का अनुमान था कि यह रोग भारतवर्ष में इंगलैण्ड की अपेक्षा कुछ विशेष कम मात्रा में नहीं होता, क्योंकि लखनऊ में हजार पीछे छः या सात रोगी इसी के कारण भरती किये जाते थे। जिन बच्चों को एकबार आमवातीय ज्वर हो जाता है उनको इस रोगके फिर उभड़ने का विशेष डर रहता है। इसलिये उनकी विशेष देख-रेख करनी चाहिए कि रोग उभड़ने न पाये।

लक्षण—सम्भव है कि कोई बच्चा धीरे-धीरे आमवातीय ज्वरसे पीड़ित हो और पता न चले कि रोग कब आरम्भ हुआ। बच्चा शायद कहेगा कि तबियत ठीक नहीं जान पड़ती और अंग-अंगमें पीड़ा हो रही है। यदि थर्मामीटर लगाया जायगा तो पता चलेगा कि हल्का बुखार है। संधियोंमें कुछ पीड़ा जान पड़ने पर अकसर लोग समझते हैं कि गाँठ छूट रही है अर्थात् स्वाभाविक रीति से बच्चा बढ़ रहा है और इसलिये कुछ पीड़ा हो रही है ("growing pains")। परन्तु स्वाभाविक वृद्धिमें पीड़ा नहीं होती। पीड़ा रोगके ही कारण होती है। कुछ दिनों तक इसी प्रकार मीठा-मीठा दर्द होनेके बाद एक दिन एकाएक ज्वर चढ़ आयेगा (तापक्रम १०० डिगरी होगा या अधिक) और एक या अधिक संधियोंमें तीव्र पीड़ा होने लगेगी और संधि फूल आयेगी। कभी-कभी जब तक एक संधिकी पीड़ा मिटती है तब तक किसी दूसरी संधिमें पीड़ा और सूजन हो आती है। पसीना खूब छूटता है और इसकी गंध खट्टी होती है। गला काँटा-सा जान पड़ता है (sore throat हो जाता है)। कभी-कभी आमवातीय छोटी-छोटी गाँठें (nodules) या अर्बुद त्वचाके नीचे बन जाते हैं, विशेषकर हाथकी पीठ पर, छाती पर, घुटनेपर या केहुनी पर। ये गाँठें शीघ्र बनती हैं और शीघ्र मिट भी जा सकती हैं। उचित चिकित्सा करने पर ज्वर एक या डेढ़ सप्ताह में उतर जाता है, और संधियों की

पीड़ा भी धीरे-धीरे मिट जाती है, यद्यपि अकसर पीड़ा एक जोड़से दूसरे जोड़ में घूमा करती है।

चिकित्सा—जिन लड़कों को एक बार आमवातीय ज्वर हो चुका हो या जिनको ऐसा ज्वर होनेका सन्देह हो उनकी गलग्रंथियों (टॉनसिलों, tonsils) और दाँतों की जाँच, और आवश्यकता हो तो चिकित्सा, करानी चाहिए। सड़े दाँतोंको उखड़वा देना चाहिए। गलग्रंथियाँ बहुत खराब हों तो उनको भी कटाना पड़ेगा। जब तीव्र आमवातका आक्रमण हो और ज्वर चढ़ आवे तो बच्चे को बिस्तर से न उठने देना चाहिए और विस्तर परभी वह शांतिसे पड़ा रहे। डाक्टर बुलाना चाहिए, क्योंकि असावधानीसे अन्य रोग हो सकते हैं। हर तरहके रूमेटिज्मिमें सोडियम सैलिसिलेट (sodium salicylate) फायदा करता है। ज्वर आने पर भी यही दवा अन्य औषधियोंके साथ दी जाती है। सूजी हुई संधियों पर मेथिल सैलिसिलेट (methyl salicylate), जिसे ऑयल ऑफ विंटरग्रीन (oil of wintergreen) भी कहते हैं, आदि दवाएँ मालिश की जाती हैं। उनकी सेंक भी होनी चाहिए और उन्हें रुईमें लपेट देना चाहिये जिसमें वे गरम रहें। पेट साफ रखना चाहिए। इसके लिए संभवतः जुलाबकी आवश्यकता पड़ेगी। हलका तरल भोजन करना चाहिए। दूध और साबूदाना आदि तरल (पानी की तरह) भोजन करना बहुत अच्छा है। ज्वर मिटने पर भी भोजन बहुत सँभाल कर करना चाहिए और मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। बहुत दिनों के बाद कोई ठोस वस्तु जैसे भात या रोटी देनी चाहिए और इसका उपयोग बहुत ही धीरे-धीरे आरम्भ करना चाहिए। ज्वर छूटनेके बहुत दिन बाद तक रोगी को बिस्तर पर पड़े रहना चाहिए। उठना-बैठना और तब चलना फिरना धीरे-धीरे आरम्भ करना चाहिए।

जीर्ण गठिया

एक्स-रश्मि फोटोग्राफमें स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि कई स्थानोंमें सोडियम यूरेट इकट्ठा हो गया है।

आमवातीय ज्वर में हृदय में रोग, विशेषकर हृदयावरण प्रदाह (endocarditis), हो जानेका विशेष डर रहता है। हृदय कमजोर तो हो ही जाता है। यदि बिस्तर शीघ्र छोड़ा जायगा और रोगी जल्द चलने-फिरने लगेगा तो सम्भव है किसी तीव्र हृदरोग का आक्रमण हो जाय, जिसके कारण प्राण चला जाय। कई वर्षोंकी औसतकी जाँचसे पता चलता है कि लखनऊ मेडिकल कॉलेजमें जितने रोगी भरती किए जाते हैं उनमेंसे हजार पीछे १७ ऐसे हृदय रोगोंके कारण भरती किए जाते हैं जो आमवातके कारण उत्पन्न हुए रहते हैं। कभी-कभी मस्तिष्क में आमवात हो जाता है (cerebral rheumatism)। तब ज्वर बहुत प्रचंड रूप धारण कर लेता है। कभी-कभी आमवातके बाद तांडवरोग (St. Vitus's dance) हो जाता है।

जीर्ण आमवात (chronic rheumatism)—जीर्ण आमवात, आमवात, बात या बतास भारतवर्षमें बहुत होता है और अकसर अधेड़ व्यक्तियोंको होता है। इसके कारण संधियों में सूजन और बड़ी पीड़ा होती है, जिससे

उठना-बैठना कठिन हो जाता है। रोग बहुत दिन तक रहता है और इसका जड़से आराम हो जाना कठिन है। परन्तु इसमें ज्वर या तो नहीं रहता है, या रहता भी है तो हलका।

चिकित्सा—सोडियम सैलिसिलेट खाने और मेथिल सैलिसिलेट मालिश करनेसे पीड़ा आदि शीघ्र कम हो जाती है। सेंक और मालिश बहुत दिनों तक जारी रखनी चाहिये। रोगग्रस्त संधिपर गरम कपड़ा लपेटे रहना चाहिये।

मांसपेशियोंका आमवात (muscular rheumatism)—यह रोग साधारणतः अधेड़ व्यक्तियोंको होता है, विशेषकर उनको जिन्हें ठंढ में या पानी-बूँदी में काम करना पड़ता है। कारण का ठीक पता तो नहीं है, परन्तु विश्वास किया जाता है कि सड़े दाँत और मसूड़ोंसे या क्षत गलग्रंथियोंसे या अँतड़ी में कहीं घावसे निकला विष इस रोगका मूल है। जिन्हें कोष्ठबद्धता (कब्ज) रहती है उनकी आँतोंमें अकसर घाव हो जाता है।

इस रोगके लक्षण हैं मांसपेशियों में पीड़ा और संधियों में कड़ापन जिसके कारण संधियाँ अच्छी तरह चल नहीं पातीं। मांशपेशी-तंतु (muscular tissue) में गाँठ पड़ जाती हैं जिनमें, छूनेपर या उस अंगको चलानेपर, बड़ी पीड़ा होती है। अकसर जाड़े या बरसात में पीड़ा बढ़ जाती है। इस रोगको मांसपेशी तंतु-प्रदाह (fibrositis or myalgia) भी कहते हैं। जब यह रोग छातीकी बगल में होता है तब इसे पार्श्वशूल या प्ल्यूरोडाइनिया (pheurodynia) कहते हैं। कमर या पीठपर होने से इसी को कटिशूल या लंबेगो (lumbago) कहते हैं, गरदन में होने से कुकाटिका शूल (torticollitis) कहते हैं। देखो कटिशूल और मांसपेशी प्रदाह।

चिकित्सा और बचनेके उपाय—शरीरके किसी अंगमें ठंढ न लगने पाये। जिस अंगमें पीड़ा हो उसे गरम कपड़े से अच्छी तरह ढके रहना चाहिए। यदि कपड़ा कभी भीग जाय तो उसे तुरंत बदलना चाहिए। सेंक और मालिश बहुत दिनों तक कराते रहना चाहिए। मालिश के लिए एक भाग मेथिल सैलिसिलेट और ३ (या चार-पाँच) भाग कड़ुआ (सरसोंका) तेल अच्छा है।

आमवातीय संधिप्रदाह (rheumatoid arthritis)—आमवातीय संधिप्रदाह और तीव्र आमवात एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं और डाक्टरों को भी धोखा हो जाता है, परंतु सम्भवतः ये दोनों भिन्न-भिन्न रोग हैं और केवल लक्षणोंकी समताके कारणही दोनोंके मिलते-जुलते नाम रक्खे गए हैं। आमवातीय संधिप्रदाह में भी ज्वर रहता है परंतु तीव्र आमवात के बराबर तेज बुखार नहीं आता। शामको तापक्रम १०० या १०१ डिगरी तक हो जाता है और सबेरे ९९ या १०० डिगरी रहता है। दोनों रोगोंमें एक अंतर यह भी है कि आमवात और आमवातीय ज्वर (या तीव्र आमवात) में रोग बड़े जोड़ों पर आक्रमण करता है, परंतु आमवातीय संधिप्रदाहमें पहले और मुख्यतः अँगुलियों की संधियोंमें सूजन होती है (चित्र देखो)। जैसे-जैसे समय बीतता है तैसे-तैसे शरीरकी अन्य संधियोंमें भी सूजन हो आती है, परंतु अँगुलियोंकी संधियों की सूजन मिटती नहीं। आमवात और आमवातीय ज्वरमें जब रोग बहुत प्रचंड रूप धारण करता है और प्रायः सभी संधियोंमें सूजन हो आती है तब अँगुलियों की संधियों में सूजन होती है। साधारणतः बड़ी संधियोंपरही आक्रमण होकर रह जाता है और विशेषता यह रहती है कि सूजन आदि कभी एक संधि में होती है, कभी दूसरी में। जैसे-जैसे समय बीतता है आक्रमण एक संधि से दूसरी संधि पर बदला करता है। जब कोई संधि रोगसे मुक्त होती है तो साधारण अवस्थामें पहुँच जाती है। उसमें स्थायी कुरूपता विरले ही आती है क्योंकि प्रदाह किसी एक संधि में बहुत समय तक जमकर नहीं रहता। इसके विरुद्ध आमवातीय संधिप्रदाह में अँगुलियाँ अकसर सदाके लिए टेढ़ी हो जाती हैं, संधि कड़ी पड़ जाती है और अंग चिगुर (संकुचित हो) जाता है। इसी प्रकार एक संधि पर आक्रमण कम समय तक रहने के कारण तीव्र आमवातमें संधिके आस-पास की मांसपेशियाँ क्षीण नहीं होतीं, परंतु आमवातीय संधिप्रदाहमें मांसपेशियाँ बहुत क्षीण हो जाती हैं (muscular atrophy)। चिकित्साके दृष्टिकोणसे दोनों रोगोंमें विशेष अंतर यह है कि आमवातीय ज्वर और आमवात में सोडियम सैलिसिलेट से ज्वर उतर जाता है और संधियों की पीड़ा और सूजन में कमी होजाती है, परंतु आमवातीय संधिप्रदाह में सैलिसिलेट से कुछ लभा

नहीं होता। हल्का ज्वर तीन से छः सप्ताह तक आता रहता है। रोग धीरे-धीरे छुटता है और दो-दो चार-चार महीने पर इसका आक्रमण होता रहता है, परन्तु प्रत्येक बार रोग हल्का होता जाता है। चार या पाँच या छः बार के बाद रोग छूट जाता है परन्तु संधियोंमें कुरूपता, कड़ापन, संकोच आदि रह जाता है । इस रोगमें हृद्यावरण प्रदाह (endocarditis) नहीं होता। यह रोग स्त्रियों को अधिक होता है।

इस रोगमें अकसर रोगीका साधारण स्वास्थ्य बहुत बिगड़ जाता है; रक्ताल्पता, धड़कन (palpitation of the heart) आदि की शिकायत रहती है; नाड़ी तेज चलती है, पसीना अधिक छूटता है; हाथ-पैर ठंडे रहते हैं; परन्तु इन में से कई लक्षण आमवातमें भी उपस्थित रहते हैं।

चिकित्सा—बहुतसे व्यक्तियोंको जिन्हें यह रोग होता है सड़े दाँत, गलग्रंथिप्रदाह, नाक या अँतड़ीके भीतर घाव या कब्जकी कोई शिकायत नहीं रहती, जिससे पता चलता है कि संभवत: इन रोगों में और आमवातीय संधिप्रदाहमें कोई सम्बन्ध नहीं है; परंतु यदि सड़े दाँत आदि ऊपर बतलाई गई बातों में से कोई भी उपस्थित हो तो उसकी भी चिकित्सा होनी चाहिये। आमवातीय संधिप्रदाह की कोई विशेष चिकित्सा नहीं ज्ञात है, परंतु रोगीका साधारण स्वास्थ्य ठीक करने से इस रोग के विशेष लक्षणों में भी कमी होती है। रोगी को दृढ़ता पूर्वक बरसों तक संयम से रहना चाहिये, किसी बातकी चिंता न करनी चाहिए और ऐसा परिश्रम न करना चाहिए जिससे थकान जान पड़े। अच्छा भोजन खाना चाहिए। ताजे फल, हरी तरकारियाँ और दूध-दही-मक्खन विशेष उपयोगी हैं। कॉडलिवर ऑयल (cod liver oil) भी फायदा करता है । लोहा या संखिया मिला टॉनिक (tonic) डाक्टरकी सलाह से पीने से भी लाभ होना सम्भव है। डाक्टर अन्य दवाएंभी देगा। मालिश और सेंक बहुत दिनों तक जारी रखनी चाहिए। यदि अंग ऐंठ गए हों तो उन्हें खपची (splints) बाँध कर भी सीधा करने की चेष्टा करनी चाहिए । सूखी सेंक से गीली सेंक (fomentation) अधिक उपयोगी होती है। बफारा (भापसे सेंकना) भी अच्छा है । लाभ धीरे-धीरे होता है। यदि साधारण स्वास्थ्य में कभी भी खराबी आ जायगी तो रोगका नया आक्रमण हो सकता है।

गठिया और आमवात में भेद—गठिया में संधियों में सोडियम यूरेट (वस्तुत: सोडियम बाइयूरेट) जम जाता है या कानकी हड्डी पर जमता है। यदि इतना सोडियम यूरेट कहीं इकट्ठा हो जाय कि त्वचा तक आजाय और इसके एक कणको निकाल कर सूक्ष्म दर्शक से देखने पर सोडियम यूरेट के रवे (crystals) दिखलाई पड़ें तब तो कोई भी संदेह नहीं रह जाता कि रोग गठिया (gout) है। यदि सोडियम यूरेट इतना न हो कि वह त्वचा तक पहुँच जाय तो भी संभवत: वह इतना हो सकता है कि एक्स रश्मि फोटोग्राफ में दिखलाई पड़ जाय (चित्र देखो)। ऐसी अवस्था में भी रोगके गठिया होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। परन्तु प्रारंभिक अवस्था में संभवत: उपरोक्त दोनों में से एक भी पहचान काम न दे। तब निम्न बातों पर विचार किया जाता है।

गठिया का पहिला आक्रमण साधारणत: पैरके अँगूठे पर होता है। ज्वर रहता है; परन्तु सोडियम सेलिसिलेट से यह ज्वर उतरता नहीं है। बीस वर्ष की कम आयु वालों को गठिया होता बहुत ही कम देखनेमें आता है । गठिया में अकसर केवल एकही संधि में रोग होता है । यदि दो संधियों में रोग उभड़े तो इसके गठिया होने की और भी कम संभावना है। गठिया एक संधि से दूसरी संधि पर कूदा नहीं करता। यदि माता-पिता में से किसी को गठिया पहले हुआ रहा हो तो रोगका गठिया होना बहुत संभव है। जब दोबारा रोग उभड़े तो इस बात से भी सहायता मिलती है कि पहली बार रोग कहाँ उभड़ा था । परन्तु कभी-कभी डाक्टरों को भी ठीक पता नहीं चल पाता। केवल सोडियम यूरेट का दिखलाई पड़ जाना ही पक्का प्रमाण है ।

अन्य रोगों और आमवतमें अन्तर—अस्थि-संधिप्रदाह (osteo-arthritis) में हड्डियाँ भीतर-ही-भीतर बढ़ कर कुरुप हो जाती हैं। आमवत और आमवातीय संधिप्रदाह में हड्डी ज्यों-की-त्यों रहती है। इसलिये एक्स-रश्मि चित्र लेने से तुरन्त पता चल जाता है। क्षयजनित संधि-रोग (tuberculous diseases of joints)

साधारणतः तीनसे लेकर पाँच वर्ष तकके बच्चोंको ही होता है। इसमें पीड़ा आदि लक्षण बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होते हैं। आतशक के कारण जो संधिप्रदाह (syphilitic arthritis) होता है वह आसानीसे पहिचान लिया जा सकता है, विशेष कर यदि वासरमान (wassermann) जाँच की जाय (देखो आतशक)। छोटे बच्चोंको भी यह रोग हो सकता है क्योंकि उनको अपनी माँ से छूत लग सकती है। कभी-कभी संधिप्रदाहको छोड़ अन्य कोई लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते। तब अवश्य भूल हो सकती है।

आमशूल—आँवके कारण पेटमें मरोड़ होनेको आमशूल कहते हैं। आमातिसारका यह एक लक्षण है। (देखो आमातिसार।)

आमातिसार (dysentry)—आमातिसार, आँव, मरोड़ या पेचिस उस रोगको कहते हैं जिसमें आँवके साथ बहुतसे दस्त होते हैं (चिकने सफेद लसदार मलको आँव कहते हैं)। लोग सभी आमातिसारोंको एकही रोग समझते हैं और समझते हैं कि एकही कारणसे यह उत्पन्न होता है। परंतु विज्ञानसे यह सिद्ध होचुका है कि कमसे-कम दो प्रकारके आमातिसार हैं जो एक दूसरेसे पूर्णतया भिन्न हैं। इनकी चिकित्सा भी भिन्न रीतिसे होती है। एक प्रकारका आमातिसार अमीबा (amoeba) के कारण होता है। यह एक बहुतही नन्हा जन्तु या कीटाणु है जो केवल सूक्ष्म दर्शक-यन्त्र (खुर्दबीन) से ही देखा जा सकता है। आमातिसारकी दूसरी जाति एक बहुत नन्हा वानस्पतिक जीवाणु (bacillus, बसीलस) के कारण होता है। इसीलिये एक आमातिसारको अमीबिक (amoebic) और दूसरेको बैसिलरी (bacillary) आमातिसार कहते हैं।

आमातिसारोंके उपरोक्त भेदको जनसाधारण केवल लक्षण देख कर नहीं जान सकते। इनकी जातियोंका पक्का पता लगाना केवल डाक्टरोंका काम है, सो भी उन्हें सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्रकी सहायता लेनी पड़ती है। इसलिये जब कभी आमातिसार हो तो किसी होशियार डाक्टरसे चिकित्सा करानी चाहिये।

भारतवर्षमें आँव (आमातिसार) का रोग बहुत प्रचलित है। यह सभी गरम देशोंमें बहुत होता है। जहाँकी जल-वायु गरम और नम होती है वहाँ यह रोग अधिक प्रचण्ड रूप धारण करता है। उदाहरणतः, यह दक्षिणबंगालमें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक भयंकर रूपमें पाया जाता है। फिर वर्षा ऋतुमें इस रोगसे ग्रसित व्यक्तियोंकी संख्या बढ़ जाती है। अतिसार और आमातिसारसे ग्रस्त रोगियोंकी संख्याओं में अनुपात है। जब एक रोग बढ़ता है तो दूसरा भी साथही बढ़ता है। देखा गया है कि बहुत बार साधारण अतिसार वस्तुतः हल्के रूपमें आमातिसार ही है जो कभी अमीबिक और कभी बैसिलरी होता है।

अमीबा और बैसिलसके वर्तमान होनेके अतिरिक्त इस रोगके उत्पन्न होनेके कारण जल-वायु और ऋतु भी हैं। अकसर ठंढ लग जाने या आहारमें गड़बड़ी होनेसे या सड़ा-गला भोजन करनेसे अथवा अशुद्ध पानीसे, यह रोग उभड़ जाता है। गरीबीके कारण अकसर आधा पेट खा कर रह जाने पर, या अन्य किसी रोगसे दुर्बलता होने पर, या लड़ाई के मैदानमें बहुत कड़ी मेहनत करने पर भी यह रोग अकसर उभड़ता है।

लक्षण—आँवका पहला लक्षण यह है कि पेटमें नाभिके पास मरोड़ मालूम पड़ता है। अकसर मचली भी आती है। ये लक्षण ऊपर बतलाये गये उत्पादक कारणोंमें से किसी एक के बाद साधारणतः दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरणतः, असावधानीके कारण रातमें ठंढी हवामें बिना काफी ओढ़ना ओढ़े सो रहने पर, विशेष कर खुले पेट पर ठंढी हवा लगती रहने पर, या यदि ओढ़ना ओढ़ा भी गया है तो वह काफी गरम न रहने पर, सबेरे उस रोगके प्रथम लक्षण दिखाई पड़ते हैं। दर्दके बाद दस्त शुरू होते हैं और कई बार पतले दस्त होते हैं। ऐसा एक, दो या तीन दिन तक हो सकता है। अभी तक रोग अतिसार अर्थात् पेटझरी ही जान पड़ता है। तब पेटका मरोड़ धीरे-धीरे तीव्र हो जाता है और गुदाके पास जलन और छरछराहट होती है और दस्त करनेमें अधिक जोर लगाना (काँखना) पड़ता है। दस्त पतला रहता है और अब उसमें सफेद लसदार पदार्थ, जिसे आँव कहते हैं और जिसके कारण रोगका नाम आँव पड़ा है, रहता है। अकसर खून भी रहता है। जब रोग अधिक प्रचण्ड हो जाता है तो दस्तमें मल नहीं रहता, केवल छिछड़ी-छिछड़े रहते हैं; ऐसा जान पड़ता है जैसे कच्चा मांस पानीमें मसल कर बहाया गया हो। दस्तमें विचित्र और बहुत अधिक दुर्गंध रहती है। दिन भर कई बार दस्त मालूम होता है। कभी-कभी तो बरा-

बर मल त्याग करनेकी आवश्यकता जान पड़ती है और इतना न हुआ तो भी एक दिन रातमें दससे लेकर बीस बार दस्त हो सकता है। रोगीके जरा भी चलने पर मल त्यागकी इच्छा बढ़ जाती है। बार-बार पेशाब भी लगता है। थोड़ा बहुत ज्वर भी हो आता है, परन्तु इसकी मात्रा किसीमें कम, किसीमें अधिक, रहती है। कभी-कभी ज्वर इतना कम रहता है कि पता भी नहीं चलता, परन्तु दूसरोंमें चेहरा लाल, त्वचा रूखी, नाड़ी तीव्र और जीभ गंदी हो जाती है। पेटको दबानेसे पीड़ा होती है।

ऊपर रोगके धीरे-धीरे बढ़नेका वर्णन दिया गया है, परन्तु लगभग आधे रोगियोंमें रोगका आक्रमण एकाएक होता है और पहली बारके दस्तमें ही आँव और खून गिरता है और पेटमें बहुत मरोड़ होता है। कभी-कभी तो आमातिसार बहुत तीव्र रूप धारण करता है और आँतका कोई अंश शीघ्र मर जाता है अर्थात् उसमें गैंग्रीन (gangrene) हो जाता है। मरा हुआ अंश काली झिल्लीकी तरह मलके साथ निकलता है। इसके विरुद्ध, कभी-कभी रोग बहुत ही हल्का होता है और साधारण अतिसार होकर ही रह जाता है, परन्तु इन हल्के रोगोंमें भी डर रहता है, क्योंकि सब अमीबाजनित आमातिसारोंमें यकृत (liver) के सूज आनेका डर रहता है और इसके कारण अन्तमें वहाँ फोड़ा निकल आ सकता है।

जब आमातिसारके पूरे लक्षण उपस्थित रहते हैं तो कोई भी भूल इसके पहचाननेमें नहीं हो सकती। कठिनाई केवल इसी बातके पहचाननेमें होती है कि यह दो जातियों के आमातिसारोंमें से किस जातिका है। दोनों जातियाँ, यदि उनकी विशेष उचित चिकित्साएँ न की जाँय, जड़ पकड़ लेती हैं और तब जीर्ण-आमातिसार नामक रोग हो जाता है। इसलिये आमातिसारकी चिकित्सा आरम्भसे ही सावधानीसे करनी चाहिये।

चिकित्सा—चिकित्सा तीन तरहसे की जाती है, दवा, स्वास्थ्य-सुधार और उचित भोजन। रोगीको चारपाई पर बराबर लेटे रहना चाहिये और जब तक खून और आँवके दस्त बंद न हों तब तक उसे चारपाई परसे नहीं उठना चाहिये। चारपाई पर पड़े-ही-पड़े दस्त करानेके लिये बेड-पैन (bed-pan) का प्रबन्ध कर देना चाहिए। यदि आरम्भमें ही रोग पहिचान लिया जा सके और ज्ञात हो जाय कि आमातिसार है तो पहले रेंडीका तेल दिया जाना चाहिये जिसमें पेटका विकार सब यथासम्भव शीघ्र निकल जाय। डाक्टर लोग थोड़ी अफीम भी देते हैं जिससे मरोड़ कम हो जाय। अमीबाजनित आमातिसारमें एमेटिन emetine) नामक दवा बहुत लाभ करती है। यह सुबह शाम कई दिनों तक दी जाती है और जैसे-जैसे दस्तका रूप साधारण होता जाता है तैसे-तैसे एमेटिनकी मात्रा घटा दी जाती है। आमातिसारके जातिकी अनुसार उचित सिरम (serum) का इञ्जेक्शन भी दिया जाता है। याट्रेन (yatren) एक दवाका नाम है जिसमें कई एक औषधियाँ पड़ती हैं और इससे दस्तोंकी संख्या कम होती है। पहले पेटको एनिमा देकर साफ कर लेते हैं। इस एनिमामें थोड़ा-सा सोडियम बाइ-कारबोनेट (sodium bi-carbonate) घुला रहता है। पीछे याट्रेनका हल्का घोल कुछ कुनकुना कर के गुदामें चढ़ा दिया जाता है।

रोगीको खानेके लिये केवल दूध देना चाहिये। यदि उसके दस्तमें फटे दूधके कण दिखाई पड़ें तो उसे केवल मठा या आधा मठा और आधा दूध मिला कर देना चाहिये। जब दस्तमें आँव न गिरे तब रोगीको थोड़ा साबूदाना दिया जा सकता है और तब धीरे-धीरे उसे ज़रा चावलका माँड और दूध, दालका जूस, आदि दिया जा सकता है। ठोस भोजन उसे बहुत दिनों बाद देना चाहिये। इस रोगमें आँतों के भीतर घाव हो जाता है। इसलिये बहुत दिनों तक भोजन सँभाल कर करना चाहिये। भोजन ऐसा न हो कि कब्ज हो जाय। कब्ज होनेसे पुराने घाव फिरसे खुल जाते हैं।

स्वास्थ्यकी रक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। उसे समयसे भोजन मिलता रहना चाहिये, ऐसा न हो कि उपवास करनेसे रोगी बहुत कमज़ोर हो जाय। उसके ओढ़ने-बिछौने पर भी ध्यान रखना चाहिये जिसमें ठंढ न लगे। दूसरे स्थानमें जानेसे हवा पानी बदलनेके कारण अकसर बहुत लाभ होता है।

जीर्ण आमातिसार—यदि आमातिसार एक महीने तक चले तो इसे जीर्ण-आमातिसार कहा जा सकता है। इतने समयमें इसके लक्षण भी कुछ बदल जायँगे। जीर्ण-

आमातिसार भी अमीबाजनित और बैसलिसजनित होता है और दोनोंकी चिकित्सायें भिन्न भिन्न हैं। रोगी अब बहुत दुबला, कमजोर और थोड़ा रक्ताल्पताग्रसित होगा और उसे कठिनाई यह पड़ेगी कि वह कितना खाये और कितना न खाये। कम खानेसे दिनों दिन उसकी शक्ति क्षीण होती जाती है, तिस पर भी आवश्यकतानुसार भरपूर खा नहीं पाता; क्योंकि डर रहता है कि अधिक खानेसे रोग बढ़ जायगा। यह आवश्यक है कि डाक्टर जाँच कर ले कि यह जीर्ण-आमातिसार ही है और मलकी जाँचसे पता लगा ले कि यह किस जातिका आमातिसार है। डाक्टरकी ही चिकित्सा होनी चाहिये।

भोजनके लिये केवल दूध लेना अच्छा है। परन्तु प्रत्येक सेर दूधमें छः ग्रेन सोडियम साइट्रेट (sodium citrate) मिला लेना चाहिये। इससे यह अधिक शीघ्र पचता है। यह भी आवश्यक है कि दूध थोड़ी मात्रामें कई बार पिया जाय। इसे छोटी-छोटी घूँटोंमें पीना चाहिये। यदि इसे रोगी जल्दी से घटाघट (अधिक-अधिक मात्रामें) पी जाता है तो आमाशयमें जाकर इसके बड़े-बड़े थक्के बन जाते हैं जिनका पचना कठिन होता है। एक-एक घंटे पर आधी छटाँक या इससे कुछ थोड़ा कम ही दूध पीना चाहिये। यदि दिन रात बराबर घंटे-घंटे इस प्रकार दूध पिया जाय तो लगभग तीन पाव दूध पेटमें चला जायगा और इतना आरम्भमें काफी होगा। दूधकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ा दी जा सकती है, यहाँ तक कि रोगी चौबीस घंटेमें डेढ़-दो सेर या अधिक दूध पी सकेगा। परन्तु रोगीको दूध पिलानेके लिये जगाना नहीं चाहिये। जब-जब उसकी नींद खुले तो समयके अनुसार उसे थोड़ा-बहुत दूध दिया जा सकता है। चाहे दूधकी मात्रा कितनी भी कम हो उसे धीरे-धीरे चायकी तरह पीना चाहिये। दूध कुनकुना (शीतोष्ण) रहे तो साधारणतः अधिक जल्द पचता है। कच्चा दूध नहीं देना चाहिये। उसे पहले औटा लेना चाहिये। यदि दूध हजम न होता हो तो मट्ठेका प्रयोग करना चाहिये, या दूधमें उसका तिहाई भाग चूनेका पानी मिला लेना चाहिये। चूना और पानी झकझोर कर रख देनेके बाद जब सब चूना बैठ जाता है तब ऊपरसे स्वच्छ जलको अलग कर लेना चाहिये। यही चूनेका पानी है। पेपटोनाइज किया हुआ (peptonised) दूध साधारण दूधसे अधिक जल्द पचता है और जब साधारण दूध न पचे या दूध और चूने का पानी या मट्ठा भी न पचे तो इसकी जाँच की जा सकती है। इसके बनानेकी रीति नीचे दी जाती है:—

पैनक्रिएटिन	५ ग्रेन
सोडियम बाइकारबोनेट	२० ग्रेन

अच्छी तरह मिला लो। इतना आध सेर दूधके लिये काफी होगा। पहले उपरोक्त चूर्णोंको २ छटाँक कुनकुने पानीमें घोलो और इसमें फिर ताजा कुनकुना दूध आध सेर छोड़ो और मिलाओ। पचीस-तीस मिनट तो कुनकुना ही रहने दो। फिर तीन मिनट तक दूध को उबालो। तब इसे ठंढा कर लो और यथासंभव शीघ्र खर्च करो।

यदि रोगीकी प्रबल इच्छा हो कि दूध और मट्ठे के अतिरिक्त और कुछ खाये तो फुलके (रोटी) का थोड़ा सा अंश कभी-कभी दिया जा सकता है। परन्तु जितनाही उसे ऐसी चीजें कम दी जायँ उतना ही अच्छा है। संभव है रोगी को पहले केवल दूध पीकर रहने के कारण कुछ कमजोरी जान पड़े, परन्तु कुछ दिन में आदत पड़ जाने के बाद वह केवल दूध पीकर आसानी से रह सकता है। इस रोग में इसबगोल लाभ करता है। यह किसी भी अत्तार या पंसारी के यहाँ मिल सकता है। आधा तोला इसबगोल को आधे घंटे तक मंद आँच पर पानीमें उबालना चाहिये। फिर उसे कपड़े में छान लेना चाहिये। आरम्भमें पानी इतना हो कि अन्त में करीब एक प्याला काढ़ा निकले। इसमें इच्छानुसार नींबू निचोड़ कर इसे स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। दिनमें इतना-इतना काढ़ा दो बार या तीन बार लिया जा सकता है। काढ़ा ठंढा या कुनकुना जैसा पसंद आये दिया जा सकता है।

आमाशय (stomach)—पेटके भीतर कई अवयव होते हैं जिनमें आमाशय भी एक है। हम जो भोजन खाते हैं वह अन्न प्रणाली द्वारा मुखसे आमाशयमें जाता है। जब हम कहते हैं कि अन्न पेटमें जाता है या खूब पेट भर खाया तब हमारा अभिप्राय वस्तुतः आमाशय रहता है। परन्तु जब हम कहते हैं कि साँडके सींग मारने से पेट फट गया और आँते बाहर निकल आईं तब हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं होता कि आमाशय फट गया। आमाशय, अँतड़ी, गुर्दा, यकृत आदि कई अवयव सब पेटके भीतर

॥ राजयक्ष्मा रोग में लाभकारी आहार निर्देश ॥

[लेखक—श्री वैद्य पारसनाथ जी पाण्डेय ए० एम० एस०]

राजयक्ष्मा रोग में आहार का अधिक महत्व होता है। चिकित्सामें यश, अपयशकी प्राप्ति आहार पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इसलिये युक्तिपूर्वक योग्य भोजन रोगी की पाचन-शक्ति और रुचिके अनुकूल देना चाहिये। जैसा कि युक्ताहारके विषयमें कहा है:—

अन्नेन पूरयेदर्द्धं तोयेन तु तृतीयकम्।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥ तत्व ज्ञान ॥

उदर (पाक स्थली=Stomach) का आधा अन्नसे और तीसरा हिस्सा जलसे भरना चाहिये और शेष चौथे हिस्से को वायु संचारके लिये खाली छोड़ रखना चाहिये।

स्नेह—स्नेह युक्त आहारसे शरीरकी प्रतिकारशक्ति बढ़ती है और रोगी दुबला होने नहीं पाता। यदि वेदना-विशेषसे एक-दो दिन अहार नहीं भी खाए तो रोगी निर्बल नहीं होता।

प्रोटीन—प्रोटीन से शरीरकी सहज शक्ति बढ़ती है।

कार्बोज—कार्बोज से रोग प्रसारमें सहायता मिलती है।

खटिक—खटिकसे खटिकावरणमें सहायता मिलती है।

इसलिये क्षय रोगीकी आहार राशमें प्रोटीन (Protine) वसा, और खटिक (Calcium) की मात्रा विशेष होनी आवश्यक है।

सुपथ्य द्रव्य—बकरीका दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घी, मलाई आदि। बकरी के दूध आदिके अभावमें स्वस्थ गाय का दूध लेना चाहिये। जो रोगी वसा नहीं पचा सके उसे स्त्री या गधीका दूध देवे। उन गायोंके दूधमें, जो सदा घरोंके भीतर पाली तथा बांधकर रक्खी जाती हैं विटेमिन डी० की मात्रा कम होती है। (मिसेज हेमन्स। 'सायंटीफिक अमेरीकन')

अमृतोपम धारोष्ण दूध—बाहर चरने वाली निरोग गायसे शुद्ध पात्रमें शुद्ध हाथोंसे दूध निकालना चाहिये। यह अत्यन्त गुणकारी होता है।

माँसवर्गमें—केकड़ा, घोंघा, कछुआ, खरगोश, बटेर, तितिर, सारङ्ग, हरियल मोर, मुर्गा, बकरा, हरिण और वर्मी-मछलीका मांस हितकर होता है।

अन्नवर्गमें—गेहूँ, रक्तशालि, साठीके चावल, और मूंग साबूदाना आदि हितकर है। यथा—

समातीतानि धान्यानि कल्पनीयानि शुष्यताम्।
लघूनि हीनवीर्याणि तानि पथ्य तमानि हि ॥ चरक ॥

शाकवर्गमें—टोमाटो, प्याज, परबल और लौकी दे।

फलवर्ग में—नारङ्गी, मोसमी, ताजे अंजीर, द्राक्षा, पाती नीम्बू, और आंवला दे।

अण्डावर्गमें—मुर्गा, हंस, चकोर, मोर और गौचिड़ाका अण्डा दे। जैसा कि कहा है:—

धार्त्तराष्ट्र चकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि।
चटकानाञ्च यानि स्युरण्डानि च हितानि च ॥
रेतः क्षीणेषु कासेषु हृद्रोगेषु क्षयेषु च।

(चरक सू० अ० २७

उपरोक्त अण्डे रेतःक्षीण, क्षत क्षीण, हृद्रोग और कासमें लाभकारी तथा मधुर अविपाकी और शीघ्र बलवर्द्धक हैं।

नोट—क्षय-रोगी को दिन भरमें ऽ१॥ अच्छा दूध और दो अण्डोंकी जरदी लेनी नितान्त आवश्यक हैं।

बृंहण-यूष—

कछुएका मांस १ छटांक, बकरेका यकृत १ छटांक
पीपलका चूर्ण दो आना भर
छोटी इलायची चूर्ण ।) ,, घी २ तोला।

इन सब को ऽ२ सेर जल में मन्द-मन्द आग से पकाकर २ छटांक यूष बना ले और गुनगुना रहे तो पान करावे। चिकित्सक रोगीकी अवस्थाके अनुसार इसकी मात्रा बढ़ा घटा कर प्रयोग करा सकते हैं। इसके पीनेसे यकृत् की क्रिया ठीक होती है और रक्ताल्पता दूर होकर शरीरका भार बढ़ता तथा ज्वर कम होता है। अर्क प्रकाशमें बकरे के हृदय और बकरीके दूधका अर्क सितोपलादि चूर्णका अर्क क्षय रोगमें देना लिखा है। यथा—

प्र० यो०—अजस्य हृदयार्कास्तु तन्मातृ दुग्ध साधितः।
द्वि० यो०—उर्ध्व मूर्ध्वं द्विगुणिता स्त्वगेला पिप्पली तुगाः।
सितो पलार्कः स क्षौद्रः सघृतो राजयक्ष्मनुत् ॥

शरीरको पुष्ट करने वाले पदार्थोंमें मांस प्रमुख है जैसा कि कहा है—

"शरीर बृंहणे नान्यत् दार्ढ्यं मांसाद्विशिष्यते" (चरक)

इसलिये कहा है कि—

माँसेनोपचिताङ्गानां मांस मांस करं परम् ।

तीदणोष्णो लाघवाच्छस्तं विशेषा न्मृगपक्षिणाम् ।

शोषिणो वर्हिणं दद्याद्वर्हिशब्देन चोरगान् ॥ (चरक)

मांससे परिपुष्ट मांसाहारी जीवों का मांस मांसको अच्छी प्रकार बढ़ाता है। यक्ष्मा में मृग और पक्षियोंका मांस तीक्ष्ण उष्ण और लघु होने से विशेष हितकारी है। क्षय रोगी को मोरका मांस या मोर नामसे गिद्ध, घूग्घू, मुर्गा और नीलकंठ आदि पक्षियों का मांस विधिवत् बनाकर दे। तित्तिर के नामसे कौवेका मांस और वर्मि मत्स्यके नामसे सर्पका मांस दे। और भी कहा है:—

एते सिंहादिभिः सर्वे समाना वायसादयः ।

रसवीर्यविपाकेषु विशेषाच्छोषिणे हिताः ॥ (चरक)

सिंह, बाघ, भेड़िया, भालू, बिल्ली और सियार आदि मांसाहारी जन्तुओंकी तरह कौवे, चिल्ल और बाज रसवीर्य एवं विपाकमें गुणकारी होते हैं तथा शोष रोगी के लिये विशेष हितकर हैं। इनके अतिरिक्त केकड़ा, कछुआ और बकरा भी प्रशस्त गुणकारी है। जैसा कि—

कोषस्थानां मध्ये—कृष्णकर्कटस्तेषां वल्यः कोष्णोऽनिलापह ।

शुक्लः सन्धान कृत्सृष्ट विएमूत्रोऽनिल पित्तहाः ॥ (सुश्रुत)

कोषस्थ जन्तुओं में काला केकड़ा बलकारी, ईषदुष्ण और वायुविकार नाशक है। सफेद केकड़ा जोड़ने वाला, वायुपित्त विकार और मलमूत्रको साफ करने वाला है।

कछुए का मांस बलकारक, वायुनाशक, शुक्रवर्द्धक, नेत्र हितकारक, मेधा और स्मृति वर्द्धक तथा यक्ष्मा नाशक है। यथा—**वल्यो वातहरो वृष्यश्चक्षुष्यो वल वर्द्धनः ।**

मेधास्मृति करः पथ्यः शोषघ्नः कूर्म उच्यते ॥ (चरक)

बकरे का मांस न तो अधिक शीतल न भारी एवं न अधिक स्निग्ध होता है अतः त्रिदोषघ्न है। अभिष्यन्दी (स्रोतों में रुकावट करने वाला) नहीं है। मनुष्य शरीर और धातु के अनुकूल होनेसे परम पुष्टिकारी है। यथा—

नाति शीत गुरु स्निग्धं मांसमाजमदोषलम् ।

शरीरधातुसामान्या दन भिष्यन्दिवृंहणम् ॥ (चरक)

नोट—सर्पादिकोंका मांस गुप्त रीतिसे विधिवत् स्वादु बना कर एवं युक्तिपूर्वक प्रशंसादि से सुरुचि उत्पन्न कराने के बाद रोगीको खानेके लिये दे क्योंकि अनभ्यासके कारण भेद जानने पर रोगी खानेसे इनकार और घृणा करेगा या खाए हुए आहार को वमन कर देगा। इसलिये इस रहस्य को सर्वथा गुप्त रक्खा जाता है। जो किसी तरह भी मांस नहीं आत्मसात् कर सकते उन्हें औषधि सिद्ध घी मांस का सेवन कराया जा सकता है।

नोट—सांप, मछली जातिकाही एक जन्तु है, इसमें चर्बी अधिक होती है। व्रण और नाड़ीव्रण (Sinus) पर इसकी सफल प्रतिक्रिया प्रसिद्ध है इसलिए अन्तः व्रणीय यक्ष्मा रोगीको सांपका मांस बहुत लाभ करता है। सांपका सिर और पूँछ काट कर फेंक दिए जाते हैं, बाद में धड़को बन्द मुँह पात्रमें काफी जलके साथ पकाया जाता है और सम्यक्सिद्ध होने पर पात्रसे निकालकर बीचों-बीच फाड़कर काँटे बाहर कर टुकड़ा २ बना मक्खन वा घी में तलकर सुपथ्य बना लिया जाता है।

यक्ष्मा रोगमें मांसका प्रयोग अनिवार्य रूपसे करना चाहिये, क्योंकि दैहिक पुष्टि होना इसके बिना असम्भव-सा है जैसा कि शारीरिक रचना बतलाती है। यथा—

अर्द्धञ्च प्रायेण शरीर भारस्य निष्पाद्यते पेशीभिरेव ।

शारीर बलं च पेशी निष्ठं भूम्ना । (प्रत्यक्ष शारीरम्)

समस्त द्रव्योंकी वृद्धि समान द्रव्यके संयोगसे होती है अतः। क्षयरोगीकी आहार राशिमें उन द्रव्योंका होना नितान्त आवश्यक है जिनकी शरीरमें कमी हो गई हो। आयुर्वेदमें इसी अटल सिद्धान्त पर सर्वदा चिकित्सा होती आई है। यथा—

सर्वदा सर्व भावानां सामान्यं वृद्धि कारणम् । (चरक)

तथा च—(क) **सं ते मज्जा मज्जा भवतु, समुते परुषा परुः ।**

सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्य मपि रोहतु ॥

(ख) **मज्जा मज्जा संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।**

असृकृते अस्थि रोहतु मांस मांसेन रोहतु ॥ अथर्व०का०४ अ०

(क) हे पुरुष! तेरी मज्जाकी धातु मज्जाके साथ मिलकर बढ़े, पोरुसे पोरु मिलकर अच्छा हो जाय और विनाश प्राप्त मांसका भाग भी उचित रीति से ठीक हो जाय एवं टूटी हुई हड्डी भी हो तो वह भी ठीक ठीक मिलकर जुड़ जावे।

(ख) मज्जा धातुके साथ मज्जाको चर्मसे चर्मको मिला दिया जाय तो क्षत शीघ्र ही भर आना सम्भव है। इसी प्रकार रुधिर भी, रुधिरकी प्रणालियों के जोड़ मिला देने पर जुड़ जाती हैं और हड्डीको हड्डीसे मिला दें तो जुड़कर ठीक हो जाती है। इसी प्रकार मांस मांसके साथ मिला देनेसे वह भी मिलकर एक हो, पुष्ट हो जाता है।

नोट—घन, अच्छ और अच्छतर ये मांस पाकके तीन प्रकार हैं। अवस्थाके अनुसार मांसपाक की व्यवस्था करनी चाहिये। मसालोंको उचित मात्रासे ले और मोटा-मोटा पीसकर पोटलीवद्ध परिपाकके समय छोड़े और सिद्ध होनेपर उसे निकाल डाले।

जो कट्टर निरामिषहारी हैं उनको जौ, गेहूँका आटा दूधमें सिद्धकर घृत मिश्रित देना अच्छा है। सत्तूमें घी मधु और मिश्री मिलाकर भी दिया जाता है। यथा—

यवगोधूम चूर्णं वा क्षीर सिद्धं घृतलुप्तम्।

सक्तून् वा सर्पिषा क्षौद्र सिताक्तान् क्षयशान्तये॥ (चरक)

उपर्युक्त आटेका प्रयोज्यरूप 'पॉव रोटी' या डबलरोटीभी क्षय रोगमें देना अच्छा है और यह आयुर्वेदोक्त एवं भारतीय खाद्य है। कतिपय महानुभावोंको इसके नाम मात्र से ही विदेशी गन्धकी घृणाके साथ साथ विस्मय विन्यास होता होगा कि भला यह 'पॉव रोटी' आयुर्वेदमें कहां और किस रूपमें है? नहीं, यह बात बिलकुल आयुर्वेद की है और यह कोरी स्वदेशी चीज है। इसके संस्कृत नाम—कान्दव, कान्दवीक और कन्दुपक्व हैं और यही कान्दव ही 'पॉव रोटी' है। इसका वर्णन इस प्रकार कवि कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक प्राचीन नाटक ग्रन्थमें समुपलब्ध होता है। एक स्थल पर विदूषक अपनी भाषा में कहता है कि–**'विपणे कन्दुवित मे उदराभ्यन्तरं दज्झइ'**

अर्थात्—विपणि कन्दुरिव उदरं मे दह्यते। यानी बाजार के कन्दुयन्त्र की नाईं मेरा उदर जल रहा है। कवि कालिदास के इस स्पष्ट वाक्यसे मालूम होता है कि उस समयमें पॉवरोटी बनाने और बाजारमें बिक्री करनेकी प्रथा पूर्ण रूपेण भारतमें प्रचलित थी। यही कारण है कि इसका सन्दर्भ उक्त काव्यमें पाया जाता है। आगे चलकर आप देखें—कूर्म पुराणमें इसके खानेका विधान स्पष्ट शब्दोंमें वर्णित है। यथा—

कन्दु पक्वानि तैलेन पयसा दधि सक्तवः।

द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेह तान्यपि॥

अर्थात्—कूर्म पुराण का यह आदेश है कि कन्दुपक्व (पॉव रोटी) तैलपक्व और दुग्धपक्व भोज्यको, दधि एवं सत्तु को शूद्रके घरका होने पर भी द्विज खा सकते हैं।

तथा च 'हारीते'–**कन्दुपक्वं स्नेह पक्वं पयसा दधि सक्तवः।**

एतानि शूद्रान्न भुजो भोज्यानि मनुर ब्रवीत्॥

पाठक! आगे भगवान् मनुकी दूसरी सम्मति देखें जैसा कि "कान्दव शाला (पॉव रोटोकी भट्ठीका स्थान) की शुद्धि के विषयमें लिखा है—

गोकुले कन्दु शालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः।

अमी मांस्यान्यचिन्त्यानि स्त्रीषु बालातुरेषु च॥

(शुद्धि स्तोत्रेति)

अर्थात्—गोशाला, कन्दुशाला, कोल्हू, ईखका कल, स्त्री, बालक, और रोगी सदा शुद्ध है। इनकी शुद्धतामें तर्क वितर्क न करे ये सर्वदा स्वतः शुद्ध है। वर्तमान युग में भारतका शिक्षित समाज किसी भी बातकी सत्यता तब तक स्वीकार नहीं करता जब तक उसपर पश्चिमीय मुहर न पड़ जाय, किन्तु मेरे पाठक सर्वमान्य 'चरक संहिता' की ओर दृष्टिपात कर मेरे कथनमें सत्यता की मात्राका स्वतः अनुभव करें। चिकित्सक चूड़ामणि चरकर्षि अपनी संहिताके स्नेह स्वेदाध्यायमें स्वेदन कार्य सम्पादक यन्त्र की रचनाके विषय में लिखते हैं कि "द्विपुरुष प्रमाणं मृण्मयं कन्दु संस्थानम्" अर्थात् कन्दु संस्थान (पॉव रोटीकी भट्ठी) की तरह दो पुरुष के बराबर लम्बा मिट्टी का यन्त्र स्वेदनार्थ निर्मित करना चाहिये। अब आपको "कन्दु संस्थान" चरक संहिता में मिलनेसे विशेषतया विदित हो गया होगा कि पॉव रोटी और उसके निर्मापक यन्त्रसे भारतकी सर्वसाधारण जनता अवगत थी। वैद्यगण पॉवरोटीकी भट्ठी तुल्य यन्त्रसे स्वेदन कार्य सम्पादन करते थे। आज कल यही कन्दु-यन्त्र पॉवरोटी बनानेके काममें आता है। अब आप इसके बनानेकी विधि भी एक प्राचीन प्राणाचार्यके स्वर्ण अक्षरोंमें देखें। यथा—

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां लवणान्विताम्।

विनीय सन्धानं कश्चित् स्थापयेद्भाजने नवे॥

चण्डातपे तावदद्धेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात्।

उद्धृत्य च पुनः पश्चात्सन्नयेत् दृढ पाणिना॥

ततोऽपूपाकृतीन् कुर्यात् खजमूर्च्छितया तथा।

भूर्यङ्गारे प्रतप्ते तु कन्दुगर्भे निवेश्य च॥

पङ्केन रन्ध्रमालिप्य स्वेदयेत्तान् यथाविधि।

अनेन विधिना सिद्धं कान्दवं कथितं बुधैः॥

कान्दवं बलकृद् वृष्यं त्रिषु दोषेषु पूजितम्।

सद्यो रुचिकरं हृद्यं शीघ्रमिन्द्रिय तर्पणम्॥

दुग्धैः मांस रसै र्वापि कान्दवं भक्षयेन्नरः।

श्वास कास ज्वरच्छर्दि मेह कुष्ठ क्षयापहम्॥

'इति वृन्दनिघण्टौद्रव्य विज्ञानीये काण्डे'

—०—
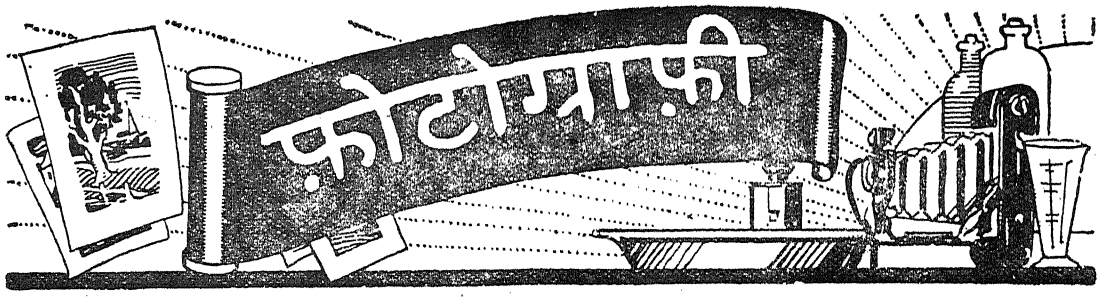
एनलार्ज करना

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद]

चित्र नं० १

इस चित्रमें घर पर बने हुए एनलार्जरकी भीतरी बनावट दिखाई गई है। कारखानेके बने एनलार्जर भी बहुत कुछ इसी मेलके होते हैं। क–रोशनीको ऊपर नीचे करनेका प्रबन्ध; ख–ढक्कन जिससे रोशनी बाहर न निकल सके; ग–छड़ जिसके एक ओर बिजलीका बल्ब लगा रहता है; घ–खड़े स्तंभ को ठीक खड़ा रखनेके लिए दो 'तान'; च–बिजलीकी बत्ती, यह दुधिया (ओपल) हो तो अच्छा हो; ज–बक्सनुमा बत्ती-घर जो प्रकाशको बाहर निकलने से रोकता है; त–कन्डेंसर, अर्थात् बड़े व्यास का दोहरा लेंज जो प्रकाशको एकत्रित कर पहले नेगेटिव पर और फिर लेंज पर भेजता है, द–खड़ा स्तंभ और उसपर ऊपर नीचे चलने वाली नली; न–बत्ती-घरकी पेंदी, इसके किनारे उठे रहते हैं जिसमें संधिसे प्रकाश बाहर न जा सके; प–पटरी, ऐसी दो पटरियां लगी रहती हैं और इन्हींके बीच नेगेटिव होल्डर डाल दिया जाता है; फ–कोनियां (brackets) जिसके ऊपर पटरी और बत्तीघर कसा जाता है बत्तीघर खड़े स्तंभ पर कहीं भी कसा जा सकता है; ब–फोकस करनेकी घुण्डी म–वह छड़ जिसके सहारे एनलार्ज करने वाला लेंज ऊपर नीचे चलाया जा सकता है; भ–भाथी इसीके निचले किनारे पर एनलार्ज करने वाला लेन्ज लगा रहता है। यह चित्रमें नहीं दिखाई पड़ रहा है। उस लेंजको बढ़िया ऐनस्टिगमेट (anastigmat) होना चाहिए। भाथी बत्तीघरके नीचे जुड़ी रहती है; य–नेगेटिव होल्डर, यह दो शीशोंके किनारोंको कागज या फीतेसे जोड़कर और पुस्तकाकार बनाकर तैयार किया जा सकता है। इन शीशोंके बीचमें काले कागजका मास्क (mask) और उसपर फिल्म-नेगेटिव रक्खा जाता है; र–रबड़, जो नेगेटिव होल्डरके दोनों शीशोंको बांधे रहता है; ल–बत्तीघरके चारों पार्श्वोंको जोड़ने वाली L–आकार की पट्टी ;
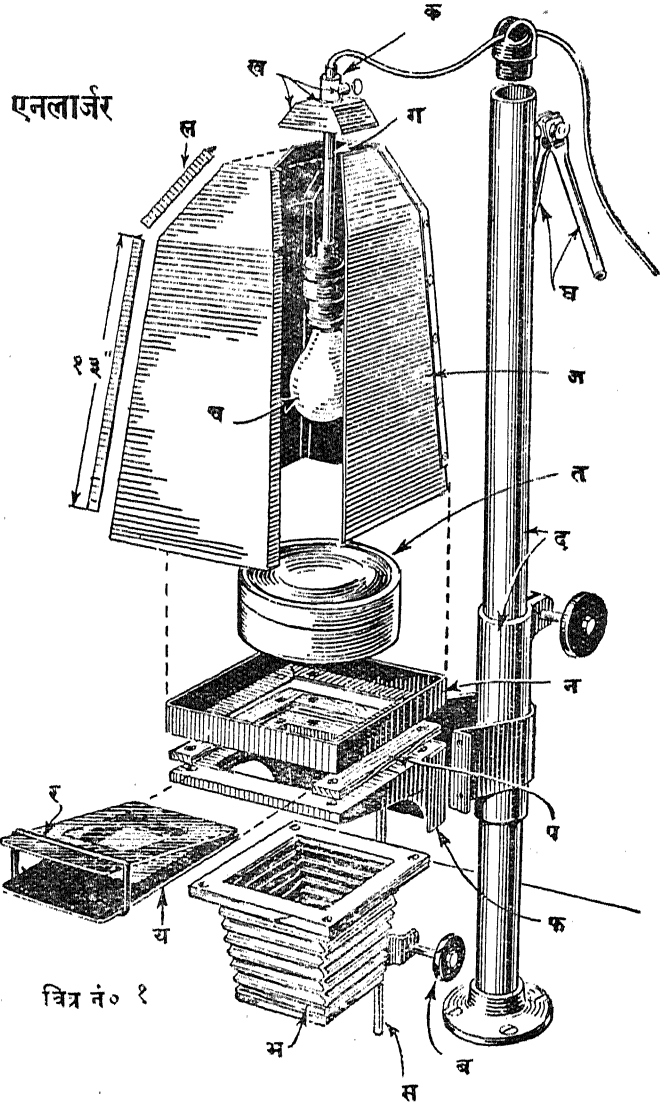
प्रारंभिक—बड़े पैमाने पर फोटो से वह अक्सर अधिक सुन्दर जान पड़ता है। कई बार, जब समूचे नेगेटिवसे बना चित्र कलाकी दृष्टिसे किसी कामका नहीं रहता, नेगेटिवके केवल एक अंशको बड़ा करने पर बहुत सुन्दर चित्र मिलता है। मिनियेचर नेगेटिवोंको तो ऐनलार्ज (बड़ा) करना ही पड़ता है क्योंकि वे बहुत छोटे होते हैं। इसलिये सभी फोटोग्राफरोंको एनलार्ज करनेकी रीति जाननी चाहिए।

यदि घरमें बिजली हो तब एनलार्ज करना अक्सर छापनेसे भी अधिक सुविधा जनक होता है। क्योंकि इस कामके लिये ऐसे यन्त्र बनते हैं जो छापनेके चौखटेसे अधिक सुविधा जनक होते हैं। हो सके तो एक खड़ा एनलार्जर मोल लेना चाहिए। इसके कैरियरमें नेगेटिव रख कर (मसालेदार सतह लेंजकी ओर रहे) फोकस करनेसे नीचेके तख्ते पर नेगेटिवकी बड़ी मूर्ति पड़ती है। फोकस ठीक हो जाने पर बत्ती बुझा कर तख्ते पर ब्रोमाइड कागजका एक टुकड़ा लगा देना चाहिए। फिर बत्ती जला कर प्रकाश दर्शन देना चाहिए। जांचके लिये पहले कागजके भिन्न भिन्न भागों पर तीन-चार विभिन्न प्रकाश दर्शन दे कर कागज को डेवेलप करना चाहिए। परिणाम देख कर अन्दाज लग जायगा कि कितना प्रकाश दर्शन ठीक होगा। तब पूरे कागज पर वही प्रकाश दर्शन दे कर एनलार्जमेंट तैयार करना चाहिए। जो लोग ब्रोमाइड (या गैसलाइट) पर छापना जानते हैं वे आरम्भ से ही अच्छे एनलार्जमेंट बनाते हैं।

भीतरी बनावट—खड़े एनलार्जरों में बिजली की बत्ती 'च' का प्रकाश पहले कंडेन्सर 'त' पर पड़ता है। (चित्र १) प्रकाश जब कंडेन्सरसे निकलता है तो नेगेटिवको पार करता हुआ लेंज से हो कर बाहर आता है। ब्रोमाइड कागज नेगेटिव के समानान्तर रहने वाली नीचेकी तख्ती पर रक्खी जाती है। (देखो चित्र २)।

यन्त्रके चल-भाग (बत्ती, कंडेन्सर और लेंज) को ऊपर नीचे खिसका कर पहले एनलार्जमेंटका नाप ठीक कर लेना चाहिए। फिर लेंजको आगे पीछे खिसका कर फोकस बिलकुल ठीक कर लेना चाहिए। कुछ यन्त्रोंमें ऐसा प्रबन्धभी रहता है कि चल भाग को ऊपर नीचे खिसकानेसे लेंज आपसे-आप चलता है और तख्ती पर पड़ने वाली मूर्ति सदा तीक्ष्ण फोकसमें रहती है (चित्र २) अवश्य ही ये यन्त्र मंहगे बिकते हैं।

चित्र नं० २—स्वयं फोकस होने वाला एनलार्जर

इस चित्रमें कोडक कम्पनीका आपसे आप फोकस होता एनलार्जर (auto focus enlarger) है। बत्तीघर को ऊपर नीचे चाहे कहीं भी रखा जाय, प्रवृद्धि तीक्ष्ण फोकसमें रहता है। मनुष्यका दाहना हाथ ऊँचा है जिसके उठा देनेसे रोशनी बुझ जाती है।

फोकस करनेके बाद बत्तीको ऊपर नीचे खिसका कर उस स्थितिमें लाना चाहिए जहां रहने पर एनलार्जमेंटमें प्रकाश सब जगह एक समान पड़ता है (अधिकांश यन्त्रोंमें इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती)।

बिजलीके अभावमें—बिजलीके अभावमें या तो मिट्टी के लैम्प वाले बड़े एनलार्जर (चित्र ३) का प्रयोग करना चाहिए या केवल दिनके प्रकाशसे इनलार्जमेंट बनाना चाहिए। इसके लिये यदि अँधेरी कोठरीके जंगलेके पल्लेमें नेगेटिवसे जरा बड़ा कर लिया जाय और उसमें चित्र ४ के अनुसार प्रबन्ध किया जाय तो काम चल सकता है, परन्तु इसमें कई एक असुविधायें रहती हैं और काम इतना शीघ्र नहीं हो पाता जितना बिजलीके खड़े एनलार्जर से।

एनलार्जमेंटके लिये अच्छे नेगेटिव—केवल उन्हीं नेगेटिवोंसे अच्छे एनलार्जमेंट बन सकते हैं जो खूब तीक्ष्ण हों, स्वच्छ हों, जिनपर खरोंच वगैरह न हो, घनत्व साधारण या कुछ कम हो, और प्रकाशान्तर ब्रोमाइड पेपर के योग्य हो। अब ब्रोमाइड पेपर भी तीन-चार प्रकाशांतर के बनते हैं। यथा सम्भव नेगेटिव के प्रकाशांतर के अनुसार उचित कागज चुनना चाहिए। गैसलाइट पर भी एनलार्जमेंट बन सकता है, परन्तु प्रकाश दर्शन इतना लगेगा कि असुविधा होगी।

प्रकाश दर्शनका अनुमान—यों तो प्रकाश दर्शनका पता पहले बतलाई गई रीतिसे जांच करने पर चल ही जाता है, परन्तु प्रकाश दर्शनका कुछ अन्दाज न रहनेसे जांच में बहुत समय लगता है और कई टुकड़े कागज खर्च होते हैं इसलिये निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए। एक बार किसी एनलार्जमेंट के लिए प्रकाश दर्शनका पता लग जानेपर दूसरे एनलार्जमेंटोंके लिए प्रकाश दर्शनका मोटा अंदाज लगा लेना आसान हो जाता है। प्रकाश दर्शन निम्न बातों पर निर्भर होता है। (१) प्रकाशकी तेजी, (२) नेगेटिवका घनत्व, (३) लेंज छेद, (४) कितना गुना एनलार्जमेंट बनाया जा रहा है और कागजकी तेजी।

चित्र ३—बड़ा एनलार्जर
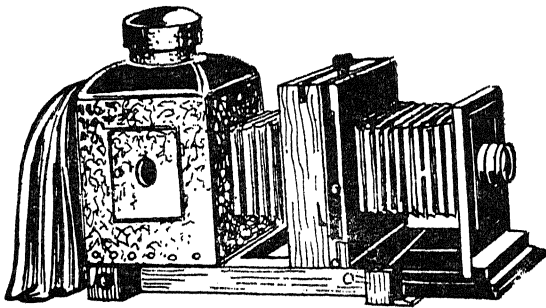
ऐसे एनलार्जरों का रिवाज अब उठता जा रहा है, परन्तु जहाँ बिजली की रोशनी नहीं मिल सकती वहाँ अब भी ऐसे ही एनलार्जरों का उपयोग करना पड़ता है।

आरम्भमें एक ही प्रकारके कागज पर एनलार्जमेंट बनाना चाहिए। इसलिये उसकी तेजी पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। बिजली वाला एनलार्जर हो तो प्रकाशकी तेजी भी प्रायः स्थिर मानी जा सकती है। एनलार्जमेंट पहले सब एक ही लेंज छेद पर बनाये जांय तो अच्छा है। यह छेद बड़ा रहे। कई बिजली वाले एनलार्जरोंकी बनावट ऐसी होती है कि छेद छोटा करने पर प्रकाश सर्वत्र एक समान नहीं पड़ता। दिनके प्रकाशसे और दूधिया या अंधे शीशे द्वारा आये बिजलीके प्रकाशसे एनलार्ज करते समय लेंज छेदको छोटा-बड़ा करनेसे प्रकाश दर्शन उसी अनुपातमें घटता बढ़ता है जैसे साधारण फ़ोटोग्राफीमें, परन्तु कंडेन्सर वाले बिना अंधे या दूधिया शीशा लगे, यन्त्रोंमें लेंज छेद छोटा बड़ा करने से या तो कोई प्रभाव पड़ता ही नहीं या यही प्रभाव पड़ता है कि ब्रोमाइड कागज पर कहीं कम अधिक प्रकाश पड़ता है, जो बुरा है।

चित्र ४—दिनके प्रकाशसे एनलार्ज करने का प्रबन्ध
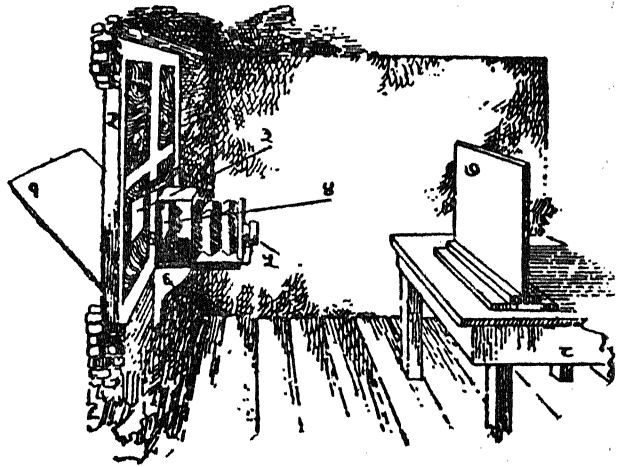
१—सफेद दफ्ती जिससे आसमानकी रोशनी बिखरकर अँधेरी कोठरी की खिड़की पर पड़ती है; २—अँधेरी कोठरीकी खिड़की ३—खिड़की में कटा हुआ नेगेटिव के नाप से जरा-सा छोटा गेंद (खिड़की का शेष भाग दफ्ती या कागज से बंद कर देना चाहिये); ४—कैमरा; ५—कैमरेका लेन्ज, जिसके आगे पीछे करनेसे फोकस ठीक किया जाता है; ६—कोनियां ब्रेकट, जो कैमरेके भार को सँभालती है; ७—खड़ी पट्टियाँ जिनपर ब्रोमाइड कागज आलपीनसे लगा दिया जाता है; ८—मेज, जिसपर खड़ी पटरी रक्खी जाती है।

एनलार्जमेंट जितना अधिक बड़ा बनाया जायगा, प्रकाश-दर्शन उतना ही अधिक लगेगा। यदि डेढ़ गुना बड़ा एन-लार्जमेंट बनानेमें (जब लंबाई और चौड़ाईमें से प्रत्येक डेढ़ गुनी

हो जाती है) १ सेकण्ड का प्रकाश दर्शन लगता है तो २ गुना एनलार्जमेंटके लिये प्रकाशदर्शन होगा २¼ सेकंड, २½ गुनेके लिए ३ सेकंड, ३ गुनाके लिये ४ सेकंड, ३½ गुनाके लिये ५ सेकंड, ४ गुनाके ६ सेकण्ड, ५ गुनाके लिये ९ सेकण्ड और ६ गुनाके लिए १२ सेकण्ड।

नेगेटिवके घनत्वके अनुसार प्रकाशदर्शनके घटने-बढ़नेका अंदाज तो पाठकको होगा ही।

आड़ करना, इत्यादि—हलके भागों पर दफ्तीसे आड़ करके शेष भागोंको अधिक प्रकाश दर्शन देने से अक्सर चित्र पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर बन सकता है। यदि केवल छोटे स्थान पर आड़ करना हो तो दफ्तीको तारके सिरे पर खोंसा जा सकता है। आड़ करते समय हाथको थोड़ा बहुत हिलाते रहना चाहिए।

यदि दफ्तीके भीतर उचित नाप और आकारका छेद काट लिया जाय तो इससे आड़ करने पर चित्र केवल बीचमें छपेगा और वह धीरे-धीरे किनारेकी ओर जाकर मिट जायगा। इसे विनयेट (vignette) करना कहते हैं (देखो चित्र ५ और ६)। छेद वाली दफ्तीको जरा-जरा बराबर हिलाते रहना चाहिए।

चित्र ५—विनयेट (vignette) बनानेकी रीति।
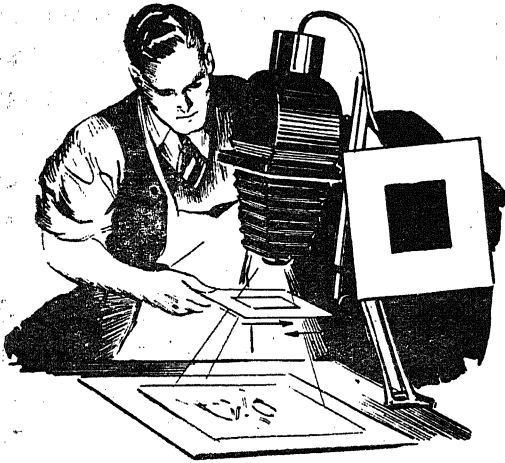
विनयेट बनानेके लिये ब्रोमाइड पेपरसे थोड़ी दूर हट कर दफ्ती रक्खी जाती है जिसमें उचित नापका छेद कटा रहता है। चित्रमें चौकोर छेद दिखाया गया है किन्तु मनुष्य चित्रों (पोरट्रेटों) के लिये आगामी चित्र में दिखाये गये आकारके छेद वाली दफ्ती का प्रयोग करना चाहिये।

एनलार्जमेंटके तैयार हो जाने पर उस पर अक्सर पेंसिल या खड़िया (crayen) या रंग या ब्रुशसे काम किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा बहुत काम करके चित्रको अधिक त्रुटि रहित बना ही सकता है। भौंह पुतली, इत्यादि अंग भी अधिक तीक्ष्ण कर दिये जा सकते हैं।

असफलता के कारण—निम्न कारणों से एनलार्जमेंट गन्दे या धुंधले हो जाते हैं—

अंधेरी कोठरीमें सफेद रोशनीका आना या एनलार्जरके दरारमें रोशनीका निकलना; लाल या नारंगी प्रकाशका ठीक न होना या बहुत चटक होना या बहुत समय तक कागजका लाल प्रकाशमें पड़ा रहना; डेवेलपरमें ब्रोमाइडकी कमी या कर्बोनेटकी ज्यादती; स्थायी होनेके पहले सफेद प्रकाश लगना; अधिक देर तक डेवेलप करना और प्रकाश दर्शन; पुराना कागज अधिक प्रकाश दर्शन; नेगेटिवमें प्रकाशांतरकी कमी; गन्दा लेंज ब्रोमाइड कागजके पास किसी सफेद वस्तुका रहना जिससे ब्रोमाइड कागजसे बिखरे प्रकाशका एक अंश लौटकर फिर ब्रोमाइड कागजपर आ जाता है; नेगेटिवका कैरियरके छेदसे छोटा रहना। (ऐसी दशामें कैरियरमें काला कागज लगाना चाहिए और उसमें नेगेटिवके नापसे जरा छोटा ही छेद काटना चाहिए)।

चित्र ६—विनयेट बनाने के लिये मास्क
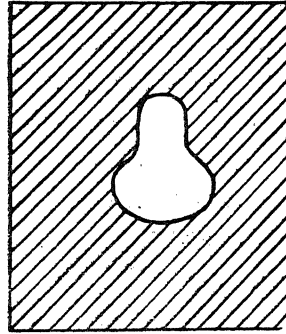
मनुष्य चित्रों (पोरट्रेटों) को विनयेट के रूपमें छापने या एनलार्ज करनेके लिये इस चित्रमें दिखलाये गये छेद वाले मास्क की आवश्यकता पड़ती है।

अतीक्ष्ण एनलार्जमेंट निम्न कारणोंसे उत्पन्न होता है—

अतीक्ष्ण नेगेटिव, अशुद्ध फोकस, बेड़े एनलार्जरोंमें नेगेटिव का अपने घरमें ढीला रहना, जिससे फोकस करने के बाद यह

घट-बढ़ जाता है; नेगेटिवका ठीक उसी स्थानपर न पड़ना, जहां वह नेगेटिव पड़ा था जिससे पहला फोकस किया गया था; फोकस करनेके बाद यन्त्रमें ठोकर लग जाना या किसी भागका खिसक जाना; प्रकाशदर्शन देते समय चलने फिरनेसे या लेंजके खोलनेसे थरथराहट उत्पन्न होना; ब्रोमाइड कागजका ऐंठ जाना; इसका नेगेटिव के समानान्तर न रहना; लेंज पर गर्द या नमी; खराब लेंज, स्वयं फोकस होने वाले यन्त्रका बे ठीक हो जाना।

दानेदार एनलार्जमेंट—प्रत्येक नेगेटिव थोड़ा बहुत दानेदार होता है। इसलिये आठ गुना-दस गुना बड़ा एनलार्जमेंट बनाने पर एनलार्जमेंट दानेदार दिखलाई पड़ता है। परन्तु यदि (१) नेगेटिवके लिये विशेष डेवेलपरका प्रयोग किया जाय। (२) डेवेलप कम किया जाय (मेटल हाइड्रोक्विनोन डेवेलपरसे भी कम समय तक डेवेलप करने पर काफी बारीक दाना आता है) और प्रकाशांतरकी कमीकी पूर्ति कड़े (विगरस) ब्रोमाइड कागजके प्रयोगसे कर ली जाय। (३) फिल्म या प्लेटको प्रकाशदर्शन आवश्यकतासे जरा भी अधिक न दिया जाय (४) ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि नेगेटिवमें धुन्ध उत्पन्न न होने पाये, (५) बहुत तेज प्लेट या फिल्मका इस्तेमाल न किया जाय या केवल उन तेज फिल्मों या प्लेटोंका इस्तेमाल किया जाय जिनके दाने (grain) विशेष रूपसे बारीक होते हैं (ये भी साधारण पैनक्रोमैटिक फिल्मोंके दाम पर बिकते हैं) (६) बिना कंडेसर वाले इनलार्जरका इस्तेमाल किया जाय या कंडेसर वाले यन्त्रमें ओयल (oyal) अर्थात् दूधिया बल्बका इस्तेमाल किया जाय, (७) एनलार्जरके लेंजका छेद (अपरचर) खूब बड़ा रक्खा जाय और (८) एनलार्जमेंट नाममात्र अतीक्ष्ण कर दिया जाय तो एनलार्जमेंट इतने दानेदार नहीं जान पड़ते कि वे बुरे लगें। इस प्रकार दस गुने तक बडे एनलार्जमेंट बनाये जा सकते हैं।

ट्रैंसपेरेंसी—ब्रोमाइडका मसाला बड़े नापके सेलुलाइड या शीशों पर चढ़ा भी बिकता है। इनको ट्रैंसपेरेंसी प्लेट भी कहते हैं। इन पर एनलार्जमेंट करनेसे ये दरवाजों या जंगलोंके शीशोंके बदले या लैम्प के ऊपर लगे शेडों में लगाये जा सकते हैं। यदि प्लेट स्वयं अंधे शीशे पर न बना हो तो उसके पीछे एक अन्धा शीशा भी लगाना चाहिये। इससे चित्र अधिक सुन्दर दिखलाई पड़ता है।

वैज्ञानिक ससांरके ताजे समाचार

अटूट चश्मा—डेटरॉयट (अमरीका) की पाठशालामें प्रत्येक हॉकी या क्रिकेट खेलने वाले लड़केको एक नवीन रूपद पदार्थका चश्मा पहनना होता है। यह पदार्थ सेलुलाइडकी जातिका होता है परन्तु इतना चिमड़ा होता है कि हथौड़ा मारनेपर भी नहीं टूटता। चश्मा साधारण आकारका नहीं रहता यह चौड़ी पट्टीके आकारका होता है जो एक कानसे दूसरे कान तक पहुंचता है इस प्रकार गेंदसे आंखमें चोट लगनेका कोई डर नहीं रहता।

क्रोनसकोप—यदि एक सेकंड को १००० भागोंमें बांटा जाय तो ऐसे १ भागसे लेकर २०० भाग तक को सही सही नापनेके लिये एक यन्त्र रेमिंगटन आर्म्स कम्पनीने बनाया है इससे बन्दूकसे निकली गोलीका वेग आसानीसे नापा जा सकता है इस यन्त्रमें लगी घड़ीकी सूईके महत्तम विचलनसे यह भी जाना जा सकता है कि बिजलीके फ्यूजके उड़नेमें, फ्लैस लैंपके या टेलिफोनके रिले (Relay) स्विचके बन्द होनेमें कितना समय लगता है। ये काल इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण यन्त्रोंसे नापे नहीं जा सकते।

रैकेटों के लिये नाइलन—टेनिस खेलने के बल्लोंको रैकट कहते हैं। ये साधारणतः तांतसे बुने रहते हैं, परन्तु अब नक़ली रेशमकी जातिका एक नया सूत रूपद पदार्थोंसे बनाया गया है जो लचीला और बहुत मजबूत होता है। इसके एक-एक रेशे १/१६ इंच मोटे होते हैं और इसका बना तांतअसली तांतसे अधिक मजबूत होता है। फिर इसमें यह भी लाभ होता है कि यह गरमी या बरसातसे, या पानीसे भीगने पर साधारण तांतकी तरह खराब नहीं होता। इसपर मोम या लाखकी वार्निश लगानेकी भी आवश्यकता नहीं होती।

मिनियेचर कैमरा—डेढ़ इञ्च लम्बा एक इञ्च चौड़ा चित्र लेने वाले बढ़िया मेलके कैमेरे पहले जर्मनीसे आया करते थे जिनमें लाइट्स कम्पनीका लाइका (Leica) और जाइस कम्पनीका कॉनटैक्स (Contax) प्रसिद्ध था। युद्धके कारण इनका आना बंद हो गया है, परन्तु अब कोडक कम्पनी एकट्रा नाम का कैमरा बनाने लगी है जो बहुत कुछ लाइका कैमराकी तरह है और दो-चार बातोंमें लाइकासे भी बढ़कर है। परन्तु खेद यही है कि एकट्रा का दाम डेढ़ हजार दो हजार रुपयाके करीब होगा।

इस सूचीपत्रसे पूर्वके नियम व सूचीपत्र रद्द किये गए

विज्ञान अप्रैल १९४२ के अङ्कका क्रोड़पत्र

जगत् प्रसिद्ध अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित तथा
म्यूनिसिपल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, धर्मार्थ औषधालयोंके
लिए मान्य व पंजाब सरकार द्वारा स्वीकृत

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी का षाण्मासिक

सूचीपत्र

आसव-विज्ञान, क्षार-विज्ञान, मन्थरज्वरकी अनुभूत चिकित्सा, त्रिदोष-मीमांसा, ज्वरमीमांसा, सृष्टि रचनाशास्त्र, व्याधिमूल विज्ञान, कूपीपक्वरस निर्माण-विज्ञान, रोग-विज्ञान चिकित्सा-विज्ञान, औषध परीक्षा विज्ञान आदि ग्रन्थोंके लेखक,

आयुर्वेद विज्ञानके सम्पादक, अमृतसर की पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी के संस्थापक तथा संचालक, तथा प्रयागकी विज्ञान परिषद्के आजीवन फैलो व कौंसिलर

अप्रैल १९४२

६६वीं आवृत्ति ६०००

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

अध्यक्ष—पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्किट अमृतसर

व खारी बावली देहली

देहली ब्रांचसे कच्चे मालके अतिरिक्त अन्य सामान अमृतसरके भावसे ही मिलेगा।

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी के
व्यापारिक नियम

(१) इस सूचीपत्रमें किरानेकी चीजों व वनस्पतियोंके जो भाव दिये गये हैं वह सूचीपत्र छपनेके समयके हैं। किन्तु यह भाव सदा स्थिर न समझे जांय। माल भेजते समय यदि किसी मालकी कीमत चढ़ या गिर जायगी तो माल उस समयके भावानुसार भेजा जायगा। यह ग्राहक ध्यान रक्खें। इस समय युद्धके कारण यह चढ़ाव उतार अधिक हो रहा है।

(२) इस सूचीपत्रमें जो भाव दिये गये हैं थोकके हैं। एजण्टों के सिवाय अन्य किसी भी ग्राहक को कमीशन नहीं दिया जाता। एजन्सी के लिये पृथक पत्र लिखें।

(३) २० तोला, १० तोला, ५ तोलाके भाव सूचीमें अंकित हैं। इन्हीं मात्राओंमें माल पैक किया गया है। जो वस्तु जितनी मात्रामें बन्द होगी और उसकी जो कीमत नियत होगी उससे कम कीमतपर वह नहीं भेजी जायगी। यथा चन्द्रप्रभा २० तोलाका पैकिंग ४) का है और १० तोला २॥) तथा ५ तोला १॥) है। १० तोला तक लेनेवाले को २० तोलाके भावमें नहीं भेजा जासकता। इसकेलिए ग्राहक पत्र व्यवहार न करें।

(४) थोक भावके सूचीमें रस, भस्म, गुटिकाके पैकिंग २० तोला, १० तोला, ५ तोला तकही बन्द हैं। तथा चूर्ण ऽ१ सेर ऽ॥ व २० तोलाके पैकिंगमें हैं। आसव के १० पौंड ५ पौंड तथा २ पौंड पैकिंगमें हैं अवलेह ऽ५ सेर ऽ२॥ सेर तथा ऽ१ के पैकिंगमें हैं, घृत तैल ऽ१ व ऽ॥ व ऽ। तकके पैकिंगमें हैं। यह औषधियाँ इसी मात्रामें भेजी जायेंगी। ५) रु० छटांकसे ऊपरके भावकी रस भस्में मूल्यवान् समझी जायेंगी, इसलिये इनका पैकिंग ५तोला २॥ तोला तथा १ तोलाका होगा।

(५) २) रु. से कम मूल्य का आर्डर नहीं भेजा जाता।

(६) एजेन्सी सम्बन्धी कार्यका डिपार्टमैण्ट भिन्न कर दिया गया है। इसके लिये पत्र व्यवहार एजेन्सी मैनेजरके नामपर भिन्न करना चाहिये।

(७) प्रत्येक आर्डरकी चीजें प्रबन्धकर्त्ताके निरीक्षणमें अच्छी तरह जांचकर भेजी जाती हैं। यदि बीजकमें कोई भूल दिखाई दे तो पार्सल छुड़ा लेने पर पुनः लिखने से उस भूलका प्रतिकार किया जायगा। हमारी भूल होगी तो हम क्षति-पूर्त्ति व उसका प्रतिकार करेंगे। अकारण पार्सल वापिस करनेपर रेल तथा पोस्ट खर्च और क्षतिका ग्राहक जुम्मेवार होगा।

(८) पार्सल यहांसे अच्छी तरह पैकिंग करके भेजे जाते हैं। पोस्टमैनों व रेलवे कर्मचारियोंकी लापरवाहीसे पार्सलके टूट जानेपर फार्मेसी उसकी जुम्मेवार नहीं।

(९) टूटा पार्सल ग्राहक छुड़ाते समय समस्त पार्सलका माल पोस्टमास्टर या स्टेशनमास्टरके सामने खोलकर नष्ट हुई वस्तुओंका साक्षी-पत्र हमें भेज देंगे तो हम उन्हें वह माल बिना मूल्य भेज देंगे। या उस मालकी कीमत ग्राहक लेना चाहेगा तो वह भेज देंगे।

(१०) हमारे यहां के तोल (मान) निम्नलिखित हैं— अंग्रेजी दुअन्नी (१॥ माशे) ८ दुअन्नीका १ तोला, ८० तोलेका १ सेर, ४० सेरका मन। औंस और पौंड अंग्रेजी तोलके हैं।

(११) ग्राहकोंको पोस्टपार्सलके आर्डरके साथ २) रु० तथा रेलके आर्डरके साथ ५) रु० पेशगी अवश्य भेजना चाहिये। बिना पेशगी आये माल नहीं भेजा जाता।

(१२) प्रत्येक पार्सलपर एक आना लाला लाजपतराय धर्मार्थ औषधालय के लिये काटा जाता है जो यहां १२ वर्षसे चल रहा है।

(१३) प्रत्येक प्रकारके झगड़ोंका फैसला अमृतसरके न्यायालयमें ही किया जायगा।

(१४) पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये।

(१५) आर्डर, रजिस्ट्री, बीमा व मनीआर्डर आदि मैनेजर के पते पर आने चाहियें।

जनरल मैनेजर—

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,

अकाली मार्कीट, अमृतसर

पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी

द्वारा निर्मित

भस्में और उनके भाव

मूल्यवान् भस्में	५ तो०	२½ तो०	१ तो०
वज्राभ्रकभस्म (आ० प्र०) ६० पुटी	५।।)	३।)	१।।)
गोमेदभस्म (र० का०) मस्तिष्करोगे			१२)
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्धने	८)	४।।,	२)
नागभस्म (आ० प्र०) ४० पुटी प्रमेहे	५।।)	३।)	१।।)
नीलमभस्म (र० का०) उन्मादे			२०)
पारदभस्म श्वेत (फा० वि०) उपदंशरोगे		६।।)	३)
पन्नाभस्म (यू० वि०) मस्तिष्करोगे			१२)
पुखराज भस्म (र० का०) हृद्रोगे, मस्तिष्करोगे			१६)
फिरोजाभस्म (यू० वि०) हृद्रोगे			६)
फौलादभस्म अपूर्व (फा० वि०) शक्तिवर्द्धने			१५)
मांणिक्य भस्म (यू० वि०) हृद्रोगे			८)
मुक्ताभस्म (र० का०) शक्तिवर्द्धने			३४)
मुक्ताभस्म चन्द्रपुटी (यू० वि०) शक्तिवर्द्धने			३०)
रजतभस्म (चांदीभस्म) हरितालेन श्याम	१८)	६)	४)
रजतभस्म (चांदीभस्म) पारदयोगेन लाल	१८)	६)	४)
राजावर्तभस्म (वृ० यो०) उन्मादरोगे	६)	४)	२।।)
वैक्रांतभस्म (र० सा०) मस्तिष्करोगे	४)	२।)	१)
स्वर्णभस्म (शा० ध०) रसायने		७) माशा	८०)
संखिया (सोमल) भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धने		६।।)	३)
हरतालपत्राख्यभस्म (फा० वि०) जीर्णज्वरे		६।।)	३)
हिंगुल भस्म (फा० वि०) क्लीवत्वरोगे		६।।)	३)
हीरा (वज्र) भस्म (आ० प्र०) सर्वरोगे		२०) प्रति रत्ती	

अल्पमूल्य की भस्में	२० तो०	१०तो०	५ तो०
अकीक (यू० वि०)	८)	४।।)	२।।)
वज्राभ्रक (भा० प्र०) २१ पुटी	११)	६)	३।।)
अभ्रक श्वेत (र०रा. सु०)	२।।)	१।।)	१)
कान्तलोह भस्म (र०रा. सु०)	८)	४।।)	२।।)
कांस्य भस्म (आ० प्र०)	२।।)	१।।)	१)
कपर्दिका भस्म (आ० प्र०)	१।।।)	१)	।।=)

मूल्यवान भस्में	२० तो.	१० तो.	५ तो.
कसीस भस्म (र० सा०)	१।।)	।।।=)	।।)
कुक्कुटाण्डत्वक् (वै० मृ०)	५)	३)	१।।।)
खर्पर भस्म (यो० र०)	६)	५)	३)
जहरमोहरा भस्म (यू० वि०)	२)	१।)	।।।)
ताम्र सोमनाथी (र०रा. सु०)	१३)	७)	४)
ताम्र कूपीपक्व (र०रा. सु०)	१३)	७)	४)
तुत्थ भस्म (र०रा. सु०)	२।)	१।)	।।।)
त्रिवंग (आ० प्रा०) १२ पुटी	११)	६)	३।।)
नागपीत (वृ० यो०)	३)	१।।।)	१)
नागश्याम (र० का०)	५)	३)	१।।।)
नीलांजन (फा० वि०)	३)	१।।।)	१)
प्रवाल अग्निपुटी (आ० प्र०)	७)	३।।।)	२)
प्रवाल चन्द्रपुटी फा० ०)	७)	३।।।)	२)
प्रवाल सूर्य्यपुटी((फा० वि०)	७)	३।।।)	२)
पीतल भस्म (आ० प्र०)	३)	१।।।)	१)
बंग हरितालेन (आ० प्र०)	८)	४।।)	२।।)
बंग श्वेत (र०रा. सु०)	५)	३)	१।।।)
बेरपत्थर भस्म (यू० वि०)	३)	१।।।)	१)
मयूरपुच्छ भस्म (फा० वि०)	८)	४।।)	२।।)
मण्डूर भस्म (र० र० स०)	३)	१।।।)	१)
मृगश्रृङ्ग भस्म (शा० ध०)	३)	१।।।)	१)
यशद भस्म (यो० र०)	४)	२।।)	१।।)
रौप्यमाक्षिक भस्म (र० का०)	३)	१।।।)	१)
लौह हिंगुल योगेन (आ० प्र०)	८)	४।।)	२।।)
लौह स्वयमग्नि (रा० सु०)	६)	३।।)	२)
लौह वनस्पति (फा० वि०)	५)	३)	१।।।)
शख नाभी (र० क०)	२)	१।)	।।।)
संगयशव (यू० वि०)	३।।)	२)	१।)
सीप (मोती) (र० सु०)	३)	१।।।)	१)
सीपभस्म (र० सु०)	१)	।।=)	।=)

माल मंगवाने से पहिले चौथाई दाम अवश्य भेजें।

अल्पमूल्यकी भस्में	२० तो०	१०तो०	५ तो०
संगजराहत (आ० प्र०)	।।)	।-)	≡)
स्वर्णमाक्षिक (र० सु०)	३।।)	२)	१।)
सौवीरांजन (फा. वि.)	१।।)	।।।≈)	।।)
हरताल गोदन्ती (आ. प्र.)	।।।)	।।)	।)

रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल और पर्पटी

नाम वस्तु	२०तो.	१०तो.	५तो.
अग्निसून (रसा०सं०) ग्रहण्याम्	५।।)	३)	१।।।)
अग्निमुख (नि.र.) अग्निमांद्ये	६।)	३।।।)	२)
अग्निरस (र.र.स.) कासे, उरःक्षतादौ	५)	२।।।)	१।।)
अग्नितुण्डीरस (भै. र.) उदर रोगे	५।।)	३)	१।।।)
अग्निकुमार बृहत् (रसेन्द्र) अजीर्णे	६।)	३।।।)	२)
अजीर्ण कण्टक (भै.र.) अजीर्णाधिकारे	६।)	३।।।)	२)
अतिविषादि गुटी (र.चं.) आमवाते	५।।)	३)	१।।।)
अपचिविनाशी (फा.वि.) अपचिरोगे	६।)	३।।।)	२)
अश्वकंचुकी (वै.सा.) सर्वरोगे	६।)	३।।।)	२)
अर्शोघ्नी वटी (फा. वि.) रक्तार्शे	३)	१।।।)	१)
अर्शकुठार (रसा. सं.) अर्शरोगे	४।।)	२।।।)	१।।)
अश्विनीकुमार (अनु. त.) सर्वरोगे	१२)	६।।)	३।।।)
आनन्द भैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	६।)	३।।।)	२)
आनन्द भैरव (भै. र.) कासे, श्वासे	५।।)	३)	१।।।)
आमवातारि वटी (र. चं.) आमवाते	२)	१।)	।।।)
आरोग्य वर्धनी (र. चं.) कुष्टाधिकारे	५।।)	३)	१।।।)
इन्द्रवटी (रसेन्द्र) प्रमेहे	९)	५)	३)
इच्छाभेदी (रसेन्द्र) उदररोगे	५।।)	३)	१।।।)
उपदंशकुठार (र. चं.) उपदंशरोगे	१३)	७)	४)
उन्मादहर रस (र. सा.) उन्मादे	९)	५)	३)
एलादि वटी (च, द.) कासाधिकार	१)	।।=)	।=)
कनकसुन्दर (रसेन्द्र) अतिसारे	६।)	३।।।)	२)
कफकेतु (रसेन्द्र) कफाधिकारे	४)	२।।)	१।।)
कफचिन्तामणी (र.चं.) कफाधिकारे	६।)	३।।।)	२)
कफकुठार (र. चं.) श्लेष्मरोगे	६।)	३।।।)	२)
क्रव्यादिरस बृ. (र.रा.सु.) अजीर्णरोगे	१३)	७)	४)
कांचनार गुग्गुल (शा.ध.) कण्ठमाला	१।)	।।।)	।।)
कांकायनी गुटिका (यो.र.) अर्शरोगे	३।।)	२)	१।)

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
कर्पूर रस (भै. र.) ज्वरातिसारे	१३)	७)	४)
कामदुघा (रसा.सं.) अम्लपित्ते	३।।)	२)	१।)
कासहर (फा. वि.) कासरोगे	३)	१।।।)	१)
कालकूट रस (वै. चि.) सन्निपातज्वरे	९)	५)	३)
कालारि रस (यो. चि.) मिश्राधिकारे	१३)	७)	४)
किशोर गुग्गुल (भै. र.) वातरक्ते	२)	१।)	।।।)
कृमिकुठार (नि. र.) कृमिरोगे	९)	५)	३)
कृमिमुद्गर (र. सा.) कृमिरोगे	३।।)	२)	१।)
कृमिधूलिजलप्लवरस (रसेन्द्र) कृमिरोगे	९)	५)	३)
खदिरादि वटी बृहद् (भै.र.) मुखरोगे	३)	१।।।)	१)
गगनादि लोह (रसेन्द्र) सोमरोगे	१२)	६।।)	३।।।)
गर्भपाल रस (र. चं.) गर्भिणी रोगे	९)	५)	३)
गर्भविनोद रस (रसेन्द्र) गर्भिणीरोगे	६।)	३।।।)	२)
गर्भचिन्तामणि (भै.र.) सूतिकारोगे	१३)	७)	४)
गङ्गाधर रस (र. रा. सु.) अतिसारे	१३)	७)	४)
गन्धकवटी (र.रा. सु.) जठररोगे	३।।)	२)	१।)
गन्धक रसायन (रसेन्द्र) रसायनाधिकारे	९)	५)	३)
गन्धर्व रस (र.र. स.) कम्पवाते	८)	४।।)	२।।)
गुल्मकालानल (भै. र.) गुल्मे	९)	५)	३)
गुल्मनाशन रस (र. चं.) गुल्मे	९)	५)	३)
गुल्मारि रस (र. का.) गुल्माधिकारे	१२)	६।।)	३।।।)
ग्रहणी कपाट (र. चं.) ग्रहण्याम्	१२)	६।।)	३।।।)
गोक्षुरादि गुग्गुल (यो. र.) प्रमेहे	३)	१।।।)	१)
चन्दनादि लोह (भै. र.) जीर्णज्वरे	९)	५)	३)
चन्द्रप्रभा (शा. ध.) प्रमेहाधिकारे	४)	२।।)	१।।)
चन्द्रकला (भै. र.) प्रमेहाधिकारे	१२)	६।।)	३।।।)
चन्द्रामृत रस (रसेन्द्र) कासे	६।)	३।।।)	२)
ज्वरघ्नी वटी (र. र. स.) ज्वरे	५।।)	३)	१।।।)
जलोदरारि रस (वृ. यो.तं.) जलोदरे	१२)	६।।)	३।।।)
ज्वरमुरारि (भै. र.) सन्निपाते	४)	२।।)	१।।)
ज्वरार्यभ्रम् (भै. र.) जीर्णज्वरे	६।)	३।।।)	२)
ज्वरांकुश स्वर्णाक्षीरी वाला (शा. ध.)	५।।)	३)	१।।।)
ताम्र पर्पटी (रसेन्द्र) ग्रहण्याम्	१२)	६।।)	३।।।)
त्वक् रोगान्तक वटी (फा.वि.) त्वक्रोगे	६।)	३।।।)	२)

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
त्रयोदशांग गुग्गुल (भै.र.) वातव्याधौ	३॥)	२)	१।)
त्रिभुवनकीर्ति (र. चं.) ज्वरे	६।)	३॥।)	२)
त्रिपुर भैरव (र. चिं.) नवज्वरे	५॥)	३)	१॥।)
दावानल वटी (फा. वि.) सन्निपाते	६।)	३॥।)	२)
दुर्जरजलजेता (र. चं.) अजीर्णाधिकारे	६।)	३॥।)	२)
दुग्धवटी (भै. र.) नं. २ ग्रहण्याम्	४)	२॥)	१॥)
धात्रीलोह (र. चिं.) कामला, शूले	८)	४॥)	२॥)
नवायसलोह (र. रा. सु.) पाण्डुरोगे	६।)	३॥।)	२)
नारायणज्वरांकुश (र.चं.) ज्वराधिकारे	६।)	३॥।)	२)
नाराचरस (र. चं.) उदररोगे	५॥)	३)	१॥।)
नित्यानन्द (र. चं.) रसायने	९)	५)	३)
नित्योदित **रस** (रसेन्द्र.) अर्शरोगे	६।)	३॥।)	२)
नेत्राशनी रस (र. स. सु.) नेत्ररोगे	८)	४॥)	२॥)
नृपतिवल्लभ रस (र.रा.सु.) ग्रहण्याम्	८)	४॥)	२॥)
पाचक वटी (फा. वि.) अजीर्ण रोगे	३॥)	२)	१।)
पञ्चामृत रस (भै. र.) नासारोगे	३॥)	२)	१।)
पञ्चवक्र रस (रसेन्द्र) सन्निपाते.	५॥)	३)	१॥।)
प्रमदानन्द रस (रसेन्द्र) रसायने	१२)	६॥)	३॥।)
प्रदरान्तक रस (रसेन्द्र) प्रदरे	८)	४॥)	२॥)
प्रदरान्तक लोह (फा. वि.) प्रदरे	९)	५)	३॥)
प्रदरारि वटी (फा. वि.) प्रदरे	४)	२॥)	१॥)
प्रदररिपु (रसेन्द्र) प्रदरे	८)	४॥)	२॥)
प्रतापलंकेश्वर (वृ. यो.) सूतिकारोगे	७)	४)	२।)
प्राणदागुटिका (भै. र.) अर्शरोगे	३)	१॥।)	१)
प्लीहारि रस (भै. र.) प्लीहारोगे	५॥)	३)	१॥।)
पुनर्नवा गुग्गुल (भै. र.) शोथाधिकारे	२)	१।)	॥।)
पुनर्नवादिमण्डूर (भै.र.) पाण्डुरोगे	४)	२॥)	१॥)
बालार्करस (रसा.सं.) बालरोगे	५॥)	३)	१॥।)
बोल पर्पटी (रसा. सं.) रक्तपित्ते		७)	४)
बोलवद्ध रस (र. चं.) अर्शाधिकारे	४)	२॥)	१॥)
बालरस (र. चं.) बालरोगे	६।)	३॥।)	२)
मण्डूरवटी (भै. र.) पाण्डुरोगे	६।)	३॥।)	२)
मृत्युञ्जय रस (भै. र.) सन्निपाते	५॥)	३)	१॥।)
मृत्युञ्जय लोह (रसेन्द्र) उदराधिकारे	११)	६)	३॥)
मृतप्राणदायी रस (नि.र.) ज्वरे	५॥)	३)	१॥।)

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
मरिचादि वटी (शा. ध.) कासरोगे	१॥)	॥=)	॥)
महाज्वरांकुश (भै. र.) ज्वराधिकारे	७)	४)	२।)
महाशंख वटी (भै. र.) अग्निमान्द्ये	३॥)	२)	१।)
महायोगराज गुग्गुल १। लन्न चोट का (शा. ध.) वातव्याधौ	१३)	७)	४)
रजः प्रवर्तिनी (भै. र.) रजः प्रवाहनी	७)	४)	२।)
रसचन्द्रिका वटी (रसेन्द्र) शिरःशूले	७)	४)	२।)
रामबाण रस (भै.र.) अजीर्णाधिकारे	६।)	३॥।)	२)
लवंगादि वटी (वै. जी.) कासरोगे	३॥)	२)	१।)
लक्ष्मीनारायण रस (र.चं.) वातरोगे	१४)	७॥)	४।)
लशुनादि वटी (शा. ध.) वातरोगे	१॥)	॥=)	॥)
लीलावती वटी (र.रा सु.) जीर्णज्वरे	६।)	३॥।)	२)
लोकनाथ रस बृहत् (शा. ध.) क्षये	४)	२॥)	१॥)
लोकनाथ रस लघु (शा. ध.) क्षये	३॥)	२)	१।)
वातगजांकुश (रसेन्द्र) वातरोगे	१४)	७॥)	४।)
वात विध्वंस रस (र.चं.) वातव्याधौ	१४)	७॥)	४।)
विश्वतापहरण रस (र.रा.सु.)	९)	५)	३)
विषमुष्टि वटी (फा. वि.) आमवाते	६।)	३॥।)	२)
व्योषादि वटी (यो. चि.) कासे	१॥)	॥=)	॥)
श्वास कुठार वृ. (र.रा.सु.) श्वासे	६।)	३॥।)	२)
श्वासकुठार लघु (र.रा.सु.) श्वासे कासे	३॥)	२)	१।)
श्वासारि लोह (भै. र.) श्वासे	७)	४)	२।)
शिरःशूल वज्रारिरस (भै.र.) शिरःशूले	४)	२॥)	१॥)
शूरण मोदक वृ. (शा.ध.) अर्शरोगे	१॥)	॥=)	॥)
शूल वज्रणी वटी (र.चं.) शूलाधिकारे	७)	४)	२।)
शूलगजकेसरीवटी (फा.वि.) पार्श्वशूले	४)	२॥)	१॥)
श्रृङ्गाराभ्ररस (रसेन्द्र) कासे,जीर्णज्वरे	१४)	७॥)	४।)
श्लेष्मश्वासारिवटी (फा.वि.) तरकासे	९)	५)	३)
सर्वज्वरहर लोह (रसेन्द्र) ज्वराधिकारे	९)	५)	३)
सिद्धप्राणेश्वर (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	९)	५)	३)
सिरचक्रविनाशीवटी(फा.वि.) शिरःभ्रमे	६।)	३॥।)	२)
सिंहनाद गुग्गुल (यो.चि.) वातरक्ते	३)	१॥।)	१)
सुख विरेचनी (फा.वि.) सुखविरेचने	३॥)	२)	१।)
सुधानिधि (यो.र..) रक्तपित्ते	८)	४॥)	२॥)
सूतिका विनोद (भै.र.) सूतिका रोगे	६।)	३॥।)	२)

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
सौभाग्य वटी (भै.र.) कासज्वरे	६))	३॥।)	२)
संजीवनी वटी (शा. ध.) अजीर्णे	३।।)	२)	१।)
हिंगुलेश्वर (र. चं.) वातज्वरे	७।।)	४।)	२।।)
हुताशन रस (यो.र.) श्लेष्मरोगे	४)	२।।)	१।।)

मूल्यवान् रस, पर्पटी और धातु-सत्व

मूल्यवान् रस, पर्पटी	२½ तो.	१तो.
अमीररस (सि. भै. म.) उपदंशरोगे	८)	३।।।)
अगस्तिसूतराज (वृ.यो.)ग्रहणयाधिकारे	३।)	१।।)
अष्टमूर्त्ति रस (र. चं.) ज्वराधिकारे	२८)	१२।।)
उपदंशहर (फा. वि.) उपदंशरोगे	७)	३)
उदयादित्य (शा. ध.) श्वित्रकुष्ठे	१०)	५)
एकांगवीर (र.रा.सु.) वातरोगे	७)	३)
कामदुघामोतीयुक्त (रसा.सं.) अम्लपित्ते	६)	४)
वृ. कस्तूरी भैरव (भै.र.) ज्वराधिकारे	२०)	६)
कस्तूरी भैरव लघु (भै.र.) ज्वराधिकारे	१६)	७।)
कस्तूरीभूषण (भै.र.) सर्वरोगे	१३)	६।)
कस्तूर्यादि स्तम्भन (टो. न.) स्तम्भने	११)	५।।)
कुमारकल्याण (भै. र.) बालरोगे	३५)	१५)
कर्पूरादि रस (र.रा.सु.) प्रमेहाधिकारे	४।)	२)
कृष्णमाणिक्य (र.रा.सु.) कुष्ठरोगे	६)	४)
केशरादि वटी (फा.वि.) जीर्णप्रतिश्याये	३।)	१।।)
कांचनाभ्र (भै. र.) क्षयाधिकारे	७)	३)
गोरोचनवटी (दाक्षिणात्ययोग) बालरोगे	७)	३)
चन्द्रशेखर (र.रा.सु.) रक्तपित्ताधिकारे	६।।)	४।)
चिन्तामणि चतुर्मुख रस (भै.र.) वातव्याध्यधिकारे	२२।।)	१०)
श्री जयमंगल रस (भै.र.) ज्वराधिकारे		१५)
जातीफलादि ग्रहणी कपाट (रसेन्द्र) ग्रहणीरोगे	८।।।)	४।)
जीर्णज्वरारिरस (फा. वि.) क्षयज्वरे	५।।)	२।।)
जौहर दारचिकना उपदंशरोगे		४)
जौहर रसकपूर ,,		४)
जौहर त्रिविष उपदंशरोगे		४)
जौहर संखिया श्वेत शक्तिवर्द्धने, उपदंशरोगे		२)
जौहर संखिया पीला		१।।)
जौहर हरतालपत्राख्य कुष्ठरोगे		३।।)

	२।।तो.	१तो.
डामेश्वराभ्र (भै. र.) हिक्काधिकारे	६)	२।।।)
ताप्यादि लोह (रसेन्द्र) रसायने	६)	२।।।)
तालसिन्दूर (रसा. सा.) कुष्ठाधिकारे	१०)	५)
ताम्रसिन्दूर ,, श्वासाधिकारे	१०)	५)
त्रिविक्रम रस (रसेन्द्र) अश्मर्याधिकारे	४)	१।।।)
दुग्धवटी नं,१ (भै. र.) अहिफेन युक्त	३।।)	१।।।)
नागसिन्दूर (रसा. सा.) प्रमेहरोगे	१०)	५)
नागरस कस्तूरीयुक्त (र. चं.) श्वासे	११)	५।।)
नीलशेखर (फा.वि.) श्वासे, फुफ्फुसरोगे	४।।)	२)
प्रवालपञ्चामृत (यो.र.) गुल्माधिकारे	१६)	७)
पुटपक्वविषम ज्वरान्तकलोह (भै.र.) जीर्णज्वरे	२२।।)	१०)
पूर्णचन्द्ररस वृ. (रसेन्द्र)रसायनाधिकारे	१७)	७)
पंचामृत पर्पटी (रसेन्द्र) ग्रहणयाम	४।।)	२।)
पुष्पधन्वारस (भै. र.) रसायने	६)	२।।।)
बालशोषान्तक वटी (फा.वि.) शोषरोगे५।।)	३।)	१।।)
भल्लातक वटी (फा.वि.) आमवाते	३।)	१।।)
मल्लसिन्दूर (रसा.सा.) सर्वरोगे	१०)	५)
मन्मथाभ्र रस (रसेन्द्र) वाजीकरणे	४)	२)
मृगनाभ्यादि वटी (कस्तूरी वटी) क्लीवत्वरोगे	१३)	६।)
मृगाङ्क स्वर्णसंयुक्त (शा.ध.) क्षयरोगे		४८)
रक्तपित्तकुलकण्डन रस (र.रा. सु.) रक्तपित्ते	८)	३।।।)
रजतसिन्दूर (रसेन्द्र) रसायने		७)
रसकर्पूर (र. का.) उपदंशरोगे	६)	४)
रसमाणिक्य (र.रा.सु.) कुष्ठाधिकारे	६)	४)
रससिन्दूर द्विगुण (र. का.)	३।।)	१।।)
रससिन्दूर चतुर्गुणगन्धकजीर्ण (र.हृ.)	७)	३)
रससिन्दूर षटगुणगन्धकजीर्ण ,,	१०)	४।।)
रस पर्पटी हिंगुलोत्थ (र. रा. सु.) ज्वरे	२)	१)
रसपर्पटी विशुद्धरसेन (र. रा. सु.)	५।।)	२।।)
राजमृगाङ्क (शा. ध.) क्षयरोगे		२४)
राजचण्डेश्वर (र. चं.) सर्वरोगे	४)	१।।।)
लक्ष्मीविलास नारदीय वृ. (र. रा. सु.)	२)	१)
लोह पर्पटी (रसेन्द्र) सर्वरोगे)	२)	१)
वंगसिन्दूर (रसा. सा.) शक्तिवर्द्धने	६)	४)
वंगेश्वर वृहत् (भै. र.) प्रमेहाधिकारे	२२।।)	१०)

नाम वस्तु	२॥तो.	१ तो.
वसन्तकुसुमाकर (शा. ध.) सर्वरोगे		१८)
व्याधिहरण रस (रसा. सं.) रसायने		६)
विजयपर्पटी (भै.र.) ग्रहण्याधिकारे	२२॥)	१०)
विषमज्वरान्तक लोह (भै. र.) जीर्णज्वरे	१२॥)	५)
शीतांकुश रस (र. प्र.) चातुर्थिकज्वरे	४1)	२)
शीतारिरस (र. चं.) ज्वराधिकारे	३1)	१॥)
शिलाचन्द्रोदय (रसा. सा.) रक्तविकारे		१६)
शूलगजकेशरी ताम्र (शा.ध.) शूलरोगे	४)	१॥।)
समीरगजकेसरी रस (रसेन्द्र) वातव्याधौ	३1)	१॥)
समीरपन्नग ऊर्ध्व (र. चं.) वातरोगे	८)	४)
सर्वांग सुन्दर (र. चं) शूलाधिकारे	१०)	५)
स्तम्भनवटी (धन्व.) बाजीकरणे	२)	१)
स्मृतिसागर (यो. र.) अपस्मारे	३1)	१॥)
स्वच्छन्दभैरव (र. रा.सु.) ज्वराधिकारे	४)	१॥।)
स्वर्णचन्द्रोदय षड्गुणगन्धकजीर्ण		२०)
स्वर्ण पर्पटी (र. रा. सु.) क्षयाधिकारे		१२)
स्वर्णवसन्त मालती (खर्परयुक्त) क्षयरोगे	२८)	१२)
स्वर्णवंग नं. १ (र. रा. सु.) प्रमेहे	५॥)	२॥)
स्वर्ण वंग नं० २ (र.रा.सु.) प्रमेह	२)	१)
सिद्धमकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्मयुक्त		६०)
सूतशेखर (यो. र.) अम्लपित्ताधिकारे	१२॥)	५)
हरताल सत्व (फा. वि.) कुष्ठे		८)
हेमगर्भ रस (यो. र.) कासे, क्षये		१५)

आसव

	१० पौं.	५ पौं.	२ पौं.
उशीरासव (शा. ध.) रक्तपित्ते	७)	४)	१॥।)
कनकासव (भै. र.) श्वांसरोगे	७)	४)	१॥।)
कुमार्यासव (शा. ध.) उदररोगे	१०)	६)	२॥)
चविकासव (गदनि.) उदररोगे	८)	४॥)	२)
चन्दनासव (भै. र.) प्रमेहे	७)	४)	१॥।)
द्राक्षासव (शा. ध.) अर्शोदरे	७)	४)	१॥।)
पुनर्नवासव (भै. र.) शोथे	७)	४)	१॥।)
पिप्पल्यासव (शा. ध.) अर्शो- गुल्मे	८)	४॥)	२)
बब्बूलासव (भै.र.) अतिसारे	८)	४॥)	२)
लोहासव (शा. ध.) पाण्डुरोगे	७)	४)	१॥।)
लोध्रासव (गदनिग्रह) पाण्डु, अर्श	७)	४)	१॥।)
शंखद्राव (र. का.) गुल्मे	१०तो. ३)	५तो. १॥।)	

मृतसञ्जीवनी सुरासाधित आसव

नाम वस्तु	१ औंस	½ औंस
अरविन्दासव (आ. वे. सं.) बालरोगे	२॥)	१॥)
अहिफेनासव (भै. र.) अतिसारे	१॥)	१)
कर्पूरासव (भै. र.) विसूचिका रोगे	१1)	॥।)
मृगमदासव ,, सन्निपाते श्वासावेगे	१५)	१०)

अरिष्ट

नाम वस्तु	१०पौंड	५पौं.	२पौं.
अमृतारिष्ट (आयु.वे.सं.) ज्वरे	७)	४)	१॥।)
अशोकारिष्ट ,, प्रदरे	७)	४)	१॥।)
अश्वगन्धारिष्ट (वं. से.) प्रमेहे	१०)	६)	२॥)
अर्जुनारिष्ट (भै. र.) हृद्रोगे	८)	४॥)	२)
अभयारिष्ट ,, अर्शरोगे	८)	४॥)	२)
कुटजारिष्ट ,, अतिसारे	१०)	६)	२॥)
खदिरारिष्ट (भै. र.) कुष्ठरोगे	८)	४॥)	२)
जीरकाद्यरिष्ट (भै. र.) प्रसूतारोगे	८)	४॥)	२)
दन्त्यरिष्ट (वंगसेन) अर्शरोगे	८)	४॥)	२)
दशमूलारिष्ट (शा. ध.) बहुरोगे	८)	४॥)	२)
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त) ,,	१५)	८)	३॥)
द्राक्षारिष्ट (शा. ध.) क्षये	७)	४)	१॥।)
रोहितकारिष्ट (भै. र.) प्लीहारोग	७)	४)	१॥।)
सारस्वतारिष्ट ,, मानसिकरोगे	१५)	८)	३॥)
सारिवाद्यरिष्ट ,, कुष्ठे, रक्तविकारे	८)	४॥)	२)

आसव अरिष्टका पैकिंग १ पौंडकी शीशी में है, ८ औंस लेने पर =) शीशी पृथक् खर्च लगेगा।

प्रसिद्ध साधित घृत तैल

	१ पौंड	८ औंस
उपघृत (वैसलीन)	॥=)	।)
जात्यादि घृत (चक्रदत्त) व्रण, शोथे	२॥)	१॥)
पञ्चतिक्तादि घृत (शा. ध.) विषमज्वरे	४)	२।)
फलघृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	४)	२।)
ब्राह्मीघृत (चक्रदत्त) रसायने	३॥)	२)
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्ररोगे	४)	२।)
अर्क तैल (शा. ध.) कुष्ठे	१।=)	॥।)
आमला तैल (फा. वि.) शिररोगे	१॥।)	१)
अपामार्ग क्षार तैल (भै.र.) कर्णवधिरता	२।)	१।)
इरिमेदादि तैल (शा.ध.) मुखरोगे	२।)	१।)
कासीसादि तैल (शा. ध.) अर्शरोगे	४)	२।)
केशराज तैल (फा. वि.) केशवर्द्धने	१॥।)	१)
चन्दनादि तैल (भै. र.) जीर्णज्वरे	४)	२।)
दशमूल तैल (भै. र.) वातरोगे	१॥।)	१)
निम्ब तैल (योग.त.) क्षुद्ररोगे	२।)	१।)
प्रसारणी तैल (भै. र.) वातरोगे	३॥)	२)
ब्राह्मी तैल (फा. वि.) बुद्धिवर्द्धनार्थ	२।)	१।)
भृंगराज तैल (भै. र.) क्षुद्ररोगे	२।)	१।)
महानारायण तैल (शा. ध.) वातरोगे	४)	२।)
मरिचादि तैल (चक्रदत्त) कुष्ठे	२।)	१।)
महामाष तैल (भै. र.) वातरोगे	४)	२।)
महालाक्षादि तैल (शा.ध.) जीर्णज्वरे	२।)	१।)
विषगर्भ तैल (यो. र.) वातरोगे	२।)	१।)
शतावरी तैल ,, ,,	२।)	१।)
शुष्कमूलाद्य तैल (धन्वन्तरी) कर्णश्राव पर	१॥।)	१)
षटविन्दु तैल (चक्रदत्त) शिररोगे	२।)	१।)
क्षार तैल (शा. ध.) कर्णशूले	३)	१॥।)

तेल २ औंस की शीशी में लेने पर ≁) प्रति शीशी पृथक देना पड़ेगा।

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

नाम वस्तु	१सेर	४०तो.	२०तो.
अजमोदादि चूर्ण (शा.ध.) वातरोगे	२॥।)	१॥)	॥।=)
अग्निमुख (वं. से.) अजीर्णाधिकारे	४॥)	२॥)	१।=)
अपचिविनाशी चूर्ण कण्ठमालारोगे	८)	४।)	२॥)
आमलक्यादि चूर्ण (यो.र.) ज्वरे	३)	१॥।)	१)
अविपत्तिकर (वं. से.) अम्लपित्ते	२॥)	१।=)	॥।)
अष्टांगलवण (च.) मदात्यये अग्निमांद्ये	५)	२॥।)	१॥)
अश्वगन्धादि (शा. ध.) वाजीकरणे	३॥)	२)	१।)
कामदेव चूर्ण (यो. र.) क्लीवत्वे	६)	३॥।)	२)
गोक्षुरादि चूर्ण (वा. भ.) वाजीकरणे	२)	१=)	॥=)
चोपचिन्यादिचूर्ण (यो.र.) रक्तविकारे	३)	१॥।)	१)
चन्दनादि चूर्ण (यो.त.) प्रदर,रक्तपित्ते	३॥)	२)	१।)
तालीसादि चूर्ण (शा.ध.) ज्वर,कासे	३॥)	२)	१।)
दाड़िमाष्टक चूर्ण (शा. ध.) अरुचिरोगे	२॥)	१।=)	॥।)
नारसिंह चूर्ण (च. द.) क्लीवत्वे	५॥)	३)	१॥।)
नारायण चूर्ण (शा. ध.) उदरविकारे	२॥)	१।=)	॥।)
प्रदरान्तक चूर्ण (फा. वि.) प्रदररोगे	३)	१॥।)	१)
पुष्यानुग चूर्ण केसरयुक्त (भै.र.) प्रदरे	९)	५)	२॥।)
वृ. गंगाधर (शा. ध.) अतिसारे	२॥)	१।=)	॥।)
वृ. लवंगादि (शा. ध.) ज्वर,कासे	४॥)	२॥)	१।=)
वृ. सुदर्शन (शा. ध.) ज्वराधिकारे	२॥)	१।=)	॥।)
महाखाण्डव (शा. ध.) अजीर्ण रोगे	३॥)	२)	१।)
लवणभास्कर (शा. ध.) अग्निमान्द्ये	२॥)	१।=)	॥।)
लाईचूर्ण "नायिका चूर्ण" (भै.र.)	२॥)	१।=)	॥।)
शिवाक्षारपाचनचूर्ण (फा.वि.)पाचने	३)	१॥।)	१)
सारस्वत चूर्ण (भै.र.) मस्तिष्क रोगे	३॥)	२)	१।)
स्वादिष्ट विरेचनचूर्ण (फा.वि.)मृदुरेचने	३)	१॥।)	१)
सितोपलादि चूर्ण (शा.ध.) कास,क्षये	५॥)	३)	१॥।)
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	२॥)	१।=)	॥।)
हिंग्वादि चूर्ण (शा. ध.) ,,	३॥)	२)	१।)

चूर्ण ५ तो. के पैकट में लेने पर ≁) प्रति पैकट ज्यादा लगेगा। जैसे लवण भास्कर १६ पैकट ५ तो. ३॥)
,, ८ पैकट ५ तो. १॥।=)
,, ४ पकट ५ तो. १)

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	५सेर	२½सेर	१सेर
अमृतभल्लातक (भै. र.) कुष्ठे	१६)	६)	४)
कुटजावलेह (शा. ध.) अतिसारे	६)	५)	२॥)
कूष्माण्डावलेह (शा. ध.) रक्तपित्ते	६)	५)	२॥)
कंटकार्यावलेह (वं. से.) कासे	६)	५)	२॥)
च्यवनप्राशअवलेह(च.)रसायने	१५)	८)	३॥)
पेठा पाक (यो. चि.) रक्तपित्ते	६)	५)	२॥)
भार्गी गुड़ (भै. र.) हिक्का, श्वासे	६)	५)	२॥)
मदनानन्दमोदक (र. रा. सु.) वाजीकरणे		८॥)	४)
मूसलीपाक (यो. चि.) क्लीवत्वे		८॥)	४)
वासावलेह (भै. र.) क्षय, कासे	६)	५)	२॥)
व्याघ्रीहरीतकी (भै.र.) जीर्णप्रतिश्याये	६)	५)	२॥)
सौभाग्यशुंठीपाक (यो.चि.) प्रसूतारोगे	६)	५)	२॥)
सुपारीपाक (यो. चि.) प्रदररोगे	१५)	७॥)	३॥)
हरिद्रा खण्ड (भै. र.) शीतपित्ते	६)	५)	२॥)
हरीतकी खण्ड ,, शूले	६)	५)	२॥)

लेप और मरहम

नाम वस्तु	४०तो.	५तो.
अर्शघ्न मरहम, बवासीर वास्ते	८)	१।)
कालीमरहम, व्रण शोधनार्थ	२॥)	।=)
दशांग लेप, विसर्प रोगे	२॥)	।=)
नीली मरहम, व्रण रोपक	१॥)	।)
पीली मरहम, व्रण रोपक	१॥)	।)
पारदादि मरहम, जन्तुघ्न या कीटाणु नाशक	२॥)	।=)
श्वेत कुष्ठ लेप, श्वित्र कुष्ठे	५)	॥।)
सिध्महर लेप, सिध्म रोगे	५)	॥।)

क्काथ

नाम वस्तु	१ सेर	२०तो
गोक्षुरादि क्काथ (शा. ध.) मूत्रकृच्छे	१।)	।=)
दशमूल क्काथ प्रसूतारोगे	।-)	-)॥
देवदार्व्यादि क्काथ (शा. ध.) ज्वर, कासे	१।)	।=)
लघुमंजिष्ठादि क्काथ रक्तरोगे	१।)	।=)
महामंजिष्ठादि ,, ,, कुष्ठे	२)	॥=)
लघुरास्नादि क्काथ वातरोगे	१॥)	॥)
महारास्नादि ,, ,,	२)	॥=)
सुदर्शन क्काथ (शा.ध.) सर्वज्वरे	२)	॥=)

अञ्जन तथा नेत्रवर्ती

नाम वस्तु	१०तो.	५तो.
उन्माद भञ्जनी वर्ती (रसेन्द्र) अपस्मारे	४॥)	२॥)
चंद्रोदयावर्ती (शा. ध.) नेत्ररोगे	१॥)	१)
चन्द्रप्रभावर्ती (यो. र.) नेत्ररोगे	२।)	१।)
नागार्जुन वर्ती (भै. र.) ,,	४॥)	२॥)
मुक्तादि महाञ्जन (यो. र.) नेत्ररोगे	६)	५)
नयनामृत सुरमा (शा. ध.) ,,	६)	५)
सुरमा ज्योतिवर्धक (फा. वि.) ,,	६)	५)
शाही सुरमा ,, ,, =) छोटा पैकट ।) बड़ा पैकट		

क्षार तथा लवण

नाम वस्तु	१सेर	२०तो.	५तो.
अर्कक्षार	६)	१॥।)	॥)
अपामार्ग क्षार	६)	१॥।)	॥)
इन्द्रायण क्षार	१२)	३॥)	१)
इमली ,,	१२)	३॥)	१)
कटेली (कण्टकारी) क्षार	६)	१॥।)	॥)
कदली क्षार	६)	१॥।)	॥)
गोक्षुर ,,	८)	२॥)	॥।)
गोमूत्र ,,	६)	१॥।)	॥)
चना ,, (ओस जल का)	१२)	३॥)	१)
चना ,, (भस्म से बना)	६)	१॥।)	॥)
तिल क्षार	६)	१॥।)	॥)
पलाश ,,	१२)	३॥)	१)
पुनर्नवा ,,	१०)	२॥।)	॥।)
मूली ,,	६)	१॥।)	॥)
यव क्षार	६)	१॥।)	॥)
वज्र ,,	१०)	२॥।)	॥।)
वांसा ,,	६)	१॥।)	॥)
स्नुही ,,	८)	२॥)	॥।)
सत्यानाशी क्षार	१०)	२॥।)	॥।)
सज्जी क्षार	१)	।)	-)॥
अर्क लवण	४)	१।)	।=)
अष्टांग लवण	५)	१॥)	।≡)
नारिकेल ,,	८)	२॥)	॥।)

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुएं

शुद्ध वस्तु नाम	१सेर	२०तो.	५तो.
कज्जली शुद्ध पारद से			५)
कपर्दिका शुद्ध	३)	॥।≥)	।)
कांस्य चूर्ण शुद्ध	२॥)	॥।)	≡)॥
कान्त लोह ,,	३)	॥।≥)	।)
कुचला ,,	२)	॥≥)	≡)
कुचला चूर्ण ,,	६)	१॥।)	॥)
खर्पर ,,			३)
गन्धक आमलासार शुद्ध	६)	१॥।)	॥)
गुग्गुल शुद्ध	२)	॥≥)	≡)
जमालगोटा शुद्ध	८)	२।)	॥–)
ताम्र चूर्ण ,,	३॥)	१)	।–)
तुत्थ ,,	३)	॥।≥)	।)
दालचिकना ,,			६।)
धतूर बीज श्याम ,,	१)	।≥)	–)॥
नाग शुद्ध	१॥)	॥)	≥)॥
पारद अष्ट संस्कार पूर्ण शुद्ध			१०)
पारद हिंगुलोत्थ शुद्ध		१८)	५)
प्रवाल शाखा ,,			१॥)
पीतल बुरादा शुद्ध	१॥)	॥)	≥)॥
फिटकरी ,, (खील)	३)	॥।≥)	।)
भल्लातक ,,	१)	।–)	–)॥
मण्डूर शुद्ध	२)	॥≥)	≡)
मैनसिल ,,			॥।)
यशद ,,	३)	॥।≥)	।)
रस कपूर ,,			६।)
रसौंत ,,	२)	॥≥)	≡)
रौप्य माक्षिक शुद्ध	३)	॥।≥)	।)
लोह चूर्ण (मुण्ड लोह) शुद्ध	२)	॥≥)	≡)
लोह चूर्ण रेती का ,,	४)	१।)	।≥)
वंग शुद्ध	६)	१॥)	॥≥)
वज्राभ्रक (धान्याभ्रक) ,,	४)	१।)	।≥)
शङ्ख टुकड़े शुद्ध	१)	।–)	)॥
शङ्खनाभी ,,	१)	।–)	–)॥
शिंगरफ ,,			५)
शृङ्गिक (मीठा तेलिया काला) शुद्ध	३)	॥।≥)	≡)॥
सुहागा शुद्ध (खील)	३)	॥≥)	।)
सीप मोती शुद्ध	४)	१।)	।≥)
संखिया ,,		२॥।)	॥।)
स्वर्ण माक्षिक शुद्ध	५)	१॥)	।≡)
हरताल वर्की ,,		७)	२)
जौहर नौसादर (स्वर्ण बंगवाला)		॥) तोला	

सत्व और घनसत्व

नाम वस्तु	१सेर	५तो.
अजवायन सत्व (विलायती)		१॥।≥)
अद्रक सत्व		१)
अमलतास घनसत्व	२)	≡)
अशोक ,,	८)	॥≥)
उदुम्बर (गूलर) घनसत्व	८)	॥≥)
कर्कट शृङ्गी घन सत्व	८)	॥≥)
कुठ सत्व	१०)	॥।)
कुटज घनसत्व	८)	॥≥)
गिलोय सत्व	६)	।≡)
गोक्षुरु घनसत्व	८)	॥≥)
चोक घनसत्व	८)	॥≥)
जामुनत्वक घनसत्व	८)	॥≥)
दन्तीमूल घन सत्व	८)	॥≥)
नींबू सत्व (विलायती)	१५)	१)
पुनर्नवा घनसत्व	८)	॥≥)
पुदीना सत्व (पिपरमेंगट) विलायती		५॥≥)
बिरोजा सत्व	॥।)	–)
रसौंत ,,	२)	≡)
लोबान सत्व (विलायती)		२)
त्रिफला ,,	८)	॥≥)
वांसा घनसत्व	८)	॥≥)
शिलाजीत सत्व (अल्मोड़ा)	२०)	१॥)
सोंठ सत्व	८)	॥≥)

प्रवाही सत्व-सार (Liquid Extracts)

इस नवीन प्रकरण को देखकर वैद्यसमुदाय को प्रसन्नता होगी, कि हमने तरलसार (प्रवाही काढ़े) बनाकर क्वाथचिकित्सा को सुगम करदिया है। प्रसिद्ध शास्त्रोक्त क्वाथों तथा कई पृथक् द्रव्योंके काढ़े विशुद्ध हली वा मद्यसार (Rectified Spirit) आदि द्वारा सुरक्षित (Preserve) कर दिए हैं, ताकि क्वाथादि के निर्माण का कष्ट वैद्यों एवं जनता को न हो। तरल सारोंको आसवारिष्टोंका एक प्रकार समझना चाहिए। पाश्चात्य चिकित्सा शैली में इनका बहुत प्रयोग होरहा है। यह चिरस्थाई होते हैं। इनकी अल्प मात्रा और रुचिकारिता रोगियोंको क्वाथोंकी घृणा और क्लेश से बचाती है। तरलसारों में द्रव्यों का सम्पूर्ण गुण आजाता है।

औषध नाम	मुख्य गुण	१पौंड	८औंस
अपामार्ग	कफ, मूत्ररोग, जलोदर, सूजन, उदररोग	१॥)	॥।=)
अतिविषा	बच्चों के ज्वर, वमन, शूल, कृमि, अजीर्ण	४)	२॥)
अनन्तमूल	उपदंश, रक्तविकार, त्वक्दोष, गर्मी, मूत्ररोग	१)	॥।)
अर्कमूल	रक्तविकार, कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश,	१॥)	॥।=)
अश्वगन्धा	धातुक्षीणता, कृशता, क्षय, निर्बलता	१॥)	॥।=)
अशोक	प्रदर, गर्भाशय के रोग, ऋतुदोष, निर्बलता,	१)	॥।)
अंकोल	रक्तविकार, वातरोग, चूहे के विष पर	१॥)	॥।=)
अपराजिता	(विष्णुक्रान्ता) उदररोग, जलोदर,	१॥)	॥।=)
इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण)	कब्ज, उदररोग, कृमि, कामला,	१॥)	॥।=)
उलट कम्बल	कष्टार्त्तव, ऋतुदोष, मासिक रोधमें	६)	३।)
कर्कटशृङ्गी	बच्चों की खांसी, ज्वर, बालरोग, (डिब्बा)	१॥)	॥।=)
कण्टकारी	कफरोग, जीर्णज्वर, कफज्वर, श्वास,	१॥)	॥।=)
कम्पिल्लक	कृमिरोग, कृमिरोग से उत्पन्न हुई व्याधियें	१॥)	॥।=)
कांचनार	कण्ठमाला, गलगण्ड, जीर्णज्वर, रक्तविकार	१)	॥।)
कालमेघ	सब तरहके बुखार और बुखारसे हुई निर्बलता	१॥)	॥।=)
कुष्ठ	(उपलेट) उन्माद, दमा पक्षाघात, वातव्याधि	६)	३।)
कुटज	मरोड़, ज्वरातिसार, प्रदर, कृमि, रक्तस्राव,	१)	॥।)
कुटकी	विषमज्वर, उदररोग, बच्चों के ज्वर	१)	॥।)
खदिरत्वक्	त्वक्दोष, व्रण, कुष्ठ, रक्तदोष, गुल्म	१)	॥।)
गम्भारीत्वक्	ज्वर, मन्दाग्नि, कास, जलमयशोथ	१॥)	॥।=)
गुडूची	(गिलोय) ज्वर, विषमज्वर, त्वक् दोष प्रमेह	१॥)	॥।=)
गोक्षुर	(गोखरू) वीर्यस्राव, वीर्यविकार, मूत्ररोग,	१)	॥।)
चित्रकमूल	अजीर्ण, अफारा, मन्दाग्नि, अतिसार, अर्श	१॥)	॥।=)

औषध नाम	मुख्य गुण	१ पौंड	८ औंस
चोपचीनी	उपदंश, त्वक्दोष, रक्तदोष हर, पौष्टिक है	१॥)	॥।=)
जम्बुत्वक्	अतिसार, मरोड़, रक्तस्राव, मूत्ररोग	१॥)	॥।=)
दशमूल	प्रसूतावस्था में, यकृत वृद्धि, ज्वर में	१)	॥।)
दारुहरिद्रा	यकृत, कामला, ज्वर, ज्वरातिसार	१)	॥।)
धमासा	मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, पित्तज्वर, तृषा, वमन	१॥)	॥।=)
निसोत	कब्ज, अफारा, जलोदर, यकृत, पित्तविकृति	१॥)	॥।=)
निम्बत्वक्	ज्वर, रक्तविकार, त्वक्दोष, उपदंश	१)	॥।)
पर्पट	(पित्तपापड़ा) ज्वर और पित्त ज्वरमें उपयोगीहै	१)	॥।)
पटोल	विषमज्वर, कब्ज, उदररोग, जीर्णज्वर	१॥)	॥।=)
पाठा	(कालीपाढ़) ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, रक्तदोष	१)	॥।)
प्रसारणी	वातव्याधि, संधिवात, पक्षाघात, रींगनवाय,	१)	॥।)
पुनर्नवा	(सांठी) कामला, यकृत, सूजन, उदररोग,	१॥)	॥।=)
बहुफली	वीर्यविकार, मूत्रविकार, निर्बलता, जीर्णप्रमेह	१॥)	॥।=)
बिल्व	मरोड़, अतिसार, अर्श, रक्तपित्त, आमविकार,	१)	॥।)
ब्राह्मी	मस्तिष्कके रोग, उन्माद अपस्मार, वातव्याधि	१)	॥।)
ब्रह्मदण्डी	विस्मृति, हृदयनिर्बलता, रक्त विकार	१॥)	॥।=)
भृङ्गराज	पित्तरोग, यकृत रोग, खांसी, पीनस	१॥)	॥।=)
भारङ्गी	कफज्वर, खांसी, दमा	१)	॥।)
महामञ्जिष्ठादि क्वाथ	रक्तशोधक, त्वक् दोष शामक	१॥)	॥।=)
मंजिष्ठा	रक्तविकार, उपदंश, कुष्ठ, प्रमेह, प्रदर	१॥)	॥।=)
रास्ना	वातव्याधि, पक्षाघात, लकवा, उरुस्तम्भ	१)	॥।)
रोहितक	रक्तविकार, यकृत, जीर्णज्वर, निर्बलता	१)	॥।)
वच	ज्ञान तन्तु के रोग, अपस्मार, कृमि, ऋतुदोष	१॥)	॥।=)
वरुणा	मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, गर्भाशयके रोग	१॥)	॥।=)
वासा	(अडूसा) कफ, खांसी, श्वास, उरःक्षत, क्षय	१॥)	॥।=)
विदारीकन्द	वीर्यविकार, कृशता, प्रमेह, प्रदर, वीर्यस्राव	१॥)	॥।=)
शतावरी	वीर्यरोग, वातव्याधि, वीर्यस्राव	१॥)	॥।=)
शरपुंखा	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, निर्बलता, उपदंश	१)	॥।)
शंखपुष्पी	(शंखाहुली) निर्बलता, अपस्मार, उन्माद	१॥)	॥।=)
शिग्रमूल	(सुहांजना) यकृत, प्लीहा, उदररोग, अफारा	१॥)	॥।=)
सेम्बल	प्रमेह, प्रदर, रक्तस्राव, अतिसार, वीर्यविकार	१॥)	॥।=)
हींग	उदर रोग, अफारा	२॥)	१॥)

प्रवाहीसारों की मात्रा (Dose)

एक से तीन वर्ष तकके बच्चेको १० बूंद सुबह और शाम पानीके साथ
तीन से नौ ,, ,, २० ,, ,, ,,
नौ से सोलह ,, ,, ३० ,, ,, ,,
सोलह से उपरान्त वाले को ४० ,, ,, ,,

नोट—सब तरलसार उक्त परिमाणोंके पैकिङ्गमें मिलेंगे। शीशी आदिके लिए कुछ न देना पड़ेगा। शीशियोंके कार्क सावधानीसे बन्द रखें

परिश्रुत अर्क, रूह तथा शर्बत (SYRUPS)

(अर्क, रूह, शर्बत ग्राहक की जिम्मेवारी पर भेजे जायंगे)

नाम वस्तु	१०पौंड	५पौंड	२पौंड
दशमूलार्क	२।॥)	१॥=)	॥।)
महामंजिष्ठादि अर्क	४॥)	२॥)	१=)
महारास्नादि अर्क	४)	२।)	१)
सुदर्शन चूर्ण अर्क	४॥)	२॥)	१=)
रूह केवड़ा	८)	४॥)	२)
रूह गुलाब	८)	४॥)	२)
अर्क गुलाब	२।॥)	१॥=)	॥।)
अर्क केवड़ा	२।॥)	१॥=)	॥।)
अर्क वेदमुश्क	५॥)	३।)	१॥)
रक्तशोधक अर्क	५॥)	३।)	१॥)

वर्क (पत्र) सोना चांदी

वर्क स्वर्ण	१ दफतरी	१२० पत्र	५ रत्ती	३।॥)
वर्क स्वर्ण	,,	,,	१ माशा	७।)
वर्क स्वर्ण	,,	,,	२। माशा	१५)
वर्क स्वर्ण	,,	,,	३ माशा	१८)
वर्क स्वर्ण	,,	,,	६ माशा	३८)
वर्क चांदी	,,	,,	३ माशा	॥।)
वर्क चांदी	,,	,,	४॥ माशा	॥।=)
वर्क चांदी	,,	,,	५॥ माशा	१=)
वर्क चांदी	,,	,,	७ माशा	१।=)
वर्क चांदी	,,	,,	६॥ माशा	१।॥)
वर्क चांदी	,,	,,	१ तोला	२)
वर्क चांदी चूरा साफ नं० १			१ तोला	१।॥)
वर्क सोने का चूरा			१ तोला	६५)

	१सेर	२औंस
तेल जैतून (विलायती)	६)	॥)
तेल जमालगोटा असली		२॥)
तेल जायफल विलायती		२॥)
तेल तुवरक	६)	॥)
तेल तारपीन	१॥)	=)
तेल दालचीनी (विलायती)	१०)	॥।)
तेल नीम	१)	=)
तेल पिपरमैंट (पोदीना)		२)
तेल बावची		१॥)
तेल सारंडे की (चर्बी)		३।॥)
तेल सूस मछली (चर्बी)		१।)
रोगन बादाम मीठा	१०)	।॥)
तेल भिलावा	१०)	॥।)
तेल महुआ	॥=)	
तेल मालकंगनी	५॥)	।=)
तेल (आइल) यूक्लिप्टस		॥।)
तेल लौंग (विलायती)		२॥)
तेल बिरोजा (विलायती)	८)	॥=)
तेल सौंफ (विलायती)		२)
तेल सन्दल (चन्दन) असली	३८)	२॥)
तेल शीतलचीनी (सर्दचीनी)		३) तोला
तेल धतूरा		२) तोला

वानस्पतिक रोगन और प्राणिज तैल

(रोगन और तैल ग्राहक की जिम्मेवारी पर भेजे जायंगे)

नाम वस्तु	१सेर	२औंस
तेल अजवायन (विलायती)	८)	॥=)
तेल अलसी	।॥)	
तेल इलायची (कपूर जापानी)	४)	।-)
,, विलायती असली	२०)	१॥)
रोगन कद्दू	४)	।=)
रोगन काहू	४)	।=)
कुष्ठतेल	४)	।=)
कास्ट्रायल (विलायती)	२)	≡)
कास्ट्रायल (आगरा) ५) गैलन	१॥)	=)
कास्ट्रायल (कलकत्ता) ४) ,,	१)	-)॥
खसखस रोगन	१॥)	=)
रोगन वीरबहूटी		२॥)
गुल रोगन	१॥)	=)
रोगन तरबूज	२)	=)॥
तेल चावल मोंगरा	८)	॥=)

थोक लाइसेन्स विषोपविष

निम्नलिखित विष मंगाते समय लाइसेन्सदार अपने नम्बर और वैद्य, पूरा २ पता डिवीजनके साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य महोदय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि **"हम व्यवहार के लिए मगाते हैं"**, तभी माल भेजा जायगा।

	१सेर	५तो.
संखिया खनिज	८)	॥≥)
संखिया श्वेत	८)	॥≥)
संखिया श्वेत दूधिया	८)	॥≥)
संखिया पीला	६)	॥)
संखिया काला	१६)	१।)
संखिया लाल	८)	॥≥)
संखिया भूरा	१०)	॥।)
संखिया हल्का हरा	१०)	॥।)
हरताल वर्की चूरा	८)	॥≥)
हरताल वर्की छोटे पत्रकी	१५)	१≥)
हरताल वर्की बड़े पत्रेकी	२०)	१॥)
रसकपूर		३॥।)
रसकपूर पपड़ी का		५)
दालचिकना		३॥।)
मीठा तेलिया (काला) शुद्ध शृङ्गिक नं१	३)	।)
,, ,, नं० २	२)	≡)
शृङ्गिक श्वेत (अशुद्ध वत्सनाभ)	२)	≡)
धतूर बीज श्याम	।≥)	)॥
धतूर वीज सफेद	॥।)	-)
कुचला	॥)	)॥

प्राणिज व खनिज द्रव्य

नाम वस्तु	१मन	१सेर	१तो०
अम्बर स्पेशल			४०)
अम्बर असहब नं० १ (अग्निजार)			२४)
अम्बर असहब नं० २ ,,			१८)
अभ्रक बज्र बड़े कणका श्याम	४०)	१।)	
अभ्रक बज्र बड़े कणका श्याम चूर्ण	२०)	॥≥)	
अभ्रक काला उत्तम पत्र	२०)	॥≥)	
अभ्रक उत्तम श्वेत	११)	।≥)	
अकीक पत्थर नं० १			॥)
अकीक पत्थर नं० २		२०)	।-)
अकीक पत्थर नं० ३		१०)	=)॥
अकीक खरड़		१॥)	
कसीस लाल		६)	
कसील हरा		।≡)	
कस्तूरी (खुतन) दानेदार			४०)
कस्तूरी नैपाली उत्तम			३०)
कस्तूरी काश्मीरी			२५)
कछुआ खोपड़ी		॥)	
कांतलोह नं० १ (अमेरिका)			॥।) तोला
कान्त लोह नं० २ (ग्वालियर)		१॥)	
कांस्य बुरादा		२)	
केंचुवे		२)	
कौड़ी पीली छोटी		१)	
कौड़ी पीली मोटी		३)	
गन्धक डगडा		।॥)	
गन्धक आमलासार		३॥)	
गिले अरमनी		॥)	
गिलेमखतूम		॥≥)	
गोरोचन असली			१५)
गोमेद			६)
जहरमोहरा		१॥)	
जहरमोहरा खताई नं० १			१)
जङ्गार		३)	
जस्त फूला हुआ आंख में डालने का		२)	
जस्त मीठा पटड़ी का		२)	
जुन्द विदस्तर			३॥)
जोंक		५)	-)॥
भा चूहा (जङ्गली कांटे वाला चूहा)			१)
तुरमली खरड़			३)
ताम्र बुरादा		२)	
नख		८)	-)॥
नाग (सिक्का)		॥≥)	
निमक काला (सौंचर)		।)	
निमक विड (कांच)		।)	

माल मंगवाने से पहिले चौथाई दाम अवश्य भेजें।

	१मन	१सेर	१तो.
निमक विड असली		॥)	
निमक गुमा (पांगा)		।≤)	
निमक समुद्र (सांभर)		।)	
निमक खारी (नालीदार)		।)	
निमक सैंधव		=)	
नीला थोथा		१=)	
नीलम			१२)
नीलम खरड			१)
नौसादर देशी		१=)	
नौसादर डगडा (विलायती)		॥।=)	
नौसादर टिकिया		॥।≥)	
पन्ना			४)
पन्ना खरड			१)
प्रवाल शाखा		१६)	
प्रवाल मूल		१)	
पत्थर का दिल (कब्बुलहिजर)			२)
पारद बाजार भावानुसार		३५)	॥)
पीतल चूर्ण बुरादा		१॥)	
पुखराज			३)
फादजहर हैवानी			१॥)
फिटकरी लाल		।=)	
फिटकरी श्वेत		।=)	
फिरंग दाना			२)
फिरोजा			२)
वंग (ईंट की)		७)	-)॥
बराह (सूअर) का पित्ता			१)
बराह (सूअर) की चर्बी		५)	-)॥
बकरे का पित्ता			१)
बिच्छू (सूखे)		=) नग	
बीर बहूटी		७)	-)॥
बन्दर की इन्द्री			४)
बारासिंगा (मृगशृङ्ग)	१५) मन	।≤)	
बेरपत्थर		५॥)	
मुर्दासंग		॥।)	
मण्डूर पुराना	७)	।)	

	१मन	१सेर	१तो.
मैनसिल नं० १		८)	
मैनसिल नं० १ का चूर्ण		६)	
मैनसिल नं० २		६)	
माणिक्य "चूनी" नं० १			४)
माणिक्य ,, नं० २			३॥)
माणिक्य ,, नं० ३			१॥)
माणिक्य खरड़			।=)
मत्स्यपित्त शुष्क			४)
माएशुतर आबी असली			२)
मोती बसरई नं० १			३०)
मोती बसरई नं० २			२४)
मोती आस्ट्रेलिया नं० १			२४)
मोती आस्ट्रेलिया नं० २			२०)
मोती बेडौल बड़ा दाना नं० १			१०)
मोती बेडौल नं० २			२)
मोती चावला			१२)
मोती बिंधा हुआ			१२)
मोमदेशी साफ		३।) सेर	
मोरका पङ्खा, १ पैरका पूरा			२) नग
मधुश्वेत (शहद)	३५)	१) सेर	
मधुलाल ,,	२०)	॥=) ,,	
राजावर्त			।)
रीछ "भालू" की इन्द्री			३)
रीछ "भालू" का पित्ता			३)
रीछ की चर्बी		३)	-)
रूपामक्खी चतुष्कोण		१।)	
रूपामक्खी (गोलादाना)	२०)	॥=)	
लोहचूर्ण मुंड	१०)	।-)	
लोहचूर्ण रेती का		१)	
लाख पीपल		१)	
लाख बेरी		१)	
वैक्रान्त श्वेत नं० १		३)	
वैक्रान्त श्वेत नं० २		१)	
शिलाजीत पत्थर	१५)	।≤)	
शिलाजीत सत्त (सूर्यतापी)		२०)	१॥) छ०

	१मन	१सेर	१तो
शिलाजीत सूर्यतापी		१२)	६) छ०
शिलाजीत अग्नितापी		८)	=) तो०
शंखनाभि	१५)	।≡)	
शंख टुकड़े	१२)	।=)	
शंख चूरा	६)	≡)	
शंख कीट			॥)
शोरा कल्मी		॥)	
शेरकी इन्द्री			४)
शेरकी चर्बी		१६)	।)
शेरके नख	छोटे १) प्रति जोड़ा, बड़े २) प्रति जोड़ा		
संग जराहत	२॥)	=)	
संग सरमाही			।)
संगयशव		४)	‑)
संगदाना मुर्ग		६)	=)
संग्रासक		२।)	
संसार (नक्र, मगरमछ) का पित्ता			४)
सज्जी लोटा	५)	=)॥	
सफेदाकाशगरी	१०)	।‑)	
समुद्र फेन		॥=)	
सरतान		२)	
सिन्दूर		१॥)	
सिंगरफ रूमी डली बाजार भावानुसार		४०)	॥=)
सीप मोती बाजारी		१॥=)	
सीप मोती असली		३)	
सुरमा श्वेत	३)	=)	
सुरमा काला		२)	
सुरमा अस्पहानी (ध्वष्टन्तुगैरिकाच्छाये)		५)	
सुहागा चौकिया		१=)	
सुहागा विलायती		१।)	
सेलखड़ी	२॥)	‑)॥	
सोनामक्खी चमकदार (अमेरिका) पत्थर रहित		२०)	।)
सोनामक्खी नं० २ बाजारी		॥।=)	
सोना गेरू	८)	।)	
हरताल गोदन्ती चौड़ा पत्र	१०)	।=)	
हरताल पीली		१=)	
हाथी दांत बुरादा		२)	
हाथी नख			॥)

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियां

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५ तो०
अकरकरा (असली)		१६)	।)
अकाकिया		३)	।)
अखरोट छाल		॥)	
अखरोट फल		।=)	
अखरोट गिरी		॥=)	
अगर भूरा (टुकड़े)		॥=)	
अगर बुरादा		१)	
अजमोद	८)	।)	
अजवायन देसी	८)	।)	
अजवायन खुरासानी		॥=)	
अजवायन दाना	८)	।)	
अंकोल बीज	१८)	॥)	
अंकोल छाल	१४)	।=)	
अजखर		।)	
अंजवार	८)	।)	
अंजरूत (गोस्तखोरा)		१।)	=)
अंजीर		१।)	
अतीस श्वेत कटु		६)	॥)
अतीस काली		६)	॥)
अतीस मीठी		३॥)	≡)
अतीस आग		२॥)	।)
अतिबला पञ्चाग (कङ्घी)	१०)	।‑)	
अधोपुष्पी	१२)	।=)	
अनन्तमूल (बंगाल)	२०)	॥≡)	
अनन्तमूल (देशी)	१०)	।‑)	
अनारदाना	१७)	॥)	
अनीसून	१०)	।‑)	
अपराजिता (विष्णुकान्ता)		२)	=)॥
अपामार्ग पञ्चाग	१०)	।‑)	
अपामार्ग बीज		॥।)	‑)
अफतीमून (विलायती)		६)	‑)
अफसनतीन		।)	
अम्लबेद गुच्छी (चूका)	२०)	॥=)	
अमलतास गूदा	६)	≡)	

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५तो०
अमलतास फली	४)	=)	
अमर बेल	१०)	।-)	
अर्क मूल		।-)	
अर्क पुष्प	१५)	॥)	
अर्क दुग्ध		२)	≡)
अर्जुन त्वक्	६)	।)	
अरणी मूल	६)	।)	
अरणी छाल	१३)	।=)	
अलसी		≡)	
अशोक त्वक् (बंगाल)	१८)	॥)	
असगंध नागौरी	१८)	॥)	
आंवले सूखे	५)	=)॥	
आम की गुठली		।)	
आम्बा हल्दी		॥)	
आबनूस बुरादा		।॥)	
आबरेशम		५)	।=)
आलू बुखारा		।॥)	
इंगुदी		॥)	
इन्द्रयव मीठे		।॥)	
इन्द्रयव कड़वे		॥)	
इन्द्रायण मूल	१२)	।-)	
इन्द्रायण फल	१२)	।-)	
इमली फल		।)	
इमली छाल		॥)	
इलायची छोटी		६॥)	।≡)
इलायची बड़ी (डोडा)		१=)	-)॥
इलायची दाना असली		१।॥)	=)
इश्कपेचा (कालादाना)	८)	।)	
इरिमेद छाल	१०)	।-)	
ईसबगोल		।≡)	
ईसबगोल भूसी असली		२)	=)॥
ईश्वर मूल		३)	।)
उटंगन बीज		१।=)	-)॥
उन्नाब		१।=)	-)॥
उशबामगरबी असली		५)	।=)
उशक (गोंद)		१।)	-)॥
उलट कम्बल		५)	।=)
उस्ते खद्दूस		२॥)	≡)
ऊद बिलसां		१॥)	=)
ऊदसलीब असली			५)
ऊंट कटेरा	१०)	।-)	
एरण्ड मूल	१०)	।-)	
एरण्ड बीज	७)	≡)	
एलवालुक फल		१।॥)	=)
एलुबा (मुसब्बर) असली		२॥)	=)
ऋषभक (वहमन श्वेत)		१)	
ऋषभक बाजारी		४)	।-)
ऋद्धि (चिड़ियाकन्द)		।॥)	
कर्कोटी कन्द		।॥)	
कचूर	८)	।)	
कचनार छाल	७॥)	।)	
कचनार फूल		१)	-)
कंकोल दाना	२०)	॥=)	
कंटकारी फल बृहत	२०)	॥-)	
कंटकारी फल लघु	१५)	।≡)	
कंटकारी लघु पञ्चाङ्ग	७)	≡)	
कंटकारी बृहत् पञ्चाङ्ग	७॥)	।)	
कंकुष्ठ (उशारा रेवन्द)		१४)	१)
कन्तरयून		॥)	
कत्था		२॥)	=)॥
कदम्ब त्वक्	१५)	।≡)	
कदलीकन्द		॥)	
कनेर फूल श्वेत		।॥)	-)
कनेर मूल श्वेत		।॥)	-)
कपित्थ फल	२०)	॥=)	
कपूर देशी		१६)	१=)
कपूर भीमसेनी असली			१०)
कपूर भीमसेनी बाजारी			२॥)
कपूर कचरी	६)	।-) सेर	
कम्पिल (छना)		१)	-)॥

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५तो०
कमरकस (पलास गोंद)	२२)	॥−)	
कमलगट्टे	१२)	।−)	
कमलफूल लाल		१)	
कमल मूल शुष्क		२)	≡)
करञ्ज बीज	१५)	।≡)	
करञ्ज पञ्चाङ्ग	१३)	।=)	
करफस		२॥।)	≡)
कलौंजी		॥)	
कसौंदी बीज		॥।)	
कलिहारी (लांगुली) मूल		४)	।−)
कश्मीरी पत्ता		।−)	
कहरवाशमई			४।=)
कञ्चनफल (कामला नाशक)		५)	।=)
काकजङ्घा पञ्चाङ्ग	१०)	।−)	
काकनासा पञ्चाङ्ग	१०)	।−)	
काकनासा फल (काकनज)		१॥=)	=)
काकोली (श्याममूसली)	२८)	॥।)	
काकोली (बंगाल)		८)	॥−)
काकड़ासिंगी	२०)	॥=)	
कायफल	१०)	।−)	
कालीजीरी		।−)	
कालमेघ		१।)	−)॥
कासनी (बीज)	१०)	।−)	
काही मूल (कास)	१६)	॥)	
काहू		१॥।)	
किसमिस हरी मोटी	१५)	।≡)	
कुटकी (कौड़)		॥।=)	
कुठ मीठी		१॥)	
कुठ उत्तम नं० १		३)	।)
कुठ उत्तम नं० २		२)	≡)
कुठ चूर्ण मोटा अच्छा		१)	−)॥
कुटज (कुड़ा) छाल	८)	।)	
कुकुन्ध्रक (कुकुरौंधा)	१०)	।−)	
कुलञ्जन (पानकी जड़)	१८)	॥)	
कुशामूल	१६)	॥)	

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५तो.
कुसुम्भ बीज	६)	।)	
कुल्फा (खुरफा)		॥)	
कुल्थी	६)	।)	
केसर मोंगरा काश्मीरी असली		३॥) तोला	
केसर लच्छा (गुच्छी)		२॥) ,,	
कौंच जड़		१) सेर	
कौंच बीज (काले छोटे)	१३)	।=)	
कौंच बीज (सफेद मोटे)	१३)	।=)	
खशखाश (पोस्तदाना)		॥)	
खत्मी		॥।)	
खव्वाजी		।≡)	
खस (बम्बई)		।≡)	
खदिर छाल	८)	।)	
खूबकलां (पीली)	८)	।)	
खूबकलां लाल	१२)	।=)	
गगन धूल			१।)
गंगेरन छाल	३५)	१)	
गजपीपल (ताड़फूल)	१२)	।=)	
गन्ध प्रसारणी	१२)	।=)	
गन्धाबिरोजा गीला	१२)	।=)	
गम्भारी त्वक्	७॥)	।)	
गलगण्ड विनाशी पत्र (गिल्लड़पत्ता)		५)	।=)
गावजबां		॥≡)	
गिलोय सूखी	६)	≡)	
गुञ्जा लाल	६)	।)	
गुञ्जा श्वेत		१)	
गुग्गुल महिषाक्ष	३५)	१)	
गुड़ ५० साल पुराना		५)	।=)
गुड़मार बूटी	२०)	॥=)	
गुड़हल फूल		१।)	=)
गुलाब केसर (जरूरद)		२)	≡)
गुल खैरा		−।=)	
गुल गाजवां		३)	।)
गुल गाफिस		१)	−)॥
गुलनार		१)	−)॥

माल मंगवाने से पहिले चौथाई दाम अवश्य भेजें।

नाम वस्तु	१ मन	१ सेर	५ तो	नाम वस्तु	१ मन	१ सेर	५ तो०
				चित्रक मूल	१२)	।=)	
गुलपिस्ता		१)	-)॥	चित्रक मूल त्वक्		२)	
गुल बाबूना		॥)		चित्रक पञ्चाङ्ग	७)	≡)	
गुलबनफशा नं. १, २		४॥),४)	।-); ।)	चिरायता मीठा	१८)	॥)	
गुलबनफशा पीला फूल (नकली)		१)		चिरायता कड़वा		।॥)	
गुल सुर्ख पेशावरी		१॥)		चिलगोजा		।॥)	
गुल सुर्ख देशी (पङ्खड़ी)		१।)		चिरौंजी		१=)	-)॥
गुल सुपारी (मोचरस नकली)		।॥=)		चोकमूल पञ्जाब	१०)	।-)	
गुल सेवती		१॥)	=)	चोक (सत्यानाशी मूल)	१२)	।=)	
गूलर (उदुम्बर) छाल		।=)		चोपचीनी		१।॥=)	=)
गूलर फल		।=)		चोरक (ग्रन्थिपर्णी-भटेउर)		१॥)	=)
गोंद कतीरा		१।)	-)॥	चांगेरी	१६)	॥)	
गोंद कुन्दरू		।॥)	-)	छरीला (शिलापुष्प)	११)	।-)	
गोंद छुहारा		१।)	-)	छुहारा		।-)	
गोंद भीमरी		।॥=)	-)	जलनिम्ब	१६)	॥)	
गोंद बबूल		।॥=)	-)	जल पिप्पली	१६)	॥)	
गोरखमुण्डी	६)	≡)		जख्म हयात	१०)	।-)	
गोरख पान	१५)	॥)		जलापा विरेचनार्थ		१३)	।॥=)
गोखरू पञ्चाङ्ग	६)	≡)		जवासा पञ्चाङ्ग	८)	।)	
गोखरू फल लघु	७॥)	≡)॥		जरावन्द मदहरंज		॥=)	
गोखरू फल वृहत्		।॥)		जरिश्क मीठा		१=)	
गौरीसर (सलारा)		॥-)		जरिश्क खट्टा		।॥)	
गन्ना जड़ (इचुमूल)	१५)	॥)		जामुन गुठली	६)	।)	
चन्द्रसूर (हालों)	८)	।)		जामुन छाल	६)	।)	
चक्रमर्द बीज (पनवाड़ बीज)	६)	≡)		जायफल		२)	=)
चन्दन काष्ठ श्वेत		१।=)	=)	जावित्री		४)	।-)
चन्दन बूरा श्वेत		१॥=)	=)	जियापोता		।=)	
चन्दन काष्ठ लाल		॥)		जीरा श्वेत		।॥)	
चन्दन बूरा लाल		॥=)		जीरा काला असली नं. १		२)	≡)
चमोतियां		।)		जीवक (लम्बा सालब)		६)	।≡)
चव्य (कृष्ण मिर्च मूल)		१)		जीवन्ती (बंगाल)		१॥)	=)
चव्य (पिप्पली मूल बारीक)	१२)	।=)		जूफा		॥=)	
चाकसू		।॥=)		जैपाल बीज (जमालगोटा)		१)	
चावल मोंगरा बीज		१।)		तगर (सुगन्ध बाला मूल)		॥=)	

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५तो०
तज	१४)	।=)	
तालमखाना		१=)	
तालीस पत्र बाजारी	८)	।)	
तालीस पत्र असली		॥)	
तिन्तड़ीक (समाकदाना)	१२)	।=)	
तुगाक्षीर		१)	
तुख्म कसूस	१६)	।≡)	
तुख्म धनन्तर		२)	
तुख्म कद्दू	१४)	।=)	
तुख्म कलौंचा		॥।=)	
तुख्म खीरा		१=)	
तुख्म खिरनी		१॥)	=)
तुख्म गंदना	२०)	॥=)	
तुख्म गाजर		॥)	
तुख्म तरबूज		।-)	
तुख्म बालंगा	१५)	।≡)	
तुख्म मूली		।=)	
तुख्म रेहां	८)	।)	
तुख्म शलगम		॥=)	
तुरञ्जबीन असली		॥।)	-)
तेजपत्र		।)	
तेजबल बीज (कबाबा)		॥)	
तेजबल त्वक्	१६)	।≡)	
तोदरी लाल		२॥)	
तोदरी श्वेत		२)	
तोदरी पीली		२)	
दन्तीमूल	१४)	।=)	
दमउलखवीन असली		१५)	१)
दरूनज अकरवी		१॥।)	=)
दरियाई नारियल		२।)	≡)
दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	१०)	।-)	
दशमूल बिना कुटा	७॥)	।)	
दालचीनी		२।)	
दारुहल्दी (लकड़ी)	६)	≡)	
दारुहल्दी बुरादा		॥।)	

	१मन	१सेर	५तो०
दुग्धी (हजारदानी) बृहत्	१५)	॥)	
देवदारु	८)	।)	
देवदारु बुरादा		।=)	
देवदाली फल (बन्दाल डोडा)		२॥)	≡)
द्रोणपुष्पी	१०)	।-)	
धतूर पञ्चाङ्ग	१२)	।=)	
धनिया	११)	।-)	
धमासा	१०)	।-)	
धवल बरुआ (चांदबरुआ, छोटा चांद)		३)	
धातकी (धावेके) फूल	८)	।)	
धानमूल	१६)	॥)	
धूप सामग्री (हवनकी)		॥)	
धूपबत्ती		॥।)	
धूपजड़ी (लकड़ी)	१०)	।-)	
नकछिकनी	१२)	।=)	
नगन्द बावरी		॥।)	
नड़ामूल		॥)	
नाखूना		१)	
नागरमोथा	८)	।)	
नागकेसर असली		८)	॥=)
नागकेसर बाजारी दाना		॥।)	
नागबला	१२)	।=)	
नागबला बीज		॥)	
नागार्जुनी (हजारदानी) लघु	१५)	॥)	
नासपाल	५॥)	≡)	
निम्बत्वक्	१२)	।=)	
निंबोली	९)	।)	
निम्बफूल		॥)	
निर्गुण्डी (सम्भालू) पञ्चाङ्ग	६)	≡)	
निर्गुण्डी बीज	१२)	।=)	
निर्मली बीज	१८)	॥)	
निर्विसी (जदवार)		६)	।≡)
निसोत (त्रिवृत्ता) सफेद		३)	।)
निसोत श्याम		२॥)	≡)
नीलकण्ठी		॥।)	

	१ मन	१ सेर	५ तोला
नीलोफर फूल (पत्ती)		१=)	
नेत्रबाला (सुगन्ध वाला)		।–)	
पटोल पत्र	१२)	।=)	
पतङ्ग काष्ठ		॥।)	
पतंग बुरादा		१)	
पद्मकाष्ठ	१०)	।–)	
पपीता		६)	।≡)
परश्योशां (हन्सराज)	१०)	।–)	
पलाश पुष्प	४)	=)	
पलाश पापड़ा (खग्गे)	८)	।)	
प्रसारणी	१२)	।=)	
पाटला त्वक्	७॥)	।)	
पाटला फली	१२)	।=)	
पाठा पञ्चाङ्ग	१२)	।=)	
पाठा मूल (पहाड़ मूल)		॥।)	
पानड़ी		१।)	
पाषाण भेद	१०)	।=)	
प्याज जङ्गली (सुखदर्शन)		।)	
पिप्पली लघु		४)	।–)
पिप्पली वृहत्		१॥=)	=)
पिप्पली मूल नं. १,२		३),२॥)	।),≡)
पित्तपापड़ा (शाहतरा)	६॥)	≡)	
पीपल जटा		१॥)	=)
पियारांगा		३)	≡)
पियाबांसा	१६)	॥)	
प्रियंगू फल (गोंदनी)	१६)	॥)	
प्रियंगू फल (बङ्गाल)		५)	।=)
प्रियगू (पञ्जाब) असली		२)	≡)
पिस्ता		३॥।)	।)
पुनर्णवा श्वेत मूल	२८)	॥।)	
पुदीना सूखा देशी	७)	।)	
पुदीना जङ्गली	७)	।)	
पुष्कर मूल		२॥)	≡)
पृश्निपर्णी लम्बा पत्र	३०)	॥।=)	–)
पृश्निपर्णी बड़ा पत्र	६)	।)	

नाम वस्तु	१मन	१सेर	५तो०
पञ्चतृण मूल		॥)	
फरफीऊन विलायती		१॥।)	=)
फालसा छाल		॥)	
फिन्दक		।≡)	
बन तम्बाकू	१२)	।=)	
बन जटा	१२)	।=)	
बकायन फल	७॥)	।)	
बर्ग सदाब		।–)	
बच तीक्ष्ण	७)	≡)	
बच मधुर		२)	=)॥
बन तुलसी	१०)	।–)	
बन बकरी		॥।)	
बनफशा पत्र	१५)	।≡)	
बबूल त्वक्	७॥)	।)	
बबूल फली	७॥)	।)	
बबूल फूल		॥)	
बला पञ्चाङ्ग (खरैंटी)	१०)	।–)	
बलामूल	१२)	।=)	
बहमन सफेद		१)	
बहमन लाल		१)	≡)
बहुफली	१०)	।–)	
बहेड़ा फल	३)	=)	
बहेड़ा छाल (बक्कल)	८)	।)	
बाल छड़ (जटामांसी)		॥।=)	
बराही कन्द	१०)	।–)	
बादरञ्जबूया		।=)	
बादावरद	२०)	॥=)	
बादयान खताई		३)	।)
बारतंग		॥।)	
बादाम कागजी नं. १, २		१॥=), १।)	
बादाम पेशावरी		१≡)	
बादाम काठा		॥।–)	
बाकला		।≡)	
बावची	८)	।)	
बांसा मूल	१२)	।=)	

	१ मन	१ सेर	५ तो०
बांसा मूल त्वक्	२०)	॥–)	
बांसा पुष्प		॥)	
बांसा पत्र (पञ्चाङ्ग)		≡)	
बिजया बीज असली	२३)	॥=)	
बिजया (भांग) बीज मोटे	१८)	॥)	
बिहीदाना		८)	॥=)
बिस्फायज		॥=)	
बिदारी कन्द	१२)	।=)	
बिधारा मूल	११)	।–)	
बिधारा बीज		३)	।)
बीजाबोल (मुरमकी)		३॥)	।)
बायबिड़ङ्ग	५)	≡)	
बिरञ्जासफ		।॥)	
बिरोजा सूखा	१२)	।=)	
बिल्वत्वक्	७॥)	।)	
बिल्व फल	६)	≡)	
बिच्छू बूटी	७॥)	।)	
बिजयसार छाल		॥)	
बीजबन्द काले	२२)	॥=)	
बीजबन्द लाल		॥)	
बूरा अरमनी		१॥)	
बेख कासनी		।–)	
बेख बादयान		≡)	
बेख भिण्डी		।)	
बेख बाबूना	१२)	।=)	
बेख सोसन		१॥)	=)
ब्रह्मीबूटी	१८)	॥)	
ब्रह्मदण्डी	१०)	।–)	
बंशलोचन नं० १, २		१४),१२)	।॥≡),।॥–)
बंशलोचन नं० ३		१०)	।॥)
भल्लातक (भिलावा)	८)	।)	
भार्ङ्गी	११)	।–)	
भांगरा पञ्चाङ्ग	७॥)	।)	
भू आंवला	८)	।)	
भूतकेशी		।≡)	

	१मन	१सेर	५तो०
भोज पत्र	१०)	।–)	
मछेछी (मत्स्याक्षी)	७॥)	।)	
मकोय दाना		॥=)	
मकोय पञ्चाङ्ग	६)	।–)	
मखाना		१।=)	
मगज कद्दू		॥।–)	–)
मगज खरबूजा		१=)	–)
मगज खीरा		२)	=)
मगज तरबूज		।≡)	
मगज बादाम		३)	।)
मस्तगी रूमी असली		१५)	१)
मरोड़ फली	७)	॥)	
मदन फल		≡)	
मयूर शिखा		१।॥)	=)
ममीरी मूल		८)	॥=)
मंजीठ	२१)	॥=)	
महाबला (सहदेवी)	१०)	॥–)	
महुआ फूल	१०)	॥–)	
महुआ छाल	१०)	॥–)	
माजू फल		१।=)	
मालकङ्गनी	१३)	॥=)	
माषपर्णी	८)	॥)	
मांई	८)	।)	
मिर्च श्वेत		१।)	–)॥
मिर्च काली		।≡)	
मुचकुन्द पुष्प	२७)	॥।)	
मुनक्का काला (असली)		॥।)	
मुनक्का लाल (आबजोश)		॥)	
मुद्गपर्णी	१०)	॥–)	
मुलहटी	१७)	।≡)	
मुश्कतरामसी		॥।–)	
मूसली श्वेत नं. १, २		४),३)	।–),।)
मूसली श्याम	२८)	।॥)	
मूर्वा (मोरवेल) असली	२०)	॥=)	

	१ मन	१ सेर	५ तो०
मेढ़ासिंगी	१६)	॥)	
मेथी बीज		।)	
मेथी पत्ते		॥=)	
मेदा (शकाकल छोटी)		॥।)	
महामेदा (शकाकल बड़ी)		॥=)	
मेंहदी पिसी हुई	१०)	।-)	
मैदा लकड़ी छाल	५)	≡)	
मोचरस असली (गोंद सिम्बल)		॥।)	
मोचरस बाजारी (गोंद सुहाञ्जना)		॥।≈)	
मौलश्री त्वक्	२०)	॥=)	
मौलश्री फूल		२॥)	≡)
मौलश्री फल		॥।)	
यवतिक्ता (हिरन खुरी)		॥)	
रतन जोत	१२)	।=)	
रसाञ्जन (रसौंत)		१)	
राई		≡)	
रामपत्री (नकली जावित्री)		॥।=)	
रास्ना पत्र असली		॥=)	
रास्ना मूल बंगाली		॥)	
राल		॥=)	
रीठा	६)	≡)	
रेणुका बीज		२)	≡)
रेवन्द चीनी		॥=)	
रेवन्द खताई नं. १			१।)
रेशा खत्मी	१५)	॥)	
रोहिषतृण मूल	१५)	॥)	
रुद्रवन्ती		२)	=)॥
रुब्बुलसूस (सतमुलहटी)		१०)	॥।)
रोहितक छाल	१२)	।=)	
लता कस्तूरी		१॥।)	
लवंग (लौंग)		१॥।)	=)
लाजवन्ती (पञ्चाङ्ग)	१२)	।=)	
लाजवन्ती बीज (छोटे)		॥=)	
लांगुली मूल (कलिहारी)		४)	।-)
लोध्र पठानी	१०)	।-)	

	१ मन	१सेर	५तो०
लोबान कौड़िया		१॥।)	-)
वरुण त्वक्	८)	।)	
शकर तगयाल		३।)	।)
शङ्खपुष्पी	११)	।-)	
शरपुङ्खा	७)	।)	
शालपर्णी	७॥)	।)	
शिवलिंगी बीज		६)	।≡)
शीरखिस्त विलायती		२२)	१॥)
श्योनाक छाल	७॥)	।)	
श्योनाक बीज		॥।)	
सकमूनिया		१०) पौंड	१।=)
सत्यानासी बीज		॥)	
सत्यानासी पञ्चाङ्ग	१०)	।-)	
सतावर	१८)	॥)	
सनाय	१६)	।≡)	
ससरङ्गी		१)	-)
ससपर्णत्वक्	२५)	॥।)	·)
सपिस्तान (लसूड़ियां)	६)	।)	
समुद्र फल	१०)	।-)	
समुद्रशोष		।-)	
सातला (शिकाकाई)	१२)	।=)	
सरकण्डामूल		॥)	
सरसों		।)	
सिहोड़ा छाल		।≡)	
सालब मिश्री		६॥)	।≡)
सालब पञ्जा (वृद्धि)		७)	॥)
सालब लहसुनी		॥।)	
सालब गण्डा		॥।)	-)
सिंघाड़ा		।)	
सिरस छाल	१०)	।-)	
सिरस बीज		॥)	
सिरस बीज काले		२)	=)
सिम्बल मूसली बाजारी	१५)	।≡)	
सिम्बल मूसली असली		१)	-)
सिम्बल फूल		॥)	

	१मन	१सेर	५ तो०
सीतल चीनी (सर्दचीनी)		२।।।)	≡)
सुपारी काठी		।।।)	-)
सुपारी दक्षिणी		२)	≡)
सुगन्धबाला		।-)	
सुन्दरस		१।।)	
सुरञ्जांशीरीं (मीठी)		१)	≡)
सुरञ्जांतलख (कड़वी)		३)	=)
सोंठ देशी		।।=)	
सोंठ पूर्वी (बम्बई)		१=)	
सोमवल्ली (इफेड्रावलगेरस)		१।।)	=)
सोया		।-)	
सौंफ	११)	।-)	
सौभाञ्जन छाल	७।।)	।)	
सौभाञ्जन बीज		१)	
स्थौणेयक		२)	
हब्बुलास	१२)	।=)	
हब्बे जुल्म		।।।=)	
हब्बबिलसां		५।।)	।=)
हरमल		≡)	
हल्दी देसी		।-)	
हाऊबेर	८)	।)	
हलयून		१।)	-)।।
हाथी सुण्डी	७।।)	।)	
हिरन तूतिया जड़ी (ममीरा भेद)		।।) तोला	
हिंगु पत्री		।।।) सेर	
हींग अंगूरी नं० १		६)	।।)
हींग तालाब		४)	।-)
हींग बाजारी		१)	-)।।
हींग हीरा नं० १		८)	।।=)
क्षीर काकोली (बंगाल)		३)	।)
क्षीर बिदारी		।।।)	
त्रायमाण		१।)	

हरीतकी भेद

		१ सेर
हरड़ जीवन्ती नं० १		२०)
हरड़ जीवन्ती नं० २		७)
हरड़ जीवन्ती नं० ३, ४, ५		५), २।।), १।।)
हरड़ जीवन्ती साधारण		।।।)
हरड़ अभया (लघुबीजा) नं० १		१२)
हरड़ अभया नं० २, ३, ४		५), ३), २।।)
हरड़ बिजया गोल		२०)
हरड़ अमृता (काबली)		२।।)
हरड़ रोहिणी		।।)
हरड़ साधारण नं० १	१२) मन	।=)
हरड़ साधारण ,, २	८) ,,	।)
हरड़ साधारण ,, ३	४) ,,	=)
हरड़ जङ्ग (काली हरड़)	६) ,,	।-)
हरड़ छाल उत्तम नं० १,२		।।।),।=)

	तोल भरी या तोला का मूल्य प्रतिनग	
हरीतकी अभया	३।=) भर	२०)
हरीतकी अभया	३) भर	१५)
हरीतकी अभया	२।।।) भर	१०)
हरीतकी अभया	२।।) भर	७)
हरीतकी अभया	२।=) भर	५)
हरीतकी अभया	२।-) भर	४)
हरीतकी अभया	२।) भर	३।।)
हरीतकी अभया	२≡) भर	३)
हरीतकी अभया	२=) भर	२।।।)
हरीतकी अभया	२-) भर	२।।)
हरीतकी अभया	२) भर	१।।)
हरीतकी अभया	१तो. ११मा. भरकी	१)

गुलकन्द-मुरब्बा

गुलकन्द तथा मुरब्बेका काम यद्यपि हमने बन्द कर दिया है परन्तु पुराने ग्राहकोंका विशेष आर्डर होने पर बाजार से लेकर भेज दिये जांयगें। —मैनेजर

सूचना

आजकल कागज के न मिलने से इस सूचीपत्र में पेटेन्ट औषध प्रवास पेटिकायें तथा उपकरणों की कीमतें नहीं दी गई हैं। पेटेन्ट औषध कीमतों में 'छू मन्त्र' ।≤) के स्थान में ॥) पैकट तथा ५) दर्जन समझें शेष कीमतें अक्तूबर ४१ की सूची अनुसार होंगी। प्रवास पेटिका तथा उपकरणों की कीमतें पत्र व्यवहार द्वारा निश्चित करलें।

एजन्टों द्वारा लिये गये आर्डरों की कीमतों में भी यदि कोई फर्क होगा तो आज कल की स्थिति में कारखाना इस की पूर्ति का पूरी तरह जिम्मेंवार नहीं।

मैनेजर—

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्किट अमृतसर

आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्षार-निर्माण विज्ञान
दूसरा संस्करण

यह सब लोग जानते हैं कि आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धति में भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भव क्षारोंका काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्योंद्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण और देखनेमें चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे क्षार निर्माण विधिका जो अनुभव किया है उसको वैद्योंके लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है इसमें निम्नलिखित विषयोंका समावेश है।

(१) आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें क्षारोंकी उपयोगिता, (२) वनस्पतियोंके मौलिक तत्त्व व क्षारोद्भव धातुएं, (३) भिन्न-भिन्न क्षारोंका रासायनिकरूप, (४) भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके क्षारजन्य धातुओंकी मात्रा, (५) भिन्न-भिन्न वनस्पति भस्मसे क्षार निकालनेकी विधि, (६) क्षारोंको विशुद्ध स्वच्छ बनाकर उनको कण रूपमें लाना, (७) भिन्न २ क्षारोंके गुण और वज्रक्षार आदि बनानेका क्रम तथा क्षारोंका उपयोग इत्यादि विषयोंका खूब खुलासा वर्णन है।

मूल्य प्रति पुस्तक ।) डाक खर्च भिन्न

त्रिदोष मीमांसा

स्वामीजीके इस ग्रन्थने भारतीय वैद्योंमें ऐसी खलबली मचा दी कि वैद्योंको उक्त पुस्तक पर विचार करनेके लिये हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें त्रिदोष सम्भाषा परिषद् तक का आयोजन करना पड़ा था।

पुस्तकमें दिये स्वपक्षके प्रमाण इतने बलवान् हैं कि उत्तरदाता को स्वामीजी ने एक सहस्र मुद्रा देने तक की सूचना निकाली। कुछ विद्वान् वैद्योंने पुस्तक रूपमें और लेखोंके रूपमें जो उत्तर दिये वह ग्रन्थके कुछ अंश मात्र के ही थे, समस्त ग्रन्थका उत्तर अभी तक नहीं मिला। ऐसी इस ग्रन्थमें कौन सी अकाट्य युक्तियां हैं और कौनसे ऐसे बलवान् प्रमाण हैं जिनका उत्तर नहीं दिया जा सकता? इस पर प्रत्येक वैद्यको विचार करना चाहिये।

यह स्मरण रहे—उक्त ग्रन्थ प्रयोग-वादके आधार पर लिखा गया है प्रत्येक बातको, केवल कुछ प्रमाणोंसे नहीं प्रत्युत प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया गया है। इसीलिये अब वैद्योंको किस आधार पर चिकित्सा की नींव जमानी चाहिये इसपर भी खूब अनुभव जन्य बातें बतलाई गई हैं पुस्तक कितनी उपादेय है इसको वैद्य पढ़कर स्वयं समझ सकते हैं। २५० पृष्ठके ग्रन्थ का मूल्य १) रुपया।

कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान ग्रन्थकी महत्तापर

कुछ सम्मतियां

श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा.

सरदार शहर बीकानेर।

१६-२-४२ को पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आपको यह पत्र लिख रहा हूँ दो कारणोंसे—एक तो आपको बधाई देनेके लिये और दूसरे कुछ जाननेके लिये।

बधाई! आपके अनुपम ग्रन्थ "कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान" के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया। मैंने आपके उक्त ग्रंथमें दिये विधानकी विद्युत् भट्ठी बनानेकी इच्छा रहने पर भी समयाभावसे कलकत्तेमें न बना सका। किन्तु सामान साथ लाकर एक विद्युत् शास्त्री मित्र की सहायता से यहाँ उसे तय्यार किया। और उसमें १० तोला पारद, १० तोला गन्धक, १ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत् भट्ठीमें मकरध्वज चढ़ाया १००० हजार वोल्ट प्रति घण्टेके हिसाबसे विद्युत् शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षण की इच्छा वर्षोंसे थी और जिसके लिये कलकत्ते की एक फर्मने विद्युत् भट्ठीकी कीमत का इस्टीमेट २५०) का दिया था। वह विद्युत् भट्ठी आपकी कृपासे १५) या २०) रुपये में ही बनाकर देख ली; देख ही नहीं ली उसपर कूपीपक्वरस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता आपने तो उसमें और और इतनी अधिक प्रायौगिक बातें दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इसलिये कि आप अपने प्रयत्नमें सफल हुए।

श्रीयुत रायसाहब पूनमचन्द तनसुख जी व्यास प्रेजीडेण्ट—आयुर्वेद डिपार्टमेण्ट जोधपुर गवर्नमेण्ट.

आपकी कूपीपक्वरस विज्ञान नामक पुस्तक वास्तव में बहुत उपयोगी तथा वैद्योंके मनन करने योग्य है। आपने आयुर्वेद रसशास्त्रकी प्रगतिके लिए नए ढंगसे वैद्योंको ढूँढ़ खोज करनेका उत्तम मार्ग बतला दिया है अतः आयुर्वेदके इतिहासमें आपका नाम भी स्मरण रखा जायगा।

आयुर्वैदिक कॉलेज पत्रिका काशी विश्वविद्यालय, अक्टूबर १९४१

कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान—आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथमाला का छठा पुष्प। लेखक व भाषाकार हरिशरणानन्द वैद्य, प्रकाशक पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर, पृष्ठ संख्या—उपोद्घात १२०, शेष ३७८, छपाई सफाई और कागज आकर्षक।

उपर्युक्त पुस्तक कूपी द्वारा पके हुए रसों पर लिखी गई है। लेखक उन वैद्योंमें से हैं जो हर एक विषयको वैज्ञानिक तरीकोंसे समझने और समझानेका प्रयत्न करते हैं। पूरी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। उपोद्घात विद्वत्ता पूर्ण है। रसशास्त्र और उससे सम्बन्धित अन्य विषयों के इतिहास का संग्रह जिस परिश्रमसे किया गया है वह अवश्य प्रशंसनीय है। स्थान-स्थान पर विषयको नवीन विज्ञानके अनुसार स्पष्ट किया गया है। कई रसों पर प्रयोगोंका वर्णन किया गया है। अग्नि देनेके विषयमें निश्चित शतांश देकर लेखकने रसशास्त्रकी दृष्टिसे आयुर्वेदज्ञ लोगोंका उपकार ही किया है। पृष्ठ १५५ से अन्त तक शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसका वर्णन है। नवीन आयुर्वेद जगत् को ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आशा है वैद्य समुदाय इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

"सुधानिधि" इलाहाबाद जून १४

स्वामी हरिशरणानन्द जी ने यह बहुतही गवेषणा पूर्ण और महत्वकी पुस्तक लिखी है। चन्द्रोदय, मकरध्वज, रससिन्दूर, स्वर्णराजवंगेश्वर, समीर पन्नग आदि कूपीपक्व रस कहलाते हैं। इस में छोटे बड़े सब मिलाकर ढाई सौ से अधिक कपीपक्व रसोंकी निर्माण विधि, अनुपान और गुण लिखे गये हैं। किसी किसी रसके सम्बन्धमें यह भी लिख दिया गया है कि इसमें कितनी और कैसी आंच देनी चाहिये। इस पुस्तकमें सबसे महत्वकी बातें १२० पृष्ठके उपोद्घातमें लिखी हुई हैं। रस निर्माणशाला, उसके उपकरण शोधन, रस-निर्माण के सिद्धान्त आदि पर अनुभव पूर्ण अच्छा प्रकाश डाला गया है। स्वामीजीकी निर्मित अब तक की सभी पुस्तकों में यह शिरोमणि है। रसायन विद्याके इतिहास विवेचनके समय आदि कुछ बातोंमें मतभेदभी हो सकता है किन्तु हम उस पर नहीं जाकर इसके गुण गौरवका अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक सर्वथा संग्राह्य है।

आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्माजी लाहौर

भूतपूर्व प्रधान अ० भा० वैद्य सम्मेलन

कूपीपक्क आयुर्वेद रसायनों पर पहले कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा गया। इस विषयका मैं पहला ही ग्रन्थ देख रहा हूँ। इस बृहत् ग्रन्थमें कूपीपक्क रसायनों के सम्बन्धमें प्राचीन और नवीन शैलीसे विस्तृत और उपादेय सूचना एकत्रित की गई है। स्वामीजी की शैली सदा की भाँति सरल और स्पष्ट है। प्रत्येक बात बिना हेर फेर के कही गई है। नवीन रसायन शास्त्र (Modern Chemistry) का सम्मिश्रण करके भी कुछ योग दिए गए हैं। जिनका अध्ययन और अनुभव रोचक और प्रकाश-जनक सिद्ध होना चाहिए। पुस्तक-ग्रन्थ संग्रहके रूपमें तथा चिकित्सक की ज्ञानवृद्धिके लिए भी पढने और संग्रह करने योग्य है।

शिवशर्मा

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी,

अध्यक्ष पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी अमृतसर द्वारा रचित रसायन की नवीन पुस्तक, कूपीपक्क-रस निर्माण विज्ञान मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। स्वामी जी की यह मौलिककृति है जिसे पढ़ कर कोईभी वैद्य रसोंका बिना कुछ हानि उठाये निर्माण कर सकता है। स्वामी जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के इस विषय पर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठ से स्वामी जी के अत्यन्त गम्भीर अध्ययन मनन और विशाल अनुभव का पता लगता है। पुस्तक वैद्य समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी और विद्वानों के लिए संग्रहणीय है।

नृसिंहदेव शर्म्मा शास्त्री B.A. आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न
रावलपिण्डी

कविराज प्रतापसिंहजी

प्राणाचार्य व रसायनाचार्य, बनारस।

मैंने आपकी "कूपीपक्क रसनिर्माण विज्ञान" पुस्तक का अध्ययन किया, इसकी भूमिका प्रत्येक वैद्यको रस-निर्माण करने से पूर्व अवश्य पढ़नी चाहिए। भूमिकामें स्वामीजीने आवश्यकीय नवीन रसायन शास्त्रके उपादेय अंशका गागरमें सागर भरनेकी किम्वदन्तीके अनुसार सार भाग संगृहीत कर दिया है। इसके स्वाध्यायसे वैद्योंका बड़ा उपकार होगा।

स्वामीजीकी ओजस्विनी लेखनीका यह उज्ज्वल ग्रन्थ रत्न है, इस सफल प्रयत्नके लिए स्वामीजी वैद्य समाजमें धन्यवादार्ह हैं।

आयुर्वेदकी अभिवृद्धि किस प्रकारकी होनी स्वामीजी आवश्यक समझते हैं इसका इस पुस्तकमें प्रचुर प्रकाश मिलता है, स्वामीजी क्रांतिवादके पक्षपाती हैं आयुर्वेदमें कैसे क्रांति हो सकती है? इसका स्वरूप सुस्पष्ट इस पुस्तकमें वर्णित है आशा है वैद्य-समाज पुस्तकको अपनाकर लेखकका उत्साह वर्द्धन करेगा।

प्रतापसिंह

डा० रामनारायण वैद्य शास्त्री कानपुर—

श्रीमान् स्वामी जी! आपकी भेजी हुई पुस्तक "कूपीपक्क रसायन विज्ञान" मैंने पढ़ा, बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है। प्राचीन रसायन शास्त्रको आधुनिक विज्ञानके साथ मिलान करके बहुत भले प्रकार समझाया गया है। स्थान स्थान पर आपकी सम्मति और टिप्पणियें बड़े मारके की है। भूमिका भी अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर आपने बड़ी ला जवाब लिखी है। इससे सभी वैद्य और आयुर्वेद प्रेमियोंको बड़ा लाभ होगा। ऐसी पुस्तककी बड़ी आवश्यकता थी। आपने उस कमी की पूर्ति की है, एतदर्थ बधाई।

यह ग्रन्थ स्वामी हरिशरणानन्द जी की मौलिक कृतियोंमेंसे एक है। इस ग्रन्थकी ऐतिहासिक पदार्थ सामग्री सञ्चित करनेमें आपने १५-१६ वर्ष व्यतीत किये हैं और जिन कूपीपक्क रसोंको आप अनेक प्रकार से बना कर इस विषय को आज ३० वर्ष से समझते व अनुभव लेते आ रहे हैं उन्हीं रहस्योंका उद्घाटन आपने इस ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थको राज वैद्य पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने आयुर्वेद विद्यापीठ के रसतन्त्रकी पाठ्यविधिके आलोच्य ग्रन्थोंमें रखने की सिफारिश की है॥

साइज २०×३० सोलह पेजी, पृष्ठ संख्या ५०० सफे तक

कागज एण्टिक पेपर, आर्ट पेपर पर मनोहर २४

चित्रों से सुसज्जित ग्रन्थ का मूल्य ५) रुपया

सजिल्द, पोस्ट और पैकिंग खर्च ॥≈) आने

कूर्पीपक्क उपोद्घात की विषय सूची

कूपीपक्करस-निर्माण ग्रन्थ की सूची

चौथा अध्याय

आसव-विज्ञान दूसरा संस्करण

यह किसीसे छिपा नहीं कि आयुर्वेदका एक चमत्कारपूर्ण अङ्ग आसवारिष्टका निर्माणक्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूपमें रह गया है, सौ बार बनाइये कठिनतासे दो चार बार खराब होनेसे बचता है, इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीतिका लुप्त होजाना। इसी लुप्तप्राय विधिको स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे पुनः प्राप्त किया है और उसीको आधुनिक विज्ञानसे परिमार्जित कर उक्त पुस्तकमें सरल सुस्पष्ट रूपमें अङ्कित किया है जिसका विस्तार निम्न है। यथा—

(१) आसवकी प्राचीनता और उसका ज्ञान। (२) आसवका व्यवहार और उसकी मादकताका अनुभव, (३) नाड़ीयन्त्रका आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न रूप, (४) आसव सुराकी ऐक्यता और उसके प्रमाण, (५) आयुर्वेद में आसवका स्थान, (६) आसव बनानेका प्राचीन क्रम व भेद, (७) आसव बिगड़ने का कारण और उसका विकृत रूप, (८) आसव और चुक्र अम्लादिमें भेद, (९) आसव बननेका कारण, (१०) आसवमें परिवर्तन और किण्व-कीटाणु, (११) आसवोत्पादक वस्तुएँ और उनका परिमाण, (१२) उत्ताप ऋतु परिवर्तनादिसे आसवका बनना-बिगड़ना, (१३) भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें आसवका बनना, (१४) बने-बिगड़े आसवकी परीक्षा, (१५) आसवको सुरक्षित रखनेका अनुभूत उपाय, (१६) आसव बनानेका अधिकार व राज्य नियम (१७) आसवका शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण, (१८) आसवके मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातोंका खूब अनुभवजन्य वर्णन है।

मूल्य सजिल्द १) डाक व्यय अलग

नोट—आसव विज्ञान की चन्द कापियां ही शेष हैं, आज कल कागज का मिलना कठिन हो रहा है इस लिये समाप्त होने पर जल्दी छपने की आशा नहीं। कृपया जल्दी आर्डर देवें।

मुद्रक तथा प्रकाशक—स्वामी 'हरिशरणानन्द' पंजाब आयुर्वेदिक प्रेस, अकाली मार्किट, अमृतसर

भाग ५५
र्षिक मूल्य ३) रु०

मई, १९४२ वृषार्क, सं० १९९९ वि०

पूर्ण संख्या ३
संख्या २

विषय-सूची

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है।

Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र है ।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी । इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना ।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं । वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं ।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है । सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है ।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं । तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं ।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें 'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद' के पास भेजे जाएं । आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें । प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर मैनेजर, **ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस, अकाली मार्किट, अमृतसर** के पते पर आने चाहियें ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५५ | मई, सन् १९४२, वृषार्क, संवत् १९९९ विक्रमी | संख्या २

आलकोहल-विश्लेषण

[लेखक—श्री विद्यासागर, विद्यालंकार]

आलकोहल उदासीन हाइड्राक्साइड, OH, समूहके पदार्थ हैं, ये अम्लोंके साथ क्रिया करके एस्टर बनाते हैं। अम्लोंकी क्रिया से हाइड्राक्साइड समूह के स्थान पर अम्ल मूलक आ जाते हैं।

$$C_2H_5OH + CH_3COOH \sim CH_3COOC_2H_5 + H_2O$$
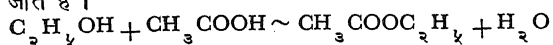
इनकी परीक्षा के लिये प्रायः एसिटाइल और बैन्ज़ायल एस्टर बनाये जाते हैं—

$$C_2H_5OH + CH_3COCl \rightarrow CH_3COOC_2H_5 + HCl$$
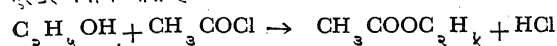
आलकोहल का अणुभार बढ़ने के साथ इसकी पानी में विलेयता घटती जाती है, पानी से-मिलने के बाद, इन्हें पानीसे शीघ्रता-पूर्वक पृथक् नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ इथाइल आलकोहल पानीसे सभी अनुपातोंमें मिल जाता है और इसे 'अनार्द्र' या 'विशुद्ध' अवस्थामें प्राप्त करना कठिन है। इसमें उपस्थित ०·५ प्रतिशतक पानी भी पोटाशियम परमैंगनेट के साथ गुलाबी रंग दे देता है। जलीय-घोलमें आलकोहलका निश्चय भौतिक विधियों से अथवा उपचयन द्वारा किया जा सकता है।

नीचे अधिकतर इथाइल आलकोहल और थोड़ा-सा मिथाइल आलकोहलके विषयमें लिखा जायगा।

इथाइल आलकोहल—शुद्ध इथाइल आलकोहल, C_2H_5OH, नीरङ्ग द्रव है, ७८·४° श० पर उबलता है। १५·५६° श० (६०° फा०) पर इसका विशिष्ट-गुरुत्व पानी की अपेक्षा से ०·७९३८७ है। खौलाव-विन्दु कम होनेके कारण यह पानीके वाष्पोंके साथ स्रवित हो जाता है।

इस आलकोहल के बारे में कुछ सामान्य परिभाषाएं प्रचलित हैं, उन्हें निम्न प्रकारसे समझ लेना चाहिये:—

आलकोहल—इसमें भार की दृष्टि से लगभग ९२·३ प्रतिशत, आयतन की दृष्टिसे लगभग ९४·९ प्रतिशत इथाइल अलकोहल और ७·७ प्रतिशत पानी (भारकी दृष्टिसे) होता है; ६०° फा० पर इसका वि. गु. ०·८१६ होता है।

विशुद्ध आलकोहल—इथाइल आलकोल में भार की दृष्टिसे १ प्रतिशत पानीसे अधिक नहीं होना चाहिये। ६०°फा० पर वि. गु. ०·७९८ से अधिक नहीं होना चाहिये।

हलका आलकोहल—इसमें पानी और आलकोहल समान आयतन में होता है। भार की दृष्टि से ४१·५ प्रतिशत और आयतनकी दृष्टिसे ४८·६ प्रतिशत इथाइल आलकोहल होता है। ६०° फा. पर वि. गु. ०.९३६ होता है।

प्रूफ स्पिरिट–५७°फा० पर इतनी घनता होनी चाहिये कि उसी तापमान पर १३ भाग आलकोहल और १२ भाग पानीका तोल एक हो। अर्थात् भार की दृष्टिसे लगभग ४९·२ प्रतिशत आलकोहल हो। अमेरिकामें ६०° फा० पर इसमें आयतनकी दृष्टिसे ५० प्रतिशतक, और भारकी दृष्टिसे लगभग ४२·५ प्रतिशत इथाइल आलकोहल होना चाहिये।

आलकोहल की परीक्षा—यदि किसी द्रव में इसकी पर्याप्त मात्रा होगी तो गन्ध द्वारा पहचाना जा सकता है। अथवा परीक्षणीय द्रवका आंशिक स्रवण करके उसके प्रथम भाग में निम्नविधियोंसे परीक्षा कर सकते हैं :—

(क) आइडोफार्म परीक्षा—परीक्षणीय द्रवका स्रवण करो, प्राप्त स्रवित द्रव में आयडीन के थोड़े से स्फटिक अथवा कुछ मिलिलिटर आयडीन पोटाशियम आयडाइड जलीय घोल मिला दो, इसमें पोटाशियम हाइड्राक्साइड इतना मिलाओ कि द्रवमें स्पष्ट पीला-भूरा रङ्ग आ जाय। इस घोलको गरम करो. आलकोहल उपस्थित होने पर आइडोफार्म का निक्षेप आ जायगा। आइडोफार्मकी गन्ध विशेष प्रकारकी होती है, इसका रङ्ग नींबूके रङ्ग जैसा पीला होता है। यदि द्रवमें स्फटिक धीमे धीमे बनेंगे तो वे तारों (Stars) की आकृति और षट्कोण रूपमें नीचे बैठेंगे।

आलकोहल के लिये यह परीक्षा निश्चयात्मक नहीं है, क्योंकि और भी बहुतसे कार्बनिक पदार्थों—विशेषतः एसिटोन, एलडिहाइड, प्रोपाइल और ब्यूटाइल आलकोहल से—आइडोफार्म बन जाता है।

(ख) इथाइल डाइनाइट्रो बेंनजोएट परीक्षा—यह परीक्षा केवल दस प्रतिशतसे कम पानी मिले आलकोहलके लिये प्रयुक्त हो सकती है यह विधि मुलीकनने उपस्थित की थी।*

तीन इञ्च की परीक्षा नली में ०.१५ ग्राम ३,५ डाइनाइट्रो बैन्ज़ोइक एसिड और ०.२० ग्राम फास्फोरस पैन्टाक्लोराइडको इकठ्ठा गरम करो। जब रासायनिक क्रिया शुरू होनेके लक्षण दिखाई देना शुरू करें तो कुछ सैकण्ड के लिये ताप हटा दो। फिर उबलते हुए द्रवीभूत मिश्रण को बहुत धीमे धीमे १ मिनटके लिये गरम करो। उसे छोटे वर्तुलाकार कांच पर डालकर ठोस होने दो। ज्यों ही ठोसीकरण पूरा हो जाय तो स्फटिक पदार्थमें से द्रव फॉसफोरस आक्सीक्लोराइड को पृथक् करनेके लिये स्फटिकोंको दो सछिद्र टाइलों (Porous Tiles) के बीच रगड़ो। इस चूर्णको ५ या ६ इञ्च परीक्षा नलीमें डालो, इस पर चार बूंद अलकोहल डालो और बिना देर किये कसकर डाट लगा दो। परीक्षा नलीका निचला भाग ७५°-८५° श० तापमानके जल-ऊष्मकमें डुबाओ, धीमे-धीमे हिलाते हुए १० मिनट तक गरम करो, फिर ठण्डा होने दो।

इस क्रिया से प्राप्त एस्टर को निम्न-प्रकारसे शुद्ध करोः—मिश्रणके ठण्डे होनेपर यदि डलैसे बन गए हों तो उन्हें कांचछड़ से तोड़कर पीस दो. फिर १५ मिलिलिटर मिथाइल आलकोहल (२:१) के साथ पूरा घुल जाने तक उबालो। यदि घोल साफ न हो तो उबलते हुए द्रव को छान लो। ठण्डा करो, हिलाओ और छान लो। प्राप्त स्फटिकों को ३ मिलि० ठण्डे मिथाइल आलकोहलसे धो लो। ६ मिलि० उबलते मिथाइल आलकोहल (२:१) से पुनः स्फटिकीकरण करो। स्फटिकों को २ मिलि० उसी विलायकसे धो लो। सछिद्र टाइल पर फलाकर वायुमें सूखने दो और पिघलाव-बिन्दुका निश्चय कर लो।

इथाइल ३,५-डाइनाइट्रो बैन्जोएट सफेद सूच्याकार में स्फटिक बनता है, इसका पि. बि. ९२°-९३° है।

(ग) बर्थ लॉट परीक्षा—परीक्षणीय द्रवके स्रवित भाग को कुछ बूंद बैन्ज़ायल क्लोराइड और ४ या ५ बूंद १० प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड घोलके साथ जोरसे हिलाते हैं। जब बैन्ज़ायल क्लोराइड की तीव्र गन्ध आना बन्द हो जाय, तो द्रव को हिलाना बन्द कर दो। यदि द्रवमें इथाइल आलकोहल होगा तो इथाइल बैन्ज़ोएट की तीव्र गन्ध आयेगी। क्रिया निम्न प्रकारसे होती है—

$$C_2H_5OH + C_6H_5COCl + KOH =$$
$$C_6H_5COOC_2H_5 + KCl + H_2O$$
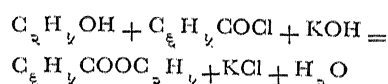
(घ) इथाइल एसिटेट परीक्षा—परीक्षणीय द्रव के स्रवित भागमें समान आयतन सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड मिलाओ

* Identification of Pure Organic Compounds By Mulliken vol. I, P. 165.

इसमें अनार्द्र (द्रवित) सोडियम एसिटेट बहुत थोड़ी मात्रामें मिलाओ और मिश्रणको गरम करो। इथाइल एसिटेटकी गन्ध से इथाइल आलकोहल की उपस्थितिका ज्ञान होगा। क्रिया निम्न प्रकारसे होगी।

$$C_२H_५OH + H_२SO_४ = C_२H_५O.SO_२.OH + H_२O$$

$$C_२H_५O.SO_२.OH + CH_३CO.Na =$$

$$CH_३.CO.OC_२H_५ + Na\text{-}H\text{-}SO_४$$
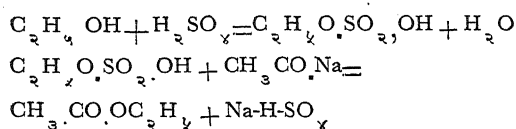
इथाइल आलकोहलका मात्रा निर्धारण—यह कहा जा चुका है कि आलकोहल को पानी से पृथक् करना बहुत कठिन है, इसलिये इसका मात्रा निर्धारण पानीके घोलमें (१) विशिष्ट गुरुत्व निर्धारण या (२) उपचयन द्वारा किया जाता है। यदि आलकोहल और पानीके मिश्रण का विशिष्ट गुरुत्व निश्चय करते समय मिश्रणमें अशुद्धि आदि उपस्थित होगी तो उसका विशिष्ट गुरुत्व निर्धारण विधि पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। इसीप्रकार यदि मिश्रणमें अन्य उपचयनशील पदार्थ उपस्थित होंगे तो उपचयन विधिमें उनके उपचित हो जानेसे परिणाम अशुद्ध प्राप्त होंगे।

सामान्यतया ठीक और सन्तोषजनक विधि यह है कि आलकोहलको अन्य पदार्थों से स्रवण द्वारा पृथक् करके विशिष्ट गुरुत्व का निश्चय करते हैं और नीचे की तालिका की सहायता से आलकोहल की मात्रा (आयतन या भारकी दृष्टिसे) जान लेते हैं।

यदि प्राप्त पदार्थमें क्लोरोफार्म, ईथर, सुगन्धित तेल हों तो स्रवण विधि प्रारम्भ करनेसे पूर्व निम्न क्रिया कर लो:—

एक पृथक्कारक कीप में २५ मिलि० नमूना लेकर पानी मिलाओ और कुल आयतन १०० मिलि० कर लो। इसमें सोडियम क्लोराइड मिलाकर घोलको संतृप्त करो, फिर ५० से ८० मिलि० हलका पैट्रोलियम स्रवित (६०° श० से नीचे खौलाव विन्दु का) मिला दो। ५ मिनट तक जोरसे हिलाओ आधे घण्टेके लिये स्थिर रख दो, नीचेकी तहको दूसरी पृथक्कारक कीपमें निकाल लो; उपरोक्त प्रकारसे पैट्रोलियम ईथरसे धो लो और फिर स्रवण कुप्पीमें ले लो। पैट्रोलियम ईथरकी तहोंको मिलाकर नमकसे संतृप्त पानीसे धोकर प्रक्षालित पानी को भी स्रवण कुप्पी में डाल दो। आलकोहल जलीय लवण घोलमें घुला रहेगा, इसे यदि आवश्यकता हो तो उदासीन करके आगे दी विधिसे स्रवण करो।

यदि द्रव में कार्बन डायक्साइड भी घुली हो तो द्रव को पृथक्कारक कीपमें ले बहुत जोरसे हिलाओ, द्रवके निचले भाग को दूसरी पृथक्कारक कीपमें फिर जोरसे हिलाओ। $CO_२$ गैस के बिलकुल निकल जानेका निश्चय होने पर द्रवको विश्लेषण के लिये काम में लाओ। इस प्रकार प्राप्त द्रव में झाग आदि नहीं होनी चाहिये।

१. विशिष्ट गुरुत्व निर्धारण विधि—विशिष्ट गुरुत्व का निश्चय करने से पूर्व द्रवका स्रवण किया जाता है। फिर स्रवित भागका वि० गु० देखते हैं। अथवा पहले द्रव का विशिष्ट गुरुत्व जानकर उसका वाष्पीकरण करते हैं, वाष्पीकरण के बाद प्राप्त द्रवका आयतन प्रारम्भमें लिये द्रवके आयतनके समान करके पुनः विशिष्ट गुरुत्वका निश्चय करते हैं।

(क) स्रवण विधि—एक १०० मिलि० की चिह्नित कुप्पीको सुखाकर तोल लो, इसमें १०० मिलि० के चिह्न तक परीक्षणीय द्रवको भरकर तोल लो। इस द्रवको ३०० मिलि० की स्रवण कुप्पीमें डाल दो, चिह्नित कुप्पीको धोकर उसका प्रक्षालित पानी भी स्रवण कुप्पीमें डाल दो; इसमें और पानी मिलाकर द्रवका आयतन लगभग १५० मिलि० कर लो। इसमें कुछ मिलिग्राम ठोस फिनोलफ्थलीन मिलाकर द्रवको हलके सोडियम या पोटाशियम हाइड्राक्साइड घोलसे बिलकुल उदासीन करलो। इस उदासीन उड़ायी अम्ल आलकोहलके साथ स्रवित न हो सकेंगे। कुप्पी पर संलग्नक लगाकर घनीकारकसे सम्बन्ध कर दो और स्रवण शुरू करो। स्रवित द्रव को १०० मिलि० की चिह्नित कुप्पीमें इकट्ठा करो। स्रवित द्रव वायुके अधिक सम्पर्क में नहीं रहना चाहिये, इसलिये यदि ग्राहक कुप्पी तंग गलेकी हो तो अच्छा है। जब स्रवित द्रव ९० से ९५ मिलि० प्राप्त हो जाय तो स्रवति पानीसे इसका आयतन ठीक १०० मिलि० कर लो।

इस स्रवित द्रवको अच्छी प्रकार मिलाकर पिकनोमीटर या वैस्टफाल तुलासे ज्ञात तापमान (यह तापमान १५-५६° श० या ६०° फा होना चाहिये) पर वि० गु० दशमविन्दुके चौथे स्थान तक निकाल लो। विशिष्ट गुरुत्व जानने के बाद आलकोहल की भार या आयतनकी दृष्टिसे प्रतिशतकता साथमें दी गई तालिका द्वारा निकाल लो।

नोट (१)—यदि नमूनेमें आलकोहल की मात्रा २५ प्रति

शतसे अधिक हो तो द्रव १०० मिलि० से कम लेना चाहिये।

(२)—जब आलकोहल की प्रतिशतकता आयतनकी दृष्टिसे निकालनी हो तो नमूनेका आयतन मालूम होना चाहिये, यदि प्रतिशतकता भारकी दृष्टि से निकालनी हो तो नमूने का भार मालूम होना चाहिये।

(३)—प्रायः आलकोहलिक द्रवों में उड़ायी अम्ल बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं, इसलिये जब तक उनकी अनुपस्थिति का पूरा निश्चय न हो जाय, द्रवका उदासीनकरण अवश्य कर लेना चाहिये।

(ख) **वाष्पीकरण विधि**—यदि द्रवका स्रवण करनेके लिये उपकरण उपलब्ध न हो रहा हो तो इस विधिको काममें ला सकते हैं:—

परीक्षणीय द्रवका वि० गु० ठीक १५·५६° श० (६०° फा०) पर जान लो। फिर इस द्रवका नापा हुआ आयतन (५० से १०० मिलि०) चीनी मिट्टीकी प्यालीमें डाल कर जल-ऊष्मक पर गरम करो और इसका लगभग ⅔ आयतन उड़ा दो! इस सान्द्र द्रवको स्रवित पानीसे ठीक उतना कर लो जितना वाष्पीकरणसे पूर्व था। इसका विशिष्ट गुरुत्व ठीक १५·५६° श० (६०° फा०) पर निकाल लो।

वाष्पीकरण से पूर्व द्रवका जो वि० गु० प्राप्त हुआ था उसमें १ जोड़ दो और वाष्पीकरणके बाद द्रवका जो वि० गु० प्राप्त हुआ हो उसे प्रथममें से घटा दो। इन दोनोंका अन्तर द्रवमें उपस्थित आलकोहल के तुल्य विशिष्ट गुरुत्व होगा। उदाहरणार्थ वाष्पीकरणसे पूर्व द्रवका वि० गु० ०·९९८९ था और वाष्पीकरण के बाद १·०००५ प्राप्त हुआ। तो परीक्षित द्रवमें आलकोहलकी आयतन की दृष्टिसे प्रतिशतकता होगी, १·९९८९ — १·०००५=·९९८४=१·०६%.

यदि द्रव अवशेष आदिसे बिलकुल रहित हो तो इसे पानी और आलकोहलका मिश्रण समझ कर बिना स्रवण किये सीधा विशिष्ट गुरुत्व का निश्चय कर लो और आलकोहलकी प्रतिशतकता निकाल लो।

(२) **उपचयन विधि**—(पोटाशियम परमैंगनेट द्वारा) कठोर कांच की और ७०० मिलि० समावेशनकी कुप्पी में १०० मिलि० पोटाशियम परमैंगनेट घोल (९·७५ ग्राम प्रति लिटर) और ४० मिलि० सोडियम हाइड्राक्साइड घोल (१५० ग्राम प्रति लिटर) डालो। इस मिश्रणको उबलने तक गरम करो। इसमें ५ मिलि० आलकोहलिक द्रव (यदि इस द्रव में आलकोहल ०·२ प्रतिशत से अधिक हो तो पानी से हलका कर लो) शीघ्रतासे मिला दो, १ मिनट तक उबालो। नीचे से ज्वाला हटा दो। इसमें १०० मिलि० ऑग्ज़ैलिक एसिड घोल (२० ग्राम प्रति लिटर) मिलाकर पीछेसे ४० मिलि० सलफ्यूरिक एसिड घोल (२:५) मिलाकर द्रव को हिलाओ। ऑग्ज़ैलिक एसिडकी अधिकताका पोटाशियम परमैंगनेट घोल (३·१८२ ग्राम प्रति लिटर) से विलेयमापन करो।

५ मिलि० आलकोहल द्रवका अन्य नमूना लेकर कांच की प्याली में जल-ऊष्मक पर गरम करो, जिससे आलकोहल निकल जाय, इस अवशेषमें ५ मिलि० खांड घोल (२५० मिलि० पानी में १ ग्राम) मिला दो। इस मिश्रण के साथ सम्पूर्ण उपरोक्त क्रिया दोहरा कर रिक्त विलेयमापन करो।

मिलाई गई खांड (०·०२ ग्राम) ऊपर प्रयुक्त होने वाले $KHNO_4$ घोलके २८·०५ मिलिलिटरके तुल्य होती है। यदि प्रथम विलेयमापन में 'क्ष' मिलि० परमैंगनेट घोल व्यय हुआ हो और रिक्त विलेयमापनमें 'य' मिलि० परमैंगनेट घोल हुआ हो तो भारकी दृष्टिसे आलकोहलकी प्रतिशतकता:—

$$\left\{ \text{क्ष} - (\text{य} - २८·०५) \right\} \times ०·३८४$$

ग्रेन आलकोहलका विश्लेषण—इसमें इथाइल आलकोहलकी प्रतिशतकता ऊपर दी गई विधियोंसे जान सकते हैं। प्रूफ स्पिरिट की प्रतिशतकता भी वि० गु० जान लेने के बाद तालिका सहायतासे जान सकते हैं।

१. **अनुद्वायी अवशेष**—१०० मिलि० नमूना एक तुली हुई प्लाटिनम प्याली में लो। आर्द्र-अवशेष प्राप्त होने तक जल-ऊष्मक पर वाष्पीकरण करो। इसे जल-भट्ठीमें २½ घण्टे तक १००° श० पर बिलकुल शुष्क कर लो। इस अवशेषके भार को विशिष्ट गुरुत्वसे भाग देने पर अनुद्वायी अवशेष की प्रतिशतकता प्राप्त हो जायगी।

२. **अम्लीयता**—प्राप्त द्रवकी पहले (क) कुल अम्लीयता, (ख) उड़ायी अम्लीयता और अन्तमें गणना द्वारा (ग) स्थिर अम्लीयता निकाल लो।

(क) **कुल अम्लीयता**—१० मिलि० आलकोहल लेकर ज्ञात आयतन स/१० सोडियम हाइड्राक्साइड की अधिकता के साथ गरम करो। क्रियाके पूर्ण हो जानेके बाद सोडियम हाइड्राक्साइड की अधिकताको स/१० अम्लसे उदासीन करो। भार की अधिकता जान लेनेके बाद प्रयुक्त भारमें से अधिकता घटा देनेसे अम्लके लिये व्यय हुए भारकी मात्रा ज्ञात हो जायगी। इस अम्लीयताको टार्टरिक एसिडके रूपमें प्रगट करो—

१ मिलि० स/१० सोडियम हाइड्राक्साइड
=०·००७५ ग्राम टार्टरिक एसिड

(ख) **उद्वायी अम्लीयता**—१० मिलि० आलकोहल का स/१० सोडियम हाइड्राक्साइडसे फिनोलप्थलीन सूचक की उपस्थितिमें विलेयमापन करो। इस अम्लीयताको एसिटिक एसिडके रूपमें प्रगट करो।

१ मिलि० स/१० NaOH=०·००६ ग्राम एसिटिक एसिड।

(ग) **स्थिर अम्लीयता**—कुल अम्लीयता और उद्वायी अम्लीयताके अन्तरसे इसे प्राप्त कर सकते हैं। इस अम्लीयता को टार्टरिक एसिडके रूपमें प्रगट करो।

उदाहरण—एक नमूनेमें कुल इस अम्लीयता ०·४५७ ग्राम प्रति १०० मिलि०, और उद्वायी अम्लीयता ०·०७५ ग्राम प्रति १०० मिलि० (एसिटिक एसिड रूपमें) पाई गई।

∴ स्थिर अम्लीयता=०·४५७ − ०·७५ × १·२५
=०·३६३ ग्राम प्रति १०० मिलि०
(टार्टरिक एसिडमें प्रगट की गई)

३. **कुल ठोस और राख**—१०० मिलि० नमूना एक तुली हुई चीनी मिट्टीकी प्याली में लो। इसे जल-ऊष्मक पर गरम करो और द्रवका वाष्पीभवन होने दो। जब सब पदार्थ शुष्क हो जाय तो उसे वाष्प भट्ठी में १००° श० पर भार स्थिर होने तक गरम करो। शुष्क कारकमें ठण्डा करके तोल लो। यह कुल ठोस पदार्थ होंगे। इस प्राप्त अवशेषका मन्द लाल तापमान पर दहन करो। प्राप्त राखको तोललो। इस राखमें सीसा, तांबा, लोहा आदि धातुओंकी परीक्षा करो।

४. **आलकोहल में अशुद्धियां**—आलकोहलमें प्रायः अशुद्धियोंके रूपमें एस्टर, एलडिहाइड, फरफरल, उच्च श्रेणी के आलकोहल, फ्यूजल ऑयल, नाइट्रेट, सलफर आदि पाए जाते हैं। उनका मात्रा निर्धारण निम्न प्रकारसे किया जाता है। इनके मात्रा निर्धारणसे पूर्व परीक्षणीय द्रवका निम्न प्रकारसे नमूना तैयार कर लो। इस नमूने को आगे 'क' घोलके नाम से पुकारेंगे।

परीक्षणीय द्रवका २५० मिलि० नमूना लेकर ३० मिलि० पानी मिलादो, इसका स्रवण करो। स्रवित पदार्थ को २५० मिलि० की आयतनात्मक कुप्पी में इकट्ठा करो। जब स्रवित पदार्थ लगभग २५० मिलि०के चिन्ह के समीप पहुंच जाय तो स्रवण बन्द करके स्रवित पदार्थ में स्रवित पानी मिलाकर ठीक २५० मिलि० कर लो। इस में एस्टर, एलडिहाइड और फरफरल विद्यमान होंगे।

१ मिलि० स्रवित द्रव = १ मिलि प्रारम्भिक द्रव

(क) **एस्टर**—इसका निश्चय इथाइल एसिटेट के रूपमें किया जाता है।

५० मिलि० 'क' घोल एरलेनमेयर कुप्पी में लो। इसे स/१० सोडियम हाइड्राक्साइड से फिनोलप्थलीन सूचककी उपस्थिति में बिल्कुल उदासीन करलो। फिर ५० मिलि० सोडियम हाइड्राक्साइड घोल मिला दो, ठीक ठीक मात्रा लिख लो। कुप्पी पर लम्ब रूपसे धनीकारक लगाकर एक घंटे तक उबालो। इसे ठण्डा करके भारकी अधिकता का स/१० अम्ल के साथ विलेयमापन करो। इस साबुनीकरण में स/१० NaOH की जो मात्रा व्यय हो उसे ०.००८८ से गुणा करने से एस्टर का ग्राम भार प्राप्त हो जायगा (इथाइल एसिटेट रूप में प्राप्त)।

प्रतिशत मात्रा निकालने के लिए प्राप्त भारको नमूनेके विशिष्ट गुरुत्व से भाग देकर २ से गुणा कर दो।

(ख) **फरफरल**—निम्न परीक्षक तैयार करो।

फरफरल का प्रमाण घोल—१ ग्राम फरफरल, (जो उसी समय पुनः स्रवित किया गया हो) को १०० मिलि० ९५% आलकोहल (फरफरल रहित) में घोलो। इसे सुरक्षित रखलो।

जब घोल को काम में लाना हो तो इसका १ मिलि० ले कर ५०% आलकोहल (आयतनात्मक दृष्टि से) मिलाओ और घोलका आयतन १०० मिलि० कर लो।

१ मिलि० घोल=०.०००१ ग्राम फरफरल।

क्रिया—२० मिलि० 'क' घोल लेकर ५० मिलि० ५०% फरफरल रहित आलकोहल (आयतनात्मक दृष्टिसे) मिलादो

इस में नीरंग एनीलोन के दो मिलिलिटर और ०.५ मिलि० हलका हाइड्रक्लोरिक एसिड (५:४) मिला दो। इस मिश्रण को जल-ऊष्मक पर १५ मिनट तक १५°श० पर रखो। अब रंग-मापन विधिके अनुसार फरफरल के प्रमाण घोल तैयार कर के रंगों की तुलना द्वारा फरफरल का मात्रा निर्धारण करो।

(ग) एलडिहाइड—इसकी उपस्थिति का ज्ञान गुणात्मक परीक्षा-द्वारा किया जाता है, यह निश्चय कर लेने के बाद कि आलकोहल में एलडिहाइड उपस्थित है, राश्यात्मक मात्रा-निर्धारण किया जाता है।

(i) गुणात्मक परीक्षा—१०० मिलि० की कुप्पीमें ३ ग्राम सिलवर नाइट्रेट—$AgNO_3$—थोड़े पानी में घोल लो, इस में ३ ग्राम शुद्ध $NaOH$ मिलाने के बाद २० मिलि० तीव्र अमोनियम हाइड्राक्साइड—NH_4OH—मिलाकर घोलको १०० मिलि० कर लो।

एक शीशेकी डाट वाली बोतलमें ५ मिलि० परीक्षणीय द्रव लेकर ५ मिलि० पानी मिलादो। ०.५ मिलि० उपरोक्त क्षारीय सिलवर नाइट्रेट मिला कर डाट लगा दो और एक घण्टेके लिए अन्धेरे कमरे में रख दो। इस द्रव को छान कर, छने द्रवको नाइट्रिक एसिड से अम्लीय करलो और कुछ बूंद हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाओ। सिलवर क्लोराइड का निक्षेप सूचित करेगा कि घोल में सिलवर लवण अपचित नहीं हुआ, इसलिए नमूने में एलडिहाइड की उपेक्षणीय मात्रा है।

(ii) राश्यात्मक परीक्षा—निम्न परीक्षक तैयार करो।

आलकोहल (एलडिहाइड-रहित)—एक स्रवण कुप्पी में १.५ लिटर ९५% इथाइल आलकोहल डाल कर २५ ग्राम $NaOH$ मिला दो, इसका स्रवण करो, जब कुप्पी में पीछे १०० मिलि० बच रहें तो उसे छोड़दो। इस स्रवित द्रव में २.५ ग्राम मैटा-फिनाइलीन डाइएमीन हाइड्रोक्लोराइड मिलाकर एक बड़ी कुप्पी में डाल दो। इस पर लम्ब रूपसे घनी कारक लगाकर वाष्प ऊष्मक पर कुछ घण्टे तक गरम करो। इसका स्रवण शुरू करो, स्रवित द्रवके प्रथम १०० मिलि० छोड़ कर अगले २०० मिलि० स्रवित द्रवको इकट्ठा करके प्रयोग के लिए डाट लगी बोतल में भर दो।

फुचसिन सलफाइट घोल—२०° श० पर १०० मिलि० पानी में सलफर डायक्साइड—SO_2—का संतृप्त घोल तैयार करो। इस घोलके ५ ग्राममें ५०० मिलि० पानीमें घुला ०.५ ग्राम फुचसिन मिलादो। इसे पानी से हल्का करके १०० मिलि० करलो और नीरंग होने तक रखा रहने दो। यह घोल रखा रहने से कुछ ही दिनों में शक्तिहीन हो जाता है, इसलिये काम के समय थोड़ी-सी मात्रा में तैयार कर लेना चाहिये।

नोट—१०० मिलि० पानी में SO_2 के संतृप्त घोल में २०° श० पर ११.२६ ग्राम SO_2 होती है और १५° श० पर १३.५ ग्राम होती है। इसका विलेयमापन स/१० आयडीन घोल से कर लेना चाहिये।

१ मिलि० आयडीन घोल (स/१०) = ०.००३२ ग्राम SO_2

प्रमाण एसिटलडिहाइड घोल—५ ग्राम एलडिहाइड अमोनियाको ईथर के साथ खरल में पीसकर ईथरको नितार कर पृथक् कर लो, इस प्रकार लवण का कई बार ईथर के साथ निष्कर्षण करो। इस लवण पर जोर से वायुको प्रवाहित करके सुखाओ, फिर इसे शून्य शुष्ककारक में सान्द्र सलफ्यूरिक एसिडके ऊपर रख दो। इस शुद्ध किए हुए लवणके १.३८६ ग्राम ५० मिलि० ९५% आलकोहल (उपरोक्त प्रकार से तैयार किये हुए) में घोलो। इसमें २२.७ मिलि० स/१ अलकोहलिक सलफ्यूरिक एसिड घोल (४९.०४ ग्राम सलफ्यूरिक एसिडको ९५% अलकोहलमें घोल कर उसी से एक लिटर करलो) मिलाकर घोल को ९५% अलकोहलसे १०० मिलि० करलो। $(NH_4)_2SO_4$ के निक्षेपके कारण जो हानि होती है उसे पूरा करने के लिये ०.८ मिलि० अलकोहल और मिला दो। इसे रात्रि भर रख कर छान लो। इस घोल के १०० मिलि० में १ ग्राम एसिटलडिहाइड उपस्थित है। यह घोल अधिक समय तक रखा रहने से खराब हो जाता है।

इस घोलके रंग प्रमाण तैयार करने के लिये उपरोक्त घोल के २ मिलिलिटर ५०% आलकोहलमें घोलकर १०० मिलि० करलो। इस घोलके १ मिलि० में ०.०००२ ग्राम एसिटलडिहाइड उपस्थित है। प्रयोग के समय ताजा तैयार करना चाहिये।

क्रिया—१० मिलि० क' घोल लेकर उनमें ५० मिलि० एलडिहाइड रहित आलकोहल (इसे हलका करके आयतनात्मक दृष्टि से ५०% कर लो) मिला दो, २५ मिलि०

फुचसिन परीक्षक मिलाकर मिश्रण को १५° श० पर १५ मिनट के लिये रखा रहने दो । अब एसिटलडिहाइड से नैसलर नलिकाओं में प्रमाण घोल तैयार करके रंगमापन विधि द्वारा तुलना करके एलडिहाइडकी प्रतिशत मात्रा जान लो ।

(घ) उच्च आलकोहल—इनका मात्रा निर्धारण निम्न विधियों में से किसी भी विधिसे किया जा सकता है । प्रथम विधिमें रंग मापन द्वारा मात्रा-निर्धारण किया जाता है । इस में तुलना के लिए उच्च श्रेणी के आलकोहलों का निम्न मिश्रण काममें लाया जाता है ।

प्रोपाइल आलकोहल	१ भाग
आइसोब्यूटाइल आलकोहल	२ ,,
एमाइल आलकोहल	३ ,,
कैप्राइल आलकोहल	१ ,,

इस मिश्रण का संगठन लग भग फ्यूज़ल आयलसे मिलता जुलता है ।

(i) **रंग मापन विधि**—निम्न प्रमाण घोल तैयार करो :—

प्रमाण घोल—उपरोक्त उच्च आलकोहलों के मिश्रण का १ ग्राम ५०% आलकोहल में घोलकर १ लिटर करलो ।

१ मिलि० घोल—·००१ ग्राम उच्च आलकोहल ।

१० मिलि० 'क' घोल ७५ मिलि० समावेशन की कुप्पीमें लेलो । इसमें ०.५ मिलि० १% फरफरल घोल मिलाकर १० मिलि० सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड इस प्रकार मिलाओ कि कुप्पी के तले पर अम्लकी तह बन जाय । इसे बर्फ से ठण्ट किये जल-ऊष्मक में ३० सैकण्ड तक रखो और धीमे २ हिलाते रहो । फिर कमरे के तापमान पर आधे घण्टे तक रखा रहने दो । उच्च आलकोहलों की उपस्थिति में लाल-जामनी रंग आ जाता है । रंग मापन विधि द्वारा रंगोंकी तुलना प्रमाण घोलके रंगसे करके प्रतिशतकता निकाल लो ।

(ii) **एलन मारक्वार्ट विधि** (Allen Marquardt)* इस विधि का सिद्धान्त यह है कि ऊंचे श्रेणी के आलकोहलों का कार्बन टैट्राक्लोराइड से निष्कर्षण किया जाता है, फिर उन्हें उपचित करके उनके तुल्य अम्लों में परिवर्तित कर दिया जाता है और इन अम्लोंका विलेयमापन कर लिया जाता है । इस विधि में शिड्रोविट्ज ने कुछ सुझाव उपस्थित किये हैं जो कि नीचे दे दिये गये हैं ।

एक कुप्पी में २०० मिलि० स्पिरिट लेकर १ मिलि० तीव्र पोटाशियम हाइड्राक्साइड घोल मिला दो । कुप्पी पर लम्बरूप से घनीकारक लगाकर एक घण्टे तक उबालो—इस क्रिया से एस्टर जल-विच्छेदित हो जायंगे । इस मिश्रणको स्रवण कुप्पी में डाल दो । इस स्रवण कुप्पी में भाप स्रवण का भी प्रबन्ध रहना चाहिये, मिश्रण का स्रवण शुरू करो, जब अवशेष २० मिलि० बच जाय तो भापकी सहायता से स्रवण शुरू करो, यह भाप स्रवण इस प्रकार होना चाहिए कि जब स्रवित पदार्थ ३०० मिलि० से इकठ्ठा हो जाय तो कुप्पी में अवशेष १० मिलि० बच रहे ।

स्रवित द्रवमें संतृप्त नमक घोल (इस घोल में कुछ बूंद सलफ्यूरिक एसिड मिलाकर अम्लीय कर लो) मिलाकर स्रवित द्रव का वि-गु- १.१ कर लो । इसे दो समान भागों में बांट कर दोनों भागों की पृथक् २ निम्न-प्रकार से परीक्षा करो, जिससे होने वाली क्रियात्मक अशुद्धियों पर नियन्त्रण रखा जा सके ।

प्रत्येक भागका पृथक् पृथक् क्रमसे ४०, ३०,२० और १० मिलि० (=कुल १०० मिलि०) शुद्ध किए कार्बन टैट्राक्लोराइड से निष्कर्षण करो । इस निष्कर्षण में कुछ इथाइल आलकोहल हो सकता है । इसे हटाने के लिए निष्कर्षण को पहले ५० मिलि० संतृप्त नमक घोल के साथ हिलाओ । दोनों घोलों को पृथक करके निष्कर्षण को ५० मिलि० संतृप्त सोडियम सलफेट घोल के साथ हिलाओ जिससे बचे हुए क्लोराइड भी निकल जायं ।

प्राप्त निष्कर्षण में ५ ग्राम पोटाशियम डाइक्रोमेट, २ ग्राम तीव्र सलफ्यूरिक एसिड और १० मिलि० पानी मिलाकर लम्ब रूप घनीकारक में धीमे २ कम से कम आठ घण्टे तक जल-ऊष्मक पर उबालो । इसे कुप्पी में डाल कर ३० मिलि० पानी मिलाकर स्रवण करो । स्रवण करते समय जब द्रव २० मिलि० बच रहे तो अवशेष का भाप स्रवण शुरू करदो । जब कुप्पी में अवशिष्ट द्रव ५ मिलि० बच रहे और स्रवित द्रव ३०० मिलि० प्राप्त हो जाय तो स्रवण बन्द कर दो । इस द्रव में पहले मिथाइल ओरेञ्ज मिलाकर स/१० बेरियम हाइड्राक्साइड

1. Allen's Commercial organic analysis, Vol. I.

घोलमें विलेयमापन करो। मिथाइल ओरेञ्ज के प्रति द्रवके उदासीन हो जाने पर उसमें फिनोलफ्थलीन मिलाओ और उदासीन होने तक स/१० बेरियम हाइड्राक्साइडसे विलेयमापन करो। फिनोलफ्थलीन के प्रति उदासीन करने में जितने मिलि० बेरियम हाइड्राक्साइड व्यय हुआ हो, उसे लिख लो और गणना द्वारा उच्च आलकोहलों को एमाईल आलकोहल के रूप में प्रगट करो।

१ मिलि० स/१० बेरियम हाइड्राक्साइड =०.००८८ ग्राम एमाइल आलकोहल।

ऊपर द्रवको मिथाइल ओरेञ्ज के प्रति उदासीन करने में जो बेरियम हाइड्राक्साइड व्यय हुआ था, गणना में उस की उपेक्षा कर दी गई थी, क्योंकि वह अम्लीयता हाइड्रोक्लोरिक एसिड के कारण समझी जाती है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि क्लोराइडके केवल चिन्ह भी पाए जा सकते हैं, जब कि मिथाइल ओरेञ्ज कुल अम्लीयता के १० प्रतिशत को सूचित करेगा। शिड्रोविट्ज ने यह सुझाव उपस्थित किया है कि कुल अम्लीयता की गणना द्वारा एमाइल आलकोहलमें निकाल लेना चाहिए और क्लोराइड का भारात्मक दृष्टि से मात्रा निर्द्धारण करके गणनाको ठीक कर लेना चाहिए।

(iii) उपरोक्त विधि (ii) में सुधार करके निम्न विधि तैयार की गई है :—

५० मिलि० परीक्षणीय द्रव एक एरलेनमेयर कुप्पीमें लो और उसमें ५० मिलि० पानी मिलादो। फिर २० मिलि० स/५ सोडियम हाइड्राक्साइड मिलादो। कुप्पी पर लम्ब रूपसे घनीकारक लगाकर १ घण्टे तक साबुनीकरण करो। कुप्पीमें घनीकारक लगा कर स्रवण करो और लग भग ६० मिलि० स्रवित द्रव प्राप्त करो। कुप्पी में २५ मिलि० पानी मिलाकर ११५ मिलि० स्रवित द्रव प्राप्त होने तक स्रवण जारी रक्खो। इस स्रवित द्रव में संतृप्त नमक घोल मिलाकर उसका विशिष्ट गुरुत्व १.१० करलो। इस मिश्रण घोलको पृथक्कारक कीपमें डाल कर इसका चार बार कार्बन टैट्राक्लोराइड से निष्कर्षण करो और क्रम से ४० ३०, २० और १० मिलि० कार्बन टैट्राक्लोराइड–ccl_4 काम में लाओ। प्राप्त निष्कर्षण को कीप में लेकर १० मिलि० पोटाशियम हाइड्राक्साइड (१:१) मिलादो। मिश्रण को बर्फ में ०° श० तक ठण्डा करो, इस बीच में १०० मिलि० पोटाशियम परमैंगनेट घोल (२० ग्राम प्रति लिटर) ठीक ठीक माप कर एक कुप्पी में लेलो। मिश्रण के ०° श० तक ठण्डा हो जाने पर $KMnO_4$ घोल मिलादो। कुप्पी में जो $KMnO_4$ लगा रह जायगा, उसे बाद में काम लाने के लिये लगा रहने दो। मिश्रण को बर्फ में से हटा कर पांच मिनट तक जोर से हिलाओ और आधे घण्टे रक्खा रहने दो जिससे मिश्रण का तापमान कमरे के तापमान के तुल्य हो जाय।

१ लिटर एरलेनमेयर कुप्पीमें ठीक १०० मिलि० H_2O_2 घोल ($KMnO_4$ घोल से २% अधिक तीव्र) डाल कर १०० मिलि० २५%H_2SO_4 मिला दो, इस मिश्रण में पृथक्कारक कीप का पदार्थ धीमे २ मिलाओ। मिलाते हुए कुप्पी को हिलाते रहो, जिसमें समान विभाग हो जाय (अम्लीय घोल कुछ अधिक होना चाहिये)। पृथक्कारक कीप के धोने से प्राप्त प्रक्षालित जल तथा $KMnO_4$ वाली कुप्पीको धोने से प्राप्त प्रक्षालित जलको भी कुप्पी में डाल दो। इस घोलमें H_2O_2 की अधिकता $KMnO_4$ के प्रमाण घोल (१० ग्राम प्रति लिटर) से विलेयमापन द्वारा जान लो।

रिक्त—रिक्त विलेयमापन के लिये $KMnO_4$, KOH, H_2O_2, H_2SO_4 की उपरोक्त मात्राएं मिलाकर H_2O_2 की अधिकता का विलेयमापन $KMnO_4$ से कर लो। इसके प्राप्त परिणाम को प्रथम विलेयमापन में से घटा दो। अन्तरको प्रमाण $KMnO_4$ घोल के मान से गुणा कर दो।

१ मिलि० $KMnO_4$ (१० ग्राम प्रति लिटर) =०.६६६ ग्राम एमाइल आलकोहल।

नोट—पोटाशियम परमैंगनेट घोल को स/१ आग्जैलिक एसिड घोल से प्रमाणित कर लो।

१ मिलि० स/१ आग्जैलिक एसिड=०.०३१६१ ग्राम $KMnO_4$।

१ मिलि० प्रमाण $KMnO_4$ घोल=०.०१ ग्राम $KMnO_4$।

(च) नाइट्रेट—(गुणात्मक परीक्षा)—५० मिलि० नमूना लेकर स/१० सोडियम हाइड्राक्साइड से फिनोलफ्थलीन के प्रति उदासीन कर लो। आर्द्र अवशेष प्राप्त होने तक द्रव का वाष्पीकरण करो। इसमें थोड़ासा स्रवित पानी मिलाकर १ मिलि० फिनोलडाइसलफोनिक एसिड मिलाओ, मिश्रणको

NH_4OH से चारीय करलो। चमकीला नारंगी रंग नाइट्रेट की उपस्थिति को सूचित करेगा।

(ङ) गन्धक—१०० मिलि० आलकोहल लेकर फिनोलफ्थलीन के प्रति स/१० $NaOH$ घोल से हलका चारीय करलो और ५ मिलि० H_2O_2 मिला दो। इस घोल का वाष्पीकरण करो—वाष्पीकरण के लिये यदि प्लाटिनम प्याली काममें लाई जाय तो सब से अच्छा है। अब शेष का आलकोहल की ज्वाला पर दहन करो। फिर ५० मिलि० पानीके साथ लेकर ५ मिलि० हलका हाइड्रक्लोरिक एसिड मिलादो और ५ मिलि० १०% बेरियम क्लोराइड मिलादो। निचिप्त $BaSO_4$ को छान कर दहन करो और तोल लो।

मिथाइल आलकोहल—शुद्ध मिथाइल आलकोहल, CH_3OH, एक नीरंग द्रव है। इसका खौलाव विन्दु ६६°श० है। २०° श० पर इसका वि. गु. ०-७६६ है। पानी के साथ सभी अनुपातों में मिल जाता है।

इसकी गुणात्मक परीचा निम्न प्रकार से होती है:—

(क) फार्मलडिहाइड परीचा—२५ मिलि० नमूना लेकर पानीसे १०० मिलि० करलो। १० ग्राम क्रोमिक एसिड मिला दो। मिथाइल आलकोहल उपचित हो कर फार्मलडिहाइड में परिवर्तित हो जायगा। इस घोल के १५ से २० मिलि० का स्रवण करके ५ से १० मिलि० स्रवित इकट्ठा कर लो। इसमें लगभग ५० मिलि० शुद्ध दूध मिलाकर सान्द्र सलफ्यूरिक एसिड इस प्रकार मिलाओ कि वह बर्तन की दीवार से छूता हुआ दूध की तह के नीचे चला जाय। अम्ल और दूध से संयोग पर यदि जामनी रंग दीखने लगे तो फार्मलडिहाइड उपस्थित है। फार्मलडिहाइडकी उपस्थिति मिथाइल आलकोहल को सूचित करेगी।

(ख) इथाइल आलकोहल की उपस्थिति में मिथाइल आलकोहल की परीचा—१ मिलि० आलकोहलको पानीसे हलका करके १०० मिलि० करलो। इस घोल के २ मिलि० में २ मिलि० पोटाशियम परमैंगनेट (२५ ग्राम प्रति लिटर) और ०.४ मिलि० ५०% सलफ्यूरिक एसिड मिलाकर क्रिया होने दो। क्रिया होने के तीन मिनट बाद पोटाशियम परमैंगनेट की अधिकता को आग्जैलिक एसिड से नष्ट करके १ मिलि० सलफ्यूरिक एसिड और ५ मिलि० शिफ परीचक (फुचसिन बाइसलफाइट घोल—५०० मिलि० पानी में ०.५ ग्राम फुचसिन घोल कर SO_2 इतना मिलाओ कि घोल नीरंग हो जाय, इसे १ लिटर करलो) मिलादो। CH_3OH की उपस्थिति में जामनी रंग आ जायगा, अधिक देर रक्खा रहने से फार्मलडिहाइड—HCHO—बन जायगा। इस परीचामें C_2H_5OH रंग नहीं देता।

इस परीचा से १% CH_3OH भी पहचाना जा सकता है, ३% CH_3OH तीव्र रंग देता है।

(ग) नाइट्रो मिथेन परीचा—२०० मिलि० नमूने को फासफोरिक एसिड से अम्लीय करो। इसका स्रवण करके स्रवित द्रव का १० मिलि० एक छोटी कुप्पी में लो। इसमें २५ ग्राम चूर्ण आयडीन मिलाकर ४ ग्राम अस्फटिकाकार फासफोरस मिलादो। कुप्पी पर एक दम लम्बरूप घनीकारक लगाकर २० मिनट तक क्रिया होने दो। प्राप्त पदार्थ का स्रवण करके ५ मिलि० स्रवित प्राप्त करो, इसमें २ से ३ ग्राम सिलवर नाइट्राइट मिलाकर पुनः स्रवण करो और भिन्न भिन्न परीचा नलियों में स्रवित को तीन से चार बूंद तक के अंशों में इकट्ठा करलो। प्रत्येक अंशमें थोड़ा तीव्र अमोनिया मिलाकर सोडियम नाइट्रो प्रूसाइड का तीव्र घोल मिलादो। यदि मिथाइल आलकोहल उपस्थित होगा तो निम्न क्रिया होकर नाइट्रोमिथेन बनेगा।

$$3\,CH_3OH + P + I_3 = 3CH_3I + H_3PO_3$$

$$CH_3I + AgNO_2 = CH_3NO_2 + AgI$$
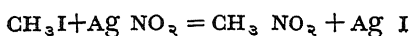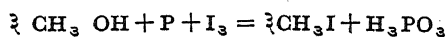
नाइट्रोमिथेन अमोनिया और सोडियम नाइट्रोप्रूसाइड के साथ क्रिया करके पहले नीला, फिर हरा और अन्त में पीला रंग छोड़ता है।

(घ) मिथाइल ३:५-डाइनाइट्रो बैन्जोएट (मुलिकन) परीचा—४ बूंद मिथाइल आलकोहल को ३:५- डाइनाइट्रोबैन्जोएट में उसी प्रकार बदलो जिस प्रकार इथाइल आलकोहल में बदला था।

प्राप्त पदार्थ को १२ मिलि० हलके इथाइल आलकोहल (३:१) के साथ उबालो और अब ठण्डा करो, हिलाओ, दो तीन मिनट तक रक्खा रहने दो, छानलो। प्राप्त स्फटिकों को दो मिलि० तीव्र ठण्डे आलकोहलसे घोलो। १२ मिलि० हलके इथाइल आलकोहल (३:१) के साथ पुनः स्फटिकीकरण करो, स्फटिकोंको छान कर २ मिलि० ठण्डे आल-

कोहलसे धोकर १००°श० से नीचेके तापमान पर शुष्क करो और पि० वि० का निश्चय करलो।

स्फटिक मिथाइल ३:५-डाइनाट्रोबैनजोएट का पि० वि० १०७-५° है।

मिथाइल आलकोहल का मात्रा-निर्धारण—निम्न विधियों में से किसी भी विधिसे मात्रा निर्धारण कर सकते हैं—

(क) डैनिजेस (Deniges) विधि—इस विधि में मिथाइल आलकोहल को उपचयन द्वारा फार्मलडिहाइड में बदल देते हैं, उसकी शिचफ परीक्षक से रंग-मापन द्वारा परीक्षा करते हैं। निम्न परीक्षक तैयार करो—

(i) **पोटाशियम परमैंगनेट**—२० ग्राम प्रति लिटर,

(ii) **आक्जैलिक एसिड**—६५ ग्राम स्फटिक अम्ल प्रति लिटर।

(iii) **शिचफ-परीक्षक**—१ ग्राम शुद्ध फुचसिन (रोजएनिलीन हाइड्रोक्लोराइड) ५०० मिलि० गरम पानी में घोलो, इस में धीमे २ हिलाते हुए २० मिलि० सोडियम बाइसलफाइट का संतृप्त जलीय घोल मिलाओ। फिर १० मिलि० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाओ ठण्डा करके स्रवित पानी से घोल का कुल आयतन १ लिटर करलो।

(iv) **मिथाइल आलकोहल**—१०%इथाइल आलकोहल में १ ग्राम मिथाइल आलकोहल प्रति लिटर उपस्थित हो।

परीक्षणीय द्रव का स्रवण करो और स्रवित भाग में से ५ मिलि० चौड़े मुंह की परीक्षा नलीमें लेलो। इसमें २-५ मिलि० परमैंगनेट घोल मिलाओ और ०.२ मिलि० तीव्र सलफ्यूरिक एसिड मिलाओ, द्रव को हिलाकर मिलादो। क्रिया हो चुकने के तीन मिनट बाद ०.५ मिलि० आक्जैलिक एसिड मिलादो, यह निक्षिप्त मैंगनीज डायक्साइड को घोल देगा। इस मिश्रणको हिलाने से द्रव लगभग नीरंग हो जायगा। इसमें १-० मिलि० तीव्र सलफ्यूरिक एसिड मिलाकर घोलको अच्छी प्रकार मिलाओ और ५ मिलि० शिचफपरीक्षक मिलादो। मिथाइल आलकोहल के उपस्थित होने पर कुछ ही मिनटों में जामनी रंग आ जायगा। बहुत कम उपस्थित होने पर रंग प्रगट होने में २० से ३० मिनट तक लग सकते हैं।

मिथाइल आलकोहल के रंग प्रमाण घोल उपरोक्त विधि से तैयार करो और रंग-मापन द्वारा परीक्षा करके मिथाइल आलकोहल की प्रतिशतकता निकाल लो।

(ख) फार्मिक एसिड विधि—हाइड्रोजन परावसाइड द्वारा आलकोहल का उपचयन करके उसे फार्मिक-एसिड में बदल देते हैं और मरक्यूरस क्लोराइड द्वारा फार्मिक-एसिड का मात्रा-निर्धारण कर लेते हैं।

नमूने को ५° श० तक ठण्डा करो, इसे सोडियम हाइड्राक्साइड से क्षारीय कर लो। इसकी क्रिया उत्तरोत्तर ५ मिलि० १ % हाइड्रोजन पराक्साइड से करो। इस परीक्षकको पहले तो ३० मिनटके अन्तर से मिलाओ, बादमें ४५ से ६० मिनट के अन्तर से मिलाओ। जब गैस पैदा होना बन्द हो जाय तो परीक्षक मिलाना बन्द करदो और इस उपचित द्रव को आठ घण्टे तक रक्खा रहने दो।

इस समय की समाप्ति पर सोडियम थायोसलफेट से H_2O_2 की अधिकता को नष्ट करदो। घोल को अम्लीय करके भापकी सहायता से स्रवण करो। स्रवित द्रवको इस प्रकार की कुप्पीमें इकठ्ठा करो जिसमें उबलते पानी में कैलसियम कार्बनेट अवलम्बनस्थ हो। जब लगभग ७०० मिलि० स्रवित द्रव प्राप्त हो जाय तो गरम गरम को छान लो, शुष्क होने तक छने द्रव का वाष्पीकरण करो। प्राप्त अवशेष—कैलसियम फार्मेट—को एक घण्टे तक १२५° से १३०° श० पर गरम करो। इसे १०० मिलि० पानी में घोलो और घोल का २५ मिलि० ईथर से दो बार निष्कर्षण करो। जलीय घोल में २ ग्राम सोडियम एसिटेट मिलाकर हाइड्रोक्लोरिक एसिड से हलका अम्लीय करो, इसे १०० मिलि० ५% मरक्यूरिक क्लोराइड के साथ दो घण्टे तक उबलते जल-ऊष्मक में गरम करो। निक्षिप्त मरक्यूरस क्लोराइडको गूच-मूषासे छान कर पहले गरम पानी से फिर क्रम से आलकोहल और ईथर से धोकर भार स्थिर होने तक शुष्क कर लो।

१ ग्राम Hg_2Cl_2 = ०-०८७५ ग्राम H-COOH
= ०-०६७८ ग्राम CH_3OH
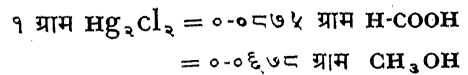
याद करना और भूलना

[लेखक—श्री जगदीश प्रसाद राजवंशी एम० ए० बी० एस-सी.]

स्मरण-शक्ति पर यों तो बहुत पहलेसे प्रयोग किये गए थे किन्तु इन प्रयोगों को दैनिक जीवन में उपयोगी बनाने का श्रेय डा० एबिंग हौज (Ebbing haus) को है। डा० एबिंग हौजका जन्म सन् १८५० में जर्मनीमें हुआ था। इनसे पहले लोग मस्तिष्क के उच्च स्तरके कार्यों का साधन ही मानते थे। उनका मत था कि मस्तिष्कके इन कार्योंको साधारण रूपमें नापा या तौला नहीं जा सकता। सबसे पहले डा० एबिंग हौजने बताया कि अन्य प्राकृतिक तथ्योंके समान स्मरण-शक्तिको भी वैज्ञानिक रीतियोंसे नापा जा सकता है।

एबिंग हौजने स्मरण-शक्ति को नापने के लिये बहुतसे नए प्रयोग किए। इन सब प्रयोगमें विशेष प्रयोग उनका "निरर्थक शब्दों" का था। इस परीक्षा-विधिमें पढ़ाई तथा व्यवसायका परीक्षापर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। उन्होंने जिन "निरर्थक शब्दों" का प्रयोग किया था वे शब्द तीन तीन अक्षरोंके बने थे। इन शब्दोंमें दो व्यञ्जन होते थे और एक स्वर। स्वर दोनों व्यञ्जनोंको अलग करता था। उदाहरण के लिये कुछ शब्द दिये जाते हैं 'रीट', 'टोच', 'गाक' और 'मुफ'। अब तो चार चार अक्षरोंके निरर्थक शब्द भी काममें लाए जाते हैं और तीन अक्षर वाले निरर्थक शब्दोंके स्थान पर वे ही अधिक उपयोगमें आते हैं। ऐसे शब्द भी कुछ दिये जाते हैं। 'माटक', 'बोचट', टुमड़ और 'रोकभ'।

अब प्रश्न होता है कि इन निरर्थक शब्दों के बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? कोषोंमें सैकड़ों और हजारों शब्द हैं। उन्हींको काममें क्यों नहीं लाया गया? यदि कोषके शब्दोंको काममें लाया जाता तो उनसे सब व्यवसायके लोगोंकी परीक्षा समान रूपसे नहीं हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति कविता से विशेष प्रेम रखता है तथा साहित्यिक है और शब्द जो चुने गए हैं वे भी साहित्यमें प्रायः उपयोगमें आते रहते हैं तो उस व्यक्ति के लिये यह परीक्षा आसान रहेगी, और एक दूसरे व्यक्ति के लिये जो इञ्जीनियर है यह परीक्षा कठिन रहेगी। इस स्थितिमें उससे स्मरण-शक्तिकी ठीक ठीक जांच नहीं हो सकती। कभी-कभी शब्दोंके चुनने में ऐसा भी हो सकता है कि वे शब्द एक इञ्जीनियरके दिन-रात काममें आने वाले हों और काव्यमें या साहित्य में उनका कभी काम ही न पड़ता हो। यह परीक्षा साहित्यिक व्यक्ति के लिये कठिन होगी और साधारण व्यक्तिके लिये ये दोनों प्रकार ही परीक्षायें कठिन होंगी।

इन सब कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये ही निरर्थक-शब्दों की रचना की गई थी। इन शब्दोंकी परीक्षामें हर व्यवसायका व्यक्ति इनसे बिलकुल अपरिचित होगा। उन्हें याद करने में प्रायः सभी को बराबर ही कठिनाई उठानी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त निरर्थक-शब्दोंकी सहायतासे किसी भी उम्रके आदमी की परीक्षा की जा सकती हैं। यदि कोष के शब्द होते तो अधिक उम्र वाले साहित्यिक तथा पढ़े लिखे व्यक्तियोंको समय के साथ साथ परीक्षामें सफल होना सहल होता, क्योंकि जैसे जैसे उनकी उम्र बढ़ती वैसे वैसे ही उनका शब्द-ज्ञान बढ़ता जाता। एबिंग हौजने ऐसे ऐसे ५०० निरर्थक शब्दों की रचना की थी।

प्रारम्भमें एबिंग हौजने सारे प्रयोग अपने ऊपर किये थे और उन प्रयोगोंके परीणामको बड़ी होशियारीसे प्राप्त किया था। समस्याओंको पांच भागोंमें विभाजित कर सकते हैं:—

१. जो विषय याद करना है उसकी मात्रामें तथा जितनी शक्ति और समय उसको याद करने के लिये चाहिए, इन दोनोंमें क्या सम्बन्ध है? विशेषतया ध्यान इस बात पर दिया गया कि निरर्थक-शब्दों की संख्याके अधिक होने पर याद करनेके समयमें क्या अन्तर पड़ता है?

२. शब्दोंको सीखने तथा शब्दोंको स्मरण रखनेकी शक्ति में क्या सम्बन्ध है? एक शब्द सूचीके बार बार दोहरानेका स्मरण-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है।

३. भूलनेमें तथा कितने समय बाद उस विषयको पूछा गया, इन दोनोंमें क्या सम्बन्ध है? निरर्थक शब्दोंकी सूची को स्मरण रखनेमें बीता हुआ समय क्या प्रभाव डालता है?

४. बार-बार सीखनेका तथा समय समय उस विषयको देख लेनेका स्मरण-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है?

५. कण्ठाग्र करनेमें किन किन प्रकारके सम्बन्ध बंधते है?

क्या वे आगे की ओर एक पद से केवल दूसरे पद तक ही जाते हैं या एक दो पद छोड़ कर आगे के किसी पद से भी जुड़ सकते हैं ? क्या कभी पीछेके पदोंसे भी सम्बन्ध जुड़ता है ? यदि मान लिया जाय कि ऐसे सम्बन्ध जुड़ते हैं तो इन सम्बन्धों की अपेक्षित शक्ति क्या है ।

ऊपर दी गई पांचों समस्याओं को एक एक करके हमें देखना चाहिये ।

१. स्मरण रखनेके विषयकी मात्रामें तथा जितनी शक्ति और समय इसको याद रखने के लिये चाहिये, इन दोनों में क्या सम्बन्ध है ?

साधारण अनुभवसे हम जानते हैं कि कोई कविता या गद्य जितना अधिक लम्बा होगा उतनी ही अधिक कठिनाई तथा समय उसको याद करनेमें लगेगा क्या दस पदोंको याद करने में, पांच पदों के याद करने के समय से दुगुना समय लगेगा, तिगुना समय लगेगा, या छः गुना समय लगेगा ? इस विषय पर किसीने भी कभी सोचने का प्रयत्न न किया होगा। यदि सोचा भी होगा तो उसे यही ज्ञात होगा कि वास्तव में समय बहुत अधिक लगता है; किन्तु ठीक ठीक कितना अधिक समय लगता है इसको जाननेका कभी प्रयत्न न किया होगा । एबिंग हौजने इस विषय को इस प्रकार लिया । सबसे पहले उसने सात, दस, बराह, सोलह, चौबीस और छत्तीस निरर्थक शब्दों के याद करने के समय को लिखा। याद करनेका मतलब यह था कि यदि वह स्मरण शक्तिसे दोहराने लगे तो एक गल्तीसे अधिक गल्ती न हो। इस समयसे उसने मालूम किया कि प्रत्येक दशामें प्रति शब्द याद करनेमें उसे कितना समय लगा । उसके प्रयोगोंके फलोंको सारणीकी सहायता से इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं:—

सूची की लम्बाई निरर्थक शब्दों में	कितनी बार पढ़ना पढ़ा	कुल शब्दों को याद करने में कितना समय लगा	प्रत्येक शब्दको याद करने में कितना समय लगा
७	१	३ सैकेण्ड	·४ सैकेण्ड
१०	१३	५२ "	५·२ "
१२	१७	८२ "	६·८ "
१६	३०	१९६ "	१२·० "
२४	४४	४२२ "	१७·६ "
३६	५५	७९२ "	२२·० "

सारणीसे यह ज्ञात होता है कि निरर्थक शब्दों की संख्या के बढ़नेसे याद करने के समय में एक दम बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है । याद करनेका समय न तो समानान्तर श्रेणीमें बढ़ता है और न गुणोत्तर श्रेणी में ही । सात शब्दों के याद करने के समयमें तथा दस शब्दों के समयमें तो एक दम बहुत अधिक भेद है; किन्तु बादमें यह भेद लगभग समान होता जाता है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि शब्दों की संख्या के बढ़ने पर हमें उन शब्दोंको अधिक बार पढ़ना तो पड़ताही है तथा उनको याद करनेमें समयभी अधिक लगता है। इसके साथ साथ शब्दों की संख्याके अधिक होने पर प्रति शब्द को याद करने में समय भी अधिक लगने लगता है । इसके लिये अधिक बातोंको याद रखने में हमें प्रत्येक बात को याद रखने में अधिक प्रयत्न करना पड़ता है । यह नहीं कि बातोंकी दुगनी संख्या को याद करनेमें दुगना समय लगता हो, दुगनी संख्या को याद करने में बहुत अधिक समय लगेगा और उसके लिये प्रयत्न भी अधिक करना पड़ेगा । इसका कारण यह हो सकता है कि बहुत सी बातोंको याद रखनेमें सब बातोंमें भ्रांति हो जाती है सम्भव है एक शब्द या विषय दूसरे शब्द या विषय का संदेह उत्पन्न कर देता हो। इसलिये प्रत्येक शब्द और विषय को क्रमानुसार याद रखना पड़ता है ।

इन निरर्थक शब्दों के याद करने के समय में तथा किसी कवितामें प्रयुक्त शब्दोंके याद करनेके समयमें बहुत अन्तर रहता है एबिंग हौजने सात बार परीक्षा की । प्रत्येक बार बायरन की कविताके छः पद याद करनेको थे । प्रत्येक पदमें अस्सी शब्द थे । प्रत्येक पदको याद करनेके लिये लगभग आठ बार दोहराना पड़ता था । किन्तु निरर्थक शब्दोंको याद करनेके लिये उन्हें अस्सी बार दोहराना पड़ता था । इस प्रकार पदोंके शब्दोंको याद करनेके समयमें तथा निरर्थक शब्दोंको याद करनेके समय में १ : १० का अनुपात था । इससे यह ज्ञात हुआ कि शब्दों के अर्थ, उनकी ध्वनि, तुक और भाषाका शब्दोंको याद करनेके समय पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है ।

२. शब्दों को सीखने तथा शब्दों को स्मरण रखने की शक्तिमें क्या सम्बन्ध है ?

एबिंग हौजने जो स्मरण रखनेका समय निकाला था, वह शब्दों को एक बार सही सही दोहराने का समय था, किन्तु साधारणतः हम लोग याद रखनेके विषयको इससे बहुत अधिक याद करते हैं। इसके साथ साथ जिस विषय को हम देर में समझते हैं उसे मुँह जबानी याद करनेमें समय भी अधिक लगता है, और उस विषयको याद करनेमें मुश्किल भी अधिक पड़ती है। हम जो आवश्यकता से अधिक याद कर लेते हैं उसका अधिक दिनों तक स्मरण रखने पर क्या प्रभाव पड़ता। इस प्रयोगको करने के लिये एबिंग हौज ने १६-१६ शब्दों की कुछ सूचियां लीं। उन सब सूचियों को उसने बराबर समय में तथा एक ही गतिसे पढ़ा किन्तु जितनी बार वे सूचियां पढ़ी गईं इसमें भेद था। इन सूचियों को आठ बार से लेकर चौंसठ बार तक पढ़ा अर्थात् एक सूची आठ बार पढ़ी तो दूसरी सोलह बार, तीसरी चौबीस बार......... । इस प्रकार कुछ शब्द सूचियां तो पूरी तरह से याद भी नहीं हो सकीं और कुछ जितनी बार याद करने के लिये पढ़ना चाहिये था उससे भी अधिक बार उनको पढ़ा गया। चौबीस घण्टोंके पश्चात् उसने फिर उन शब्द सूचियोंको पढ़ा। इस बार वह प्रत्येक सूची को उतनी ही बार पढ़ता था जितनी बारमें वह उनको मुँह जबानी सुना सके। इस बार याद करने के लिये उसे कम बार पढ़ना पड़ता था। पहले दिनके अधिक बार पढ़नेसे दूसरे दिन कम बार पढ़ना पड़ता था। उसने यह मालूम किया कि यह कम बार पढ़ना पहले दिन के अधिक बार पढ़ने का कितना प्रतिशत कम है। उसके प्रयोगों का फल इस प्रकार है :—

पहले दिन कितनी बार पढ़ा	८	१६	२४	३२	४२	५३	६४
चौबीस घण्टोंके बाद कितने प्रतिशत कम बार पढ़ना पढ़ा	८	१५	२३	३२	४५	५४	६४

इससे यह ज्ञात होता है कि पहले दिनका एक बार अधिक पढ़ने से दूसरे दिन एक प्रतिशत कम बार पढ़ना पड़ता था। इन फलोंकी समानताके आधार पर यह ज्ञात होता है कि पहले दिन १०० बार पढ़ लेने से दूसरे दिन बिना पढ़े ही उनको सुनाया जा सकता था। इस बार पढ़नेमें १०० प्रतिशत कम बार पढ़ना पड़ता। किन्तु इतनी बार पढ़नेमें मस्तिष्क पर बहुत अधिक जोर पड़ता है तथा सारे समयमें एकचित्त होकर भी वह नहीं पढ़ सकता था।

इसका तो यह मतलब हुआ कि याद रखना पहले दिनकी मेहनत और याद करनेके विषयकी मात्रा पर निर्भर रहता है। प्रायः जो लोग कहा करते हैं कि देर में याद करने वाले देर तक बातको याद रखते हैं वे वास्तवमें ठीक ही कहते हैं। देरमें याद करने वाला व्यक्ति एक ही विषय को बार-बार दोहराता रहता है, और एक बार ठीक ठीक दोहराने के लिये जितनी बार पढ़ना चाहिये उससे अधिक बार वह पढ़ जाता है। ऊपर दी गई सारणीसे यह भली भांति ज्ञात हो सकता है कि पहले दिनके अधिक पढ़नेसे दूसरे दिन याद करने में बहुत कम समय लगता है। इस विषय पर जो प्रयोग किये गए उनका फल इस प्रकार था :—

	प्रथम बार याद करने में कितनी बार पढ़ना पड़ा	२४ घण्टे पश्चात् याद करनेमें कितनी बार पढ़ना पड़ा	पढ़ने में कितने प्रतिशत बचत हुई
प्रौढ़ मनुष्य	२०	६	७०
बच्चे	४२	७	८३

बच्चों ने याद करने में प्रौढ़ मनुष्य से दुगना समय लिया। किन्तु दूसरे दिन दोहराने में उन्हें कम बार पढ़ना पड़ा। यही बात देरमें किन्तु पूरी तरह याद करने वालेके विषयमें हो सकती है। वह अधिकतर पढ़ता है और उसके कारण अधिक समय तक अच्छी तरह याद रख सकता है। इससे ज्ञात हुआ कि अधिककर दोहरानेसे अधिक समय तक याद रख सकते हैं।

३. भूलनेमें तथा कितने समय बाद इस विषयको पूछा गया, इन दोनोंमें क्या सम्बन्ध है? निरर्थक शब्दोंकी सूची को स्मरण रखनेमें बीता हुआ समय क्या प्रभाव डालता है?

निःसंदेह हम सभी जानते हैं कि किसी कविता के पदको जिसे अब हम बिलकुल भूल गए हैं दुबारा बड़ी शीघ्रतासे याद कर सकते हैं। दुबारा याद करने में पहली बार के याद करने के समयसे बहुत कम समय लगेगा। इसके साथ साथ यह भी हम लोग अनुभव करते है कि जिस विषयको याद किये हुए कम समय बीतता है, उसे हम और जल्दी दुबारा याद कर सकते हैं समयका बीतना और भूलने में क्या सम्बन्ध है? क्या स्मरण शक्ति धीरे धीरे कम होती है या इसका कुछ भाग बहुत शीघ्र

कम हो जाता है और कुछ भाग धुंधली स्मृति के रूप में बहुत कालके लिये स्थित रह जाती है ? एबिंग हौज़ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया और इस विषय पर किये हुए उसके प्रयोग बहुत मूल्यवान् हैं और बहुत अधिक विख्यात हैं।

एबिंग हौज़ने आठ शब्द-सूचियां लीं। प्रत्येक शब्द-सूचीमें १३ निरर्थक शब्द थे। इन सूचियोंको उसने इतना याद किया कि दोबारा मुंह जबानी शुद्ध सुना सके। इसके बीस मिनट पश्चात् फिर प्रत्येक शब्द सूचीको लिया गया और फिर उसको दोहराया गया। प्रत्येक शब्द-सूचीको इतने बार पढ़ा गया कि बिना गल्ती किये हुए उसको दो बार मुंह जबानी सुनाया जा सके।। दूसरी बार याद करने में जितना समय लगा, इसको लिख लिया गया। दूसरी बार याद करनेमें जितना समय बचा, उसे पहले याद करनेके समयकी प्रतिशत मात्रामें प्रदर्शित किया गया। वास्तवमें यह प्रयोग कैसे किया गया, यह प्रदर्शित करने के लिये एबिंग हौज़ने १२ शब्द सूचियां (प्रत्येक शब्द-सूचीमें १३ निरर्थक शब्द थे) याद कीं। इन शब्द-सूचियों को इतना याद करनेमें दो बार मुंहजबानी सुनाया जा सके, उसे अट्ठारह मिनट लगे। बीस मिनट पश्चात् उन्हीं शब्द-सूचियोंको इतना याद करनेमें, कि दो बार मुंहजबानी सुनाया जा सके, आठ मिनट लगे। इससे ज्ञात हुआ कि याद करने के समय में दस मिनट की बचत हुई। प्रथम बारके याद करनेके समयके प्रतिशत रूपमें इस प्रकार निकाला जा सकता है। $\frac{१०}{१८}\times१०० = ५५\cdot५५ = ५६$ (लगभग) अर्थात् ५६%। ५६% यह प्रदर्शित करता है कि बीस मिनट पश्चात् विषयकी कितनी मात्रा याद रहती है, तथा जितनी मात्रा भूल गई, वह १०० − ५६, या ४४ प्रतिशत थी। इसी प्रकार अन्य शब्द-सूचियां भी याद की गईं और उनको इसी प्रकार एक घण्टे के बाद, नौ घण्टे के बाद, चौबीस घण्टे के बाद, दो दिनके बाद, छः दिनके बाद और तेरह दिनके बाद फिर याद किया गया इस प्रयोग का फल इस प्रकार था:—

प्रथम बार याद करनेमें तथा दोबारा याद करने के बीच में कितना समय रहा	(लाभ) कितना याद रहा	(हानि) कितना भूला
२० मिनट	५८	४२
१ घंटा	४४	५६
९ घण्टे	३६	६४
२४ घण्टे	३४	६६
२ दिन	२८	७२
६ दिन	२५	७५
१३ दिन	२१	७९

यदि इन संख्याओं (भूलने की तथा समय की) की सहायतासे एक वक्ररेखा—चित्र खींचा जाय तो उससे ज्ञात होगा कि २० मिनटसे दो दिन तक तो जल्दी भूलते हैं किन्तु धीरे धीरे यह भूलना बहुत कम होता जाता है। दस दिन और तीस दिन के भूलने में बहुत थोड़ा अन्तर है। इसके अतिरिक्त थोड़ी बहुत स्मृति सदाके लिये रह जाती है, जो अंतिम दिन तक चलती रहती है। एबिंग हौज़के पश्चात् अन्य लोगोंने भी इस विषय पर बहुत खोज की है। उनके फल कुछ भिन्न अवश्य हैं किन्तु इतने नहीं कि उनके कारण एबिंग हौज़के प्रयोगोंका कोई मूल्य ही न रहे। एक अन्य मनोवैज्ञानिकने भी निरर्थक शब्द-सूचियों तथा कविताओं के पद दोनों पर प्रयोग किये। प्रयोगों के फल इस प्रकार हैं:—

प्रथम बार याद करने तथा दोबारा याद करने के बीच में कितना समय रहा	निरर्थक शब्दोंकी कितनी प्रतिशत मात्रा याद रही	कविता की कितनी प्रतिशत मात्रा याद रही
५ मिनट	९८	१००
२० मिनट	८९	९६
१ घण्टा	७१	७८
८ घण्टे	४७	५०
२४ घण्टे	६८	७०
२ दिन	६१	६७
६ दिन	४९	४२
१४ दिन	४१	३०
३० दिन	२०	२४
१२० दिन	३	.७

सारणी से ज्ञात होता है कि थोड़े समय के लिये कविता निरर्थक-शब्दोंसे बहुत अधिक याद रहती है किन्तु २४ घण्टोंके पश्चात् कविता तथा निरर्थक-शब्द दोनों में बहुत थोड़ा अन्तर रह जाता है।

इसके अतिरिक्त याद रखने तथा भूलने पर और भी प्रयोग किये गए। एच० जी० जोनसने कॉलिजके लैक्चरोंके याद रखने पर प्रयोग किये। बहुतसे भिन्न भिन्न विषयों पर उसने लैक्चर दिये। चालीस मिनटके लैक्चर के पश्चात् विद्यार्थी साधारणतः बताए हुए विषयका ६२ प्रतिशत सुना देते थे, तीन चार दिनके बाद ४५ प्रतिशत, एक सप्ताह के पश्चात्, ३५ प्रतिशत; दो सप्ताह के पश्चात ३१ प्रतिशत और आठ सप्ताहके पश्चात् २४ प्रतिशत। इन संख्याओं से जो वक्ररेखा चित्र खींचा गया। वह एबिंग हौज के निरर्थक शब्दों के वक्ररेखा चित्रके ही समान था अर्थात् प्रारम्भमें बहुत अधिक हानि तथा बहुत हानि तथा समय के साथ साथ कम होते जाना।

इन फलोंकी सहायतासे विद्यार्थी जान सकते हैं कि निश्चित् समय तक याद रखनेके लिये एक विषयको कितनी बार पढ़ना चाहिये, तथा जो विषय उन्होंने पढ़ा है, वह कितने समय तक याद रह सकेगा। क्योंकि हम लोग भूलते बड़ी जल्दी हैं, इसलिये जिस विषयको मुँह जबानी याद रखना हो उसे समय समय पर फेरते रहना चाहिये। इस प्रकार वह विषय उस समय तो आवश्यकता से अधिक पढ़ा जायगा, किन्तु वह याद अधिक समय तक रह सकेगा।

४. बार बार सीखने तथा समय समय पर उस विषय को देख लेने का स्मरण-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है?

अब तकके वर्णनसे यह ज्ञात हुआ कि जिस विषयको हम साधारणतः याद कर लेते हैं वह विषय पहले बड़ी शीघ्रता से विस्मरण होता है फिर समय के साथ-साथ कम हो जाता है। भूलने की मात्रा हमारे याद करते समय के प्रयत्न पर भी निर्भर रहती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि बार बार पढ़ने का स्मरण रखने पर क्या प्रभाव होता है? एबिंग हौजने इस प्रभाव को जाननेके लिये निम्नलिखित प्रयोग किया था:—

सबसे पहले, निरर्थक शब्दोंकी सूचियां जिनमें १२, २४, ३६ शब्द थे तथा कुछ पद बायरन की कविता 'डोन जुयन' (Don Juan) के याद किए। इसके बाद छः दिन तक एक ही समय पर उनको याद किया गया। यदि इस हद तक किया जाता था कि उनको एक बार मुँहजबानी दोहराया जा सके। प्रतिदिन कितनी बार पढ़ना पड़ता था तथा प्रथम दिनके समयका कितना प्रतिशत बार कम पढ़ना पड़ता था, यह निम्न लिखित सारणी द्वारा भली भांति ज्ञात हो सकता है:—

शब्द सूचियों में कितने शब्द थे		दिन १	२	३	४	५	६
१२	कितने बार पढ़ना पड़ा	१६-५	११	७·५	५	३	२·५
	% प्रथम दिनसे कम	— —	३४	५५	७०	८२	८५
२४	कितने बार पढ़ना पड़ा	४४	२५-५	१२·५	७·५	४·५	३·५
	% प्रथम दिनसे कम	— —	४६	७२	८३	९०	९२
३६	कितने बार पढ़ना पड़ा	५५	२३	११	७·५	४·५	३·५
	% प्रथम दिनसे कम	—	५८	८०	८६	९२	९४
१ पद 'डोनजुयन'	कितने बार पढ़ना पड़ा	७·७५	३·७५	१.७५	·५	०	०
कविता का	% प्रथम दिनसे कम	—	५२	७७	९४	१००	१००

इस सारणी से एक बात यह मालूम होती है कि जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं वैसे-वैसे ही पढ़ना भी कम बार पड़ता है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि पुरानी कई बार की याद की हुई बातें धीरे-धीरे भूलती हैं और तुरन्तकी याद की हुई बातें जल्द भूलती हैं। इस लिये जिन बातोंको हम बार-बार दोहराते हैं वे बातें हमें पूर्णतया याद हो जाती हैं। कभी-इन बातोंका वर्षों तक काम नहीं पड़ता। किन्तु पहले बहुत दिनों के दोहरानेके कारण वे हमें पूर्णतयता याद हो जाती हैं। इसी प्रकार सप्ताह के दिन तथा सालके महीनोंके नाम प्रत्येक व्यक्तिको अज्ञात रूप से याद हो जाते हैं। और जब तक वह मनुष्य बूढ़ा ही नहीं हो जाता या उसके दिमागमें कोई खराबी नहीं हो जाती तब तक उसे याद रहते हैं।

एबिंग हौज के प्रयोगों से एक विशेष बात और ज्ञात हुई कि एक साथ बहुत बार पढ़नेके बजाय कई दिन तक पढ़ने से

विषय अधिक याद रहता है। एबिंग हौजने मालूम किया कि १२ निरर्थक शब्दोंकी एक सूचीको पहले दिन ६८ बार पढ़नेसे दूसरे दिन उसे याद करने के लिए केवल ७ बार पढ़ना पड़ा। तीन दिन तक याद करनेके इस प्रयोगमें तो कोई विशेषता नहीं हुई, किन्तु चौथे दिन उसे ज्ञात हुआ कि प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा पढ़नेमें कम बार पढ़ना पड़ता है। कम बार पढ़नेसे चौथे दिन तक उसे केवल ३४ बार पढ़ना पड़ा। इस प्रकार सब दिन जितने बार पढ़ना पड़ा उसे जोड़नेसे ज्ञात हुआ कि पहली बार अधिक पढ़ने से अधिक बार पढ़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ कि पढ़नेकी संख्याको दिनोंमें बांट देने पर याद किया हुआ विषय अधिक दिनों तक याद रहता है।

इसके अतिरिक्त यह भी जानने का प्रयत्न किया गया कि बार बार पढ़नेसे कोई विषय या निरर्थक शब्द अधिक समय तक याद रहते हैं या उन्हें कुछ बार पढ़कर फिर अपने आप दोहरानेसे। इस विषय पर गेट नाम के व्यक्ति ने विशेष प्रयोग किये। उसने अपने शिष्योंको ९ मिनटमें १६ निरर्थक शब्दों की एक एक सूचियां दीं। उनमेंसे कुछसे सूचीको बार-बार पढ़ने के लिये ही कहा गया। उनमें से कुछ से कहा गया कि उस समय के पांचवें भाग में वे याद की हुई सूची को अपने आप विना लिखित सूची को देखे दोहराने का प्रयत्न करें। इस दोहरानेमें जब भी भूल जांय तो एक निगाह डाल कर लिखित सूचीको देखकर याद कर लें। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों को इस प्रकार अपने आप दोहरानेके लिये समयका $\frac{2}{5}$, $\frac{3}{5}$ और कुछ को $\frac{4}{5}$ भाग भी दिया गया। इस प्रयोगके फल स्वरूप जो फल प्राप्त हुए उनसे ज्ञात हुआ कि इस प्रकार अपने आप बिना सूची को देखे दोहराने से याद करने में विशेष सहायता मिलती है। जिन लोगोंने समय का $\frac{4}{5}$ भाग बिना सूची को दोहरानेमें व्यय किया था वे उन लोगोंसे जो लगातार सूचीको पढ़ते रहे दुगना याद रख सके थे। प्रत्येक दशा में अपने आप बिना सूची को देखे दोहरानेसे अच्छा ही फल रहा; चाहे याद करनेका विषय दैनिक उपयोगका अर्थ रखने वाला था या चाहे वह निरर्थक शब्दोंकी सूची थी।

इन प्रयोगोंके फल स्कूलमें पढ़ने वाले विद्यार्थियोंके लिये विशेष लाभके हैं। इन फलोंसे ज्ञात होता है कि समय-समय पर पढ़े हुए विषय को देखनेसे वह विषय अधिक अच्छा याद होता है और एक साथ एक ही बारमें बहुत बार पढ़नेसे इतना अच्छा याद नहीं रहता। यह बात अवश्य ठीक है कि कुछ होशियार लड़के परीक्षाके दिनसे पहले दिन बहुत अधिक याद कर लेते हैं और परीक्षामें उनसे अच्छा लाभ उठाते हैं। किन्तु उन लोगों को परीक्षा समाप्त होने के पश्चात् उस विषय का अधिक ज्ञान नहीं रहता। इसके विपरीत जो विद्यार्थी धीरे धीरे प्रति दिन थोड़ा थोड़ा क्रमानुसार पढ़ते रहते हैं उन्हें जितना परीक्षा के समय याद रहता है उतना ही परीक्षा समाप्त होने पर बहुत दिनों तक याद रहता है। इसलिये जहां तक इस बात का सम्बन्ध है कि किसको कोई विषय कितना याद रहा है। इसमें तो वास्तव में अधिक परिश्रम करने वाला लड़का ही लाभ में रहेगा।

अन्तमें हम उन सब बातों को एकत्रित करते हैं जिनका भूलने पर विशेष प्रभाव पड़ता है। दूसरे उस विषय को याद करने में कितना परिश्रम किया गया है; जितनी बार उसे पढ़ा गया है तथा जितना अधिक समय उसे पढ़नेके लिये दिया गया है, उतना ही अधिक (एक सीमा तक) वह विषय अधिक याद रहेगा। तीसरे जितना परिश्रम किया गया है उसे एक साथ न करके उसको थोड़ा थोड़ा करके अधिक दिनोंमें किया गया है। इसलिये विषयको थोड़े थोड़े नियमित समयके पश्चात् दोहराने से वह अधिक समय तक याद रहेगा। चौथे याद रहना तथा भूलना याद करने के विषय पर भी निर्भर करता है। अर्थ युक्त विषय निरर्थक शब्दोंसे अधिक समय तक याद रहता है।

५ कण्ठाग्र करने में किस प्रकार के सम्बन्ध बंधते हैं? क्या वे आगे की ओर एक पद से केवल दूसरे पद तक ही जाते हैं या एक दो पद छोड़ कर आगे के किसी पद से भी जुड़ सकते हैं? क्या कभी पीछे के पदों से भी सम्बन्ध जुड़ता है? यदि मान लिया जाय कि ऐसे सम्बन्ध जुड़ते हैं तो इन सम्बन्धोंकी आपेक्षित शक्ति क्या है?

मुंहजबानी याद करनेमें जैसे १, २, ३, ४ या क, ख, ग, घ... इत्यादि हमें जो शब्द याद होते हैं वे एक के बाद दूसरे लगातार याद होते जाते हैं। जैसे **क** को याद करने के बाद दूसरा शब्द **ख** याद होगा यदि **ख** के स्थान पर **ग** याद आ गया तो समझो कि बस उससे आगे याद होना मुश्किल है। इसलिये याद करते समय जो सम्बन्ध स्थापित होता है वह क्रमानुसार केवल आगेको बढ़ता है। क्या इसी प्रकार का सम्बन्ध

निरर्थक शब्दोंकी याद करते समय भी स्थापित होता है ?

इस विषय पर प्रयोग करने के लिए एबिंग हौज़ ने १६ निरर्थक शब्दोंकी एक सूची ली और उसे मुंहजबानी याद कर लिया। इसके बाद उसने इस सूची में शब्दों के क्रम को बदल दिया। यह बात इस प्रकार आसानी से समझ में आ सकती है, मान लो निरर्थक शब्दोंका पहला क्रम १, २, ३, ४, ५...१६ के रूपमें था तो दूसरा क्रम इस प्रकार हो सकता है:—

१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, २, ४, ६, ८, १० १२, १४, १६ किन्तु इस प्रकारकी सूची में भी पहली सूची के शब्दोंको याद करने से आगेके शब्द कुछ न कुछ याद रहते ही हैं। इसलिए यह शब्द क्रमकी बदली हुई सूची भी बिलकुल नए शब्दोंकी सूचीसे अधिक जल्द याद होगी। इसके अतिरिक्त शब्दोंका क्रम दो, तीन तथा चार बीचके शब्दोंको छोड़कर भी रखा जा सकता है, जैसे—

१, ४, ७, १०, १३, १६, २, ५, ८, ११, १४, ३, ६, ९, १२, १५।

इस प्रकारके क्रम से यह जाना जा सकता है कि बिलकुल पास के अगले शब्द के सम्बन्ध से तथा दूर के अगले शब्द के सम्बन्धसे मुंहजबानी याद करनेमें क्या अन्तर पड़ता है ? इन बदली हुई सूचियोंके अतिरिक्त और दूसरे प्रकार के परिवर्तित क्रमको रख कर दूसरी सूचियां भी तैयार की गईं थीं। इन सूचियों का मुंहजबानी याद करके तथा उनको फिर दूसरे तीसरे दिन याद करके यह मालूम किया गया कि अगले शब्दों का ध्यान याद करने पर क्या प्रभाव डालता है। इसके साथ-साथ यह भी ज्ञान हो गया कि पिछले शब्दों के ध्यान का याद करने से क्या सम्बन्ध है ?

पहली सूचीको याद करने के बाद उसको फिर २४ घंटों के बाद याद करने में कितनी कम बार पढ़ना पड़ा, इसका वर्णन इस प्रकार है:—

कितनी बचत हुई जबकि दूसरे दिनकी सूची में पहले दिन का ही शब्दक्रम था:— ३३%

कितनी बचत हुई जब दूसरे दिन का क्रम १ शब्दको छोड़ कर रक्खा गया था। ११%

,,	,,	,,	२	शब्द	७%
,,	,,	,,	३	शब्द	६%
,,	,,	,,	७	शब्द	३%

कितनी बचत हुई जब शब्दों का क्रम उल्टा कर दिया गया था अर्थात् १६वां शब्द सबसे पहले और पहला शब्द सबसे बाद को था। १२%

कितनी बचत हुई जब उल्टा क्रम १ शब्द छोड़ कर था। ५%

,, ,, ,, जब सारे शब्द तितर बितर कर दिये गये थे। ०-५%

ये प्रयोग कई कई मनुष्यों पर तथा भिन्न भिन्न प्रकारकी शब्द सूचियां बना कर किये गए थे। इन फलोंसे यह स्पष्ट है कि इन शब्द सूचियों को याद करने में शब्दोंके क्रम का काफी प्रभाव पड़ता है। यही नहीं कि केवल अगले शब्द से ही उनका सम्बन्ध होता हो बल्कि एक दो बीच के शब्द छोड़कर भी। किन्तु जितने शब्द बीचमें अधिक छोड़ दिये जाते हैं, उतना ही अधिक सम्बन्ध उनका कमजोर होता जाता है। यदि किसी सूची को बहुत बार पढ़ा गया है वह बहुत अच्छी तरह से मुंहजबानी याद हो गई है तब तो एक दो बीच के शब्दों को छोड़ने से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु जब वह अच्छी तरहसे याद नहीं हो पाती है तब तो इसका प्रभाव बिल्कुल साफ ही दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार एबिंगहौज़ ने कंठाग्र करने के तथा भूलने के विषय में जिन बातों का पता लगाया, ये विद्यार्थियोंके लिये बहुत ही उपयोगी हैं। एबिंगहौज ने जिन विशेष बातों का पता लगाया उन्हें थोड़े में इस प्रकार कह सकते हैं। (१) उसने कंठाग्र करने तथा भूलनेको मात्रिक रूप में रखा। (२) उसने उन बातों का पता लगाया जिनका अधिक समय तक याद रखने तथा शीघ्र भूलने पर विशेष प्रभाव पड़ता है और (३) उसने निरर्थक शब्दोंकी विधि निकाली। वास्तव में निरर्थक शब्दों के द्वारा ही ये प्रयोग सफल हो सके हैं।

मेंह के साथ मछलियां भी बरस सकती हैं ?

भारतवर्षमें तथा अन्य देशोंमें लोगोंने स्वयं मछली बरसते हुए देखा है। अमेरिका में डब्लू० एल० डोटी नाम के एक व्यक्तिने देखा कि १८ नवम्बर सन् १९३२ को शाम के तीन बजे एक दम काले बादल घिर आए। सारे बादल सिर पर इकट्ठे हो गए और बड़ जोर से मेंह पड़ने लगा। डोटी भाग कर छायामें जाने वाला था कि चिकनी-सी चीज उसके मुँह पर आ कर लगी। उसने ध्यानसे देखा कि मछलियां बरस रही थीं।

डोटी अमेरिका के उत्तरी प्रदेशमें एक किसान था। उसे अपनी आंखों पर विश्वास न आया। अपनी स्त्री को बुलाकर उसने यह अजीब बात देखनेके लिये कहा। सारे घरके बच्चे भी दरवाजे में इकट्ठे हो गए और बड़े अचम्भे में खड़े हुए इस नए दृश्यको देखते रहे। आकाशसे सैकड़ों मछलियां बरसीं। चारों ओर ओलों के समान मछलियां बरस रहीं थीं। खलिहान में मछलियां थीं, घरके आंगनमें मछलियां, पानीकी भरी बाल्टीमें आकर गिर रही थीं और रसोई घरकी खपरैलसे गिरकर टकरा रही थीं

ज्यों ही मछलियों का बरसना समाप्त हुआ, डोटी के बच्चे भागे हुए गए और बाहर पानीके गढ्ढोंमें उन्होंने मरी हुई तथा जीवित मछलियां देखीं। ये मछलियां आधे इंचसे लेकर पौन इञ्च तक लम्बी थीं। पास में ही एक कपास का खेत था। यह खेत दो तीन दिन पहले ही जोता और बोया गया था। इस खेतमें भी बहुत सी मछलियां पड़ी थीं; बहुत सी उनमें मरी हुई थीं किन्तु जीवित मछलियां भी पर्याप्त संख्या में थीं। ये बच्चे इन मछलियों को पानी के एक बर्तनमें भर कर घर ले आए। डोटीके मकानके चारों तरफ का फार्म उसी का था। वहां और आदमी नहीं रहते थे।

डोटीने यह कहानी अपने पड़ोसियों को सुनाई। यद्यपि मछलियों का गिरना केवल डोटी ने और उसके परिवार ने ही देखा था किन्तु डोटी एक सम्माननीय व्यक्ति था और जब उसने सारा किस्सा अपने पड़ोसियोंको सुनाया तो उन्हें भी इस पर विश्वास हो गया। किन्तु यह सब कैसे हुआ इसका कारण वे सब मिलकर भी न समझ सके। उसके एक साथी ने उसे सलाह दी कि इस कहानीको उस प्रांत के रहने वाले डा० ई० डब्लू० गुजर (E. W. Gudger) से कहना चाहिये। डा० गुजर मछलियों के विषयमें विशेषज्ञ समझे जाते थे।

डा० गुजरको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने इस विषय पर खोज प्रारम्भ की। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक जहां कहीं उन्हें इस विषय पर लेख या वर्णन मिला उन्होंने इकट्ठा करनेका प्रयत्न किया। अपनी खोजको पूर्ण करने के पश्चात् डाक्टर साहब ने बताया कि संसार में बहुत प्राचीन कालसे पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागों पर मछलियों की वर्षा हुई है। भविष्य में भी मछलियोंकी वर्षा होनेकी आशा करनी चाहिये। संसारके १७०० सालके इतिहास में उन्होंने ऐसे १७ अवसरों का वर्णन किया, जब मछलियां बरसीं और उन्होंने मछलियों के बरसनेका कारण भी बताया।

बहुत जोरसे मेंह बरसने के लिये अङ्गरेजी में एक मुहावरा है:—'कुत्ते और बिल्लियां बरस रही हैं (it is raining in dogs and cats)। डाक्टर साहब ने बताया यह मुहावरा गलत है। लोगों ने कुत्ते बिल्लियों को बरसते हुए कभी नहीं देखा है। हां! मछलियां, मेंढक और कुछ कीड़े बरसते हुए अवश्य देखे गए हैं।

जब लोगोंको यह ज्ञात हुआ कि डाक्टर गुजर इस विषय पर खोज कर रहे हैं तो जिन लोगों ने मछलियां बरसती देखी थीं उन्हों ने अपना अपना वर्णन डाक्टर साहब के पास लिख लिखकर भेजना प्रारम्भ किया। इनमें एक कहानी गेड द्वीपकी भी थी। यह डाक्टर गुजर का मित्र था। इसने वर्णन किया कि एक दिन किस प्रकार मछलियों के मेंहमें वह घिर गया था।

१५ मई सन् १९०० की शाम को बहुत जोर से बिजली कड़कनी शुरू हुई और बड़ी जोरकी हवाके साथ बादल घिर आए। बड़ी जोरसे एक बार बिजली कड़की और मछलियां बरसनी प्रारम्भ हो गई। थोड़ी ही देरमें पासके आंगनमें स्पाउटस (spouts) और छोटी पर्च (small perch) नाम की मछलियां इकट्ठी होने लगीं। ये मछलियां दो इञ्चसे लेकर चार और साढ़े चार इञ्च तक लम्बी थीं। सारे मुहल्ले की खिड़कियां खुल गईं और बच्चे और स्त्रियां बड़े विस्मय से यह दृश्य देख रहे थे। बच्चे मेंहमें गए और भीगनेकी परवाह न करके मछलियों को इकट्ठा करने लगे। प्रांतीय अखबारके एक संवाददाताने उन मछलियोंको इकट्ठा करके एक कांचकी बोतलमें भरकर सड़कके किनारे एक दुकान पर रख दिया।'

इसी प्रकारके अन्य विस्मय कारक बहुत से वर्णन डाक्टर साहबके पास आने लगे। जब डाक्टर साहब ने विषय का और अधिक अध्ययन किया तो उन्हें भारत तथा ग्रीस के प्राचीन ग्रन्थोंमें भी मछलियों की वर्षाका वर्णन मिला। किन्तु सब से जोरके मछलियोंके मेंहका वर्णन एक फ्रेंचने किया है। यह मनुष्य प्रकृति-शास्त्रका विशेषज्ञ था। इसलिये इसके वर्णन को झूठा भी नहीं कहा जा सकता। सिंगापुर (जिसका अब जापानियोंने शोनान नाम रख दिया हैं) में तीन दिन तक बहुत ज़ोरसे मेंह पड़ता रहा। यह मेंह फरवरीके महीने में एक ज्वाला मुखीके फटनेके बाद प्रारम्भ हुआ था। इस मेंहमें पचास एकड़ ज़मीन मछलियोंसे ढक गई थी।

किन्तु जर्मनीमें एक इससे भी आश्चर्यजनक घटना हुई। वहां यद्यपि एकही मछली मिली थी। किन्तु यह मछली बर्फके एक गोलेमें जमी हुई गिरी थी। सन् १८९६ के जुलाई महीने में एसनशहरमें बहुत ज़ोरसे ओले पड़े। एक आदमीने आंखों देखी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया 'उसकी आंखों के सामने मुर्गीके अण्डे के आकारका एक ओला आकर सड़क पर गिरा उस ओले के फटते ही उसमें से एक छोटी कार्प (baby carp) मछली निकली।'

मछलियोंके बरसनेका क्या कारण है? इस विचित्र घटना के विषयमें बहुतसे सिद्धान्त भिन्न भिन्न लोगोंने बताये हैं। जर्मन के विख्यात वैज्ञानिक हमबोल्टने इसका कारण ज्वालामुखीका फटना बताया है इसका कारण यह था कि उसके सामने दक्षिणी अमरीकाके मछलियोंके मेंहका उदाहरण था दक्षिणी अमेरिकामें एक ज्वालामुखी फटा था और उसके कारण उस पर्वतीय प्रदेश की नदियां मछलियोंसे खाली हो गई थीं। इसके अतिरिक्त एक दूसरे वैज्ञानिकने भी इसका कारण ज्वालामुखीका फटना बताया इस दूसरे वैज्ञानिकके सामने सिंगापुर का उदाहरण था। सिंगापुरमें भी ज्वालामुखी के फटने के बाद मछलियों की वर्षा हुई थी। किन्तु मछलियों का मेंह तो ऐसे प्रदेशोंमें भी पड़ा है जहां आज तक कभी भी, कोई भी ज्वाला मुखी फटता नहीं सुना गया।

तीसरे मतवाले यह कहते हैं कि मछलियां बरसती नहीं; किन्तु वे पहले से ही वहां होती हैं और मेंह पड़ने पर पृथ्वी से बाहर निकल आती हैं। ऊष्ण देशों में तथा भारतवर्ष में यह देखा गया कि कुछ मछलियां तालाब के सूख जाने पर कीचड़के नीचे चली जाती हैं और बरसातमें जब फिर मेंह पड़ता है तो वे जीवित हो जाती हैं। किन्तु यह मत तो यों ही गलत हो जाता है। जिन लोगों ने अपनी आंखों के सामने मछलियां बरसती देखी हैं वे भला इस पर किस प्रकार विश्वास कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कीचड़ में छिपकर रहने वाली मछलियां केवल उष्ण देशोंमें पायी जाती हैं, किन्तु मछलियोंकी वर्षा तो शीत प्रधान देशोंमें भी होती देखी गई है।

इसके साथ साथ यह सिद्धान्त कि मछलियां स्वयं चलकर स्थल पर पहुँच जाती है, यह भी गलत साबित होजाता है। जब तालाबों का पानी सूखने लगता है तो कुछ मछलियां अपनी छातीके रोंगटोंसे सरक कर स्थल पर पानी की खोजके लिये चल देती हैं। ये मछलियां जलसे बाहर कुछ समय के लिये जीवित रह सकती हैं। कुछ समय के जीने के लिये थोड़ा सा पानी ये अपने गलफड़ों में भरकर चलती हैं। किन्तु ये मछलियां भी केवल उष्ण देशों में ही होती हैं। शीत प्रधान देशों में ये मछलियां नहीं मिलतीं। इसके साथ साथ आंखों देखी घटनाएं भी इस सिद्धान्त को माननेसे मेल नहीं खातीं।

इसके अतिरिक्त एक और मत है कि मेंहके बरसते ही एक दम मछलियां पैदा हो जाती हैं और बढ़ जाती हैं। दक्षिणी उष्ण प्रदेशोंमें ऐसी छोटी छोटी मछलियां केलेके पेड़ोंके तनेमें भरे पानीमें मिली हैं। किन्तु किस प्रकार यह सब कुछ होता है इसके विषय में इस मत को प्रतिपादित करने वाला वैज्ञानिक बिलकुल चुप है।

किन्तु इसका असली कारण क्या हो सकता है? डाक्टर गुजरका मत है कि मछलियोंकी वर्षा जल-स्थम्भके उत्पन्न होनेके कारण होती है (कभी कभी समुद्रों में तूफान के समय तथा बबूलों के कारण पानी का एक बहुत ऊँचा स्थम्भ सा खड़ा हो जाता हैं। यह स्थम्भ बहुत ऊँचा होता है यदि इसके पास में कोई जहाज आ जाता है तो वह मुश्किलसे ही बच पाता है)। उनका कहना है कि जोरकी आंधियां और इनमें भी विशेषतया बबूले जल-स्थम्भ बना देते हैं। इस जल स्थम्भमें पानीके साथ साथ मछलियां भी ऊपर उठ जाती हैं। यह पानी और मछलियां वायु के द्वारा उड़कर अन्दर के देशोंमें इन सब चीजों की वर्षा कर देता है। ज्यों ज्यों तूफान और वायु स्थलमें अन्दरकी ओर बढ़ता है वैसे ही वैसे उसकी गति क्षीण होती चली जाती है और इन चीजों को वह धारण नहीं कर सकता।

इस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिकोंने बहुत कालसे चली आती हुई इस आश्चर्यजनक घटना का कारण बतानेका प्रयत्न किया है। इससे पहले ये घटनायें किसी देवताका प्रकोप या या किसी भूतकी मायाके रूपमें ही समझी जाती थीं।

"जलोदर-चिकित्सा"

[लेखक—वैद्य हरिनारायण शास्त्री चिकित्सक]

आयुर्वेद एक अगाध समुद्र है, जिसका पार पाना साधारण बुद्धि वालेके लिये तो क्या बड़े बड़े विद्वानोंके लिये भी कठिन है। इसकी उत्पत्तिके विषय में कई मत भेद हैं। कोई इसको चारों वेदों का सारभूत प्रधान उपवेद कहते हैं। चरण व्यूह इसको ऋग्वेद का प्रधान अङ्ग मानते हैं और भगवान धन्वन्तरि अथर्वका। परन्तु औषधि विज्ञान क्रमसे चिकित्सा ऋग्वेदमें विशेष है और यन्त्र शस्त्र विधान अथर्ववेदमें विशेष रूपसे पाया जाता है। इसलिये भगवान् आत्रेयने कहा है कि—

'न हि आयुर्वेदस्याभूतोत्पत्ति रुपलभ्यते,

अन्यत्राव बोधोपदेशाभ्याम्'

अर्थात् यह कहीं पता नहीं लगता कि आयुर्वेद कब और किसने बनाया। इससे आयुर्वेदका अनादित्व सिद्ध होता है।

संसारमें आजकल Allopathy, Homocopathy, Nature cure आदि नामसे जो चिकित्साएँ प्रचलित हैं, उन सबकी जननि यह भारतीय चिकित्सा ही है। संसार की सम्पूर्ण चिकित्साओं का दिग्दर्शन संक्षेप से हमारे शास्त्रकारों ने एक श्लोक में इस प्रकार कराया है जो उपशय शब्द से हमारे शास्त्रमें वर्णित है। यथा—

'हेतुव्याधि विपर्यस्त विपर्यस्तार्थ कारिणाम्।

औषधान्न विहाराणा मुपयोगं सुखावहम्॥'

विद्यादुपशयम्।"

इस प्रकार हेतु विपरीत, व्याधि विपरीत और हेतु व्याधि विपरीत आदि भेद से अष्टादश प्रकारकी चिकित्साएँ बतलाई गई हैं जिनके अन्तर्गत संसार की सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धतियोंका समावेश है किन्तु जब इससे निकली हुई पृथक् पृथक् चिकित्सा पद्धतियोंके साथ इसकी तुलना करते हैं तो इसको अवनति-पथ पर और अन्यों को उन्नति पथ पर पाते हैं यह देखकर, दुःख होता है। किन्तु साथ ही सोचते हैं तो बात मस्तिष्कमें आती है कि 'सब दिन होत न एक समान' अर्थात् संसार परिवर्तन शील है, जो कभी उन्नतिके उच्च शिखर पर आरूढ़ होता है, उसका कभी न कभी पतनके गढ़े गहरमें गिरना भी अवश्यम्भावी है। ठीक यही हालत हमारे भारतीय चिकित्सा शास्त्र की हुई है। ऐसी अवस्थामें भी विदेशी विद्वान् इस आयुर्वैदिक विज्ञानकी प्रशंसा के पुल बांधते हैं। इस विषय में यूरोप के एक प्रसिद्ध विद्वान् Mr. W. E. Coleman of San Francisco लिखते हैं कि:—

There is much in it (Charak Samhita both of interest and value to the western mind, occidental medical science and therapeutics American anp European medical science has much to learn.

अर्थात् पश्चिमवर्तीय अमेरिका और यूरोप के चिकित्सा विज्ञान और Therapeutio के सीखने के लिये चरक संहितामें बहुत सी लाभप्रद और मूल्यवान् वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार चरक संहिता की चिकित्सा की महत्ता के विषय में Dr. Clark of Philadelphia लिखते हैं:—

If the treatment offered by Chrak were to be substitu-ed, most of the chronic and epidemic diseases of the world would disappear and the work for the undertakers would be leseened considerably.

अर्थात् यदि चरक प्रतिपादित चिकित्सा पद्धतिका अनुशरण किया जाय तो संसारके अधिकतम प्राचीन और संक्रामक रोग लुप्त हो जायं और इसके अनुसार कार्य करने वालों को सरलता हो जाय।

यह तो हमारी काय-चिकित्सा का हाल है। शस्त्र चिकित्सा से भी हमारे प्राचीन महर्षि अनभिज्ञ नहीं थे। कटे हुए नाकको जोड़ना, आधुनिक शवच्छेदकों के लिये बिलकुल कठिन हैं, पर सुश्रुत में सुष्ठु प्रकारसे वर्णित है। यह तो हमारी जीर्णावस्था का हाल है। उन्नतावस्थामें यह कितने उच्च शिखर पर होगी, इसका अनुमान करना नितान्त असम्भव है।

चिकित्सा-शास्त्र की महत्ता को जानने के पश्चात उसकी (चिकित्सा की) परिभाषा का भी जानना आवश्यक है:—

'या क्रिया व्याधि हरणी सा चिकित्सा निगद्यते ।
दोष धातु मलानां या साम्य कृत्सैव रोगहृत् ॥'

अर्थात् जो क्रिया व्याधि यानि रोगका नाश करें। दोष, धातु और मलोंको साम्यावस्थामें लाए उसको चिकित्सा कहते हैं।

इस प्रकार चरक सुश्रुतादि व्याधि प्रतिकार चिकित्सा मानते हैं उस व्याधि प्रतिकार रूप चिकित्साके तीन भेद हैं १ हेतु, २ लक्षण, ३ औषध।

हेतु दो प्रकार का होता है एक अन्तरङ्ग और दूसरा वहिः रङ्ग। अन्तरङ्ग हेतु भी दोष और दूष्य भेदसे दो प्रकार का होता है।

वहिःरङ्ग हेतु वह है जो शरीरमें जाकर दोष और दूष्यों में विकृति उत्पादन द्वारा व्याधि का कारण हो। वह भी वृद्धि और क्षय भेद से दो प्रकार का होता है अर्थात् जो वातादि दोषों का संचय करे वह वृद्धि और जो न्यून करे वह क्षय कहलाता है। अब हमें देखना है कि शरीरमें कौन कौनसे वहिः-रङ्ग हेतु जाकर अन्तरङ्ग हेतु दोष दूष्यादि को कुपित करके उदर रोग को उत्पन्न करते हैं, क्योंकि हमें इनका चिकित्सा में उपयोग लेना है। वे हेतु निम्न निर्दिष्ट हैं:—

'रोगा सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नै जायन्ते मलसंचयात् ॥'

इन उपर्युक्त कारणों से मन्दाग्निवाले रोगी के मल संचय होकर अर्थात् दोष और पुरीषादि अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होकर उदर रोगको उत्पन्न कर देते हैं। जैसा कि चरकने लिखा है:—

'अति संचित दोषाणां पापं कर्म च कुर्वताम्।
उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्निनां विशेषतः ॥'

यह उपर्युक्त वहिःरङ्ग हेतु शरीर में काफी संख्या में संचित होकर अन्तरङ्ग हेतु दोष दूष्यादि को दूषित करते हैं। फिर यह वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग हेतु शरीरमें दूषित रचना (Pathology) बनने लगते हैं और निम्न कार्य करते हैं—

'रुध्वा स्वेदाम्बु वाहिनी दोषाः स्रोतांसि संचिताः।
प्राणाग्नि पानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥'

अर्थात् वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग हेतु स्वेद वह और जलवह स्रोतोंको रोक कर जटराग्नि, प्राण और अपान वायुको दूषित करके उदर रोगको उत्पन्न कर देते हैं, अर्थात् इनके कार्य बन्द हो जाते हैं। इनके कार्योंके बन्द हो जाने पर उदर रोग उत्पन्न हो जाता है। इसलिये उदर रोगकी चिकित्सा करते समय जटराग्नि, प्राण और अपान वायु को साम्यावस्था में करने वाली क्रिया करनी चाहिये।

इस प्रकार उदरकी Pathology पर विचार करने के पश्चात् उसके सामान्य लक्षणों पर विचार करते हैं जो इस प्रकार हैः—

'कुक्षेराध्मानमाटोपः शोफपाद करस्य च।
मन्दोऽग्निश्लक्ष्णं गण्डत्वं कार्श्यं चोदर लक्षणम् ॥'

उपर्युक्त हेतु, सम्प्राप्ति और लक्षणों के कहने का यह तात्पर्य है कि एक तो वे व्याधि प्रतिकार रूप चिकित्सा के अन्तर्गत हैं और दूसरे जब तक सामान्य का ज्ञान न हो जाय, तब तक विशेष का ज्ञान होना कठिन हैं तथा कालान्तरमें सब जलोदर हो जाते हैं, जैसा कि अष्टाङ्गहृदयमें वाग्भटाचार्य वर्णन करते हैं।

'उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः।
पाकाद्द्रवा द्रवी कुर्युः सन्धिस्रोतो मुखान्यपि ॥
स्वेदश्च बाह्य स्रोतः सु विहतस्तिर्यगास्थितः
तदेवोदक माध्माप्य पिच्छां कुर्यात्तदा भवेत् ॥'

इस प्रकार सामान्य हेतु और लक्षणों पर विचार करने के पश्चात् अब विशेष हेतु और लक्षणों पर विचार करते है, तो हारीत संहितामें जलोदरके लक्षण इस प्रकार मिलते हैं यथा—

'उदरं सजलं यस्य स दोषं वलि वर्जितम्।
श्वयथु पादयोः शोफः स्याज्जलोदर लक्षणम् ॥'

यहां पर श्वयथु कहने से ही पैरों पर शोथ होता है, इसके कहनेकी क्या आवश्यकता थी। पर इससे यहां पर यह समझना चाहिये कि यद्यपि सम्पूर्ण शरीरमें शोथ होता है, किन्तु पैरों पर विशेष रूपसे होता है।

इसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सक आन्त्रिक परिविस्तृत कला में जल भर जाने को ही Dropsy (जलोदर) कहते हैं। तथा सम्पूर्ण शरीर पर शोथ होकर जो जल भर जाता है, उस को अंग्रजी में Anasarca कहते हैं।

जलोदर के हेतु हारीत संहिताकार इस प्रकार वर्णन करते हैं। यथा—

"विषमाशनोपवेशात्पीततोयादथापिवा।
श्रमाध्व श्वास निष्क्रान्ते अति व्यायामितेऽपिया ॥
पीतं तुदर मेवं च तस्माज्जातं जलोदरम् ॥

तथा सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

यः स्नेह पीतोष्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोष्यथवा निरूढः ।

ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तो उसके जलोदर होजाता हैं । यह जलोदर के बहिः रंग हेतु है ।

अर्वाचीन मतवाले इसके दो प्रकार के हेतु मानते हैं, एक Local causes और दूसरे General causes.

Local causes:—परिविस्तृत कला का जीर्ण प्रदाह (शोथ) चाहे वह शोथ क्षय, गुल्म तथा साधारण कारणों से हो, इस प्रकार शोथ होकर उदरमें जल भर जाता है । यकृत या संयुक्त शिराकी रुकावट के कारण भी उदरमें जल भर जाया करता है ।

यकृत या संयुक्त शिराकी रुकावट के कारण—यकृत के संकोच, हृदय की कार्य शिथिलता तथा यकृतमें विशेष रक्त भर जाने से यकृतकी संयुक्त शिरा रुक जाती है । आमाशय तथा यकृत परिविस्तृत कलाकी शिराके दबाव के होने पर, संयुक्त शिरामें छिछड़ा जम जाने पर, डिम्बग्रन्थि उभार, उदर गुल्म तथा यकृत वृद्धिके कारण संयुक्त शिरामें रुकावट होकर जलोदर हो जाता है ।

General causes:—उदरमें जल भरना सर्वाङ्ग शरीर के शोथका एक भाग है जो कि फुफ्फुस और हृदय आदि रोगों में होता है । कभी कभी रक्तमें जलीय भाग के बढ़ जाने परभी जलोदर हो जाया करता है ।

Physical Signs:—इसमें उदर आगेको बढ़ा हुआ तथा पार्श्वमें चपटा रहता है । उदरक कला खिंची हुई रहती है । उदर पर गर्भिणीके सदृश श्वेत धाराएं दिखाई देती हैं और नाभि खात उभरा हुआ दिखाई देता है ऊपरितन शिराएं फूली हुई होती हैं और स्तन शिराओंसे सम्बन्ध रखती हैं ।

उदरमें जल परीक्षा—उदरमें जलकी परीक्षा तीन प्रकार से करते हैं १ Palpation २ Flactuation ३ Parcussion.

१ उदर के स्पर्शमात्र से जल मालूम होजाय, उसको P-alpation कहते हैं । २ दूसरा प्रकार यह है कि उदरके एक तरफ हथेली रख कर दूसरी तरफ बजाने में जलकी लहर हथेलीको लगती है या अकस्मात् अंगुलियों को पेट पर रख कर दबाने से जलके होनेका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं उसको Flactuatiou कहते हैं ।

तीसरा Pnrcussion—इसमें उदरकी दीवार को बजाने से पार्श्व गम्भीर, नाभि और कौड़ी प्रदेश में खाली शब्द या शून्य शब्द सुनाई देता है । यदि रोगी को एक पार्श्व से सुलावें तो ऊपरके पार्श्व में खाली तथा नीचे के पार्श्वमें ठोस शब्द सुनाई देता है । यदि रोगी को घुटने और कोहनी के बल रक्खें तो पानी नाभि के पास इकट्ठा हो जाता है और ठोस शब्द सुनाई देता है ।

Diflerential diagnosis (भेदक निदान)—डिम्बग्रन्थि, अर्बुदमें भी उदर फूल जाया करता है, किन्तु भेद यह है कि वह एक पार्श्विक होता है । मूत्राशयमें मूत्र भरने से उदर फूल जाया करता है, किन्तु मूत्रके निकलने पर उदर अपनी पूर्वावस्थामें हो जाता है । क्लोम गुल्म, गर्भावस्था और उदर गुल्मों में भी उदर फूल जाया करता है ।

जलका स्वरूप और संघटन—यह प्रायः स्वच्छ हल्के पीले रंग का होता है । विशेष पीलापन यकृत रोगसे होने वाले जलोदर में मिलता है । जलका गुरुत्व १०-१० से १० १५ तक होता है, इसमें श्वेतसार (Albumin) का कुछ भाग मिलता है । जब लसीका कोष में बाधा होती है तो दूधिये रंग का जल मिला करता है ।

इस प्रकार हेतु और लक्षणों पर विचार करने पश्चात् क्रिया और औषध पर विचार करते हैं तो चरक का उपदेश मिलता है कि सम्पूर्ण उदरों में विरेचन कराना चाहिये । यथा—

"दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्ग निरोधनात् ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥"

यहां पर वातोदर को छोड़कर सम्पूर्ण उदरों में तीक्ष्ण विरेचन कराना चाहिये ।

इस तरह उदर की संक्षिप्त सामान्य चिकित्सा पर विचार करने के पश्चात् अब उसके अङ्गीभूत जलोदरकी चिकित्सा पर विचार करते हैं तो चरक तथा वाग्भट का आदेश मिलता है । कि—

"अपां दोष हरण्यादौ योजयेदुकोदरे ।"

अर्थात् प्रारम्भ में जल दोष हरने वाले योगों का प्रयोग करे । जलको निकालने के गुदा, मूत्रपथ तथा स्वेदवह स्रोत यह तीन मार्ग हैं, अन्य मार्ग कोई नहीं है । यही बात पाश्चात्य चिकित्सकभी मानते हैं यानि वे भी गुदामार्ग, पसीना

और मूत्र मार्ग से जल को निकालते हैं। इसमें विरेचन के लिये तीक्ष्ण क्षारादिक का तथा पश्चात् दीपन और कफघ्न आहारों का प्रयोग करे जैसा कि चरक निर्देश करते हैं:—

"मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविध क्षारवन्ति च।
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारै रूपाचरेत्॥

जब उपर्युक्त क्रियाओं के करने परभी रोग शान्त न हो तो शस्त्र कर्म द्वारा जल निकालना चाहिये। शस्त्र चिकित्सा के विषय में सुश्रुत इस प्रकार लिखते हैं:—

"उदकोदरिणस्तु वातहर तैलाभ्यक्तस्योष्णोदक स्विन्नस्य स्थितस्यासैः सुपरिगृहीतस्याकक्षात् परिवेष्टि तस्याधो नाभेर्वामतश्चतुरंगुल मपहाय रोमराज्यात्रीहिमुखेनांगुष्ठोदर प्रमाण मवगाढं विध्येत्। तत्र त्रप्वादिना मन्यतमस्थ नाड़ीं द्विद्वारां पक्ष नाड़ी वा संध्योज्य दोषोदक मवसिञ्चेत्। न चैकस्मिन्नेव दिवसे सर्व दोषोदकमप हरेत्, सहसा ह्यपहृते तृष्णा ज्वरांगमर्दातिसार श्वास पाद दाहा उत्पद्योरन्नापूर्यते वा भूयस्तर मुदामसं जात प्राणस्य, तस्मात् तृतीय चतुर्थ पंचम षष्ठाषष्ठ दशम द्वादश षोडश रात्राणा मन्यतम मन्तरी कृत्य दोषोदक मल्पाल्प मवसिञ्चेत्, निस्तुते दोषे गाढतर माविक कौशेय चरमणामन्यतमेन परिवेष्टये दुदरं तथा नाध्मापयति वायु।

यद्यपि शस्त्र कर्म में अर्वाचीन व्यवच्छेदक अपने को प्राचीनों से बहुत अधिक चतुर समझते हैं किन्तु हमारे शास्त्रकारों ने जो पूर्ण अनुभव से निर्णय किये हैं उनका ज्ञान आधुनिक व्यवच्छेदकों को अभी तक नहीं हैं। आधुनिक व्यवच्छेदक उदरसे एकही बार में जल निकाल देते है, इसी से उदर में पुनः पुनः जल भर जाता है। यदि वे हमारे शास्त्रानुसार पानी को थोड़ा थोड़ा कई बार में निकालें तो पुनः जल भरने की सम्भावना नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त दूसरा प्रकार इस तरह है कि रोगी को क्लोरोफार्म सुंघाकर नाभि के ऊपर मध्य रेखा में अनुमान ५ या ६ इंच लम्बा उदर को खोलकर परिविस्तृत कला का आमाशय यकृत कला धारक कलासे सम्बन्ध जोड़ देना चाहिये।

इसके पश्चात् वाग्भटोक्त चर्यानुसार रहे। अगर इसके अनुसार नहीं रहेगा तो उदर में पुनः पानी भर जायगा।

स्यात्क्षीर वृत्तिषण्मासां स्त्रीन्येयां पयसा पिवेत्।
त्रीं चान्यान्ध्यसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा॥
अल्पशः स्नेह लवणं जीर्णं श्यामाक कोद्रवम्।
प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत्तज्जलोदरम्"॥

इस तरह एक वर्ष तक इस चर्यानुसार रहे। अगर इस तरह रहने परभी उदर में फिर पानी भरने लग जाय तो दाह कर्म करना चाहिये जैसा कि हारीत संहिता में जलोदर के प्रकरण में वर्णित है—"यदा न धरते तच्च तदा दाह प्रशस्यते"। यह बात भेल संहिता में भी मिलती है। इस तरह कर्म करने पर पुनः जल नहीं भरता है। दाह कर्म का आधुनिक चिकित्सकों को ज्ञान तक नहीं है।

जलोदर की चिकित्सा करते समय रेचक औषधियों का प्रयोग अधिक करना चाहिये। जब रेचक औषधि का प्रयोग किया जाय तो उसके पूर्व रोगी के बल का अनुमान लगाकर पश्चात् रेचक औषधि का प्रयोग करे। विरेचन देने से उदर में इकट्ठा हुआ जल गुदमार्ग से निकल जाता है। इसके साथ ही साथ पसीना व पेशाब को अधिक लाने वाली औषध बीमार को देनी चाहिये। मतलब यह है कि जो पानी उदर तथा शरीर के अन्य भागों में है, उसको शरीर से बाहर निकालने के लिये गुदमार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। जल को पेशाब गुदा और पसीने के रास्ते निकालते समय यह भी ध्यान रहे कि यदि हृदय कमजोर है तो जल निकालने वाली औषधियों के साथ हृदय को बलवान् बनाने वाली औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिये यथा हृदयेश्वर, पार्थाद्यरिष्ट, मौक्तिक आदि।

अगर शरीर पर शोथ अधिक हो तो (Steambath) (बफारा) देना चाहिये। इससे पसीना आकर शरीर हल्का हो जाता है।

बफारा देने की विधि—बीमारको एक बेतदार कुर्सी या मूढे पर बिठावें; नीचे उबलता हुआ पानी थोड़ी अग्निपर या Stove पर रख कर शरीर पर कम्बल ढांप दें। वाष्प जो पानी से निकले, वह कम्बल से बाहर नहीं जाने पावे; शरीर पर ही लगे। रोगी को २० मिनट से अधिक बफारा नहीं देना चाहिये।

सीरम चिकित्सा—इसमें कभी कभी सीरम चिकित्सा भी लाभप्रद हो जाती है। इसमें जलोदर का जल रोगी के त्वचामें डालने से वा कभी मुख द्वारा देने से भी पुनः जल नहीं भरता है।

इस प्रकार कहने के पश्चात् प्रसंगवश ऐसी बातें लिखते

हैं जो जलोदर में ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण उदरों में लाभदायक हैं। प्रायः सम्पूर्ण उदर तीनों दोषों के कुपित होने पर होते हैं, इसलिये सम्पूर्ण उदरों में तीनों दोषों को शमन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। यथा चरके—

"सर्वमेवोदरं प्रायो दोष संघातजं मतम्।
तस्मात्त्रिदोष शमनीक्रियां सर्वेषु कारयेत्॥

इसमें उदर दोषों से पूर्ण तथा अग्निमन्द रहती है इसलिये लघु और दीपन अहारोंका प्रयोग करे जो हल्के और शक्ति उत्पन्न करने वाले हों। उदाहरणार्थ यहां पर एक यवागू उद्धृत करते हैं यथा चरके—

"सपञ्चमूला न्यल्याम्ल पटुस्नेह कटूनि च।
भवितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां च तण्डुलैः॥
यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्तरम्।"

तथा मूत्रको अधिक लाने के लिये और दोषों को अपने अपने स्थानको ले जानेके लिये इक्षुरस पिलावे, यथा चरके—

'पिबेदिक्षुरसं चानु जठराणां निवृत्तये।
स्वं स्वं स्थानं व्रजन्त्येषां वात पित्तकफास्तथा॥'

इस प्रकार सम्पूर्ण उदरोंके लिये पथ्य का निर्देश करने के पश्चात् अपथ्य का निर्देश करते हैं। सम्पूर्ण उदर रोगोंमें मादक द्रव्योंका यथा सुरा, विजया आदिका परित्याग करना आवश्यक है। तीक्ष्ण मसाले भी इसमें अपथ्य जनक है। इसके अतिरिक्त चरक भी अपथ्य का निर्देश करते हैं:—

'अत्यर्थोष्णाम्ल लवणं रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु।
गुडं तैलकृतं शाकं वारिपानावगाहयोः॥
आयासाध्व दिवा स्वप्न यानानि च परित्यजेत्॥'

यहां पर जब जल पानादि के लिये निषेध कर दिया तो रोगी को क्या पिलावें? इसके लिये बतलाते हैं कि सम्पूर्ण उदरोंमें न तो गाढ़ी और न पतली ऐसी तक्रका विशेष करके जलोदर में व्योष के साथ प्रयोग करे। इससे गौरव, अरोचक, आनाह, मन्दाग्नि, अतिसार, अर्श और ग्रहणी आदि रोगोंका नाश हो जाता है और वात कफके रोगीके लिये तो अमृत तुल्य है। यदि उदर रोगीके शोथ, पिपासा, आनाह मूर्च्छादि हों तो उष्ट्रीका दुग्ध पिलाना चाहिये।

इस प्रकार करने पर भी जलोदर शान्त न हो तो रोगीको पान भोजनके साथ विष का प्रयोग कराना चाहिये इसमे दंष्ट्रा विष ही लाभप्रद है, क्योंकि कहा भी है—

श्वरोगे दूष्योदरे बद्धगुदे क्षतान्त्रजे जलोदरे दंष्ट्राविषस्यैव प्रयोगो वै विशोधने।

इस प्रकार जब विष प्रयोग करने पर दोष निकल जावे तो शीतल जलसे परिसेक करावे और भोजन के लिए यथा बल दुग्ध या यवागू पिलावे। यवागू निसोत और मण्डूकपर्णी के जलसे निर्माण की हुई होनी चाहिए। शाकोंके लिए यव शाक (बथुआ) और काल शाक (लालरा) देवें। इनके शाक इन्हींके स्वरसोंमें पकाए हुए होने चाहियें और यदि प्यास लगे तो इन्हीं शाकोंका स्वरस पीनेको देना चाहिये। इस प्रकार एक मास तक क्रम जारी रक्खो। ऐसा करने के पश्चात् यदि रोगी दुर्बल प्रतीत होता हो तो उष्ट्रीका दुग्ध पिलाना चाहिये।

इस प्रकार उदर की चिकित्सा कहनेके पश्चात् अनुपानके लिए दुग्धकी प्रधानता बतलाते हैं। दुग्ध रोगीके लिए ही क्या किन्तु स्वस्थावस्था में भी लाभप्रद और अमृत तुल्य है, यथा चरके—

'प्रयोगाणां च सर्वेषा मनुक्षीरं प्रयोजयेत्।
दोषानुबन्ध रक्षार्थं बलस्थैर्यार्थ मेव च॥
प्रयोगापचिताङ्गानां हितं ह्युदरिणां पयः।
सर्वधातुक्षयार्तानां देवाना ममृतं यथा॥

इस प्रकार पहले चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति महत्व और चिकित्सा की परिभाषा आदि का कथन करने के पश्चात् उदर रोगके सामान्य हेतु, लक्षण और चिकित्सा का संक्षेपमें दिग्दर्शन कराते हुए जलोदर के विस्तृत हेतु, लक्षण और चिकित्सा का प्राचीन और अर्वाचीन मतसे वर्णन किया गया है। इसमें हेतु और लक्षण कहनेका यही तात्पर्य है कि वे भी व्याधि प्रतिकार रूप चिकित्साके अन्तर्गत हैं।

घरेलू डाक्टर

आमाशय (stomach)—पेटके भीतर कई अवयव होते हैं जिनमें आमाशय भी एक है। हम जो भोजन खाते हैं वह अन्न प्रणाली द्वारा मुखसे आमाशयमें जाता है। जब हम कहते हैं कि अन्न पेटमें जाता है या खूब पेट भर खाया तब हमारा अभिप्राय वस्तुतः आमाशय रहता है। परन्तु जब हम कहते हैं कि साँडके सींग मारने से पेट फट गया और आँतें बाहर निकल आईं, तब हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं होता कि आमाशय फट गया। आमाशय, अँतड़ी, गुर्दा, यकृत् आदि कई अवयव सब पेटके भीतर रहते हैं और सब एक दूसरेसे भिन्न होते हैं। आमाशयको पाकस्थली भी कहते हैं।

यह थैली उदरके बायें भाग में वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के नीचे रहती है; पेशीके ऊपर वक्ष में बायाँ फुफुस और हृदय रहते हैं। आमाशय का बायाँ भाग दाहिनेकी अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। उसका आकार चमड़े की मशक से बहुत कुछ मिलता है; उसकी लम्बाई १२-१३ इंच और चौड़ाई चार इंचके लगभग होती है। आमाशय में दो छिद्र या द्वार भी होते हैं। एक छिद्र बाईं ओर हृदयके निकट होता है। अन्नप्रणाली से भोजन इसी छिद्र या द्वारमें होकर उसके भीतर आता है। यह हृदयद्वार कहलाता है। दूसरा द्वार दाहिनी ओर होता है; इसमें से होकर भोजन अन्त्रमें पहुँचता है। यह पक्वाशयिक द्वार है। आमाशय की समाई १॥ सेर के लगभग होती है।

आमाशयकी दीवार अनैच्छिक मांस और सौत्रिक तंतु की होती है। मांसकी कई तहें होती हैं। भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक-कला बिछी रहती है जिसमें अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्म नलाकार ग्रन्थियाँ होती हैं। मांसके बाहर अर्थात आमाशय के बाहरी पृष्ठ पर एक पतली झिल्ली चढ़ी रहती है—यह उदरक-कला का भाग है।

पक्वाशयिक द्वार पर मांसकी मोटी तह होती है। इस मांस के संकोच से यह द्वार बंद रहता है; जब भोजन आमाशय से अंत्र में जाने वाला होता है तब मांस के प्रसार से यह द्वार खुल जाता है।

आमाशयकी श्लैष्मिक कला—श्लैष्मिक कलामें लम्बाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं, जैसा साथके चित्र से विदित है। जब आमाशय खाली होता है तब कम रक्त रहने के कारण इस कलाका रंग हलका पांडुर रहता है। जब उसमें भोजन आता है तब अधिक रक्तके कारण रंग लाल-सा हो जाता है और रस बनने लगता है।
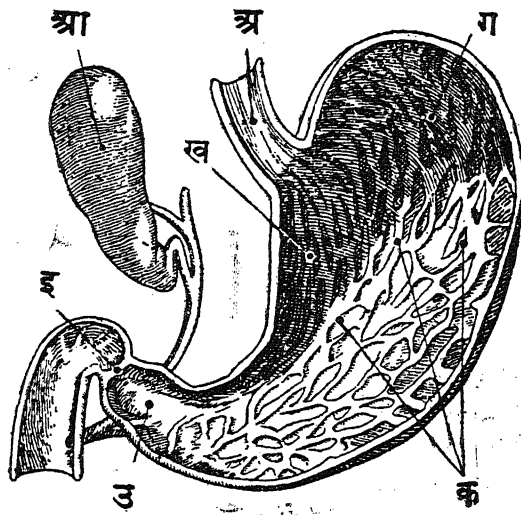
आमाशय

क, ख—आमाशय की श्लैष्मिक कलाकी सलवटें,
ग—आमाशय का ऊर्ध्वांश,
अ—अन्नप्रणाली का अन्तिम भाग; हृदय के रहने के कारण इसको हृदयद्वार भी कहते हैं।
आ—पित्ताशय,
इ—पक्वाशयिक द्वार,
उ—आमाशय का दक्षिणांश, भोजन इसी भाग में मथा जाता है।

आमाशयिक रस—आमाशयकी ग्रन्थियों में जो रस बनता है वह आमाशयिक रस कहलाता है। इस रसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है। जिस अम्लके कारण इसकी प्रतिक्रिया

अम्ल होती है उसका नाम हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड या नमक का तेजाब है। इस अम्लके अतिरिक्त इस रसमें पेप्सिन (pepsin) और रेनेट (renet) नामक दो विशेष पदार्थ भी होते हैं। रसमें कई प्रकार के लवण भी रहते हैं। आमाशयिक रस एक पतला और कुछ-कुछ विवर्ण द्रव होता है। उस में विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है।

लाला (लार) मिश्रित गीला भोजन आमाशय के बायें चौड़े भाग में आकर इकठ्ठा हुआ करता है। भोजन पहुँचने पर आमाशयिक रस बनना आरम्भ होता है (वास्तव में रस बनने की तैयारी तो स्वादिष्ट और रोचक भोजनको देखते ही होने लगती है); रस तैयार होने में कोई आध घंटा लगता है। इसी रससे भोजन पचता है।

चौड़े भागसे भोजन थोड़ा-थोड़ा क्रमशः बायें तंग भाग में पहुँचता है।

आमाशयकी गतियाँ—जहाँ तक गतियों का सम्बन्ध है, हम आमाशयके पाँच भाग मान सकते हैं:—

१—वह भाग जहाँ अन्नप्रणाली का अंत होता है; यह हृदय द्वार है, जहाँ मांस अधिक होता है। मांसके संकोचसे यह द्वार बंद रहता है, उसके प्रसार से यह द्वार खुल जाता है। जब आमाशय खाली रहता है तब यह द्वार बहुधा खुला रहता है परन्तु जब आमाशय में भोजन रहता है तब यह द्वार बन्द रहता है।

२—बाईं ओर का चौड़ा और स्थूल भाग, इसको ऊर्ध्वांश कहते हैं।

३—बीच का भाग; यह मध्यांश कहलाता है।

४—दाहिनी ओर का तंग भाग; यह दक्षिणांश है।

५—पक्वाशयिक द्वार। यह द्वार संकोचिनी पेशीके संकोच से सदा बंद रहता है; जब भोजन आमाशय से अंत्रमें जाने योग्य बनता है तब ही यह द्वार खुलता है।

अम्ल रस अधिकतर मध्यांश में बनता है, ऊर्ध्वांश और दक्षिणांश में अम्ल बनाने वाली ग्रन्थियाँ कम होती हैं। दक्षिणांशमें पक्वाशयिक द्वारके पास इस प्रकारकी ग्रन्थियाँ होती ही नहीं।

भोजन आकर ऊर्ध्वांश और मध्यांश में इकठ्ठा हो जाता है। आमाशय के बायें भागमें बहुत कम गतियाँ होती हैं, यह भाग भण्डार का काम देता है, जिसमें भोजन एकत्रित रहता है। मध्यांश में धीरे-धीरे अम्लरस बनने लगता है; आमाशयिक रस सब भोजन से एकदम नहीं मिल जाता; इस कारण भोजनके उस भाग में (विशेष कर उस में जो आमाशयके बीचमें दीवारों से बचा हुआ है) जो अभी अम्लरस से नहीं मिला लाला अपनी पाचक क्रिया करती रहती है।

अब मध्यांश में गतियाँ होने लगती हैं, मांस सिकुड़ता है और फैलता है, जिसके कारण आमाशय की दीवारें कभी मोटी हो जाती हैं और कभी पतली। मांसके संकोचसे इस भाग की समाई घट जाती है और भोजन पर दबाव पड़ता है, थोड़ा-सा भोजन दक्षिणांश में चला जाता है। दक्षिणांशमें मांस अधिक होता है, इस कारण यहाँ गतियाँ भी खूब होती हैं, गतियों की लहर उठती हैं जो मध्यांशसे पक्वाशयिकद्वार की ओर जाती हैं। मांसके संकोच से दक्षिणांश में जो भोजन है, वह खूब मथ जाता है और आमाशयिक रससे मिल कर पतला हो जाता है। जब तक भोजन पतला नहीं बन जाता और उसके मोटे टुकड़े खूब पिस नहीं जाते, तब तक दक्षिणांश में गतियाँ होती रहती हैं और पक्वाशयिकद्वार भी बन्द रहता है। मध्यांश से पक्वाशयिकद्वार तक पहुँचने में एक लहर को २० सेकंड लगते हैं। एक लहरके बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, इस प्रकार गतियाँ होती रहती हैं।

जब दक्षिणांश में आया हुआ भोजन अम्लरस से खूब मिल कर पतला हो जाता है तब पक्वाशयिकद्वार मांसके प्रसारसे खुल जाता है और दक्षिणांश इस पतले भोजनको बड़े वेग से पक्वाशय में ढकेलता है। अब मध्यांश से कुछ और भोजन आ जाता है। यह भी उसी प्रकार मथा जाता है और फिर पक्वाशय में ढकेल दिया जाता है। इस तरह थोड़ा थोड़ा करके सब भोजन पक्वाशय में पहुँच जाता है।

सामान्य भोजन आमाशय में लगभग ४॥ घंटे रहता है। जो भोजन दाँतों-द्वारा भली प्रकार नहीं चबाया गया, वह आमाशय में देर तक ठहरता है। कारण यह है कि जहाँ तक हो सकता है आमाशय किसी कठोर वस्तु को अंत्र में नहीं जाने देता। दाँतों का काम आमाशय जैसे कोमल अंग से कभी न लेना चाहिये; भोजन को खूब चबा कर खाना चाहिए। उपर्युक्त मंथन-क्रिया द्वारा भोजन से अम्ल प्रतिक्रिया वाले बने हुए द्रव को आहार रस कहते हैं। अंत्र में

पहुँच कर आहार रस की प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है।

आमाशयिक रस और दुग्ध—दुग्धमें प्रोटीनें होती हैं। ये प्रोटीनें घुली रहती हैं।

जब दुग्ध आमाशय में पहुँचता है तब वहाँ अम्ल मिलता है, आमाशयिक रस में दुग्ध जमाने वाला 'रेनेट' नामक पदार्थ भी होता है। रेनेट में यह गुण है कि वह प्रोटीन को अनघुल बना कर दुग्ध से दही बना दे; अम्लकी सहायता से यह क्रिया और भी जल्दी होती है। आमाशय में जो दही बनता है उसका थक्का इतना बड़ा और दृढ़ नहीं होता है, जैसा शरीर से बाहर जमे हुए दही का। इसके थक्के छोटे-छोटे बनते हैं। जितने छोटे थक्के होते हैं उतनी ही अच्छी तरह से आमाशयिक रस का पाचक असर उन पर होता है।

दुग्ध का आमाशय में पहुँच कर जम जाना एक स्वाभाविक क्रिया है; अस्वाभाविक नहीं, जैसा कि कुछ लोगोंका मिथ्या विचार है।

जमने के पश्चात दही उसी प्रकार पचता है जैसे कि और भोजन।

आमाशयिक रस का भोजन की प्रोटीनों पर असर—भोजन की प्रोटीनें (चाहे वे मांस से प्राप्त हों और चाहे अन्नसे) ऐसी होती हैं कि जब तक उनमें एक विशेष प्रकारका परिवर्त्तन न हो, वे अन्नमार्ग की श्लैष्मिक कला में से होकर रक्तमें नहीं पहुँच सकतीं। जब तक भोजन की वस्तुएँ हमारे शरीरके भीतर रक्त में न पहुँच जावें, उस वक्त तक उनका खाना या न खाना बराबर है।

आमाशयिक रस में 'पेप्सिन' नामक एक पदार्थ होता है। यह पदार्थ प्रोटीनविश्लेषक है, अर्थात् वह प्रोटीनोंका विश्लेषण करके उनसे और नये पदार्थ बना सकता है। पेप्सिनके काम करने के लिए अम्ल का होना जरूरी है। बिना इस हाइड्रोक्लोरिक-अम्ल के पेप्सिन अपना काम नहीं कर सकता। अम्ल मिश्रित पेप्सिन की क्रिया से जो प्रोटीनों से नये पदार्थ बनते हैं वे अधिकतर घुलनशील होते हैं और उनमें से कुछ तो ऐसे होते हैं कि श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में पहुँच सकते हैं। परन्तु सामान्यतः सब प्रोटीनों का पूर्ण विश्लेषण आमाशय में नहीं होता। इसलिए यह अधपची प्रोटीनें अंत्रमें पहुँचती हैं और वहाँ जाकर और पाचक रसोंकी सहायता से जिनमें पेप्सिन से अधिक प्रबल प्रोटीन विश्लेषक पदार्थ होता है पूरे तौर से पचती हैं। तत्पश्चात् उनसे बने हुए नये पदार्थ रक्तमें पहुँचते हैं।

आमाशयिक रस का श्वेतसार पर असर—आमाशयिक रसका श्वेतसार पर कोई असर नहीं होता, जहाँ तक इस रस का सम्बन्ध है वह ज्यों का त्यों रहता है। हम पीछे बतला चुके हैं कि जब तक यह रस भोजन से अच्छी तरह नहीं मिलता तब तक लाला आमाशय में भी अपना असर श्वेतसार पर करती रहती है।

आमाशयिक अम्ल के प्रभाव से इक्षोज (गन्ने की शकर) से द्राक्षौज (अंगूरी शकर) वा फलोज बन जाती हैं।

आमाशयिक रसका वसा* और तेल पर असर—जमी हुई वसा (चर्बी, घृत) आमाशय में पहुँच कर शरीर की गरमी से पिघल कर द्रवरूपमें आ जाती है। वसा (चर्बी, घृत) सेलोंके भीतर रहती है। अम्ल मिश्रित पेप्सिन की क्रिया से सेल का प्रोटीन भाग घुल जाता है और वसा के बिंदु बाहर निकल आते हैं। आमाशयिक रस में एक वसा-विश्लेषक चीज होती है परंतु वसा का विश्लेषण अधिकतर क्षुद्रांत्रमें ही होता है। (त्रिलोकीनाथ वर्मा कृत हमारे शरीर की रचना से संक्षिप्त।)

आमाशयके रोग

आमाशयके रोग—आमाशयमें कई रोग हो सकते हैं, अजीर्ण, आमाशय-कला-प्रदाह, आमाशय-व्रण और आमाशयका केन्सर। ये रोग यथा-स्थान वर्णन किये गए हैं। कभी-कभी आमाशयिक रस कम बनता है और कभी-कभी अधिक। इन दोनों रोगोंका वर्णन अजीर्णके सम्बन्धमें किया जा चुका है। पक्वाशयिक द्वारके सङ्कुचित होनेसे या आमाशयकी दीवारके कमजोर होनेके कारण अफरा लग जाता है, अर्थात् आमाशय भीतरसे भर जाता है और फूल आता है।

* वसा—यह शब्द सामान्यतः प्राणियोंके शरीर में पाई जाने वाली चर्बी के लिए लाया जाता है, घृत और वनस्पतियों से निकलने वाले तेल के लिए नहीं परन्तु रसायनानुसार चर्बी, घृत और तैलोंमें अधिक भेद नहीं है। इस कारण हमने इस पुस्तक में वसा शब्द इन सब चीजोंके लिए लिखा है। उस का अर्थ वही समझना चाहिए जो कि अंगरेजी भाषा के फैट्स (fats) का होता है।

पक्काशयिक द्वार पर हुए घावके अच्छे होने पर क्षत-चिह्नोंके कारण या कैन्सरके कारण यह द्वार सङ्कुचित हो जा सकता है। बच्चोंमें कभी-कभी तो जन्मसेही पक्काशयिक द्वार सङ्कुचित रहता है जिससे पीड़ा और वमन होता है और बच्चा धीरे-धीरे घुल जाता है। परन्तु येही सब लक्षण आँतोंमें कहीं रुकावट होनेके कारण भी उत्पन्न हो सकते हैं। जब पेट उपर्युक्त रीतिसे फूला रहता है तो उसमें बहुत-सा तरल पदार्थ रहता है जो कुछ समय में फफदने लगता है। इससे रह-रहकर वमन होता है जिसकी गंध खट्टी होती है। यह शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) से ही ठीक हो सकता है। जब तक ऑपरेशन न कराया जा सके तब तक भोजन कई बारमें थोड़ा-थोड़ा करके खाना चाहिए। अधिकतर मांस ही खाया जाय तो अधिक आराम मिलता है। कभी-कभी आमाशय नीचे लटक आता है; इसे अंत्राणि-च्युति कहते हैं। (उसे देखो)।

कभी-कभी आमाशय भीतर ही भीतर फट जाता है, और ऐसा तब होता है जब आमाशय भरा रहता है और ऊपरसे गहरी चोट लगती है। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। साधारणतः आमाशयव्रणके कारण ही ऐसा होता है (नीचे देखो)। यदि आमाशय फट गया हो तो तुरन्त शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) करनेकी आवश्यकता पड़ेगी।

आमाशय-कला-प्रदाह (gastritis)—आमाशय की भीतरी सतह को आमाशयकला कहते हैं। जब इसमें प्रदाह (सूजन) हो जाती है तो रोगको आमाशयकला-प्रदाह कहते हैं। इस रोगकी दो अवस्थाएँ होती हैं, एक तीव्र दूसरी जीर्ण। तीव्र प्रदाह साधारणतः कोई अपच भोजन खानेसे या सड़ी-गली चीज खानेसे या अधिक शराब पीनेसे होता है। इसके अतिरिक्त यह इन्फ्लुएञ्जा, ब्रोनकाइटिस, न्यूमोनिया या किसी संक्रामक रोगके ज्वरमें भी हो जाता है। बच्चोंमें तीव्र आमाशय कला-प्रदाह अक्सर अतिसारमें भी हो जाता है।

लक्षण (तीव्र आमाशय कला-प्रदाहके)—हलके आक्रमणके प्रारम्भमें पेट भारी मालूम होता है और जीभ पर गंदगीकी गाढ़ी तह जम जाती है। मिचली आती है और वमन भी होता है। सम्भव है ज्वर न चढ़े और २४ से लेकर ४८ घण्टेमें आपसे आप अच्छा हो जाय। जब आक्रमण अधिक प्रचण्ड होता है तो ऊपरके लक्षण अधिक प्रचण्ड रूपमें दिखलाई पड़ते हैं और १०३ डिग्री तक ज्वर भी आ सकता है। वमनमें बहुत-सा लसदार पदार्थ (आँव जैसा) और आमाशयिक रस और कभी-कभी रक्त भी निकलता है। रोगी को मूर्च्छा आ सकती है या चक्कर आ सकते हैं जो चार-पाँच दिन तक रह सकते हैं। साधारणतः रोग अपने आपसे अच्छा हो जाता है। परन्तु इस बातका डर रहता है कि रोग जीर्ण-आमाशय-कला-प्रदाहमें न बदल जाय। कभी कभी आमाशयके भीतर घाव भी हो जाता है।

चिकित्सा (तीव्र आमाशय-कला-प्रदाह की)—रोगीको चारपाई पर लिटाये रखना चाहिए और ऋतुके अनुसार उसे गरम रखना चाहिए। आवश्यकता हो तो उसे गरम पानीसे भरी रबड़की बोतलोंसे सेंकना चाहिये। यह आवश्यक है कि पेटमें से वह वस्तु निकल जाय जिसके कारण प्रदाह उत्पन्न हुआ है और इसके लिये वमन कराना चाहिए। नमकीन कुनकुना पानी पिलाकर वमन कराया जा सकता है। पहले कुनकुना पानी पिलाना चाहिए और यदि अपने-आप वमन न हो तो कोई वमनकारी औषध देना चाहिए या उसके बदले गलेको अँगुलीसे सहलाना चाहिए या औषध और इस उपाय दोनोंका प्रयोग किया जा सकता है। एक खुराक रेंड़ीका तेल या दो ग्रेन कैलोमल (calomel) देनेसे हलके जुलाब का काम होगा जिससे पेट साफ हो जायगा। बच्चोंको कैलोमल नहीं देना चाहिए क्योंकि यह बहुत तीव्र रेचक है। उनके लिये रेंड़ीका तेल ही काफी होगा। खानेके लिये कुछ भी नहीं देना चाहिये, परन्तु जब वमन बंद हो जाय तो साधारण पानी या सोडावाटर पीने को देना चाहिये। यदि पेट साफ हो जानेके पश्चात् भी वमन आता रहे तो गरम पानी चायकी तरह जरा-जरा पीनेसे वमन रुक जायगा। पेटकी पीड़ाको दूर करनेके लिये पेट की सेंक करनी चाहिये। अदरकका काढ़ा थोड़ा-थोड़ा पीनेसे भी लाभ होता है। यदि वमन और दस्त हो जानेके बाद रोगीको आराम न मिले तो डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिये।

जीर्ण आमाशय-कला-प्रदाहके लिये देखो "अजीर्ण"

आमाशयका कैन्सर (cancer of the stomach)—आमाशय का कैन्सर अक्सर चालीस वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों को होता है। कुछ मनुष्यों का ख्याल है कि यह आमाशय-व्रण के कारण होता है

किन्तु यह बात ठीक नहीं है। लक्षण अवश्य आमाशय व्रणके समान होते हैं किन्तु दोनों के भेद को केवल विशेषज्ञ ही बता सकता है और सो भी बेरियम (barium) मिश्रित भोजन खिलाकर और एक्सरे (X-rays) से फोटो लेकर। इसके लक्षण घातक रक्ताल्पतासे मिलते-जुलते हैं (उसे देखो)। इसलिये रक्त की जाँच की भी आवश्यकता पड़ेगी। यदि किसी अधेड़ व्यक्तिको, विशेषकर जब उसकी आयु पचास वर्षसे अधिक हो, गई हो एकाएक स्थायी अजीर्ण के लक्षण उपस्थित हो आयें और उसे पहले अजीर्ण न रहता रहा हो तो उसे अवश्य अच्छे डाक्टरसे जाँच करानी चाहिये कि कहीं आमाशयमें कैंसर तो नहीं हो गया है। चिकित्सा यही है कि पेट चीरकर कैन्सर (जो अर्बुदकी तरह होता है, देखो अर्बुद) निकाल दिया जाय। यदि चिकित्सा तुरन्त न कराई जाय तो रोगीके बचनेकी विशेष आशा नहीं रहती।

आमाशय व्रण (gastric ulcer)—आमाशय के भीतर हुए घावको आमाशय व्रण कहते हैं। यह या तो तीव्र या जीर्ण हो सकता है। यह रोग किसी भी आयु में उत्पन्न हो सकता है और स्त्री और पुरुष दोनोंको होता है। परन्तु तीव्र-आमाशय व्रण युवा स्त्रियोंको कुछ अधिक होता है। जीर्ण आमाशय व्रण मर्दोंको कुछ अधिक होता है, परन्तु बूढ़ी स्त्रियोंको भी काफी संख्यामें होता है। अभी तक ठीक पता नहीं कि ये घाव (व्रण) क्यों उत्पन्न होते हैं, परन्तु ये घाव अक्सर आमाशयके उस भागमें होते हैं जहाँ आमाशयिक रस सदा रहता है। इसलिये सम्भव है कि आमाशयिक रस और आमाशयिक व्रण में कोई सम्बन्ध हो, विशेषकर इसलिये कि उन लोगोंको आमाशयिक व्रण अधिक होता है जिनके आमाशयमें आमाशयिक रस अधिक बनता है। यह रोग विकृत-स्नायु-मंडल वाले (nervous) युवा व्यक्तियों को अधिक होता है। किसी युवा लड़कीको जो देखने में रक्ताल्पता ग्रसित जान पड़ती है एकाएक आमाशयसे रक्त आने लगता है और इसके पहले कोई भी लक्षण नहीं रहता जिससे उसे पहले कोई पूर्व सूचना हो।

लक्षण—युवा व्यक्तियोंमें पहला लक्षण यही होता है कि वमन होता है जिसमें रक्त रहता है। यदि कभी ऐसा हो तो रोगीको चौकन्ना होजाना चाहिये। परन्तु विशेष डरनेकी बात नहीं है क्योंकि युवा व्यक्तियों में यह रोग आसानी से अच्छा हो जाता है। यदि यही लक्षण किसी अधेड़ व्यक्ति या बूढ़े व्यक्तिको हो तो समझना चाहिये कि मामला बहुत टेढ़ा है। सम्भव है कि इसके पहले अजीर्ण रहा हो या भोजनके बाद पेटमें दर्द होता रहा हो या भूख न लगती रही हो। जैसे ऊपर कहा गया है अधिकांश व्यक्तियोंमें रक्त वमनके साथ निकलता है परन्तु सम्भव है रक्त मल (पाखाना) के साथ निकले और इतना काला होगया हो कि पहचान न पड़े। यदि रोगके बारेमें कोई दुविधा हो तो बेरियम मिश्रित भोजन खिलाकर एक्सरे फोटोग्राफ लेने से रोगका होना या न होना निश्चित् किया जा सकता है।

चिकित्सा—चिकित्सा की पहली आवश्यकता यह है कि शरीर और आमाशय दोनों को विश्राम मिले। शरीर को विश्राम इसलिये मिलना चाहिये कि वह अपनी समूची शक्ति घावको अच्छा करने में लगा सके और आमाशय को इसलिये कि भोजन पहुँचकर उसे और कुपित न कर दे। इस विश्रामको पानेके लिये यह आवश्यक है कि रोगी तीन सप्ताह से लेकर ६ सप्ताह तक बराबर चारपाई पर पड़ा रहे और जब चारपाई से उसे उठने दिया जाय तब वह चलना-फिरना बहुत धीरे-धीरे आरम्भ करे। भोजन तो अच्छे हो जाने पर भी महीनों तक परहेज से खाना पड़ेगा।

आमाशय व्रण में परहेज से भोजन करना ही सबसे प्रधान चिकित्सा है। दूध, नरम उबाला हुआ अण्डा और तरकारियोंका जूस खाया जा सकता है। अधिकतर दूधके ही भरोसे रहना चाहिए। मैगनीशियम ऑक्साइड (magnesium oxide) जिसे साधारणतः मैगनेसिया (magnesia) कहा जाता है इसकी औषध है। ऐट्रोपीन या बेलाडोना (atropine, belladonna) भी डाक्टर देते हैं। यदि कोई दाँत खराब हो तो उसका भी उचित उपचार कराना चाहिये। यदि नाक या गले में कोई रोग हो तो उसकी भी चिकित्सा होनी चाहिये।

आमाशयसे रक्त निकलना—जब आमाशयसे रक्त आये और मुँहके रास्ते निकले तो रोगीको तुरन्त चारपाई पर लिटा देना चाहिए। चारपाई न मिले तो जमीन परही लिटा देना चाहिये। वह हिले-डुले नहीं। डाक्टर को तुरंत

बुलाना चाहिये। वह रोगीको अफीमका इनजेकशन देकर रोगी को शांत रक्खेगा। खानेके लिये कुछ भी नहीं दिया जाता। परन्तु यदि विशेष आवश्यकता होती है तो रोगीको गुदा द्वारा भोजन पहुँचाया जाता है और तब पानी में नमक और ग्लूकोज मिलाकर इनजेकशन दिया जाता है ठण्डे पानीसे कुल्ली बराबर की जा सकती है परन्तु पानीको नहीं पीना चाहिये।

आमाहल्दी (सं० आम्रहरिद्रा)—एक प्रकारका पौधा है जिसकी जड़ रंगमें हल्दीकी तरह और गंधमें कचूरकी तरह होती है। यह बंगालके जंगलोंमें बहुत जगह आपसे आप होती हैं। आमाहल्दी चोट पर बहुत फायदा करती है।

आमिष तथा निरामिष भोजन—आमिषहारी का अर्थ है गोश्तखोर और निरामिषहारी का अर्थ है केवल शाक-तरकारी, दाल, रोटी इत्यादि का खाने वाला। कुछ कट्टर निरामिषहारी दूधको भी जानवरोंसे उत्पन्न वस्तु बताते हैं और इसका परिहार करनेके लिये कहते हैं। कुछ लोग अण्डा और दूध दोनोंको निरामिष भोजनमें ही लेते हैं। किन्तु भारतवर्षमें दूध और दूधसे उत्पन्न वस्तुओंको निरामिष भोजन ही माना जाता है। अण्डा आमिष भोजनमें गिना जाता है।

आमिष तथा निरामिष भोजन पर बहुत वाद-विवाद होता रहता है। अपने-अपने मतके प्रतिपादनके लिए कुछ भी लोगों ने बनाये है। बहुत-सी किताबें भी छपवाई हैं। निरामिष भोजन को प्रतिपादन करने में अधिकतर प्रभाव धार्मिक विचारोंका होता है। खानेके लिये जानवरोंकी हत्या करना पाप समझा जाता है इसलिये गोश्तके खानेके विरुद्ध लोग हो जाते हैं।

इसमें संदेह है कि केवल वनस्पति-संसार से प्राप्त आहार पर कोई स्वस्थ रह सकेगा। ऐसे आहार में प्रोटीनों की कमी रहती है। इस कमीको पूरा करनेके लिये निरामिष-हारियोंको, अपने भोजनमें दूध, दही, आदि की पर्याप्त मात्रा रखनी चाहिये। बच्चोंके लिये दूध सबसे अधिक लाभ-दायक है।

संसार की इतनी बड़ी जन-संख्या गोश्त पर निर्भर है और मस्तिष्क तथा शारीरिक शक्ति दोनोंमें ही वह प्रायः अच्छी है। यह बात स्वयं इस बात का प्रमाण है कि गोश्त मानव जातिके लिए हानिकारक नहीं।

परंतु यदि भोजनमें दूध, दही आदि पर्याप्त मात्रा में हों, गोश्त खानेकी आवश्यकता नहीं।

[जगदीशप्रसाद राजवंशी]

आयुर्वेद—आयुर्वेदका अर्थ पूर्वाचार्यों ने किया है। जिस विज्ञान के द्वारा आयुका और उसके हिताहित का ज्ञान हो और रोगोंका शमन किया जाय उसको आयुर्वेद कहते है। इससे यह सिद्ध होता है कि संसारकी कोई भी चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद कहलाने की अधिकारिणी है। किन्तु विशेषतया भारतीय चिकित्सा प्रणाली के अर्थमें यह शब्द रूढि-सा हो गया है। आयुर्वेदकी उत्पत्ति अथर्ववेद से मानी जाती है। आयुर्वेदके ग्रन्थों में इस विद्याका इतिहास निम्न प्रकार है। इसके प्रवर्तक ब्रह्मा थे। उनसे दक्ष प्रजापति ने यह विद्या सीखी। प्रथम वैद्य अश्विनीकुमार थे। ये इंद्र आदि देवताओंके वैद्य थे। इनसे इंद्र ने यह विद्या सीखी। आत्रेय मुनिने इन्द्र से सीखी। आत्रेय ऋषिके शिष्य अग्निवेश, भेड, जतूकर्ण, पराशर, क्षारपाणि और हारीत मुनि हुए। ब्रह्मा प्रजापति और अश्विनीकुमार ने अपने अपने नाम से संहिताएं बनाईं। दुर्भाग्य से ये संहिताएँ अप्राप्य हैं। प्रथम तंत्रकर्ता अग्निवेश हुए (अग्निवेश आदि ऋषियों के बनाये आयुर्वेद के ग्रन्थोंको तंत्र कहते हैं) भेड आदि ने भी अपने-अपने नाम से तन्त्र बनाये। अग्निवेश की बनाई पुस्तक का सुधार पातंजलि ऋषि ने किया और वह चरक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अन्य तन्त्रों में हारीत संहिता मिलती है, शेष सब शास्त्र अप्राप्य हैं।

चरक चिकित्सा का ग्रन्थ है और आज भी वैद्यों में इसका आदर है। इन्द्रसे काशीराज दिवोदास ने, जो अब धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध हैं, शस्त्रविद्या (सर्जरी) की शिक्षा पाई। इन्होंने सुश्रुत आदि शिष्यों को पढ़ाया। सुश्रुत ने अपने नाम से संहिता बनाई और वह सुश्रुत नाम से विख्यात हुई। यह ग्रन्थ आयुर्वेदीय सर्जरी में अद्वितीय है। पाश्चात्य सर्जरी भी सुश्रुत की कई बातों में ऋणी है।

सुश्रुत में २७ ग्रन्थों के नाम दिये हैं। वे सब उस समय सर्जरी के प्रसिद्ध ग्रन्थ थे, किन्तु अब वे नहीं मिलते।

इतिहासविशारदोंका मत है कि सुश्रुत और चरक के सर्वप्रथम भाषान्तर अरबी में हुए। वहाँ के विद्वानों ने इस विद्या में अपने देश काल के अनुसार बड़ी उन्नति की। उनके यहाँ जो विशेष औषधियाँ होती थीं उनकी भी जाँच की और अपने वैद्यक ग्रंथोंमें समावेश किया। किन्तु मूलतः वे आयुर्वेद के सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन न कर सके। हाँ, उन्हों ने निदान में थोड़ा-बहुत संशोधन और परिवर्तन अवश्य किया। यह भी देश-काल के भेद से ही हुआ। अरबी के ग्रन्थों और चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंके अनुवादों के अनुवाद यूनान (ग्रीस) वालों ने किया।

चिकित्साकी वह प्रथा जिसे आज यूनानी कहते हैं आयुर्वेदीय पद्धति से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। ऐसा जान पड़ता है कि यूनानियों ने अरब से प्राप्त ज्ञान में इतनी उन्नति की थी कि उनकी पद्धति का नाम यूनानी पड़ गया।

यूनान वालों ने पीछे इस विद्या में और भी उन्नति की। परंतु नवीन विद्या भारतवर्ष न पहुँच सकी। उनकी ही चिकित्सा-प्रणाली का सुधारा हुआ रूप वर्तमान ऐलोपैथी है। ऐलोपैथी के रंग-रूपको देख कर कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह यूनानी चिकित्सा-प्रणाली की पुत्री है।

आयुर्वेद के आठ अंग माने जाते हैं:—

(१) शल्य (चीर-फाड़) (२) शालाक्य (चीर-फाड़ का ही एक भेद) (३) काय-चिकित्सा (ज्वरादि की चिकित्सा) (४) भूत विद्या (उन्माद, अपस्मार आदिकी चिकित्सा (५) कौमार तंत्र (बच्चोंकी चिकित्सा (६) अगद तंत्र (विष चिकित्सा) (७) रसायन (काया कल्प) (८) वाजीकरण (कामवर्द्धनी औषधें)। चरक की चिकित्सा-प्रणाली प्रसिद्ध है। इसमें सर्जरी के अलावा शेष अंगोंका वर्णन है। काय-चिकित्सा का वह पथ प्रदर्शक और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। चरक में १२० अध्याय हैं, सुश्रुत चिकित्साके आठों अंगों से पूर्ण है, किन्तु इसकी सर्जरी ही प्रसिद्ध है।

वागभट्टने दोनों के आधार पर स्वतंत्र ग्रन्थ 'अष्टांग हृदय' बनाया जो आजभी वैद्यसमुदाय में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। प्राचीन काल में रसायन, भस्म आदिका प्रयोग नहीं होता था। नागार्जुन ने इसका समावेश किया। बाद में अनेक आचार्यों ने इस में अपूर्व अनुभव किये और ग्रन्थ बनाये। भारतीय चिकित्सा प्रणाली में पारा तथा अन्य धातुओं की भस्मों का प्रयोग बहुत होता है।

आयुर्वेद में रोगोंकी उत्पत्ति का कारण वात, पित्त, कफ आदि 'दोषों' का कुपित होना और बढ़ना माना जाता है। ये 'दोष' जब समता में रहते हैं तो शरीर निरोग रहता है, उसी को स्वास्थ्य कहते हैं। कौन दोष शरीर में कितना होना चाहिये इसके लिये कोई निश्चित परिमाण नहीं है। जितने वात, पित्त और कफके शरीरमें रहने से शरीर नीरोग और स्वस्थ रहता है और मानसिक तथा शारीरिक क्रियाएं सुचारू रूप से होती रहती हैं उसीको दोषों की समता कहते हैं। दोषों का घटाव-बढ़ाव जानने के लिये कोई यन्त्र नहीं है; यह शारीरिक और मानसिक लक्षणों द्वारा ही जाना जाता है। सामान्यतः पीड़ा वायु (वात) का लक्षण, दाह पित्त का लक्षण और भोजन से अरुचि कफका लक्षण समझा जाता है। आयुर्वेद रोगोंके सम्बन्ध में कहता है।

द्रव्ये एकगुणो नास्ति न रोगोप्येक दोषजः।

द्रव्यों में एकही गुण नहीं रहता, बहुत से गुणों का समन्वय रहता है, फिर रोगभी केवल एकही दोष से उत्पन्न नहीं होते। जिस रोग में जिस दोषकी प्रधानता रहती है उसी दोषके नामसे वह रोग पुकारा जाता है। जैसे यदि ज्वर हो और शरीरमें पीड़ा हो तो रोग वातज्वर कहलायेगा, यदि ज्वर अति तीव्र हो और प्यास बहुत लगे तो यह पित्त-ज्वर कहलायेगा, यदि ज्वर हो और भोजन से अरुचि हो और कुछ ठंढक जान पड़े तो यह कफज्वर कहलायेगा। प्रधानतया उसी दोषको शान्त करने के लिये उपचार किया जाता है जिस दोष के लक्षण अधिक मिलते हों। हां, एक प्रकार का आगन्तुक रोग भी माना जाता है। जैसे किसी ने विष खा लिया या कोई गाड़ी से दब गया। वहाँ रोगानुसार चिकित्सा होती है और यदि किसी दोष के प्रचंड लक्षण दिखाई पड़ते हैं तो उसे भी शान्त करनेका प्रयत्न किया जाता है। कठिन से कठिन रोगों का कारण दोषोंका कुपित होना माना गया है—कीटाणुवाद के लिए आयुर्वेद में स्थान नहीं है। आधुनिक वैद्य यह मानते हैं कि रोगीमें

पाये जाने वाले कीटाणु रोग उत्पन्न होने के बाद शरीरमें उत्पन्न होते हैं और दोषोंकी समता न होने के कारण वे शरीर में बढ़ते रहते हैं। पूर्ण स्वस्थ शरीर में, जिसमें रोग-नाशक शक्ति पूरी मात्रा में मौजूद हो, ये कीटाणु प्रवेश करने पर मर जाते हैं। इन कीटाणुओं से बचने के लिए हमें तरह-तरह की दवाएँ खाने और इन्जेक्शन लगवाने की आवश्यकता नहीं है। अपने शरीर को रोगनाशक शक्तिसे पूर्ण और स्वस्थ बनाना पर्याप्त है। भोजन, समुचित व्यायाम, समुचित विश्राम, ब्रह्मचर्य और दोषों की शान्ति के लिए महीने में एक-दो दिनों का उपवास आयुर्वेद की दृष्टि में स्वास्थ्य सम्पादन के मुख्य साधन हैं।

आयुर्वेद के अनुसार द्रव्यों में रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पाँच विशेषताएँ मानी गई हैं। रस छः हैं, मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। मधुर, अम्ल और लवण रस कफ को बढ़ाते और वात को शान्त करते हैं। कटु, तिक्त और कषाय रस कफको शान्त करते हैं और वात तथा पित्तको बढ़ाते हैं। कषाय, तिक्त और मधुररस पित्तको शान्त करते हैं और वात तथा कफ को बढ़ाते हैं। शेष संसार की तरह शरीरकी उत्पत्ति भी पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि इन पंच भूतों से हुई है। द्रव्यभी पंच भूतात्मक हैं। द्रव्योंमें लघु, गुरु, स्निग्ध, रुक्ष, और तीक्ष्ण ये पाँच गुण होते हैं। ये क्रमशः आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के गुण हैं। भोजन किए हुए पदार्थ अपने गुण के अनुसार शरीर के पंच भौतिक पदार्थों को बढ़ाते हैं। सुश्रुत ने इन पाँच गुणों के अतिरिक्त १५ गुण और बताये हैं। वस्तुओं में शीतवीर्य और उष्णवीर्य दो वीर्य होते हैं। पेट में पचने के बाद द्रव्यों का जो रसान्तर होता है उसे विपाक कहते हैं। मधुर और नमकीन पदार्थ का विपाक प्रायः मधुर होता है, अम्ल रसका प्रायः अम्ल और कटु, तिक्त, कषाय रसों का प्रायः कटु विपाक होता है। मधुर विपाक वाले पदार्थ कफको बढ़ाते और वात तथा पित्तको शमन करते हैं, अम्ल विपाक पित्तको बढ़ाते और वात तथा कफके रोगों को शान्त करते हैं, कटु विपाक वायु को बढ़ाते और कफ तथा पित्तको शान्त करते हैं।

आयुर्वेदिक औषधियाँ काढ़ा, चूर्ण, गोली, आसव, और अरिष्टके रूपमें तैयार की जाती हैं। चूर्ण और गोलीमें द्रव्य प्रायः अचुराण रहते है। काढ़े में सूक्ष्म गुण आते हैं और आरोग्यवर्द्धक सभी तत्व मौजूद रहते हैं। काढ़ेके गुण को सुरक्षित रखनेके लिये आसव और अरिष्ट बनाये जाते हैं। (आसव वह मद्य जो भपके से न चुवाया जाय, केवल औषधियोंके कच्चे रसमें गुड़ या चीनी डालकर खमीर उठाकर तैयार किया जाता है।) ऐलोपैथी की तरह एक्सट्रैक्ट (extract) इसमें नहीं निकाला जाता, क्योंकि आयुर्वेदका विश्वास है कि एक्सट्रैक्ट निकालनेसे द्रव्योंका मौलिक गुण नष्ट हो जाता है। भस्मों और विषोंका प्रयोग आयुर्वेदीय औषधियोंमें खूब होता है; पाराभी खूब इस्तेमालमें आता है। इन्जेकशन प्राचीन कालमें भी दिये जाते थे और उनको सूची वेधका सूचिकाभरण कहते थे, किंतु इसका वर्धन न होसका।

सुश्रुतने भी दोषों को मानकर ही अपना ग्रन्थ बनाया है। सुश्रुतके जमाने में १०० यन्त्रों का आविष्कार हो चुका था। स्टेथिसकोप, जिसे लोग डाक्टरोंका आविष्कार समझते हैं उस समय भी था। पहले यह लकड़ी और धातुका बनता था। अब रबड़ और धातुसे बनता है, इतना ही भेद है। ऐलोपैथीका एनेमा आयुर्वेदकी वस्ति-चिकित्सा है। प्राचीन वैद्य वस्तिका खूब प्रयोग करते थे। आधी चिकित्सा वस्ति क्रिया को समझते थे और आधेमें सारी औषधियोंका प्रयोग सर्जरीमें काम आने वाले शस्त्र, यन्त्र, औषधियों और बन्धन आदिका विस्तृत विवरण सुश्रुतमें मिलता है। गर्भसे बच्चे निकालनेके यन्त्र को सिंहास्य (सिंहास्थके मुँहके आकार का) कहते थे। वैसा ही यन्त्र ऐलोपैथी में आज लायन माउथके नामसे प्रसिद्ध है।

(महेन्द्रनाथ पाँडे)।

सिद्धान्ततः——आयुर्वेद और एलोपैथी में बहुत कुछ साम्य है। प्राचीन कालमें वे प्रायः एक थे भी। परन्तु ऐलोपैथी ने अब आधुनिक अन्वेषणोंके कारण उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। वर्तमान आयुर्वेदमें विशेष दोष यह है कि उसके अनुयायी प्रायः सुश्रुत के सभी वाक्यों को ही प्रमाण मानते हैं। आधुनिक अन्वेषणकी रीतियोंको अपनाकर उनके कथनोंकी न ही छान-बीन करते हैं, और न ही नवीन औषधियों और चिकित्सा-पद्धतियों की ओर ध्यान देते हैं।

"भुजंगा"

[लेखक—श्री त्रिलोकीनाथ बी. एस-सी]

कौआका राजा बड़ा बहादुर, तेज उड़ने वाला, काले रंगका, अपने वैरियों से लड़ते हुए आप देख सकते हैं

भुजंगा, भुजंग या भुजैटा को हम कौओंका राजा कह सकते हैं। यह बहुत बहादुर और लड़ाकू पक्षी होता है। इस पक्षीके कौओंकी जातिसे कोईभी सम्बन्ध नहीं । यह एक दूसरी जाति का बिलकुल विभिन्न पक्षी है। किन्तु इसका यह नाम इसके रंग और इसके बहादुरी से लड़ने के कारण पड़ा है। अपने घोंसलेको उजाड़ने वालों से यह बहुत बहादुरी से लड़ता है। इन दुश्मनों में प्राय: कौआ ही मुख्य है। आप देखेंगे कि अक्सर मैदानोंमें एक कौवे के पीछे इस पक्षी का जोड़ा बड़ी तेजी और होशियारीसे हमला करनेके लिये उड़ता रहता है। यह पक्षी हवाको बड़ी तेजीसे काटता है और जिधरको जी चाहता हैं बड़ी आसानीसे और बड़ी जल्दी मुड़ जाता है। उड़ने में इतना होशियार पक्षी बाजको छोड़कर और तो शायदही कोई मिले। इस हमले में यह लगातार क्रोध भरी ललकार जैसी आवाजभी करता रहता है। यदि इसके घोंसलेपर कभी कोई बाजभी हमला करे तो उससे भी लड़ने में यह नहीं हिचकता और पूरे साहस और बहादुरी से उस पर हमला करता है।

इस वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि यह हमेशा लड़ता-झगड़ताही रहता है। जो चिड़िया इसे हानि नहीं पहुंचाती उनसे यहभी नहीं झगड़ता। जिस पेड़ पर यह रहता है उस पर और भी बहुत सी चिड़ियों का घोंसला होता है। इतना ही नहीं बल्कि भुजंगे का घोंसला उस पेड़की अन्य चिड़ियों के लिये रक्षका चिन्ह है। जिन चिड़ियों के घोंसले के ऊपर इसका घोंसला होता है, वे चिड़ियां चैनकी नींद सोती हैं। भुजंगेकी उपस्थितिसे इन्हें किसी भी बैरीका डर नहीं रहता।

जिससे यह पक्षी आसानी से पहचाना जा सके, इसलिये इसके रूप रंग का थोड़ासा वर्णन यहां दिया जाता है।

यह पक्षी लगभग १३ इञ्च लम्बा होता है इस लम्बाई में इसकी ६ इञ्च लम्बी पूंछ भी शामिल है। इसके पर बिलकुल काले किन्तु नीली झलक लिये होते हैं। इसकी चोंचके पिछले भागमें छोटे छोटे सफेद धब्बे होते हैं। इसकी पुतलियां लाल, पञ्जे व चोंच काली होती हैं। इसकी पूछ बीचमें से फटी होती है अर्थात् उसका आकार टेढे V शब्द के समान होता है। यह खेतों में बिजली और टेलीग्राफ के तारों पर बैठा दिखाई पड़ता है।

यों तो यह हर जगह रह सकता है किन्तु अधिकतर यह दूर तक फैले खुले मैदानों या खेतोंके पास किसी झाड़ी या पेड़ पर रहता है। यह किसी टहनी या तार पर बैठकर झूलता रहता है और बराबर कीड़ों को हवा में या खेतमें गौरसे देखता रहता है। मकानों पर बैठे हुए इसे बहुत कम देखा गया है। यह प्राय: सूखे पेड़ों की टहनियों पर बैठा रहता है। रेलगाड़ी में सफर करते हुए यदि खिड़की से मुँह निकाल कर देखो तो टेलीग्राफ के खम्बों पर यह बैठा हुआ प्राय: अवश्य मिल जायगा। अपने बैठने के स्थान से यह उड़ता है और कीड़ा पकड़ कर ले आता है और फिर बैठकर खाने लगता है।

जहां पर गाय, बैल या बकरियां इत्यादि चरती हैं वहां यह अवश्य पहुंच जाता है। इन जानवरों की पीठपर बैठकर यह शिकार की घात लगाया करता है, इन जानवरों के घासमें चलनेसे टिड्डे, पतंगे तथा अन्य घास के कीड़े उड़ने लगते हैं और भुजंगा उनको पकड़ पकड़ कर अपना भोजन बना लेता है

जब किसान खेतमें हल जोतता है तो यह भी वहां पहुंच जाता है और खेतके पास किसी टहनी या झाड़ी पर बैठ जाता है। हलके चलनेसे जब मिट्टी हटती है तो जमीनमें रहने वाले कीड़े ऊपर आ जाते हैं और यह पक्षी उनकी सफाई करता रहता है।

जिस बोली से यह अपने साथियों को सूचना देता है वह बहुत जोरकी प्रसन्नता प्रदर्शित करने वाली और पैनी होती है। इसी ध्वनिके कारण पञ्जाबीमें इसे 'कल चीन' और कल-कली भी कहते है। जब यह अपने घोंसले के पास अपने दुश्मन पर हमला करता है तब इसकी आवाज बिलकुल बदल जाती है। छोटी छोटी गुस्से भरी आवाजसे यह बराबर हमला करता है।

(शेषाङ्क पृष्ठ ७८ पर पढ़ें)

भारतीय शल्य-शास्त्र व उसकी अवनति के कारण

[ले—कविराज अशोक कुमार, गुरुकुल कांगड़ी]

आर्यावर्त्त प्रारम्भसे ही संसारके समस्त ज्ञान-विज्ञानका मुख्य केन्द्र रहा है। भारतीय ज्ञान-सागरमें ज्ञानकी जो लहरें उठीं, वे सम्पूर्ण संसार में फैल गईं। भारतीय आकाशसे ज्ञान-विज्ञान की जो धारायें बहीं, वे समस्त संसारमें व्याप्त हो गईं भारतवर्ष शुरू से ही वह प्रकाशस्तम्भ रहा है जिससे ज्ञान का प्रकाश पाकर संसार की सोती हुई जातियोंने अपने अस्तित्व को समझा और अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का निर्माण किया। प्राचीन समय की ख्याति प्राप्त रोमकी सभ्यता, वर्तमान यूरोप की नवीन संस्कृति, भारतीय ज्ञान विज्ञानके प्रकाशसे ही प्रतिबिम्बित होती रही है। भारतीय अतीतके सुनहरे इतिहास को पढ़कर आज भी शिक्षित-समाज चकित रह जाता है।

आयुर्वेद जीवनका विज्ञान है यह हमें न केवल स्वस्थ रहना ही सिखलाता है, अपितु जीवनकी वृद्धि करने का उपाय भी बतलाता है। जब सम्पूर्ण संसार चिकित्सा के विषयमें प्रारम्भिक ज्ञान रखता था, उस समय यह चिकित्सा के दोनों अंगों (१) कायचिकित्सा, और (२) शल्यशास्त्रमें उन्नतिके चरम शिखर पर पहुंचा हुआ था। "History of Surgery" में लिखा है, In both branches of the Aryan stock surgical practice (as well as medicine) reached a high degree of perfection at a very early stage." अर्थात् बहुत प्राचीन कालसे ही भारतीय शल्यशास्त्र तथा कायचिकित्सा-शास्त्र बहुत उन्नत था। आज हम केवल शल्यशास्त्रके बारेमें ही कुछ विचार करेंगे।

शल्यतन्त्र का इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि ईसासे ३ सदी पूर्व पाश्चात्य संसारको शल्यतन्त्र का ज्ञान बिलकुल नहीं था। हां, उस समय ग्रीस तथा मिश्र में इसका विकास होना प्रारम्भ हो चुका था, लेकिन उस समयभी भारतवर्ष में शल्यतन्त्र विषयक ज्ञान चरमसीमाको पहुंचा हुआ था। पाश्चात्य विद्वानोंने भी उस समय भारतीयोंसे ही इस ज्ञानको पाया था, जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों के लेख—"Indian surgery as represented in Susruta & Vagbhatta can boast of the practice of Rhinoplasty etc. which seem to have been borrowed by Europeans from India" से स्पष्ट हो जाता है। लेकिन कुछ लोगोंका ख्याल यह है कि भारतीय विद्वानोंने इस ज्ञान की शिक्षा ग्रीक विद्वानोंसे पाई थी। स्वयं "Encyclopaedia Britannica" में भी लिखा है कि—"It appears pro bable that the plysisians of India at an earlier period learnt a great deal from the Greeks, especially in the field of surgery"—लेकिन डा० Wise ने अपनी पुस्तक "History of medicine among the Asiatics" में स्पष्ट लिखा है कि—"यह ठीक है कि भारतीय शल्यतन्त्र की सम्पूर्ण क्रियाओं, operations का वर्णन बिलकुल celsus द्वारा लिखे ग्रीक शल्यशास्त्र में मिलता है परन्तु सुश्रुतमें इसके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे operations (Rhinoplastic Surgery) का वर्णन मिलता है जो कि भारतीय अनुसन्धान ही प्रतीत होते हैं।" इसी प्रकार एरियन, स्ट्रैबो Strebo तथा दूसरे लेखकों ने लिखा है कि इस बातके कई प्रमाण हैं कि सिकन्दरके भारत पर आक्रमण करनेसे पूर्व ही भारतीय शल्यविज्ञान तथा कायचिकित्सा-शास्त्र की कीर्ति सम्पूर्ण संसारमें फैली हुई थी—इसलिये संसारके समस्त विद्वान् मनुष्यों को यह मानना पड़ता है कि—"We may give the first place, then, to the eastern branch of the Indo-European stock in a sketch of rise of the Surgery"—अर्थात् शल्य तन्त्रके विकासमें पाश्चात्य-चिकित्सा शास्त्र के मुकाबिले में प्रथम स्थान पौरस्त्य चिकित्सा-शास्त्र को ही देना चाहिये।"

भारतवर्षमें शल्यतन्त्रका प्रारम्भ तो वैदिक कालसे हो चुका था, जबकि ऋग्वेदमें हमें अश्विनीकुमारों से जो कि देवताओं के शल्यचिकित्सक समझे जाते हैं—नानाप्रकारके प्रार्थनासूत्र मिलते हैं। इन्द्र ने इसी समय छिन्द मस्तक को जोड़ दिया था। इस समयमें ही शल्यशास्त्रका इतना विकास हो गया था कि—

"सद्यो जंघामामसीं विषपलायै धने हितासर्तवे प्रत्यधत्रे।
तस्मा अन्नीना शल्याविचन्न आधत्तदस्ताभिषजार्थवान्॥"

इसी आधार पर डा० केथ और डा० मेकडोनल ने भी लिखा है कि हमें प्राचीन साहित्यमें अश्विनीकुमारों द्वारा आश्चर्य जनक चिकित्साओंके वर्णन पढ़नेको मिलते हैं। लंगड़े और अंधे को ठीक करना—विषपाल आदि को लोहेकी टांगे देना आदि इसके प्रमाण हैं। लेकिन वर्तमान कालमें भारतीय शल्यशास्त्र का ज्ञान "सुश्रुत संहिता" से ही मिलता है। इसके कर्ता आचार्य सुश्रुत थे जिन्होंनें काशीराम दिवोदास से चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। दिवोदास का ही दूसरा नाम धन्वन्तरि था। आचार्य सुश्रुत विश्वमित्र के पुत्र थे। इस विषयमें इतना मालूम है कि ये वैदिक कालमें हुए थे। महाभारतमें भी सुश्रुतका नाम आता है:—

श्यामायमानोऽथ भार्ग्यश्च जावालि सुश्रुतस्तथा।
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः॥"

अनुशासन पर्व॥

महाभारतका समय १००० ईस्वी पूर्व निश्चित किया जाता है, अतएव सुश्रुत इससे भी बहुत काल पूर्व हुए होंगे। शतपथ ब्राह्मणके कर्त्ता सुश्रुतसे परिचित थे। शतपथ का समय ६०० ई० पूर्व रखा जाता है, अतएव सुश्रुत का कर्त्ता ६०० ई० के पूर्व के बादका तो कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रीक पाश्चात्य सभ्य जगतको इस विषयका ज्ञान होनेसे पूर्व भारतवर्ष में इसका पूर्ण विकास हो चुका होगा।

शरीर रचना विज्ञान (Anatomy)—प्राचीन समय में शरीर, रचना विज्ञानका भी अच्छा ज्ञान था। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों का वर्णन, वातनाड़ीचक्र आदि का ज्ञान, विद्वानोंने भिन्न-भिन्न मृतशरीरोंका शवच्छेदन करके पता लगाया हुआ था। जिस शारीरिक रक्तसञ्चारके सिद्धान्तका डा० हॉवने १६ वीं शताब्दीमें पता लगाया था—उसका ज्ञान भारतीयों को चरकके समयमें हो चुका था। जैसे:—

"तेन मूलेन महता महामूला मतादश।
ओजोवराः शरीरोऽस्मिन् विधायन्ते समन्ततः॥"

अर्थात मानव शरीर में हृदय से सम्बन्धित दस बड़ी रक्त-वाहिनियोंमें शरीरकी रक्षक शक्ति, ओजका वहन करने वाले रक्त का सञ्चार हो रहा है। इसी प्रकार "संवर्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुनः" हृदयसे लौटने वाला रक्त शुद्ध होता।

शवच्छेदनके लिये सुश्रुत का अपना विभिन्न तरीका था। कविराज K. L. भिषगरत्नने लिखा है कि इसके लिये जो मृत शरीर चुना जाता था वह ऐसा होता था कि उसका कोई अङ्ग अपूर्ण न हो और न ही वह बिलकुल पुराना तथा न किसी संक्रामक बिमारी तथा जहर आदि से मृत हो। इस मृतशरीरको पहिले कुशाघास से ढक दिया जाता था और किसी दरिया के पानीमें रख दिया जाता था। ३ दिनके बाद इसे निकाल कर धीरे धीरे त्वचा पर नर्म ब्रुश फेरते थे जिसने त्वचाकी epedermis वा dermis स्तरोंको हटाकर नीचेकी मांसपेशी को हटा दिया जाता था इसके बाद रक्तवाहिनियों तथा वातनाड़ियों को देखते थे, जो मृत शरीर के जलमें रहने से अब तक फूलकर स्पष्ट हो जाती थीं। नवीन-विज्ञान में dissection की विधि बिलकुल भिन्न है—उसे हम चाहे कितना भी वैज्ञानिक क्यों न कहें, लेकिन उस विधि से हम शरीर की अनेकों सूक्ष्मतम वातनाड़ियों Cutaneous nerves तथा रक्तवाहिनियोंका पता नहीं पा सकते हैं, सुश्रुतने ईसासे ६०० ई० पूर्व जिस विधि से मानवशरीरकी विभिन्न रचनाओंका ज्ञान प्राप्त किया था, हियोक्रेटस या हिसफिलस इतने वर्षों बाद भी उसका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके।

प्रसूति तन्त्र (midwifery) प्रसूतितन्त्र के विषय में भी भारतीयों को अच्छा ज्ञान था। K.L. भिषग रत्नने लिखा है कि ईसाके जन्म से सहस्त्रों वर्ष पूर्व भी भारतीय कष्टप्रसव में Forceps का प्रयोग करना भिन्न-भिन्न जातियां (Flexing और gliding) आदि और दूसरे प्रसुतितन्त्र सम्बन्धी operation जैसा कि बच्चे का नाश तथा mutiliation (craniotomy) आदि करना जानते थे। सुश्रुतने यह भी स्पष्ट लिखा है कि operation आदिका प्रयोग तब तक न करें जब तक कि बच्चे और माताके प्रसव मार्ग का अनुपात इतना कम हो कि दवाइयों के Plaster लगाने तथा Fumigation आदिसे भी प्राकृतिक डिलीवरी न होती हो।

म० कैस्टेलावी और शैमसने अपनी पुस्तक "Manual of Tropical Medicine" में स्पष्ट लिखा है कि इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि भारतीय चिकित्सक केवल शल्यतन्त्र वा कायचिकित्सा में ही निपुण न थे—लेकिन रोग के हटानेमें तथा प्रसुतितन्त्रके ऑपरेशनों आदिके बारेमेंभी पूर्ण ज्ञान रखते थे" दूसरी जगहोंमें भी हमें पढ़नेको मिलता है कि "Obstetric operations were various including caesarean and crushing of the foetus.

सुश्रुत संहिता में जहां बच्चेको निकालने का वर्णन किया गया है, वहां उसकी गतियां अशुद्ध होने पर (malpresentation) उन्हें ठीक करनेके उपायों तथा operations का भी अच्छा वर्णन किया है। डा० विलियम हन्टर ने भी लिखा है कि—"भारतीय विद्वान् प्रसूतितन्त्र में प्रवीण थे और गम्भीरतम operation में भी घबड़ाते न थे, इससे स्पष्ट है कि प्राचीन समयमें भी भारतीयोंको प्रसूतितन्त्र का अच्छा ज्ञान था।"

शल्यतन्त्र—शल्यशास्त्रके उपरले मुख्य अङ्गों में उन्नतिके अतिरिक्त शल्यशास्त्र में भारतीय ज्ञान-विज्ञान बहुत विकास को पहुंचा हुआ था। म० वेबर ने अपने ग्रँथ में लिखा है कि—"शल्यतन्त्रमें भी भारतीय इतनी पूर्ण प्रवीणता पाए हुए थे कि आजके यूरोपियन चिकित्सक अब भी उनसे कुछ न कुछ सीख ही सकते हैं" ये एक प्रसिद्ध पाश्चात्य शल्यचिकित्सक के विचार हैं—

शल्यशास्त्र में निम्न बातों पर विचार करना चाहिये:—

(1) तत्कालीन शस्त्र (Instruments)

(2) Operation के पूर्व कर्म,

(i) शल्य भवन को साफ रखना,

(ii) चिकित्सक को operation करने की आज्ञा,

(iii) operation के प्रकार,

(iv) After care,

(3) Bandage after using the healing Ointment,

(a) रोगीकी सेवा

(1) तत्कालीन शस्त्र (Instruments)—प्राचीन समयमें वर्तमान नव अनुसंधानित सब प्रकार के शस्त्रों का वर्णन मिलता है। सुश्रुत का कर्ता १२५ शस्त्रोंका वर्णन करता है। शास्त्रों के प्रणीता ऋषि लोग प्रायशः बनों में रहते थे, अतः प्राकृतिक वस्तुओं के सदृश शस्त्रों के आकार होने से उन्होंने उनका वैसा ही नाम-करण किया था, इसके सिंहास्थ, वृषमास्थ, लिपनी आदि अनेकों उदाहरण हैं—वर्तमान समयमें वही शस्त्र जरा नवीन परिवर्तित रूप में मिलते हैं, जैसे (Scalples, lancets, needles & trocar etc.) जो प्राचीन समय में पाये जाते थे। "Encyclopædia Britannica" में स्पष्ट लिखा है कि प्राचीन समयमें सुश्रुतमें करीब १२५ शस्त्रों के होने का वर्णन मिलता है। ये steel के बने होते थे और इनकी दृढ़ संधियां होती थीं।

इतना ही नहीं, अस्थियां (Fracture) या अस्थिभ्रंश (dislocation) आदि होने पर उन्हें ठीक करने के लिये एक खास तरह की splint होती थी जो बांस के पतले पतले तन्तुओंसे बनी और पत्तियोंसे बुनी होती थी। Dr. Wise ने लिखा है कि यह splint विशेषत: Thigh Humerus, Radius और ulna आदि के fracture में प्रयुक्त की जाती थी। आगे उसने लिखा है कि यही splint बाद में अङ्गरेजी सेनाओं में "Patent Raltess Cane splint" के नामसे प्रयुक्त की जाती थी।

(2) operation के पूर्व कर्म—operation करने से पूर्व शल्य-भवन की सफाई आदि का पूरा ध्यान रखा जाता था। वैदिक मन्त्रों आदि के पढ़ने से यह तो स्पष्ट पता लगता हैं कि प्राचीन समयमें चिकित्सकों को कृमियोंका अच्छा ज्ञान था, जैसा कि अष्टांग हृदय में लिखा है "जन्तवोऽणव:, अपादाः वृत्तताम्रश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः" इतना ही नहीं वे यहभी जानते थे कि अनुकूल परिस्थितियां पाकर ये रोहण करने लगते हैं अतः वे operation theatre की सफाई का पूरा ख्याल रखते थे। धूपन आदि से उसे शुद्ध रखने की कोशिश रखते थे, जैसा कि सुश्रुत में लिखा है:—

प्रशस्तवास्तुनि गृहे शुचा वातय वर्जिते।
निवरते च न रोगाः स्युः शरीरागन्तुमानसाः॥

इतना ही नहीं, शल्य-चिकित्सक को अपने Antiseptic होने का भी पूरा ध्यान रखना पड़ता था। बिना राजा की आज्ञा के किसीको भी शल्य-कर्म करनेकी आज्ञा न थी। इस पर भी उसे (nail cutter) से नाखून अच्छी तरह काटकर उन्हें साफकर शुद्ध (sterlised) सफेद कपड़े पहिनकर ही सुश्रुतने शल्य कर्म करने की आज्ञा दी है। 'नीच नखरोमणा शुक्लवस्त्र परिहि तेन वैद्येन विशिखा अनुप्रवेष्टा:"—

Operation करने की हर एक को आज्ञा न थी। यह माना जाता था कि "सुबहुश्रुत:ऽप्यकृत योग्य: कर्मसु अयोग्य" अत: इस कार्यमें शुभ व्यक्ति के बिना किसी को भी आज्ञा नहीं दी जाती थी इसके लिये उन्हें पहिले मोमके बने पुतलों पर मूली या गाजर के टुकड़ों पर (Incision) आदि का अभ्यास कराया जाता था। मृतपशुओं की शिराओं में (Ingestion)

करने का अभ्यास कराते थे। इन सबके बाद जब गुरु यह समझते थे कि वह योग्य हो गया है तो "अधिगत तन्त्रेण इष्ट कर्मणा कृत योग्येन राजानुज्ञातेन" राजाकी आज्ञानुसार वह शस्त्र कर्ममें प्रवृत्त हो सकता था।

(3) **शल्य कर्मके प्रकार:**—प्राचीन कालका शल्य कर्मका विकास पढ़कर सबको बहुत आश्चर्य होता है। साधारण तौरसे आठ प्रकार से शल्य-कर्म किया जाता था। जैसे:—छेदन; भेदन, लेखन वेदन, राषण आहरण तथा विस्रावण और सीवन, आजकल भी शल्यकर्ममें यही ८ अङ्ग माने जाते हैं इस दिशामें इतने वर्षों की खोजके बाद भी पाश्चात्य शल्यविज्ञान प्राचीन सिद्धान्तोंका पक्षपाती है। सर विलियम हण्टर ने लिखा है कि :—"प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सकों का ज्ञान बहुत आश्चर्यजनक था। वे अङ्गभेद amputation कर लेते थे, रक्तस्राव को वे pressure से तथा cupshape पट्टी और गर्म तेलसे बंद कर लेते थे, वे lithotomy (पथरी) के operation भी करते थे। गर्भाशय व उदरके शल्यकर्म भी करते थे। हर्निया, भगन्दर बवासीर आदिको ठीक कर लेते थे, टूटी हुई हड्डियोंको जोड़ लेते थे, अस्थिभ्रंश को ठीक कर लेते थे और शरीरमें प्रविष्ट हुए Foreign body को बाहर निकालने में माहिर थे। इसके अतिरिक्त शल्य चिकित्सकों का एक विभाग Rhinoplasty में लगा रहता था। छिन्न भिन्न कान व नाक आदि के समान, पर नए तदनुरूप अवयव बनाये जाते थे। डा० Hirschbeng ने भी लिखा है कि पाश्चात्य plastic surgery में एक बड़ा भारी परिवर्तन आ गया जबकि उन्हें प्राचीन भारतीय शल्यकर्म का ज्ञान उपलब्ध हुआ। डा० वेबरने तो अपनी "History of Indian Literature नामी पुस्तकमें स्पष्ट लिखा है कि वर्तमान समयमें भी पाश्चात्य चिकित्सक प्राचीन भारतीय शल्य कर्मसे बहुत कुछ सीख सकते हैं, ये प्रमाण है जो भारतीय शल्य कर्मकी महत्ताको सूचित करते हैं Encyclopædia Britannica में भी लिखा है कि प्राचीन समयमें सिर और चेहरे के फटाव अच्छी तरह सुन्दरतासे सी दिये जाते थे। शोथ के लिये वर्तमान तरहके Antiphlogistic तरीकोंका उपयोग होता था। रक्तमोक्षणका अच्छा अभ्यास था, इसके लिये जोंकों का उपयोग किया जाता था जिनके बारेमें उन्हें विस्तृत ज्ञान था। Trocar आदिकी सहायतासे Abdominal dropsy तथा Hydrocele आदि ठीक किये जाते थे। नाभिके नीचे मध्य रेखाके बांयी ओर छोटा सा Incision देकर पेट खोल दिया जाता था और कोई obstruction होती तो उसे निकाल दिया जाता था।

प्राचीन समय में भारतीयों को सम्मोहक औषधियों का भी अच्छा ज्ञान था। बुद्ध से कुछ समय पूर्व (लगभग ५०० ई०) में एक संज्ञाहर-द्रव्य (सम्मोहिनी) का प्रयोग किया जाता था। वैसे सुश्रुत शल्यकर्म से पूर्व रोगी को पर्याप्त मात्रा में मद्य पिला देता था। यदि संज्ञाहर-द्रव्यका होना न माना जाय तो मगध-राज बिम्बसार के राजवैद्य जीवक कुमारभृत्य द्वारा बनारसके एक सेठके लड़केका पेट चीरकर उलझी हुई आंतों को बाहर निकाल कर फिर ठीक स्थिति में रखना, राजगृहके एक सेठके सात साल पुराने रोगको अच्छा करनेके लिये सिरका आप-रेशन करके कीड़े बाहर निकालना आदि, सफल शल्यकर्म पाश्चात्य संसारको आश्चर्यान्वित करनेके लिये पर्याप्त उदाहरण हैं।

Operation के बाद रोगी के व्रण स्थान पर शहद आदि रोपक तथा antiseptic पदार्थोंका लेप लगाकर उसपर Bandage बांध दी जाती थी यह Bandage भी स्वतन्त्र रूपसे एक बड़ी कला थी जिसके भिन्न भिन्न प्रकार थे और जिसके लिये उसे पहिले से शिक्षा लेनी पड़ती थी।

शल्यकर्म के बाद, पाश्चात् कर्मके रूपमें रोगीको एक सुन्दर सुथरे ward में रखा जाता था जिसमें 'शयनसम्बाधं स्वास्तीर्णं मनोज्ञं कुर्वीत्' साफ सुथरा आरामदेह बिछौना बिस्तरा बिछाकर रोगीको लिटा देते थे और उसे समझा देते थे 'उत्थान संवेशन परिवर्तन चङ्क्रमणोच्चै भाषणाद्यासु आत्मचेष्टा अयमत्तो व्रणं रक्षेन्' पूरा विश्राम करे, तभी उसे आराम मिल सकता है।

इस प्रकार इस छोटेसे निबन्धमें मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि प्राचीन भारतीय चिकित्सक जहां कायचिकित्सा में ज्ञान प्राप्त किये हुए थे। वहां प्राचीन भारतीय शल्यकर्मभी अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें पूर्ण विकासको प्राप्त किये हुए था। किन्तु ऐसा माना जाता है कि सुश्रुतके बाद ही इसका ह्रास होना प्रारम्भ हो गया, उसके बाद यह केवल अध्ययन का विषय रह गया। किसी ने इसे क्रियात्मक तौर पर करने का प्रयत्न ही नहीं किया वैसे इसकी अवनतिके मुख्य कारण निम्न है :—

(i) मनुके समय में शल्य-चिकित्सा के विरुद्ध कुछ ऐसे नियम बनाये गए जिससे कि यह अनियन्त्रित करार दिया गया। इससे हिन्दूसमाज में इसकी प्रतिष्ठा कम हो गई। सभ्य

व्यक्तियों ने इसे छोड़ दिया और नीची जाति के लोग नाई आदि इसे करने लगे।

(ii) मन्दिरके पुजारियों और साधुओं ने मन्त्र, झाड़ फूंक आदि के नाम पर इस विद्या के ह्रास में पर्याप्त सहयोग दिया। लोग उसे छोड़ कर इनके वहकाने में आकार कार्य करने लगे।

(iii) भारत में बौद्ध-धर्म फैलने के कारण भी उसके ह्रास में बहुत सहायता मिली। बौद्ध-धर्म अहिंसा का प्रचारक था, अतः इस समयमें पशुवध तथा शल्यकर्मादि राजाज्ञा द्वारा बन्द करा दिए गए। उस समय जो विद्यार्थी विद्यालयों में पशुओं पर शस्त्रक्रिया का अभ्यास किया करते थे, वह भी बन्द करा दिया गया।

(iv) उस समय सम्मोहकों का पूर्णतया ज्ञान न होने से लोग शल्यकर्म से वैसे ही डरते थे, फिर जनता में यह विश्वास होता जा रहा था कि पुल्टिस, अग्निदाह (Cantery) और दूसरे वाह्य प्रयोगों के मुकाबले में शस्त्रों की कोई जरूरत नहीं है। सुश्रुत ने भी स्वयं यही लिखा है" दिव्यौषधि विना देविशस्त्र विद्यासु निष्फला" इससे जनता शल्यकर्म के विरुद्ध हो गई।

(v) सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुर्विपाक से यहां विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों के बाद पुस्तकालयों आदि के भस्मीसात होजानेसे जहां इस विषय के सम्पूर्ण ग्रन्थोंका लोप हो गया, वहां स्वराज्य न होने से रहे सहे ज्ञानको भी पनपने का मौका नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त हम लोग अपने प्राचीन ऋषियों के प्रति इतने अंधविश्वासी हैं कि हमने कभी भी लिखे हुए चरक और सुश्रुत के सिद्धान्तों पर विचार नहीं किया, जिससे इस विषय पर ज्ञान का अधिक विकास नहीं हो सका।

आज का युग विज्ञान का युग है। इसमें मानव-जीवन की हर एक क्रिया, हर एक धारणा, हर एक विचारधारा विज्ञान की कसौटी पर परखी जाती हैं। अब वह समय नहीं रहा कि हम कोरे आदर्शवाद के नाम पर केवल श्रद्धावश किसी बात को आंख मूंदकर मान लें आज का समय तर्क का समय है। (Rationalism) का समय है; इसीलिये प्राचीन शल्यकर्म के इस विस्तृत ज्ञानको भी हमें विज्ञान के प्रकाशमें देखना है। मेरा विश्वास है कि यदि भारतीय शल्य-शास्त्र आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसा जाकर वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार सुन्दर रूप में ढाल दिया गया तो भारत वर्ष फिर से संसार का शिरोमणि हो सकेगा।*

* गुरुकुलीय "आयुर्वेद परिषत्" के २०वें जन्मोत्सव पर पठित तथा "अखिल भारतीय निबन्ध-प्रतियोगिता" में सर्व प्रथम पुरस्कृत।

(अवशेषाङ्क पृष्ठ ७३ का)

सुनने में यह आवाज भी कर्णकटु नहीं होती है।

सारे भुजंगा या भुजैया पक्षियों की आदत एक सी नहीं होती। इनमें से कुछ मौसम के साथ देश परिवर्तन करते हैं किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो सारे साल एक ही जगह घोंसला बनाकर रहते हैं।

अप्रैलसे अगस्त तक बच्चे देता है। इसका घोंसला एक उथला प्याला जैसा होता है। यह घोंसला कोमल टहनियों, घास की पत्तियों और जड़ोंको बुनकर बनाया जाता है। घोंसले के चारों ओर बाहरकी तरफ ऐसी चीज लगाई जाती हैं जिससे वह मजबूत हो जाय। घोंसले का अन्दरूनी फर्श मुलायम घास, चिड़ियों के पर या ऊनका बना होता है। घोंसले की दीवारें नलीसे अधिक मोटी होती हैं। नली तो इतनी पतली होती है कि यदि नीचेसे प्रकाश की ओर को देखे तो रखे हुए अण्डे भी दिखाई पड़ जाते हैं। घोंसला V रूप में फटी दो समतल शाखों के बीच में बनाया जाता है। यह पृथ्वी से काफी ऊँचा होता है और डालकी फुनगी पर न होकर करीब बीच में होता है। यदि एक बार कोई दुश्मन इसके अण्डे फोड़ जाता है तो यह दूसरी बार अण्डा दे देता है।

यह संख्यामें तीनसे पांच तक अण्डे देता है किन्तु इसके घोंसले में प्रायः चार अण्डेही अधिकसे अधिक देखने को मिलते हैं। इसके अण्डेका आकार कुछ लम्बाई लिये हुए होता है। अंडे का खोल पतला और कमजोर होता है। अण्डे का खोल ऊपर से चिकना नहीं होता। अण्डोंका रङ्ग भी सदा एक-सा नहीं होता। कुछ अण्डे बिलकुल सफेद होते हैं; कुछ सफेद होते हैं और उनपर छोटे छोटे काले दाग होते हैं; कुछ हल्के किसमिशी रङ्गके होते हैं और उनपर कलौंस लिये कत्थई रङ्गके छोटे छोटे दाग होते हैं।

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

भारत में अखबारी कागज का उत्पादन

[युद्धके बाद कारखाना खुल जायगा]

देहरादून की वन्य अनुसन्धानशालामें अखबारी कागज की तरहका कागज बनाने के लिए मशीनी लुगदी तैयार कर ली गई है।

अनुसन्धानशाला की अखबारी कागज सम्बन्धी शाखा ने आवश्यक लुगदी तैयार करने के उद्देश्य से ६ प्रकारकी लकड़ी और कई प्रकार के बांस पर प्रयोग किए। लकड़ी की पांच प्रकारों (जेनवा, कागजी, शहतूत, चीड़, देवदार और सरो) से काफी हलके रङ्ग की वैसी लुगदी तैयार हो सकी, जैसी अखबारी कागजों के लिए प्रयुक्त होती है।

वन्य अनुसन्धानशाला की छोटी मशीन पर ७० प्रतिशत मशीनी लुगदी और तीस प्रतिशत बांस से बनी रासायनिक लुगदीके मिश्रण से कागज तैयार किए गए। देवदार और सरो से तैयार की हुई लुगदीमें मशीनी और रासायनिक लुगदी का अनुपात क्रमशः ७५ प्रतिशत और २५ प्रतिशत था। इस क्रिया द्वारा तैयार किए हुए कागज मजबूती में साधारण अखबारी कागज के ही समान थे।

इस बातकी जांच पड़तालकी गयी कि देशमें इन लकड़ियों की मात्रा इतनी पर्याप्त है या नहीं कि कागज का निर्माण आर्थिक दृष्टिसे सफल हो सके।

इस जांचके परिणामस्वरूप ज्ञात हुआ कि काश्मीर तथा टेहरी गढ़वाल रियासतों में देवदार और सरो की लकड़ी इतनी काफी है कि उससे एक कारखाना भली प्रकार चल सकता है। किन्तु युद्ध चलने तक के समय के लिए इन दोनों रियासतों में कागज का एक एक कारखाना खोलने का प्रस्ताव स्थगित कर दिया गया। इसके आर्थिक और अन्य कई कारण हैं, जिनमें मुख्य यह है कि वर्तमान समय में कारखाना चलाने के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी।

(भारतीय समाचार से)

जापानी दो नई तरह के बम काम में लाये

जापानके आक्रमणों से ज्ञात हुआ है कि जापानी दो बिलकुल नये प्रकारके बने बम काम में ला रहे हैं।

(१) एक प्रकारका बम अधिक जोर से फटने वाला है और आग लगाने वालाभी है। इसे मिश्रित स्फोटक—अग्नि-बाण कह सकते हैं। इसका वजन लगभग ६० सेर होता है। इसमें रबड़की गोलियां सी भरी रहती हैं। इन गोलियों का व्यास ¾ इंच और लम्बाई १ इंच होती है। शायद इनमें फॉसफोरस भरा रहता है। इनके गिरानेसे पृथ्वीमें गढ़ा होजाता है और ये रबड़की गोलियां निकल कर चारों ओर बिखर जाती हैं। ये गोलियां ५० गज के घेरे में छितरा जाती हैं और लगातार दो घंटे तक जलती रहती हैं।

अनुभव से ज्ञात हुआ है कि ये गोलियां मिट्टी रेत और पानी से बुझाई जा सकती हैं। यदि बम न फटा हो तो उसे अन्य प्रकार के आग लगाने वाले बमोंके समान शान्त नहीं कर सकते इसलिये जब तक बम फट न जाय, तब तक इसके पास नहीं जाना चाहिये। जब बम फट जाय तो इसकी गोलियों से लगी आगको बुझाने का प्रबन्ध करना चाहिये। इसलिये बचावके लिये प्रत्येक आदमी को अपने घरमें हर समय मिट्टी, रेत और पानी का प्रबन्ध रखना चाहिये।

सरकारके नागरिक रक्षा-विभागसे निम्नलिखित सूचना भेजी गई है—

"यह ज्ञात हुआ है कि रंगून, पिनांग और मलायाके हवाई हमलोंमें जापानी वायुयान ६० सेर वजनी आग लगाने वाले बमोंको काममें लाये। इन बमोंमें छोटी-छोटी फॉसफॉरस की गोलियां भरी हुई थीं। ये बम मैंगनेशियके बमोंकी अपेक्षा आसानी से बुझाए जा सकते हैं।"

जमीनसे टकराते ही बम फट जाता है और गोलियां चारों ओरको बिखर जाती हैं।

फॉसफॉरस गहरे धुएं और दुर्गन्धसे पहचाना जा सकता है। यह पानीसे या भीगी मिट्टीसे बुझाया जा सकता है, किन्तु सूखने पर फिर जलने लगता है। यदि आग बहुत बढ़ गई है

और स्टोरप पंप (Stirrup Pump) के काबूसे बाहर हो तो दूसरी आग बुझानेकी विधियां काम में लाई जा सकती हैं।

इसके बाद धातुके लम्बे चमचा से सारी गोलियां इकट्ठा कर लेनी चाहिएं, धातु का चमचा पानीमें भिगोकर काम में लाना चाहिये। इकट्ठा करने के बाद इन्हें किसी निर्जन स्थानमें लेजाकर अपने आप जल कर समाप्त होने के लिये डाल देना चाहिये। इन बमोंको बुझानेके लिये बड़ी होशयारी से काम करना चाहिये। कोई भी गोली बिना बुझाये या बिना हटाये न रहनी चाहिये।

इन गोलियों को हाथ से नहीं छूना चाहिये, नहीं तो हाथों में गहरे घाव हो जायंगे, जिनका भरना बड़ा कठिन होता है। इनको साफ करते समय जूते पहन कर काम करना चाहिये। यदि ये गोलियां नंगे पैरोंसे छू जायेंगी तो पैरोंमें भी उसी प्रकारके घाव पैदा कर देंगी।

यदि कोई कपड़ा जल रहा हो तो उसे फौरन ठंडे पानी में डुबो देना चाहिये और इसके बाद ध्यान से देखना चाहिये कि उसमें फॉसफोरसके बिना जले टुकड़े तो नहीं लगे रह गये। यदि टुकड़े लगे दिखाई पड़ें तो किसी धातु की चीज से अलग कर देने चाहियें। यदि इन टुकड़ोंको ऐसा ही छोड़ दिया जायगा तो कपड़े के सूखने पर इनमें अपने आप आग लगनी प्रारम्भ हो जायगी।

यदि खाने या पीनेकी चीजोंमें ये गोलियां गिर गई हैं, तो उन्हें फेंक देना चाहिये।

(२) एक दूसरे प्रकार के बम भी काम में लाए गए हैं। ये बम १ सेर के होते हैं। चारों ओरका खोल ढले लोहे का होता है। अन्दरकी बारूद बहुत जोरसे फटने वाले मसाले की बनी होती है। ये बम भयानक होते हुए भी जमीन में अधिक गहरे नहीं धंस सकते। इसलिये हवाई हमलेके समय लोगों को मकानों में छतों के नीचे रहना चाहिये। दुकानों के सामनेके खुले हुए बरामदे या टीन के नीचे नहीं।

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ है कि इनमें से बहुतसे बम देरमें फटने वाले भी है और गिरनेके १२७ घण्टे बाद तक भी फटते हैं। इसलिये ऐसे बिना फटे बमों के पास ५० गज की दूरी तक नहीं जाना चाहिये।

रंगून के दिसम्बर २३ और २५ के हवाई हमले में इन बमों से ही सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है। ये बम यों तो छप्पर या टीनकी तरह की मामूली से मामूली टेढ़ी छतको भी नहीं बेध सकते किन्तु खुले मैदान में ये २०० गज तक भी आदमियोंको मार सकते हैं। पृथ्वी से टकराते ही ये बम फट जाते हैं और फिर किरचों की एक त्रिकोनी चादर चारों ओर फैलती है। ये किरचें घुटने से लेकर सीने तक की ऊँचाई में चलती हैं और ५०-६० गजके भीतर बहुत ही घातक होती हैं। वहां पर झुककर छिपने वाली बहुत सी खाइयां खुदी हुई थीं लेकिन ये खाइयां ऊपरसे ढकी हुई नहीं थीं। इसलिये अपने सिर पर खुला हुआ देखकर लोगों को इन खाइयों के रक्षा कार्य पर विश्वास ही नहीं होता था। बहुत से लोग उनसे बाहर रहें और बहुतसे जो उनके भीतर थे वे निकल निकलकर भागने लगे। इसलिये जनता को विश्वास दिलाने के लिए या तो ये खाइयां पेड़ों के नीचे बनाई जांय या इनके ऊपर कोई चीज छा देनी चाहिए। रंगूनके अनुभवसे ज्ञात हुआ है कि जो खाइयां छोटी छोटी घनी झाड़ियोंके बीचमें थीं उनमें छिपकर लोग अपने आप को अधिक सुरक्षित समझते थे। इसलिए ये खाइयां कम चौड़ी और अधिक गहरी होनी चाहिएं। इस प्रकार की बनी होनेपर ऊपर छानेमें आसानी पड़ेगी और यदि न भी छाई जांय तो भी जनता अपनेको अधिक सुरक्षित समझेगी।

सिपाहियों के लिए रबड के कपडे

लड़ाईके जमानेमें जहाज, वायुयान और अन्य चीजों की बनावट और उनका रङ्ग ऐसा कर दिया जाता है जिससे दूरसे दुश्मन उनको न पहचान सके। प्रकृतिमें भी बहुतसे कीड़ों की बनावट और रङ्ग इस प्रकार का होता है कि उनके दुश्मनोंको उनका पता नहीं चलता। हरे पत्तोंमें रहने वाले कीड़ों रङ्ग हरा होता है, कुछ कीड़े आकार और रङ्गमें ऐसे होते हैं कि पाससे देखने पर भी वे सूखी हुई पेड़ की टहनी के समाम लगते हैं कुछ तितलियों का रङ्ग ऐसा होता है कि वे सूखे हुए पत्ते के टुकड़ेके समान लगती हैं।

अब रबड़के ऐसे कपड़े बनाये जाते हैं कि ये सारे शरीरको ढक लेते हैं। इन कपड़ों को पहने हुए किसी आदमी को दूरसे देखा जाय तो उसको पहचाना नहीं जा सकता। पहाड़ी स्थानों के लिये ऐसे कपड़े बनाये गए हैं कि आदमी उनको पहनकर पहाड़ीका एक अङ्ग है जैसा लगे। बनोंके लिये ऐसे रङ्गके कपड़े बनाए गए हैं कि उनको पहनकर वह झाड़ीका एक हिस्सा सा लगे। ये कपड़ रबड़के बहुत छोटे तथा हलके टुकड़ों से बनाए जाते हैं।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) 'विज्ञान' मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षमें वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर, ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस, अकाली मार्किट, अमृतसर** के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५५ } जून, सन् १९४२, मिथुनार्क, संवत् १९९९ विक्रमी { संख्या ३

भूकम्प

[भूकम्प क्यों आते हैं? उनका इतिहास किस प्रकार स्वयं-लेखक-यंत्रों से लिपिबद्ध हो जाता है, और उनकी पूर्व सूचना पाने के लिये वैज्ञानिक क्या कर रहे हैं।]

(लेखक—श्री चन्द्रिकाप्रसाद, बी० एस-सी०)

प्रकृति के सब उत्पातों में से भूकम्प में अपनी एक विचित्र विशेषता है। वायु-चापों के निरीक्षणसे पता लग जाता है कि आँधी आने वाली है; बैरोमीटरमें पारा गिर जानेसे बवंडर उठने की सूचना मिल जाती है; भूगर्भमें गड़गड़ाहट सुनकर हम जान जाते हैं कि ज्वालामुखी का विस्फोट होने वाला है। परन्तु भूकम्प बिना सूचना के ही आ जाता है।

पृथ्वी कभी शांत नही रहती। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्ष भरमें लगभग ३०,००० कम्प अनुभव किये जाते हैं। पृथ्वी पर कहीं-न-कहीं एक बड़ा भूकम्प छः सात दिनोंमें आता है।

शहर और घने बसे हुए प्रान्त पृथ्वी का केवल एक अल्प अंश है, इसलिये ऐसे किसी स्थान पर एक विनाशक भूकम्प वर्ष में केवल एक या दो बार ही आता है। अधिकतर भूकम्प पहाड़ों जङ्गलों, उत्तरी और दक्षिणी शीत प्रदेशों या समुद्र-तलोंमें आते हैं। जब कोई प्रचण्ड भूकम्प किसी नगरमें आता है तब लाखों का माल और सैंकड़ों जानें नष्ट हो जाती हैं।

यह जानने के लिये कि कहां भूकम्प आते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं, संसार भर में लगभग ३५० भूकम्प प्रयोग शालायें बन गई हैं। कोलाबा (बम्बई) एक ऐसी ही कम्पनिरीक्षक प्रयोगशाला है। इन प्रयोगशालाओं में सीस्मोग्राफ अर्थात् 'कम्पलेखक' नाम का यन्त्र रहता है।

कम्पलेखक का मुख्य भाग एक लटकता हुवा डंडा है जिसके अन्तमें एक पेंसिल लगी रहती है, या एक शीशेका टुकड़ा जो प्रकाश की किरण परवर्तित करता है। यह डण्डा चौखटे में इस प्रकारसे लटकाया रहता है कि चौखटा हिलाने पर भी यह डण्डा नहीं हिलता। पेंसिल या प्रकाश-किरण कागज या फोटो फिल्म पर रेखायें बनाती हैं। यह कागज घूमते हुए बेलन पर लपेटा रहता है। जब पृथ्वी में कम्प नहीं होता तब कागज पर सीधी रेखा खिंचती है; जब भूकम्प आता है तब बेलन हिलता है और कागज पर टेढ़ी मेढ़ी रेखा उतरती है।

प्रतिदिन ये रेखाएं उतारी जाती हैं और उन्हें विशेषज्ञ

अणु वीक्षण यन्त्रके नीचे रखकर देखते हैं। वे इन रेखाओंका अर्थ निकालते हैं और उन्हें लेखबद्ध करते हैं। केवल पिछले दस-बारह वर्षोंसे सूक्ष्म यन्त्र उपयोग में लाए जा रहे हैं। कम्प लेखक छोटे-से-छोटे कम्प का समय, दिशा, परिमाण, लम्बाई, तथा अन्य बातोंका फल अंकन करता है कुछ यन्त्र तो इतने सूक्ष्म हैं कि वे गाड़ियोंसे उत्पन्न कम्प और पदचाप भी अंकित कर देते हैं।

अधिकतर भूकम्प की प्रयोगशालाओं में तीन यन्त्र होते हैं, एक इस तरहसे रक्खा रहता है कि पूर्व-पश्चिम दिशाके कम्पोंका अंकन करता है, दूसरा उत्तर-दक्षिण के कम्पोंका अंकन करता है और तीसरा ऊपर नीचेके कम्पों का अंकन करता है। इन यन्त्रों का आरोपण कंकरीट के खम्भों पर किया जाता है, और इन खम्भों की नींव भूगर्भ के पत्थर तक पहुंचा दी जाती है। कुछ प्रयोगशालाओंमें बड़े भूकम्पोंके अंकनके लिये अलग यन्त्र होते हैं

पृथ्वीके ऊपरी तलमें कम्प ७२०० मील प्रति घण्टे के वेग से चलता है, कुछ अन्य कम्प इसके तिगुने वेगसे चलते हैं।

पुरातन कालसे लोग भूकम्पके कारण पर विचार करते आ रहे हैं। पहले लोगों का यह विश्वास था कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर आश्रित है, जो स्वयं एक कछुए की पीठ पर स्थित है, जब शेषनाग फुफकारते हैं या फन हिलाते हैं, तो भूकम्प आता है।

विज्ञानने इससे अधिक विवेकपूर्ण कारण ढूंढ़ निकाला है। पृथ्वी के चालीस-पचास मील अन्दर गर्मी और दबाव के कारण पत्थर नरम और पिलपिले हैं। जब अगल-बगल से जोर पड़ता है तो यह नरम पत्थर या तो ज्वालामुखी के मुख से बाहर निकलता है या पृथ्वी को उभार कर पर्वत श्रेणियां बनाता है। जब कभी ऐसा होता है तब पृथ्वी की बाहरी पपड़ी फट या टूट जाती है। इस ठोस पपड़ीके टूटनेसे ही बड़े-बड़े भूचाल आते हैं।

जब पपड़ी टूटती है तब किसी विशेष रेखा परसे टूटती है जहां की भूमि क्षीण रहती है। १९०६ के सैनफ्रांसिको के भूचालमें इस रेखाके एक तरफकी भूमि उत्तर की ओर हट गई और दूसरी तरफ की भूमि दक्षिण की ओर खिसक गई। प्रत्येक सड़क, पानीका पाइप और दीवार जो इस रेखा को पार करती थी, दो टुकड़ोंमें बंट गई और टुकड़े एक दूसरे से काफी दूर हट गये। (यह अन्तर अधिक-से-अधिक २१ फुट था)। कभी-कभी भूमि खड़ी उठ जाती है। आलस्का में १८९९ में जो भूचाल आया था। उसमें समुद्रतटका एक भाग ४७ फुट ऊपर उठ गया था।

छोटे भूकम्प ज्वालामुखी के विस्फोट से आते हैं। इटली, हवाई द्वीप, और प्रशांत महासागरके टापुओंमें ज्वालामुखीमें से लावा बहने के साथ ही भूचाल आते हैं। ऐड्रियाटिक समुद्र (इटली) के तट पर चूने के पत्थर की खोहों के बैठ जाने से भूचाल आते हैं।

जब भूकम्प आता है तब कंप की लहरें जन्मस्थानसे उसी तरह चारों ओर फैलाती हैं जैसे पानी में कंकड़ डालने से उत्पन्न लहरें। कंपलेखक तीन प्रकारकी लहरोंका अंकन करते हैं। पहली दबावकी लहर होती है और ध्वनि-तरङ्गोंसे मिलती जुलती होती है। अक्सर बड़े भूकम्पके पहले एक गड़गड़ाहट सुनी जाती है। उसके बाद विकृत लहरें आती हैं जो इतनी दुर्बल होती हैं कि कठिनतासे अनुभव की जाती हैं। इसके बाद प्रलयकारी भूमितल के कम्प आते हैं जो भवन आदि का नाश करते हैं।

एक सेकण्डके अल्पांशसे लेकर दो तीन मिनट तक भूकम्प का प्रकोप रह सकता है। बिहार भूकम्प में लगभग तीन मिनट तक भूमि हिलती रही। जब ऐसा जान पड़ता है कि भूकम्प समाप्त हो गया तब भी सूक्ष्म कंप होते रहते हैं जिन्हें सीस्मोग्राफ ही अंकित कर सकते हैं कभी-कभी तो घण्टों बाद तक।

संसार में भूमि की दो मेखलाएं हैं जहां पर भूकम्प आते हैं। इनमेंसे एक स्पेनसे चलकर रूमसागर पर होती हुई हिमालय पार करती हुई चीनके दक्षिण भागमें समाप्त हो जाती है। सिंधु और गङ्गा-जमुना की घाटियां इस कंप-मेखला में आती हैं। दूसरी मेखला प्रशांत महासागरके चारों ओर न्यूजीलैंडसे आरम्भ होकर जापान, आलस्का, और अमेरिकाके पश्चिमी तट में होती हुई चिलीमें समाप्त होती है।

क्वेटा और बिहार के भूकम्प काफी हाल ही के हैं इनमें कई जानें गईं और बहुतसे लोग बेघर हो गए। पर इनसे भी बहुत बड़े-बड़े भूचाल संसार में आ चुके हैं। आसाम के १८९७ के भूचालसे १,६०,००० वर्ग मील भूमि नष्ट हो गई। जापान के १९२३ के भूकम्पमें २,५०,००० जानें गईं।

भूगर्भशास्त्रवेत्ता इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि पहले से भूकम्पकी सूचना मिल जाया करे, परन्तु अब तक इसमें सफलता नहीं मिली है। कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि सूर्य-कलंकों और सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितियोंका भूकम्पसे कुछ सम्बन्ध है, परन्तु अभी तक निश्चित् रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

'जीवों का विकास'

[लेखक—कुँवर वीरेन्द्र नारायणसिंह एम. एस-सी.]

संसार में जितने जीव हैं सभी—तुच्छ से तुच्छ वनस्पति से लेकर मनुष्य तक कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार एक दूसरे से स्वयं उत्पन्न हुए हैं और उनका उन सूरतों का कोई खास बनाने वाला नहीं है। ईश्वर कुम्हारों की तरह गढ़ने नहीं बैठता। उसने सजीव और निर्जीव सबके विशेष नियम बना दिये हैं। उन्हींके अनुसार सारा सांसारिक काम चल रहा है। प्रत्येक प्राणी किसी प्राकृतिक नियमसे पैदा होते और मरते हैं। ईश्वर उसमें हस्तात्तेप नहीं करता। आज संसारमें असंख्य प्रकार के जीव हैं और प्रत्येक की शरीर-रचना एक दूसरे से भिन्न है। सृष्टिके आरम्भमें जीवोंकी संख्या अधिक नहीं थी और बहुत से जीवों का अस्तित्व ही इस संसार से समाप्त हो चुका है, केवल उनके पथरीली हड्डियों के चिह्न रह गये हैं। तबसे लेकर अब तक असंख्य नई जाति के जीवों की उत्पत्ति हुई और उनका विकास हुआ। ये जीव अपने शरीरको प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल संगठित कर फल-फूल रहे हैं और जो ऐसा करने में असमथ रहे हैं उनका नाश हो गया है। यद्यपि जीवोंकी उन्नति और उनके विकास के सम्बन्ध में अनेक विभिन्न मत हैं और प्राणी-विद्या-विशारदोंमें अनेक प्रमाणों से अपने अपने सिद्धांतों की पुष्टि की है फिर भी सारा वैज्ञानिक जगत् जीवों के क्रमशः बिकास और एक से दूसरे की उत्पत्ति होने के सिद्धांत पर पूर्ण विश्वास रखता है।

वैज्ञानिकों ने संसार के जीवों का जो क्रमानुसार सामूहिक विभाजन किया है उसीसे यह प्रकट होता है किसी समूह-विशेष के समस्त जीव एक ही पीढ़ी के हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुत्ते, गीदड़, और भेड़िये अथवा बिल्ली, चीते और तेन्दुये जो कि एक ही समूहके हैं उनमें अनेक समानतायें पायी जाती हैं; कारण यह है कि उनकी उत्पत्ति एक ही जीव से हुई है। इसके अतिरिक्त ऐसे जीव भी पाए जाते हैं जो दो विभिन्न समूहों के बीचके गुणोंसे विभूषित हैं जिससे यह प्रकट होता है कि उसी जीवके द्वारा एक समूहसे दूसरे समूहके जीवोंका रूपान्तर हुआ है। आस्ट्रेलिया में 'इक्तिना' नामक एक ऐसा ही जीव पाया जाता है इस प्राणीके कुछ लक्षण जैसे—शरीर पर बालों का होना, बच्चों को दूध पिलाने के लिये स्तनों की उपस्थिति-मनुष्य समूहके जीवोंके समान हैं किन्तु कुछ लक्षण जैसे अण्डों का देना, और उसके अनेक हड्डियोंकी बनावट इसे इस समूहसे पृथक् कर देते हैं जो कि रेंगने वाले जीवों के समूह से समानता रखता है अतः यह जीव उपरोक्त दोनों जीव समूहोंका सम्बन्ध स्थापित करता है। स्वयं मनुष्य की उत्पत्ति बन्दर से हुई है इस बात के अनेक प्रमाण हैं।

मनुष्य की ठठरी में अब तक दुम की जड़ पायी जाती है और अच्छी तरह जांच करने से प्रकट होता है कि अभी तक हम लोगों से पैरों की हालत ऐसी नहीं है कि सीधे खड़े रहना बिलकुल प्राकृतिक कहा जा सके। भांति भांति परीक्षा करने पर यह भी ज्ञात हुआ है कि सबसे उच्च प्रकारके बन्दरोंमें और सबसे अधिक जंगली आदमियोंमें बहुत ही कम अन्तर है जितना कि जंगली आदमी और सभ्य मनुष्य में है। इसके अतिरिक्त हजारों वर्ष पहले के मनुष्य की ठठरियां बन्दरों की ठठरियों से अधिक मिलती जुलती है। उस समय के मनुष्य के सिर और हाथ अधिक लम्बे, ठुड्डी और कपाल बहुत छोटे होते थे। अफ्रीकाके हब्शी और योरूप के कुछ असभ्य जाति के मनुष्यों में अब तक यह भेद कुछ कुछ शेष है।

आज तक भी बहुत से ऐसे जाति के बंदर पाये जाते हैं जिनमें असभ्य मनुष्योंके अनेक गुण विद्यमान् है। कुछमें पूंछ नहीं होती और वे बहुधा दो पैरों से चलते हैं। संध्या होने पर पेड़के नीचे घास बिछा कर सोते हैं और जाड़े के दिनों में शरीरको पत्तियोंसे ढक लेते हैं। कुछ तो छोटे छोटे झोपड़े भी बनाते हैं और उसमें अपने बच्चों को रखते हैं। शिकारियों पर पेड़की टहनियां तोड़कर मारते हैं और उससे लड़ते हैं। कुछ लोगोंने तो बन्दरोंको शिक्षा तक दी है वह गिनती गिन सकते हैं, कुर्सी पर बैठ सकते हैं और कांटों छुरी से भोजन करते हैं। ये तमाम बातें इस सिद्धान्त को स्पष्ट प्रकट करती हैं कि मनुष्य का विकास बन्दरों ही से हुआ है।

हजारों लाखों वर्ष पहले के फौसील भी इस बात को प्रकट करते हैं कि जीवों का क्रमशः विकास हुआ है। ऐसे जीवों के

अवशेष पाये जाते हैं जो कि दो समूहके जीवोंके रूपांतरकी क्रिया में से है। "आरचोओटेरिक्स" नामक एक प्राचीन पक्षी के फौसीलोंमें जबड़े और दांत थे, उसकी पूँछ बहुत लम्बी थी और उसके पंख आधुनिक पक्षियोंसे विभिन्न थे। इसके कुछ लक्षण पक्षी-समूह और कुछ रेंगने वाले जीव समूह से समानता रखते थे। डिन्सौर, मैमथ आदि कितने ही प्राचीन जीवोंकी पथरीली हड्डियां इस बातके प्रमाण हैं और ये जीवों के विकास की पुष्टि करते हैं।

कुछ जीवोंमें ऐसी इन्द्रियां भी पायी जाती हैं जिनका अब कोई कार्य नहीं है, किन्तु फिर भी वे उपस्थित होती हैं। इसका कारण यह है कि उनके पूर्वजों से वे इन्द्रियां आई थीं जहां उनका एक विशेष कार्य होता था; किन्तु कालान्तर में उनका उचित उपयोग न होनेके कारण उनका कार्य शिथिल पड़ गया। किन्तु उन अंगों के अवशेष पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रमित होते चले आ रहे हैं। मनुष्य के शरीर में भी ऐसे अङ्ग पाए जाते हैं यथा कान के पुट्ठे जिससे कान हिलाया जा सकता है, रीढ़की अन्तिम पूंछ वाली हड्डीका नाम भी लिया जा सकता है जिनका कि अब कोई कार्य नहीं है।

गर्भावस्थामें विभिन्न अङ्गोंके निर्माणके समय अनेक जीव समूहों में समानता होती है। इस प्रकार खरगोश और मुर्गे में गर्भावस्था के प्रथम कुछ दिनों तक कोई विशेष अन्तर नहीं होता। मनुष्य और छिपकली के रूप में गर्भ की अवस्था में अधिक समानता होती है। मेढ़क और मछलियों के छोटे बच्चों तकमें आश्चर्यजनक समानता होती है यद्यपि बड़े होंने पर दोनों के शरीर में विशेष अन्तर हो जाता है। पक्षी और मनुष्य समूह के जीवों के गर्भावस्था में बहुत थोड़ा अन्तर होता है इस प्रकार पूर्वजों की परम्परा का गर्भावस्था में विशेष रूपसे अध्ययन किया गया है और इस बात की पुष्टि की गई है कि समस्त जीवों को ईश्वरने नहीं निर्माण किया किन्तु वे क्रमश: एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं।

जीव-समूहके वंशजों की जांचके लिये डा० नहत्य महोदय ने एक उपाय का पता लगाया है। मनुष्य के "सीरम" को खरगोशके रक्त में पहुंचाया जाता है। एक सप्ताह के बाद इस मिश्रित सीरमसे जिसको "ऐराटी ह्यूमन-सीरम" कहते हैं मनुष्यके पूर्वजोंके रक्तकी जांच की जाती है। उन जीवों के रक्त के साथ जिनसे मनुष्य का विकास हुआ है उपरोक्त सीरम गाढ़ा (Precipitate) देते हैं। ज्यों ज्यों वे मनुष्यके पूर्वजोंसे दूर होते जाते हैं Precipitate की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि बन्दर, गोरिला आदि ही मनुष्यके पूर्वज हैं। डा० नहत्य महोदयने इसी तरह अन्य जीवोंका 'मिश्रित सीरम' तैयार करके उनके वंशजों का पता लगाया है और इससे जीवों के विकास के सिद्धान्त की पुष्टि की है।

इस विभिन्न प्रयोगों द्वारा निर्विवाद रूप से इस परिणाम पर आनेके पश्चात् अब हम विकासके कुछ विचारणीय सिद्धांतों का संक्षेपमें निरीक्षण करेंगे। फरासीसी प्राणीतत्त्ववेत्ता लामार्क ने जीवों के विकास पर पहली बार १८०६ में प्रकाश डाला, आपका विचार था कि सन्तान माता-पिताके शारीरिक धर्म को लेकर उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण प्रकारसे मां-बापके सदृश न होने पर भी वह अनेक अंशों में उनके समान होता है। सन्तान में अपने धर्मके संक्रमण करने की क्षमता का होना जीवका प्रथम लक्षण है। इसके अतिरिक्त एक बात और है—सन्तान उत्तराधिकारी होनेसे पितृधर्म तो पाता ही है पर कुछ नया धर्म स्वयं उपार्जन करता है। देश, गुण और कालक्रम से उसकी प्रकृति कुछ नए ढंग से उत्पादन होती है और ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है उसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। इसीसे सन्तान पूर्ण रूपसे पितृ-पितामह की भाँति नहीं होता। इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा प्रभेद होनेसे कई पीढ़ियोंके बाद पुरुष तथा प्राचीन पूर्व पुरुष को एक श्रेणीस्थ जीव पहचानना कठिन हो जाता है। कल्पना करो कि किसी जीवकी जीवन-प्रवृत्ति इस प्रकार की है कि उसके किसी अङ्ग पर सर्वदा जोर पड़ता है और अभ्यासके कारण उस अङ्गकी विशेष रूपसे पुष्टि हो जाती है अत: उसके बालकगण भी उस पुष्टि तथा सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं और उसमें योग देते हैं। इस प्रकार कई एक पीढ़ियों के पश्चात् वह अङ्गविशेष इतना पुष्ट हो जाता है कि बीचकी कई एक पीढ़ियों का धारावहिक इतिहास न जानने पर यह निश्चय करना असम्भव हो जाता है कि यह उससे किस प्रकार उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार किसी अङ्गके व्यवहारके अभावसे कालान्तर में उस अङ्ग का क्षय भी हो सकता है और क्रमश: कई पीढ़ियों के पश्चात् उस अङ्ग विशेष का एक दम लोप हो जाना भी सम्भव है।

लामार्क महोदय के विचारों को स्पष्ट करने के लिये हम

जिराफका उदाहरण लेंगे। यह जीव अफ्रीकाके अन्तरगत होता है जहां कि पृथ्वी पर बहुत कम पौदे होते हैं केवल लम्बे लम्बे बड़े वृक्ष होते हैं अतः जिराफ उन तक पहुंचने के लिये सतत प्रयत्न करता है जिसके फल स्वरूप उस जीव के आगे के पैर अधिक लम्बे हो गए हैं और इसी अभ्यास के कारण उसकी गर्दन भी लम्बी हो गयी है।

लामार्कके नियमानुसार जीवों का विकास कालक्रम और प्रकृति का प्रभाव, अङ्गों का विशेष उपयोग अथवा अनुपयोग और सन्तानमें पैतृक तथा स्वोपार्जित दोनों ही प्रकारकी प्रकृति का अधिकारी होना प्रमुख कारण हैं। भले ही हम इन नियमों के अनुसार शुतुर्मुर्ग अथवा मुर्गी पक्षी का न उड़ना, ऊँट की गर्दन व पैर लम्बे होने की बात मान सकते हैं किन्तु इस प्रकार अभ्यास और अनभ्यास पर निर्भर रह कर बन्दर से मनुष्य में विकास करनेका प्रयास निष्फल होगा। इसके अतिरिक्त अन्य जीवों एवं वनस्पतियोंकी उन्नतिका विवेचन करना भी कठिन है।

लामार्कके पश्चात् डारविन हुए। सन् १८५८ में चार्ल्स डारविन ने प्राकृतिक निर्वाचन का नियम जीवों के विकास का प्रधान कारण उपस्थित किया। आपने १८५६ में "आरिजिन ऑफ स्पिशीज" नामक ग्रन्थमें जीवधारियों के विषयमें अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त संसारके सामने रखा। इस पुस्तकमें इस बातका निरूपण है कि सारे जीवधारी, कुछ प्राकृतिक नियमानुसार एक ही प्रकारके जीवतत्वसे उत्पन्न हुए हैं। उनमें विभिन्नता क्रम से हुई है, भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों को ईश्वरने विशेष रूप से अलग अलग नहीं बनाया। इसके कुछ दिनोंके बाद १८८१में "डिसेण्ट ऑफ मैन" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि की, और लिखा है कि मनुष्य भी इन्हीं नियमोंके अनुसार उत्पन्न हुआ है और बदलते बदलते अपनी वर्तमान अवस्था को पहुंचा है। डारविन महोदय ने अपना सारा जीवन इन्हीं सिद्धांतों की खोज, पुष्टि और प्रचारमें व्यतीत किया। यह नहीं कि डारविन जीवके क्रम विकास अभ्यास तथा अनभ्यास का परिणाम न मानते रहे हों पर इसको विकास का मुख्य कारण नहीं माना। डारविन के मतानुसार पीढ़ियों का इकट्ठा किया हुआ स्वोपार्जित धर्म और शक्ति, जीवके क्रमविकासमें बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं पर उसका परिमाण अधिक नहीं है। आपके सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक निर्वाचन ही जीवों की अभिव्यक्ति का प्रधान कारण है। यद्यपि इसके अतिरिक्त अन्य कई साधन भी विकास पर प्रभाव डालते हैं किन्तु प्राकृतिक निर्वाचन के सामने उनकी कोई गिनती नहीं है। आपके इस सिद्धान्त को भली भांति समझने के लिये उसके अन्तर्गत अवलम्बित विचारों का संक्षेप में विवेचन करना आवश्यक होगा।

प्रथम तो यह है कि जीवकी वंश रक्षाके लिये आहार की आवश्यकता है किन्तु पृथ्वी पर जितने जीव हैं उतना आहार नहीं है। ईश्वरने जितने जीवों की रचना की है उन सबके लिये उपयोगी यथेष्ट आहारका प्रबन्ध नहीं किया। थोड़ेसे भोजनके लिये न जाने कितने जीव आपसमें लड़ मर रहे हैं। इस प्रकार का जीवन संघर्ष संसार में हमेशा से चला आ रहा है। इस भयानक जीवन संग्राममें जिस जीव को किसी प्रकार की सुविधा है वही संसारमें सुरक्षित रह सकता है। वही दैव प्रदत्त सुविधा चाहे उसके पास लम्बे पैर हो अथवा लम्बी गर्दन हो, कुछ कड़ा चर्म हो या तीक्ष्ण दांत हो, विशाल शरीर हो अथवा तेज बुद्धि हो, जीवन संग्राम में उसकी सहायता करती है और जिसके कारण वह आहार प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। जीवन संग्राम इतना कठोर है तथा जीव विशेष के लिये इसका फल इतना अनिश्चित है कि अति क्षुद्र तथा सामान्य सुविधा भी जीवन संघर्षमें अमूल्य अस्त्र का काम देती है।

इस प्रकारके जीवन संघर्ष की आवश्यकता ही क्यों? यदि इस प्रश्न पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो ईश्वर के गूढ़ रहस्य को समझनेमें समर्थ होंगे। प्रत्येक जीवकी संख्या प्रचुरता से बढ़ रही है किन्तु भोजन एवं रहने की भूमि निश्चित है। हाथी की जनन संख्या अन्य जीवों की अपेक्षा बहुत कम है, किन्तु फिर भी डारविन महोदयने गणना की है कि ७५० वर्ष में एक हथिनी के ६ बच्चे जीवन प्रयन्त के होने पर हाथियों की संख्या बढ़कर १ करोड़ ९० लाख हो जाती है। हक्सले महोदयके गणना के अनुसार एक गर्मी की ऋतुके अन्त में हरी मक्खियोंकी संख्या पूर्ण चीन देशकी जन संख्याकेतौलके बराबर हो जावेगी। भोजन और भूमिके अनुसार जनन संख्या की उस विशालताको देखते हुए जीवन-संघर्ष का होना अत्यंत आवश्यक है। इस संसार में उन्हीं को रहने का अधिकार है जो अपने बाहुबलसे शत्रुओं का दमन कर अपने भोजन की व्यवस्था कर सकें अन्यथा इस जगत्से वह शीघ्र ही बिदा हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि माता-पिता की भाँति पुत्र उत्पन्न

होता है किन्तु बिलकुल वह अपने मां-बाप की भाँति नहीं होता यद्यपि अधिकांशमें उनमें सादृश्य होता है पर उसके साथ ही बालकमें एक विशेषता होती है उसमें एक नयापन होता है एक पिता के चार बालक चार तरह के होते हैं उनमें थोड़ी बहुत विभिन्नता होती है। कोई गोरा होता है कोई काला, कोई मोटा होता है कोई पतला किसी के रोयें अधिक होते हैं किसीके कम, एवं अन्य नए प्रकारके लक्षण सन्तानमें दृष्टिगोचर होते हैं। इन लक्षणोंमें कुछ जीवनके अनुकूल और कुछ प्रतिकूल होते हैं। वे लक्षण जो जीवनके अनुकूल होते हैं भावी सन्तानमें भी पहुँच जाते हैं और जो प्रतिकूल होते हैं सन्तान उत्पन्न करनेसे पहले ही नष्ट हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो विशेष लक्षणयुक्त होते हैं वे ही इस संसारमें जीते हैं और वंश रक्षा करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार पुरुषानुक्रम से एक विशेष लक्षण क्रमशः परिस्फुट होकर एक वंश को दूसरे वंश से अलग कर देता है इस प्रकार नई जातियोंकी उत्पत्ति होती है, मानो प्रकृति अपने असंख्य सन्तानों में से कई एक निर्दिष्ट लक्षणयुक्त पुरुष को चुन लेती है। इसीको 'प्राकृतिक निर्वाचन' कहते हैं। इस निर्वाचनके होने से ही नए-नए लक्षणों से युक्त जीव क्रमशः पृथ्वी पर उत्पन्न हो रहे हैं। जीवन की इस क्रमिक अभिव्यक्ति के परिणाम उन्हीं लक्षणों का विकास होता है जो किसी न किसी प्रकारसे जीवन रक्षाके अनुकूल होते हैं।

कुछ जीवों में प्राकृतिक वातावरणके अनुसार उपरि शरीरके रंग बदल देनेकी शक्ति होती है। उत्तरी ध्रुवके हिमपूर्ण वातावरण में सफेद रीछ पाये जाते हैं। रेगिस्तान में पाए जाने वाले जीवों का रंग बालू से मिलता जुलता होता है। हरी पत्तियों पर रहने वाले जीवों का रंग बहुधा हराही होता है, यही नहीं पत्तियों की भांति उनका शरीर चित्तेदार भी होता हैं। प्राकृतिक रंग की इस समानता से जीवों को शत्रुओं से बचने में सुगमता होती हैं, शत्रुके निकट आजाने पर भी वे दृष्टिगोचर नहीं होते। बहुतसी तितलियां ऐसी हैं जो वृक्ष पर बैठ जाने से एक दम पत्तियों में मिल जाती हैं और उनका पता लगाना असम्भव हो जाता है। कुछ ऐसे रंग की तितलियां होती हैं जिन्हें चिड़ियां खाना पसंद नहीं करतीं अतः वे तितलियां जो चिड़ियों को स्वादिष्ट होती हैं अपने शरीर का रंग उनमें परिणित कर लेती हैं जिन रंग विशेषकी तितलियां चिड़ियों को अरुचिकर होती हैं इस प्रकारसे, अपने को मृत्यु से बचा लेती हैं। जीवों के इस प्रकारके रंगकी समानता डारविन महोदय के जीवों के विकास में प्राकृतिक निर्वाचन के सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं।

डारविनके द्वारा प्रदर्शित इस अभिव्यक्ति विधान ने सर्वत्र आदर प्राप्त किया है। तथा जीव तत्ववेत्ताओं ने इसको माना भी है। जीवन संग्राम में प्राकृतिक निर्वाचन विविध जीवोंकी अभिव्यक्ति का एक मात्र कारण न होने पर भी प्रधान कारण है—इसके स्वीकार करने में किसी को संदेह नहीं। डारविन का स्वयं कथन है कि प्राकृतिक निर्वाचन-जीवों की वंश रचना में एकमात्र आधार न होकर एक प्रधान कारण मात्र है।

डी वेरीज महोदय एक दूसरे प्राणी विद्या विशारद हो चुके हैं, जीवों के विकास में आपका एक अलग सिद्धान्त है। आपका विचार है कि नई जातियों का निर्माण अनुकूल लक्षण विशेष के क्रमशः परिपुष्ट होकर नहीं होता बल्कि माता पिता के सन्तानों में से कोई एक विशेष लक्षण लेकर उत्पन्न होता है जो कि अन्य संतानों से एकदम भिन्न रहता हैं उस संतानों से पुन; एक नूतन श्रेणी का अविर्भाव होता है। ऐसे लक्षण संतानों में समय समय पर एक बारगी ही उत्पन्न हो जाते हैं जिनका कि कारण अब तक अज्ञात है। आप अनेक वृक्षों पर इस सहसा रूपान्तर का अध्ययन कर उपरोक्त सिद्धान्त पर पहुंचे हैं। डारविन के प्राकृतिक निर्वाचनके सिद्धान्त को भी आप मानते हैं। किन्तु आपका विश्वास है कि जीवन संग्राम जीवों के विकास में सहायक नहीं है जब तक कि संतान में एक विलक्षण रूपान्तर न हो उस में सहसा कोई नूतन लक्षण न प्रकट हो तब तक जीवों का वंश बढ़ना संभव नहीं है ऐसे ही विशेष लक्षणों द्वारा नई जातियों की उत्पत्ति होती है।

डारविन के एक शिष्य सम्प्रदाय का जो विकास के बारे में नया मत है। इस नये सम्प्रदाय के नेता जर्मनी के तत्ववेत्ता पंडित वाइजमैन है। लामार्क के अनुसार जिस प्रकार हथौड़ा पीटने से लुहार और हल चलाने से किसानकी हाथकी पेशियां मोटी और बलवान् हो जाती हैं और उनके संतानों में इस मांस पेशियोंकी सबलता जन्मते ही होती है। ऐसे प्रभावको जो दूसरी पीढ़ी में संक्रामित हो सकता है डारविन महोदय स्वीकार नहीं करते थे किन्तु उनका नया शिष्य सम्प्रदाय इसको मानने के लिये तैयार नहीं है। वह ऐसे प्रभाव को कुसंस्कार, मिथ्या

और अमूलक घोषित करते हैं।

जीव जन्मग्रहण करने के पश्चात् आहार सामग्री एकत्रित कर पुष्टि लाभ करता और बढ़ता है। कुछ समय के बाद सम्पूर्ण जीवों में एक ऐसा समय आता है जब कि उसका बढ़ना रुक जाता है। उस समय उसका जीवत्व पक जाता है तथा पूर्ण होता है ऐसे समय के होने पर उसके शरीर का कुछ अंश गिरकर स्वतन्त्र हो जाता है। इस अंशको बीज कह सकते हैं। बीज के उपयुक्त क्षेत्र में गिरने से वह क्रमशः फिर स्वतंत्र एवं स्वाधीन जीवन आरम्भ कर पुष्ट तथा परिवृद्ध होता है। उस बीज में पूर्व जीव की सम्पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति छिपी रहती है जो कि समयानुसार क्रमशः दृष्टिगोचर होती है अतः बीज पूर्व पुरुष के जीव भाव का एक छोटा सा प्रतिनिधि है। उसके सम्पूर्ण शरीर का अंश बीज में छिपा रहता है जो कि कालांतर में पुष्ट व्यक्त तथा प्रकाशित होता है इस प्रकार जीवों की परंपरा श्रेणी चलती है।

वाइजमैन सम्पूर्ण शरीर का बीज के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं मानते। आप का कहना है कि जीव शरीर दो भागों में विभक्त है। पहले भाग को बीज तथा दूसरे को आवरण भाग कहा जा सकता है। बीज भाग प्रकृति प्राणी तथा जीव है। आवरण भाग केवल बीज भाग को ढके रहता है। आवरण का निर्माण बीज से ही होता है। बीज अपने दो हिस्से करता है एक भाग बीज रहता है दूसरा भाग बाहर प्रकृति के आक्रमण से रक्षा करने लिये गठित और निर्मित होता है। बीज का धर्म आवरण में होता है। जैसा बीज होता है उसीके अनुसार आवरण भी होता है। बीजसे उत्पन्न शरीर की रक्षा करना आवरणका काम है बाई प्रकृतिके अत्याचार और उपद्रव के कारण आवरण स्थापित और परिवर्तित होता है। आवरण के विकार ग्रसित होने से बीज का कुछ नहीं बिगड़ता तथा आवरणकी उन्नतिसे बीज की उन्नति भी नहीं होती। जीवनकी प्रथम अवस्थामें बीज आवरणकी सृष्टी करता है तत्पश्चात् आवरण पुष्प होकर बीज की रक्षा करता है। योवनावस्थामें बीज जीवनका प्रधान कार्य आरम्भ करता है। स्वयं अपना विभाग करता है तथा कुछ भाग बाहर निकाल देता है यह भाग अलग होकर स्वतंत्र जीवन लाभ करता है तथा स्वभावानुसार अपना नया आवरण बनाकर जीवन आरम्भ करता है। इसी घटनाका नाम सन्तानोत्पादन है।

वाइजमैनका मत यह है कि जीव पितृ-पितामहके धर्म के अतिरिक्त और भी कई नये धर्म सहित जन्म ग्रहण करता है तथा एक स्वतंत्र जीवन आरम्भ करता है इस धर्म को उसका सहज धर्म कह सकते हैं। कुछ दिनोंके बाद उसके जीवनमें नाना प्रकार की शक्तियां उसके शरीर और अन्तःकरण को परिवर्तित कर देती हैं इस प्रकार वह अपने जीवन में एक नई श्रेणी का धर्म उपार्जन करता है पैतृक धर्म और सहज धर्म के अतिरिक्त इस उपार्जित धर्म को अर्जित धर्म कहा जा सकता है। लामार्कके मतानुसार ये तीनों लक्षण सन्तान में संक्रामित होकर वंश में प्रतिष्ठा और पुष्टि लाभ करते हैं। परन्तु इस नये सम्प्रदायके अनुसार केवल पैतृक और सहज धर्म ही वंश में संचारित होते हैं। अर्जित धर्मके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ीमें जानेका प्रमाण नहीं मिलता। व्यक्ति विशेषकी जीवन रक्षा करनेमें दोनों सहज और अर्जित धर्म सहायता करते हैं किन्तु वंश और जाति रक्षा करनेमें सहज धर्म का पूर्ण प्रभाव होता है। प्राकृतिक निर्वाचन सहज धर्ममें से कुछ को चुन कर क्रमशः पुष्ट तथा परिस्फुट करता है और कुछ का लोप कर देता है। सहज धर्ममें से जो जीवन के अनुकूल हैं उन्हीं की क्रमशः उन्नति होती है और जो प्रतिकूल है वे कई एक पीढ़ी के पश्चात् लुप्त हो जाते हैं। मनुष्यों में यदि पाण्डित्य या संगीत-पटुता किसी वंश का सहज धर्म हो और यदि वह किसी प्रकार जीवनानुकूल हो तो वह वंश परंपरामें पुष्ट हो सकता है और यदि वह किसी व्यक्ति विषेशकी अर्जित की हुई विद्या हो तो संतान को या दूसरी पीढ़ी को उसके लाभ करने की संभावना नहीं है।

जीवके विकासका मुख्य कारण बीज की उन्नति है। बीज की जब से रचना हुई है प्राकृतिक चुनाव द्वारा क्रमशः उसकी उन्नति हुई है ज्योंही उसका आवरण जीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है उसको त्याग कर वह अपना नया आवरण बनाकर स्वतत्र जीवन लीला आरम्भ करता है अतः जीवकी मृत्यु नहीं होती वह केवल आवरण बदल कर पुनर्जन्म ग्रहण करता है।

पतृक धर्म किस प्रकार और किस मात्रा में बीज से जाकर संतान में संक्रमित होता है इस विषय पर गैलटन और मेन्डल महोदयों ने विषेश रूप से खोज किया है।

सूर्य मण्डल की उत्पत्ति

[लेखक—श्री छोटूभाई सुथार, बी. एस-सी., साहित्य-विशारद]

सौर परिवारके सभी सदस्य एकायक नहीं आ मिले हैं। तारकोंकी परस्परकी दूरीके हिसाबसे भी देखें तो सूर्य मंडलका अन्तिम ग्रह प्रान्तक (प्लुटो) भी सूर्य के बहुत निकट का है। समस्त ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, उल्का इत्यादि के साथ सूर्य त्वरित गति से आकाश में भ्रमण कर रहा है। इन सभी का अटूट सम्बन्ध है। अतः सौर परिवारकी उत्पत्ति का कोई सामान्य कारण होना चाहिये ऐसा समझ में आया है।

सौर परिवारकी उत्पत्ति के सम्बन्धमें एक मत फ्रेंच वैज्ञानिक लाप्लासका है। उसके हिसाब से अनेक युग पहले हमारा आजका सौर मंडल एक बड़ी निहारिका था। यह निहारिका अत्यन्त विस्तृत बहुत पतली और धीरे-धीरे घूमने वाले वायु द्रव्यकी थी। आहिस्ता-आहिस्ता वह ठंढी पड़ने लगी। जैसे जैसे वह ठंढी पड़ती गई वैसे वैसे गुरुत्वाकर्षण बलसे उसका आकार संकुचित होता गया। इस संकोचकी स्थिति में उसका आकार तो छोटा होने लगा किन्तु उसकी अक्षपर घूमने की भ्रमण-गति बढ़ने लगी। धीरे धीरे निहारिका का स्वरूप और भी छोटा होता गया और तब उसकी भ्रमणगति ज्यादा तीव्र होती गई। बादमें एक समय ऐसा आया कि जब इस भ्रमणगति का निर्वाह निहारिकाकी केन्द्रस्थ आकर्षण शक्ति ने कर पाया। परिणाम यह हुआ कि अति वेगसे घूमने वाली निहारिका के ऊपरका कुछ अंश अवकाश में टूट पड़ा। टूटा हुआ यह पदार्थ निहारिका द्रव्य का वायव्य (गैसरूप) पिंड ही था। वह पहले वलयाकार था। उस प्राप्त हुई गतिके अनुसार वह निहारिका के चारों ओर वर्तुलाकार में परिभ्रमण करने लगा। समय समय पर ऐसे अनेक पिंड निहारिका में से टूट पड़े और वे सब केन्द्रस्थ निहारिका के चारों ओर घूमने लगे। धीरे धीरे इन सब वलयाकार पिंडों ने गोलाकार रूप धारण किया। अन्त में केन्द्रस्थ बचा पदार्थ सूर्य बना और टूटे हुये पिंड उसके ग्रह इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्लुटोका जन्म पहलेहुआ होगा और बुधका सबके पीछे।

इस सिद्धान्तको निहारिकासिद्धान्त कहते हैं। बीच के एक चित्र में उसके अनुसार ही उत्पत्ति कथा अंकित करने में आई है।

पाठक देखेंगे कि अति वेगसे घूमती हुई निहारिकाका कोई एक भाग पहले ऊंचा उठता है। वही बाद में अलग होकर अवकाश में जा गिरता है और ग्रहरूप धारण करता है। नीचे ऐसी एक सर्पिल निहारिका का चित्र देखने में आता है।

समझने में यह सिद्धान्त ठीक है किन्तु इसमें कई दोष हैं। पहली बात यह है कि अति वेगसे घूमती निहारिका में से आकाश में द्रव्य फेंका जाय तो भी उसकी भ्रमण-गतिमें मंदता नहीं आती है। इस हिसाब से देखें तो अत्यन्त वेगवान् निहारिकाके अवशेषके रूप में सूर्य की आधुनिक अक्षपरिभ्रमणगति बहुत होनी चाहिये। दर असल औसत है ही नहीं। सूर्यकी अक्ष परिभ्रमण गति २५ दिनकी है। निहारिका सिद्धान्तके हिसाब से यह गति मंद है। निहारिकाके रूपमें अति वेग से घूम कर अनेक ग्रहोंको जन्म देने वाली और आजका सूर्य रूप प्राप्त करने वाली निहारिकाकी वास्तविक गति सूर्यकी आधुनिक गति से कम से कम ५० गुनी होनी चाहिये। इस बात के
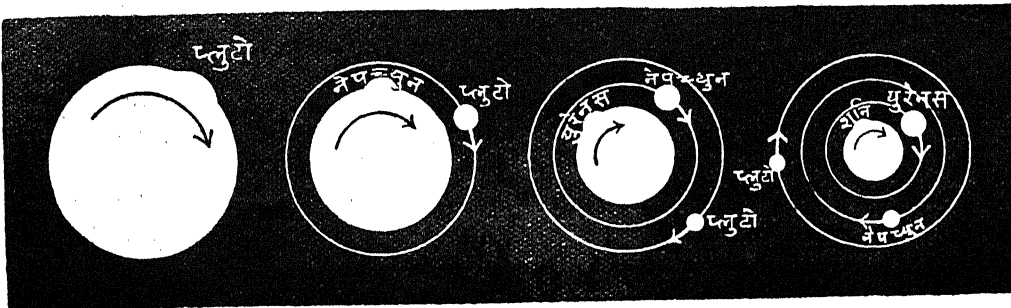
साथ साथ हमें यह भी याद रखना चाहिये कि इस प्रकार बाहर फैंका गया वलयाकार द्रव्य का पिंड कभी गोलाकार नहीं होता है। किन्तु वह अनेक छोटे छोटे पिंडोंमें (जैसा कि अवान्तर ग्रह हैं या शनिके वलयके द्रव्य पिंड हैं) विभक्त हो जाता है। इन सब बातों के अलावा एक तथ्य और भी है। निहारिकाके अति वेगसे घूमकर टूटने पर ग्रह मंडल नहीं बनते। इस क्रियामें युग्म तारक या सम्बन्ध तारक होने की सम्भावना ही प्रमुख है।

चित्र सर्पिल निहारिका

निहारिका सिद्धान्तको ठीक काम में आता न देखकर उनके नए सिद्धान्तोंका आविर्भाव हुआ उनमें आकर्षण और टक्करके सिद्धान्त महत्वके हैं। पहले के हिसाबसे ऐसा समझने में आता है कि पहले अतीत काल में सूर्य एक तारक था। उस वक्त एक दूसरा बड़ा तारक आकाश में सौरगति से भ्रमण करता हुआ हमारे सूर्यके बहुत ही समीप होकर दूर अवकाशमें चला गया। दोनों के बीच का अन्तर कम हो गया था। इस वजह से और बड़े तारककी आकर्षण शक्तिके कारण सूर्यमें प्रचंड ज्वार उठा। सूर्य की केन्द्रस्थ गुरुत्वशक्तिकी अक्षमता के कारण ज्वार के रूपमें उठा हुआ सूर्य-द्रव्य आकाश में टूट पड़ा। पहले पहल उस द्रव्य की दौड़ (गति) उस बड़े तारक की ओर थी। किन्तु उसके दूर होते ही कुछ द्रव भाग सूर्य गुरुत्वाकर्षणसे वापिस सूर्य में आ पड़ा और बाकी में से कुछ भाग छिन्न भिन्न होकर उसे अलग होते समय की मिली हुई गतिके जोरके अनुसार, सूर्यकी चारों ओर परिभ्रमण करने लगा।

दूसरा सिद्धान्त सर जेम्स जीन्सका है। उनका कहना है कि वह प्रचंड तारक, सूर्य के इतना समीप आगया था कि पहले के सिद्धान्त के मुताबिक सूर्य द्रव्य आकाशमें फैल गया, सामनेके तारक पर भी उसी प्रकार का ज्वार आया होगा। दोनों तारक अलग होते ही, उन दोनोंको स्पर्श करने वाला वह बीचका तन्तुमय द्रव्य आकाश में टूट गया। और उसके अनेक अंश बन गये। यह द्रव्य सिंगार के रूपमें टूट पड़ा होगा। ऐसा सरजीन्स का कहना है। इस प्रकार बने हुए ग्रहों में बीच के ग्रह बड़े होंगे और दोनों ओरके छोटे छोटे। इस सिद्धान्तको समझानेके लिये आगे दो चित्र दिये जाते हैं।

इस चित्र में दोनों एक दूसरे के नजदीक आते हैं आगे के एक चित्रमें सूर्यमें से टूटा द्रव्य कैसे ग्रहोत्पत्ति करता है, दिखाया है।

उपरोक्त सिद्धान्तके अनुसार एक वस्तु प्रतिपादित होती है।
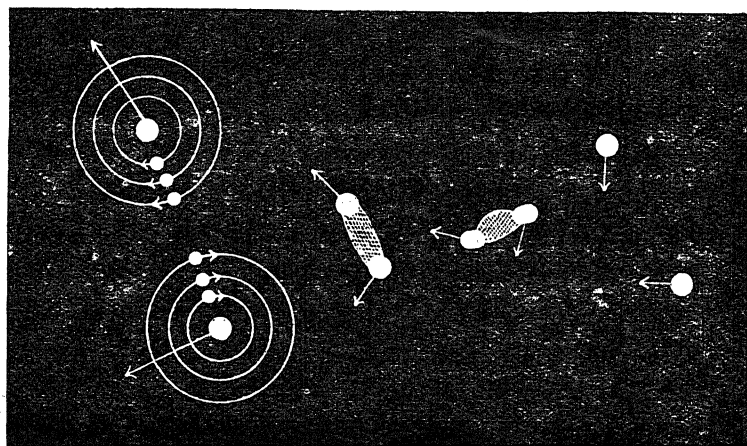
दो तारकों के निकट आने पर और सूर्य द्रव्य के टूट जाने पर ग्रहों की उत्पत्ति होती है। अब हम देखें कि इस प्रकार द्रव्य के फेंके जाने पर उसमें से यह बन सकते हैं या नहीं।

डॉ० स्पाट सर (बोल दुनी० अमरीका) के हिसाब से मालूम होता है कि ऐसा होना असम्भावित है। संक्षेप में उनकी दलीलें ये हैं—सूर्य की वायु अति उत्तप्त दशा में है। सूर्यकी बाहरी सतह का ऊष्णातापमान ६०००° सेन्टीग्रेड है और केन्द्रस्थ उष्णातापमान अनेक करोड़ अंशों का। वहांका दबाव भी भीषण है। सूर्यकी सतह परका गुरुत्वाकर्षण बल इतना भारी है कि यदि पृथ्वी के एकाध मनुष्य को वहां रखकर तोला जाय (अलबत्ता सूर्य की प्रचंड गरमी से उसका रक्षण करते हुए) तो उसका वजन २८ गुना भारी होगा। इसका मतलब यह हुआ कि सूर्यकी बाहरी सतह पर केन्द्रका बहुत खिंचाव है। बाहरी सतह हमेशा अंदर की ओर खिंची जाती है। अत: केन्द्रस्थ प्रचंड उष्णातापमानके साथ साथ वहांका दबाव भी अति भयंकर है।

ऐसे प्रचण्ड उष्णातापमान और दबाव वाले सूर्य में से एकाध पिंड एकाएक बाहर आकाश में धँस पड़ें तो क्या हो सकता है? अलग होने वाले पिंडका अन्दरूनी द्रव्य, अंदरसे बाहर आने के लिये बाहरी सतह पर दबाव डालेगा। पिंडकी बाहरी सतह इस दबाव को सहन न कर सकेगी, क्योंकि यही पिंड जब सूर्य में था तब सूर्य के आकर्षण बल से, पिंडका इस प्रकार बाहर जाने का प्रयत्न हुआ द्रव्य संतुलित हो रहता था। यहां अब, आकाश में उसे स्थिर रूप में रखे वैसा कुछ नहीं है। परिणाम स्वरूप पिंड के अंदर का द्रव्य प्रचंड वेगसे बाहर निकल आयगा।
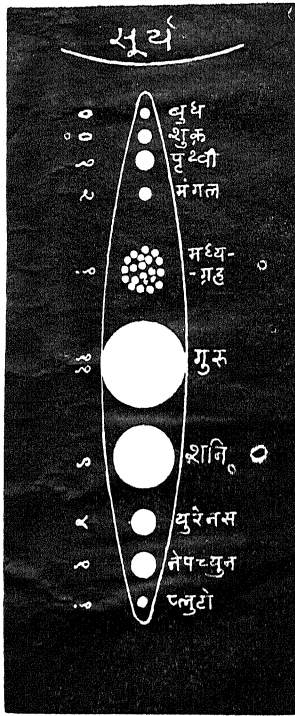
अति उच्च शक्ति वाले बम के अंदर का रासायनिक द्रव्य भी प्रक्रिया द्वारा अतितप्त वायुको जन्म देता है। इस वायुका दबाव बमकी बाहरी सतह पर इतना होता है कि आखिर में बम फट ही जाता है और उसके टुकड़े टुकड़े होकर अनेक दिशाओंमें बिखर पड़ते हैं। उपरोक्त सूर्य पिंडके साथ भी ऐसा ही घटता है। वहां बमकी रासायनिक प्रकियाकी अपेक्षा उसकी अन्दरूनी शक्ति पहले से ही मौजूद है और इसे पकड़ में रखने वाली तारक गुरुत्व शक्ति का नितान्त अभाव है।

इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य में से निकला हुआ द्रव्य ग्रह बननेके बजाय फिर फट जायगा। गाणितिक हिसाब से भी मालूम हुआ है कि इस प्रकार फटनेकी क्रियाभी बहुत थोड़े घंटों में समाप्त हो जायगी और यह समय भी इतना थोड़ा है कि दो तारक इस प्रकार एक दूसरे के नजदीक आकर या तांडव खेल कर, सृष्टि को शायद ही जन्म दे सकें और देनेकी कल्पना करने परभी उनका ग्रह के रूप में परिवर्त्तित होना बिलकुल असम्भव है। उनका तो सिर्फ वायव्य रूपही हो जायगा।

किन्तु आधुनिक प्रयोगों से इस बात को समर्थन नहीं मिलता है। सामान्यत: किसी पदार्थ में से शक्ति जिस गति से बाहर आती है उसका हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि अन्दरूनी शक्ति की इस प्रकार बाहर बह जाने की गति बहुत मंद रहती है। पहले तप्त द्रव्य पिंडके बाहरकी सतह बहुत जल्द ठंढी पड़ जाती है और वह अन्दरूनी गरमी के बाहर निकलने के मार्ग में अवरोधक बन जाती है। अन्दर का द्रव्य जल्दी ठण्डा नहीं हो पाता है। इस हिसाबसे ग्रहों की अंदरूनी पूरी गरमीको बाहर निकल जानेमें अनेक दिनोंकी लम्बी अवधि चाहिये, किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं, क्योंकि उससे कहीं पहले ग्रहके अन्दरका वह द्रव्य टूट-फूटकर अवकाशमें आ गिरा होगा।

संक्षेप में यही कि तारक में से उत्क्षिप्त किसी भी प्रकार द्रव्य एकाएक सीधे ग्रह में परिणात नहीं होता है। इस प्रकार ग्रहोत्पत्ति होती ही नहीं है। यों हम फिरसे सूर्य मंडल के अस्तित्व के सम्बन्ध में बिना सिद्धान्तके हो जाते हैं। संभव है कि निकट भविष्य में कोई नया सिद्धान्त स्थापित हो या ऐसा भी क्यों न हो कि अल्पमति मनुष्य के लिये क़ुदरत का तत्वान्वेषण कभी पूरा न हो।*

* Sky जनवरी ४१ और Astronomy by Russel Dugan and Stuart.

सृष्टि की रचना

[लेखक—कुँवर वीरेन्द्र नारायणसिंह एम. एस-सी.]

सृष्टि आरम्भमें कैसी थी और इसकी किस प्रकार रचना हुई? इस विषय पर विद्वानोंके विभिन्न मत हैं। किसीका विचार है कि आरम्भमें केवल जल ही जल था। कोई आचार्य कहते हैं कि उस समय केवल अग्नि ही थी, कोई केवल प्रकाश ही का होना मानते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंका विचार है कि सृष्टिके आदिमें न तो जल था और न अग्नि, उस समय केवल वायु था उसीसे इस जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। कैन्टका कथन है कि आरम्भमें न तो सूर्य था न ग्रह आदि थे। सम्पूर्ण जड़ पदार्थ वायुके रूपमें थे। वह वायु अत्यन्त हल्का था। और उसमें सोना चांदी, लोहा, आदिके परमाणु उपस्थित थे। इन परमाणुओं के अन्तर्गत परस्पर आकर्षण भी था; इस कारण उस वायुके क्रमशः स्थान-स्थान पर जम कर छोटे बड़े पिंड बन गये। इस प्रकार सूर्य, ग्रह, उप-ग्रहकी रचना हुई है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लाप्लासका नीहारिकावाद अथवा "नेबुलर थ्योरी" है। आपका कथन है कि आरम्भमें वायु राशी एक विशाल भँवरकी तरहके केन्द्रके चारों ओर भ्रमण करती थी। मध्याकर्षण द्वारा वह आवर्त क्रमशः घनीभूत होने लगा तथा उसकी परिधिका घेरा भी कम होने लगा। आवर्तका घेरा कम होनेके कारण भँवरका वेग क्रमशः बढ़ता है। आवर्तन-शील वायुमय पिंडका मेरु-प्रदेश क्रमशः चपटा हो जाता है और उसका मध्य प्रदेश फूल जाने पर उसमेंसे एक अँगूठीका सा आकार निकल जाता है। वही अँगूठी छिन्न-भिन्न तथा घनीभूत होकर ग्रहों की रचना करती हैं और वे उस बीच वाले सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं—इसी प्रकार मध्यस्थ सूर्य आयतन में कम होने लगता है और एक-एक अँगूठी निकल कर ग्रहोंकी सृष्टि करती है। लाप्लासकी सृष्टि-व्याख्या को मानने पर अनेक बातों की मीमांसा हो जाती है। सौर-जगत के अन्तर्गत सम्पूर्ण ग्रह क्यों पश्चिमकी ओर घूमते हैं? सबोंका भ्रमण-पथ क्यों एक समतल क्षेत्र में है? प्रायः सभी एक ही ओर अपनी ध्रुव-रेखा पर क्यों हैं? आदि कारणोंका विवेचन हो जाता है।

हर्शले महोदय बहुसंख्यक कुहरे के आविष्कर्ता है। यन्त्र द्वारा छाया-पथ जो कुहरेकी भाँति दीख पड़ता है वह तारकों का समूह जान पड़ता है। कुहरेके बीचमें आ जानेसे तारापुंज नहीं दिखलाई पड़ता। इस कुहरेमें जगत्-निर्माणके अवशेष अब तक हैं। उसमें जो वायवीय पदार्थ कुछ उद्दीप्त अवस्था में है वही एक समय समस्त विश्व में व्याप्त था। कालान्तर में उसी के जम जानेसे सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदिकी उत्पति हुई। विस्तीर्ण नभप्रदेश की जांच करने पर यह कुहरा कहीं पूर्ण रूप से जम गया है, कहीं जमनेकी अवस्थामें है और कहीं अभी तक जमना आरम्भ नहीं हुआ। इन तीनों अवस्थाओंका परिचय मिलता है, किन्तु छोटे हर्शले ने अपने शक्तिशाली यन्त्र से प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि नीहारिकामें वायवीय पदार्थ नहीं है, दूरस्थ तारापुंज हैं और वे जगत् के निर्माण के कारण नहीं हैं; बल्कि सुसङ्गठित व सुपरिणित बहुतसे जगत्‌के समूह हैं।

न्यूटन महोदयके सूर्य प्रकाशमें सप्त रंग विद्यमान् होनेके प्रामाणिक आविष्कार के पश्चात् किर्कफ की आविष्कृत आलोक-विश्लेषण-प्रणाली ने वैज्ञानिकों को एक नूतन शक्ति प्रदान की। यह ज्ञात हुआ कि सूर्य कुछ-कुछ जमने लगा है; किन्तु उसके मंडल को आवरण किये हुये अभी तक कुछ वायु है जिसमें अनेक पार्थिव द्रव्यों का अस्तित्व है और सारा सूर्य-मंडल इन्हीं पार्थिव उपकरणों से बना हुआ है। सूर्य एक प्रचण्ड उत्तप्त भयानक पृथ्वीकी तरह है, समस्त तारे भी इसी प्रकार हैं, वे सब एक ही वस्तु से बने हुए हैं, अन्तर केवल इतना है कि किसी में कुछ अंश कम हैं किसीमें अधिक, कोई अधिक तप्त है कोई कम। कुहरे में भी पार्थिव उपकरण विद्यमान् हैं, किन्तु वे अभी तक जमे नहीं हैं। उनमें लोहा, तांबा, सोना, चांदी आदि वायु रूपमें विद्यमान् हैं। किसी समयमें वे भी जम जावेंगे। कोई तारे होने तक पहुँच गया है; कोई जमकर तारा होनेकी तैयारी कर रहा है।

सारे जगत्‌की उत्पत्तिके सम्बन्धमें लाप्लासके उपरोक्त सिद्धांत से स्पष्ट हो जाता है जैसा कि कहा जा चुका है वेग वृद्धिके साथ केन्द्रापसरण प्रवृत्ति की वृद्धि होने से उस द्रव जड़ पिंडका मध्य प्रदेश फूल गया तथा मरु प्रदेश सिकुड़ गया। क्रमशः संकुचित होने के कारण केन्द्रापसरण के बढ़ जाने से स्फीत निरक्ष देश मध्यवर्ती तरल पिंड से अलग होकर एक अँगूठी के आकारका हो गया। फिर यह देखा गया है कि भीतर एक पिंड अपने एक अक्ष पर पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूम रहा है। एवं क्रमशः घनीभूत

व संकुचित हो रहा है तथा एक विशाल चक्राकार अंगूठी उसकी अनुवर्तिनी न हो, उसको वेष्टन कर उस ओर घूम रही है। कुछ कालमें पिंड और भी संकुचित हो गया तथा एक ओर छोटी अँगूठी उत्पन्न हुई। यही एक-एक ग्रहकी सृष्टिका मूल कारण है। ये अँगूठियां समभावसे न रह कर, विभिन्न बलके आधीन होने के कारण छोटे बड़े टुकड़ोंमें परिणित हो जाती हैं जो कि विभिन्न वेगसे एक ही पथ पर भ्रमण करते हैं। कुछ समयके पश्चात् परस्पर आकर्षित होकर वे टुकड़े एक पिंड हो जाते हैं। अतः पहले जो अँगूठी थी वही पिंड अब गोलाकार होकर उस विशाल पिंडके चारों ओर भ्रमण करने लगता है। यही छोटे गोलाकार एक एक ग्रह हैं। कालांतर में वे ग्रह शीतल और घनीभूत होकर एक और अँगूठी उत्पन्न करते हैं फिर यह अँगूठी पिंडत्व को प्राप्त होकर एक-एक छोटे उपग्रह हो जाते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी से एक ओर, मंगलादि ग्रहों से एकसे अधिक चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। भविष्यमें पृथ्वीके अन्य अँगूठी उत्पन्न करने की सम्भावना नहीं। कारण यह है कि वह तरलसे कठिन अवस्था में परिणित हो गई है। किन्तु शनिश्चर ग्रह में अभी तक अँगूठी है और उसमें सर्वदा परिवर्तन होते रहते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये प्लेटोने तेलका तरल पिंड निर्माण कर उसको कौशल-क्रम से घुमा कर हैबके सूर्य और ग्रहको उत्पन्न किया।

सौर जगत्की विचित्रताकी आलोचना करने पर ज्ञात होता है कि इस ब्रह्माण्डमें ज्योतिर्गणका अवश्य कुछ सम्बन्ध है। हमें ज्ञात है कि पृथ्वीका भीतरी भाग बहुत गर्म है। भूकम्प, ज्वालामुखी आदिका कारण-भूगर्भस्थ गर्मी ही है। जितने गर्म पदार्थ हैं उनमेंसे गर्मी निकलती है और कुछ समय के पश्चात् शीतल होकर उनकी परिधि भी कम हो जाती है। अतएव बहुत समय पहले भूमण्डल बहुत उत्तप्त अवस्थामें था, गर्मी के कारण तरल हो गया था उसमें भी पहले जब गर्मी की ओर अधिकता थी निःसन्देह पृथ्वी वाष्पमय थी। सूर्यसे भी निरन्तर गर्मी निकल रही है। कोयलेकी एक पृथ्वी गढ़ कर ३६ घंटे जलानेसे जितनी गर्मी उत्पन्न हो सकती है, सूर्यके प्रतिवर्ग फुटसे हर घंटे उतनी गर्मी निकल रही है। अब प्रश्न यह है कि सूर्यमें गर्मी कहांसे उत्पन्न होती है? इसके विषयमें भी अनेक मत हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि सूर्य पर दहनादि क्रिया का प्रचण्ड वेग ही इसका कारण है। कुछ कहते हैं सूर्य पर निरन्तर उल्का पिंड गिर रहे हैं। उन्हींके आघातसे इतनी गर्मी निकल रही है। किन्तु हेलम होलज्ज आदि वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध किया है कि रासायनिक क्रिया तथा उल्का पतनसे इतनी गर्मीका उत्पन्न होना असम्भव है। आपका सिद्धान्त है कि सूर्य अपने विशाल शरीर को क्रमशः सिकोड़ रहा है इसी देह संकोचसे इतने ताप का उत्पन्न होना सम्भव है। जितना ही सूर्य संकुचित हो रहा है उतनी ही गर्मी उत्पन्न हो रही है। हेलम होलज्जके गणनानुसार सूर्यके व्यासका केवल ८५ मील भाग कम होनेसे जितनी गर्मी उत्पन्न होती है उतनी गर्मी सूर्यसे २२६० वर्षमें निकलती है। आपकी धारणा है कि सृष्टिके आदि समयमें सूर्य सम्पूर्ण सौर-जगतमें था और क्रमशः संकुचित होकर वर्तमान आकार धारण किया है और उसी संकुचनके गुणसे अभी तक ताप वितरण कर रहा और करता रहेगा। यद्यपि संकोचकी भी सीमा है और एक समय आवेगा जब कि सूर्य अपनी गर्मी को समाप्त कर ठोस होकर शीतल हो जायगा, किन्तु उसके लिये अभी बहुत समय शेष है।

सौर जगत्के विषयमें जो कुछ कहा गया है, दूसरे तारोंके पक्षमें भी यही कहा जा सकता है। प्रत्येक तारा एक-एक जगत केन्द्र स्वरूप है और सबकी उत्पत्ति इसी प्रकार हुई होगी। प्रकाशके विश्लेषणसे ज्ञात हुआ कि सब तारे एक ही पदार्थके बने हैं। कोई-कोई तारे युगपर्यन्त प्रकाशित होकर अन्त में पृथ्वी की भाँति निष्प्रभ हो गये हैं और आकाश में ऐसे भी तारे हैं जो वाष्पमय है एवं आकाशके एक प्रकाण्ड भागको अधिकृत कर रखा है। उनके शरीर से भविष्यमें ग्रह-उपग्रह सहित एक नूतन जगत्की उत्पत्ति होगी।

सृष्टिकी उत्पत्ति के सम्बन्धमें कुछ अन्य घटनाओं की चर्चा करना अनावश्यक न होगा। हम साधारणतः दो चार तारों का टूटना अथवा उल्कापात देखते हैं, वास्तवमें वह तारों का टूटना नहीं है जो पदार्थ पृथ्वी पर गिरते हैं, वे केवल लोहे और मिट्टी के बने होते हैं और उल्कापिंड कहलाते हैं। उनमेंसे अधिकांश इतने छोटे होते हैं कि पृथ्वीके वायुमें आते ही उसकी रगड़ से जल जाते हैं और चूर्ण विचूर्ण होकर वायुमें बहते रहते हैं। उनको पृथ्वी तक पहुँचने का अवकाश ही नहीं मिलता। इस प्रकार सम्पूर्ण आकाशमें उल्कापिंड फैले हुए हैं और कहीं-कहीं उनका विशाल झुंड एकत्रित होकर विचरण कर रहा है। पृथ्वी अपनी परिक्रमामें इनसे भिड़कर उनको चूर्ण कर देती है और जब कभी उल्कापिंडके झुंडसे साक्षात हो जाता है उस समय उल्कापात न होकर उल्कावृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी

विशाल पूंछ सहित धूमकेतु दिखलाई पड़ते हैं। कई धूमकेतुओंका भ्रमणपथ उल्काझुंड की ही भांति होता है और वे सूर्यके चारों ओर भ्रमण करते हैं। धूमकेतु जैसा प्रकाश करता है पृथ्वी पर एकत्रित किये हुए उल्कापिंडके जलाने पर उसी प्रकारका प्रकाश होता है। सम्भवतः धूमकेतु उल्कापिंडों का समूह मात्र ज्ञात होते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि ये सौर-जगत् में उपादानभूत वाष्पराशिके अवशेष हैं। आदि जगत् के वाष्पके दो टुकड़े किसी प्रकार से अलग हो संकुचनशील मध्यस्थ पिंडका अनुसरण नहीं कर सके, वे ही सब धूमकेतुके रूपमें वर्तमान हैं। इस समय जिस प्रकार उल्कापिंड वायुमें कणकी भाँति विस्तृत रूपसे फैले हुए हैं उसी आदि काल में वे शून्य देश में फैले हुए थे। समयानुसार उन्होंने जम कर सूर्य, ग्रह आदि की रचना की। जार्ज डारविन ने सिद्ध किया है कि वाष्पीय पदार्थके असंख्य कणों के दौड़ने से और उल्कापिंडों के भी वैसा ही करनेसे एक ही प्रकारकी घटना होती है। अतएव नीहारिका से जगत् की उत्पत्ति जिस प्रकार समझाई जा सकती है उसी प्रकार करोड़ों, आकाशमें विचरण करने वाले उल्काझुंडों से भी वह समझाई जा सकती है।

दोनों मतोंकी पुष्टि करते हुए लकियर महोदय सृष्टिकी उत्पत्तिकी इस प्रकार विवेचना करते हैं—उल्कापिंड झुंडके झुंड आकाशमें फैले हुए हैं और अन्य ग्रहों की भांति सूर्य-प्रदक्षिणा कर रहे हैं। धूमकेतु, उल्कापिंडके समूह होनेसे परस्परकी धूम-वाष्प उगलता है। सौर-जगत् में पृथ्वी से भेंट होने पर उल्का-वृद्धि होती है। पृथ्वी क्रमशः इस प्रकार उल्कापिंडोंको निगल कर पुष्ट हो रही हैं। यदि यह मान लिया जाय कि उल्कापुंजकी परस्पर रगड़से पृथ्वीकी उत्पति हुई है तो वह रगड़ अब तक हो रही है। अतएव पृथ्वीके बननेका काम कभी समाप्त नहीं होता। पृथ्वीकी तरह दूसरे ग्रहोंकी भी यही दशा होगी। इस बातका प्रमाण मिलता है कि सूर्य मण्डल और बुध ग्रहके बीचमें असंख्य उल्कापिंड वर्तमान हैं। यह भी देखा गया है कि समय समय पर कुछ तारे जल कर बुझ जाते हैं, इसका भी कारण उल्का पिंडोंकी रगड़ कहा जा सकता है। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि निसन्देहः निहारिका में वाष्पीय पदार्थ है, किन्तु वह भी एक विस्तीर्ण उल्काझुंड है। इसकी बड़े बड़े धूमकेतुओं से तुलना हो सकती है। ये पिंड आपसमें लड़ कर चूर्णित तथा वाष्परूप में होकर समय-समय पर जम रहे हैं और छोटे-छोटे ग्रहों एवं तारोंकी उत्पति करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ ऐसे तारे हैं कि जो जम कर घनीभूत होकर तरल पिंड हो गये हैं पर ऊपरसे शीतल वाष्पका आवरण है। ये संकुचित होकर गर्मी उत्पन्न कर रहे हैं और उष्णतम अवस्था में है। कुछ अंशों में वे हमारे सूर्य की भाँति हैं उनमें नूतन स्फूर्ति एवं चञ्चलता है। दूसरे तारे ऐसे हैं जिनमें संकोचन होनेके साथ ही साथ उनकी उष्णताका क्रमशः ह्रास हो रहा है। दीप्तिकी पराकाष्ठा पर पहुंच कर क्षीण होना आरम्भ हो गया है। कुछ ऐसे तारे हैं जिनका निर्माण हुआ ही चाहता है। वे घनीभूत होकर शीतल हो गये हैं। कभी प्रकाश करते हैं, कभी बुझते हैं। अन्य ऐसे हैं जो बुझ गये हैं। शीतल, अन्धकार एवं जीवनहीन पिंड हो गये हैं। सम्भवतः चन्द्र, पृथ्वी, मंगल आदि छोटे छोटे पिंड एक समय में विशाल सूर्य के अङ्ग थे जो कि अलग होकर छोटे होते-होते इस शेषोक्त अवस्थाको पहुँच गये हैं।

पृथ्वीको तरल अवस्थासे कठिन अवस्थामें परिणित हुए कितना समय व्यतीत हुआ है इसकी भी गणना करनेकी चेष्टा की गई है। अब भी पृथ्वीका भीतरी भाग अत्यन्त तप्त है। प्रत्येक वर्ष पृथ्वीसे बहुत सी गर्मी निकल कर चारों ओर विकीर्ण हो रही है अर्थात पृथ्वी क्रमशः ठंडी हो रही है। इस समय पृथ्वीकी क्या दशा है? तथा हर वर्ष कितनी गर्मी निकलती है इसकी गणना करके यह ज्ञात किया गया है कि कितने वर्ष पहले पृथ्वी तरल अवस्थामें थी? इसी प्रकार यह भी बतलाया जा सकता है कि भविष्यमें पृथ्वीकी कब कैसी अवस्था होगी। लार्ड केलविनके गणनानुसार प्रायः १५ करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी पर इतनी गर्मी थी, कि उस समय भूपृष्ठ पर शीतलताका नाम निशान नहीं था, वह तरल अवस्थामें थी। किन्तु टेर महोदय पृथ्वीकी उपरोक्त अवस्थाको १' करोड़ वर्ष पूर्वकी ही मानते हैं। अतः पृथ्वी का पृष्ठ भाग शीतल तथा कठिन हुए प्रायः १ करोड़ वर्ष अथवा उससे भी कम हुआ। तत्पश्चात् उस पर जीवोंकी उत्पत्ति एवं असंख्य प्रकारकी वनस्पतियों और जन्तुओंका विकास हुआ।

सूर्यके ताप विकरणसे भी यह अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वीको इस अवस्था में परिणत हुए कितने वर्ष हुए। सूर्य पृथ्वीको आज कल जिस परिमाणसे तप्त कर रहा है उसका लगभग परिमाण दिया जा सकता है, किन्तु सूर्य सर्वदासे भी इस प्रकार गर्मी नहीं दे रहा है। गणना की गई है कि ५० करोड़ वर्ष पहले सूर्य बिल्कुल ही ताप नहीं देता था। उस समय सूर्यमें ताप-विकरण करनेकी शक्ति ही नहीं थी; अतएव उस समय पृथ्वी

पर जीवोंका अस्तित्व नहीं था, वर्षा नहीं होती थी, नदियां नहीं थीं अर्थात् पृथ्वी शून्य और अन्धकार अवस्थामें थी। कई करोड़ वर्षके पश्चात् सूर्यने ताप विकरण करना आरम्भ किया और धीरे-धीरे आधुनिक अवस्था को प्राप्त हुआ।

पृथ्वीके इतिहासमें एक ऐसा भी युग था जिस समय बड़े बड़े भूखण्ड महाबन से ढके हुए थे। क्रमशः पृथ्वी पर उनका अवशेष जम कर एक विस्तीर्ण चादर सा हो गया। कुछ कालके उपरान्त भूगर्भके संकोचनसे उस भूखण्डके समुद्र गर्भके चारों ओरकी नदियोंने उन पर मिट्टीकी चद्दर जमा दी। इस प्रकार समुद्र गर्भके पट जाने से उस पर फिर महाबन हुआ। फिर वैसी ही घटना हुई और मिट्टीका थाक जमा। इस प्रकार न मालूम कितने वर्षोंसे पृथ्वीका निर्माण कार्य हो रहा है। पृथ्वीको खोदने पर ३०-४० हाथ मोटी एक-एक पत्थरके कोयलेकी तह मिलती है और कहीं-कहीं इस प्रकार एकके ऊपर एक ढाई तीन सौ तहें मिलती हैं। हेक्सलेने गणनाकी है कि पचास पीढ़ी वृक्षोंके देहावशेषसे एक फुट कोयले की तह जमती है और एक पीढ़ीका जीवन-काल दस वर्ष है। इस प्रकार प्रायः तीन सौ तहोंके जमने में ७० लाख वर्षसे भी अधिक लगते हैं। इस घटनाके आरम्भसे कई लाख वर्ष पहले पृथ्वी आधुनिक अवस्था को प्राप्त हो चुकी होगी। इस प्रकार विभिन्न तर्कों द्वारा पृथ्वी की आयु निश्चित करने की चेष्टाकी गई है। भूपृष्ठके काठिन्य प्राप्ति के पश्चात् यदि पृथ्वी की अवस्थाका हिसाब लगाया जावे तो उसको केवल कुछ करोड़ अथवा कई लाख वर्ष हुए हैं। उसके पहले पृथ्वी इतनी तप्त थी कि उस पर जीवोंका निवास असम्भव था।

वैज्ञानिकोंने केवल सृष्टिकी उत्पत्ति एवं उसकी क्रमशः रचना का ही अध्ययन नहीं किया है, प्रत्युत भविष्य में उसका क्या स्वरूप होगा? इस विषय पर भी प्रकाश डाला है। चन्द्रमण्डल समुद्रकी जल राशिको निरन्तर पृथ्वीके दैनिक आवर्तनके प्रतिकूल खींच रहा है, परिणाम स्वरूप पृथ्वीके आवर्तनका वेग क्रमशः कम हो रहा है। अब पृथ्वी के एक चक्कर लगाने का समय कुछ बढ़ गया है अर्थात् दिन रातका परिमाण अब अधिक हो गया है। इस प्रकार अगर पृथ्वीके आरम्भमें आवर्तन वेग वर्तमानकी अपेक्षा दुगना रहा हो तो आजकल जिस २४ घंटे का एक दिन और रात होता है उस समय वैसे १२ घंटेका एक दिन और रात होता था। अतएव पृथ्वीकी जो अवस्था उस समय रही होगी उससे आज कलकी अवस्थाकी समता नहीं हो सकती। आवर्तन वेगमें कमी होनेके कारण पृथ्वीसे चन्द्रमाकी दूरी भी बढ़ रही है। इस समय २४ घंटेमें पृथ्वी अपनी धुरी पर आवर्तित हो सूर्यकी परिक्रमा करती है, किंतु एक समय ऐसा आवेगा जब कि पृथ्वी ११ या १२ सौ घंटे में आवर्तित हो सूर्य की परिक्रमा करेगी। आज कल ३६५ दिनका एक वर्ष होता है उस समय केवल सात आठ दिनका एक वर्ष होगा।

जैसा कि कहा जा चुका है कि सूर्यसे जितनी गर्मी उत्पन्न होती और निकलती है उतना ही वह संकुचित होता जा रहा है। सूर्यकी परिधि प्रति वर्ष ८० हाथके लगभग कम हो रही है। ५० लाख वर्षके पश्चात् सूर्यका आयतन केवल आठवां हिस्सा रह जावेगा और गगन मण्डलमें ऐसे दो एक ठंडे सूर्यमण्डलोंका पता भी लगा है वही परिणाम हमारे सूर्यका भी होगा और यह सर्व विदित है कि सूर्यकी गर्मीसे भी जीवोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं गति सम्पादित होती है, अतः सूर्यके शीतल होनेसे पहले ही सृष्टि जीवशून्य हो जावेगी। इसके अतिरिक्त समस्त जागतिक शक्तिका ह्रास भी हो रहा है। शक्ति तप्त रूपमें परिणित हो रही है। इसका परिणाम यह होगा कि एक दिन ऐसा आवेगा जिस समय शक्तिका प्रकार और भेद नहीं रहेगा। समस्त शक्ति के समोष्ण ताप में परिणित होने से जगद्यन्त्र की गति मन्द हो जावेगी। ग्रह उप-ग्रह गति रहित हो सूर्यसे जा मिलेंगे और सृष्टि एक गतिहीन शीतल विशाल पिंड का आकार धारण करेगी। यदि उस समय तक वर्तमान नियमानुकूल पृथ्वीकी गति रही तो यह परिणाम अनिवार्य है। सूर्य मण्डलके प्रबल आकर्षणसे समस्त ग्रह सूर्यमण्डल को वेष्टन कर घूम रहे हैं, परन्तु परस्परके आकर्षणके कारण कोई ग्रह एक निर्दिष्ट मार्गसे नहीं जाने पाता। अतः इस निर्दिष्ट मार्गसे भ्रष्ट होनेके कारण सम्भव है कि दो ग्रह अकस्मात् एक स्थानमें आ जावें और परस्परकी रगड़से चूर-चूर हो जावें। धूमकेतुके संघर्षणकी आशंका न रहने पर भी यह सम्भव है कि सौर जगत्के बाहर से कोई दूसरा ग्रह हमारे पृथ्वी पर गिरकर उसे चूर-चूर कर दे, नक्षत्र लोकमें इस प्रकारकी आकस्मिक घटना के दो एक दृष्टान्त भी देखे गये हैं। वैज्ञानिकोंने इनके अतिरिक्त अन्य कई एक बातोंकी सम्भावना की है जिससे यह प्रतीत होता है कि जिस सृष्टिके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं भविष्य में एक समय ऐसा आवेगा जब कि यह विशाल रचना क्षीण हो कर एक अन्धकारमय गतिहीन जगत्में परिणित हो जावेगा।

भारतवर्ष के भेड़िया-बालक

[लेखक—सुरेश शरण अग्रवाल, एम. एस-सी.]

हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंमें बहुत सी कथाएँ ऐसी हैं जिनमें यह उल्लेख है कि माता पिताने बालकको जन्मसे ही कहीं बन में छोड़ दिया और फिर वन्य-जन्तुओं के बीच उसका पालन पोषण हुआ। यह कथाएँ पौराणिक होने के नाते असत्य दृष्टिगोचर होती थीं तथा हैं। किन्तु इस लेखमें दो बालकोंकी चर्चा की गई है जिनका लालन पालन भेड़ियों के बीच में हुआ। पाठक इस विवरणको राम कहानी मात्र न समझें। इसके पीछे अमेरिका तथा इंगलैण्ड के बड़े बड़े वैज्ञानिकों के प्रमाण हैं। प्रोफेसर रगिल्स गेट्स (लण्डन विश्वविद्यालय) डा० आर्नोल्ड गेसैल (येल मेडिकल स्कूल अमेरिका), डा. फ्रांसिस मैक्सफील्ड (ओहियो विश्वविद्यालय), डॉ. किंगस्ले डेविस (पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय) और फिर इस विषय के सबसे प्रतिष्ठित तथा अनुभवी ज्ञाता डेनवर विश्वविद्यालयके डा राबर्टसिंग। इस विषय पर प्रोफेसर सिंग तथा गेसैलने पुस्तकें भी लिखी हैं।

डा० सिंगको भेड़िया बालकोंका अध्ययन करते समय तीस बालकों का विवरण श्रद्धास्पद लगा। और उनमें सबसे अधिक भारतवर्ष स्थित बंगाल के जिले मिदनापुर के भेड़िये बालकों का था। मिदनापुरके इन बालकों पर उन्होंने ढाई सौ पन्नों का एक विस्तृत वृतान्त लिखा है जिसमें उन बालकोंके बचाव तथा उनके संरक्षक द्वारा उनके पालन पोषणका भी वर्णन किया है। इसी प्रकार से अमेरिका में भी पेनसिलवेनिया तथा ओहियो नामक स्थानों पर दो लड़कियां पाई गई और यह भी भेड़ियों से उसी अवस्थामें छीनी या बचायी गयी थीं जिसमें मिदनापुर की बड़ी और छोटी भेड़िया बालिका, दोनों के वर्णनोंकी एकता पर कौन चकित हुए बिना नहीं रहेगा ?

भारतवर्ष के दोनों भेड़िया-बालक सर्व प्रथम ९ अक्टूबर १९२० को भेड़ियोंके बीच भेड़ियों की भांति रहते देखे गये थे और देखने वाले एक ऐंगलीकन मिशनरी (इसाई पादरी) रेवेरेण्ड जे. ए. एल. सिंह थे। वह भारतवर्षके आदिम निवासियों में इसाई मत प्रचार के लिये घूम-रहे थे और उनके साथ में कुछ ऐंग्लो-इन्डियन (गोरे) थे जो भारतके इस उत्तरी-पूर्वी भागमें जहां चीते आदि की बहुतायत है, आखेटके लिये थे। एकाकी एक गांव में उन्होंने सुना कि कोई सात मील की दूरी पर एक ऊँची पहाड़ी पर एक 'देव' रहता है। सन्ध्याका समय था उसी ओर वे सब मुड़ पड़े और एक पेड़के तले चीते का आखेट करने का प्रबन्ध किया। यहाँ पर उन्होंने उस पहाड़ी पर से 'देव' के आने की प्रतीक्षा की।

रेवरेण्ड सिंह लिखते हैं :—तब, एकदम, एक बड़ा सा भेड़िया एक भट्ठमें से निकला। उसके पीछे उसीके आकार तथा डील-डौल का दूसरा था। दूसरेके पीछे एक तीसरा था जिसके बाद दो छोटे छोटे भेड़िये थे। इन छोटे भेड़ियों के उपरान्त शीघ्र ही 'देव' निकला। यह एक भयानक जन्तु जिसके हाथ पैर तथा शरीर मनुष्य की भांति थे। उसके तुरन्त बाद ही दूसरा भयानक जन्तु निकला जो पूर्णतया उसी के समान था, किन्तु उससे कुछ छोटा। उनके नेत्र, मनुष्यके नेत्रों के विपरीत चमकीले तथा धंसे हुए थे। परन्तु मैं तुरन्त इसी परिणाम पर पहुँचा कि वह मनुष्य हैं।

"पहले देव ने अपनी कुहनियां भट्ठके सिरे पर रखीं और बाहर कूदनेसे पूर्व इस ओर तथा उस ओर देखता रहा। ऐसा ही व्यवहार छोटे 'देव' ने किया। दोनों के दोनों चारों हाथ तथा पैर पर दौड़ते थे।"

उस समय दूरबीन (Field glasses) केवल रेवरेण्ड सिंह के पास थी, फलत: उनके साथी उन जन्तुओं को मनुष्य नहीं पहचान पाये। आगे चलकर रेवरेण्ड सिंह लिखते हैं—मेरे मित्रोंने देवों को मारनेके लिये बन्दूकें सीधी कीं और यदि मैं मना नहीं करता तो वह उन्हें मार देते। मैंने उनकी बन्दूकें रोकीं और उनमें से दो को अपनी दूरबीन दी और उनसे कहा कि वह 'देव' मनुष्य की संतान है।

रेवरेण्ड और उनके थियोंने दस अक्टूबर १९२० को इन्हीं देव तथा भेड़ियोंको देखा। उन्होंने चाहा कि इन्हें पकड़ें और उस गांव के आदिम निवासियों से अपनी इच्छा प्रगट की कि वे 'देव' तथा उनके स्थान को जालसे (den) घेर डालें। परन्तु 'देव' के डरके कारण उन्होंने अस्वीकार किया। अतएव दूसरे दिन रेवेरेण्ड सिंह एक दूर-स्थित गांवमें गये और वहांसे कुछ लोगोंको लाये कि वे भेड़ियोंको अपने भट्ठमेंसे खोद निकालें। उन गांव वालोंको 'देव' आदि की कुछ भी खबर नहीं थी।

मजदूरी पानेके नाते उन्होंने उपर्युक्त कार्य करना स्वीकार किया।

रेवरेण्ड सिंह लिखते हैं—'फावड़े के कुछ हाथ चलानेके बाद भट्ठ से जल्दी एक भेड़िया निकला और अपनी जान बचाने जंगल में भागा। दूसरा भी शीघ्र ही निकला और प्रथमकी तरह भयातुर भाग गया। इसी तरह एक तीसरा प्रकट हुआ। बिजली की भांति वह उन पर टूट पड़ा और खोदने वालों से बदला लेनेकी ठानी। वह भागता किन्तु शीघ्र ही खोदने वालोंके आगे पीछे दौड़ता और बीच बीच में वह शोर करता था, अविश्राम दौड़ता, कभी जमीनको दांतमें खुरचता और भट्टी के आस-पास किन्तु दूर चक्कर लगाता था।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि इसको पकड़ लूं यह शायद माता भेड़िया रही होगी, जैसा उसके व्यवहार से टपकता था। मैंने आश्चर्यान्वित हो सोचा कि माता भेड़िया बच्चों के लिये तड़प रही है। मैं तो वहां अचेत-सा खड़ा था इतने में उन गांव वालोंने तीर तथा भालोंसे उसे मार डाला और वह गिर पड़ी।

वहां की खुदाई तो आसानी से हो गई। सिंह साहेब का कहना है कि वह स्थान एक डेकची के रूपका था, साफ और चिकना मानो सिमेन्ट किया हुआ हो। स्थान बिलकुल साफ था रक्त क्या हड्डी का भी कहीं कोई चिन्ह नहीं था और फिर कहते हैं—'पूरा भेड़िया परिवार उसी भट्ठमें रहा करता था। दो छोटे भेड़िया और दोनों 'देव' वहां एक कोनेमें थे, चारों एक दूसरेसे चिपटे हुए थे। उनको एक दूसरे से पृथक करना वास्तव में एक समस्या थी। 'देव' छोटे भेड़ियोंकी अपेक्षा अधिक भयानक थे; वे मुँह बनाते, दांत दिखाते और फिर चिपटने को दौड़ते थे।'

मनुष्य की संतानके संरक्षक इस सोचमें पड़े कि क्या करें? तब एकके विचारानुसार उनके ऊपर कम्बल सदृश्य कपड़ा फेंका गया जो कि गांव वाले ओढ़े हुए थे। इस प्रकार भेड़िया तथा बालक अलग किये गये और पकड़ लिये गये। भेड़िये गांव वालोंको दे दिये गए जो उन्होंने बेच डाले और सिंह साहेब उन दोनों बच्चों को मिदनापुर में अपने घर ले आये जहां वह अपनी स्त्रीके साथ एक अनाथालय चलाते थे।

सिंह साहेबको आशा थी कि अनाथालयके बालकोंसे कुछ वर्षों तक सम्पर्कमें आनेके बाद ये भेड़िया बालक भी बिलकुल मनुष्य बालककी तरह व्यवहार करेंगे। बड़ी लड़की, जिसकी अवस्था कोई आठ वर्षकी थी, उसका नाम कमला रखा गया और छोटीका जो केवल डेढ़ वर्ष की थी, अमला। सिंह और उनकी स्त्रीने निश्चय कर लिया था कि इन बालिकाओंकी कथा किसी को बतलायेंगे नहीं अन्यथा बड़ा होने पर उनका विवाह नहीं होगा, परन्तु बहुत दिनों बाद जब वह दोनों बीमार पड़ीं और डाक्टरको दिखलाया तो उसने उनके जीवन की घटनायें जाननें की इच्छा की। तबसे उन बालिकाओं की चर्चा सर्वत्र फैलती गई और शीघ्रही संसार भरमें यह समाचार ज्ञात हो गया।

रेवरेण्ड सिंह और उनकी स्त्री प्रकाशनसे बहुत दुखी हुए। इसी कारणसे नहीं कि उनकी पुत्रियोंका अब विवाह नहीं होगा किन्तु इस कारण से भी कि अब उनके पास दर्शकों, समाचार पत्र-प्रतिनिधियोंकी भीड़ लगी रहेगी और संसारके कोने कोने से पत्र आयेंगे। परन्तु विज्ञानका तो भला इसीमें हुआ कि समाचार प्रकाशित हो गया, क्योंकि इसी प्रकार के कोई ३० मामलोंमें से यह प्रथम था, जब कि मनुष्योंको जानवरोंके बीच में से जानवरोंकी भांति रहते हुए, निकाला गया।

सिंह साहेब और उनकी स्त्री उन्हें नवजात शिशु की भांति पालते पोसते थे और वास्तवमें वे थे ही शिशु अवस्था में आठ और डेढ़ वर्ष के उन बच्चोंको चारपाई पर बांध कर रखा जाता था, वे कपड़े तो तुरन्त फाड़ डालते थे। फलतः उनकी पोशाक लंगोटा ही था। बच्चोंकी भांति वे केवल दूध पीते थे। कच्चा मांस उन्हें नहीं दिया जाता था, जो वे पहले खाया करते थे, उनकी यह आदत बहुत दिन तक रही। कुछ समय पश्चात् एक दिन बिल्ली के बच्चे को उन्होंने कच्चा मांस खाता हुआ देखा, अपनी सूंघने की शक्ति से, जो बहुत दिनों तक उसके साथ रही, उन्हों ने मांस को पहचान लिया।

दूध पर रहते रहते जब इनमें कुछ शक्ति आगई तब, उन्हें चारपाईके बाहर आने जाने दिया गया। वे सूर्य प्रकाशसे डरते तथा घृणा करते थे, परन्तु रातको निरुद्देश चारों टांगों पर घूमा करते थे। उनका व्यवहार मनुष्य की भांति नहीं था। भेड़िये की भांति वे मनुष्य से डरते वह घृणा करते तथा बचते थे। अन्य जीव जन्तु उन्हें प्रिय थे और उनसे इतने परिचित लगते थे कि उनसे बहुत सी बातें सीखीं। वे कुत्तोंसे प्रेम करते थे और शीघ्रही उनसे उन्होंने प्लेट में से दूध लपलप करके पीना सीख लिया और इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उनका दरवाजे पर आना और चारों टांगोंसे फिर अन्दर घुसनेके लिये उसे धक्का लगाना था। आरम्भमें तो उनकी रुचि, उनकी लगन, उनकी सहानुभूति सब जानवरों की ओर थी। रेवरेण्ड

सिंह की डायरीसे विदित होता है कि कितने कष्टसे तथा धीरे धीरे वे उनका ध्यान जानवरों से मनुष्योंकी ओर लाए । उनको यह सिखानेके लिये कि मनुष्य की भांति टांगोंके बल खड़े हों उन्हें लम्बी लम्बी तथा जटिल कसरतें करानी पड़ीं। यही नहीं उनसे एक बिल्लीकी नकल करवाई गई ताकि वह पेड़ पर चढ़े जिससे उनकी टांगके पट्ठे ढीले पड़ें। पेड़से कूदनेमें वे मनुष्यकी नकल तो कदापि नहीं करते, बिल्लीकी तो कर भी ली। मनुष्य की संगत उन्हें भाती नहीं थी; वे घण्टों तक बिल्ली के बच्चों के साथ साथ फिरते थे। दोनों में से कोई भी सीधे खड़े होकर दौड़ना नहीं सीख पाया, यद्यपि वे सीधे चलना सीख गये, परन्तु कुछ विचित्र ढंग से चलते थे।

अमलाकी अचानक मृत्युसे उनकी उन्नति में वाधा पड़ी अमला छोटी होनेके कारण जल्दी जल्दी सीखती थी और फिर कमला उसकी नकल कर लेती थी। संसार भर में अपने सदृश एक के देहावसन पर कमला को बड़ा दुःख पहुँचा और वह निस्तेज-सी हो गई। ऐसा अकेलापन सब कठिनतासे सह सकते हैं परन्तु भाग्यवश उसकी रुचि मनुष्योंमें बढ़ती गई और विशेष कर श्रीमंती सिंहसे जो सदैव उसे भोजन कराती थी।

धीरे-धीरे कमलाका मानव-प्रेम बढ़ा। वह लगभग ५० शब्द बोलना भी सीख गई और प्रायः उनसे छोटे छोटे वाक्य बना लेती थी। वह अपने कपड़े भी पहनने लगी गई। 'अपनेपन' का भाव बढ़ा। उसकी रुचिके लिये उसके कपड़े लाल रंगके होते थे। अंतमें वह बालकों भांति कपड़ा पहनने की इच्छा भी प्रकट करने लगी और अन्य बालकों के साथ घूमने जाती। उसकी बुद्धि भी इतनी तेज हो गई कि बहुतसे काम कर देती थी और बच्चों में खेलती तो थी ही।

इस विवरणसे यह स्पष्ट है कि जन्म होने पर शिशुके लक्षण ऐसे ही होते हैं कि वह भविष्य में बढ़कर पूरा मनुष्य बनेगा। परन्तु इसके लिये यह परमावश्यक है कि आरम्भ से उनकी संगति में रहे। यदि बहुत काल तक वह मनुष्य मात्र से वंचित रखा जाय तो मनुष्य की कई चारित्रिक बातें, भाषा रहन-सहन, कूदना-फिरना आदि वह नहीं सीख सकता। शोक ! कि अमला जल्दी ही मर गई; अन्यथा वह अपनी बहन कमला की अपेक्षा अधिक 'मनुष्य' निकलती। परन्तु वातावरण ही सर्वेसर्वा प्रभाव नहीं रखते।

इन्द्रियों की ज्ञान-शक्ति

सूंघनेकी क्रिया—जब हम किसी सुगन्धित पदार्थको सूंघते हैं तो उसमें से बहुत छोटे-छोटे अणु निकलते हैं। यद्यपि ये अणु ठोस होते हैं, किंतु सूक्ष्म होने के कारण देख या छू कर अनुभव नहीं किये जा सकते। ये कण हमारी नाक के अन्दर ऊपर जाते हैं। गन्ध लेने वाली स्नायुओं में स्फुरित होने से पहले ये अणु तरल रूपमें परिणित हो जाते हैं। तत्पश्चात् वह स्नायु मस्तिस्कके पास उसका संदेश भेजती हैं जिससे मनुष्य को सुगन्ध मालूम पड़ती है। सरदी जुकाम होने पर नाक बन्द हो जाती है, अतः वे सुगन्धित अणु नाकके ऊपरी हिस्से तक नहीं पहुंच पाते। इसी कारण हमें सुगन्ध नहीं मालूम पड़ती। जुकाम, रगड़ अथवा अन्य कारणोंसे जब नाकके स्नायु उत्तेजित हो जाते हैं तो हमें छींक आती है।

स्वादका रहस्य—स्वाद लेनेका असली साधन जिह्वा और तालूके पिछले भागको ढके हुए एक झिल्ली होती है। इस प[illegible] छोटे बड़े अंकुर होते हैं और जिह्वाके पीछे इनमें सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इनके नीचे एक नली होती है जिसके द्वारा ला[illegible] भोजनमें मिलता है। इसके बगल और अन्य हिस्सोंमें भी नारंगी की फाँककी शक्ल से मिलती जुलती "स्वाद-नलिकाएं" पा[illegible] जाती हैं। हमारा भोजनका कुछ भाग दांतों द्वारा विदीर्ण होक[र] मुँहके अन्दर जाते समय उपर्युक्त नलियोंमें भी पड़ जाता है बालनुमा छिद्र वाली स्वाद नलिकायें भोजन के रसके संयोग [में] आते ही इसका स्वाद स्वाद-स्नायु द्वारा मस्तिष्कमें पहुंचाती हैं

किन्तु भोजनमें बहुधा—खट्टा, मीठा, नमकीन और कड़[वा] चारों स्वादोंके रसका सम्मिश्रण होता है। किंतु जीभका सा[रा] भाग समान रूपसे सबको एक प्रकारसे नहीं अनुभव कर सक[ता] है। जिह्वाका पीछेका हिस्सा कड़वे रसकी अनुभूति करता [है] और नोक मीठे रसका विशेष रूपसे अनुभव करती है। इ[स] प्रकार जबानके किनारेके हिस्से खट्टे रसकी अनुभूति करते हैं किंतु यह ध्यान रखनेकी बात है कि बार-बार तीक्ष्ण स्वादयु[क्त] वस्तुओंका सेवन करने पर स्वादेन्द्रिय कुंठित हो जाती है अधिक गर्म या ठंडी वस्तु के सेवन से भी स्वाद-शक्ति जा[ती] रहती है। हमें अनुभव है कि बर्फ खाने के पश्चात् जब त[क] जिह्वा में पुनः गर्मी वापस नहीं आती, दूसरी वस्तुका स्वाद ह[म] भली भांति नहीं ज्ञात हो सकता। वास्तव में पूर्ण स्वाद वस्तु[illegible]

५०-६० डिग्री (फारनहाईट) तापक्रम पर ही लिया जा सकता है। एक बात और है कि स्वाद लेने वाले अवयवों को उत्तेजित करने के लिये तरल पदार्थ की आवश्यकता होती है, अतः जीभ के सूखी रहने पर हम स्वाद का अनुभव करने में असमर्थ होंगे।

स्पर्श-ज्ञान—जिस प्रकार सूंघ कर या चख कर पदार्थोंका अनुभव किया जाता है उसी प्रकार स्पर्श करके भी उनके विषय में अनेक बातें ज्ञातकी जा सकती हैं। हमारे चमड़े के नीचे छोटे-छोटे अंडाकार परमाणु होते हैं, जिन्हें स्पर्श-परमाणु कहा जाता है। इनमें पतला स्नायु-तन्तु, प्रत्येक अणुके चारों ओर बधा होता है। इन अणुओंकी रचना इस प्रकार होती है कि किसी भी वस्तुका चमड़े पर स्पर्श होते ही भीतरके स्नायु-तन्तुओं पर बोझ पड़ता है, एवं उनमें एक प्रकारकी उत्तेजना फैलती है जिसके कि मस्तिष्क तक पहुंचने पर हमें उस वस्तुका अनुभव होता है। इस प्रकार उसकी रचना, कोमलता अथवा कठिनता के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर के समस्त अंग एक प्रकार का स्पर्श ज्ञान नहीं रखते। जीभ, ओठ आदि अंग कुछ दूरी परसे ही स्पर्श-ज्ञानका अनुभव कर लेते हैं। अंगुलियां भी स्पर्श-ज्ञानकी विशेष शक्ति रखती हैं जिसके कारण अंधे मनुष्य भी पदार्थोंके विषयमें पर्याप्त सूचना मालूम कर सकते हैं।

देखनेकी क्रिया—हमारे नेत्रोंके अन्दर रेटिना-नामक एक प्रकारकी ऐसी झिल्ली होती है जो अत्यन्त शीघ्रग्राहिणी है। जब हम किसी वस्तुको देखते हैं तो प्रकाशकी किरणें उभरे हुए लेंस द्वारा आंखोंके सामने पड़ती हैं फिर वह पर्देके गोलाकार बारक छिद्र पर पड़ती हैं जिसे पुतली कहते हैं। पुतली का सूक्ष्म छिद्र इस प्रकार बना होता है कि प्रकाशकी किरणें उचित परिमाणमें भीतर जा सकें। जिस वस्तुको हम देखते हैं उसके अनुकूल लेंस अपनी गोलाई घटा बढ़ा लेता है, जिससे पुतली पर वस्तुकी ठीक एवं स्पष्ट प्रतिमा पड़ती है, किंतु उस का प्रतिबिम्ब नेत्रों पर उल्टा पड़ता है। लेकिन मस्तिष्कमें नेत्रों से देखी हुई प्रत्येक वस्तुका वास्तविक रूप निश्चित् करने की शक्ति होती हैं जिसके कारण हमें चीजें उल्टी नहीं दिखलाई पड़तीं। यदि कोई तीव्र प्रकाश नेत्रों के सामने से एक दम हटा लिया जावे तो भी उसका प्रभाव पुतली पर $\frac{1}{10}$ सेकेंड तक बना रहता है, अतः यदि कोई प्रकाशमय पदार्थ शीघ्रतापूर्वक नेत्रों के सामने आता जावे तो हमें वह वस्तु क्रमशः शृङ्खलाबद्ध दिखलाई पड़ेगी। इसी गुणके कारण सिनेमाके चित्र हमें चलते फिरते दृष्टिगोचर होते हैं। कभी-कभी किसी पदार्थके सामने न रहने पर भी हमें उसकी उपस्थितिका भ्रम हो जाता है उसका कारण यह है कि किसी आन्तरिक शक्तिसे पुतली का अंश उस पदार्थ विशेषके चित्रके प्रभावान्वित हो उठता है एवं उसका काल्पनिक रूप नेत्रके सामने उपस्थित हो जाता है।

(स० सम्पादक)

बिजली क्यों गिरती है ?

बादलोंमें विद्युत्-शक्ति होती है। ज्यों-ज्यों वाष्प-रूपी जल-कण संयुक्त होकर वृहद् बनते और उनका समूह एकत्रित होकर बादल में परिणित होता जाता है त्यों-त्यों उनमें विद्युत्-शक्ति बढ़ती जाती है। जब एक बादलका समूह दूसरेके पास पहुंचता है तो उनमें आकर्षण हो जाता है एवं उसमेंसे बिजली चमक पड़ती है जिसे बिजली का कौंदना कहते हैं यह चमक इतनी शीघ्रतासे बादलों के अन्दर घुस जाती है कि बीचमें शून्य स्थान हो जाता है। उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये चारों ओरकी वायु तुरन्त दौड़ पड़ती है। इसी वायु के प्रबल वेगकी आवाज को बादलका गर्जन कहते हैं। यदि बिजलीका मार्ग छोटा और सीधा होता है तो केवल एक ही कड़क सुनाई पड़ती है पर यदि उसका मार्ग टेढ़ा और लम्बा हुआ तो कड़क की कई आवाजें बादलोंसे प्रतिध्वनित होकर हमें सुनाई पड़ती है।

बिजली तीन प्रकारसे चमकती है। एक तो गोलाकार जो कि बहुत ही रहस्यपूर्ण होती है। दूसरे प्रकारका चमकना सर्पाकार होता है। तीसरे वह है जो कि चमक कर नभमण्डल को प्रकाशित कर देती है, किंतु कोई गर्जना नहीं होती। वास्तव में यह बिजलीकी सुदूरवर्ती क्रिया का प्रतिबिम्ब होता है। संसार के दो भिन्न भागों में प्रति घण्टा प्रायः ३६,००० बिजलियां कौंदती हैं, किंतु सैकड़ोंके पीछे केवल एक-दो बिजली दिखलाई पड़ती है। पृथ्वीकी ओर आने वाली बिजलियोंको ऊंचे मकानों में धातुका आकर्षण लगा कर उसके प्रवाह को पृथ्वी के अन्दर पहुंचा दिया जाता है जिससे अट्टालिकायें उसके प्रभाव से बच जाती हैं। बिजली अधिकांश ऊंचे वृक्षों एवं मकानों पर गिरती है और धातुकी वस्तुओं पर उसका विशेष आकर्षण होता है।

रैफील का चिन्ह

[लेखक—जगेश्वर दयाल वैश्य हैडमास्टर स्टेट हाई स्कूल, चूरू, बीकानेर]

ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं कि पुराने जमाने के रीति रिवाज और चिह्न आज तक प्रचलित हैं। कुछ चिह्न तो ऐसे हैं कि उनका प्रारम्भिक अर्थ कितनी ही बार बदला जा चुका है, उनकी शक्ल में भी कितनी ही तबदीलियां हो चुकी है। एक इसी प्रकारका रैफील चिह्न है जिसको कि आपने डाक्टरोंके नुसखों के शुरूमें ही लिखा देखा होगा। इस चिह्न का जन्म मिश्र देश में हजारों वर्ष पूर्व हुआ था।

मिश्र के लोगों में यह विश्वास था कि स्वर्ग में सत्कर्मों के देवताओं और बुरे कर्मोंके देवताओंमें सर्वदा युद्ध होता रहता है। उनकी एक गाथा इस प्रकार है—सैठ तम बुराई और बुरे कर्मों का देवता था और औसिरिस प्रकाश, अच्छाई और सत्कर्मोंका देवता था। युद्ध का परिणाम यह निकला कि सैठने औसिरिस को मार डाला। हौरस-री औसिरस का पुत्र था, पिता की मृत्यु होने पर उसने प्रण किया कि वह उसका बदला लेगा और पृथ्वी को तम और बुराईयों के प्रभावसे बचावेगा। एक युद्ध में उसने सैठ को हरा दिया लेकिन अपनी एक आंख खो बैठा। क्योंकि होरस सूर्य का देवता था, इसलिये इस चोट के कारण सूर्य ग्रहण हुआ। देवताओं के वैद्य पोपने उसकी आंख अच्छी कर दी जिसके फल-स्वरूप सूर्य प्रकाश भी पहिले जैसा हो गया। इस प्रकार होरस की आंख बुराई, कष्ट और बिमारी से बचने का चिह्न हो गया।

होरस-री की आँख

मिश्र साम्राज्य किसी समय बहुत शक्तिशाली था। उसके मन्दिर अपनी शान के लिये ही नहीं बल्कि धार्मिक, वैद्यक, गणित, ज्योतिष, शिल्प-शास्त्र के भी प्रसिद्ध केन्द्र थे। भगवान् के उत्थान और पतन की अजब लीला है। एक दिन यह विशाल साम्राज्य भी छिन्न भिन्न हो गया।

संसार भर के सब धर्मों में बहुत-सी विचार गाथाएं और चिह्न एकसे ही हैं, इससे यह प्रतीत होता है कि इन सब धर्मों का विकास एक निर्धारित क्रमके अनुसार हुआ है।

होरस-री के स्थान पर ग्रीस में जिअस प्रधान देवता माना गया और रोमन लोगों का प्रधान देवता जूपीटर (बृहस्पति) कहलाया।

रोमन लोगोंके प्रधान देवता जूपिटर का चिह्न ईसाई युग के आरम्भ होने पर भी इस चिह्न से मिलते जुलते रूप में जूपिटर देवताका चिह्न माना जाता रहा। जूपिटर मुक्तिके देवता केरूपमें Gnostics लोगों में माना जाता था।

जूपिटरका चिह्न

इसके बाद योरूप में एक वह जमाना आया कि जो भी विद्वान् लोग पुरानी किताब आदिसे कुछ अध्ययन करते थे वे जादूगर समझे जाते थे।

ज्योतिषी और किमियागर लोगों के ही पास पुरानी मिश्र, ग्रीस और रोमन गाथाओं और विद्याओं का कुछ छिन्न-भिन्न स्वरूप मिल पाता था। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि वास्तविक ज्ञान झूठे ज्ञानमें मिल गया। जो लोग वैद्यकका काम करते थे, उनमें एक यह अन्धविश्वास हो चला कि दवाओं के बुरे प्रभावको नुसखेके आरम्भमें जूपिटरका चिह्न बनानेसे रोका जा सकता है। इस प्रकार होरसकी आंख का प्रचार जारी रहा।

सातवीं शताब्दी में योरुप में अरब लोगों का प्रभाव काफी बढ़ गया और यह लगभग ७०० वर्ष तक चलता रहा। अरब के हकीम लोगों ने भी नुसखों के आरम्भ में जूपिटर का चिह्न बनाना शुरू कर दिया। योरुप के अन्य हकीमों में भी इसका प्रचार बढ़ता ही गया।

जब लैटिन भाषा का प्रभुत्व बढ़ने लगा तो इस चिह्न के आकार और अर्थ में भी कुछ अन्तर हो गया।

अब यह चिह्न रैफील Raphael, जो कि सूर्य का स्वर्गदूत माना जाता था-के नाममें प्रथम और अन्तिम अक्षरों को दर्शाता समझा जाने लगा।

वर्तमान समयमें भी सब अलोपैथिक डाक्टर नुसखेके आरंभ करनेसे पहले इस चिह्न को अवश्य लिखते हैं।

३,००० पत्रों का बोझ केवल एक पौण्ड !

हवाई डाक फोटोग्राफी द्वारा जाने लगी

२ फ़रवरी, १९४२ से भारतसे बृटेनको हवाई डाक भेजने में फोटोग्राफीका प्रमुख भाग रहने लगा है जिससे डाकका बोझ भी कम हो जानेके अतिरिक्त पत्र भी जल्दी पहुँचने लगे हैं। इस तारीखसे डाक भेजनेमें एयरग्राफ सर्विस नामक एक नवीन सुविधाजनक प्रणाली जारी हो गयी है। यह प्रणाली अभी परीक्षणके तौर पर केवल भारत से बृटेन को जाने वाले पत्रों के लिये आरम्भ की गयी है।

पत्र कैसे भेजे जायंगे ?

इस योजना के अनुसार समाचार और पता एयरग्राफ के विशेष फार्म पर लिखना होगा। यह फार्म डाकघरों से मुफ्त मिल सकेंगे। प्रत्येक एयरग्राफ पर यदि उसे सम्राट की स्थल अथवा वायुसेनाओंका कोई सदस्य (जिनमें उपनिवेशों और भारतके सैनिक भी सम्मिलित हैं) भेजेगा तो तीन आने डाक महसूल देना होगा और यदि जनता भेजेगी तो चौदह आने डाक-महसूल देना होगा।

एयरग्राफ को लिखकर तैयार करनेके बाद किसी भी डाक-घरमें दे देना चाहिये अथवा बम्बई के जनरल पोस्ट ऑफिसके एयरग्राफ सैक्शनमें एक लिफाफे में रखकर भेज देना चाहिये। यह लिफाफा ८३/४ इञ्चसे कम लम्बा नहीं होना चाहिये। इस पर टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं है। लिखे हुए एयरग्राफों का बम्बई में एक छोटे से फिल्म पर फोटो उतार लिया जाया करेगा। इस फिल्म की लम्बाई और चौड़ाई आध आध इञ्च होगी। यह फिल्म हवाई डाक द्वारा भारत से बृटेन को भेज दिया जायगा, जहां उससे प्रायः पांच इञ्च लम्बे और ·४ इञ्च चौड़े आकारके फोटोचित्र तैयार कर लिये जायंगे। बृटिश पोस्ट ऑफिस इन बड़े फोटोचित्रों को एक लिफाफे में रखकर पाने वाले के पास उसी प्रकार भेज देगा जिस प्रकार साधारण पत्र भेजे जाते हैं।

समय और बोझ की कमी

आशा है कि इस प्रकार पत्र भेजने में डाकघर में पत्र देने की तारीख से लेकर पाने वाले के पास तक पहुँचने में दो से लेकर तीन सप्ताह तक लगा करेंगे, जबकि आजकल जहाज़ द्वारा पत्र भेजनेमें औसतन ७९ दिन और कुछ दूर तक जहाज तथा कुछ दूर तक वायुयान द्वारा पत्र भेजने में ५९ दिन लगते हैं।

नई योजना के अन्तर्गत प्रायः ३,००० पत्रों का बोझ केवल एक पौण्ड हो जाया करेगा और उस बोझमें बहुत कमी हो जायगी जो आजकल एक विकट समस्या बनी हुई है। इस प्रकार बोझ और घिरने वाले स्थान को कम से कम रखते हुए अधिकसे अधिक पत्रोंको ले जानेकी समस्या सुलझ जायगी। इन ३,००० पत्रोंका एक लम्बा नेगेटिव फिल्म बनाया जायगा जिसे प्रायः ३ इञ्ची घेरे की गरारी पर लपेट लिया जाया करेगा। बादमें यही गरारी भेज दी जाया करेगी।

मध्यपूर्व में प्रयोग

इस समय इस योजना के अनुसार मध्यपूर्व और बृटेन के बीच डाक आने जाने लगी है। मध्यपूर्व से भेजे जाने वाले पत्रों के फिल्म बनानेका और मध्यपूर्व को आने वाले फिल्मों को बढ़ा कर फोटोचित्र बनाने का केन्द्र काहिरामें है।

भारत में आने वाले पत्रों के विषय में यह योजना लागू नहीं की गई है। इसका कारण यह है कि इस समय फिल्मोंको बढ़ा कर फोटो चित्र तैयार करने का यन्त्र भारत में उपलब्ध नहीं है।

[भारतीय-समाचार से]

मधुमक्खी-पालन

अत्यन्त मनोरञ्जक विषय की एक झाँकी

[प्रस्तुत लेखमें ब्यौरा-सहित और सरल ढंग से आधुनिक मधुमक्खी-पालन का वर्णन उन लोगों के लिए किया गया है जो जानना चाहते हैं कि यह कार्य कैसे होता है ?]

[लेखक—मदनलाल जयसवाल]

आधुनिक मधुमक्खी-पालनमें विशेषता यह है कि मधुमक्खियां सचमुच पाली जाती हैं और मधु इस प्रकार निकाला जाता है कि एक भी मक्खी मरने नहीं पाती। विषयके समझने के लिए मधुमक्खीके विषयमें भी थोड़ा ज्ञान चाहिए।

यदि किसी छत्तेकी मधुमक्खियों को देखा जाय तो उनमें तीन जातिकी मक्खियां दिखलाई पड़ेंगी—(१) कमेरियां; यही बाहर जाती हैं और मधु लाती हैं। (२) नर; ये घर पर बैठे मौज करते हैं और प्रायः कुछ भी काम नहीं करते; (३) रानी; यह कमेरी मक्खीकी तरह है, पर उनसे बड़ी होती है (चित्र १) प्रत्येक कुटुम्बमें एक ही रानी होती है। यही अंडे देती है, जिससे कमेरियां, नर और नवीन रानी उत्पन्न होती है।

चित्र २—मधुमक्खी की शरीर-रचना।

१. स्पर्शशृंग, २. जबड़ा, ३. सरल आँखें, ४. मिश्रित आँख, ५. पंख, ६. पिछला पैर, ७. पेट, ८. डंक, ९. जीभ, १०. ओठ, ११. बीचवाला पैर, १२. धड़।

चित्र १—यूरोपीय मधुमक्खियां।

बाईं ओर रानी, बीच में कमेरी और दाहिनी ओर नर है।

मधुमक्खियां फूलों का रस पीती हैं और पराग (फूलों की धूली) खाती हैं। ऐसे कुसमय के लिये जब फूल कम रहें, या वर्षा या अधिक ठंड या गर्मी के कारण बाहर निकलना कठिन हो जाय, मधुमक्खियां अपने छत्ते में रस और पराग बटोर कर रख लेती हैं। जब मक्खियों को पराग लाना होता है तो वे उसे अपनी टांगों पर चिपका कर लाती हैं (चित्र ३)। फूलके रस को वे अपने मधुकोषमें रख कर लाती हैं। यह पेटके भीतरकी एक थैली है

कमेरीकी शरीर रचना (चित्र २) में दिखलाई गई है। स्पर्श-अंगसे मक्खियां टटोलती हैं। आंखें दो प्रकारकी होती हैं, एकसे दूरकी वस्तुएं और दूसरीसे निकटकी वस्तुएं स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं।

चित्र ३—कमेरी मधुमक्खी ।

मधुमक्खी फूलोंसे पराग बटोर, लडडू बना, अपनी टाँगों में उसे दाबे, घर रखने जा रही है ।

चित्र ४—मधुमक्खी की भोजन-प्रणाली ।

यह सर और धड़में पतली नलीके रूप में रहती है । पेट में आकर यह फूल कर मधुकोष और उसके बाद क्षुद्रांत्र, तब बृहदंत्र और अन्त में गुदाके रूप में परिवर्तित हो जाती है।

(चित्र ४) छत्ते पर पंहुच कर मक्खियां रस उगल देती हैं । पीछे उसे अपने पंख से हवा कर के गाढ़ा कर लेती हैं । फूलों के इसी गाढ़ा किये हुए रस को मधु या शहद कहते हैं ।

मधुमक्खियों का जन्म भी बड़ा विचित्र होता है । रानी पहले अत्यन्त नन्हा सा अंडा देती है (एक दिन में रानी कई सौ अंडे देती है !) इस अंडे से नन्हा सा ढोला निकलता है । वह बढ़कर बड़ा होता है । यही ढोला जब खा पीकर सो रहता है तो कुछ दिनों में आप-से आप मधुमक्खी में बदल जाता है । (चित्र ५ देखो)

चित्र ५—मधुमक्खी का जन्म ।
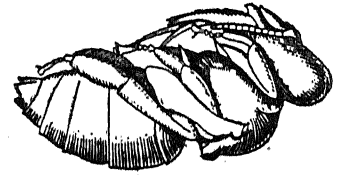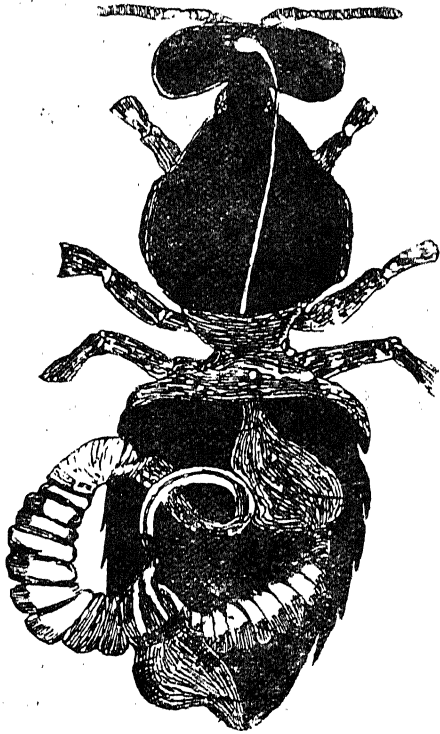
ऊपर की पंक्ति में दाहिनी ओर अण्डा है । इसमें ढोला निकलता है जो पहले छोटा (बाईं ओर देखें) और पाँच छः दिनमें बड़ा हो जाता है (बीच की पंक्ति देखें) । यही ढोला जब खा-पीकर सो रहता है तब धीरे-धीरे मधु-मक्खी में परिवर्तित हो जाता है (नीचे की पंक्ति देखें) ।

मधुमक्खियों से हमें केवल यही लाभ नहीं होता कि उनसे मधु मिलता है, उनसे हमें मोम भी मिलता है। छत्ता बनानेके लिये मधुमक्खियां मोमका उपयोग करती हैं जो पेट से निकल कर उनके शरीर पर जम जाता है। इन दो पदार्थों के मिलने के अतिरिक्त मधुमक्खियोंसे हमें एक विशेष लाभ होता है, वह यह कि उनसे एक फूल का पराग दूसरे फूल तक पहुंच जाता है

क्योंकि मधुमक्खी एक ही फूल से काफी रस या पराग नहीं पा जाती। और उसे कई फूलों पर जाना पड़ता है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि यदि एक फूलका पराग दूसरे तक पहुंच जाता है तो इससे किसीका क्या लाभ होता होगा? परन्तु असल बात यह है कि यदि ऐसा न हो तो बहुतसे वृक्षों में फल ही न लगे। इसका कारण यह है कि बहुतसे फूलोंकी भीतरी बनावट चित्र ६ की सी होती है और जबतक गर्भ केसरको किसी दूसरी उसी जातिके फूलका परागसे न मिलेगा तब तक फल न लगेगा। यह काम बहुधा मधुमक्खियों द्वारा ही पूरा होता है।

चित्र ६—**फूलके विभिन्न अंग**
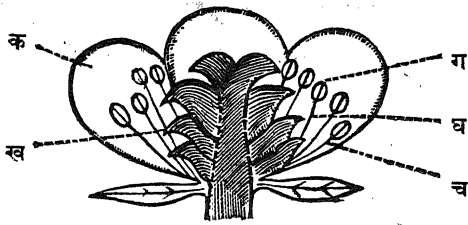
क—पखड़ी; ख—गर्भकेसर; ग-घ-च पुंकेसर।

आज कल मधुमक्खियां काठकी पेटियों या बक्सोंमें पाली जाती हैं जिनकी भीतरी बनावट चित्र ७ से स्पष्ट हो जायगी। सबसे नीचे एक चौखट (छ) है जिसका एक बगल ढालू होता है। इसी ढालू पटरे पर मक्खियां बाहरसे आने पर एक पटरा (च) रहता है जो घरकी पेंदी है।

इसके ऊपर वह खंड (घ) रहता है जिसमें अंडे बच्चे रहते हैं। इसके ऊपर वह खंड (ग) रहता है जिसमें मधुमक्खियां मधु जमा करती हैं। इसे मधुखण्ड कहते हैं। इसके ऊपर ढक्कन रहता है जो पानी बरसने पर भी घर की रक्षा कर सकता है। इस चित्र में समझाने के लिये सब भागों को अलग-अलग दिखलाया गया है, परन्तु वस्तुतः ये सब भाग एक-के-ऊपर-एक रक्खे रहते हैं। मधुमक्खियों के भीतर घुसने या बाहर जानेके लिये एक छेद रहता है जो चित्र में तीरसे सूचित किया गया है। बाहरसे देखने पर यह घर चित्र ८ जैसा लगता है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि चित्र ८ में तीन मधुखण्ड दिखलाये गये हैं और चित्र ७ में केवल एक। साधारणतः एक ही मधुखण्ड रखना काफी होता है। मधुमक्खियोंके ऐसे घरको करंड कहते हैं, जो संस्कृत शब्द है। उस खंडको जिसमें अंडे बच्चे रहते हैं, शिशु-खंड कहते हैं।

चित्र ७—आधुनिक करंडकी बनावट।
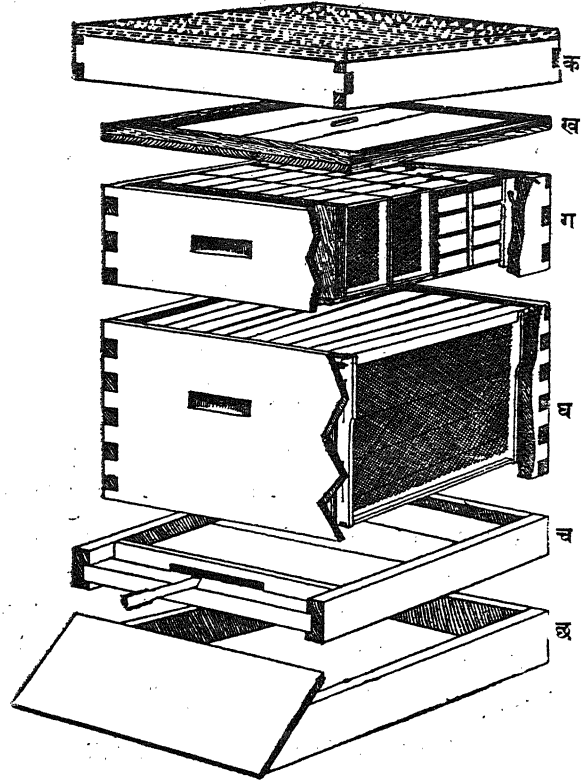
इसके विविध खंड एकके ऊपर एक रक्खे रहते हैं।

चित्र ८ करंडोंका बाह्य आकार।
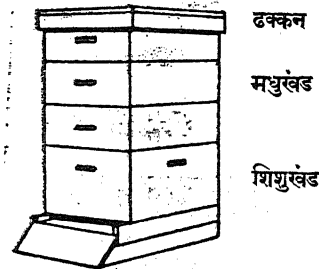
नीचे मधुमक्खियों के उतरने के लिए पटरा और करण्डका पाया है। ऊपर शिशु-खण्ड है। उसके ऊपर तीन खण्ड हैं। सबसे ऊपर ढक्कन है। भारतवर्ष में साधारणतः एक ही मधु-खण्डसे काम चल जाता है।

प्रत्येक करंडमें मधुमक्खियां कई (लगभग २०) छत्ते लगाती हैं। इस अभिप्रायसे कि छत्ते इच्छानुसार निकाल लिये जा सकें, मधुमक्खियों से छत्ते चौखटों पर बनवाए जाते हैं। ऐसा एक चौखटा चित्र ६ में दिखलाया गया है। मजबूतीके लिये बीचमें चार बेंड़े और दो तिरछे तार कसे हैं।

चित्र ६—चौखटा
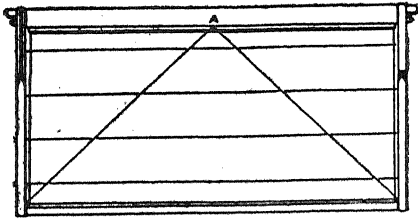
करंडोंके भीतर ऐसे चौखटे कई एक रक्खे रहते हैं। प्रत्येक चौखटेमें एक छत्ता लगता है।

मधुमक्खियों की सुविधाके लिये और इस अभिप्रायसे कि वे अंड-बंड छत्तों के बदले नियमानुसार छत्ते बनावें उपर्युक्त चौखटों के भीतर नकली छत्ता चिपका दिया जाता है। इस नकली छत्तेको छतनींव कहते हैं, क्योंकि वस्तुत: यह छत्ते की नींव भर है। मधुमक्खियां इसी पर पूरा छत्ता बना लेती हैं। छतनींवको चौखटे में चिपकाने के लिये खौलते हुए पानी में

चित्र १०—गोंठनी और गोंठनीका उपयोग।
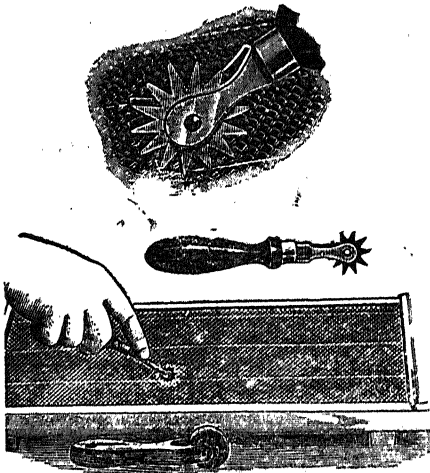
गोंठनीसे छतनींवको चौखटेके तारों पर चिपकाते हैं।

डाल कर गरम किये 'गोंठनी' का उपयोग किया जाता है, जो वस्तुत: मूठ हैंडल लगा पीतलका पहिया होता है (चित्र १०)।

छतनींव बनाने के लिये मोम की चादर को दो बेलनों के बीच डालकर (चित्र ११) पेर देते हैं। इससे इन पर असली छत्तेके कोष्ठों के आकारके छिछले कोष्ठ बन जाते हैं।

चित्र ११—छतनींव पर ठप्पे मारने की मशीन
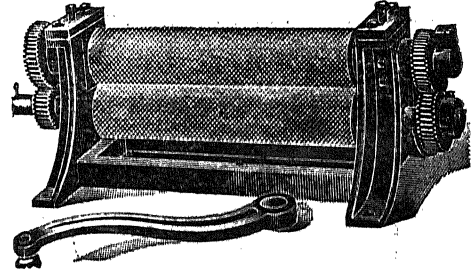
इसमें डालकर छतनींवकी सारी चादरको पेरनेसे उसपर कोठोंके आकार बन जाते हैं।

करंडोंके शिशुखण्ड आदि अकसर एक दूसरेमें चिपक जाते हैं। उन्हें उभाड़नेके लिये कुछ लोग खुरपीका प्रयोग करते हैं (चित्र १२)।

चित्र १२—खुरपी।

इससे चिपके हुए करंड और चौखटे छुड़ाये जाते हैं।

करंड खोल कर इच्छानुसार कोई भी छत्ता निकाल लिया जा सकता है। यदि छत्ते पर बैठी मधुमक्खियों को हटाना हो तो उन्हें झाड़ (चित्र १३) से अलग किया जाता है।

चित्र १३— मक्खी-झाड़ या बुरुश
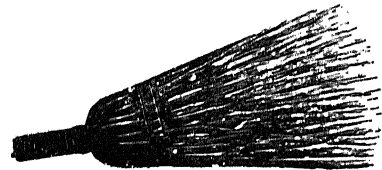
इससे छत्तेपर बैठी मक्खियोंको अगल-बगल किया जाता है।

शिशुखण्ड और मधुखण्डके बीच १४ या चित्र १५ के आकारकी जाली लगा देनेसे रानी मधुखण्डमें नहीं जा सकती क्योंकि रानी बड़ी होता है। रानी ही अण्डे बच्चे देती है। इसलिये इस प्रबन्धसे मधुखण्डमें अंडे-बच्चे नहीं होने पाते।

चित्र १४—रानी-मधुरोधक जाली।
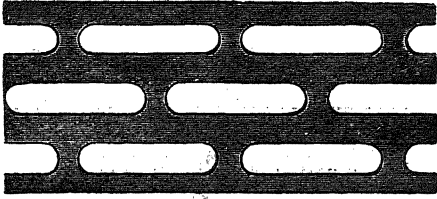
मधुमक्खियों के पालने का कृत्रिम घर दो खण्डों में बना रहता है और इनके बीच रानी-अवरोधक जाली लगी रहती है। रानी नीचे के खण्डमें रहती है और बड़ी होनेके कारण अवरोधक जाली के छेदों में से होकर ऊपर नहीं जा सकती। कमेरियाँ छोटी होने के कारण सुगमता से ऊपर के खण्ड में भी जा सकती हैं। इस प्रकार ऊपर के खण्ड में केवल मधु और नीचे के खण्ड में अण्डे-बच्चे रहते हैं।

चित्र १५—रानी-अवरोधक द्वार
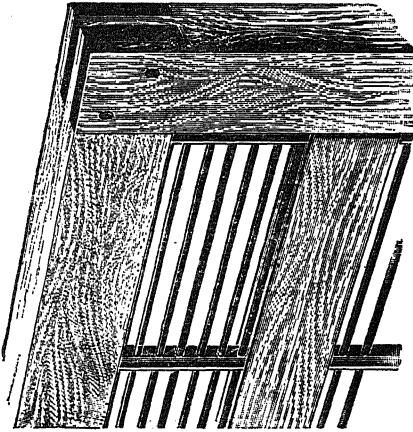
द्वार पर लगे छड़ों के बीच कुल इतनी ही जगह रहती है कि कमेरियाँ आ जा सकें, परन्तु रानी न निकल सके।

जब मधुखण्डके छत्ते मधुसे प्रायः भर जाते हैं तो उनको निकाल कर मधु निकालने की मशीन (चित्र १६) में रख दिया जाता है। हैंडल घुमाने से छत्ते इतने वेग से नाचते हैं कि सब मधु छिटक कर मशीनकी दीवार पर चला जाता है और वहां से बह कर नीचे बैठ जाता है। तब टोंटी खोल कर यह मधु निकाल लिया जा सकता है। मधु निकालनेके बाद खाली छत्ते फिर करंडमें रख दिये जाते हैं।
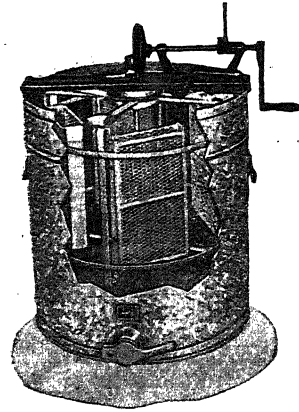
चित्र १६—मधु निकालने की मशीन

मशीनके भीतर छनना भी लगा रहता है, परन्तु यदि कभी किसीको मधु अलगसे छानना पड़े तो ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि इसमें हवाके बुलबुले न फँस जांय (चित्र १७-१८)

चित्र १७—छानना

क—मधु, ख—बाल्टी ग—खँखरा कपड़ा, ङ—छना मधु, च—बिना छना मधु, छ—टोंटी।
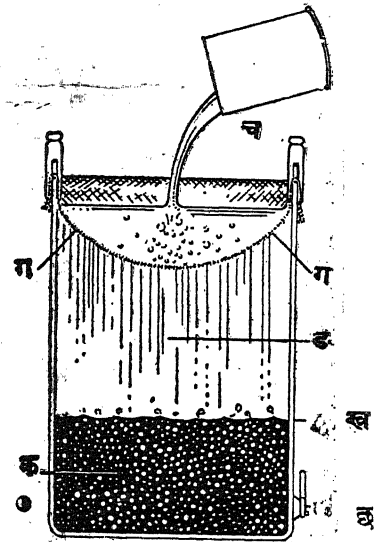
चित्र १८—बाल्टी में छना शहद

क—बाल्टी, ख—बिना छना मधु, ग—छनने को बाल्टी पर बाँधने की खूँटी ङ—छनना, च—छना मधु, ब—बाल्टी, छ—टोंटी ।
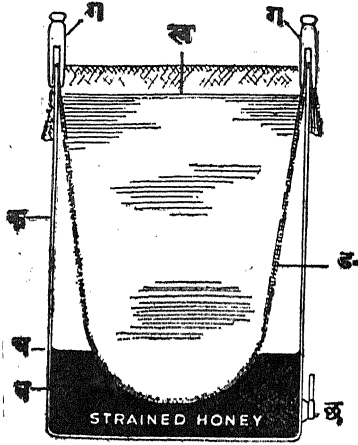
ऊपर सरसरी तौरसे हमने देख लिया कि मधुमक्खी पालना कितना सरल विषय है। परन्तु क्रियात्मक विषय होनेके कारण पूर्ण सफलताके लिये अनेक बातोंके जाननेकी आवश्यकता पड़ती है।

विज्ञान परिषदसे छपी पुस्तक 'मधुमक्खी-पालन' से इन बातोंका अच्छी तरह पता चल सकता है। यदि ज्योलीकोटकी पाठशाला में जाकर काम सीखा जा सके तो और भी अच्छा हो। फ़ीस आदिका पता डाइरेक्टर, गवर्नमेंट एपियरी, ज्योली-कोट, जिला नैनीताल, से ज्ञात किया जा सकता है।

मधुमक्खियोंका रहन-सहन देख कर हमें सामाजिक विषयों पर भी उपदेश मिलता है। उदाहरणात: मधुमक्खी संसारमें रानियोंका बड़ा आदर होता है। (रंगीन चित्र देखें)
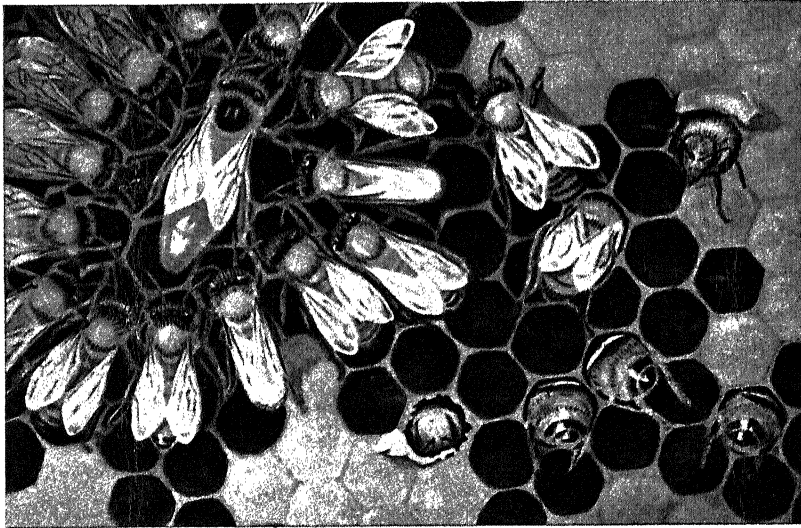
रानी-मक्खी और उसकी सहचरियाँ

रानी-मधुमक्खीकी लड़कियाँ उसे खूब खिलाती हैं और स्वच्छ रखती हैं। रानी अन्य मक्खियोंसे बड़ी होती है। दाहिनी ओर नीचे कमेरी (काम करनेवाली) मक्खियाँ कोष्ठोंकी सफाई कर रही हैं। दो नये बच्चे कोष्ठोंके ढक्कनोंको काटकर बाहर निकल रहे हैं।

पहेलियाँ और प्रश्न

[लेखक—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम. एस-सी.]

पहेलियोंमें एक अजीब-सा आकर्षण होता है। वे हमारी विचार शक्तिको चुनौती देती प्रतीत होती हैं और अपनेसे संघर्ष करने के लिये आह्वान करती हैं। विवेकशील मनुष्य को भी अपनी बुद्धिका यह तिरस्कार असह्य हो जाता है। तभी तो वह इन पहेलियोंको सुलझानेमें तुरन्त लग जाता है। सीधे-सादे कोई प्रश्न पूछिये तो कुछ नहीं, लेकिन उसीको कुछ टेढ़ा करके देने से उसमें एक नवीनता आ जाती है, और वह मनुष्य को उत्तर देने के लिये प्रेरित करती है। इनमें सफलता पाने के लिये एक विशेष प्रकार की विच्छेदन-शक्ति की आवश्यकता होती है जो किंचित मात्रामें गणितके अथवा दर्शनशास्त्रके अध्ययनसे आती है। लेकिन साधारण व्यक्ति भी सावधानी द्वारा इनको हल करने की चेष्टा करें तो सफल हो सकता है।

गांवों में जाइये तो आपको पुश्त-दरपुश्तसे प्रचलित कितने ही ऐसी पहेलियां और प्रश्न मिल जायंगे जिन्हें गांवका कोई बिरला ही हल कर सका होते हैं। कारण यह कि वे गणित के सिद्धान्तों से अपरिचित है। अटकलका आश्रय लेते हैं। लेकिन जब वैसे प्रश्नोंके हल करनेकी क्रिया मालूम हो जाती है तो फिर वैसी और भी पहेलियां गढ़ी जा सकती हैं; और गणित जैसा नीरस विषय भी मनोरञ्जन का साधन हो जाता है। अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि स्कूलों और कालेजोंमें गणितका पाठ्यक्रम इतना भद्दा होता है कि विद्यार्थीको निर्धारित भागसे हट कर प्राकृतिक दृश्यों के देखने का अवकाश ही नहीं मिलता, अन्यथा इस अनखोजे स्थलमें अनेकों मौन, निष्कपट प्रतीक्षक आमंत्रित करते दिखाई पड़ेंगे।

इस लेखमालाका उद्देश्य इन्हीं कुछ मूक अभिभावुकोंसे परिचय कराना है। प्रति मास कुछ प्रश्न दिये जाया करेंगे। उन के उत्तरोंके लिये पाठकगण आगामी अंककी प्रतीक्षा करें।

प्रश्नः—एक गांवमें केवल कोढ़ी रहते थे। उनमें से ६५% लंगड़े, ६०% अंधे, ८५% बहरे और ८०% गूंगे थे। तो बताओ कि कितने प्रतिशत कमसे-कम ऐसे थे जिनको ये चारों व्याधियां थीं।

२—एक सज्जन अपने दामाद को १०० बर्तन देना चाहते हैं जो केवल परात, थाल, और गिलास हों इनका वजन क्रमशः ५ सेर, ३ सेर, और $\frac{1}{3}$ सेर है तो बताओ वे कितनी संख्यामें ये बर्तन दें कि कुल सामानका वजन ठीक २ मन रहे।

३—तीन साहसी युवक और उनकी नव-विवाहिता अर्द्धाङ्गिनियां एक नदीको पार करना चाहती हैं जिसमें एक नाव पड़ी है। नाविक अनुपस्थित है और सब खेहना जानते हैं। लेकिन नावमें एक बारमें केवल दो व्यक्ति बैठ सकते हैं। तो बताओ किस विधिसे वे नदी पार कर सकते है? यदि कोई भी स्त्री अपने पति की अनुपस्थितिमें अन्य पुरुषके सम्मुख न होने पावे।

४—तीन ग्रामीण अपना कुल दूध ४२ सेर एक कनस्तर में भर कर चले। उनके पास एक-एक पीपा है जिसमें क्रमशः ठीक १२,१८,२२ सेर दूध आता है और १२ सेरके पीपे वालेके पास एक लोटा और है जिसमें करीब ३ सेर दूध आता है। रास्तेमें उनमें झगड़ा हो गया और उन्होंने आपसमें दूध बांट लेना निश्चय किया, तो बताओ किस प्रकार वे बराबर दूध बांट सकते हैं।

५—एक रुपया दूसरे रुपयेके किनारे-किनारे बिना फिसले हुए लुढ़कता है तो उसकी मूर्तिका सर कितने चक्कर लगायेगा?

६—कुसुम सरोवर में पुष्प दिन-प्रतिदिन दूने फूलते हैं। अर्थात् २४ घंटेमें फूल दुगुना बड़ा हो जाता है। सारा कुसुम सरोवर ३१ दिनमें फूलोंसे लदालद भर गया। तो सरोवर आधा कब भरा था?

७—केवल १,२,३,३ (४ अंक) की सहायतासे ७७, ६४,११५६ और ७२६ प्रकट करो (उदाहरणार्थ ६५८= $३१^२-३$)

८—एक संख्या जिसमें केवल ७ का ही अंक है १६६ से पूर्णतः विभाज्य है। तो पूर्ण भजनफल निकाले बिना भजन फलके अन्तिम चार अंक निकालो।

९—तीन मनुष्योंको, जिनके नाम हम क, ख, ग रक्खेंगे, विचार-शक्तिकी परीक्षाके लिये एक समस्या दी गई। प्रत्येक व्यक्तिके मस्तिष्क पर एक तारिका चिह्न अंकित किया गया और उनसे कह दिया गया कि यह श्वेत अथवा नीला होगा। तत्प-

(शेषांक पृष्ठ १११)

सैनिकों के पत्र कैसे पहुँचते हैं ?

बहुत लोगोंको यह जाननेकी इच्छा होगी कि मोर्चे पर सैनिकोंको उनके सम्बधियोंका पत्र भारतसे समुद्र या हवाई मार्ग द्वारा चलने के पश्चात् मोर्चेके डाकघरों द्वारा पाने वालेके पास तक कैसे पहुंचता है ? जिस बन्दरगाह या हवाई अड्डे पर सबसे पहले पत्र पहुंचता है, वहां सम्भव है कोई डाकघर हो या न हो। हिंद महासागर में एक ऐसा बन्दरगाह है जहां डाकघर का एक ही बाबू रहता है और डाकके पुलिन्दे बांधने वाले एक ही व्यक्ति की सहायता से वह जहाज के आने की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा किया करता है। साधारणतया अन्य दिनोंमें वह सैनिक कुमुकके अड्डोंकी डाक सम्बन्धी आवश्यकताओंको पूरा किया करता है। पर जैसे ही उसको मालूम होता है कि कोई जहाज आया है वैसे ही वह एक बोझा ढोने वाली मोटर मंगा कर शीघ्रसे शीघ्र बन्दरगाह पर पहुंच जाता है। वहां वह सैकड़ों थैले ले लेता है जिनमें सैनिकोंके पत्र या पारसल भर रहते हैं। वह अपनी सूचियों को मिला कर देखता है और किसी प्रकार की देरी किये बिना ही वह स्टेशन पर जाकर थैली उन व्यक्तियों को दे देता है, जो उन्हें उस क्षेत्र के डाकघरमें पहुंचा देते हैं। इसे बेस पोस्ट आफिस कहते हैं। सम्भव है कि थैलों को यहां तक पहुंचानेके लिये पूरे एक दिनका सफर करना पड़े।

'बेस पोष्ट आफिस' का एक बड़ा डाकघर होता है। इस का अध्यक्ष संभवतः कोई कैप्टन या मेजर होता है। उसके नीचे १०० या अधिक व्यक्ति और रहते हैं, जिनकी सहायता से वह डाक सम्बन्धी सारे कार्योंको पूरा करता है। इस डाकखानेका मुख्य कार्य मोर्चे पर फैले हुये लोगोंकी डाक छांटना और बांटना होता है। चिट्ठी पत्रीके जांच करने वाले सेंसर विभागके कर्मचारी भी प्रायः डाक घरके भवनमें ही काम करते हैं। डाक घरके पास ही फौजी दस्ते रहते हैं। इन दस्तोंके अर्दली आकर अपने-अपने दस्तोंकी डाक ले जाते हैं। सैनिक दस्तोंके पास पहुंचने पर सारे पत्र तथा पार्सल आदि मोर्चे पर स्थित सैनिक डिवीजनों और ब्रिगेडोंके अनुसार छांटे जाते हैं और रेल या लारी द्वारा उन्हें सम्बन्धित डिवीजन या ब्रिगेड तक पहुंचा दिया जाता है। रेलके स्टेशनोंसे मोटरों द्वारा सारी डाक अगले डाक केन्द्रमें पहुंचा दी जाती है। इसके पश्चात् विभिन्न डिविजनोंके दस्ते अपनी गाड़ियोंमें थैले भर कर मोर्चों पर स्थित डाकघरों में पहुँचा देते हैं। इन्हीं डाक घरोंमें सैनिकों द्वारा भेजे जाने वाले पत्र खाली थैलोंमें फिर भर दिये जाते हैं। जब मोर्चे पर व सैनिक पड़ावमें कुछ शांति होती है तो किसी झोंपड़ी या छोटे से तम्बूके सामने लाल या सफेद झंडी हवामें फहराती हुई देखी जा सकती है। इसी तम्बू या झोंपड़ी में डाकघर का सारा कार्य होता है और टिकट बेचनेसे ले कर मनीआर्डर भेजने तकका कार्य किया जाता है। कभी-कभी किसी स्थान पर कोई गुफा जैसी बना कर या किसी स्थानकी कुछ मिट्टी खोद कर उसे आस पास कुछ किनारों पर लगा कर बीचमें डाकघर का कार्य करना पड़ता है। आंधी, तूफान, वर्षा और मोर्चे पर सेवा करनेकी अन्य सारी असुविधाओंका खतरा उठा कर इन स्थानों पर कार्य किया जाता है।

मोर्चे के छोटेसे डाकघरमें प्रायः एक पोस्टमास्टर, दो सहायक, एक चिट्ठीरसान, एक पैकर, एक मोटर चलाने वाला, तथा कहीं-कहीं एक भंगी रहता है। डाक ढोनेकी मोटरमें इन लोगों के लिये काफी स्थान नहीं होता, विशेष रूपसे यदि आगे जाने वाली डाक अधिक हुई तो जगह बहुत कम होती है। सैनिकों को इस साधारण प्रणालीसे पत्र भेजनेमें कोई मूल्य नहीं देना पड़ता, किंतु जब वे हवाई डाक द्वारा पत्र भेजते हैं तो पोस्टकार्ड के लिये ३ आने और लिफाफेके लिये ८ आने देने पड़ते हैं। गत महायुद्धके समान इस युद्धमें भी सैनिकोंके लिये एक ऐसा लिफाफा चालू किया गया है जिसे उसके दलका कमान्डर खोल कर नहीं पढ़ सकता है, किंतु केन्द्र की सेंसर शाखा में इसे खोला जा सकता है। हाल ही में एक तार दल भी बनाया गया है जो पर्याप्त कार्य कर चुका है। इस दलने एक भेड़ पाल रखी है, जिसे सौभाग्य लाने वाला माना जाता है। इस भेड़के चार सींग हैं दो को सफेद रंगसे और दो को चमकीले नीले रंगसे रंग दिया गया है। संदेश भेजने वाले दलकी झण्डियोंके भी यही रंग होते हैं। भेड़के बालोंको धो कर उनमें अच्छी तरहसे कंघी कर दी जाती है। यह खूब मोटी हो गई है और जिस किसी अफसर या सैनिकके पीछे चाहती है लग जाती है।

स्टेन्सिल करने की कला

[लेखक—श्री 'सिद्धहस्त']

कड़ा कागज या धातुकी चादर जिसमें फूल आदिके आकार के छेद कटे रहते हैं और जिससे फूल आदिका चित्र दीवार और वस्त्र आदिपर बनाया जाता है स्टेन्सिल (stencil) कहलाता है। स्टेन्सिल की सहायता से चित्रकारी करनेको स्टेन्सिल करना कहते हैं। जब कभी एक ही प्रकारके बहुतसे चित्रों को खींचना पड़ता है तो स्टेन्सिल से बड़ी सहायता मिलती है। स्टेन्सिलका काम बहुत सरल है, और साथ ही यह बहुत उपयोगी भी है। इससे कोई भी अपना गृह कम व्ययमें सुरुचिपूर्ण ढंगसे सुन्दर बना सकता है। यदि उचित ढंगसे किया जाय तो स्टेन्सिलका काम बूटे-कशीदे के काम से भी अधिक सुन्दर जंचता है। फिर कशीदे का काम दीवारोंकी सजावटके लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता; स्टेन्सिलका काम दीवारों पर भी बनाया जा सकता है।

स्टेन्सिल का काम हजारों वर्षों से चला आ रहा है और संसारकी विभिन्न जातियोंमें से जापानियोंने इसमें बड़ी उन्नति की थी, जापानकी बने अनेक बहुमूल्य कलाकी वस्तुओं पर स्टेन्सिल का ही काम रहता है। यह इतना सूक्ष्म सच्चा, सुन्दर होता है कि देख कर हृदय मुग्ध हो जाता है।

इन दिनों आधुनिक रीतियों का प्रयोग करके स्टेन्सिलका काम तरह-तरहके कपड़ों पर बनाया जाता है। कोई भी व्यक्ति स्टेन्सिल का काम अपने गद्दों, मेजपोशों, पर्दों, लैंप और शेडों आदि पर स्वयं बना सकता है। इस प्रकार स्टेन्सिल किए काम आसानीसे बिक भी जाते हैं।

यंत्र आदि—स्टेन्सिलके काममें बहुत थोड़ेसे यंत्र और सामानसे काम चल जाता है। एक टुकड़ा मोटा शीशा (लगभग २ फुट×२ फुट का), स्टेन्सिल काटनेका एक चाकू, उसे तेज करनेके लिये सिल्ली और कुछ बुरुशोंसे काम अच्छी तरह चल जायगा। जब तक छुरी खूब तेज न होगी, स्टेन्सिल ठीक न कटेगी। इसलिये अच्छी सिल्ली की विशेष आवश्यकता पड़ती है। यदि पत्थर ऐसा हो जिस पर तेल डाल कर छुरीको रगड़ना पड़े तो और भी अच्छा है। ऐसी सिल्लियों से छुरी पर बहुत अच्छी धार आती है। ये अच्छे दूकानदारों के यहां बिकती हैं।

बुरुश स्टेन्सिलके कामके लिए सूअरके बालका बुरुश अच्छा होता है क्योंकि ऐसे बुरुश कड़े होते हैं। इन बुरुशोंको विशेष सावधानीसे रखना चाहिये कि वे खराब न हो जांय। कामके बाद ही उनको धो-पोंछ कर और फिर सुखा कर रखना चाहिए। इस अभिप्रायसे कि बाल फैल न जांय। बालों पर धागा बांध देना अच्छा है। यदि तैल-रंगोंसे स्टेन्सिलका काम किया जाय तो बुरुशको तारपीनसे धो कर साफ करना चाहिए। इसके बाद साबुनसे धो कर, फिर स्वच्छ पानीसे धो कर उनको पोंछना और सुखाना चाहिए।

चित्र १—स्टेन्सिलके लिए चाकू और बुरुश।

स्टेन्सिल के लिये कागज स्टेन्सिल किसी भी मोटे चिमड़े कागज से बनाया जा सकता है। इसके लिये ड्राइंगपेपर जिस पर लड़के नक़्शा खींचते हैं और जिसे कागज बनाने वाले कार्ट्रिज पेपर (cartridge paper) कहते हैं, अच्छा होगा। कागज पर चित्र बना कर, काटने के पूर्व, कागज के दोनों ओर अलसी (तीसी) का पका तेल (boiled linseed oil) पोत देना चाहिये और एक दिन तक सूखने के लिये छोड़ देना चाहिए। तेल लगा-लगाया कागज बड़ी दुकानों पर बिकता है। नौसिखिये उसीका उपयोग करें तो अच्छा है।
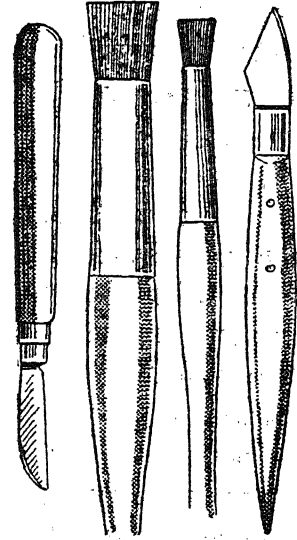
अन्य सामान—दो चार ड्राइंगपिनोंकी भी आवश्यकता पड़ेगी। इसके बदले फोटोग्राफीकी दुकानों पर मिलने वाले शीशेके माथे वाली आलपीनें भी काममें लाई जा सकती हैं। ये और भी अधिक सुविधाजनक होती हैं। इनके अभावमें साधारण पिनों (आलपिनों) से भी काम चल जायगा। इनसे स्टेन्सिल को काम पर टिकाते हैं।

रंगोंके सम्बन्धमें ध्यान रखना चाहिए कि धातु पर काम करनेके लिये तेल-रंग आवश्यक है; लकड़ी पर भी साधारणतः

तेल रंगोंका ही प्रयोग किया जाता है। छोटे कामोंके लिए बढ़ियासे-बढ़िया रंग जो तैलचित्रोंके लिये आते हैं लेने चाहियें। रेशम तथा अन्य बारीक कपड़ोंके विशेष रंग बिकते हैं जो कपड़े पर लगाये जाने पर फैलते नहीं हैं। कागज दीवार आदि पर रंगनेके लिये पानीके रंगोंको इस्तेमाल किया जा सकता है। विद्यार्थियोंके लिये आने वाले सस्ते रंगोंसे भी काम चल जायगा यद्यपि कलाकारोंके लिये बने विशेष रंग अधिक अच्छे होते है। मोटे कामके लिए रंग, गोंद, पानी और बुकनीके रंगको अनुभव के अनुसार ठीक जंचने वाले अनुपातमें मिला कर और स्वयं घोट कर घर पर भी बनाया जा सकता है।

स्टेन्सिल काटना—साधारणतः फूल पत्ती वाले डिजायन ही अधिक रुचिकर सिद्ध होते हैं। डिजायन बने बनाये बिकते भी हैं। पत्रिकाओंसे या अन्यत्र छपे डिजायनको अर्द्ध पारदर्शक या चीनी कागज पर ट्रेस करके कारबन पेपरकी सहायता से स्टेन्सिल काटनेके कागज पर उतारा जा सकता है। दूरसे देखी जाने वाली वस्तुओं पर (जैसे पर्दों पर) मोटा काम अच्छा जंचता है। पास से देखी जाने वाली वस्तुओं पर (जैसे टेबुल क्लाथों पर) बारीक काम अधिक उपयुक्त होता है।

प्राय: प्रत्येक स्टेन्सिलमें कुछ 'बंधनियां' रहती हैं। इनको सावधानीसे काटना चाहिए जिसमें ये टूटने न पायें। बंधनी (tie) स्टेन्सिलके उस पतले अंगको कहते हैं जो इसके दो खण्डोंको मिलाता है। यदि स्टेन्सिलकी दो-चार बंधनियां टूट जायंगी तो स्टेन्सिलका कोई भाग टूट कर अलग हो जायगा। डिजायन वही अच्छा होता है जिसमें बंधनियोंके पीछे पड़े भाग को अन्तमें रंगना नहीं पड़ता।

यदि स्वयं डिजायन बनाया जाय तो ध्यान रखना चाहिए कि कोई बंधनी इतनी पतली न हो कि उसके टूट जानेका डर रहे और वह इतनी मोटी भी न हो कि चित्र भद्दा हो जाय।

स्टेन्सिल काटनेके लिये, चित्र खींचे और तेलसे जल-अभेद्य किये कागजको शीशे पर रखना चाहिए और छुरीसे काटना चाहिए। छुरीको अधिकांश लोग उसी प्रकार पकड़ते हैं जिस प्रकार कलम पकड़ी जाती है। कोनोंको विशेष सावधानीसे काटना चाहिए। कागज सब जगह आर-पार कट जाय। यदि कहीं यह जुड़ा रह जायगा और इसे नोच कर अलग किया जायगा तो वहां रूप-रेखा अतीक्ष्ण हो जायगी।

चाकूको बराबर खूब तेज रखना चाहिए। काटनेके बाद स्टेन्सिल के दोनों पृष्ठों को चपड़े (लाह) के घोलसे रंग देना चाहिए। चपड़ा मेथिलेटेड स्पिरिट में घोला जाता है। वस्तुतः घोल वही है जो लकड़ी पर पालिश करने के काम आता है। इससे स्टेन्सिल कडा हो जाता है।। इसे लगानेके बाद स्टेन्सिल को कई घंटे तक सूखनेके लिए छोड़ देना चाहिए।

स्टेन्सिल करनेकी क्रिया—स्टेन्सिलको काम पर इस प्रकार आलपीनों से लगा देना चाहिये कि स्टेन्सिलके हटनेका डर कुछ भी न रहे। फिर रंगाई आरम्भ करनी चाहिए। बुरुश में रंग बहुत ही थोड़ा उठाया जाय; वस्तुतः यह प्रायः सूखा रहे। अधिक रंग रहनेसे रंग स्टेन्सिलके नीचे खिंच आता है बुरुश तीन प्रकारसे चलाया जा सकता है—(१) गोल-गोल हाथ चला कर, (२) छप-छप करके, और (३) साधारण रीतिसे लंबे-लंबे हाथ चला कर (चित्र २)। प्रथम विधिमें बुरुश ½ इंच या ¼ इंचके व्यासका वृत्त बनाता चलता है, और साथ ही हाथ एक ओर भी खिसकता चलता है। इस प्रकार वृत्त अलग-अलग नहीं दिखलाई पड़ते, वे एक दूसरे पर चढ़ जाते हैं और बराबर रंग लग जाता है। जब बड़े क्षेत्रों को रंगना पड़ता है तो हाथ इसी प्रकार चलाया जाता है। दूसरी विधिसे हाथ तब चलाया जाता है जब छोटे क्षेत्रोंको रंगना पड़ता है। नौसिखियोंके लिये यही सबसे अच्छी रीति है। बुरुश काम से पहले ही हटा रहता है। फिर सीधा चलकर काम पर छपसे गिरता है, फिर उठता है और दोबारा काम पर गिरता है, इत्यादि। बुरुशको इसी प्रकार चलानेसे बारीक-से-बारीक कपड़ा भी बिना किसी भयके रंगा जा सकता है। अन्य रीतियोंमें कपड़ेके खिंच जानेका डर रहता है। तीसरी विधिसे केवल लंबी रेखाएं रंगी जाती हैं।
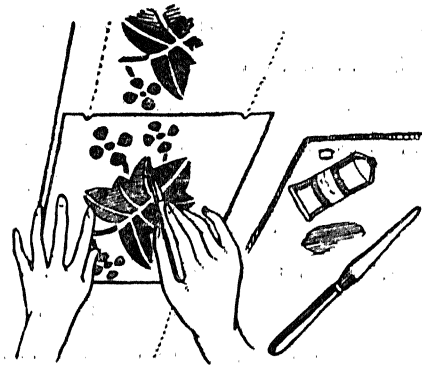
चित्र २—रंग भरने की रीति

कभी भी बुरुश को स्टेन्सिलमें कटे छेदों के आर-पार नहीं

चलाना चाहिए, अन्यथा छेद के किनारे बुरुश से रंग काछ लेंगे और वहां इतना अधिक रंग हो जायगा कि कुछ रंग अवश्य स्टेन्सिल के नीचे चला जायगा।

यदि दो या अधिक रंगों से रंगना हो तो अकसर एक ही स्टेन्सिल से काम चल जाता है, परन्तु प्रत्येक रंग के लिये एक अलग बुरुश चाहिए।

फुटकर—यदि बहुत बारीक कपड़े पर स्टेन्सिल करना हो तो उसके नीचे दूसरा स्वच्छ चिकना मोटा कपड़ा बिछा लेना चाहिए। यदि पटरे पर कपड़ा तान कर किनारों पर कीलें ठोंकी जा सकें तो और भी अच्छा होगा। तो भी, बराबर चेष्टा यही करनी चाहिए कि कहीं भी रंग इतना न लगने पाये कि यह नीचे बिछे कपड़े तक पहुंच जाय।

बड़े कामों पर स्टेन्सिल करनेमें धैर्यकी आवश्यकता है। उतावलीसे काम बिगड़ जायगा।

माड़ी लगे कपड़े पर स्टेन्सिल करना पुराने कपड़े पर स्टेन्सिल करने की अपेक्षा अधिक सरल है। बहुमूल्य वस्तुओं पर ही स्टेन्सिल करनेकी कला न सीखनी चाहिए। पहले बेकार टुकड़ों पर हाथ चला कर कुछ अभ्यास कर लेना चाहिए। थोड़े दिनोंमें अच्छी सफाई आ जायेगी।

नये बुरुश बहुत कड़े होते हैं। कार्यारम्भ के एक आध घंटे पहले उन्हें पानीसे भिगो रखना अच्छा है।

कारखानोंमें बुरुशसे रंग न लगा कर स्प्रे-गन (spray-gun) से रंगकी झींसी काम पर छोड़ दी जाती है। डिजायनों के कुछ नमूने साथमें दिये जाते हैं, इनकी नकल आवश्यकतानुसार छोटे या बड़े पैमाने पर बना ली जा सकती हैं।

चित्र ३—स्टेन्सिल के कुछ डिजा न।

(अवशेषाङ्क पृष्ठ १०७ का)

श्चात् वे एक खाली कमरेमें प्रविष्ट हुए। किसीको भी अपने मस्तिष्कके चिह्नके रंगका पता नहीं है और न कोई कुछ बोल ही सकता है। और उन्हें यह आदेश मिला हुआ है कि जैसे ही कोई दो श्वेत चिह्न देखले अथवा अपने चिह्नका रंग ठीक-ठीक निश्चित् करले, वह कमरेसे बाहर आ सकता है। तीनों ही वैसे तो तीव्र-बुद्धि वाले हैं, लेकिन 'क' अपेक्षतया अधिक तीव्र बुद्धि है। 'ख' और 'ग' को तुरन्त न बाहर निकलते देख वह एक क्षण भर मनन करता है और अपने मस्तिष्क का रंग ठीक-ठीक निर्दिष्ट कर बाहर निकल आता है। तो बताओ उसका क्या रंग था और और उसने किस प्रकार उसे निर्णीत किया?

१०—दो घुड़सवार योद्धा मुठभेड़ करने के लिये ३० मील लम्बी सड़क के एक-एक सिरे से ३० मील प्रति घंटाकी गतिसे चल पड़े। द्रुतगामी मक्खी अपना पराक्रम दिखाने के लिये ३६० मील की गति से उड़ती है। पहले एक घोड़े पर बैठी फिर दूसरे पर जा उड़ी फिर वापिस पहले पर आ बैठी और ऐसा करती रही यहां तक कि वह दोनों घोड़ों के बीचमें पिच गई। तो उसने कुल कितनी दूरी तय की?

—०—
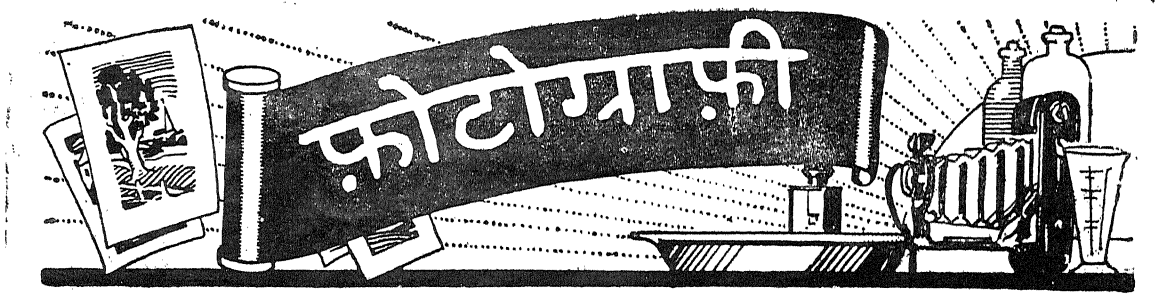
एलबम

चित्रों को सुरक्षित और सुविधाजनक ढंगसे रखनेके लिये चित्र पुस्तकों का उपयोग किया जाता है जिसे अङ्गरेजी में एलबम (album) कहते हैं। बाजारमें तरह-तरहके साधारण और सुन्दर, सस्ते और बहुमूल्य, एलबम बिकते हैं। परन्तु कोई भी चतुर व्यक्ति सन्तोषजनक एलबम स्वयं बहुत कम समय में बना सकता है। इसके लिये पहले मोटा रङ्गीन कागज खरीदना चाहिये। खैरा (सेपिया sepia) रङ्गके फोटोग्राफों के लिये सुरमई (grey) रङ्ग का कागज अच्छा होता है। खूब गाढ़े हरे रङ्गका कागज भी बहुत-से ऐलबमोंमें लगा रहता है। परन्तु अपनी रुचि के अनुसार अन्य रङ्गके कागजोंका भी उपयोग किया जा सकता है।

पहले सब कागजों को एक नाप का काट लेना चाहिये। छोटे चित्रों के लिये ६ इञ्च ×९ इञ्च नाप अच्छी होगी। एक पृष्ठ में तब दो या चार चित्र चिपकाये जा सकेंगे।

अब इन कागजों में एक ओर तीन छेद करने चाहियें। इसके लिये पहले दफ्ती का साँचा बना लेना चाहिये। तब दो-दो चार-चार कागजों पर सांचे को रखकर और सांचे के छेदों में बारी-बारीसे सुम्भी रखकर ठोंकने से सब कागजों में सच्चा छेद किया जा सकता है। सांचा बनाने की रीति और उसके उपयोगकी विधि चित्र को देखते ही समझ में आ जायगी। सुम्भी खोखली हो,जैसी मोची लोग चमड़े में छेद करनेके लिये उपयोग करते हैं। इससे छोटी सी टिकुली कटकर साफ निकल जाती है। सूये से छेद करने पर कागज फट जाता है और साफ छेद नहीं होता।

अब ऊपर और नीचे इच्छानुसार रङ्गका कवर और किनारे पर कोई गोट की तरह मोटा कागज मोड़कर और चिपका कर (इसमें भी पहले से छेद कर लिये जांय) धागा बांध देना चाहिये। धागे को छेदों में पहनाने की रीति चित्र से स्पष्ट हो जायगी। रेशमी मोटे धागे का उपयोग किया जाय तो अच्छा होगा। एलबमके किनारे किसी दफ्तरी से कटा लिये जांय तो वे चिकने हो जांयगे।

कवर पर इच्छानुसार टाइटल (शीर्ष) सुन्दर मोटे अक्षरों में लिख देनेसे एलबम और भी बढ़िया लगेगा।
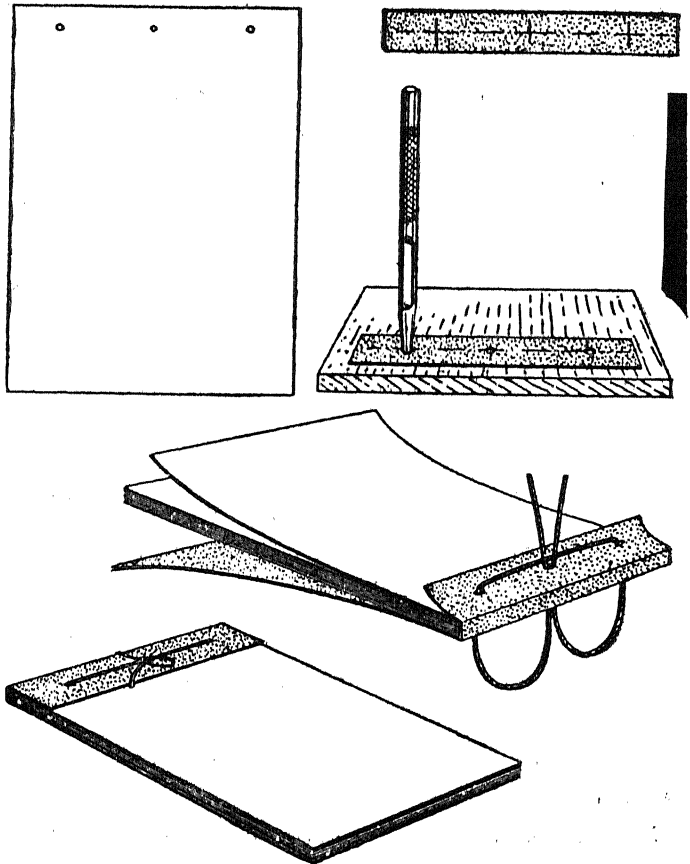
चित्र ऐलबम बनाने की विधि

एक्स-रे के नए उपयोग

[लेखक—सुरेश शरण अग्रवाल, एम. एस-सी.]

आज संसार में ऐसा कौन होगा जिसने एक्स-रे का नाम नहीं सुना हो। इन रश्मियोंका आविष्कार सन् १८९५ में जर्मन वैज्ञानिक रौञ्जनने किया था। तबसे अबतक लगातार वैज्ञानिक इन रश्मियों पर काम कर रहे हैं। इनका एक उपयोग मनुष्यके शरीरमें निकल जाना और हड्डियोंसे न निकल सकना सर्वविदित है। सैकड़ों और हजारों दीन दुःखियों का कष्ट-निवारण इन रश्मियोंके कारण हुआ है। इनका उपयोग कला-कौशल में ही नहीं, भौतिक तथा रसायन-शास्त्र सम्बन्धी विज्ञानमें भी होता है। भौतिक-शास्त्रका वर्तमान विद्यार्थी तो एक्स-रे की सहायता बिना आगे बढ़ ही नहीं सकता। रोगको पहचानने तथा दूर करनेके अतिरिक्त यह रश्मियां जोड़ों (welded joints) का निरीक्षण करनेमें, भोज्य-पदार्थोंकी परीक्षा आदि में भी काम आती हैं, कला-कौशलमें तो इनका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। इस लेखमें कुछ नये उपयोगोंका वर्णन किया जायगा।

इस क्षेत्र में नवीनतम रचना दस लाख वोल्ट वाले यूनिट (million volt unit) की है जो अमेरिकाकी जेनरल इलैक्ट्रिक कम्पनीने व्यापारिक कार्मोंके लियेकी है। भीमकाय मशीनोंके अंगोंका शीघ्र निरीक्षण इस यूनिटका उद्देश्य है—जैसे स्टील टरबाइन कास्टिंग आदि। पूर्व इसके कि मशीनोंसे काम लिया जाय कि प्रथम यह देखना आवश्यक होता है कि कहीं उसमें कोई खराबी तो नहीं है।

गत कई वर्षोंसे मशीनके अंगोंका एक्स-रे निरीक्षण प्रचलित है। पहले तो ऐसा होता था कि मशीनको काम पर लगा देते थे और जब फिर वह किसी खराबीके कारण रुक जाती थी तो ठीक करते थे; किंतु अब एक्स-रे के द्वारा पहले ही से सब बातें देख ली जाती हैं; जिससे समय तथा धन दोनों की बचत होती हैं। जबतक इस दस लाख वोल्ट वाले यूनिटका आविष्कार नहीं हुआ था, निरीक्षण कार्य में देर लगती थी। परन्तु इस नव-यूनिट द्वारा वह काम मिनटोंमें किया जा सकता है, जिस में पहले घंटों लगते थे। उदाहरणार्थ चार लाख वोल्ट वाले यूनिटको चार इंच मोटे स्टीलका एक्स-रे चित्र लेनेके लिये एक घंटा तक खुला रखना पड़ता था। यदि स्टील एक्स-रे उद्गमसे एक गजकी दूरी पर हो; किंतु इस दस लाख वाले यूनिटसे यही काम दो मिनटसे भी कममें हो जाता है। पांच इंच मोटे स्टीलके लिये जहां पहले साढ़े तीन घंटे लगते थे, अब केवल पांच मिनट, प्रत्येक एक इंच स्टीलके लिए उद्घाटन समय (exposure time) अढ़ाई गुना बढ़ाना पड़ता है।

एक्स-रे की भौतिक-विद्यामें जाये बिना ही यह प्रकट है कि इन रश्मियोंकी भेदन-शक्ति कई बातों पर निर्भर है। जिसमेंसे प्रमुख है उत्पादक नली (generating tube) का वोल्टेज। अन्य बातोंमें जिन पर भेदन आश्रित है भेद्य पदार्थ तथा एक्स-रे उद्गमसे उसकी दूरी भी है। उदाहरणार्थ सीसे में यह रश्मियां कदापि नहीं जा सकतीं, इसके विरुद्ध हवाके लिये यह पारदर्शी हैं। एक्स-रे की हानिकारक शक्तियां भी अज्ञात नहीं हैं। यदि उन पर रोक न की जाये या उचित ढँगसे प्रयोग न की जायें तो मानव-शरीरको अत्यन्त हानि पहुंचा सकती हैं। परन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए, यदि ढंगसे विधि पूर्वक लगाई जायें तो लाभदायक भी कम नहीं हैं।

फलत: (X-ray Equipment) एक्स-रे सामग्रीके बनानेमें प्रत्येक प्रकारकी सावधानीकी जाती हैं, ताकि कोई मुसीबत न उठानी पड़े और सुगमतापूर्वक उसका प्रयोग किया जा सके। उपर्युक्त दस लाख वोल्ट वाले यूनिटके लिये अमेरिका में एक स्थान पर एक विशेष इमारत बनवाई गई है। उसकी चहार दिवारी में १४ इंच मोटा कंक्रीट लगा है और अन्दर १२ इंचकी मोटाई तक ईंटें और इन सबका प्रभाव चार इञ्च मोटे सीसेके बराबर है। उस इमारतकी बुनियादें पांच फिट जमीनके अन्दर हैं। इतनी सावधानीसे काम करने वाले पर कोई व्यक्तिगत आपत्ति नहीं आ सकती। पूरी इमारत १०० फुट लम्बी और ३५ फुट चौड़ी है और एक सिरे पर विशाल दरवाजा है। यह दरवाजा १८ इञ्च मोटे कंक्रीट पत्थरका है और एक इञ्ची मोटी स्टील प्लेटसे घिरा हुआ है, छतपर १५ × १३ फुटका (hatchway) है जिसके बाहर एक क्रेन (crane) है जिसके द्वारा किसी भी मशीन को उठा कर नीचे लाया जा सकता है। जब एक्स-रे सामग्री में इतनी सुगमतायें हैं तो उच्च

वोल्टेजके कारण मशीनके चलने की अत्यन्त तीव्र गतिका लाभ उठाया जा सकता है। एक्स-रे सामग्री स्वयं-नली और सब आपरेटिंग वस्तुएं-एक । बेलनाकार टैंकमें रखी जाती हैं और यह टैंक एक क्रेनसे लटकाया जाता है। यह क्रेन इमारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक पहुंचाई जा सकती है। इसको पृथ्वीके धरातल के समानान्तर या लम्ब हिला सकते हैं और घुमा भी सकते हैं, ताकि जिस स्थितिमें सर्वश्रेष्ठ कार्य हो, उसीमें रख सकें। जब दस लाख-वोल्टीय नली चालू होती है तो कमरेमें कोई व्यक्ति नहीं रहता। दूर-दूर तक कराट्रोल लगे होते हैं, ताकि कार्य को इच्छापूर्वक आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सकें। कराट्रोल करने वाले स्विचबोर्ड पर एक पेरिस्कोप periscope लगा रहता है जिससे कि कार्यकर्ता देख सकें कि ठीक काम हो रहा है या नहीं।

एक्स-रश्मियोंका सम्पूर्ण ज्ञान तो अभी तक प्राप्त हुआ नहीं है; अतएव उस ज्ञानकी वृद्धिका भी जेनेरल इलैक्ट्रिक कम्पनी वालोंने प्रबन्ध किया है। और वह उस भांति की एक्स-रे कमरेकी दीवारों पर फिल्मके छोटे-छोटे टुकड़े लगा दिये हैं जो सूर्यकी रोशनीसे (sealed) रहते हैं। जब एक्स-रे नली से किसी मशीनकी परीक्षा कर ली जाती है, इन फिल्मोंको हटा कर डेवलेप कर लेते हैं। यह जानते हुए कि नलीके संबध अथवा विचारसे कौन फिल्म कहां था, इस विषयके विशेषज्ञ रश्मियोंके मार्ग-चित्र बनाते हैं और देखते हैं कि सामान्य व्यवहारसे कुछ विभिन्नता तो नहीं है और इसके साथ ही इमारत के काम करने वालोंके पास भी फिल्म रहते हैं। समय-समय पर यह फिल्म कम्पनीके मेडिकल विभागको भेज दी जाती हैं। यह देखनेके लिये कि आपरेटर्स रश्मियोंसे (exposure) तो नहीं पा रहे।

यह विदित है कि अधिकाधिक भेदन-शक्ति ही एक्स-रे कार्यके लिये परमावश्यक नहीं है। कभी-कभी साधारण भेदन ही यथेष्ठ होता है। परन्तु लक्ष्य होता है उद्घाटन (exposure) की उच्च गति पाना। एक नया साधन जिसके द्वारा शरीरका एक्सरे चित्र $\frac{१}{६०}$ सेकिण्डमें लिया जा सकता है, मेडिकल विज्ञान की महान् देन है। यह विशेष मशीन एक लाख वोल्ट पर काम करती है और अमरीकाके वैस्टिंग हाउस इञ्जीनियर्स के अनुसार २० सेल वाले मस्तिष्कसे सुशोभित है, जो विचार करता है और तेजीसे तथा ठीक प्रकारसे काम करता है। सत्य तो यह है कि मस्तिष्कके सेल विद्युत्-रिले (electrical relays) हैं, जो एक बार मशीनके सेट हो जाने पर स्वयं (automaticals) आपसे-आप चलते हैं और उनके कारण मशीन कई आपरेशनों में होकर जाती है, जिनमें एक्स-रे चित्र लेना केवल एक है।

अबतक हमने एक्स-रे की भेदन-शक्ति, साधन तथा वह साधन जिसके द्वारा चित्र क्षण भरमें लिया जा सकता है, बतलाये। परन्तु इन रश्मियोंका इनसे भी उत्तम उपयोग है। सैरबीनी चित्र (stereoscopic pictures) लेना, जो कि डाक्टरों के बड़े कामकी चीज है, क्योंकि इसके कारण किसी भी अंगका त्रिदिशात्मक एक्स-रे दृश्य (three dimensional x-ray view) देखा जा सकता है। चलाने वाले आदमी (operator आपरेटर) को वोल्टेज, करेराट और उद्घाटन समय (exposure time) कन्ट्रोल ठीक लगा देना होता है और बाकी सब काम यन्त्र स्वयं कर लेता है। आपरेटरको केवल एक घोड़ा (trigger) खैंचना होता है, बस फिर विद्युत्-मस्तिष्क वोल्टेजको इच्छित मान पर ला देता है। एक्स-रे नलीको प्रयोगके लिये ठीक कर देता और सैरबीनी उपकरण (stereoscopic apparatus) कार्य हेतु ठीक हो जाता है। एक दूसरे घोड़े पर थोड़ा दबाव देने पर रिलेज क, दूसरा सेट चल पड़ता है, जिसके कारण एकी उद्घाटन (simple exposure) होता है, फिल्म हिलता है और नलीका कोण सैरबीनी प्रकाश प्राप्त करनेके लिये ठीक लग जाता है और फिर दूसरा उद्घाटन होता है। तदोपरान्त, सर्किट आपसे-आप पुनः सेट हो जाते हैं और दूसरे चक्रके लिये तैयार हो जाते हैं।

विद्युतके विचारसे इस यन्त्र का एक अद्भुत गुण यह है कि कोई २०० ऐम्पीयर करेराट $\frac{१}{६०}$ सेकराड में ही आन व ऑफ (on and off) हो जाते हैं और सर्किट के किसी भी भागको बिना जलाये हुए, ऐसा होपाता है। एक इग्नाइट्रन नली (Ignitron tube) के कारण जो कि एकान्तर (alternating) धारासे चालू शून्य-नली (vaccum tube) के कारण यांत्रिक स्पर्श नहीं होते और मुसीबत बच जाती है। जब यह एक्स-रे यन्त्र महत्तम शक्ति पर काम करता है, तो ६०-अश्व बलके समान शक्ति निकलती है और फलतः सर्किट की उचित निगरानी रखने की आवश्यकता रहती है। यदि ऐसा न हुआ तो हजार डालर की एक्स-रे नली व्यर्थ हो जायगी।

मेडिकल कामोंके लिये $\frac{१}{६०}$ सेकराडके उद्घाटन(exposure)

बहुत काफी होते हैं, परन्तु और कार्यों के लिये इससे भी ऊँची गति चाहिये। उदाहरणार्थ यदि एक्स-रे चित्र बहुत ऊँची गति पर लिया जा सके, जिससे हरकत बन्द (stop motion) हो जावे तो इसकी बाबत कि राइफिल की गोली के एक ठोस पदार्थ पर लगनेसे क्या होता है, बहुत कुछ जाना जा सकता है। और यह यन्त्र द्वारा कर भी लिया गया है।

प्रचलित एक्स-रे नलीमें दो भाग मुख्य होते हैं—कैथोड (cathode) जहां से ऋणाणु निकलते हैं और एनोड (anode) जिस पर इन ऋणाणुओं का लक्ष्य होता है। जब ऋणाणु लक्ष्यसे टकराते हैं तब एक्स-रे निकलती है। नई उच्च गति वाली नलीमें एक और विद्युद्वार (electrode) लगाया गया है। यह ऋणाणुओं के (discharge) के लिये घोड़े का काम करता है। काम करते समय नली में शक्ति कण्डेन्सर्स के समूहसे (जिनका वोल्टेज ६०,००० होता है,) प्राप्त होती है। सर्किट इस प्रकार सेट किया होता है कि यद्यपि कण्डेसर्स इच्छित वोल्टेज तक चार्ज हो जाते हैं, तो भी वे एक्स-रे नलीमें अपना करेण्ट डिसचार्ज नहीं कर सकते, जब तक कि (चाहे थोड़ा-सा ही) (electrical impulse) विद्युत् संवेग न दिया जावे। और यह संवेग (impulse) समय सर्किट (timing circuit) के तोड़नेसे प्राप्त होता है। एक राइफिलकी गोली या अन्य कोई गतिशील पदार्थ टंगसटन के तारके स्ट्रैन्ड (strand) को तोड़ता है जिससे समय-सर्किट में बाधा पड़ जाती है। इस प्रकार आवश्यक संवेग impulse मिल जाता है। एक्स-रे नली में कण्डेन्सर्स डिसचार्ज हो जाते हैं और उद्घाटन (exposure) हो जाता है। नली में २००० ऐम्पीयर करेण्ट लगभग ६०,००० वोल्ट पर जाती है; किन्तु एक सेकण्ड के १/१०,००,००० भाग तक। इस प्रकार जो एक्स-रे तैयार होते हैं, उनमें इतनी तेजी से फोटोग्राफिक फिल्म लगाया जाता है कि इस पल भरमें चलने वाले पदार्थों से एक्स-रे चित्र ले लिया जाता है।

उपर्युक्त विवरणमें जो कार्य है वह एक्स-रे तथा फोटोग्राफी के सहयोग से किया गया है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि किरणों का भेदन-प्रभाव फोटोग्राफिक फिल्म के बिना भी दिखलाया जा सकता है। यदि एक पर्दे पर, जिसपर कुछ रसायनिक चीजें (chemicals) लगी हों, एक्स-रे टकरायें, तब वह पर्दा (fluoresce) करेगा या आगामी किरणोंकी शक्तिके अनुसार चमकेगा इस प्रकार यदि किसी पदार्थ को एक्स-रे उद्गम तथा पर्दे के बीचमें रख दें तो उस पर्दे पर पदार्थ का प्रतिबिम्ब बनेगा और इस बिम्ब से पदार्थकी भीतरी रचना विदित हो जायगी।

दीर्घ समय से यह साधारण एक्स-रे फोटोग्राफिक प्रैक्टिस रही है कि निगेटिव पूरे साइज़ के बनाते हैं, जिसमें बहुत व्यय आदि विपत्तियां उठानी पड़ती हैं। एक्स-रे फोटोग्राफीमें कैमरा प्रयोग नहीं किया जाता। पदार्थ को एक्स-रे उद्गम तथा निगेटिव के बीचमें रख देते हैं और (exposure) करते हैं। विशालाकार निगेटिव से बचनेके लिये बहुत प्रयत्न किये गए हैं और यह उपाय किया गया है कि प्रतिबिम्ब को प्रतिदीप्ति (fluoroscope) के पर्दे पर ले लेते हैं, किन्तु इसमें सफलता निकट भूतमें ही मिली है। कई कारणोंसे इस विधिसे उत्तम परिणाम प्राप्त न हुए थे। पहले तो यह कि पर्दे की चमक (brilliancy) अधिकाधिक हो, फिर स्क्रीन के रङ्ग के लिये फोटो वाली फिल्म बहुत (sensitive) होनी चाहिये और तीसरे यह कि ताल (lens) तेज़ हों। बहुत प्रयोगोंके अनन्तर प्रथम दो समस्यायें हल कर ली गई हैं और ताल भी चौड़े मुँह (aperture) का प्रयोग होता है। इन सबका परिणाम यह है कि एक प्रतिदापक (fluorescent) पर्दे पर प्रतिबिम्ब का फोटो ४" × ५" निगेटिव के प्रयोग करने पर लिया जा सकता है और 'नये' एक्स-रे फिल्म इस भांति प्राप्त हो जाते हैं जो काफी सन्तोषजनक हैं।

इन फिल्मों का मुख्य उपयोग तपेदिक की बीमारीके लिये किया गया है। अमेरिका में तो बहुत-सी मशीनें विशेषकर इस कामके लिये तैयार की जा रही हैं, ताकि सिपाहियों तथा वालशिटयरों में से जो 'unfit' हों उन्हें निकाल सकें। इस नये ढंगसे फोटो लेने में प्रचलित ढंग की अपेक्षा १/१० व्यय पड़ता है और जो अन्य लाभ होते हैं वह तो विदित ही हैं।

एक्स-रे के अन्य नए उपयोगोंमें एक वह यन्त्र है जिसके द्वारा युद्धक्षेत्र में पड़े जख्मी सिपाहियोंको एक मिनट में एक की गतिसे देखा जा सकता है और शरीरके अन्दरकी गोली आदि तनिक समयमें देखी जा सकती हैं। इस विषयके एक विशेषज्ञका कहना है कि सारा सामान (equipment) रणभूमि में १० मिनटमें लगाया जा सकता है और तुरन्त कार्यान्वित किया

(शेषाङ्क पृष्ठ १२०)

घोड़ोंकी सधाई

यदि आपको कभी ऐसे घोड़े पर सवारी करनेका अवसर मिला हो जिसे उचित रूपसे सधाया न गया हो, जो पत्ता खड़कनेकी आवाज़ सुन कर भी चौकन्ना हो जाता हो और जो आने जाने वाली मोटर गाड़ियोंकी आवाजसे डर कर उछलने लग जाता हो और सवारको गिरा देता हो, जब आप उसी घोड़े को युद्धक्षेत्र की भयंकर गर्जनाओं और तरह तरहके शोर शराबोंमें बड़ी शांतिसे काम करते हैं तो देखकर आपके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

और घुड़सवार उसके कान से कुछ इञ्च की दूरी पर रख कर पिस्तौल चला सकता है। उसे ऊंची-ऊंची दीवारों और तारों परसे कुदा सकता है, चौड़ी खाइयोंको पार कर सकता है, और सिरतोड़ ढलवान पर सवारी कर सकता है। बाजे के साथ आसानी से कूच कर सकता है और गहरी नदियों में तैर कर पार हो सकता है। वह उसे ऐसे स्थान पर चुप-चाप खड़ा रख सकता है जहां तोप अग्निवर्षा कर रही हो। यहां तक कि वह उसे भगा कर मौतके मुंहमें भी ले जा सकता है। किसी बहुत बड़े इनामके लोभ में नहीं—मुट्ठी भर घास या दानेके बदले।

घोड़े वीर बनना नहीं सीखते। उनके मस्तिष्कमें आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु उन्हें सिखाया जा सकता है कि युद्धका शोरशराबा जीवनकी एक साधारण-सी बात है। यह बात वे धीरे-धीरे सीख जाते हैं। यही कारण है कि रिसाले के घोड़े बहुत सधे हुए होते हैं, क्योंकि सेनामें हरेक बातका नियम है।

रिसालेके घोड़ोंकी सधाईका काम जन्मसे ही शुरू हो जाता है। वे चुनी हुई नसलसे लिये जाते हैं। वे अभी छोटे-छोटे बच्चे ही होते हैं कि सधाईका काम शुरू हो जाता है। वे आदमीके सम्पर्कके अभ्यासी बन जाते हैं। वे उन्हें थपकी देते हैं और चारापानी देते हैं। परन्तु सधाईका असली काम छावनी में जाकर शुरू होता है। जहां सबसे पहले उसे चलना सिखाया जाता है। फिर बादमें सवारीमें लगाया जाता है।

इस मतलब के लिये एक विशेष प्रकार की काठी बनी होती है। चूँकि वह अबतक चरागाह में आरामसे घास चरता रहा था और ऐसे कड़े परिश्रम का अभ्यासी नहीं था, इसलिये जल्दी ही थक जाता है। तब उसे पुचकारा जाता है, थपकी दी जाती है और काम पर लगाया जाता है। यदि वह अवज्ञा करे तो उसे फिर मैदानमें दौड़ाया जाता है।

तीसरे चौथे दिन उस पर सवारी की जाती है। पहले सवार उसकी गर्दन पर थपकी देता है, उसकी गर्दनमें अपना बाज़ू डाल देता है, फिर दोनों हाथोंसे काठी को पकड़ता है। पांव रकाबमें रख कर अपना वजन तोलता है और उस पर जा बैठता है। यह सब एक एक क्षणमें हो जाता हैं। ८-१० दिनमें उसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी चालें आ जाती हैं। दूसरे सप्ताहमें सामूहिक चालका अभ्यास कराया जाता है। समीप ही फौजी बाजा बजता रहता है। बीच-बीचमें बिगुल भी बजते रहते हैं। शनैः शनैः वह इन सबका आदि हो जाता है। यदि वह इन आवाजों से डरता हो तो उसे उन घोड़ोंके समीप रखा जाता है जिन पर चढ़ कर उन यन्त्रोंसे ध्वनि पैदा की जाती है। फिर उसे धीरे-धीरे बन्दूक की आवाज का अभ्यासी बनाया जाता है। निशाना काफी समीप रखा जाता हैं ताकि घोड़ा उसे अच्छी तरह सुनें। धीरे-धीरे आवाज समीपतम लाई जाती है। वह समझ जाता है कि इससे मेरी कोई हानि नहीं है। आस-पासके घोड़ों को भी वह उससे उदासीन देखता है। यदि अब भी वह कुछ बेचैनी ज़ाहिर करे तो उसका दाना बन्द कर दिया जाता है। दूसरे घोड़ोंको उस आवाज़ से बेपरवाह हो कर खाते-पीते देख कर वह भी उसका आदि हो जाता है। पहले उसके कानके समीप खाली पिस्तौल दागा जाता है और फासला धीरे-धीरे कम करते जाते हैं। आखिर एक दिन भरा पिस्तौल भी दागा जाता है।

इसी तरह ऊंची कूदानके लिये सधाया जाता है। पहले मामूली लोहेकी पटड़ियों परसे गुजारा जाता है। फिर उन पटड़ियोंको ६ इञ्च ऊंचा कर देते हैं। इसी तरह शनैः-शनैः इस ऊंचाईको ७-८ फुट तक पहुंचा दिया जाता है झाड़ियों, बक्सों और तेलके ड्रमों परसे कुदाया जाता है। चौड़ी खाइयोंको पार करानेमें जरा कठिनाई पड़ा करती है। इन खाइयोंकी चौड़ाई और गहराई धीरे-धीरे ६-६ इञ्च बढ़ाई जाती है। आखिर एक दिन खाईकी चौड़ाई ८ फुट हो जाती है। तैरना सिखानेके लिये सवार नावमें बैठ कर चलता है और सधे हुए घोड़े आस-पास।

इसी तरह ३ मासमें घोड़ा फौजके हरेक कामके लिए तैय्यार हो जाता है।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

बिना बीजके टमाटर

न्यूयॉर्कके डाक्टर ज़िमरमैनको पता चला है कि यदि टमाटरके पौधोंको बीटा-नैपथौक्सी-ऐसेटिक ऐसिडकी धूनी दी जाय तो जो फल लगते हैं, उनमें बीज नहीं रहता। फल बहुत स्वादिष्ट और रस भरे होते हैं। धूनी उस समय दी जाए जब फूलकी कलियां निकल रही हों। टमाटरके पौधे गमलों में लगे हों और कोठरीके भीतर रख दिये गये हों। फिर उस कोठरी में उपर्युक्त रासायनिक पदार्थके रवोंको बहुत मन्द आंच पर धीरे-धीरे गरम किया गया जिसमें पदार्थ जलने न पाये।

प्रकाश का वेग

प्रकाशका वेग कई बार कई रीतियोंसे नापा गया है। यह वेग इतना अधिक है—लगभग दो लाख मील प्रति सेकंड—कि इसके नापनेमें कुछ-न-कुछ त्रुटि रह ही जाती है। हालमें ही डाक्टर ऐंडरसनने फोटो-एलेक्ट्रिक सेल और स्वयं-लेखी यन्त्रोंकी सहायता से प्रकाश के वेग को अत्यन्त सूक्ष्म रीति से नापा है। इसका परिणाम यह निकला है कि प्रकाश का वेग वस्तुतः १८६,२७२ मील प्रति सेकंड है। इससे पहले जो नाप अन्य रीतियों से हुई थी, उसमें १२ मीलकी त्रुटि रह गई थी।

सेवारसे कपड़ा

रेशमके कीड़े पत्ती आदि खाते हैं। उनके पेटमें इनके घुल जाने पर ऐसा लुआब (शीरेके समान गाढ़ा पदार्थ) बन जाता है जिससे कीड़ा रेशमका अत्यन्त सूक्ष्म रेशा बना सकता है। वैज्ञानिकोंने इस क्रियाका रहस्य जान लिया है और वे पेड़की लकड़ी को ऐसिटिक ऐसिड आदि में घोल कर लुआब बनाते हैं और उसीके तार खींच कर नकली रेशम बनाते हैं, जिसे रेयन कहते हैं। ग्रेटब्रिटेन वर्तमान महायुद्ध के कारण अधिक मात्रामें न तो रूई और न नकली रेशम ही बाहरसे ला सकता है। इस परिस्थितिमें वहांके वैज्ञानिकोंने समुद्रमें होने वाली सेवार (शैवाल) का ही लुआब बना कर नकली रेशम बनानेमें सफलता प्राप्त की है। यह सेवार स्कॉटलैंड और आयरलैंडके समुद्रतट पर बहुत अधिक मात्रामें मिलता हैं।

बर्फमें जमे फल

तुरन्त बर्फमें दबा कर रख देनेसे प्रायः सभी वस्तुएं रक्खी जा सकती हैं। शीघ्र सड़ने वाली ऐसी वस्तुएं जैसे मछली, मांस, अंडे आदि महीनों तक सुरक्षित रह सकती हैं। विदेशों में सरकारी या गैरसरकारी ठंडे गोदाम रहते हैं, जहां किराया देकर कोई भी अपनी वस्तुओंको सुरक्षित रख सकता है। इससे फसल में अधिक उत्पन्न हुई वस्तुएं पीछे महंगी के ज़माने में बर्फ से निकाल कर बेची जा सकती हैं। भारतवर्ष में भी कलकत्ता और बम्बई में अब ऐसे गोदाम बन गये हैं। अभी तक कठिनाई यह पड़ती थी कि गोदाम तक मालके पहुंचते-पहुंचते उसके बिगड़ जानेका भय रहता था। एक बार स्वादके दूषित हो जानेसे फिर बर्फ में रखने से भी स्वाद सुधर नहीं सकता। अब एक इंजीनियर ने ऐसी मशीन का आविष्कार किया है जो छोटी-सी है और आसानी से प्रत्येक व्यवसायी अपने घर में बैठा सकता है। इसमें ६ इंच व्यासका एक पाइप है जिसमें एक विशेष गाढ़ा तरल पदार्थ और जमाने वाली वस्तुएं (मछली, फल आदि) रख दी जाती हैं। मशीन चालू करने पर ये वस्तुएं शीघ्र जम जाती हैं। नलमें एक पेंच लगा रहता है जिसके कारण जैसे-जैसे वस्तुएं जमती जाती हैं, वे खिसक कर पाइपके एक सिरे से निकलती रहती हैं। तरल पदार्थ स्वयं नहीं जमता। केवल वस्तुएं इतनी ठंडी हो जाती हैं कि वे भीतर तक जम जाती हैं। इसका आविष्कारक टेकनास विश्वविद्यालयका एक इंजिनीयर (एल० एच० बार्टलेट) है। मशीन कुल पांच फुट लम्बी, इतनी ही चौड़ी और आठ फुट ऊँची है, परन्तु दाम इसका अभी डेढ़ हजार डॉलर (लगभग छः हजार रुपया) है। इस प्रकार वस्तुएं विशेष बक्सोंमें बन्द करके ठंडे गोदाममें भेज दी जाती हैं।

बिजलीसे व्हेल मारिये

अभी तक व्हेल मछलीको कँटिया के आकार के सिर वाले भालेसे मारते थे। ऐसे भालेको हारपून कहते हैं। इसके दूसरे सिरे पर रस्सी लगी रहती है। जब व्हेल में दो चार हारपूनें घुस जाती हैं तो रस्सियों के सहारे व्हेलको खींच लेते है। इसमें व्हेलको बड़ी तकलीफ होती है और वह बहुत छटपटाती है। उसकी दुम की चोट खाकर बड़ी-बड़ी किश्तियां चकनाचूर हो जाती हैं। अब एक आविष्कारकने ऐसा प्रबन्ध किया है कि रस्सीके भीतर-भीतर बिजलीका एक तार लगा रहता है एक छोरपर इस तारको बिजली की एक अत्यन्त बलशाली बैटरीसे जोड़ देते हैं, दूसरी ओर हार-

पून पर ऐसा प्रबन्ध है कि जब हारपून मांसमें धंसे तो बिजली का खटका चल पड़े और बिजली चालू हो जाय। इस प्रकार हारपून लगते ही ह्वेलको इतना कड़ा वैद्युत् झटका लगता है कि क्षण भरमें ही उसका प्राण निकल जाता है।

ढक्कन न खोइयेगा

रंगेकी नलियोंमें आने वाले मंजन या हजामत बनानेके साबुनमें यह दोष रहता है कि ढक्कन पेंचदार रहता है और कभी कभी खो जाता है। एक आविष्कारक ने नये प्रकार का ढक्कन पेटेन्ट कराया है, इसके अनुसार ढक्कन केवल अगल-बगल खिसक सकेगा, अलग नहीं होगा। मध्यस्थिति में नली का मुंह बन्द रहेगा, परन्तु इसे एक बगल खिसका देनेसे मंजन या साबुन निकल सकेगा। असावधान व्यक्तियोंको कदाचित ऐसी नली बहुत पसंद आयेगी।

पहाड़ पर चढ़ने वाली साइकिल

साधारण साइकिलोंसे पहाड़ पर चढ़नेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है, क्योंकि पैरोंसे काफी ज़ोर नहीं लग पाता है। एक आविष्कारक ने अभी हाल में ही ऐसी साइकिल को पेटेण्ट कराया है जिसमें हैंडल को आगे पीछे खींचने से भी बाइसिकिल आगे बढ़ती है। ऐसी बाइसिकिलको पहाड़ पर चढ़ाना अधिक आसान है, क्योंकि चढ़ाई आने पर हाथ और पैर दोनों चलाये जा सकते हैं। समतल सड़कों पर केवल पैर ही चलाना पड़ता है। इस आविष्कारकी विशेषता यह है कि साइकिल के हैंडिल को मोड़ने से साइकिल ठीक उसी प्रकार दाहिने या बायें जाती है, जैसे—साधारण बाइसिकिल।

शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक

साधारण जातिके सबसे अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकोंसे वस्तुएं केवल दो हजार गुनी बड़ी दिखलाई पड़ती हैं। अब एक वैद्युत् चुम्बकीय सिद्धान्तों पर बना एलेक्ट्रन माइक्रॉस्कोप ऐसा बना है जिससे वस्तुएं ३६,००० गुनी बड़ी दिखलाई पड़ती हैं। इससे देखने पर साबुन का एक कण ऐसा जान पड़ता है जैसे वह पुआलका गट्ठर हो। सम्भव है साबुनसे हाथ इसीलिये साफ होता है कि इसके रेशोंमें मैल फंस जाती है। मंजनमें पड़ने वाला अतिसूक्ष्म खड़िया (precipitated chalk) ऐसा जान पड़ता है जैसे कड़े पत्थरके करकराते धार वाले कत्तल हों। आशा की जाती है कि इस सूक्ष्मदर्शकसे बहुत-सी नई बातें शीघ्र सीखी जायंगी।

वृक्षोंको भी इञ्जेक्शन लगेंगे

जैसे मनुष्यको रोग लगते हैं वैसे ही वृक्षोंको भी लगते हैं। कई रोगोंमें मनुष्य इञ्जेक्शन लगवा कर स्वस्थ हो जाता है, परन्तु वृक्षों में इञ्जेक्कशन लगाने की प्रथा और इसके लिये उपयोगी औषधों पर अभी तक काफी ध्यान नहीं दिया गया था। हाल में ही स्टैमफोर्ड के श्री नेस्टर कैरोसेली ने वृक्षोंके कैंसर रोग नष्ट करने की दवा और उसे इञ्जेक्शन द्वारा वृक्षोंमें प्रविष्ट कराने की रीति का आविष्कार किया है।

हरे हीरे

साइक्लोट्रोन नामक मशीनका आविष्कार वस्तुतः परमाणुओंकी भीतरी बनावटका अध्ययन करनेके लिये किया गया था। अब पता चला है कि इस मशीन में साधारण सफेद हीरे को रख कर इस पर भारी हाइड्रोजनके अणुओंकी बौछार मारने से हीरा हरा हो जाता है। धनी लोगों पर अब हरे हीरेकी धुन सवार हो गई है और ऐसे हीरेका खूब दाम मिलता है।

मछलीके चोंईटेके आभूषण

मछलीके चमड़े पर जो छोटे-छोटे कड़े मोतीके समान झलकते पत्र होते हैं, उसे चोंइटा, सिफना या सेहर कहते हैं। ये चोंइटे बेकार ही जाते हैं; परन्तु अब एक कारखाना बड़ी समुद्री मछलियों के चोंइटों से तरह-तरहके आभूषण बनाता है। स्प्रे-गन द्वारा इन पर विशेष पारदर्शक रंग चढ़ा देनेसे रंग-बिरंगे आभूषण भी बनते हैं।

मशीनसे पानी वाली घास कटेगी

झील और धीरे बहने वाली नदियोंके अन्दर अकसर लंबी लंबी घास उग आती है। इसको काटनेके लिए अभी तक कोई मशीन नहीं मिल सकी थी। इसे हाथ से काटना पड़ता था, जिसमें बहुत समय लगता था। अब एक घोड़े की ताकतके इंजन से संचालित ऐसी मशीन बनी है जिसके फल हंसियेके आकार के होते हैं और झीलकी तलीसे कुल डेढ़ इंच ऊपर नाचते हैं। इसलिये इस मशीनसे घास और सेवार प्रायः जड़से कट जाता है।

पहाड़ों के लिये नई रेलगाड़ी

इनवाम में साल्ट-लेक तक जाने के लिये ऊँचा पहाड़ी रास्ता

पड़ता है; अतः बोझ से भरी हुई गाड़ियों के ले जाने में बहुत असुविधाएं होती थीं, किन्तु यह कठिनाई एक नूतन गाड़ी के निर्माण से दूर हो गई है। इस्पातकी बनी हुई इस गाड़ीके दो डिब्बोंमें ६२ यात्री बैठ सकते हैं। इंजिनकी मशीनें गाड़ीके नीचे लटकती रहती हैं जिससे कि यात्रियों के बैठनेको अधिक जगह प्राप्त हो जाती है। दो डिब्बों की गाड़ीके बीचमें चार 'डीज़ेल' इंजिन लगे होते हैं और प्रत्येक की रफ्तार १९२ हार्सपावर की होती है व १६०० चक्कर प्रति मिनट लगाता है। यह गाड़ी भरपूर बोझ के साथ सरलतासे पहाड़ी रास्तों को पार कर जाती है। इस नयी गाड़ीका निर्माण एडवर्ड वुड कम्पनीने किया है।

विटामिन वृक्ष

अमेरिकाके वानस्पतिक-विशारदों ने वहां के कुछ साधारण वृक्षों में विटामिन बी, का प्रचुर मात्रा में पाया जाना घोषित किया है। उन वृक्षोंमें ओक, एल्म, मेपुल, चेस्टनट और श्वेत पाइन प्रधान हैं। उपर्युक्त विटामिन इन वृक्षों की पत्तियों और फूलकी कलियों में मुख्यत: केन्द्रित रहते हैं। यद्यपि विटामिन बी, का अब रासायनिक उत्पादन होने लगा है, किंतु इस अनुसन्धानसे वृक्षोंसे अधिक मात्रामें विटामिन बी, निकाला जा सकता है। सम्भवत: ऐसे ही वृक्ष बनके जीवोंको शरीरके आवश्यक विटामिनसे पूर्ण करते हैं।

शीशेके बर्तनों पर दाग

होटल व रेस्टोरेन्ट आदिमें शीशेके पात्र अधिकतासे प्रयोग किये जाते हैं। एक मनुष्यके भोजन करनेके उपरान्त वहांके नौकर झटपट पानीसे धोकर दूसरेको परस देते हैं। इस शीघ्रता से वे बर्तन धोये जाते हैं कि उनमें चिकनाई घी तेल आदिका दाग पड़ा रहना स्वाभाविक है; किंतु हम अपने नेत्रों द्वारा उन का निरीक्षण नहीं कर सकते। ऐसे बर्तनोंकी जांचके लिये एक ऐसी दुरबीनका आविष्कार किया गया है जो कि शीघ्रतासे शीशे के बर्तनों पर तमाम तरहके दाग, गर्द आदिकी उपस्थिति प्रकट कर देती है। इस नये 'यन्त्र' का नाम 'उड ग्रीस-फिल्म-व्यूअर' है। शीशे का ग्लास या अन्य पात्र यन्त्रके बिजली के बल्ब के ऊपर एक घूमते हुए फर्श पर रख दिया जाता है। बिजली के जलाते ही वह पात्र प्रकाशमान हो जाता है। उस समय बर्तनके सब हिस्से दुरबीन से देखने पर अंगुली, ओठ, आदिका दाग, गर्द, चिकने एवं अन्य गंदे निशान जो कि उचित प्रकारसे न धोने पर रह जाते हैं—प्रकट हो जाते हैं।

अटूट बोतल

एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेसे तेलकी बोतलों के टूट जाने का डर होता है, किंतु वैज्ञानिकों ने एक ऐसी बोतल का आविष्कार किया है, जिससे कि यह भय हमेशाके लिये दूर हो गया है। इस बोतल से न तो तेल चू सकता है और न उस पर वायु का प्रभाव पड़ सकता है। अटूट होनेके अतिरिक्त यह पारदर्शक भी होती है जिससे कि इस्तेमाल के बाद बोतल में उसकी मात्रा देखी जा सकती है।

रंगीन फर्श

एक ऐसी विधिका आविष्कार किया गया है जिससे कंकरीटका फर्श पक्के रंगसे रंगा जा सके और उस पर गर्दका प्रभाव भी न पड़े। पहले कंकरीट तीव्र पक्के रंगसे रंगी जाती है, तत्पश्चात् धरातलको एक रासायनिक इनामेल द्वारा पोता जाता है। जोकि रंगी हुई कंकरीट पर दृढ़ता से चिपक जाता है। यह दो कोट पोता जाता है। यद्यपि कई वर्षोंके बाद इनामेल जीर्ण हो जाता है, किंतु फिर भी कंकरीट के फर्श का पक्का रंग बना ही रहता है। इसपर अलकोहल अथवा किसी प्रकारके चिकनेपनका भी प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार फर्शोंके रंगनेके पक्के रंग केवल चार प्रकारके रंग आविष्कृत हुए हैं।

नई ईंटों का निर्माण

साधारण प्रकार की जो ईंटें बनती हैं, वे अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकतीं और ऊँचे तापक्रम पर चटक जाती हैं; किंतु एक नूतन प्रकारकी ईंट का निर्माण किया गया है जो कि तेज़ आंच में भी नहीं चटक सकती। इन ईंटों के बनाते समय एक लचीली अगलनीय मिट्टी के साथ जान्तव पदार्थों का सम्मिश्रण किया जाता है। इस प्रकारकी ईंटें २६००° (फा०) तापक्रम तक भली भांति काममें लाई जा सकती हैं।

गर्मी उत्पन्न करने वाले लैंप

हाल ही में एक नये प्रकारका बिजलीका लैंप निकला है जिससे कि वस्तुओंको गर्म करने, सुखाने और पकानेका काम सरलतासे लिया जा सकता है। लैम्पके अन्दरकी ओर चांदीकी पालिश और कारबनका फिलामेंट होता है। निर्माण-कर्ताओंका यह दावा है कि यह लैंप 'इनफरारेड' ज्योति उत्पन्न करते हैं जोकि अन्य प्रकाशकिरणों से अधिक गर्म होती हैं एवं गर्म करने या सुखानेके सबसे अधिक उपयुक्त होती हैं।

छोटे उद्योग-धन्धों का उत्पादन

भारत सरकार की ओर से छोटे उद्योग-धन्धों का उत्पादन बढ़ाने की एक योजना प्रकाशित हुई है, जिसमें यह निश्चित किया गया है कि प्रांतीय सरकारें और रियासतें अपनी-अपनी एजेंसियां स्थापित करेंगी और रसद-विभाग छोटे उद्योगों से प्राप्त होने वाली कतिपय वस्तुओंके लिये इन्हींको ठेका देगा। ये प्रांतीय एजेंसियां अपने यहांके उद्योग-विभाग के डायरेक्टरों तथा सहयोग-समितियों के रजिस्ट्रार की मध्यस्थतासे आवश्यक व्यवस्था करेंगी। ये एजेंसियां कच्चे माल की व्यवस्था आर्थिक सहायता देने, वस्तुओंके तैयार करनेके सम्बन्धमें आदेश देने, तैयार होनेकी अवस्थामें वस्तुओंका निरीक्षण करने तथा तैयार हो जाने पर उन्हें रसद-विभाग तक भेजने का कार्य भी करेंगी। यदि आवश्यकता हुई तो भारत-सरकार विशेष सीमा तक आर्थिक सहायता भी देगी। योजनाके सम्बन्धमें प्रांतीय-सरकारों को जो विशेष कर्मचारी रखने होंगे। उन होने वाले अतिरिक्त खर्चेको पूरा करनेके लिये सरकार कुछ ऊंची कीमत देगी। ये कीमतें बड़े और संगठित व्यवसायों से तैयार होने वाली इन्हीं वस्तुओंके मूल्यसे कुछ अधिक होंगी। उपरोक्त एजेंसियां रसद नियन्त्रण-अफसर द्वारा रसद-विभाग से लिखा पढ़ी करेंगी। इन समस्त कार्योंके एकीकरणके लिये एक विशेष अफसरकी नियुक्ति का प्रस्ताव भी किया गया है। यह अफसर सभी समबद्ध प्रांतों तथा रियासतों का दौरा करेगा और एजेंसियों को सभी प्रकारसे आवश्यक सहायता प्रदान करेगा।

सन् १९४१-४२ में रसद-विभाग ने छोटे उद्योग द्वारा तैयार की हुई जो वस्तुएं खरीदी थीं, उनका मूल्य ४,९८,००,०००, रुपये था। इन खरीदी गई वस्तुओंमें ढकनेकी जालियां. ऊनी कम्बल, चमड़ेका सामान, तथा पिथ हैट मुख्य थे। रसद-विभागने ये वस्तुएं क्रमशः १,८२,००,०००; रु० १,१८,०० ००० रु० ९९००,००० रु० तथा ४४००,००० रु० की खरीदी थीं। आशाकी जाती है कि १९४२-४३ से छोटे उद्योगों से तैयार होने वाली वस्तुओंके लिये ५,१०,००,००० रु० के आर्डर और दिये जावेंगे। सम्भावना है कि रसद-विभाग १,८९ ००,००० रु० के सूती कपड़े, ६५,००,००० रु० के पिथ हैट और ७१००,००० रु० के ढकने की जालियां और खरीदेगा।

उपर्युक्त योजना के कार्यान्वित होने पर शहर और गावों में छोटे धन्धों में लगे हुए बहुत से व्यक्ति काम में लगे रहेंगे और सरकारको जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है उनके प्रति स्थानोंमें भी वृद्धि हो जावेगी और मजदूरोंके चले जाने अथवा कार्यालयों में हानि पहुंचने की अवस्था में आवश्यक वस्तुओं की प्राप्तिमें कठिनाई न रहेगी।

(शेष पृष्ठ ११५ का)

जा सकता है। रेगूलेशन सेना (Regulation Arms) के स्ट्रेचर एक्स-रे यूनिट के लिये मेज (table top) का काम करेगा और इस यूनिट के एकदम ऊपर जख्मी सिपाही लिये हुए स्ट्रेचर रखा जायगा और परीक्षा के बाद तुरन्त हटा लिया जायगा। इससे जख्मी आदमी को भी कोई कष्ट नहीं होता और कार्यगति भी तीव्र रहती हैं।

एक्स-रे प्रयोग का एक और भी रोचक और मनुष्यमात्र के लिये लाभदायक उपयोग न्यूयार्कके डाक्टर रेमण्ड फाइफ्फेर की 'मैपिंग' विधि है। इस उपायसे आंखके अन्दर के स्प्लिन्टर्स (splinters) न केवल देखे जा सकते हैं, परन्तु उनकी ठीक स्थिति भी पाई जा सकती है। इसमें दो उद्घाटन (exposure) करने पड़ते हैं तथा दो निगेटिव लेते हैं।

यह विचित्र रश्मियां भविष्य में और किस तरह नवीन उपयोग में लाई जायेंगी, भविष्य ही जानता है। कोई मानवी-क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें इनका प्रयोग न हो या कुछ लाभ न मिला हो और यदि इसी प्रकार इस क्षेत्रमें गवेषणात्मक कार्य जारी रहा तो मानव-समाज एक्स-रे के नाम पर अधिकाधिक फूला समाये बिना नहीं रहेगा।

आयुर्वेदीय विश्व-कोष की उत्कृष्टता पर विद्वानों की कुछ सम्मतियां

निखिल भारतवर्षीय सप्तविंशतितमं वैद्यसम्मेलनं नागपुरम्

प्रदर्शन-विभाग

प्रमाण-पत्रम्

श्रीमतां बरालोकपुर निवासिनां पं० विश्वेश्वरदयालु राजवैद्य इत्येतेषां प्रदर्शन समागतो आयुर्वेदीय विश्व-कोष ग्रन्थो नितान्तवैद्योपयुक्त इत्यत्रभार्यतेभ्यः स्वर्णपदकेन सह, प्रथमश्रेण्याः प्रमाण पत्रमेतत्सम्मान पूर्वकं प्रदीयते आशास्यते च विषयेऽस्मिन्नतिवृद्धिं कुर्वन्तु नितरामिति ।

प्रदर्शनाध्यक्षः—
वैद्यराज गंगाधर विष्णु पुराणिक
पनवेल

परीक्षक समिति
भिषक् केशरी श्री गोवधन शर्मा
छांगाणी
प्राणाचार्य सुन्दरलाल शुक्लः गणेश शास्त्री
जोशी आयुर्वेदाचार्य ।

प्रदर्शन मंत्रिणः
लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणीक
ता० १७-८-३८

भारत प्रसिद्ध आयुर्वेद मार्तंड, नि० भा० वैद्य सम्मेलनों के सभापति श्रीयादव जी त्रिकमजी आचार्य बम्बई लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ 'कोष' मिला, इस कोष के प्रसिद्ध करने का आपका प्रयत्न स्तुत्य है। शब्दों की व्याख्या इसमें देखने को मिल सकती है। केवल एक ही 'कोष' से अनेक कोषों के रखने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। वैद्यों को इसका संग्रह अवश्य करना चाहिये।"

नि० भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य श्री पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी आयुर्वेद रत्न, भिषक् केशरी नागपुर से ता० १२-६-३८ को लिखते हैं—

आयुर्वेदिक मौलिक साहित्य को प्रकाश कर वस्तुतः आपने आयुर्वेद संसार को ऋणी बना दिया है। परमात्मा आपको लोमशायु प्रदान करे ताकि फिर भी आप उत्तरोत्तर मौलिक सेवा आयुर्वेद की कर सकें।

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह, प्राणाचार्य, रसायनाचार्य, प्रोफेसर और सुपरिनटेन्डेन्ट आयुर्वेद-कालेज हिंदू विश्व विद्यालय बनारस लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय विश्व-कोष" का द्वितीय भाग अवलोकन किया। यह कोष आयुर्वेद-चिकित्सा व्यवसायियों के लिये उपादेय है। विविध प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी-विषयों का संकलन बड़े परिश्रम और अनुसंधान के साथ किया गया है। आशा है वैद्य समाज इस ग्रंथ रत्न को अपनाकर संकलयिताओं का उत्साह परिवर्धन करेंगे।

सुधानिधि नामक आयुर्वेद पत्रिका में उसके यशस्वी संस्थापक और सम्पादक, भिषक्मणि पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल राजवैद्य लिखते हैं—

"इसमें आयुर्वेदिक विषयों के साथ ही तिब्बी और एलोपैथी सम्बन्धी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। आज तक की खोजों का फल भी इसमें देखने को मिलेगा; अनन्नास जैसे बहुत से नवीन पदार्थों का समावेश भी इसमें मिलेगा। ऐसे बृहत्-ग्रंथों में जो धन-राशि लगती है उसके लगाने का साहस कर पंडित विश्वेश्वरदयालु जी ने आयुर्वेदीय जगत का बड़ा उपकार किया है, सबसे अधिक धन्यवाद तो इसके संकलन कर्त्ता चुनार-निवासी बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य और बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य को है, जिन्होंने वर्षों परिश्रम कर और जंगल पहाड़ों की खाक छानकर तथा रसायन, भौतिक विज्ञान, जन्तुशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, शरीरशास्त्र, द्रव्यगुण शास्त्र, शरीर क्रिया विज्ञान, शवच्छेद, औषध निर्माण, प्रसूतिशास्त्र, व्यवहार-आयुर्वेद, स्त्री-रोग, बालरोग, विषतंत्र आदि के ग्रंथों का आलोचन कर शब्द-संग्रह और उनका अर्थ दिया है। कहीं-कहीं आवश्यक विशद व्याख्या कर ग्रंथ का महत्व बढ़ाया गया है। वैद्यों को इससे अच्छी सहायता मिलेगी।"

सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्रज्ञ एवं वनौषधि-अन्वेषक श्रद्धेय ठा० बलवंत सिंहजी M. S. C. प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज हिंदू विश्व विद्यालय कोष के सम्बन्ध में इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट करते हैं—

"आयुर्वेद की शास्त्रोक्त परिभाषा जितनी व्यापक हो सकती है, आयुर्वेदीय विश्व-कोष का विषय क्षेत्र भी उतना ही व्यापक रखा गया है। यह बात कोष के लेखक द्वय हमारे मित्र ठा० रामजीत सिंह जी तथा ठा० दलजीतसिंह जी के उदार और विस्तृत दृष्टिकोण की परिचायक है। अनेक क्षेत्रों के विशेषज्ञ तथा बड़े २ विद्वानों की प्रशंसात्मक सम्मतियां उनकी सफलता की द्योतक हैं।

वनस्पति-विज्ञान और तत्सम्बन्धी खोजों में अधिक रुचि होने के कारण मैंने प्रस्तुत ग्रंथ के वनस्पति विषयक अंश को ध्यान से देखा। मुझे इस बात की प्रसन्नता हुई कि इस क्षेत्र में हमारे यशस्वी लेखकों ने संदिग्ध द्रव्यों पर तुलनात्मक बुद्धि से विचार करने तथा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जैसा कि

आजकल के विरले ही लेखक करते हैं। संज्ञाओं की व्युत्पत्ति का ज्ञान संदिग्धता निवारण का एक प्रधान साधन है जिसे आप लोगों ने अपनाया है। यह तभी सम्भव है जब द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य का अवलोकन किया गया हो। इन दिशाओं में लेखक महोदयों की व्याकुल जिज्ञासा तथा उनकी उद्यमशीलता तथा अनवरत प्रयत्न को देखकर हमें आशा करना चाहिये कि कोष के आगामी खंडों में क्रमशः अधिकाधिक खोज पूर्ण विचारों का समावेश होता जायगा।

आयुर्वेद-कालेज
हिंदू विश्व-विद्यालय काशी
ता० २० अप्रैल १६४२ ई०
} श्रीयुत् डा० बलवंतसिंह जी

कलकत्ता के 'जर्नल आफ आयुर्वेद' पत्र के संपादक लिखते हैं—

In 'Ayurvediya Vishwa-Kosh' by Babus Ramjit Singh and Daljit Singh ji Vaidya, published from Anubhut Yogmala Office, Baralokpur Etawah (U. P.), the joint authors have employed monumental labours in compiling an encyclopaedic dictionary of Ayurvedic literature. Such books are really precious additions to the wealth of Ayurvedic culture, embracing a wide range of comprehensive study. The authors deserve congratulations for the gigantic venture they have embarked upon, and the first two volumes that have already seen light well justify the high hope thatthe subsequent parts completing the colossal task will, by its successful fulfilment, largely help to facilitate the cultivation of Ayurvedic lore in these days of our sastras. Renaissance couched in the rashtra bhasha of Hindustani the 'kosh' will be of all India utility.

Kaviraj M. *K. Mukherjee B. A. Ayurvedshastri*
Journal of Ayurved Calcutta

किंग जार्जस मेडीकल कालेज डिपार्टमेन्ट आफ फार्माकालोजी लखनऊ

२३ मार्च सन् १६३६ ई०

प्रिय महाशय !

आपने जो अपने 'आयुर्वेदीय कोष' का प्रथम खंड प्रेषित किया, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस प्रकार की रचना दीर्घ प्रयास एवं महान योग्यता की अपेक्षा रखती है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि, भारतीय चिकित्सा प्रणाली के प्रेमियों द्वारा यह पूर्णतया अभिनन्दित होगा। मैं आपके इस उद्योग की सफलता का अभिलाषी हूँ।

वी० एन० व्यास एम० बी०, रायबहादुर,
प्रधानाध्यक्ष निघण्टु विभाग विश्वविद्यालय-लखनऊ

हमारे शरीर की रचना के यशस्वी लेखक स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ जी वर्मा L.M.S. सिविलसर्जन जौनपुर, लिखते हैं—

'निस्संदेह आपका 'कोष' एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। प्रत्येक चिकित्सा प्रेमी को इस से लाभ उठाना चाहिये।"

डाक्टर भास्कर गोविंद घाणेकर, बी० एस० सी०, एम. बी. बी. एस. आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज, हिंदू विश्व-विद्यालय बनारस लिखते है—

'आयुर्वेदीय कोष का प्रथम विभाग मैंने आद्योपांत देखा। इसके और भी कई भाग निकल चुके हैं। इसका निर्माण करके लेखक द्वय ने वैद्य-समाज के ऊपर अतुल उपकार किया है। यद्यपि ग्रंथ का नाम आयुर्वेदीय कोष है तथापि इसमें आयुर्वेद, युनानी और एलोपैथी इन तीनों चिकित्सा प्रणालियों के सम्पूर्ण विषयों का विवेचन अकारादि क्रम से किया गया है। अर्थात् यह ग्रंथ वैद्यक का ज्ञान कोष है जो लेखक द्वय के अनवरत परिश्रम का फल है। इस प्रकार के एक दो कोष पहले हो चुके हैं परन्तु उनसे यह कोष अधिक विस्तृत और अधिक उपयोगी है। इसलिये वैद्य महानुभावों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस ग्रंथ को खरीद कर अपना ज्ञान बढ़ावें, तथा साहसी लेखकद्वय की उत्साह वृद्धिकर 'एक पथ दो काज' की कहावत चरितार्थ करें।

'वनस्पति-चंद्रोदय' की भूमिका प्रथम भाग पृ० ७ पर ग्रंथ के लेखक महाशय लिखते हैं—

—हर्ष है कि हाल ही में हिन्दी में चुनार-निवासी बाबू रामजीत सिंह और बाबू दलजीत सिंह वैद्य ने महान परिश्रम के साथ एक आयुर्वेदीय विश्व-कोष का प्रणयन प्रारम्भ किया है। इस ग्रंथ के दो भाग निकल चुके हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य उठाया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रथ अंत तक सफलता पूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा।

श्रीमान् पं० आयुर्वेदाचार्य कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए. चाँदा (सी० पी०) से लिखते हैं—

"हमारे मित्रद्वय वैद्यराज, पुरुषसिंहों ने जो परिश्रम किया है और कर रहे हैं, इसके लिये केवल आयुर्वेद ही नहीं, अपितु हिन्दी भाषाविज्ञ समस्त संसार, उनका तथा प्रकाशक महोदय, सर्वमान्य चिकित्सक वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालु जी का आभारी है। यह केवल 'आयुर्वेदीय कोष' ही नहीं, प्रत्युत 'आयुर्वेदीय विश्व-कोष' कहलाने के योग्य है। यद्यपि 'आयुर्वेद' शब्द में इस व्यापक अर्थ का समावेश है तथा लेखकों ने प्रस्तावना में इसका स्पष्टीकरण भी किया है, तथा आधुनिक काल में यह शब्द एक प्रकार से योग रूढ़ अर्थ का ही बोध कराता है। जैसे यद्यपि 'पंकज' में कीचोत्पन्न समस्त

वस्तुओं का समावेश है, तथापि सर्वसाधारणतः 'कमल' के ही अर्थ में उसका उपयोग किया जाता है। तद्वत् 'आयुर्वेद' से यद्यपि संसार की सर्व औषध प्रणालियों का बोध व्यापक अर्थ में होता है, तथापि आर्यों की वेदोक्त प्राचीन निदान एवं चिकित्सा-प्रणाली का ही बोधक है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में अकल अकलंक, अकाम, अकुलीन, अखिल, अकुशल इत्यादि कतिपय सर्व साधारण शब्दों का भी अर्थ दिया गया है। इसीसे इस ग्रंथरत्न को केवल 'आयुर्वेदीय कोष' के नाम से पुकारना, उसकी कीमत को घटाना है। अब आगे इस ग्रंथ को 'आयुर्वेदीय विश्व-कोष' इस नाम से प्रसिद्ध करने से इसका विशेष महत्त्व एवं प्रचार होगा, ऐसी मेरी विनीत सूचना है।

राजवैद्य पं० रवीन्द्र शास्त्री कविभूषण इस ग्रंथ की समालोचना करते हुये लिखते हैं—

आयुर्वेदीय विश्व-कोष के प्रथम खंड को मैंने खूब अच्छी तरह देखा है। ग्रंथ के सांगोपांग अध्ययन के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में यह क्रान्तकारी और अद्वितीय ग्रंथ रत्न है, आयुर्वेदीय निघंटु के साथ ही एलोपैथिक तथा हिकमती निघण्टु का उल्लेख होने से सोने में सुगन्ध हो गई है। प्रत्येक शब्द का वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से होने पर भी साधारण जनता भी इससे बहुत लाभ उठा सकती है, मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रकाशन से आयुर्वेदिक साहित्य के एक प्रधान अंग की पूर्ति हो गई है, जो वैद्य मात्र के लिये अभिमान की बात है।

पुस्तक के लेखक महोदयों ने निश्चय ही अपने ज्ञान और अन्वेषण का सदुपयोग करके वैद्य का न केवल हित ही किया है अपितु उनके लिये एक आदर्श भी बना दिया है। पुस्तक के प्रकाशक महोदय ने वस्तुतः में ऐसे विशालकाय ग्रंथ का प्रकाशन करके अपने साहस और आयुर्वेद प्रेम का परिचय दिया है। मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को ही इस सद्उद्योग के लिये धन्यवाद देता हूँ।

वैद्य मात्र से मेरी यह अपील है कि वह अपनी ज्ञान वृद्धि के लिये पुस्तक की एक २ प्रति अपने पास अवश्य रक्खें।

कविराज शशिकान्त भिषगाचार्य, पूर्व सम्पादक जीवनसुधा इस ग्रंथ की उपयोगिता पर लिखते हैं—

आयुर्वेद साहित्य में इस प्रकार के महा कोष की निहायत जरूरत थी, जिसके स्वाध्याय से वैद्यक डाक्टरी और यूनानी का पूर्ण ज्ञान हो सके, यह बात आयुर्वेदीय विश्व कोष से पूर्ण हो सकती है, हिंदी में अभी तक ऐसा अपूर्व ग्रंथ नहीं था। यह अभाव भगवान विश्वेश्वर के द्वारा पूर्ण हो रहा है, आयुर्वेद का साहित्य संसार के सब साहित्यों से पिछड़ा हुआ है। जब तक इस प्रकार की ज्ञान वर्धक अनुपम पुस्तकों का निर्माण नहीं होगा, तब तक आयुर्वेद साहित्य नहीं बढ़ सकता।

जो कार्य आयुर्वेद महा मंडल के हाथों द्वारा कभी का समाप्त हो जाना चाहिये था, वह गुरुतर कार्य पं० विश्वेश्वरदयालु जी अपने निर्बल कंधों पर उठा रहे हैं, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री गणपतिचन्द्र केला, सम्पादक 'धन्वन्तरि' विजयगढ़ (अलीगढ़) से लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय-कोष" मिला, हार्दिक धन्यवाद ! ऐसा आवश्यक विशाल आयोजन आप उठा रहे हैं, इसके लिये दोनों ही रचयितागण हमारे हार्दिक धन्यवाद को स्वीकार करें।

विश्वेश्वर भगवान ने प्रकाशितकर वैद्य समाज का जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है। ऐसे विशद विशाल विशेषोपयोगी ग्रंथ के संकलन में समस्त वैद्य-समाज और संस्थाओं को सहायता देकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।"

सम्पादक 'आयुर्वेद संदेश' लाहौर (१५ सितम्बर १९३४ ई०) के अङ्क में लिखते हैं—

"यह कोष अपनी पद्धति का पहिला ही कोष है, जिसमें वैद्यक, यूनानी और एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के न केवल अर्थ दिये गये हैं, वरन् सम्पूर्ण सर्व मतानुसार व्याख्या की गई है यथा अश्वगंधा की व्याख्या ५ पृष्ठों में समाप्त की गई है। अर्थात् अश्वगंधा का स्वरूप, पर्याय, अंग्रेजी नाम वानस्पतिक वर्णन, उत्पत्ति स्थान, आकृति, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योग तथा अश्वगंधारिष्ट, अश्वगंधा पाक, अश्वगंधा चूर्ण, अश्वगंधा घृतादि, मात्रा, गुण, अनुपानादि सहित एवं भिन्न-भिन्न द्रव्यों का शारीरिक रोगों पर सर्वमतानुसार अच्छा प्रकाश डाला गया है, जिससे पाठक पर्याप्त ज्योति प्राप्त कर सकते हैं। इस विस्तृत व्याख्या के कारण ही कोष के प्रथम भाग में जो ९०८ पृष्ठों में विभक्त है, १०२२५ शब्दोंका वर्णन है। इस भाग में अनुक्रमणिकानुसार अभी तक 'क' अक्षर की भी समाप्ति नहीं हुई। यदि इसी शैली का अनुकरण अगले भागों में भी किया गया, तो कई भागों में समाप्त होगा। पुस्तक का आकार चरक तुल्य २२×२९-८ पेजी है। इसे आयुर्वेद का "महाकोष" समझना चाहिये।

श्री संपादक जी नवजीवन अकोला

लेखक तथा संकलनकर्ता सर्व श्री रामजीतसिंह जी वैद्य और दलजीतसिंह जी वैद्य प्रकाशक पं० विश्वेश्वरदयाल जी वैद्यराज बरालोकपुर इटावा मूल्य ६।) सजिल्द अजिल्द ५॥) रु०।

भारतवर्ष अनादि काल से अद्भुत विशेषताओं के लिये जगत प्रसिद्ध रहा है। उसने संसार को जहां दर्शन और विज्ञान का आलौकिक संदेश देकर अपना मस्तक ऊंचा किया है वहां वह चिकित्सा विज्ञान में भी सर्वोपरि रहा है।किन्तु धीरे धीरे ये सारी विशेषतायें हमारी मानसिक गुलामी के कारण हम से दूर भाग रही है और हम प्रत्येक क्षेत्र में परावलम्बी बन रहे हैं। भारत की आयुर्वेदीय औषधियां अपने गुणों आदि में अपनी सानी नहीं रखतीं, बशर्ते कि उनका उपयोग सम्यक् रूप में यथा विधि किया जाय।

प्रस्तुत कोष में रसायन, भौतिक विज्ञान, शल्य शास्त्र आदि आयुर्वेद विषयक हिन्दी संस्कृत और विभिन्न भाषाओं के शब्द उनकी व्युत्पत्ति एवं परिभाषा सहित अकारादि क्रम से परिश्रम पूर्वक संग्रहीत किये गये हैं। अनेक स्थलों पर खोज पूर्ण नोट दिये गये हैं जिन से प्राचीन और अर्वाचीनवैद्यों की अनेक शंकाओं का निवारण सहज ही हो जाता है। अ से लेकर अज्ञात यक्ष्मातक लगभग १०२२९ से भी अधिक शब्दों का यह उपयोगी कोष प्रत्येक वैद्यके लिये उपयोगी सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

देखिए "स्वराज्य" खंडवा, ११ जून सन् १९३५ की संख्या ४१ में अपने कैसे जोरदार उद्गार प्रगट करता है।

"इस विषय में आजकल जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रस्तुत 'आयुर्वेदीय कोष' को ऊँचा स्थान मिलना चाहिये। ग्रन्थकारों ने इस कोष के संकलन में जो परिश्रम किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।"

आयुर्वेदीय विश्व कोष द्वितीय खंड के सम्बन्ध में आयुर्वेदिक कालेज-पत्रिका (हिंदू विश्व-विद्यालय) की राय—

उपर्युक्त पुस्तक में आयुर्वेद, यूनानी एवं एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ और उनकी व्याख्या दी गई है। पुस्तक को देखने से यह पता लगता है कि यह विश्व-कोष गंभीर अध्ययन और परिश्रम से लिखा गया है। आयुर्वेद-संसार में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। बहुत दिनों से जिस कमी का अनुभव विद्वान लोग कर रहे थे, निस्संदेह इससे वह कमी पूरी हो जायगी। पूर्ण प्रकाशित होने के बाद यह एक आयुर्वेद का उज्ज्वल रत्न होगा। विद्यार्थियों से लेकर विद्वान विचारकों तक के लिये पठनीय मननीय और संग्रहणीय है। प्रकाशक और संकलन कर्त्ताओं के इस कार्य की हम सराहना करते हैं कि वे इसे पूर्ण करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे जिससे यह महान् ग्रंथ शीघ्र ही तैयार हो।

भाग ५५
र्षिक मूल्य ३) रु०

जुलाई, १९४२ कर्कार्क, सं० १९९९ वि०

पूर्ण संख्या ३
संख्या ४

प्रयाग
की
विज्ञान-परिषद्
का
मुख-पत्र
जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान
भी
सम्मिलित है ।
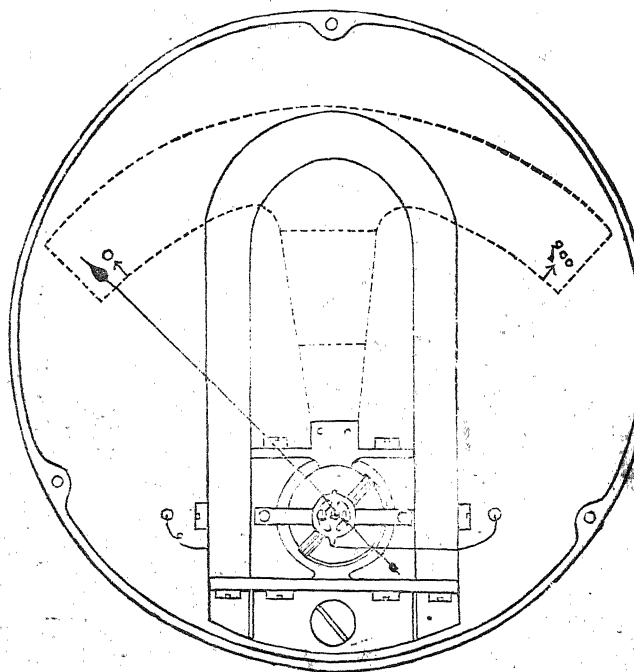
"सरल-विज्ञान" शीर्षक लेख पृष्ठ १३३ पर पढ़िए ।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) 'विज्ञान' मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र है ।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी । इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना ।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं । वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं ।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है । सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है ।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं । तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं ।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें **'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद'** के पास भेजे जाएं । आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें **सम्पादक विज्ञान अमृतसर** के पास आनी चाहियें । प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर **मैनेजर, ब्राञ्च विज्ञान ऑफिस, अकाली मार्किट, अमृतसर** के पते पर आने चाहियें ।

विषय-सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५५ | जुलाई, सन् १९४२, कर्काक, संवत् १९९९ विक्रमी | संख्या ४

नवीन भौतिक दृष्टि-कोण

(२—आईन्स्टाइन का व्यापक सिद्धान्त)

[लेखक—देवेन्द्र शर्मा, एम. एस-सी., बी. एस-सी. ऑनर्स]

I thought that my voyage had come to its end at the last limit of my power,—that the path before me was closed, that provisions were exhausted and the time come to take shelter in a silent obscurity. —*Tagore* (*Gitanjali, 37*) *

किसने नक्षत्रों से जगमगाते हुए छोर-रहित अनन्त (?) व्योमको देख कर यह प्रश्न नहीं किया होगा कि अन्तिम नक्षत्र से परे क्या है? यद्यपि दूरदर्शक एकके बाद दूसरा सुदूर नक्षत्र खोजता जाता है, पर वह इस सहज एवं स्वाभाविक प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ है। बुद्धि चकराती-सी प्रतीत होती है और मानो दीवारसे टकराकर गेंदके समान पुनः उसी स्थान पर आ जाती है, जहांसे चली थी। यह कल्पनाके लिए बहुत भारी प्रतीत होता है कि विश्व एक घेरे द्वारा सीमित है, कोई दीवार खड़ी है; किन्तु फिर प्रश्न उठता है, उस दीवार के आगे क्या है'? इस प्रकार यदि विश्व ससीम भी हो तो प्रश्नोंकी शृङ्खला सदा असीम है।

प्रत्येक मनुष्य एक रेखाके आदि और अन्त (उसके दो छोर) के विषयमें कह सकता है, परन्तु जिस दशा वे छोर मिला कर एक पिहित-वक्र (closed curve) बना दी जाय, वह परिमित, परन्तु सीमाहीन हो जाती है। इसी प्रकार एक गेंदके तलके विषयमें यह कहना असम्भव है कि वह कहां समाप्त होता है—प्रत्येक बिन्दु उसका आदि और अन्त कहा जा सकता है और कोई भी नहीं। यदि हम किसी द्विधाविस्तृत जीव की कल्पना करें, जिसे तृतीय विस्तारका कोई ज्ञान न हो, तो निश्चय है कि उसे भी अपने विश्व (यहां गेंद) की सीमाके प्रश्न उसी

* मैंने समझा कि मेरी शक्तिकी अन्तिम सीमा पर मेरी यात्राका अन्त आ गया है—मेरा मार्ग बन्द है, रसद चुक गई और समयने एक शान्त कोनेमें आश्रय ले लिया है। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीताञ्जली)

प्रकार दुविधा में डालेंगे, जैसे मानव मस्तिष्क को इस जगत् के बारे में।

हम देख आये हैं कि दो अवलोककोंके लिये जिसमें सापेक्षिक गति है, समय भिन्न है। इस प्रकार इस ग्रहके प्राणियोंके लिये जो 'अब' है वह सप्तर्षि के किसी ग्रहके जीवों (यदि ग्रह और जीव हों) के लिये कदापि 'अब' नहीं। जब हम निरपेक्ष गति मालूम करनेमें असमर्थ हैं तो निरपेक्ष समय कैसे जान सकते हैं? यहां घटनाओंका वर्णन करनेमें बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है—विभिन्न नियामक पद्धतियों (co ordinate systems) में विभिन्न वर्णन होंगे। परन्तु मिनकाउस्की के चतुर्थ विस्तारने यह कठिनाई दूर कर दी है। जिस प्रकार एक समकोण-त्रिभुजकी दो भुजाओंके वर्गोंका योग उसके कर्ण (hypotenuse) के वर्गके बराबर होता है, उसी प्रकार यह देखना कठिन नहीं कि इस प्रमेय की सत्यता तृतीय विस्तारमें भी है—एक कमरेके फर्शके कोनेसे उसके बिलकुल उल्टे छत के कोने तककी दूरीका वर्ग कमरेकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईके वर्गोंके योगके बराबर होगा। यह प्रमेय चतुर्थ विस्तार में भी पहुंच गया जिसके फलस्वरूप सापेक्षिक गति से चलने वाली नियामक पद्धतियोंमें व्योमके तीनों नियामक बिन्दुओंके वर्गोंका तथा $(\sqrt{-१}\ स\ क)^२$ का योग एक ही रहेगा। गणित के शब्दोंमें दो पद्धतियोंके लिए।

$$य^२ + र^२ + ल^२ + (\sqrt{-१}स\ क)^२ = य'^२ + र'^२ + ल'^२ + (\sqrt{-१}\ स\ क')^२ = स्थायी।$$

हम देखते हैं कि किसी घटनाका वर्णन करनेके लिए उसका केवल व्योम में बता देना यथेष्ट नहीं, समय भी उतना ही आवश्यक है। यद्यपि चौथे विस्तार का चित्र खींचने में बुद्धि जवाब दे देती है, तथापि इसमें से सिद्धान्त की सत्यता में कोई दोष नहीं आता। हमारी दशा ठीक वैसी ही है जैसी एक द्विधा विस्तृत जीवकी गेंद पर। स्थूल व्यावहारिक ज्ञानके परे भी सत्य है। अब यह देखना कठिन नहीं कि विश्वकी सीमा कहां है। परन्तु चार विस्तारके विश्वकी सीमाका पता हम तीन विस्तार में देखने वाले प्राणी क्या अनुमान लगा सकते हैं? गेंद के तल की सीमा नहीं है, तीन विस्तारों में विश्व की सीमा नहीं है; वह असीम है, परन्तु परिमित; उसके सीमित विस्तार एवं मात्रा हैं, फिर भीहै निस्सीम।

व्यापक सापेक्षतावाद—इसके पूर्वकी गत महायुद्ध (१९१४-१९१९) इस पृथ्वी पर कुछ परिवर्त्तन करता, हमारा भौतिक जगतका चित्र बिलकुल बदल गया। सीमित सापेक्षतावाद के प्रतिपादन के ११ वर्ष उपरान्त, सन् १९१६ में आईन्स्टाईनने व्यापक सापेक्षतावाद दिया। हम अभी चतुर्धाविस्तृत व्योम तथा उसके रेखागणितके विषयमें कह आये हैं, फिर यह कोई विचित्र बात नहीं कि ५,६ आदि अनेक विस्तारका रेखा गणित बन जाय। सापेक्षतावादके बहुत पूर्व रीमानने उसको जन्म दिया और तबसे यह बाह्यरूप से निरर्थक-सा औपपत्तिक (theoretical) गणितका विभाग बढता रहा। यहां इस रेखागणित के आन्तरिक तत्वों के विस्तार में जाना सम्भव न होगा, परन्तु यह स्पष्ट है कि वह एक विक्षिप्त मस्तिष्ककी उपज नहीं। यद्यपि तीनसे अधिक विस्तारोंका चित्र अथवा प्रतिमा बनाना उतना ही दुष्कर है जितना बुद्धि अथवा भावका, जो स्थूल जगत पर प्रभाव तो डालते हैं, पर अपनी कोई आकृति नहीं रखते। जहां तक वैज्ञानिक दृष्टिकोणका सम्बन्ध है हमको वास्तविकताकी प्रतिमा बना कर असत्यके उपासक बन सत्यको खो देना नहीं है।

व्यापक सापेक्षतावाद का मूलतत्व समता-नियम (Principle of Equivalent) है। इसके अनुसार हम गुरुत्वाकर्षण आदि शक्तियोंको रेखागणितकी भाषामें व्यक्त करते हैं; संक्षेपमें यह भौतिक विज्ञानका रेखागणिती करण है। इसे समझनेके लिये आईन्स्टाइन एक मनुष्यको यन्त्रों सहित एक कटघरेमें कैद करके (यह सभ्य (?) मानव सदासे करता आया है) गुरुत्वाकर्षण रहित शून्यमें भेज देता है। यदि कटघरा स्थिर हुआ तो कैदी किसी गुरुत्वशक्ति का अनुभव न करेगा—वह भाररहित होगा और न कटघरेके फर्श पर दबाव ही डालेगा, परन्तु यदि किसी प्रकार एक रस्सी द्वारा उस पिंजड़ेको नियत शक्तिसे ऊपर खींचा जाय तो परिस्थिति विपरीत होगी। यदि हमारा कैदी बाहर नहीं देख सकता तो वह अपने आपको तथा अपने कारावासको स्थिर समझेगा, और बहुत सम्भव है बाहर देखने पर भी उसकी यही धारणा हो;

'नौका रूढ़ चलत जग देखा,
अचल मोह बस आपुहि लेखा।'

परन्तु सेबोंको नीचे गिरता हुआ देख कर (यदि वह न्यूटन हुआ) गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त प्रतिपादित कर देगा। दूर

से देखने वालेको जो सब क्रियाएं पिंजड़ेकी गतिके कारण जान पड़ेंगी, उनको वह गुरुत्वाकर्षणके सिर मढ़ेगा। दूसरे कटघरेके बाहरकी वस्तुएं तथा प्रकाशकिरणें जो स्थिर अवलोकक को सीधी रेखाओं में जाती दिखाई देती हैं, कैदी के लिए वक्रपथ धारण कर लेंगी। इस प्रकार आईन्स्टाईन के मतानुसार गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रोंमें वस्तुओंकी गतिको केवल समुदायकी वर्द्धमान गतिके कारण कहा जा सकता है, और उस दशामें गुरुत्वाकर्षण तथा समुदायकी वर्द्धमान गति समान है, कोई भेद नहीं। हम देखते हैं कि कटघरेकी वर्द्धमान गति तथा गुरुत्वाकर्षणकी वाह्य समानतामें वैसे कोई समानता नहीं, क्योंकि उसमें गति उत्पन्न करने वाली शक्तिके बराबर अथवा समान कोई गुरुत्वाकर्षण नहीं। आईन्स्टाईन के अनुसार हम जिन्हें गुरुत्वाकर्षक क्षेत्र कहते हैं वहां भी गुरुत्वशक्ति कोई यथार्थता नहीं। विश्व में गति होनेके कारण हमारे अवलोकन इस प्रकारकी धारणा कराते हैं। प्रतीत होता है आईन्स्टाईनसे भी किसी बड़े मस्तिष्क ने समस्त विश्वको कारावासमें डाल कर यह तमाशा देखा है।

'जग पेखन तुम देखन हार'

भौतिक विज्ञानके रेखागणितीकरणको समझनेके लिए एक उदाहरण और देते हैं। यदि बच्चे ऊँची-नीची जमीन पर गोलियोंसे खेल रहे हों तो हम देखते हैं कि गोलियां कुछ दूर तक सीधी रेखाओंमें जा आगे किसी कुब्जसे टकराकर दायें या बायें मुड़ जाती हैं जो कि टकरानेकी दिशा पर निर्भर है। बालकके लिए इसका कारण प्रत्यक्ष होगा, परन्तु एक अन्य अवलोकक, जो दूर होनेके कारण धरातलकी भली भांति परीक्षा नहीं कर सकता, बुद्धिके आधार पर भांति-भांति के सिद्धान्त प्रतिपादित कर सकता है। वह प्रत्येक कुब्जके स्थान पर एक प्रतिसारित शक्ति (repellent force) की स्थापना करके अपने भौतिक विज्ञानकी रचना करे, तो कोई आश्चर्य नहीं। हम ग्रहोंको सूर्य के चारों ओर अण्डाकार कक्षाओंमें घूमते देखते हैं और इसी दृग्विषय (phenomenon) की व्याख्या करनेके लिये गुरुत्वाकर्षणकी सृष्टि कर ली है। हो सकता है हमारी अज्ञानता इन गोलियोंसे खेलने वालेके लिये दूसरा मनोरञ्जन हो।

आईन्स्टाईन का सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण की व्याख्या दिक्-काल की चतुर्थविस्तरण में वक्रता के द्वारा करता हैं। हम देख आये हैं कि स्थूलदृष्टि के लिये चौथे विस्तारका अनुमान करना कठिन है, यहां शिवका तृतीय नेत्र चाहिये और गणित हमारी सहायता को आता है। सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य की बड़ी मात्राओं के समीप दिक्-काल (four dimensional continum) वक्र हो जाता है, जिसके फल स्वरूप विश्व-रेखायें * सीधी नहीं रहतीं और समय का पैमाना बदल जाता है। हम देखते हैं कि न्यूटन के सर्वव्यापी गुरुत्वाकर्षणके नियम का स्थान एक जटिल रेखागणितने ले लिया है, जिसका एक विशिष्ट परिमित भाग ही न्यूटनका गुरुत्व-शक्ति का सिद्धान्त है। परन्तु न्यूटन का सिद्धान्त सर्वव्यापी नहीं और बहुत से दृग्विषयों की व्याख्या में, जहां आईन्स्टाईन-वाद पार उतरा है, वह असफल रहा। यहां हम ऐसे तीन विषयों का उल्लेख करते हैं, और चौथेको आगेके लिये छोड़ा जाता है, क्योंकि वह अभी शैशवावस्था में होते हुए भी एक प्रकरणके लिये यथेष्ट सामग्री रखता है।

व्यापक सिद्धान्त के कुछ परिणाम तथा उनका दृढ़ीकरण—प्रयोगात्मक ज्योतिष बताता है कि बुध ग्रहकी कक्षा व्योममें घूम रही है, अर्थ यह कि कक्षा का रवि-नीच ‡ प्रत्येक वर्ष बदलता रहता है हम देखते हैं कि यह परिभ्रमण परिमाण में ठीक उतना ही है जितना आईन्स्टाईन-वाद बताता है, और यह फल ही सिद्धान्त के प्रथम दृढ़ीकरण था। प्रकृति ने बुधके साथ कोई पक्षपात करके यह विशेषता नहीं दी है, हमारी पृथ्वी और प्रत्येक ग्रहका रवि-नीच भी इसी प्रकार परिभ्रमण करता है, परन्तु सूर्यसे दूर होने के कारण इसकी गति बहुत सूक्ष्म है—एक पूरा चक्कर लगाने में २५८०० वर्ष लगते हैं। आज व्योम-मण्डल ध्रुव-तारे के चारों ओर घूमता दिखाई देता है, परन्तु रवि-नीचके परिभ्रमणके कारण ५००० वर्ष पूर्वके महाभारतके महारथियोंने उसे अजगर तारामण्डल के एक विन्दु के चारों ओर घूमता देखा होगा, और ५००० वर्ष बाद आने वाली भावी सन्तति उसे सेफस तारामण्डल के एक विन्दु के चारों ओर घूमता देखेगी। मानवके लिये कुछ भी अचल नहीं

---

* जिस प्रकार तीन विस्तार की पद्धति में किसी वस्तुकी स्थिति बिन्दुओं द्वारा व्यक्त होती है, दिक्-काल में किसी घटना का वर्णन करने के लिये रेखाओं की आवश्यकता होती है। 'अर्जुन के बाण से कर्ण मरा।' इस घटना का वैज्ञानिक वर्णन होगा, अर्जुनके बाण तथा कर्ण की विश्व-रेखाएं (World lines) मिलीं और कर्ण मर गया।

‡ दीर्घवृत्ताकार कक्षा का वह विन्दु जो नाभि (focus) में स्थित सूर्य के सबसे निकट है।

है, उसका ध्रुव भी चलायमान है। बुधका ध्रुव अधिक अस्थिर है। यदि वहां जीवधारी होते तो क्या वे इस ग्रहवालों से भी अधिक चलायमान तथा अस्थिर होते ?

हम देख आए हैं कि नए सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य की बड़ी-बड़ी मात्राएं दिक्-कालमें वक्रता उत्पन्न कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप विश्व-रेखाएं भी वक्र हो जाती हैं। सूर्य के गुरुत्वाकर्षक-क्षेत्र से आती हुई नक्षत्रों की प्रकाशकिरणें मुड़ जाती हैं और इस प्रकार हमको और सूर्य को जोड़ने वाली सरल रेखा पर सूर्य की आड़ में स्थिति नक्षत्र दिखाई दे सकते हैं। परन्तु सूर्यके समीप तो क्या, उससे दूर भी, उसके प्रकाशके कारण हम नक्षत्रोंको नहीं देख सकते। अतः हम उस अवसर की खोजमें रहते हैं जिसका कविने चन्द्रमा को प्रताड़णा देते हुए इन शब्दों में वर्णन किया है:—

'रे रजनीश निरङ्कुश तूने दिननायक ग्रास किया,
नैक न धूप रही धरती पै घोर तिमिरने वास किया।'

जब हम देखते हैं कि निरंकुश रजनीश का यह उच्छृङ्खल व्यवहार एक सत्य की खोज में सहायक है, हम आशा करते हैं शर्मा जी उसको क्षमा कर देंगे। २९ मई १९२९ के पूर्ण सूर्यग्रहण के अवसर पर गणना से मालूम हुआ कि उस समय आकाशमें नक्षत्र ऐसे स्थानों पर होंगे कि अवलोकन किया जा सके। इङ्गलैण्ड से दो सेनाओं ने प्रस्थान किया—मानव द्वारा मानव-संहार के लिये नहीं—एक ऐडिङ्गटन और कॉटिङ्गम के साथ अफ्रीकाके तट पर प्रिंसिप के द्वीप को, और दूसरी क्रौमेलिन और डेविड्सन के साथ ब्रेजिल में सोब्राल को। यद्यपि उनके अवलोकनों में कुछ भेद था, पर पीछेके अवलोकनों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा आईन्स्टाइन-वाद प्रयोगोंसे मिलते हुए सर्वोत्तम फल देता है।

हम देख आए हैं कि विशाल गुरुत्वाकर्षक क्षेत्रों (अर्थात् विशालकाय वस्तुओं) में समयका पैमाना बदल जाता है, काल मन्थरगामी हो जाता है। सुनते हैं कि दीर्घकाय रावणके कारावास में "काल" कैद था। हम ऐतिहासिक सत्यासत्य अथवा शब्दोंके अर्थ की विवेचना नहीं कर रहे, परन्तु यदि आईन्स्टाइन का सिद्धान्त ठीक है तो पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यादि नक्षत्रों पर काल शनैश्चर होगा। यह देखने के लिये हमको दो बिलकुल एक से समय मापक चाहिएं, एक यहां रहे और दूसरा नक्षत्र पर। परन्तु यह असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि निकटतम नक्षत्र, सूर्य तक घटी का पहुँचाना, उसका वहां उसी रूप में रहना तथा यहां से दिखाई देना सम्भव नहीं है। पर प्रकृति ने नैसर्गिक समय-मापक दिये हैं। वे हैं पदार्थ के परमाणु। एक पदार्थ विशेषके परमाणु एक खास आवृत्तियों* की प्रकाश लहरें देते हैं। प्रकाश-वेग सदा अविकार (स्थायी) रहता है, तथा आवृत्ति में अन्तर-समयमें भेद का द्योतक है। इस प्रकार वे परमाणु जो यहां एक अमुक आवृत्तियों का प्रकाश देते हैं सूर्य पर से छोटी आवृत्तियां देंगे। जिसके फल-स्वरूप वर्ण-पट पर रेखाएं कुछ लालिमा की ओर हटी होंगी। सूर्य, लुब्धक आदि नक्षत्रोंके प्रकाश का वर्णपट मापक द्वारा विश्लेषण आईन्स्टाइन वाद की सत्यता को प्रमाणित करता है।

अभी कुछ समय हुआ स्वर्गीय सर शाहमुहम्मद सुलैमान ने गुरुत्वाकर्षण का नया सिद्धान्त दिया था जो कुछ प्रयोगोंकी ठीक-ठीक व्याख्या तो करता है, परन्तु उसके मूल प्रमेय एक सफल एवं गूढ़ सिद्धान्तके लिये बहुत अधिक हैं। समय और प्रयोग अन्त में निश्चय करेंगे कि हमको किसे अपनाना है। अभी ऐसा कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं हुआ जिसके अपवाद रूप (corollary) अन्य सिद्धान्त हों। सापेक्षतावाद तथा नवीन इष्टांश-यन्त्र शास्त्र (Quantum Mechanics) इस काल के मुख्य सिद्धान्त हैं। डिराक आदि ने इष्टांश-यन्त्र शास्त्रमें, जो केवल अणुओं का ज्ञान कराता है, सापेक्षतावाद का प्रयोग किया है। ऐडिङ्गटन ने नैसर्गिक अचलराशियों (natural constants) की सापेक्षतावादसे गणना की है—ऋणाणु और धनकणकी मात्रा, विश्वका अर्द्धव्यास आदि इस प्रकार निकाले हैं। यह नितान्त असम्भव नहीं कि जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का स्थान रेखागणित ने ले लिया है उसी प्रकार समस्त शक्तियों (वैद्युत्, चुम्बकीय, गुरुत्व) की व्याख्या करने के लिये एक और सुघटित रेखागणित अथवा कोई और गणित आवश्यक हो। विज्ञान पर अभी अन्तिम शब्द नहीं कहा गया है न कहा जायगा, उसके मार्ग तथा क्षेत्र अनन्त हैं।

* एक इकाई समय (एक सेकण्ड) में जितने कम्पन होते हैं उनकी संख्या आवृत्ति कहलाती है।

दृष्टि-विज्ञान में उन्नति

[लेखक—सुरेश शरण अग्रवाल, एम. एस-सी.]

वैसे तो मनुष्यके शरीर का प्रत्येक अङ्ग तथा इन्द्रिय बहुमूल्य है और किसी के भी वंचित रहने पर वह सुखी नहीं रह सकता, फिर भी इन समस्त इन्द्रियों में नेत्रका स्थान सर्वोच्च है। नेत्रोंके बिना जीवन अधिकांश रूपमें वृथा-सा है। वर्तमान कालमें नेत्र के रोगियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है और हमारे भारतवर्ष में तो लोग चशमा लगाते हुए डरते हैं और इसको व्यर्थ का 'फैशन' मानते हैं। यह भले ही सत्य हो कि कुछ नेत्र से नीरोग मनुष्य व्यर्थ ही चशमा लगाने लग गए हैं किन्तु सब उपनेत्रधारियों के लिये ऐसा कहना स्पष्टतया एक महान् धोखा है। आधुनिक विज्ञान जिस प्रकार नाना क्षेत्रों में नवीन आविष्कारों तथा अन्वेषणाओं से मनुष्य को दिन दूना रात चौगुना सुखी बनानेकी चेष्टा में है, उसी भांति नेत्रके क्षेत्र में भी।

गत शताब्दिके अन्तमें यदि किसी को दूर का या निकट का साफ दिखलाई नहीं देता था तो एक कागज के साधारण चार्ट के सन्मुख खड़ा होकर अक्षर-बोध करता और नेत्रों की परीक्षा कराता था। इसके भी पूर्व सन् १८५० के निकट तो सूरदास बाबा की और भी दुर्दशा थी। यदि किसी वृद्ध सज्जन को राह पर आता हुआ आदमी दृष्टिगोचर नहीं होता था तो वह या तो चश्मे वाले की दुकान पर जाता या बाजार में घूम फिर कर चशमे बेचने वाले को पकड़ लेता था और उससे एक के बाद दूसरा चशमा मांगता और अपने नेत्रों पर लगाकर देखता। जिससे दूर का सबसे अधिक साफ दिखलाई देता था वह उसे ही खरीद लेता और ठण्डी सांस लेता कि उसकी दृष्टि उसे पुनः प्राप्त हुई। परन्तु आजकल हमें नेत्रों के प्रति इस प्रकार का जुआ खेलने की आवश्यकता नहीं है।

वास्तवमें मनुष्यके सब अङ्गोंकी अपेक्षा नेत्रों पर ही सर्वाधिक जोर या परिश्रम पड़ता है। एतदर्थ अमेरिका में अढाई करोड़ आदमी चश्मा लगते हैं, यद्यपि छै करोड़को इसका प्रयोग करना चाहिये। यह तो साधारण ज्ञान की बात है कि हमारे नेत्रोंमें एक एक ताल (lens) लगा होता है जिसके द्वारा प्रकाशकी किरणें जाती हैं और फिर कृष्णापटल (retina) पर जाकर टकराती हैं और तदोपरान्त दृष्टि-नाड़ी द्वारा मनुष्य को पदार्थ का बोध होता है। परन्तु प्रायः यह ताल ठीक काम नहीं करता है और देखे जाने वाले पदार्थ का प्रतिबिम्ब कृष्णा-पटल पर ठीक नहीं पड़ता या अन्य कुछ खराबी होती है। चार प्रचलित नेत्र-रोग है निकट दृष्टि, दीर्घ दृष्टि, वैषम्य (astigmatism) और युगल-दर्शन (double vision) यह समस्त रोग आजकल चशमे द्वारा ठीक किये जा सकते हैं।

लगभग सात वर्ष पूर्व (१९२० में) अमेरिका स्थित डार्टमाडप के वैज्ञानिकों ने एक नवीन अथवा पाचवें रोग का आविष्कार किया। वह रोग यह है कि देखने वाले को एक ही पदार्थ के दोनों नेत्रों से असमान प्रतिबिम्ब दीखते हैं। इसको अङ्गरेजीमें aniseikonia कहते हैं। हम इसको 'भिन्नबिम्ब' कहकर पुकारेंगे। इस रोग में दोनों नेत्रों पर पड़े प्रतिबिम्ब ही असमान नहीं, रूप में भी विभिन्न होते हैं। दृष्टि-नाड़ी प्रयत्न करती है दोनोंको एक करनेका, किन्तु वह निष्फल रहती है और इससे सिरमें दर्द ही नहीं, पेटमें भी व्याधि तथा अन्य रोग आ जाते हैं।

भिन्न-बिम्ब का सबसे अधिक प्रभाव तो यह पड़ता है कि मनुष्य दूरी तथा गहराई पहचानने में असमर्थ हो जाता है। यह प्रकट है कि यदि कोई मोटर वाला या हवाई जहाज का पाईलाट इस रोग से ग्रसित हो तो वह अपने आप तथा औरों के लिये बड़ा विपदाजनक है। भिन्नबिम्ब का पता चलाने के लिये एक पेचीदा साधन उपयुक्त किया गया है और इसके कारण एक बिलकुल नए प्रकार का ताल बनाया गया है जो दोनों नेत्रोंसे समान बिम्ब बनाता है। इन तालों का डिजाइन (design) डार्टमाडपके वैज्ञानिकोंने तैयार किया और अमरीकन ऑपटीकल कम्पनी को ताल बनाने के लिये कहा गया। यह भिन्नबिम्ब ताल दरजी-रचित हैं, अर्थात् कोई दो ताल कभी भी एकसे नहीं होते और प्रत्येक को पृथक ही तैयार करना पड़ता है। इनके बनाने की समस्या सबसे कठिन है। फिर भी सैंकड़ों और हजारों भिन्नबिम्ब वालों ने अपनी दृष्टि ठीक करा ली है। भिन्नबिम्ब की पहचान एक भारी प्रमाण है प्रकाश-कला

(optical industry) की यह महान् कोशिश—कि लाखों और करोड़ों नेत्र-पीड़ित प्राणियोंको सुख पहुंचाये। इस गवेषणामें कितने वर्ष, कितना धन, कितना परिश्रम और कितना ज्ञान लगे, इसका अनुमान करना भी कठिन है।

दृष्टि सम्बन्धी गवेषणा की पराकाष्ठा तो एक और भी नवीन प्रकारके तालों में पहुंची है जो दृश्य और अदृश्य प्रकाश से मानो खेलते हैं। ध्रुवात्मक-ताल (polaroid lenses) तेज चमक को जिससे मोटर चलाने वाले सुपरिचित हैं, रोक देती है और आजकल तो आपका डाक्टर आपके लिये ऐसे ताल दे सकता है जिससे आपको चमक कम या न लगे, व्यर्थ प्रकाश न मिले और विपदाजनक उपरक्त (infra-red) तथा नीललोहितोत्तर (ultra-violet) प्रकाश कदापि सोख ले। शोषक ताल (absorption lenses) आग की भट्टियों फाउण्ड्रियों में काम करने वालों के लिये अत्यन्त लाभप्रद हैं।

उपनेत्र-सूक्ष्मता (spectacle precision) सम्बन्धी एक महान् वैज्ञानिक प्रबन्ध टिलयर ताले (tillyer lenses) का आविर्भाव है। इन तालोंके किनारों तकसे ठीक तथा साफ दृश्य दीखता है और इस कारण से आँख का रोगी अत्यन्त सुगमतासे अच्छा देख सकता है।

नेत्रोंके विभिन्न रोगोंके आपरेशन भी होते हैं। एक बड़े नेत्र—अस्पतालकी रिपोर्ट है कि २५ प्रतिशत आपरेशन केटेरेक्ट (cataract) के होते हैं। इस कोमल आपरेशनमें आंखके तालको आंखमेंसे निकाल लेते हैं। वैज्ञानिकोंने विशेष ताल निकाले हैं जो आंख में फिट होकर दृष्टि पुनर्जीवित कर देते हैं। उन नेत्रों के लिये जो लगभग अंधे हो गये हों और कार्य देनेकी क्षमता न हो, वैज्ञानिकों ने दूरबीनी ताल (telescopic lenses) निकाले हैं जिनकी अभिवर्धकता (magnifying power) बहुत अधिक होती है।

नेत्र-परीक्षक साधनों में भी वैज्ञानिकों की सदैव रुचि रही है। आजकल नेत्र परीक्षा हेतु नये और सुन्दर साधन खोज निकाले गये हैं जो नये तालोंकी अपेक्षा भी कहीं रोचक हैं। इनमें से कुछ यन्त्र रोगी के नेत्रकी खराबी का तो पता चलाते ही हैं, किन्तु इसके साथ ही उसके स्वास्थ्यका भी ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। एक ऐसे यन्त्रका नाम (opthalmoscope) दृशमापक है जो प्रकाशकी एक किरण रोगीकी आंखमें फेंकता है और डाक्टरको कृष्ण-पटल तथा नेत्रके पीछेके भागकी परीक्षा करनेका अवसर देता है। इस दृशमापककी सहायतासे नेत्र, दिमाग, खून तथा अन्य प्रकारके रोगोंके चिन्ह देखे जा सकते हैं। थोड़ा ही समय बीते इस यन्त्रमें ध्रुवीय पदार्थ (polaroid material) और लगाया गया है जिससे कि डाक्टर को चकाचौंध नहीं लगती। इसी प्रकार दो यन्त्र (perimeter तथा stereo-campimeter) डाक्टरों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं मनुष्यके दर्शन-क्षेत्र (field of vision) की परीक्षा में। आपका दर्शन-क्षेत्र इतना ही जितना आपके नेत्र सामने की ओर देखने पर देख सकते हैं। स्वस्थ नेत्र लगभग १२०′ उर्ध्वाधर तलमें और १८०° क्षैतिज तलमें देख सकते हैं।

रतौंध—रातमें ठीक नहीं दीखता या वह खराबी जिस के कारण तेज रोशनीके बाद नेत्र साधारण रोशनीमें अपने आपको व्यवस्थित नहीं कर सकते—तो भी इन दिनों वैज्ञानिकों ने बहुत कार्य किया है। हम सब ही ने यह अनुभव किया है कि एक खूब चमकते हुए तथा प्रकाशमान स्थान से अंधेरे स्थान में जाने पर क्षणिक अंधा लगता है। स्वस्थ पुरुष तो शीघ्र ही अपनेको व्यवस्थित कर लेते हैं। परन्तु रतौंध वालोंको कुछ देर लगती है, पूर्व इसके कि वह अंधेरे कमरेमें देख पायें। पाठकको जान कर आश्चर्य होगा कि यह बीमारी या तो आंख की कमजोरीके कारण या शरीरमें विटामिनकी अल्पताके कारण या अन्य किसी रोगसे होती है। रतौंधकी परीक्षाके लिये अमेरीकाके प्रसिद्ध नगर फिलाडेलफियाके डाक्टर फेल्दमानने एक नये यन्त्रकी खोजकी है। और कुछ विशेषज्ञोंका मत है कि रतौंधके लिये मोटर वाले, हवाई जहाजके पाईलट, रेलरोड इंजीनियर और कुछ मशीनोंमें काम करने वालोंकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये।

नेत्र-विज्ञानमें एक अन्य नया पग है। एक विशेष प्रोजेक्टर और विशेष स्लाइडका आविर्भाव जिनका उद्देश्य पुरातन ढंग के चार्टका स्थान लेना है। इनसे किसीकी आंखकी परीक्षा सुगमता तथा शीघ्रतासे की जा सकती है। हमारी आंखोंमें छै स्नायु (muscles) होते हैं जिनके कारण हम नेत्रोंको किसी भी दिशामें मोड़ सकते तथा हरकत दे सकते हैं। यह स्नायु दिन भरमें भीषण कार्य करते हैं। यदि हम कोई उपन्यास आदि पढ़ रहे हों तो आधे घंटेमें हमारे नेत्र-स्नायु एक लाख से ज्यादा हरकतें करते हैं। यदि पढ़ने वाला बुरा है तो तीन

(शेष पृष्ठ १३० पर)

चींटिओं की कार्य-कुशलता

[लेखक—कुँवर बीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस-सी.]

चींटिओं के विभिन्न प्रकार व विशाल संख्या, उनका कार्य-क्रम और व्यस्त जीवन अन्य जीवों एवं वनस्पतियों के साथ उनका सम्बन्ध और प्राकृतिक अनुकूलताके साथ उनके रहनेके ढंगके कारण जीवसंसार में उनका एक विशेष स्थान है। उत्तरी ध्रुवसे लेकर दक्षिणी ध्रुव तक, घने जंगलोंसे लेकर मरुस्थल में, पहाड़ोंकी चोटियों एवं समुद्रके किनारों तकमें—जहां कहीं भी हम जायें चींटिओं को अनेक संख्यामें पा सकेंगे। अन्य जीवों की भांति इनकी जीवन यात्रामें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं है। एक पीढ़ी आयु तक ये जीवित रहती हैं; कारण यह है कि न तो इनको कोई विशेष भोजन और न रहने के लिए घर बनाने में किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता ही पड़ती है। ऐसी अवस्थामें जब कभी भी उनके रहने के स्थान के नष्ट होने का भय हुआ, अथवा जल-वायु उनके प्रतिकूल हो गई, वे बिना किसी कठिनाई के अपने बच्चों सहित सुरक्षित स्थान में पहुंच जाती हैं। अन्य जीवों के लिये ही घर बनानेकी विशेष प्रकार के सामान की आवश्यकता पड़ती है। बिना उसकी सहायता के वे घर निर्माण करनेमें असमर्थ हैं, किंतु चींटिओं के लिये जो कुछ भी सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है उसी की सहायतासे वे अपना घर स्थापित कर लेती हैं। कुछ अन्य जीव इनके शत्रु होते हैं; किंतु सबसे अधिक शत्रुता एक प्रकारकी चींटिओं से दूसरी प्रकारकी चींटिओं से होती है। बड़ी जातिकी चींटिआं, छोटी जाति वालियों को प्रायः निगलने की चेष्टामें रहती है।

जिस प्रकार कुछ मनुष्य शिकार करके, जीवोंको पाल कर अथवा कृषि करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार कुछ चींटिआं ऐसी हैं, जो अन्य छोटे जीवों का शिकार करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं। कुछ वनस्पति, छोटे कीड़ेको पालते हैं। कृषक-चींटिआं वृक्षों के बीजों का संग्रह करती हैं। किंतु चींटिओं का सामाजिक-जीवन मुख्यतः मादा द्वारा निर्वाह होता है। नर-चींटिओं को उनके झुण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक बड़े परिवारमें इनकी संख्या ५० लाख तककी होती है और प्रत्येक मादाको एक कार्य विशेष करना होता है। अपने रहनेका स्थान पृथ्वीके अन्तर्गत, अथवा ऊपर, वृक्षों के तनों में या लकड़ी के कुंदेमें बना लेती है। कुछ जातिकी चींटियों को छोड़ कर प्रायः सबोंके रहनेका ढंग एक ही प्रकारका है। वैवाहिक-उड़ानके पश्चात् मादा-चींटी अपने छिपने के स्थान पर आ जाती हैं और उसका जो सर्वप्रथम कार्य होता है वह है पंखों से छुटकारा पाना, जिसका कि भविष्यमें कोई कार्य नहीं होता। वह अपने पंखोंको छोटे पत्थर अथवा घासके प्रतिकूल रगड़ कर गिरा देती है। इस आपरेशनकी क्रियामें उसे कोई विशेष कष्ट नहीं होती, कारण यह है कि एक ही उड़ानके पश्चात् वे अत्यन्त जीर्ण हो जाते हैं और सरलतासे अलग हो जाते हैं। फिर वह मिट्टी खोद कर बिलका भीतरी भाग बड़ा करके कमरा तैयार करती है। इस कठिन क्रियाके बाद वह एकदम अकेले शिथिल हो कर अपने निर्माण किये हुए घरमें चुपचाप बैठ जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उसे प्रायः दिनों, सप्ताहों अथवा महीनों बैठना पड़ता है, तब जाकर उसके अंडे तैयार होते हैं। ये अंडे छोटे झुंडमें निकलते हैं, जिनमेंसे सूक्ष्म जीव बाहर आते हैं। रानी चींटीकी चर्बी द्वारा लारका निर्माण होता है। जिसके द्वारा इन नये बच्चों का प्रतिपालन होता है। परिवार के निर्मित्त करने की क्रियामें मादा भोजन नहीं करती। छोटे बच्चे क्रमशः बढ़कर छिद्र द्वार खोलते हैं और बाहरसे अपना भोजन ले आते हैं; किंतु 'रानी' को उससे कोई सरोकार नहीं होता, वह और भी शिथिल पड़ जाती है और उसका मुख्य कार्य केवल अधिकसे-अधिक अंडे देना रह जाता है। कुछ तरल खाद्य पदार्थ जो कि उसके बच्चे ले आते हैं, उनमें से थोड़ा सेवन कर वह पुनः कुछ स्वस्थ हो जाती है किंतु अपने जीवनका प्रायः सारा समय, संभवतः १५ वर्ष तक वह एकान्त रूपसे अंडे देने के यन्त्रका कार्य करती है।

केवल थोड़े ही समयमें उनका विशाल परिवार पूर्ण रूपसे सम्पन्न हो जाता है। ज्यों ही बच्चे पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जाते हैं, वे उन रिक्त स्थानोंकी पूर्ति करते हैं जो कि आरम्भके जीर्ण कार्य कलाओं द्वारा खाली होता हैं। अंडोंका रंग पीला होता है और वे कुछ लम्बे होते हैं। चींटी के नये बच्चे इन अंडोंकी अत्यन्त सावधानीसे रक्षा करते हैं। प्रायः घटों वे उसे चाटते

हैं, जिससे उनका राल अंडोंको एक झुंडमें एकत्रित रखता है और उनपर फफूंद उत्पन्न नहीं होने देता। अंडोंका एक झुण्ड में रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर वे शीघ्रतासे एक-एकके बजाय सरलतासे दूसरे सुरक्षित स्थानको ले जाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त चूंकि वातावरणका ताप क्रम प्रति घंटे बदलता रहता है, इस कारण उन अंडोंको एक प्रकारके वातावरणमें रखनेके लिये कार्य-कर्त्ताओंको एक कमरे से दूसरे कमरेमें ले जाना पड़ता है। रानी-चींटी, जिसकी संख्या एक स्थानमें ३० तक हो सकती है—के अंडोंसे कुछ समयके पश्चात् अर्द्धपारदर्शक, नग्न, अंधे सूक्ष्म जीव निकलते हैं। अधिकांशके शरीर पर रोयें होते हैं जिसके कारण वे भूमि की नमी के प्रभाव से सुरक्षित रहते हैं। इसके अतिरिक्त भूख की अवस्थामें जब कभी इनके बड़े भाई, इनको क्षुधा दूर करने का साधन बनानेका प्रयत्न करते हैं, तो वही रोयें उनकी रक्षा करते हैं। कभी-कभी इनके रोयें कटियादार होते हैं, जो कि दीवारके सहारे एक दूसरे से लटकने में सहायता करते हैं। इन सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा करनेमें नर्सोंको विशेष सावधानीसे कार्य करना पड़ता है। उनको अपने मुखसे भोजन खिलाना पड़ता है। प्रायः एक मास तक विभिन्न अवस्थाओंमें विभिन्न तापक्रम पर रखनेके लिये नर्सों को बहुत कठिनाई उठानी पड़ती है, ताकि बच्चे भली भांति विकसित हो कर पूर्णरूपसे स्वस्थ हों। शरीरमें मिट्टी न लगने पावे, इसलिये वे बराबर चाटे जाते हैं। नर्सोंकी रालसे उनके कोमल शरीर सुवासित रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाश और शत्रुओंसे बचानेके लिये छोटे बच्चोंको एकदम अंधेरे कमरेमें रखा जाता है।

जब ये सूक्ष्म जीव बड़े हो जाते हैं तो नर्सों द्वारा ये भूमि के अन्दर जमा दिये जाते हैं, जहां पर प्रत्येक जीव स्वयं अपना ककूंम निर्माण करता है। जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है तो पुनः वे भूमि से बाहर निकाल लिये जाते हैं—और उनकी आयुके अनुसार अलग-अलग ढेरमें रख दिये जाते हैं। ककूंम के अन्दर आश्चर्यजनक परिवर्तन हो कर वह क्षुद्र जीव युवा चींटीमें परिणित हो जाता है। जिस समय वे ककूंम से बाहर निकलते हैं। इनके हाथ पैर पंख आदि जुड़े रहते हैं जो कि नर्सों द्वारा अत्यन्त सावधानीसे चाट कर अलग अलग किये जाते हैं। अब वे चींटियां पूर्णरूपसे विकसित होकर नये परिवारके बसानेके योग्य हो जाती है। प्रायः प्रत्येक जीवमें वैवाहिक-संबध निकट संबधियोंमें अच्छा नहीं समझा जाता। उसी प्रकार चींटिओंमें भी इस बातका ध्यान रखा जाता है। इसको कार्यरूपमें परिणित करने के लिये वैवाहिक उड़ानके समय कई एक घरोंकी चींटियां एक साथ उड़ती हैं जिसके कारण अधिकतर एक घरके नर-चींटी के साथ दूसरे घरकी मादा-चींटीका संबध हो जाता है।

समस्त जाति की चींटिआं अत्यन्त स्वच्छ होती हैं। समस्त मलमूत्र एवं कूड़ा-करकट आदि मजदूरों को हटाकर रहने का स्थान पूर्ण रूपसे स्वच्छ रखना पड़ता है। यदि किसी दुर्गंधित पदार्थ के हटाने में वे असमर्थ होती हैं तो उसको उसी स्थान पर भली-भांति मिट्टीसे ढक देती हैं। कुछ जातिकी चींटिओंको छोड़कर जो कि मांसप्रिय होती हैं प्रायः समस्त जाति की चींटिआं मधुर पदार्थ को बहुत पसन्द करती हैं। इस सम्बन्धमें अमेरिकन जातिकी एक चींटी का 'मधु-पात्र' बहुत ही अनूठा उदाहरण है। ये चींटिआं अपना छोटा घर ओक वृक्ष के तनों के समीप निर्माण करती हैं। दिनमें ये चींटियां कोई विशेष कार्य नहीं करतीं किन्तु रात्रि होते ही हजारों की संख्यामें ओक वृक्ष पर चढ़ जाती हैं। इन वृक्षों पर अन्य कीड़ों के कारण कुछ मधु एकत्रित रहता है, जिसको कि ये चींटिआं चाटकर अपने घर वापस चली आती हैं। वहां पर अन्य चींटिआं इनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं जिनके "मधु-पात्र" से समस्त मधु एकत्रित किया जाता है। उपरोक्त चींटिआं भण्डार-घरका कार्य करती हैं और इतनी अधिक मात्रा में उनमें मधु होता है कि यदि वे संयोगवश दीवार से गिर पड़ें तो उसके बोझ से उनका अन्त हो जाए। आपको आश्चर्य होगा कि ये चींटिआं इतने परिश्रमसे मधु लाकर क्यों दूसरेको दे देती हैं? इसका भी एक कारण है। प्रतिकूल अवस्थाओंमें जब कि मधु या अन्य प्रकार का भोजन मिलना असम्भव हो जाता है तब यही 'मधुपात्र' वाली चींटिआं अन्य चींटिओं को भोजन प्रदान करती हैं और अपने परिवारके जीवों की रक्षा करती हैं।

अमेरिका में ही एक जाति की ऐसी चींटी पायी जाती है जो कि भूमिमें अपने घरोंके अन्दर फफूंद उत्पन्न करती है। ये चींटिआं पेड़ोंकी पत्तियों को लाकर अपने घरमें रखती हैं। कुछ विशारदोंका विचार था कि पत्तियां उनका भोज्य-पदार्थ हैं, कुछ की यह धारणा थी कि वे पत्तियों से अपने घरों का निर्माण करती हैं, किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि ये पत्तियां

फफूंद के उत्पन्न करने में खादका कार्य करती हैं। इन चींटियों के कमरे पृथ्वी के भीतर एक मनुष्य के सिर के बराबर होते हैं और कई एक कमरे एक पतले रास्ते से जुड़े रहते हैं। इन कमरों में पत्तियों के महीन टुकड़ों से बुना हुआ सफेद रङ्ग का फफूंद होता है। संतरे के सफेद छिल्के एवं अन्य वनस्पति पदार्थ भी इसके लिये उपयुक्त होते हैं। इन चींटियों के सम्बन्ध में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि इस फफूंदोंके लिये वायु के निरन्तर आवागमनका विशेष ध्यान रखती है। वायुके अनेक रास्ते कभी बंद किये जाते हैं और कभी खोले जाते है, ताकि वातावरण का तापक्रम एक समान रहे। कुछ चींटिओं का कार्य अन्य प्रकारके फफूंदोंकी उत्पत्तिको रोकना होता है। ज्यों ही दूसरे प्रकार की वनस्पति का निर्माण हुआ, वे शीघ्रता से उखाड़ कर फेंक दिये जाते हैं। यही विशेष प्रकारके फफूंद इन चींटिओं का भोजन है। जब वे अपना स्थान बदलती हैं, तो इन फफूंदों को साथ ले जाती हैं, जिससे उनके भोजनमें कमी न पड़े। जब मादा-चींटी अपने वैवाहिक उड़ान के लिये घर से बाहर निकलती है तो अपने अन्तिम भोजन का बचा हुआ फफूंद अपने साथ ले जाती है। उड़ान के पश्चात् भूमि में छेद कर भीतर जाकर छिद्र को बन्द कर देती है और अपने नूतन परिवारको उत्पन्न करनेमें सँलग्न हो जाती है वह फफूँदको उत्पन्न करनेके साथ ही साथ अण्डे भी देती जाती है, एवं लावी का सेवन भी करती जाती है। ज्यों ही बच्चे बड़े होते हैं, फफूंद का अधिक मात्रामें उत्पन्न होना भी आवश्यक हो जाता है। कारण यह है कि भोजन की खपत अधिक हो जाती है; किन्तु रानी अत्यन्त सुगमतापूर्वक फफूंद की अधिक मात्रामें उत्पत्ति करती जाती है। परन्तु आरम्भमें फफूंद का भोजन न देकर अण्डों के द्वारा बच्चोंका पालन करती है, ज्योंही वे बड़े हो जाते हैं, बाहर से पेड़ की पत्तियां लाकर फफूंद की उत्पत्तिमें सहायक हो जाती है। फिर रानी-चींटी उसमें कोई सहायता नहीं करती, वह केवल अण्डे देने के एक शिथिल-यन्त्रमें परिणित हो जाती है।

वे चींटियां जो अनाजके टुकड़ोंको एकत्रित करती हैं, संसार के समस्त उष्ण भागों में अधिकता से पायी जाती है। चारों ओरसे अनाज एकत्रित कर वे अपने भण्डार-घरको भरती हैं। अङ्कुरदार अनाजोंको वे काटती नहीं, किन्तु जब उनके भण्डार घर में वे उग आते हैं तो उनको उखाड़ कर फेंक देती हैं। निःसन्देह भण्डार करनेसे पहले वे अनाजके छिलकों को निकाल डालती हैं। इन चींटिओं के विषयमें यह भी कहा गया है कि यह एक प्रकारकी वनस्पतिका उत्पादन करती हैं; किन्तु ध्यान-पूर्वक अध्ययन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि इनके निवास-स्थान के छिद्रों के समीप जो वनस्पति के समान उपज होती है, वह केवल उन चींटियों के फैंके हुये अनाज के छिलके एवं इसी प्रकारकी अन्य सामग्रियों के ढेर मात्र होते हैं।

चींटिओं की विभिन्न जातियोंमें एक लड़ाकू चींटी भी होती है जो कि दूसरी जातिकी चींटिओं के निवास-स्थान पर धावा करके उनके छोटे, बच्चोंको पकड़ लाती है और उसे दासकी भांति रखती है। ये लकड़ी के कुंदों अथवा पत्थरोंके नीचे रहती हैं अथवा घर स्वयं बनाती हैं, भोजन एकत्रित करती और बच्चों का पालन करती हैं। पकड़े हुए नौकर केवल घरके बाहर का कार्य करते हैं। ये चींटियां जुलाई अगस्त मासमें धावा करती हैं। पहले वे अपने स्काउटों द्वारा धावा करने के उपयुक्त स्थानोंका पता लगवाती हैं, फिर वे कई झुण्डोंमें प्रस्थान करती हैं और चींटीओं के निवास-स्थानको चारों ओर से घेर लेती हैं, इस बीचमें घरकी चींटियां अपने बच्चोंको छिपानेकी चेष्टा करती हैं; किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं होता। कारण यह है कि धावा होते ही वे बच्चे उनसे छीन लिये जाते हैं। फिर वे चींटियां गर्वपूर्वक अनेक छोटे बच्चोंसे लदे हुए घर को वापस आती हैं। इस प्रकार उनका सफल धावा समाप्त होता है।

योरुप और अमेरिका में इसी लड़ाकू जाति की एक और चींटी पाई जाती है जो कि न अपना घर निर्माण करती है, न भोजन की चिन्ता करती है और न अपने बच्चोंका ही पालन कर सकती है। इन समस्त कार्यों के लिये वह पूर्णरूप से अपने नौकरों पर निर्भर करती हैं। उन्हीं नौकरों के बनाये हुए घरोंमें वे निवास करती हैं, नौकरोंकी सहायता के बिना उनका जीवित रहना असंभव है। यद्यपि घरके अन्दर वे स्थिर रूपसे पड़ी रहती हैं और नौकरोंसे अपने शरीर की सफाई और भोजन आदिका प्रबन्ध करातीं हैं; किंतु धावा करते समय घरसे बाहर निकलकर वे विशेष रूपसे सचेष्ट हो जाती हैं और एक संगठित नौकर सेना के सिपाहियोंकी भांति कार्य करती हैं। वापस आने तक वे भाग नहीं जाते; किन्तु मालिक की अनुपस्थित में घर की सावधानी पूर्वक रखवाली करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न चींटिओंकी कार्यकुशलता मनुष्यसे किसी प्रकार कम नहीं है।

ब्राज़ीलमें एक दूसरी प्रकार की चींटी पायी जाती है जोकि

वृक्षों पर स्वयं अपना उपवन निर्माण करती है। उनका उपवन मिट्टी के बने हुए स्पञ्ज की भांति होता है। जिनमें वे कुछ वृक्ष-विशेष के बीज लाकर जमा देती हैं, जिससे उनकी जड़ें मिट्टीके कणों को भली भांति थाम लें। एक अन्य जाति की चींटी बबूलके कांटों पर निवास करती है जिससे वे उन चींटिओं से रक्षा कर सकें जोकि पत्तियों के लिये वृक्षों पर चढ़ जाती हैं और उनकी शत्रु होती हैं। दूसरी जाति की चींटी बड़े माजू फलों के भीतर अपना निवासस्थान स्थापित करती है। इनमेंसे कुछ सिपाही का कार्य करती हैं। उनके सिर बड़े एवं बलवान् जबड़े होते हैं। उन फलोंमें जिनमें यह निवास करती हैं, खोखले सन्तरे की भांति होते हैं और उसमें आने जाने का केवल एक रास्ता होता है जो कि सिपाही चींटी के सिरके नाप के बराबर होता है, जहां वह २४ घण्टे पहरा देती रहती है। जब किसी चींटीको बाहर जाना होता है तो वह पीछे से सिपाही को छूकर इशारा करती है, जिससे वह अपना सिर छेद पर से हटा लेती है; किन्तु चींटी के निकलनेके बाद ही वह फौरन रास्ते को ढक देती है। इसी प्रकार जब चींटिओं को बाहर से अन्दर आना होता है तो वे क्षण मात्र के लिये अपना सिर हटा लेती हैं।

(शेषांक पृष्ठ १२६ का)

लाख तक कर सकते हैं। यदि नेत्र-समवर्गीयता (eye co-ordination) ठीक नहीं है तो नेत्रोंको किसी विशेष पदार्थ पर फोकस करनेसे आंखोंके दुखनेसे, सिर दर्दका भय है।

कुछ शिक्षकोंका कथन है कि स्कूलोंमें बालक बालिकाओं की असफलताका विशेष कारण है उनके पढ़नेकी कुबुद्धियां। फलतः अमेरिकामें पढ़नेकी रीतिकी खराबी देखने और उसे दूर करनेके लिये तो यन्त्रोंका उपयोग किया गया। दुर्भाग्यसे हमारे भारतवर्षमें शिक्षक तथा शासक दोनों इस ओरसे उदासीन हैं। परीक्षा करने पर विदित हुआ है कि २५ प्रतिशतसे कम छात्र ही ठीक विधिसे पढ़ते हैं। अमेरिकामें इस ओर अब काफी ध्यान दिया जा रहा है और नवीन उपायोंसे पढ़नेवालोंको सहायता दी जा रही है।

दृष्टि-विज्ञानमें उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है और यह मनुष्य का सौभाग्य ही है। एक रासायनिक प्रयोगशाला की गवेषणा तो कम तैयार करनेके कारण उसके लिये हानिकारक हो सकती है; किन्तु इस नेत्र-विज्ञानमें एक-एक पग मनुष्य को दृष्टि देकर 'दूरदर्शी' बनाता है।

अमेरिकाकी एक असभ्य जाति

[लेखक—कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस-सी.]

अमेरिका के मूलनिवासियोंकी संख्या दिन-प्रति-दिन घटती जा रही है। बहुतसे तो अपनी जन्मभूमि की रक्षाके लिये लड़-भिड़ कर मर गये। यद्यपि अमेरिका की सरकार इनको सभ्य बनाने की चेष्टा कर रही है; किन्तु फिर भी ये लोग अधिकांश जंगलों ही में रहते हैं। इनमें भी अनेक दल हैं; किन्तु प्रायः खान-पान रस्म-रिवाज एक ही प्रकार का है। मन्डसन् नामक गांव में इसी प्रकार की एक असभ्य जाति रहती है, जो कि "मेन्डसन् इन्डियन" कहलाते हैं। इनका रहन-सहन बिल्कुल निराले ढंगका है। रहनेके लिये ये लोग भैंसे की खाल का डेरा बनाते हैं। प्रत्येक कुटुम्ब अपना डेरा अलग बनाता है। बीच में कुछ मैदान छोड़ कर सारे डेरे वृत्ताकार डाले जाते हैं। हर डेरेका द्वार मैदानकी तरफ होता है। मैदानमें भैंसे की खोपडी लम्बे बांस पर टांग दी जाती है, जिसमें वे अपनी रक्षा समझते हैं। लाल पीली झण्डियां भी गाड़ी जाती हैं। डेरे के अन्दर हड्डियां, और खोपड़ियां आदि टंगी रहती हैं।

गांव में एक आदमी मुखिया मान लिया जाता है। जो जितना अधिक बहादुर होता है, उसका उतना ही आदर होता है और मुखिया वही हो सकता है, जिसने रणमें अधिक शत्रुओं का नाश किया हो। उसको भेड़ियेकी पदवी दी जाती है, उसके नीचेके मुखियेको रीछकी पदवी प्रदान की जाती है। इसी प्रकार कई छोटे-बड़े सरदार बनाये जाते हैं और उन्हीं की आज्ञानुसार कार्य संचालन होता है। हर व्यक्ति सिर पर चमड़े की पगड़ी, जिसमें कि सीपें, घोंघे आदि लगे रहते हैं, पहनता है। शंख आदि की संख्या शत्रुओं के मारे जानेको प्रकट करता है। जो मनुष्य जितने शत्रुओं को रणमें घायल करता है, वह उतने ही लाल चिन्ह गाल पर लगाता है। सर पर सींग वही लगा सकता है जो कि सबसे अधिक बलवान् होता है।

स्त्रियां पुरुष की दासी समझी जाती हैं। भोजन पकाना, घरका का सब काम सँभालना उनका धर्म है। इनके केश लंबे होते हैं, यहां तक कि चलते समय ज़मीनको छूते रहते हैं। सिर के बालोंको दो भागोंमें बांट देती हैं और मत्थे पर सुन्दरताके साथ लाल चिन्ह बनाती हैं। गालों पर भी सुन्दरताके लिये

लाल चिन्ह बनाती हैं। सबेरे उठते ही स्त्री, पुरुष, लड़के अपने अपने बालोंमें तेलकी मालिश करते हैं। तेल रीछके गुर्दे का बनाया जाता है। ये लोग दिन में दो बार भोजन करते हैं। पहले पुरुष बादमें स्त्रियां भोजन करती हैं। स्त्री पुरुष का एक साथ भोजन करना अनुचित समझा जाता है। बच्चे किसी भी समय भोजन कर सकते हैं। स्त्रियोंके नहानेके लिये अलग तालाब होता है। उसकी ऊँची चारदिवारी होती है। नहाते समय रखवाले धनुष-बाण लेकर दीवार से कुछ दूर बैठते हैं। गर्मीमें स्नान और जल-क्रीड़ा होती है। जाड़ोंमें कभी २ गरम जलसे स्नान होता है। स्त्रियां खेतीका भी काम करती हैं। भैंसे के सींगसे खेत गोड़ा जाता है। अधिकतर मकई बोई जाती है। जब पानी नहीं बरसता तो अनेक तरहके ढंग किये जाते हैं। मैदानमें ग्रामवासियों को एकत्रित करके एकके पश्चात् दूसरा मञ्च पर खड़ा होकर बादलकी ओर तीर मारता है और ईश्वरसे प्रार्थना करता है। इसी प्रकार कई दिन तक होता है और अंत में संयोगवश एक दिन पानी बरसने लगता है। फिर कभी-कभी नहीं भी बरसता।

इन असभ्यों के हथियार धनुष-बाण, भाला और चाकू आदि हैं और प्रत्येक मनुष्य इन सबको अपने पास रखता है। धनुष की लम्बाई प्रायः तीन फुट की होती है और लकड़ी या हड्डीका बना होता है। बाण, पत्थर, सींग अथवा लोहेका बना होता है। ये लोग अच्छे घुड़सवार होते हैं। इनका मुख्य शिकार भैंसोंका होता है जो कि वहां की तराई में अधिकता से पाये जाते हैं। भैंसे विभिन्न रंगके होते हैं और उनकी गर्दन पर लंबे बाल होते हैं। इतनी शीघ्रतासे ये लोग बाण छोड़ते हैं कि वे भैंसे के शरीर को बेध डालते हैं और देखते ही देखते भैंसे का काम तमाम हो जाता है। प्रायः यह लोग भैंसे की सींगदार खाल पहन कर भैंसों के झुंडमें चले जाते हैं और बीचमें पहुँच कर बाण छोड़ने लगते हैं, यदि कलेजे में लगा तो भैंसे शीघ्र ही अन्तिम सांसें गिनने लगता है, नहीं तो खूब लड़ाई होती है। शिकारियों और उनके घोड़ोंको घायल हो जाना पड़ता है, किंतु ये लोग जानकी परवाह नहीं करते और शिकार होने पर खूब नाचते गाते हैं। उसकी खाल खींच कर मांस खाते हैं। सूखे हुए मांसको पीस कर रोटी बनाते हैं। भैंसकी चर्बी उनका मक्खन और घी होता है। भैंसे की जीभ को ये लोग अद्भुत पदार्थ समझते हैं और भोजनमें इसका विशेष स्थान होता है। ये लोग नमक नहीं खाते और भोजन करनेसे पहले—होपने-ची वापा-शी—नामक मंत्र पढ़ कर मांसके एक टुकड़ेको अग्निमें डाल कर अपने इष्टदेव का स्मरण करते हैं। भोजन करते समय बोलना मना है। उसके बाद भैंसे की हड्डी से बना तम्बाकू पीते हैं। मंत्र का ठीक अर्थ मुखिया के सिवा दूसरा कोई नहीं जानता। भोजमें प्रायः वही मंत्रका उच्चारण करता है।

अमेरिका के इन मूलनिवासियों में अन्धविश्वास की मात्रा अधिक है। प्रत्येक व्यक्तिके पास 'मेडिसन' नामक एक झोली होती है। इसमें शंख, सीप और हड्डी आदि जड़ी रहती है। जब बालक १५ वर्षका हो जाता है तो उससे मुखिया पूछते हैं कि तू कैसी झोली चाहता है, तब वह बालक किसी महान् आत्माका नाम लेकर दो तीन दिन तक चिल्लाता है, फिर स्वप्नमें उसे जिस किसी जानवर या पक्षीका रूप दिखाई पड़ता है, उसीको मारकर खालकी झोली बनाई जाती है। अनेक मंत्रोंके साथ उसकी पूजा होती है, फिर यह एक अमूल्य वस्तु हो जाती है और मनुष्य हमेशा अपने पास रखता है। यदि संयोगवश यह खो जावे या लड़ते समय फूट जावे तो फिर नया संस्कार होता है; किंतु नई झोली उसी समय प्रदान की जाती है, जब कि वह लड़ाई में किसी दूसरे दलके मनुष्य को मार डाले और यदि रणमें शत्रुसे झोली छीन ले तो वही उसकी हो जाती है। इस प्राण-रक्षक जादू की झोली की सदैव पूजा होती है और वही उनका ईश्वर होता है।

इन लोगोंके अपने ढंगके कई एक त्यौहार भी होते हैं। एक त्यौहारमें १०-१५ वर्ष तकके लड़के झूठी धनुष-बाणकी लड़ाई लड़ते हैं। उन्हें नंगा करके दो दलोंमें विभाजित कर दिया जाता है और युद्ध आरम्भ हो जाता है, जिसके बाण लग जाता है, वह मैदानसे हटा दिया जाता है। लड़ाई उस समय समाप्त हो जाती हैं जब कि एक सम्पूर्ण दल परास्त हो जाता है। गांवके लोग यह तमाशा देखते रहते हैं और जो दल जीतता है उसको मुखिया पारितोषक प्रदान करता है। गर्मीके महीने इसी प्रकार कट जाते हैं। दूसरे त्यौहारका नाम 'भैंसा-नाच' है। सब लोग भैंसेकी खाल पहन कर एकत्रित होते हैं। कुछ लोग भैंसे मान लिये जाते हैं और कुछ शिकारी। शिकारमें जिसके कलेजेके पास लकड़ीका अतीक्ष्ण बाण लग जाता है, वह मरा समझा जाता है। बाण लगते ही वह गिर पड़ता है।

सालमें इनका एक मुख्य त्यौहार होता है, जिसका नाम भी

मेडिसिन रखा गया है। जिन दो मनुष्यको इसके लिये चुना जाता है, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। वे बांध कर लटका दिये जाते है, फिर उनका शरीर चाकूसे काटते और चमड़ा खींचते हैं, तब वे ईश्वरको पुकारते हैं कि हे सबसे बड़े 'मेडिसिन' हम तुम्हारे नाम पर इतनी कड़ी वेदनायें सह रहे हैं, आप हमारी रक्षा करें। अन्त में उन दोनों की अंगुलियां काट 'मेडिसिन' पर चढ़ा दी जाती हैं। स्त्री-पुरुष सभी ही इस त्यौहारमें शामिल होते हैं, और सब मिल कर नाचते, और गाते हैं और किसी भी त्यौहारमें स्त्रियां नाचने और कूदनेमें पुरुषोंका साथ नहीं देतीं। केवल उनको देख सकती हैं। अग्निमें मांस आदि भी भूना जाता है। यह जलसा कई दिनों तक होता है और मैदान के बीच में तब तक अग्नि जलती रहती है जबतक कि यह त्यौहार समाप्त नहीं हो जाता। त्यौहारके समय उपवास भी करना पड़ता है।

ये लोग इतने अशिक्षित होते हैं कि दिन और वर्ष की गणना करना नहीं जानते। इनके विवाह का ढंग भी निराला ही होता है। लड़के और लड़की का विवाह १२ से १५ वर्षकी अवस्थामें होता है; किंतु लड़का जब लड़ना सीख लेता है, तभी उसका विवाह होता है। पिता लड़की को बेचता है। सुन्दरसे सुंदर लड़की का मूल्य दो घोड़े, भैंस की खाल और मृग चर्म आदि है। लड़केकी तरफसे प्रायः दो गैलन मदिरा भी दी जाती है। लड़के के पिताको खिलाने-पिलानेमें भी व्यय करना पड़ता है। स्त्री-पुरुषके अधीन होती है और बिना उसकी आज्ञाके कुछ नहीं कर सकती। स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं और घरेलू काममें लगी रहती हैं। सरदार लोग कई स्त्रियां रख सकते हैं और लोग भी ऐसा कर सकते हैं; किंतु बहु-विवाह अधिक नहीं है और लोग सदाचारसे रहते हैं।

इनकी अन्त्येष्टि-क्रिया भी विचित्र प्रकारकी होती है। ये लोग न तो मुर्देको गाड़ते हैं और न जलाते हैं। मनुष्यके मरने पर भैंसे की ताजी खालमें शवको लपेट दिया जाता है। शरीर पर खूब तेल लगा देते है और शवके साथ धनुषबाण, भाला और झोली आदि बांध कर ग्रामसे कुछ दूर एक ऊंचे मंच पर सूखने के लिये रख दिया जाता है। मांसके गलने पर उसकी खोपड़ी तोड़ दी जाती है और वह खेमेके पासके मैदानमें रखी जाती है। शरीरकी अन्य हड्डियां गाड़ दी जाती हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष का इसी प्रकार अन्तिम संस्कार होता है। स्त्री अपने पतिके शव के पास नित्य जाती है और विलाप करती है। शवको खानेके लिये प्रतिदिन भोजन दिया जाता है। खोपड़ीके साथ भी इसी प्रकारका व्यवहार होता है। किसीके मरने पर मनुष्य अपने अपने बाल कटा डालते हैं और पतिके मरने पर स्त्री अपने केश कटा डालती है।

यद्यपि यह जाति असभ्य और जंगली है; किंतु वे अपने सिद्धान्तके अनुसार कार्य करते हैं। ईश्वरके उपासक हैं और ज्ञान शक्ति रखते हैं, स्वर्ग नर्कको भी मानते हैं और स्त्रियों बच्चोंसे हार्दिक प्रेम रखते हैं। ये लोग अपनेको पृथ्वीके आदि-मनुष्य समझते हैं। ये लोग चोरी नहीं करते, जेब नहीं काटते, केवल खराबी इतनी है कि एक दल दूसरे का शत्रु होता है जोकि आपसमें खूब लड़ते हैं। इसी कारण इनकी संख्या कम होती जाती है। मदिरा-पान करनेके कारण अनेक स्त्री-पुरुष इसके शिकार हो गये हैं। पुरुषोंके लड़ाईमें मारे जानेके कारण बहु-विवाह भी प्रचलित हो गया है; किंतु व्यभिचारसे ये लोग बहुत दूर रहते हैं। हर्षका विषय है कि वहांकी सरकार इनकी शिक्षाका प्रबंध कर रही है और जंगली बस्तियोंसे निकाल कर वे सभ्य बनाये जा रहे हैं।

—एक अमेरीकन लेख के आधार पर।

सरल विज्ञान

[चुम्बक और विद्युत]

यदि किसी लंबे चुम्बकको धागेसे इस प्रकार लटका दिया जाय कि वह केवल क्षैतिज धरातलमें घूम सके (चित्र १) तो हम देखेंगे कि जब यह स्थिर हो जाता है तो यह उत्तर-दक्षिण दिशामें रहता है। केवल इतना ही नहीं; यदि हम उत्तर-प्रदर्शक

चित्र नं० १

सिरे पर कोई चिह्न लगा दें तो देखेंगे कि अपने स्थानसे हटाकर छोड़ देने पर जब फिर कभी यह चुम्बक स्थिर हो पाता है तो पहली बार उत्तरमें रहने वाला सिरा अब भी उत्तरमें रहता है। चुम्बक के इस गुणका उपयोग कुतुबनुमा बनानेमें किया जाता है। परन्तु तब चुम्बकको लटकाने के बदले उसे नुकीली धुरी पर समतुलित किया जाता है, जिसका सिद्धांत चित्र २ से स्पष्ट
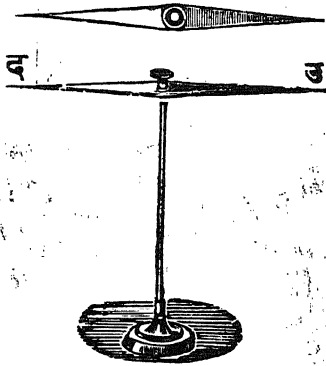
चित्र नं० २

हो जायगा। जहाजी कुतुबनुमा का मुख चित्र ३ में दिखलाया गया है। इसमें स्थिर दिशासूचक-चक्र के ऊपर चुम्बकीय सुई को घूमने देने के बदले, दिशासूचक को घूम सकने वाले चक्रके रूपमें रक्खा जाता है और इसी चक्रके नीचे कई एक चुम्बक समानान्तर दिशाओंमें जड़ दिये जाते हैं, जिनमें से प्रत्येक का उत्तर-प्रदर्शक सिरा एक ही ओर रहता है। इस प्रकार केवल उत्तर ही नहीं, प्रत्येक दिशा का ज्ञान तुरन्त हो जाता है।
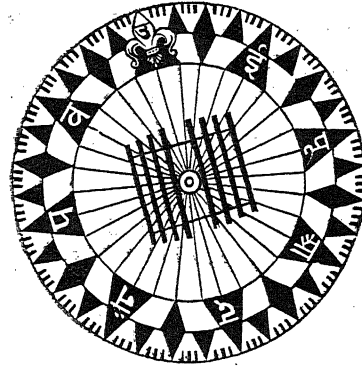
चित्र नं० ३

चुम्बक की सुई को जब क्षैतिज धरातलमें चलने के लिये लाचार किया जाता है तब तो बात दूसरी है, अन्यथा चुम्बक पृथ्वीके चुम्कीय-ध्रुव की दिशामें हो जायगा, जो पृथ्वी के भौगोलिक ध्रुवके पास ही है। चुम्बकीय-ध्रुव की दिशाका सूक्ष्म ज्ञान करने के लिये, चुम्कीय-सुई को उस प्रकार आरोपित करते हैं जैसा (चित्र ४ में) दिखलाया गया है सुई में चुम्बक डालने के पहले उसे पूर्णतया समतुलित कर लेते हैं जिसमें वह किसी
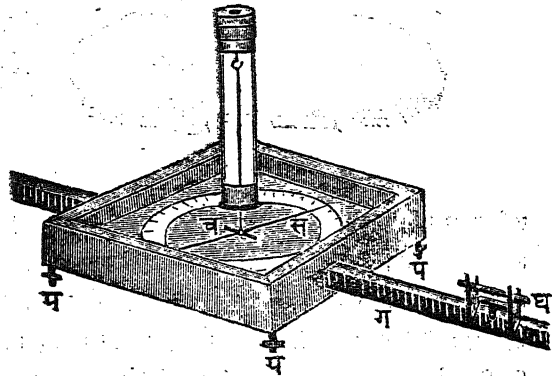
चित्र नं० ४

ओर अधिक भारी न हो। इससे सुई को जिस किसी भी स्थिति में रोक दिया जायगा, उसी स्थितिमें सुई रुकी रहेगी। अब सुई पर कोई शक्तिशाली चुम्बक फेरकर उसमें चुम्बकत्व ला देते हैं। ऐसा करने से सुई बराबर पृथ्वीके चुम्बकीय-ध्रुवकी दिशा में आ जानेकी चेष्टा करेगी और जब कभी उस धरातलको जिसमें सुई घूम सकती है, उत्तर-दक्षिण कर दिया जायगा, तब सुई ठीक पृथ्वीके चुम्बकीय-ध्रुव की दिशामें हो जायगी।

चुम्बकीय सुई क्षैतिज धरातलमें चल सकने पर तभी सच्चे उत्तर-दक्षिण दिशामें रहेगी, जब आस-पास में कहीं दूसरा चुम्बक या विद्युत ले जाने वाला तार न हो। यदि कहीं पासमें दूसरा चुम्बक रहेगा तो सुई की दिशा बदल जायगी। वस्तुतः, चुंबकों का बल नापने के लिये यही रीति है कि अज्ञात बलके चुम्बक को सुई से नपी दूरी पर पूरब या पश्चिमकी ओर रखकर देख लिया जाय कि सुई की दिशा में कितना अन्तर पड़ा (चित्र ५)।
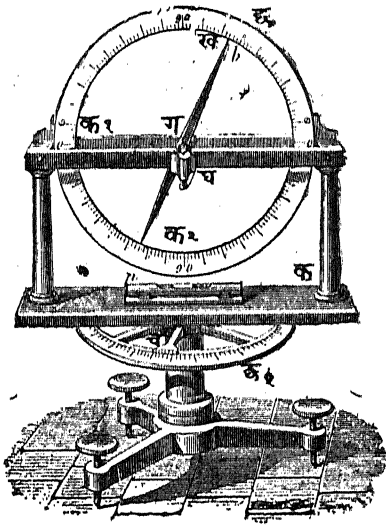
चित्र नं० ५

इसी प्रकार यदि सुई के चारों ओर गोल घेरेके रूपमें रेशम चढ़ा तांबे का तार रख दिया जाय और इस तारमें बिजली की धारा बहने दी जाय, तो चुम्बकीय-सुई एक ओर विचलित हो जायगी। यदि धाराकी दिशा पलट दी जाय तो सुई उल्टी दिशामें विचलित हो जायगी। जब पहले-पहले तार भेजने का आविष्कार किया गया, तो चुम्बकीय सुइयोंके इसी प्रकार विचलित होने का गुण ही काममें लाया गया। यदि सुई एक बार दाहिनी ओर और एक बार बांई ओर विचलित होती थी तो ए (A) अक्षर का संकेत होता था; यदि एक बार दाहिनी ओर और तीन बार बांई ओर तो बी (B) का संकेत होता था। इत्यादि (चित्र ६)।
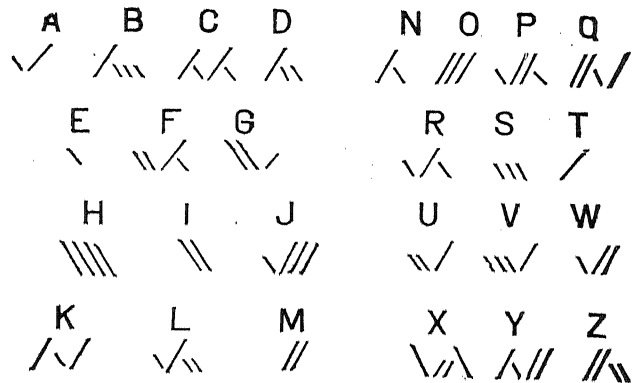
चित्र नं० ६

यदि चुम्बकको स्थिर रक्खा जाय और बिजलीके तारके घेरे (वेष्टन) को चलायमान, तो बिजली चालू करने पर यह वेष्टन ही विचलित हो जाता है। इस गुणको बिजलीकी तेजी नापने के लिए काममें लाया जाता है (चित्र ७)। वेष्टन के विचलन को जानने के लिए उसमें एक छोटा दर्पण जड़ा रहता है जिसपर किसी स्थिर बत्ती से प्रकाश डाला जाता है। जब वेष्टन विचलित होता है तो इस दर्पणसे परावर्तित प्रकाश घटता-बढ़ता है और इस प्रकार सुगमता से वेष्टन का विचलन नापा जा सकता है; परंतु यह रीति प्रयोग-शाला में ही सुविधाजनक प्रतीत होती है। अन्य स्थानोंमें तो सुविधा इसमें
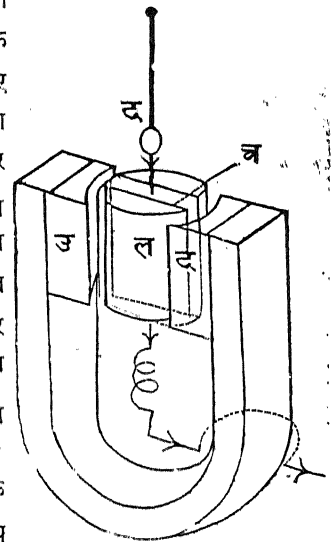
चित्र नं० ७

होती है कि वेष्ठनमें एक लंबी हल्की अचुम्बकीय सुई (पीतल या एल्युमिनियम की) लगा दी जाय और एक सुईकी स्थितिसे वेष्ठनका विचलन जाना जाय (चित्र ८)।

वेष्ठन शून्य चिह्न वाली स्थितिमें तब रहता है जब उसमें बिजली नहीं जाती होती। वेष्ठन को इस स्थिति में रखने के लिए एक कमानी लगी रहती है। वेष्ठनमें कम बिजली जानेसे कम और अधिक जाने से अधिक विचलन होता है और बिजली बन्द कर देने पर वेष्ठन फिर अपने स्थान पर लौट जाता है।

चित्र नं० ८

यदि चुम्बक को पूर्ववत् स्थिर रक्खा जाय और वेष्ठनमें बिजली डालने के बदले इसको हाथ से घुमाया जाय तो वेष्ठन में बिजली उत्पन्न हो जायगी। इसी बातका उपयोग विद्युत-उत्पादक मशीनों के बनानेमें किया जाता है। बाईसिकिलों में बिजली उत्पन्न करने के लिये जो छोटा-सा विद्युत उत्पादक या डायमो लगा रहता है, वह इसी सिद्धांत पर बनाया गया है। एक चुम्बक को यू (U) अक्षर के रूपका बना कर इसके दोनों सिरों के बीच रेशम मढ़े ताँबे के तारके वेष्ठन को नचाते हैं (चित्र ९)। यह वर्णन इस यंत्र की केवल रूप-रेखा है। अधिक विस्तृत वर्णन के लिए इस विषय की पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए।
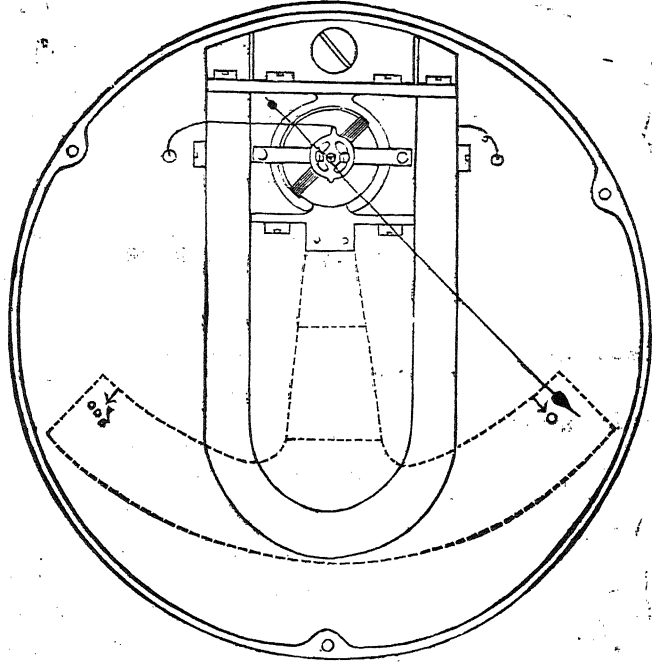
चित्र नं० ९
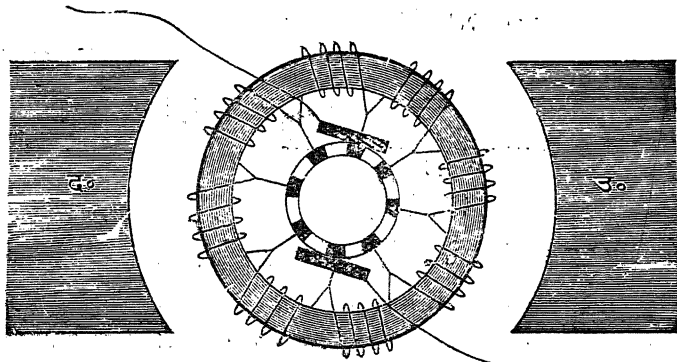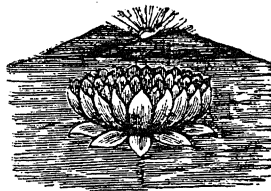
कीलें कैसे बनती हैं ?

तार की बनी कीलों का उपयोग प्रत्येक घरेलू कारीगर और बढ़ई करता है, परन्तु बिरला ही कोई जानता है कि ये कैसे बनती हैं ? इनकी निर्माण विधि अत्यन्त रोचक है, जो इस लेख के पढ़ने से तुरन्त समझ में आ जायगी।

इन दिनों तारकी बनी कीलें मशीनों द्वारा इतनी शीघ्रतासे तैयार होती हैं कि आंख देख नहीं पाती कि मशीनें किस प्रकार काम करती हैं और कीलें वस्तुतः कैसे बनती हैं। इतने वेगसे बनने पर भी आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रत्येक कीलका माथा सच्चा और नोक तीक्ष्ण होती है। बहुत अनुसन्धानके बाद ही ऐसी सच्ची मशीनें बन पाई हैं। एक ही मशीनमें केवल ठप्पोंको बदल देनेसे भिन्न-भिन्न नापकी कीलें बन सकती हैं।

ये कीलें लोहेकी तारसे बनती हैं। तारको बड़े व्यासके काठके बेलनों पर लपेट कर रक्खा जाता है। तारका सिरा दो चक्कोंके बीचमें डाल दिया जाता है। ये चक्के इस प्रकार घुमते हैं कि तारका सिरा एक कीलकी लम्बाई भर आगे बढ़ कर रुक जाता है। कीलके बन जाने पर ये चक्के फिर चलते हैं और एक कीलकी लम्बाई भर तार फिर आगे बढ़ जाता है। वे चक्के चित्र १ में दाहिनी ओर स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे हैं।
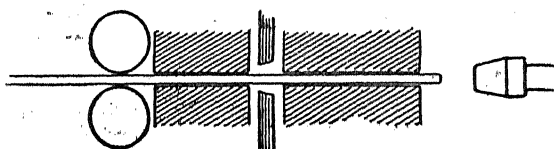
चित्र नं० १

जब चालक चक्के रुकते हैं तो तार इस्पातकी ईंटके एक छेदमें से हो कर जरा-सा बाहर निकला रहता है। अब तारके सिरे पर यन्त्र-संचालित हथौड़ा जोरसे गिरता है जिससे कीलका माथा बन जाता है (चित्र २ देखें; हथौड़ा बांई ओर है) चालक चक्के तारको इतने जोरसे पकड़े रहते हैं कि चोट खाने पर भी तार पीछे नहीं हट पाता। जब इधर माथा बनाने वाला हथौड़ा
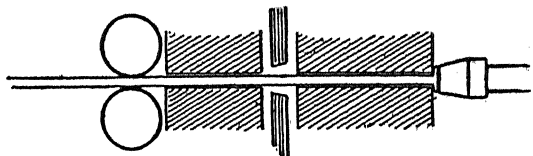
चित्र नं० २

हटता है तब दूसरी ओर ठप्पे आकर इस प्रकार तारको दबाते हैं कि उधर नोक बन जाती है (चित्र ३)।
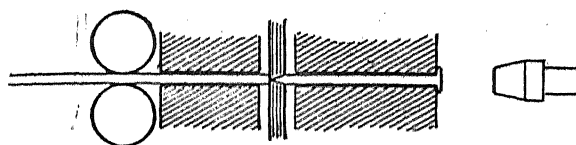
चित्र नं० ३

यदि कील शेष तारसे कट कट कर अभी ही अलग हो जाती तो कील को निकालने में कठिनाई पड़ती। इसलिये नोक खूब नुकीली नहीं होती। कील नोकके बनने पर भी शेष तारमें जुड़ी ही रहती है। अब मशीनमें लगा हुआ एक पलास (गहुआ या सँडसी) कीलके माथेको पकड़ कर खींचता है और साथ ही ऊपर बतलाये गये चालक चक्के तारको आगे ढकेलते हैं। इस प्रकार एक ओरसे खींची जाकर और दूसरी ओरसे ढकेली जाकर कील इस्पातकी ईंटके छेदसे बाहर निकल आती है और तब मशीनमें लगा इस्पातका एक बाहु आकर कीलको तोड़ कर अलग कर देता है और कील नीचे रक्खी टोकरीमें गिर पड़ती है।

अब पहली कीलकी तरह दूसरी कीलके बननेकी बारी आती है। काम बराबर जारी रहता है।

यदि किसी मशीनके कामको समझना हो तो उसे हाथसे धीरे-धीरे चला कर देखना पड़ता है। इंजनसे चलते रहने पर तो केवल यही जान पड़ता है कि कीलोंकी वर्षा हो रही है! इन मशीनोंके बिगड़नेकी कोई सम्भावना नहीं रहती। ये रुकती तभी हैं जब तारमें कहीं गांठ रहती है।

जब मशीन पुरानी हो जाती है तब अवश्य कई प्रकारकी गड़बड़ी हो सकती है, अक्सर ऐसा होता है कि कीलके पूर्णतया बाहर निकलनेके पहले ही इसे अलग करने वाला बाहु चोट मार देता है। ऐसी अवस्थामें कील टेढी हो जाती है। यही कारण है कि कभी-कभी नयी कीलोंमें भी कुछ टेढी कीलें रहती हैं।

(शेष पृष्ठ १३८ पर)

कार्बन

यह नहीं कहा जा सकता कि कब और कैसे मनुष्य को कार्बनका पता चला था; किंतु जबसे रसायन-शास्त्रने उन्नति की है कार्बनका महत्व प्रतिदिन बढ़ता जाता है। एक पूरा रसायन-शास्त्र कार्बनिक-रसायन ही कार्बनके कारण बन गया है।

खाने-पीनेकी सारी चीजोंमें (पानीको छोड़ कर) तथा शरीरके सारे अंगोंमें कार्बनका रहना आवश्यक है। किसी पौधे या प्राणीका कोई भी भाग बिना कार्बनके नहीं बन सकता। वास्तवमें जीवमय प्रकृतिका विशाल-भवन कार्बन की ईंटों पर ही स्थित है।

वह प्रकृति में मुख्यत: तीन रूपमें मिलता है—

(१) हीरा,
(२) ग्रेफाइट
(३) कोयला।

हीरा बिलकुल कांच के समान पारदर्शी होनेपर भी वास्तव में कार्बनका ही एक रूप है। यह बात सबसे पहले ल्वाइजरने मालूम की थी। इसके पश्चात् प्रयोग-शाला में हीरा बनाने का प्रयत्न भी किया गया और इस प्रयत्नमें वैज्ञानिक सफल भी हुए।

आगरे का ताजमहल भी कार्बन की कृपा का फल है।

डा० मेककीने कार्बनकी सहायतासे हीरा बनाया था। उसने एक विशेष प्रकारकी विद्युत्की भट्टी से पिघला हुआ लोहा (जिसमें कार्बन, सिलिकन और फॉसफॉरस था) इस्पातके ट्यूबों में भर दिया। इसके बाद इन ट्यूबोंको पिघले हुए सीसेमें डाल कर धीरे-धीरे ठंडा किया गया। इस क्रिया से इस्पात के भीतर बहुत अधिक दबाव उत्पन्न हो गया। उस दबावके कारण कार्बन का हीरा बन गया। हीरे को निकालने के लिये इन ट्यूबों को तेजाब में डाल दिया गया। तेजाब से लोहा तो घुल गया और हीरे अलग हो गये।

ये हीरे वैसे तो बहुत अच्छे थे; किंतु छोटे बहुत थे। इन के बनानेमें खर्चा भी इतना अधिक बैठता है कि खानसे निकले हीरे इनसे सस्ते बैठते हैं। आशा है कि कोई ऐसी विधि भी निकलेगी जिससे जितना बड़ा चाहो हीरेका टुकड़ा बना सकोगे।

हमारे शरीरमें कार्य करनेकी शक्ति खानेके कार्बनके जलनेसे उत्पन्न होती है। हमारी मांस-पेशियों में जो बल आता है, वह शरीरके तन्तुओंमें इसी कार्बनके जलनेसे मिलता है। तन्तुओं में इस क्रियासे कार्बन-डाइ-आक्साइड और जल बनता रहता है। जिस प्रकार रेलका इंजिन कोयला (कार्बनका एक रूप) जलाता है और उसकी शक्तिसे कार्य करता है, उसी प्रकार हमारा शरीर भी खानेका कार्बन जला कर जीवनकी गाड़ीको आखिरी मंजिल (कब्र) तक चलाये जाता है। हमारे प्रत्येक प्रश्वासके साथ

पानीकी भाप और कार्बन-डाइ-आक्साइड निकलती है। यही दोनों चीजें रेलका इंजिन निकालता चलता है। एक कार्बन वह है जो कोयले के रूपमें रेल में झोंका जाता हैं, एक वह है जो हीरेके रूपमें सम्राटोंके मुकुटमें रहता है। अन्य तत्वोंसे मिल कर कार्बन संगमरमर बनाता है जिससे ताजमहल बना है।

आदमीके लाभके लिये पेड़ इसके विपरीत कार्य करते रहते हैं। वे वायुमण्डलसे कार्बन-डाइ-आक्साइड ले लेते हैं और किसी अज्ञात रासायनिक विधिसे कार्बन और आक्सीजनको अलग कर देते हैं। कार्बनको अपने जीवनके लिये रख छोड़ते हैं और ऑक्सीजनको वायुमण्डल में छोड़ देते हैं। पेड़ फिर कार्बनको हाइड्रोजनसे मिला कर हाइड्रो-कार्बन बनाते हैं। हाइड्रोजन को पेड़ अपने छोटे-छोटे छेदों से मनुष्यों के समान वायुमण्डल से सांस कीतरह खींच लेते हैं।

संगमरमर जिसका रंग कोयले के बिलकुल विरुद्ध होता है, वास्तव में कार्बन का यौगिक है। प्रयोगशाला में कार्बन-डाइ-आक्साइड संगमरमर के छोटे-छोटे टुकड़ों पर तनुकृत (dilute) हाइड्रोक्लोरिकएसिड डाल कर बनाई जाती है। वास्तव में आगरे का सुन्दर ताजमहल भी इसी कार्बन की कृपाका फल है। यदि कभी तनुकृत हाइड्रोक्लोरिक-एसिडका धीरे-धीरे मेंह पड़ने लगे तो यह सारा ताजमहल कार्बन-डाइ-आक्साइड बन कर वायु मण्डलमें वाष्पीभूत हो जायगा। उस समय ताजमहलके स्थान पर कैलशियम क्लोराइडका थोड़ा-सा ढेर रह जायगा, जो बरसात की जमनामें घुल कर सदाके लिये समुद्रमें पहुंच जायगा।

(पृष्ठ १३६ का शेषांक)

इन मशीनोंसे एक मिनटमें २०० से ३०० तक कीलें बनती हैं। कीलोंको मोटे कागजके बक्सोंमें बन्द किया जाता है। ये बक्स चलते हुए पट्टों पर रक्खे रहते हैं। पैक करने वाले इन बक्सों में चटपट अन्दाज से कील छोड़ते चले जाते हैं। पट्टाके चलते रहने के कारण जब ये बक्स एक किनारे पहुंचते हैं तो वे तर जूके पलड़े पर उतरते हैं। वहां एक व्यक्ति आवश्यक संख्यामें कीलें डालकर तौल ठीक कर देता है। इसके बाद बक्स चलकर अधिक सूक्ष्म तौलने वाले तराजू पर जाता है। वहां केवल एक-दो ही कील डालनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह अन्तिम तराजू इतना सच्चा रहता है कि प्रत्येक वक्समें कीलोंकी गिनती बिलकुल ठीक रहती है। सैकड़ों वक्सों की जांचकी जाय तो शायद ही किसी एकमें एक कील कम या ज्यादा मिले।

नीम (चिकित्सोपयोग)

[लेखक—श्री रमेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

[निम्ब त्वक्, पत्र और फल हिन्दू-चिकित्सा में बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त हो रहे हैं और संस्कृत के सुश्रुत, चरक आदि प्राचीनतम चिकित्सा-ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।]

व्रणों और त्वक् रोगों पर वहिःप्रयोग के लिये नीम के पत्ते, पुल्टिस, मरहम और लेप भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयुक्त होते हैं। पत्तों को उबलते जलमें डाल बनाया फाण्ट, पत्रकल्क या पत्तों को शहदके साथ मिलाकर बनाया लेप दूषित फुन्सियों, अस्वास्थ्यकर ग्रंथिक सोजिशों फोड़े और व्रणों पर लगानेसे कृमिहरका कार्य करता है और व्रणोंकी सफाई करता है (क)। कैयदेव इसे श्रेष्ठ कृमिनाशक समझता है गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से सम्बन्धित श्रद्धानन्द सेवाश्रम अस्पताल में सांसर्गिक फिरंग-व्रणों में पारदके सूचिवेधों के साथ व्रणों को नीमके ताजे पत्तोंके तीव्र कषायसे धोने के अतिरिक्त, बिना किसी प्रकारका दूसरा उपचार किये, मैंने बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त किये हैं। शीघ्र ही व्रणोंसे स्राव निकलना बन्द हो गया और लगभग दो सप्ताह में व्रण बिलकुल ठीक हो गए।

पत्तों का कषाय हलका कृमिहर और रोपण घोल है। नीम के पत्ते, घी, शहद, दारुहल्दी तथा मुलहठीके मिश्रित कल्क को गॉजमें लगाकर व्रणोंमें रोपणके लिये लगाया जाता है। (ख) फोड़ों को नीम के जल या कषाय से प्रतिदिन धोना चाहिये और फिर इसके पत्तेसे व्रणको ढक देनेका भी प्रचलित रिवाज है। पत्तों के कषाय से घावों को धोने, भ्रूणोत्पत्ति के पश्चात् चिकित्सामें योनिको पिचकारी द्वारा धोने आदिमें निर्बल कार्बोलिकाम्लके समान लाभकारी है। दुष्ट व्रणों, शोफयुक्त ग्रन्थियों, रगड़ और मचकोड़ पर इसके कषायका सेक करनेसे वेदना शांत होती है। नीम के पत्ते, बच, हींग, सैंधानमक और सरसों का धूपन व्रणकी रूक्षता और कण्डूको दूर करता है, वेदना शान्त

(क) निम्ब पत्राणि संपिष्य मधुना व्रण शोधनम्। हारीत, चि० ३५।

(ख) निम्बपत्र घृतक्षौद्रदार्वीमधुक संयुता।
वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद् रोपयेद् ।
भैषज्यरत्नावली व्रणशोथाधिकार, श्लोक ४०

करता है और व्रणके कृमियोंको मारता है। (क)

शीतलामें पत्तोंके कल्क का वहिः प्रयोग किया जाता है। चेचक या cow pox में जब दाने फटकर व्रण बनने लगते हैं तब नीमके ताजे पत्तोंको पीसकर चौबीस घण्टेमें दो या तीन बार लगानेसे बहुत आराम होता है। हलकी और सामान्य सब अवस्थाओंमें यह लाभप्रद होता है, परन्तु मसूरिकाके कुछ तीव्र रूपोंमें यह सर्वथा अनुपयोगी सिद्ध हुआ है मसूरिका रोगीके विस्तर पर इसके पत्ते बिछा दिये जाते हैं और इसी के पत्तों के पंखे से उसे हवाकी जाती है। नीमकी छाल, पित्त पापड़ा, पाठा, पटोल-पत्र, कुटकी, बांसेकी छाल, दुरालभा, आंवला, श्वेत चन्दन और लाल चन्दन के क्वाथ में खाण्ड डालकर पीने से त्रिदोषज मसूरिका ज्वर तथा विसर्प नष्ट होते हैं। मसूरिका बाहर निकलकर फिर अन्तर्लीन हो गई हो तो इस क्वाथ के देने से फिर बाहर निकल आती है। (ख) नीमके बीज, बहेड़े के बीज तथा हल्दी दो-दो माशे एकत्र कर अच्छी प्रकार पीसकर ठण्डे जल के साथ पीने से स्फोट और मसूरिका नहीं होती। (ग)

तिल तेलके साथ मिला कर बनाई पत्तोंकी पुल्टिस अस्वस्थ व्रणों के लिये बहुत लाभप्रद है। वेदनायुक्त और दूषित व्रणों-विशेष कर लम्बे समय तक चलने वाले व्रणों-में नीमपत्र पुल्टिस उत्तेजक रूपमें लाभकारी होती है। इसका तय्यार करना सुगम है। ताजे पत्तों को पर्याप्त परिमाणमें ले कर गरम जलके साथ पीस लें। इसे कपड़े पर फैला कर व्रणयुक्त पृष्ठ पर लगायें। कभी-कभी इसमें वेदना और क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इससे बचनेके लिये इसमें समान भाग चावलोंका आटा मिलाया जा सकता है। घावमें कीड़े हों तो उनको मारनेके लिए पत्तोंके कल्कमें थोड़ी हींग डाल कर बांधना चाहिये। (क)

आंख दुखनी आने पर नीम के हरे पत्ते आंखों के सामने लटका दिये जाते हैं, जिससे सूर्यकी प्रखर किरणों से आंखोंमें चौंध न लगे। नेत्र रोगोंमें अन्य द्रव्योंके साथ आश्च्योतनमें नीम प्रयोगमें आता है। बहुतसे अञ्जनों में इसके पत्ते और गोंद डाले जाते हैं। (ख) नीमकी ताड़ी से भावित या नीम में गाड़ कर रखे हुए सुरमेमें विशेष गुणोदय हो जाता है। इसे बनाने की विधि इस प्रकार है—नीमकी एक मोटी जड़में खोल बना कर उसमें सुरमेकी डलियां रख दें और नीमकी लकड़ी या छाल से ही खोलके मुखको बन्द कर दें। दो मास तक इसी तरह रखे रहनेके बाद निकाल कर बारीक पीस लें और आंजनेके काम लाएं। इस प्रकार बनाये सुरमेमें, कहते हैं, ठण्डी तासीर विशेष आ जाती है और पैत्तिक नेत्र रोगोंमें यह खास लाभ करता है।

पत्तोंका कषाय कर्णस्रावमें कानको धोनेमें काम आता है। पत्र-कल्कको सरसों के तेल में जलीय भाग उड़ने तक पका कर बनाया तेल कर्णशूलहर और पूतिकर्णनाशक होता है। इसकी पांच दस बूंद कानमें डालनेसे शूल तथा स्राव बन्द हो जाते हैं। पत्र क्वाथसे कानको स्वेद देना लाभकारी है। पैत्तिक शिरः शूल में कल्क माथे पर रखा जाता है।

चिरायता और कुटकीके साथ मिला कर बनाया कषाय या फाण्ट ज्वरकी अवस्थाओंमें अमूल्य गुणकारी है। नीम त्वक् के तिक्त, बल्य ग्राही और ज्वरवेगहर गुणों को यूरोपियन लेखकों

(क) निम्बपत्र वचाहिंगु सर्पिर्लवण सर्षपैः।
धूपनं स्याद् व्रणे सौक्ष्मक्रिमि कण्डु रुजापहम्॥
भैषज्य रत्नावली व्रणशोथाधिकार, श्लोक ४३।

(ख) निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटु रोहिणीम्।
वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम्॥
एव निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करयान्वितः।
हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वर वीसर्प सम्भवाम्॥
उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्त बाह्यतो नयेत्।
भैषज्य रत्नावली, मसूरिकाधिकार श्लोक ३५, ३६॥

(ग) ये शीतलेन सलिलेन विपिस्य सम्यङ्।
निम्बाक्षबीज सहितां रजनीं पिबन्ति।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे।
स्फोटस्तु वा जगति शीतलिका विकाराः॥
भैषज्यरत्नावली, मसूरिकाधिकार, श्लोक ३२॥

(क) लेपो हिंगु निम्ब कृतोऽथवा। भावप्रकाश।

(ख) १. अञ्जनमद्मुपरोधे कर्तव्य वस्तमूत्रपिष्टैस्तु।
दारुण्योषहरिद्राकरवीरकरञ्ज निम्बसुरसैस्तथा॥
चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय २३, श्लोक ६८।

२. ....
..................निम्ब पत्र निर्यासाः॥
....
चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय २३ श्लोक ७८।

ने भी स्वीकार किया है। सतत ज्वरमें यह सिन्कोना और संखिया के समान प्रभावकारी है। मलेरिया ज्वरों में इसकी परीक्षा की गई है और यह मालूम हुआ है कि मलेरिया नाशक गुण इसमें निश्चित रूपसे विद्यमान् हैं। परन्तु क्वुनाइन की अपेक्षा कहीं कम हैं। शुष्क छाल चूर्णित अवस्थामें दिनमें तीन-चार बार एक ड्रामकी मात्रामें दी जा सकती है। इसको लेनेकी एक और विधि है—डेढ़ पाइन्ट जल में छाल को यवकुट कर के पन्द्रह मिनिट तक उबाल गरम-गरम छान लिया जाता है। ठण्डा होने पर दो से तीन औंसकी मात्रामें दिया जाता है। यह तथा चूर्णित त्वक् और द्रवीय सत्व भी जूड़ी और सतत ज्वरों में उत्तम औषधि है। इन अवस्थाओंमें वेग आने की अपेक्षासे पूर्व प्रति दो घंटे पीछे देनी चाहिए। ज्वरों की निर्बलता, सामान्यतः दौर्बल्य और क्षुधा नाशमें उपर्युक्त मात्राओंसे कुछ कम मात्राओं में देना बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इसमें थोड़ी पिसी हुई लौंग या दारचीनी मिला देनेसे इसका प्रभाव बढ़ जाता है और यह अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। ग्रीष्म ऋतुमें कषायके शीघ्र खराब हो जाने के कारण यह आवश्यकतानुसार ताजा बनाया जाना चाहिए। ज्वरमें प्यास, वमन और जी मचलाने को दूर करनेके लिये छालका उपयोग किया जाता है। नीमके पत्तोंको जलके साथ मथनेसे उत्पन्न होने वाले फेनमें मधु डाल कर दाह ज्वरमें पिलानेसे वमन रुक कर दाह शान्त होती है। (क) वल्कल क्वाथमें थोड़ी-सी काली मिरच और चिरायता मिला दिया जाय तो ज्वरोंमें, प्रयुक्त होने वाली यह एक प्रसिद्ध दवा है। छालका मद्यासव (टिंक्चर) भी मलेरियामें लाभ करता है।

पत्र कषाय वृद्ध यकृतसे पित्तको निकालता है, नीमके पत्तों के रसमें मधु डालकर कामलामें रोज सुबह पीना चाहिए। (ख) अधिक मात्रा में कषाय वामक है। कफज तृषा में हल्का गरम करके पिलाया जाता है जिससे वमन होकर तृषा शान्त होती है। (क) नीमके पत्तोंका पाण्डु रोग में प्रयोग होता है। (ख) पाण्डु रोगका कारण मट्टी खाना हो तो नीमके पत्तोंके रसकी मट्टीमें भावना दे कर रोगीको दें, जिससे कड़वा होनेसे उसे मट्टी खानेमें द्वेष हो और मट्टी खानेकी आदत छूट जाय। (ग)

पत्तोंका स्वरस दुष्ट रक्त, रक्तार्श, कुष्ठादिमें लाभकारी है। रक्तपित्तमें नीमके पत्तेका शाक बना कर खिलाना चाहिए। (घ) पटोल और नीमपत्तों के कषायमें शहद डालकर पिलानेसे वातरक्तमें दोषोंका पाचन और शमन होता है। (ङ) पत्तोंको कांजी में पीस कर कपड़े पर फैला कर वातरक्तमें बाह्य लेप भी किया जाता है।

अर्शमें नीमसे परिषेचन करनेसे लाभ होता है। (च) मीठे तेलके साथ कृमियोंके लिए दिया जाता है। इसके लिये नीमके पत्तोंके रसमें छोटी मक्खियोंका शहद मिला कर पिलाया जा सकता है। (छ)

फोड़े, पामा, भगन्दर, शीतपित्त आदि पुरातन त्वग्रोगोंमें हरड़के साथ नीम दिया जाता है। ताजे मृदु नवीन पत्ते और

(क) मधुफाणित युक्तेन निम्ब पत्राम्भसापि वा।
दाह ज्वरार्तं मतिमान् वामयेत् क्षिप्रमेव च॥
सुश्रुत उत्तर तन्त्र, अध्याय ३९।

(ख) १. ....निम्बस्य वा रसम्॥
शीतं मधु युतं प्रातःकामलार्तः पिबेन्नरम्॥
चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय श्लोक ६२-६३।
२. ....निम्बस्य वा रसः।

(क) प्रातर्माक्षिक संयुक्तः शीलितः कामलाम्॥ चक्रदत्त।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तस्मिन निम्ब प्रसवोदकेन।
—सुश्रुत, उत्तर तन्त्र, अध्याय ४८।

(ख) ... :................निम्ब पत्रेण वा।
यथा दोषं प्रकुर्वीत भैषज्यं पाण्डुरोगिणाम्॥
सुश्रुत चि० २०-११८।

(ग) मृद्भक्षणादातुरस्य लौल्यादविनिवर्तिन॥
द्वेषार्थं भावितां कामं दद्यात् दोष नाशनैः।
......................निम्ब पत्रेण॥
चरक चिकित्सास्थान, अध्याय ७६, श्लोक १२०-१२१।

(घ) ....निम्ब ....
शाकार्थश्शाक सात्म्यानां ...... हिता ......
भावप्रकाश।

(ङ) पटोल निम्ब पत्राणि क्वथित्वा मधु संयुतम्।
पाचनं वातरक्तानां तथा च शामनानि च॥
हारीत चि० २५।

(च) परिषेचन भिद्ध्याद् वृष ककुभ यवास निम्बाश्च।
सुश्रुत चिकित्सा स्थान, अध्याय ६,-२१४।

(छ) निम्ब पत्र समुद्भूतं रसं क्षौद्र युतं पिबेत्॥ भावप्रकाश।

मुलैठी चूर्णकी बनाई पांच ग्रेनकी गोलियां प्रतिदिन देनेसे शीतलाके रोगियोंमें लाभप्रद पाई जाती है। एक तोला निम्बपत्र, कपूर और हींग प्रत्येक दो ग्रेन सोने से पूर्व तीन ड्राम खजूर के साथ लिया जाय तो छूत के रोगों के लिये रोधक का काम करता है। इसी प्रयोजनके लिये २१ पत्ते डाल कर गौ घृतमें बनाई रोटियां गौघृत और मूंगकी दाल के साथ २१ दिन तक खाई जाती है। इस कालमें नमक नहीं लेना चाहिए।

(क) पतोंको प्रतिदिन खाना सर्प-विष रोधक समझा जाता है। सर्प-दंष्ट्र रोगियोंका निदान करने में इसका उपयोग किया जाता है। सर्प-विषाक्त व्यक्तिको इसके पत्ते खिलाये जांय तो उसे कड़वे नहीं अनुभव होते। मकड़ीके विषमें नीम और सारिवाके रसमें शहद डाल कर पिलाया जाता है (क) सामान्यतया विषके प्रतिकारमें नीमकी निबौलियां पीस कर गरम जलके साथ पिलानेसे जल्दी ही विष उतर जाता है। विष निवारणके लिए नीमका प्रयोग बहुत होता है। (ख)

एक ड्राम निम्बत्वक् और पिप्पली दो ड्रामका बनाया कषाय आमवात, कटिशूल आदिमें प्रयुक्त होता है। शोफ और उरुस्तम्भके लिए नीमके पत्तोंका शाक उपयोगी होता है।

नीम और बबूलकी छालका बनाया समान भागमें कषाय श्वेतप्रदरमें लाभकारी है। कफजरक्त प्रदरमें नीमकी छाल और गिलोयको पीस कर पीपल के साथ पीना चाहिए। (ग) योनि रोगोंमें दुर्गंधको हटाने और योनिके स्राव सम्बन्धी रोगोंको दूर करने के लिए नीम के शीत कषाय या क्वाथसे योनि को दिनमें दो-तीन बार धोना चाहिए और नीमकी छालका धुआं देना चाहिए। (क) कहते हैं कि नीमकी कोमल जड़ को गर्भिणी की कमर में बांधने से प्रसव कालीन कष्ट कम होता है और सुख प्रसव होता है। (ख)।

मूत्राघात में पत्तोंका प्रयोग होता है। सुरामेह में नीमकी जड़का कषाय पिलाया जाता है। (ग)

शिरोविरेचनके लिए फूलोंका प्रयोग किया जाता है (च० चि० ८-१७४)। सुश्रुतमें ऊर्ध्वभागहर संशोधन द्रव्योंमें नीम का परिगणन किया है। शोधन द्रव्योंमें इसका उल्लेख है। गुडूच्यादि, आरग्वधादि, लाक्षादि गणों में इसका प्रयोग है। पुष्प फाण्ट निर्बलता जन्य अजीर्ण और सामान्य दौर्बल्यमें दिया जाता है। फाण्टका यकृत् पर बहुत स्पष्ट प्रभाव होता है। इसके देने से मल पीला और पैत्तिक हो जाता है। सुश्रुत फूल को कफपित्तहर और कण्डुघ्न समझता है। खाज दूर करने वाली दस औषधियोंमें चरकने नीमका उल्लेख किया है। नीमके पत्ते और आमलेको घीके साथ देर तक सेवन किया जाय तो फोड़े शीतपित्त (आर्टिकेरिया) त्वचा पर चकत्ते पड़ जाना आदि विभिन्न त्वग्रोगोंमें और अम्लपित्तमें लाभ होता है। (घ) सिरमें गंज हो और बाल झड़ते हों तो जितेन्द्रिय रहता हुआ पुरुष एक मास तक नीमके तेलका नस्य ले और पथ्यमें दूध ले। (ङ)

वृक्षकी कोमल पतली शाखाएं दन्त-व्रशके रूपमें काममें लाई जाती हैं। इसकी प्रतिदिन दातुन करनेसे मुख और श्वास साफ और दुर्गंध रहित होता है। इसमें एक साबुन जैसा पदार्थ

(क) सनिम्ब सरिवा क्षौद्रं पानं लूता विषापहम्।
चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय २३, श्लोक ५०।

(ख) निम्बपत्रं गृहाद्धूमं-फाणितं वृहतीफलम्।
गोपित्तयुक्तमादिः परमं मृतसंजीवनः॥
अष्टाङ्ग संग्रह, उत्तर तन्त्र, अध्याय ४०, श्लोक ५०।
विष नाशक अमृत घृतमें इसका पाठ है। देखिये—चरक, चिकित्सास्थान; अध्याय २३, श्लोक २४१।

(ग) मद्यैर्निम्ब गुडूच्यौ तु कफजेऽसृग्दरे पिबेत्॥
चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ३० श्लोक ९७।

(क) प्रक्षालितन्तु बाहुशः पिचुमन्दतोयैः।
निम्बत्वचा तदनु निर्मित धूपकार्यम्।
स्त्रीणां नितम्ब कुहरं परिमुक्त गन्धं
पैच्छिल्य दोष रहितं च भवेत् प्रगाढ़म्॥ शोढल

(ख) कट्यां वद्धं योषितां सत्प्रसूतिम्।
कुर्यान्मूलं निम्ववृक्षोद्भवं वा॥ राजमार्तण्ड।

(ग) सुरामेहिनं निम्य कषायाम्।
सुश्रुत, चिकित्सा स्थान, अध्याय ११।

(घ) निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीं विमिश्रान्यथवोपयुज्यात्।
विस्फोट कोढ क्षय शीत पित्त कट्वम्लपित्तं सहसा च हन्यात्॥
चक्रदत्त।

(ङ) मासम्बा निम्बजं तैलं क्षीतभुक् नावयेधतिः॥
वाग्भट्ट, ३०२४।

होता है, जिससे दातुन करते हुए मुखमें झाग पैदा होती है। यही दांतोंकी सफाईका कारण है। कृमि-नाशक गुण होनेसे दातुनका दैनिक प्रयोग दांतोंमें कीड़े लगनेसे बचाता है। इसके व्यवहारके प्रारम्भमें जी मचलाना, वमनेच्छा आदि लक्षण प्रकट होते हैं। थोड़ी सी सावधानीसे इससे बचा जा सकता है। दातुनको देर तक मुखमें नहीं रखना चाहिए और बादमें प्रचुर परिणाममें जलसे मुखको अच्छी तरह धो डालना चाहिए। उपर्युक्त अरुचिकर लक्षणोंसे बचनेके लिये यह भी आवश्यक है कि प्रारम्भमें सप्ताहमें एक बार नीमकी दातुनका व्यवहार करना चाहिए। धीरे-धीरे यह अन्तर कम करते रहनेसे प्रति दिनका अभ्यास पड़ जाता है। दन्त-रोगों में नीम की जड़के कषाय से गरारे भी किये जाते हैं। (क)

नीमका गोंद लेपक है और थोड़ा वृष्य प्रभाव भी रखता है। बबूल निर्यासकी तरह औषधियोंके लिये यह अच्छी तरह योगवाही है।

फल विरेचक और लेपक समझे जाते हैं। आन्त्र कृमि, मूत्र सम्बन्धी रोगों में, अर्श, कुष्ट आदि की चिकित्सा में लाभकारी हैं। फलकी गिरी एक ड्राम और मूल दो ड्रामकी गोली बना कर प्रतिदिन लगातार सात दिन तक बवासीरको अच्छा करनेके लिये दी जाती है। नीम का घी के साथ प्रयोग गुदभ्रंश, दाह, क्लेद और गुदज कृमियोंको नष्ट करता है। (क)

सूखे बीजोंमें चिकित्सोपयोगी गुण तैल जैसे ही होते हैं। त्वचा और व्रण पर लगाये जा सकने के लिये इन्हें पीसने और जल या किसी अन्य द्रव्यमें मिलानेकी आवश्यकता होती है। इसलिये इनका प्रयोग प्रायः असुविधाकर होता है और ये वहीं उपयोगमें लाये जाते हैं जहां तेल सुलभ न हो।

नीमका तेल कुछ पुरातन प्रकारके त्वग्रोगोंमें और व्रणों पर उत्तेजक और रोपक कार्यके लिये उपयोगी दवा है। दुष्ट और जिनमें मांस गल रहा है, ऐसे (स्लफिंग) व्रणों पर कार्बोलिक तेलके समान लगाने से यह कुछ हद तक तन्तुनाश की प्रक्रिया (sloughing process) को रोकता है, कीड़ोंकी उत्पत्ति को रोकता है। यदि पहलेसे ही उत्पन्न हों, तो उन्हें हटाता है। दद्रु, कण्डु, पामा, कुष्ठ, विसर्प और शीतपित्त आदि में भी यह लाभकारी है। कुत्तों की खुजली पर इसे दस मिनट या कुछ अधिक समय तक खूब अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। चावल मोगरा के समान कुछ अन्य तीव्र दवाओं के साथ तेल अच्छी तरह मिला कर दिया जा सकता है।

तेलके मार्गोसिक एसिडसे निकलने वाले मार्गोसेट्सके पराश्रयीनाशक गुणोंको ध्यानमें रखते हुए यह कण्डु, पामा के कई रोगियों पर अज़माया गया। परिणामों को देख कर कहा जा सकता है कि औषधि इन रोगोंमें लाभकारी प्रभाव रखती है। औषधिमें पराश्रयीहर गुणों की सम्भावनासे चटर्जी ने उपदंशकी चिकित्सामें मार्गोसेट्सकी परीक्षा की। फिरंगकी प्रारम्भिक, द्वितीय और अन्तिम अवस्थामें सोडियम मार्गोसेट्सका घोल ०·०१ ग्रामसे ०·३२५ ग्रामकी विभिन्न मात्राओंमें त्वक्, मांस शिरासूचिवेध द्वारा दिया गया। प्रारम्भिक और द्वितीय अवस्थाओंमें प्रारम्भिक क्षत और द्वितीय अवस्थाके चिन्ह अचिकित्सित रोगियोंकी अपेक्षा इसके प्रभावसे बहुत अधिक शीघ्रतासे लुप्त हो गये। अधिक देरकी द्वितीय और अन्तिम अवस्थामें त्वचाके क्षत, (gummata) आदि शीघ्र ही अच्छे हो गये। तथापि परिणाम इतने अच्छे नहीं थे जितने कि संखिया, पारद बिस्मिथ और नैलिदके देने से प्राप्त होते हैं। कुष्ठमें मार्गोसेट्स अकेले या चावल मोगरा तेल या (gujlun balsum) के साथ मिला कर प्रयोग किया जा सकता है। कुष्ट और फिरंगमें तैल की अपेक्षा मार्गोसेट्स के सूचिवेध और अम्लका स्थानिक उपयोग अधिक लाभकारी पाया जाता है। कीट नाशक होनेसे जूएं मारनेके काम आता है। रसायन और ज्वरहर होने से प्रति दिन एक या दो बार पांचसे दस बूंदकी मात्रामें पुरातन मलेरिया, फिरंग, कुष्ट आदिमें दिया जाता है। उदर कृमिहर रूपमें आधे से एक ड्राम की मात्राओं में दिया जाता है। नीम तेल चालीस भाग, हरिताल, मनःशिला, मिलावा, इलायची, कुमारीमूल, चन्दन काष्ठ, तगर और चमेली प्रत्येक एक भाग, जल सौ भाग से यथा विधि तेल सिद्ध करें। यह तेल पूयस्रावी क्षयी ग्रन्थियों पर लगाया जाता है।

प्राचीन संस्कृत लेखकोंने कुष्ठमें नीमका स्वतन्त्र रूपसे बहुत प्रयोग किया है। (क) कुष्ठकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें नीमके पञ्चाङ्गका कषाय पिलाया जाता था।

(क) क्वाथश्च निम्ब मूलस्य दन्तरोग निवारणः। हारीत।

(क) निम्ब घृताभ्यां.........दाहे क्लेदे गुदभ्रंशे गुदजाः प्रतिसारणीया स्युः।

सुश्रुत, चिकित्सास्थान, अध्याय ९, २२१।

कुष्ठ नाशक छः कषायों में चरकने निम्ब और पटोल का क्राथ देने के लिये उल्लेख किया है। मुख द्वारा दिये जाने के अलावा यह कषाय वाह्य प्रयोग में भी काम आता था। रोगी को इससे स्नान करवाया जाता था। (ख) शोढल लिखता है कि नीमके सौ पत्तों को पीस कर छः दिन तक प्रति दिन लिया जाय तो पुराने और खराब कुष्ठ भी अच्छे हो जाते हैं। (ग) इसी लेखकके मत में हरड़के साथ एक मास तक लगातार नीम लिया जाय तो सब प्रकार के कुष्ठ दूर हो जाते हैं। (घ) यह नीम को रसायन भी समझता है। इस प्रयोजन के लिये नीमके तेल को एक मास तक नस्य रूपमें देता है और इस काल में गौके दूधका सेवन करना चाहिये। (ङ) चरकने कुष्ठ चिकित्सा में नीमका अन्तः (च) तथा वाह्य प्रयोग में विस्तृत उपयोग किया है। नीम से युक्त अन्न और घी को वह कुष्ठ में सेवन कराता है। (छ) शरीरके ऊपरके भागमें स्थित कुष्ठोंमें हृदयदेश में दोष का उत्क्लेद हो तो नीम के रस में मदनफल, इन्द्रजौ, मुलहठी और पटोलपत्र को डाल कर वमनार्थ पिलाया जाता है। (क) रक्तपित्त प्रधान कुष्ठों में नीमकी छाल से अधिक घृत लाभकारी होता है। (ख) स्पर्श ज्ञानसे सर्वथा रहित कुष्ठोंमें नीम के पत्तों को घिसकर लेप लगाना चाहिये। (ग) स्पर्शाज्ञता दूर करने, (घ) कुष्ठ क्रिमि को नाश करने (ङ) तथा अनुवासन (च) के लिये नीमको अन्य द्रव्यों के साथ स्नान, पान, लेप, सिद्ध स्नेह आदि विभिन्न रूपोंमें दिया गया है। गण्डमाला में इसकी नस्य कहते हैं लाभ करती है (छ)।

ताड़ी—कभी-कभी नीमके वृक्षसे स्वभावतः एक स्राव निकलने लगता है। पौदेके दो या तीन और कभी-कभी इससे भी अधिक भागोंसे एक स्वच्छ, नीरंग द्रव बहुत पतली धारके रूप में या लगातार बूंदों के रूपमें बहना प्रारम्भ हो जाता है।

(क) निम्बक्वाथं जातसत्वः पिबेद्वा।

(ख) ....निम्ब पटोलस्य.......... ।
एति षट् कषाययोगाः कुष्ठघ्नाः.................... ।
स्नाने पाने च हिता........................ ॥
आलेपनं प्रघर्षणमवचूर्णनमते एव च कषायाः।
तैल घृतपाक योगे भक्षयन्ते कुष्ठ शान्त्यर्थम् ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ९६-९८।

(ग) यो निम्ब पत्रशतमत्ति पिष्ट्य, पिष्टान्नभुक् समयमेक मृतुन्नयं वा।
कुष्ठानि तस्य विषयानि चिरोत्थितानि सिंहोद्धते मृगगणा इव यान्ति नाशम् ॥ —शोढल

(घ) यः खादयेदभयारिष्टम् अरिष्टामलकं तथा।
स जयेत् सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः ॥ —शोढल

(ङ) निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्ये निशिक्तं मधुना यथावत्।
मासेन गोक्षीर भुजो नरस्य जराप्रदूतं पलितं निहन्ति ॥ शोढल ॥

(च) १. ....निम्बत्वक............. ॥
चूर्णं........................समक्ष्वाज्यम्।
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ६४-६५।
(२). निम्ब पटोल दार्वी............ ।
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक १३९।

(छ) ....सनिम्बैर्युक्तानि फालानि घृतानि चैव ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ८१।

(क) दोषोत्क्लिष्टे हृदये वाम्यः कुष्ठेषु चोर्ध्वभागेषु।
कुटजफल मदनमधुकैः सपटोलैर्निम्ब रस युक्तैः ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ४२।

(ख) ....निम्ब घृतं............... ।
कुष्ठेषु रक्तपित्त प्रबलेषु भिषग्जितं सिद्धम् ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक १३४।

(ग) स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदन कण्डुलानि कुष्ठानि।
.... निम्बजैर्वा पत्रैः............ ।
घृष्टानि.........ततः प्रलेपैः प्रदेह्यानि ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ५५-५६।

(घ) ....निम्ब............... ।
..................तच्चूर्णं कुष्ठिनुत् परमम् ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ६७-६८।

(ङ) १. ....निम्ब............ ।
स्नाने पाने लेपे कृमिकुष्ठनुतः सगोमूत्राः ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक १५७।
२. मूलं निम्बविडङ्गे स्नानं पानं उपदेहश्च।
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक १५६।

(च) वातोल्वणं विरिक्तं निरुढमनुवासनार्हमालक्ष्य।
............निम्ब...........साधयेत् स्नेहम् ॥
—चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय ७, श्लोक ४६।

(छ) तैलेन वारिष्ट भवं नस्यम् ॥ —शोढल

यह तीनसे सात सप्ताह तक निकलता रहता है। पौदेके वे भाग जिनमें से स्राव निकलता है तने बड़ी-बड़ी शाखाएँ और जड़ें हैं। इनमें विद्यमान छोटी छोटी दरारों, गढ़ों या छिद्रोंमेंसे स्राव निकलता है। कभी-कभी कृत्रिम छिद्र करने पड़ते हैं। सम्पूर्ण वृक्षसे चौबीस घण्टेमें निकलने वाले द्रवका प्रमाण वृक्षके आकार के अनुसार दो-से-आठ बोतल तक भिन्न-भिन्न होता है। मद्रास और उसके आस-पास कई निम्ब वृक्षोंमें से कभी-कभी स्राव निकलता कहा जाता है। माईलापुरमें एक वृक्षने इस सम्बन्धमें बहुत ख्याति प्राप्त की है। ग्रामके ऊपर दक्षिणीय सिरे पर एक छोटी-सी गलीमें यह वृक्ष था और इसे मरे हुए चौथाई शताब्दी से अधिक हो गई है। यह एक सुन्दर बड़ा वृक्ष लगभग पचास या साठ वर्षकी आयुका था। प्रत्येक तीसरे या चौथे साल स्राव उत्पन्न करता था। अन्तिम या चौथी बार स्राव उत्पन्न करनेके बाद तना शीघ्रता से खोखला हो गया और वृक्ष इसके बाद तुरन्त मर गया। स्राव बहनेसे पूर्व प्रत्येक अवसर पर तने में से तीन-या-चार दिन तक हमेशा एक विशिष्टद्रव बहनेकी गड़गड़ाहट का स्पष्ट शब्द सुनाई देता था। पौदेके तीन या चार भागोंसे वास्तवमें स्राव बाहर न निकल आने तक यह गड़गड़ाहट सुनाई देती रहती थी। वृक्षका मालिक फैज़ अहमद खां अपने पड़ो-सियों तथा इधर-उधरके तद्रसेच्छुक लोगोंको इस अत्यन्त दुर्लभ औषधिके निकलनेकी सूचना भिजवा देता था। रोग निवारक शक्तिके लिए स्रावकी ख्याति वास्तवमें इतनी अधिक थी कि पौदा प्रातः और सायंकाल लोगोंसे घिरा रहता था। वे औषधि को खरीदते थे और बड़ी उत्सुकतासे पीते थे। इसका मूल्य आम तौर पर चारसे दस आने प्रति बोतल था, और एक बार तो इसी परिमाणका मूल्य एक रुपया तक हो गया था। यह स्वाद में थोड़ा बहुत तिक्त-सा था, इसमें नीम वृक्षकी हल्की विच्छिष्ट गन्ध थी। ऐसा समझा जाता था कि यह कभी सड़ता नहीं और इसमें विषैला गुण भी नहीं है।

नीम वृक्ष जो कृत्रिम विधिसे रस उत्पन्न करते हैं बहुत कम होते प्रतीत होते हैं। कहा जाता है कि रस उत्पन्न करने वाले वृक्ष सब सुन्दर तथा छोटे और बड़े दोनों प्रकारके होते हैं। आम तौर पर ये जलके समीप नदी नालों या जल प्रवाहोंके किनारों पर जो हमेशा गीले रहते हैं पाये जाते हैं।

नीमकी ताड़ीके सम्बन्धमें जून, १९३३ के इंडियन फौरे-स्टरके पृष्ठ २९४-२९५ पर देहरादूनके फौरेस्टर केमिष्टके सहा-यक, श्री टी० पी० घोष, बी० एस-सी. लिखते हैं:—

"कोढ़ी मनुष्य इस घृणोत्पादक रोगकी औषधि रूपमें नीम के स्रावको उत्सुकतासे लेते हैं। यह विश्वास बहुत पुराना चला आ रहा है और वास्तवमें हिंदुओंका प्राचीन चिकित्सा-साहित्य इसका मूल-स्रोत है। × × × × × नीम में से प्रतिदिन तो स्राव निकलता नहीं इसलिये इसकी दुष्प्राप्यता ही इसके महत्वको बढ़ानेमें पर्याप्त कारण है। × × × × × नीमकी ताड़ीमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जिससे कि यह कुष्ठ तथा अन्य त्वग्रोगोंके लिए लाभदायक कहा जा सके।"

—o—

सहायक पुस्तकें

१. इण्डिजीनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया; आर. एन. चोपड़ा (१९३३)
२. फ्लौरा ऑफ ब्रिटिश इण्डिया; हूकर (१८७५-७६)।
३. टिम्बर एण्ड टिम्बर ट्रीज़; लेसलेट।
४. सिल्विकल्चर ऑफ इण्डियन ट्रीज ट्रूप (१९२३)।
५. ए मैनुअल ऑफ इण्डियन टिम्बर्स, गैम्बल।
६. ए डिक्शनरी ऑफ दि इकौनोमिक प्रोडक्टस ऑफ दि मलाया पेनिन्सुला; आइ. एच. बुर्किल (१९३५)।
७. फौरेस्ट फ्लोरा; बी. ब्रागडीज (१८७५)।
८. इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स; वसु एण्ड कीर्तिकर १९३६
९. कमर्शियल गाइड टु दी फौरेस्ट इकौनोमिक प्रौडक्टस ऑफ इण्डिया; आर. एस. पियर्सन (१९१८)।
१०. भावप्रकाश; लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस संवत (१९६४)।
११. चरक; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३६)।
१२. सुश्रुत।
१३. भैषज्य रत्नावली; (१९३२)।
१४. कैयदेव निघण्टु; सुरेन्द्र मोहन (१९२८)।
१५. राज निघण्टु।

घरेलू डाक्टर

आरक्त ज्वर—(scarlet fever)—आरक्त ज्वर या स्कारलेट फीवर एक संक्रामक रोग है जो योरपमें बहुत होता है, परन्तु भारत वर्षमें बहुत कम। आरक्त ज्वरकी छूत रोगीके गले से निकले कणोंसे और उसकी त्वचा से छूटी भूसी (छोटे-छोटे कणों) से दूसरों को लगती है। इसे ध्यान में रखने से यह बात समझ में आ जायगी कि उपरोक्त प्रकारों के कणों में से कुछ कण किसी चिट्ठी या अन्य वस्तु में लिपट कर कैसे दूर-दूर तक रोगको फैला सकते हैं। यह रोग साधारणतः बच्चों और तरुणों को होता है।

अंकुरावस्थाकाल (उसे देखें) लगभग तीन दिन होता है। रोग का आक्रमण एकाएक होता है। पहले कँपकपी लगती है और बहुधा वमन भी होता है। इस रोगके प्रधान लक्षण ये हैं कि शरीर भर में दाने निकल आते हैं और गले में खराश हो जाता है (गलेके भीतर खत हो जाता है)। शरीरके दाने पहले छोटे और लाल बिंदियों की तरह होते हैं, किन्तु शीघ्र वे इतने अधिक हो जाते हैं कि एक दूसरे को छू लेते हैं और तब सारा शरीर लाल हो जाता है। इसी लिये इस रोग को आरक्त ज्वर कहते हैं। दाने पहले गर्दन पर निकलते हैं और धीरे-धीरे धड़ और हाथ-पैर पर फैल जाते हैं। चेहरे पर दाने बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं। मस्तक और गाल लाल हो आते हैं; परन्तु मुँह के चारों ओर कुछ दूर तक लाली नहीं रहती।

शरीर के दाने पाँचवें दिन तक रहते हैं और तब मिट जाते हैं। फिर त्वचा से भूसी छूटने लगती है और भूसी का छूटना दो-तीन सप्ताह तक जारी रहता है। यदि मुख खुलवा कर भीतर देखा जाय तो गला और गलग्रंथियाँ बहुत लाल दिखलाई पड़ती हैं। इन पर सफेद चकत्ते भी दिखलाई पड़ते हैं। जीभ पर सफेद काई-सी जम जाती है। पीछे यह काई किनारों की ओर से छूटना आरम्भ करती है और तब जीभ चटक लाल रंग की रह जाती है। गलेकी कौड़ी (गिलटी) उभड़ आती है।

आरम्भमें ज्वर तीव्र होता है और १०५ डिगरी तक हो जा सकता है। साधारणतः ज्वर १०२ या १०३ डिगरी तक जाता है। ज्वर धीरे-धीरे कम होता जाता है और एक सप्ताह में प्रायः मिट जाता है। इस रोग में नाक से बहुत-सा पीब निकलता है और कभी-कभी तो विषाक्त-रक्त (septicaemia) के कारण ही मृत्यु हो जाती है।

आरक्त ज्वर एक विशेष कीटाणु (जर्म) के कारण होता है जिसे स्ट्रेप्टोकोकस (streptococcus) कहते हैं *। ये कीटाणु शरीर में नाक और गले (भीतरी गला, throat) से होकर शरीर में घुसते हैं। इसी से प्रारम्भिक लक्षण गलक्षत (sore throat) होता है। पीछे जब कीटाणु सारे शरीर में फैल जाते हैं तो ज्वर हो आता है और दाने निकल आते हैं, परन्तु ऐसा समझा जाता है कि कीटाणुओं से बने विष के कारण ये दाने उत्पन्न होते हैं।

बखेड़ा—आरक्त ज्वरमें कई एक बखेड़े उत्पन्न हो सकते हैं। कभी-कभी तो कान पक आता है और कानका पर्दा फट जाता है। कान महीनों तक बह सकता है। एक दूसरा बखेड़ा जो रोग के दूसरे या तीसरे सप्ताह में कभी-कभी उत्पन्न होता है वह यह है कि गुर्दे (वृक्क) सूज आते हैं। मूत्र बहुत कम उतरता है परन्तु उसमें अलब्युमिन (albumin) और कभी-कभी रक्त रहता है। साथही पाँव, टाँग और चेहरे में शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसलिये आरक्त ज्वर में मूत्रकी जाँच अक्सर होती रहनी चाहिये। कभी-कभी संधियाँ (हाथ-पैर के जोड़) सूज आती हैं और ऐसा जान पड़ता कि गँठिया हो गया है।

चिकित्सा—थोड़े दिन पहले तक इस रोग की चिकित्सा केवल ज्वर की चिकित्सा थी। रोगी को गरम रक्खा जाता था जिसमें ठण्ढ लगनेके कारण गुर्दे में प्रदाह न उत्पन्न होने पाये या संधियोंमें पीड़ा न उत्पन्न हो। गलक्षतके लिये रोगी को कीटाणु नाशक घोलों से कुल्ली कराया जाता था, जैसे पोटैसियम क्लोरेट (potassium chlorate) १० ग्रेन

* ऐसे रोग जो एक रोगी से दूसरे तक हवा पानी और मच्छर आदि से पहुँचते हैं संक्रामक (infectious) रोग कहलाते हैं। ऐसे रोगों को जो रोगी के छूने से ही दूसरों को होते हैं संस्पर्शज (contagious) या छूत का रोग कहते हैं।

और पानी एक औंस। यदि बच्चा इतना छोटा हो कि वह कुल्ली न कर सके तो उसके मुँहको पिचकारी द्वारा उपरोक्त घोलसे धोया जाता था। यदि कानमें पीड़ा हो या और कोई बखेड़ा उत्पन्न हो तो उसकी अलग दवा की जाती थी।

अब जबसे पता चला है कि यह रोग एक विशेष कीटाणु के कारण होता है तब से उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त इन्जेक्शन भी दिये जाते हैं। इन्जेक्शन द्वारा दी जाने वाली ओषधि उसी प्रकार तैयार की जाती है जैसे डिफथीरिया (diphtheria) का प्रतिविष (anti toxin) तैयार किया जाता है, और आरक्त ज्वर की तीव्रता के अनुसार कम या अधिक मात्रा में दी जाती है। अक्सर एक या दो इन्जेक्शन मांसपेशियोंमें दिये जाते हैं, लेकिन जब आरक्त ज्वर का आक्रमण बहुत तीव्र होता है तो इन्जेक्शन शिरा (vein) में दिये जाते हैं। इन इन्जेक्शनों का प्रभाव १२ घण्टे के भीतर ही होने लगता है। तापक्रम और नाड़ी का वेग दोनों कम हो जाते हैं। कीटाणु जनित विषाक्तता भी कम हो जाती है या बिलकुल मिट जाती है और दाने भी मुरझा जाते हैं। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि आरक्त ज्वर के इन्जेक्शनों के लगाने से पके कान, वृक्कप्रदाह आदि बखेड़ा उत्पन्न होने की सम्भावना कम हो जाती है तथा रोगी अच्छा भी शीघ्र हो जाता है।

यह नितांत आवश्यक है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि रोग फैलने न पाये। जो लोग रोगी के सम्पर्क में आते रहते हैं उनके शरीर में भी रोगके कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। इसके अतिरिक्त रोगीके कपड़े तथा उसके काममें आये बरतन आदि रोगके फैलानेमें सहायक होते हैं।

ऐसे बच्चोंसे भी जो कुछ ही दिन पहले इस रो से छूटे हैं दूसरोंको छूत लग सकती है क्योंकि उनके गले में, अच्छे हो जाने पर भी, इस रोगके कीटाणु रह सकते हैं। इसलिये इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि रोगी को करीब चार सप्ताह तक सबसे अलग रक्खा जाय। जब तक नाकसे कुछ भी रेंट (नाक का मल) निकलती रहे तब तक दूसरों को इससे छूत लग सकती है।

आयोडीन (iodine)—आयोडीन काले चमकीले चिपटे रवों के रूप में मिलता है। ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धतिमें इसका बहुत उपयोग होता है। इसे ऐल्कोहल में घोलने से टिंकचर आयोडीन बनता है। न्यूनाधिक मात्रा में घोलनेसे हल्का और तेज दो तरह का टिंकचर आयोडीन बनता है। हल्का टिंकचर आयोडीन कटे स्थानों पर कीटाणु-नाशन के अभिप्राय से लगाया जाता है। चीर-फाड़ करनेके पहले अकसर त्वचाको कीटाणु रहित करने के लिए ऐसे ही टिंकचर आयोडीन का उपयोग किया जाता है। तेज टिंकचर आयोडीन प्रतिउत्तेजक (counter-irritant) के रूप में उपयुक्त होता है, अर्थात् यह ऐसे स्थान पर लगाया जाता है जहाँ भीतर-भीतर प्रदाह (सूजन) उत्पन्न होता रहता है। इससे त्वचा में छाले पड़ जाते हैं, इस लिए सँभाल कर काम में लाना चाहिए।

स्मरण रखना चाहिए कि कटे और कुचक लगे स्थानों में केवल टिंकचर आयोडीन लगा देना काफी नहीं है। घाव को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए; उसमें कोई भी वाह्य वस्तु, गर्द इत्यादि' न रहने पाए। टिंकचर आयोडीन लगाने के बाद जब टिंकचर सूख जाय तब स्वच्छ कीटाणु रहित गॉज़ रख कर पट्टी बाँध देनी चाहिए। भूल से भी कपड़े या गॉज़ को टिंकचर आयोडीन में तर करके घाव लगे स्थान पर नहीं बाँधना चाहिए नहीं तो फफोले पड़ जायँगे। टिंकचर आयोडीन बनाने का अच्छा नुसखा नीचे दिया जाता है।

टिंकचर आयोडीन

आयोडीन	१०० ग्रेन
पोटैसियम आयोडाइड	६० ग्रेन
मेथिलेटेड स्पिरिट	१० औंस

आयोडीन का मरहम भी बनता है। यह त्वचाके रोगों पर काममें आता है। इसके अतिरिक्त यह मरहम आमवात (रूमैटिज्म, rheumatism) गठिया आदि रोगोंमें ऊपर से मालिश आदिके काममें भी लाया जाता है। बहुत हल्का आयोडीन का घोल वमन और मिचली रोकने के लिए भी काम में आता है। इसके लिए दो से पाँच बूंद तक टिंकचर आयोडीन पानीमें डालकर पिया जा सकता है।

आयोडीन विष है—यदि कोई भूल से टिंकचर आयो-डीन पी जाय तो उसे तुरन्त नमकीन कुनकुना पानी पिलाकर वमन कराना चाहिये, इसके बाद भातका मांड, या अरारोट को मांड की तरह पका कर, या रोटी, खूब खाने को देना

चाहिए। आयोडीन कई धातुओंसे रासायनिक रूपसे मिलकर लवण बनाता है, जैसे पोटैसियम या सोडियम आयोडाइड। ये दवायें भी विष हैं। यदि ये दवायें बहुत दिनों तक खाई जायँ तो विशेष लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिसे आयोडीन विषाक्तता (iodism) कहते हैं।

लक्षण—आँख और नाक से बराबर पानी बहना और लार टपकना। सर में मीठा-मीठा दर्द भी रहता है और जी उदास रहता है। चिकित्सा प्रत्यक्ष है, यह कि आयोडीन पड़ी दवाओंका खाना बंद कर दिया जाय।

आयोडीन की आवश्यकता—आयोडीन मानव शरीरका एक आवश्यक अंग है। पीने के पानी में आयोडीन रहता है, परन्तु बहुत थोड़ी मात्रा में। कहीं-कहीं पानी में आयोडीन कुछ भी नहीं रहता। वहाँ लोगों को घेघा (goitre) निकल आता है (उसे देखो)।

आयोडोफ़ॉर्म (iodoform)— यह वस्तु बाजारमें गंधकी रंगके रवादार चूर्णके रूपमें बिकती है। यह ऐलकोहल, आयोडीन और पोटैसियम कारबोनेटसे बनता है। इसमें एक विशेष प्रकारकी गंध होती है। यह पानीमें नहीं घुलता किन्तु ईथर (ether) में बहुत शीघ्रता से घुल जाता है। इसमें ६०% (प्रतिशत) आयोडीन होती है। आयोडोफार्म स्थानीय कीटाणुनाशन के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। शरीर की त्वचासे लगकर इसमेंसे आयोडीन निकलने लगती है जिसका प्रभाव कीटाणुनाशक है।

आयोडोफॉर्म विष है—इस विष से उत्पन्न लक्षण सदा एक-से नहीं होते किन्तु नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है और आँखकी पुतलियाँ कुछ चौड़ी हो जाती हैं। सिरमें दर्द और वमनके अतिरिक्त दिल बैठने-सा लगता है। चिकित्साके लिये आयोडोफॉर्म का इस्तेमाल बिलकुल बंद कर देना चाहिये। शरीर के जिस भाग पर यह लगाया गया हो उसे कपड़े से पोंछ डालना चाहिये और उस स्थान को सोडियम बाइ-कारबोनेटके घोलसे धो डालना चाहिये।

आयोनाइज़ेशन (ionization)—आयोनाइजेशन या आयोनिक ओषधि एक प्रकार का वैद्युत् उपचार है। प्रारम्भ में जब यह मालूम हुआ था इसके लाभ के विषय में बहुत आशा थी, किन्तु जितना उपयोगी इसे सोचा गया था उतना उपयोगी यह न निकला। तो भी कुछ बीमारियोंमें यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

आयोनाइज़ेशन करने की रीति—एलक्ट्रोडों को विशेष रासायनिक पदार्थों के घोलों में डुबानेसे इन पदार्थों के कुछ अंश (वस्तुतः आयन ions) शरीर के तन्तुओं में घुस जाते हैं (एल्क्ट्रोड यन्त्रके उस भागको कहते हैं जो रोगी के शरीर को छूता है और जिसके द्वारा बिजली रोगीके शरीरमें आती-जाती है)। यह रासायनिक पदार्थ उदाहरणतः आयोडीन का कोई लवण या सैलीसिलेट हो सकता है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि इस चिकित्सा से बहुत लाभ होता देखा गया है। परन्तु अधिकांश डाक्टर इस बातको सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। उनका कहना है कि बिजली द्वारा रासायनिक पदार्थके अंश शरीरमें इतनी कम मात्रामें घुसते हैं कि शायद ही कोई लाभ होता हो; और जितनी भी मात्रा घुसती है वह त्वचा के बहुत नीचे नहीं जा पाती होगी, इसलिये भी ऐसी चिकित्सा से किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती।

आयोनाइज़ेशन का उपयोग—आयोनाइजेशनका उपयोग अधिकतर आयोडीन और सोडियम सैलीसिलेटके साथ किया जाता है। इनसे आमवात (रूमैटिज्म rheumatism) और गठिया (gout) में लाभ होता है। जलने पर जो क्षतचिह्न बन जाते हैं उनके लिये, और उनके कारण स्नायु पीड़ा के लिये भी, क्लोरीन का प्रयोग किया जाता है। जस्ते और ताँबेके लवणके घोल पके हुए घाव और फोड़ों के लिये दिए जाते हैं। ये पदार्थ यों भी कीटाणुनाशक हैं। कान से मवाद आने पर (कान बहने पर) जस्ते के लवणों के घोल की उपस्थितिमें आयोनाइजेशन करना बहुत लाभदायक पाया गया है। विदेश में स्कूली-अस्पतालों में लड़कों के कानों की चिकित्सा करनेके लिये इस रीति का अकसर उपयोग किया जाता है। आयोनाइजेशन की रीति जानने के लिए देखो "बिजली" शीर्षक लेख।

आरजिरॉल (argyrol)—आरजिरॉल चाँदी का एक लवण है जिसमें २०-२५ प्रतिशत चाँदी रहती है। आँख के रोगोंके उपचारमें इसका बहुत उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त नाक और गलेके भीतरके रोगोंमें भी इसका प्रयोग

किया जाता है । सूजाक में भी यह बहुत लाभदायक है ।

ऑलिव ऑयल (olive oil)—यूरोपमें ऑलिव ऑयल या जैतून का तेल खाने और शरीरमें लगाने के काम में आता है। यह पके हुए जैतूनके फलों को पेरकर निकाला जाता है। फल हल्के हरे या पीले रङ्ग के होते हैं। इसका पेड़ बहुत ऊँचा और सदाबहार होता है। यह दक्षिणी यूरोप में होता है।

यह तेल बहुत पौष्टिक आहार है। यदि त्वचामें खूब रगड़ दिया जाय तो भी यह भोजन का काम देता है। इसलिये बच्चों को अक्सर जैतून के तेल की मालिश की जाती है। तब यह केवल शरीर का पोषण ही नहीं करता वरन् त्वचा को नरम भी रखता है। जैसा आकस्मिक दुर्घटनाओं (उसे देखें) के विषयमें बताया गया है कुछ विषोंका उपचार यह है कि रोगीको जैतून का तेल पीने को दिया जाय, क्योंकि यह शरीरके श्लैष्मिक कलाओं के लिये बहुत शान्तिप्रद है (मुँह, गले और आँत की भीतरी खालों को श्लैष्मिक कला कहते हैं)। अधिक मात्रामें खाने पर जैतूनका तेल रेचक (दस्तावर) है और इस काम के लिये इसे दाल में, या दूध में फेंट कर खाया जा सकता है। कोष्ठबद्धता में कुनकुने जैतूनके तेलका एनेमा दिया जा सकता है। ऐसे रोगियों को जिन्हें पथरी पड़ी रहती है जैतूनका तेल खानेसे आराम मिलता है। पेटके दर्द (बृहदंत्रप्रदाह या शूल) में भी यह बहुत लाभदायक है। यह कई एक मलहमों और मालिश करने की दवाओं में भी पड़ता है। मूँगफलीका तेल जैतूनके तेलसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है और बाजारके सस्ते जैतूनके तेलमें अक्सर बहुत-सा मूँगफली का तेल मिला रहता है। यदि कभी जैतून का तेल न मिल सके तो इसके बदले मूँगफली या तिल का तेल से काम चलाया जा सकता है।

आवेग (emotion)—हृदयके उन भावोंको आवेग कहते हैं जो किसी आकस्मिक घटना या कारण से उत्पन्न होते हैं। ये उफान के समान एकदम उठते हैं और एकदम ही शांत हो जाते हैं। आवेगमें मनुष्य विचार-शक्तिसे काम न लेकर एकदम बिना सोचे-समझे कार्य करता है।

मुख्य आवेग क्रोध और डर हैं, किंतु कभी-कभी प्रेम और ईर्षा भी बहुत अधिक बढ़ जाते हैं और आवेगका रूप धारण कर लेते हैं। डाक्टरी में आवेगों पर विशेष ध्यान दिया गया है क्योंकि इनके कारण शरीर में बहुतसे परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। एकाएक डर जाने के बाद शरीरकी क्या हालत हो जाती है पहले इस पर विचार करिये। थोड़ी देर के लिए तो ऐसा मालूम होगा कि हृदय की गति बिलकुल रुक गई है और फिर उसकी गति बहुत तेज हो जाती है। साँस जल्द-जल्द चलने लगता है। हम डरके कारण काँप भी सकते हैं, हमारा पेट भी फूल सकता है, हमारे रोंगटे खड़े हो सकते हैं और दस्त भी हो जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ कार्य करते रहने पर भी ध्यान कहीं और रह सकता है। उदाहरणतः यदि हम चलते हों तो सम्भव है कि हम चलते-चलते खड़े हो जायें या फिर पीछे को चलने लगें। आवेग में हम सोच-विचार कर कार्य नहीं कर पाते; अर्ध-चेतना (unconscious mind) में जो विचार पड़े रहते हैं और जिनके विषयमें हमें कुछ प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं रहता उन्हीं की अज्ञात प्रेरणासे हम कार्य कर बैठते हैं। आवेगोंके कारण शरीरमें रासायनिक क्रियाएँ होने लगती हैं; उदाहरणतः डर में डरे हुए व्यक्ति की मांसपेशियों में इक अत्यन्त तीव्र रासायनिक पदार्थ अड्रिनेलिन (adrenalin) उत्पन्न हो जाता है।

ये परिवर्तन प्रणालीविहीन ग्रंथियों के कार्य में परिवर्तन होनेके कारण होते हैं। ये ग्रंथियाँ स्नायु-मण्डलके उस अंशके वशमें रहती हैं जो संवेदी स्नायु-मण्डल कहलाता है (देखें स्नायु-मण्डल)।

एक सभ्य नागरिक बननेके लिये हमें अपने आवेगों को बसमें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये, अन्यथा हमारे कारण परिचित व्यक्तियों और साथ रहने वालों को कष्ट उठाना पड़ेगा। जो व्यक्ति बहुत क्रोधी होता है उसके कारण उसके सारे परिवारके लोग दुःखी रहते हैं और अपने कामको शांति पूर्वक नहीं कर सकते। मनुष्य के मस्तिष्क की शान्ति भी उसका मूल्यवान् धन है, और जो व्यक्ति अपने अनियन्त्रित आवेगोंके कारण दूसरोंके मस्तिष्कों की शान्ति को लूटता है वह उनके रुपये-पैसे और घरोंको लूटने वाले के समान ही दोषी है।

प्राचीन कालमें इसी कारण आवेगों को वशमें रखने के लिये बहुत जोर दिया जाता था। आवेगों और कामनाओं

का शमन भारतीय धर्म और दर्शनका एक मुख्य अंग है। आजकल वैज्ञानिकोंने यह बताया है कि बहुत से व्यक्तियोंकी चिंताओं का कारण यह है कि उनके शरीरके कुछ अंग ठीक प्रकार कार्य नहीं कर पाते। इन अंगों में से मुख्य अंग प्रणाली-विहीन ग्रंथियाँ हैं (उसे देखें)। यह जानकर सम्भवतः आपको आश्चर्य होगा कि ऐसी ग्रंथियोंका रस पिलाते रहनेसे झूठे, चोर और बुरे चाल-चलन के लड़के और लड़कियों ने अपनी बुरी आदतें छोड़ दी हैं, परन्तु यह बात सत्य है। जैसे जैसे शरीर और आवेगों का हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, हमें और भी बहुत-सी बातें ज्ञात हो रही हैं और एक ऐसा समय आ सकता है जब दोषियों को ठीक करनेके लिये उन्हें जेल न भेजकर अस्पतालमें भेजना उचित जँचे।

आसव—उस मद्यको जो भपके से न चुआया जाय, केवल फलों के खमीरको निचोड़ कर बनाया जाय आसव कहते हैं।

आहार—केवल चावल ही खाकर कोई मनुष्य स्वस्थ्य नहीं रह सकता और न कोई केवल घी पीकर जीवित रह सकता है। इसलिये प्रत्यक्ष है कि महत्तम स्वास्थ्य के लिए इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि आहार कैसा हो। धनी और निर्धन व्यक्तियों के लिये आहार का प्रश्न भिन्न-भिन्न रूपमें उपस्थित होता है। धनी जो कुछ भी उसके स्वास्थ्यके लिये उपयोगी हो प्राप्त कर सकता है, केवल उसे मानसिक बल चाहिये कि वह संयम से खा सके। परन्तु निर्धनों के लिये एक विशेष कठिन प्रश्न यह उठता है कि कैसे कम खर्चमें वह उचित स्वस्थ्यप्रद आहार पा सके।

आहारका प्रश्न इतना सरल नहीं है कि दो-चार पंक्तियों में उसका उत्तर दिया जा सके। इसलिये नीचे इस विषय पर पूर्ण परन्तु संक्षिप्त रीतिसे विचार करने की चेष्टा की गई है।

आहार में क्या चाहिये—जिस प्रकार इंजिन को चालू रखने के लिये उसमें कोयला झोंका जाता है उसी प्रकार शरीरको चालू रखने के लिये आहार की आवश्यकता पड़ती है। शरीरमें वस्तुतः ईंधन की आवश्यकता पड़ती है और यह भोजनके द्वारा प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate), विटैमिन तथा अन्य रासायनिक पदार्थोंके रूपमें प्राप्त होता है। प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट शक्ति उत्पादक भोज्य पदार्थ कहे जाते हैं। ये शरीरमें जाकर 'जलते' हैं, अर्थात् ऑक्सिजनसे उनका संयोग होता है और इस प्रकार व्यक्तिके जीवित रखने के लिए आवश्यक शक्ति उत्पन्न करते हैं। विटैमिन और खनिज लवण शरीर को शक्ति देने में तो अधिक सहायक नहीं होते किन्तु उनके कारण शरीरको अपने कार्यमें विशेष सहायता मिलती है। जल भी भोजनका मुख्य अंग है। भोजन इस प्रकारका होना चाहिये कि उसमें शरीर के लिये आवश्यक सब पदार्थ हों और ठीक मात्रा में हों। जिस प्रकार किसी पदार्थ की कमीसे शरीर क्षीण और दुर्बल हो जाता है उसी प्रकार किसी अंशके अधिक मात्रामें होनेसे भी शरीरमें रोग उत्पन्न हो जा सकता है।

कितना भोजन—अमीरों के लिये विशेष यह डर रहता है कि वे आवश्यकता से अधिक खा सकते हैं। यह भी डर रहता है कि अज्ञान या असावधानी के कारण उनके आहार में किसी विशेष पदार्थ की कमी बनी रह सकती है। इसलिये हिसाब लगाकर कभी-कभी देख लेना चाहिये कि भोजनमें कोई त्रुटि तो नहीं है। गरीबों के लिये तो सबसे पहला प्रश्न यही होता है कि उन्हें पेट भर खाने के लिये मिल रहा है या नहीं। मनुष्य-शरीरकी ऐसी अद्भुत रचना है कि सहते-सहते उसे अनेक कठिनाइयों के सहने की आदत पड़ जाती है, यहाँ तक कि मजदूर आधा पेट ही खाते रहने पर भी बराबर मेहनत कर सकता है। इस प्रकार आधा पेट खाते रहने पर सम्भव है कुछ समयमें उस व्यक्ति की आदत इतनी बदल जाय कि वह कभी अनुभव ही न करे कि वह आधा पेट ही खा रहा है, परन्तु वास्तवमें उसका शरीर कम भोजन के कारण पूर्ण रूपसे विकसित नहीं हो पाएगा। इस प्रकार कम भोजन करनेसे कुछ का शरीर तो प्रत्यक्ष रूपसे धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। बहुत मजदूरों के लिये तो सस्ते-से-सस्ता पौष्टिक भोजन भी पेट भरने के लिये पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल सकता, फिर आहार-विज्ञान उनके आहारके लिये क्या शिक्षा दे सकता है?

यह ज्ञान तो उन लोगोंके लिये है जिन्हें खानेको भोजन की कमी तो नहीं है, किन्तु वे यह नहीं जानते हैं कि उन्हें कौन-सा भोजन और कितनी मात्रामें खाना चाहिये जिससे वे महत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकें।

वैज्ञानिक रीतिसे भोजन की मात्रा नापने के लिये ताप नापनेकी एकाई (कैलोरी) को काममें लाया जाता है। इस

बातको स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण लेते हैं। कुछ कुलियों को ८३ छटाँक चावल और एक छटाँक दाल प्रति-दिन खानेको मिलता है। इसके अतिरिक्त यदि उन्हें कहीं से कोई और वस्तु खाने को मिलती है तो वह बहुत ही थोड़ी मात्रामें मिलती है। उन कुलियोंसे काम लेने वाले अफसरों की शिकायतें आती हैं कि कुली बड़े आलसी हैं और काम करनेमें अन्यमनस्कता दिखाते हैं। आगे दी गई सारिणी से हिसाब लगाने पर ज्ञात होगा कि इनके भोजन के खाने से २१०० कैलोरी शक्ति प्रतिदिन प्राप्त होगी। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या इन लोगों को आवश्यकतानुसार भोजन मिल रहा है। दूसरे शब्दों में, क्या २१०० कैलोरी किसी मेहनत करने वाले आदमीके लिये पर्याप्त है ?

आहार-विज्ञान में दक्ष विशेषज्ञों की एक सभा ने लीग ऑफ़ नेशन्सके सामने शरीरके लिये आवश्यक शक्तिके विषय में निम्न वक्तव्य दिया था :—

(क) शीतोष्ण जलवायु में सीधा-सादा जीवन बिताने वाले और शारीरिक परिश्रम न करने वाले एक प्रौढ़ावस्था-प्राप्त व्यक्तिको जितने भोजन की आवश्यकता होती है उसीके आधार पर अन्य अवस्थाके लोगोंके लिये भोजन का हिसाब लगाया जाता है। ऐसे व्यक्तिके लिये प्रतिदिन पूरा २,४०० कैलोरीप्रद भोजन की आवश्यकता है।

(ख) इस निर्धारित मात्रामें शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के लिए निम्नलिखित मात्रा में और भोजन देना चाहिये :—

हल्का परिश्रम—काम करनेके समयके अनुसार ७५ कैलोरी प्रति घंटा।

साधारण परिश्रम—७५ से १५० कैलोरी प्रति घंटा, काम करनेके समय के अनुसार।

कठिन परिश्रम—१५० से ३०० कैलोरी प्रति घंटा, काम करनेके समयके अनुसार।

बहुत कठिन परिश्रम—३०० कैलोरी या इससे भी अधिक, प्रतिघंटा काम करनेके समयके अनुसार।

भारतवर्ष कृषि देश है और अधिकांश मनुष्य शारीरिक परिश्रम करके जीविका कमाते हैं। भारतवर्ष का अधिकांश भाग अधिक गर्म रहता है, इसलिये हम लीग आफ नेशन्स के द्वारा नियुक्त की गई भोजन-मात्राको कुछ कम कर सकते हैं। इस आधार पर मान लो कि लीग ऑफ नेशन्सके द्वारा नियुक्त मात्रासे दस प्रतिशत कम, अर्थात् २,१५० कैलोरी भोजन एक अव्यायामी जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के लिये काफी है। इस हिसाबसे छः घंटा 'साधारण' कार्य करने वालेके लिये कम-से-कम २,६०० कैलोरी भोजन चाहियें। इसलिये शारीरिक परिश्रम करने वाले प्रत्येक भारतीय किसान और कुली के लिये कम-से-कम २,६०० कैलोरी भोजन प्रति दिनकी आवश्यकता है। यह मात्रा तो तब है जब किसान और कुली दोनों हल्का काम करते हों। यदि उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ता है तो लीग ऑफ नेशन्स के द्वारा निर्धारित नियमोंके हिसाबसे उन्हें २,८००-३,००० कैलोरी भोजन मिलना चाहिये। इसी प्रकार स्कूल और कॉलिजोंमें खेलने वाले लड़कोंको साधारण पढ़ने लिखने वाले लड़कोंसे अधिक भोजनकी आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त बच्चों और स्त्रियोंके भोजनकी मात्राका प्रश्न आता है। इसके लिये बहुत-सा वाद-विवाद होता रहा है और मात्रा कोई कुछ अधिक बताता है और कोई कुछ कम, किन्तु साधारणतः जो मात्रा अधिकतर लोग मानते हैं वह निम्न लिखित है :—

कितनी कैलोरी भोजन चाहिए

आयु	कैलोरी
तरुण मनुष्य (१४ वर्ष से अधिक)	२,६००
तरुण स्त्री (१४ वर्षसे अधिक)	२,१००
बच्चा १२ और १३ साल का	२,१००
बच्चा १० और ११ साल का	१,८००
बच्चा ८ और ९ साल का	१,६००
बच्चा ६ और ७ साल का	१,३००
बच्चा ४ और ५ साल का	१,०००

इस मात्रामें कमी और बढ़ोतरी की जा सकती है। बच्चों के स्वास्थ्य, रहन-सहन की आदत तथा अन्य बातों के आधार पर इसे कम कर और बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सारे देशके लिये भी एक ही मात्रा ठीक नहीं रहेगी। उत्तरी भागके लोगों के लिए मात्रा कुछ अधिक होनी चाहिये। इस के अतिरिक्त स्त्रियों के विषय में भी समानुकूल परिवर्तन होना चाहिये। गर्भावस्था तथा दूध पिलानेके दिनोंमें स्त्रियोंकी आवश्यकता, तरुण पुरुषके बराबर या उससे भी अधिक हो

जाती है। लीग ऑफ नेशन्स द्वारा निर्धारित मात्रा इस प्रकार है:—

	कैलोरी
गर्भवती स्त्री	२,४००
स्तनवाँती (दूध पिलाने वाली स्त्री)	३,०००

ये मात्राएँ भारतवर्षके लिए कुछ अधिक अवश्य हैं; किन्तु ये इस बात को प्रदर्शित करती हैं कि इन अवस्थाओं में स्त्रियोंकी आवश्यकता किस अनुपातमें बढ़ जाती है।

आगे दी गई सारिणीके आधार पर आप यह जान सकते हैं कि किस भोजन के खाने से कितनी कैलोरी प्राप्त हो सकती है और इसके आधार पर भोजनकी मात्रा निर्धारित कर सकते हैं।

भोजन के लिये सर्वदा बुद्धिका उपयोग करते रहना चाहिये और प्रति दिनके अनुभव से यह जानने का प्रयत्न करते रहना चाहिये कि कौनसा भोजन ठीक है तथा भोजन में कितना परिवर्तन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह मात्रा तो जनसमूह के लिये है जिसमें सब प्रकारके मनुष्योंकी आवश्यकताओं की औसत रक्खी गई है। अब यह प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने स्वभाव, रुचि, स्वास्थ्य तथा जलवायुके अनुसार भोजनको तथा भोजन की मात्राको चुने। इसके साथ उसे इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक परिश्रम करने पर अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है

हिन्दुस्तानमें जिन संस्थाओंमें भोजन बहुतसे आदमियों या बच्चोंके लिये एक जगह तैयार करके बाँटा जाता है जैसे (अनाथालयोंमें या विधवाश्रमोंमें) वहाँ प्रायः खाने वालोंको आवश्यकतासे कम ही भोजन मिलता है। इन स्थानों पर अधिकतर बच्चे गरीब घरोंसे आते हैं; इसलिये वे भूखा रहने के बारेमें कभी भी शिकायत नहीं करते।

प्रोटीन—मात्राके बाद दूसरी आवश्यक वस्तु भोजनके बारेमें यह मालूम होना चाहिये कि क्या-क्या भोजन लाभदायक हैं तथा किस भोजनमें क्या-क्या पदार्थ रहता है और ये पदार्थ शरीरकी क्या-क्या आवश्यकताएँ पूरी करते हैं।

प्रोटीन नामक रासायनिक पदार्थ शरीर के लिये सबसे आवश्यक वस्तु है। माँस-पेशियाँ जो थोड़ी बहुत सदा ही क्षय होती रहती हैं, इसी भोजन-पदार्थके द्वारा स्वास्थ्यावस्था में रह सकती हैं; शरीर इस पदार्थ को उत्पादन के लिये भी काम में ला सकता है।

आगे दी गई सारिणीसे ज्ञात होता है कि प्रोटीन यों तो सभी खानेकी वस्तुओंमें रहता ही है; किन्तु इसकी मात्रा किसी में कम होती है और किसी में अधिक। दूध, अंडा, मछली और गोश्त इत्यादि में, जो जानवरों से प्राप्त खाने की वस्तुयें हैं, यह बहुत अधिक मात्रामें रहता है। चावल, गेहूं, जौ, बाजरा इत्यादि अनाजों में यह कम मात्रा में रहता है। अनाजों में सबसे कम प्रोटीन चावलमें होता है। अनाजोंमें सबसे ऊपर की परत, अर्थात् भूसी में प्रोटीन अधिक मात्रामें रहता है। अन्दरके भागमें तो अधिकतर स्टार्च होता है। मशीन से साफ किये चावल में और मैदा में प्रोटीन तो कम रहता ही है, साथ ही अन्य आवश्यक तथा लाभदायक पदार्थ जैसे विटैमिन, खानिज लवण, इत्यादि भी कम हो जाते हैं। दालमें प्रोटीन अधिक मात्रामें होता है। पत्तेदार तरकारियों तथा फलोंमें प्रोटीनकी मात्रा कम होती है। तो भी यदि ये खूब खाई जायँ तो प्रोटीनकी कमी पूरी हो जाती है।

इसके साथ-साथ एक यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि बच्चोंको जो बढ़ते रहते हैं, युवा मनुष्यों से अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। बढ़नके समय बनने वाली नई माँस-पेशियों को प्रोटीन की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। इसी कारण गर्भावस्था तथा दूध पिलानेके दिनोंमें स्त्रियोंको भी अधिक प्रोटीनकी आवश्यकता होती है। साधारण तथा भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें जितनी प्रोटीन चाहिए उसको प्रदर्शित करनेके लिए संख्यायें दी जाती हैं:—

कितनी प्रोटीन चाहिये

आयु	ग्राम प्रति दिन
पुरुष १६ से ६७ वर्ष	६५
स्त्री १८ से ६० ,,	५५
लड़का १० से १७ ,,	८०
लड़की १० से १७ ,,	७०
बच्चा ६ से ६ ,,	६०
बच्चा २ से ६ ,,	४०-५०

नोट—स्मरण रखना चाहिये कि लगभग १ ग्राम=१ माशा।

आगे दी गई विस्तृत सूचीसे आपको मालूम हो सकता है कि आपके भोजनमें प्रोटीन कितनी मात्रामें है। लेकिन

प्रोटीनकी मात्रासे भी अधिक आवश्यक बात जाननेकी यह है कि सब वस्तुओं के प्रोटीन ठीक एक ही प्रकार के नहीं होते। उनमें से कुछ अधिक सुपच और अधिक शक्तिवर्धक होते हैं। इसलिये यह जानना आवश्यक है कि हमारे भोजनमें जो प्रोटीन है, वह शरीरके लिये कितने लाभ की है। प्रोटीन जिन पदार्थोंसे बनती है उनमें ऐमिनो ऐसिड (amino acid) सबसे मुख्य है। भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे प्राप्त प्रोटीनमें ऐमिनो ऐसिडकी मात्रा भी भिन्न होती है, अर्थात् कुछ पदार्थोंसे प्राप्त प्रोटीन में ऐमिनो ऐसिड अधिक होती है और कुछ पदार्थों से प्राप्त प्रोटीनमें कम। ऐमिनो ऐसिडसे शरीर के तन्तु बनते हैं और जब तन्तुओंका क्षय होता है तो भी वे ऐमिनो ऐसिडमें परिवर्तित हो जाते हैं। इसलिये जिस प्रोटीनकी ऐमिनो ऐसिड तन्तुओं की ऐमिनो ऐसिडके समान होगी वे प्रोटीन शरीर के लिये विशेष लाभदायक होंगे। इसके अतिरिक्त जो प्रोटीन आसानीसे हजम हो सकेंगे, वे अधिक उपयुक्त होंगे।

साधारणत: जो प्रोटीन अनाजोंसे प्राप्त होते है वे जानवरोंसे प्राप्त प्रोटीनसे कम लाभदायक होते हैं। वास्तवमें केवल वनस्पतियों से प्राप्त प्रोटीनों से इतना अधिक दृढ़ और स्वस्थ्य शरीर नहीं बन सकता, जैसा वनस्पति और जानवरों से प्राप्त प्रोटीनों के मिश्रण को खाने से बन सकता है। लीग ऑफ नेशन्समें विशेषज्ञोंने प्रोटीनके विषयमें जो अपना निर्णय दिया है, वह इस प्रकार है:—

"बढ़ने की अवस्था में, गर्भावस्थामें और दूध पिलाने के दिनों में, जानवरोंसे प्राप्त प्रोटीन अवश्य देना चाहिये। बढ़नके दिनोंमें भोजनमें प्रोटीनकी मात्रा बहुत अधिक होनी चाहिये।

हमारे विचार में उस समय भोजन का पाँचवाँ भाग प्रोटीन होना चाहिये। बच्चों को प्रोटीन देने के लिये गाय या अन्य किसी जानवर का दूध देना चाहिये। दूधके द्वारा ही सबसे अच्छा पशुजन्य प्रोटीन सबसे अधिक मात्रा में बच्चों को दी जा सकती है। दूध के ऊपरके क्रीम में शेष दूध के बराबर ही प्रोटीन की मात्रा होती है। मक्खन निकले दूध में भी प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में रहता है। अंडे, मछली, यकृत और माँस में भी शरीर को अधिक लाभ पहुँचाने वाला प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में रहता है।

बच्चों के खानेमें यदि प्रोटीनकी मात्रा अधिक नहीं है तो वह भोजन हितकर नहीं है। गरीबोंकी विशेष कठिनाई इसमें पड़ती है कि बच्चोंको क्या खिलाया जाय कि पैसे तो कम लगें और पशुजन्य प्रोटीन काफी मात्रा में दिया जा सके, क्योंकि दूध, अंडा, मछली और मांस सभी अनाजसे मँहगे बिकते हैं।

शरीरके लिए भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे प्राप्त प्रोटीन कितना लाभ पहुँचाता है, यह आगे दी गई सारिणीसे ज्ञात हो सकता है।

वसा—चर्बी, घी और तेल को सामूहिक रूप से वसा कहते हैं। वसा साधारणतः भोजन में अवश्य होनी चाहिये, किंतु कितनी मात्रामें हो, इसके विषयमें निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। प्रौढ़ों के भोजनमें प्रतिदिन पौन छटाँकसे एक छटाँक तक वसा अवश्य होनी चाहिये। भारतवर्ष के गरीब लोगों के भोजनमें वसाकी प्रायः कमी रहती है। वसा शरीर के लिये कई बातोंमें लाभदायक है और जिस भोजनमें पशुजन्य वसा नहीं होती, उसमें बहुत से मुख्य विटैमिन की भी कमी रहती है। विटैमिनोंका सविस्तार वर्णन नीचे दिया जायगा। पशुजन्य वसा, जैसे मक्खन और घी में विटैमिन 'ए' रहता है। किन्तु बहुतसे वनस्पति वसा या तेलों में यह विटैमिन नहीं होता। जिस घी में वनस्पति तेल मिला रहता है उसमें विटैमिन 'ए' हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। जो वसा भोजन के साथ घी, तेल इत्यादि के रूपमें खाई जाती है, उसको छोड़ कर निम्न पदार्थों में भी वसा की पर्याप्त मात्रा रहती है:—बादाम, अखरोट, पिस्ता आदि मेवे, नारियल, सोयाबीन, मूँगफली और तिल।

कार्बोहाइड्रेट—भोज्य-पदार्थों का एक प्रधान अंश वे वस्तुएँ हैं जिन्हें रसायनज्ञ कार्बोहाइड्रेट कहते हैं। प्रधानतः कार्बोहाइड्रेट ही शरीर को शक्ति देते हैं। अनाज में तथा उन तरकारियों में जिनकी जड़ खाने के काम में आती हैं—जैसे आलू या शकरकन्द, प्रधानतया कार्बोहाइड्रेट ही रहते हैं और चीनी तो कुल ही कार्बोहाइड्रेट है। कार्बोहाइड्रेट भोजन में बहुत आवश्यक हैं। किन्तु जब वे भोजन में बहुत अधिक मात्रा में रहते हैं—जैसे प्रायः भारतवासियों के भोजन में होता है, तो ये हानिकारक भी हो जाते हैं। भोजन में पहले प्रोटीन, वसा, विटैमिन और खनिज लवणों की मात्राके लिये पदार्थ चुनने चाहियें। इसके बाद कार्बोहाइड्रेटों की पूर्ति के लिये वे पदार्थ चुने जा सकते हैं जिनमें कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में हो। कारण यह है कि कार्बोहाइड्रेटों की कमी आसानीसे पूरी की जा सकती है, कठिनाई अन्य अवयवोंके लिए पड़ती है। कार्बोहाइड्रेटोंकी मात्रा शारीरिक परिश्रमके अनुसार बढ़ाई-घटाई जा सकती है।

फलाहार

[लेखक—कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस-सी.]

मनुष्यके भोजनमें फल एवं शाक-भाजियों का एक विशेष स्थान है। भारतवर्षके कृषि-प्रधान देश, एवं जलवायु और भूमि विस्तृत होने के कारण यहां पर प्रायः सभी प्रकार के फल और तरकारियां अधिकता से उत्पन्न होती हैं। फिर अल्प-व्यय और सरलतासे मिल जानेके कारण उनका यहां अधिक उपयोग भी होता है; किंतु फलों के गुणों को देखते हुए उनसे कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा रहा है। ऐसी अवस्था में जबकि हमारे सेवनके पश्चात् भी इतनी अधिकता होती है कि करोड़ों, मन फल और तरकारियां प्रतिवर्ष सड़ कर बरबाद हो जाती हैं तो फिर क्यों न हम उनको भली-भांति काममें लाएँ। सम्भवतः अधिकांश जनता उनके गुणों से अपरिचित है और फलों का उचित उपयोग एवं उनके सेवन करनेकी विधि ही हमें ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं है। यही कारण है कि हम प्रत्येक दिन कुछ अंशोंमें उनका सेवन करते हुए भी फलोंके गुणों से लाभ नहीं उठा सकते।

प्रत्येक फल और तरकारीयों में विशेष गुण होते हैं। यदि एक फल शरीर के अन्तर्गत किसी अंग की पुष्टि करता है, तो दूसरा शरीरके अन्य अंगों की पुष्टि में सहायक होता है। फल तो मनुष्य स्वादके लिये सेवन करता है; किंतु वैज्ञानिकों ने फल एवं शाक-भाजियोंमें पाये जाने वाले भिन्न-भिन्न तत्त्वों अथवा वास्तविक खाद्य-पदार्थों का, जिनसे कि हमारे स्वास्थ्यका घनिष्ट सम्बन्ध है, भलीभांति निरीक्षण किया है। अन्यथा फलों का अधिकांश भाग जल ही होता है, जिसकी मात्रा ७०-८० प्रतिशत अथवा अधिक होता है।

फलोंमें पाये जाने वाले तत्त्वोंमें से 'विटामिन' प्रधान है। यह हमारे भोजन का बहुत ही आवश्यकीय अङ्ग है। इनका भोजनमें न रहना तरह-तरहके रोगोंको निमन्त्रण देना है। विटामिन्स कई प्रकारके होते हैं और उनका नाम क्रमशः आविष्कारके अनुसार विटामिन ए, बी, सी, डी, ई, आदि रखे गये हैं। सभी विटामिन्स एक फल में प्रायः नहीं पाये जाते। यदि एक फलमें विटामिन 'ए' अधिक है, तो दूसरेमें 'बी'। सामान्य अंशों में दो तीन विटामिन्स एक फल में पाये जाते हैं, जिस फल और तरकारीमें जितने अधिक विटामिन्स होंगे, वह उतना ही स्वास्थ्यके प्रति हितकर होगा। भिन्न-भिन्न विटामिन्स शरीर के विभिन्न अंगों के पुष्टि करते हैं। यदि कोई विटामिन नियमित अंशसे कम हो जाता है, तो वह अंग शिथिल पड़ जाता है, और हम रोगसे पीड़ित हो जाते हैं।

विटामिन ए—शरीरके बढ़ने एवं अङ्गोंकी रचना में उसकी अधिक आवश्यकता होती है। भोजनमें यथेष्ट अंशोंमें रहने से, शरीर पर वायु के जन्तुओं का प्रभाव नहीं पड़ता। यह नेत्र एवं फेफड़ों के रोगों के लिये विशेष लाभदायक है।

विटामिन बी—यह शरीर के अन्तर्गत समस्त अंगों की भलीभांति पुष्टि करता है। मस्तिष्क, मांस-पेशियों, हृदय एवं पट्ठोंको विशेष लाभ पहुंचाता है। यह नसोंकी शिथिलता और पेटके रोगों को भी दूर करता है।

विटामिन सी—यह रक्त शुद्ध करता है। हड्डियों एवं दांतों के निर्माण में सहायता देता और उनको पुष्ट करता है, अन्तड़ियोंको भी स्वच्छ रखता है। दांत के रोगमें कमजोर बच्चों के लिये और रक्त की खराबियोंमें विशेष लाभ पहुंचाता है।

विटामिन डी—यह रक्त एवं मांस-पेशियोंको शक्ति प्रदान करता है। पोटेशियम और कैलसियम नामक खनिज-पदार्थों का शोषक है, एवं उनको शरीर के अन्दर नियमित मात्रा में रखता है। इसके अतिरिक्त यह विटामिन शरीरके ढांचेको सुन्दर रूपसे निर्माण करनेमें सहायता पहुंचाता है।

विटामिन ई—जनन-शक्तिके लिये यह अत्यन्त आवश्यक विटामिन है और प्रत्येक स्त्री-पुरुषमें इसका उचित मात्रामें रहना आवश्क है। अन्यथा जननशक्ति क्षीण हो जाती है और ऐसे रोगियों के लिये विटामिन 'ई' यथेष्ट रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है।

इनके अतिरिक्त अन्य विटामिन्स जैसे बी$_१$, बी$_२$, बी$_३$, एफ, जी आदि आविष्कृत हुए हैं; किंतु उपर्युक्त पांच विटामिन प्रधान हैं। विटामिन्स के अलावा फल एवं शाक-भाजियों में प्रोटिन्स, कार्बोहाइड्रेटस, और खनिज-पदार्थ नामक तत्त्व भी पाये जाते हैं। इनका हमारे भोजन में यथेष्ट मात्रा में रहना भी आवश्यक है।

प्रोटीन्स—यह फलों का ठोस पदार्थ होता है। इनमें नेत्र

उनकी यथेष्ट मात्रा होती है। ये हमारे शरीर के रक्षक हैं और शरीरके अन्तर्गत एवं बाहरी चोटोंको भरते हैं।

कार्बोहाइड्रेटस—भोजनका अधिकांश भाग इन्हीं से पूर्ण रहता है। इन विभिन्न शार्करी पदार्थों से हमारे शरीर में पौरुष एवं अग्नि उत्पन्न होती है। यह अन्य तत्त्वों को भलीभांति प्रयोगमें लानेमें सहायक होते हैं।

खनिज पदार्थोंमें—कैलसियम, फासफोरस, आयोडीन, आयरन, सोडियम, और पोटेशियम प्रधान हैं। कैलसियम और फास्फोरस, मुलायम हड्डियों को दृढ़ बनाता है एवं रक्त को शुद्ध रखता है उसकी चटक लाल रंग इसीके कारण है। ये खनिज पदार्थ शुद्ध वायुको शरीर के प्रत्येक अंगमें पहुंचाने में सहायता करते हैं।

आयोडीन—मस्तिष्क को उचित प्रकार से कार्य संचालन करनेमें सहायक बनता है। स्मरणशक्तिकी हीनता और मस्तिष्क के अन्य रोग प्रायः आयोडीनके अभावसे होते हैं।

इन तत्त्वों का संक्षिप्त वर्णन केवल इसी आशय से दिया गया है कि फल एवं शाक-भाजियोंमें, जिनमें ये खाद्य पदार्थ यथेष्ट मात्रामें पाये जाते हैं, हम उनके गुणोंका अनुमान कर सकें। यह ध्यान रखनेकी बात है कि ये तत्त्व अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकते। यदि इनको आध घंटे तक तेज आंचमें पकाया जाय, तो प्रायः सभी नष्ट हो जाते हैं और उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। विटामिन्स, प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेटस आदि सभी पदार्थ ताजे एवं पूर्ण-रूप से विकसित फल और तरकारियोंमें अधिकतर पाये जाते हैं। कच्चे फलोंमें इनकी मात्रा कम होती है और अधिक पके हुए फलोंमें सब नष्ट होने लगते हैं। सूखे हुए फलों में भी इनका अंश कम हो जाता है। ऋतुके अन्तमें पूर्णरूप से पके हुए फल एवं शाक-भाजी ही विशेष लाभदायक हैं।

हमारे यहां वस्तुओं के सेवन करनेकी अनोखी रीतियां हैं। हम गेहूं खाते हैं; किंतु उसकी भूसी निकाल कर। चावल खाते हैं किंतु मांड निकाल कर। जिस भूसी और मांडमें, वैज्ञानिक निरीक्षण द्वारा बताये गये वास्तविक खाद्य-पदार्थ अधिक अंशों में हैं, उन्हीं को हम निकाल देते हैं। यही हाल शाक-भाजियों के साथ भी है। हम उनका सेवन करते हैं; किंतु या तो इन्हें अधिक घोलते और इतना उबालते हैं कि उनके विटामिन्स, प्रोटीन्स आदि नष्ट हो जाते हैं, या उनको गरम मसालों से इतना भर देते हैं कि तत्त्वों का असर जाता रहता है। अथवा उनके उन हिस्सों को छीलकर फेंक देते हैं, जिनमें अधिकांश तत्त्व पाये जाते हैं। फलोंमें प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेटस, कैलसियम, पोटेशियम, आयरन एवं आयोडीन सामान्य अंशों में रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक फल में अन्य विशेषतायें भी होती हैं। नीचे कुछ भारतीय फलोंकी विशेषतायें संक्षेप में दी जाती हैं:—

संतरा—इसमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रामें है और 'ए' और 'बी' भी यथेष्ट अंशोंमें पाये जाते हैं। फलकी प्रकृति गर्म और मधुर होती है। इसका रस बच्चोंके लिये विशेष लाभदायक है। उनके समस्त अंगोंकी पुष्टि करता है। छोटे बच्चोंको ठंडे दूधमें संतरेका रस मिला कर देनेसे विशेष लाभ होता है।

नीबू—इस फलमें विटामिन 'सी' अधिक है, और 'बी' भी काफी मात्रामें है। इसका रस शरीर की अग्निको तीव्र करता है हल्का और पाचक है। पेट के दर्द और अजीर्णता में लाभ पहुंचाता है। संतरे एवं नीबूका रस मिलाकर भी सेवन किया जाता है।

गाजर—इसमें विटामिन 'ए' अधिक अंशों में है; किंतु विटामिन 'बी' और 'सी' भी यथेष्ट है। इसके अतिरिक्त इसमें फास्फोरस भी पाया जाता है, जोकि शरीरके अन्दर अग्नि उत्पन्न करता है। यह हल्का, स्वास्थ्यवर्द्धक और किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं है। गाजर विलायती हो अथवा देशी गुण दोनोंके एक ही हैं। लाल गाजर अधिक स्वादिष्ट होती है।

सेब, नाशपाती—दोनों फलोंमें विटामिन 'बी' और 'सी' सामान्य मात्रामें है। सेबमें विटामिन 'ए' भी यथेष्ट है। दोनों ही मधुर और शीतल प्रकृतिके हैं। इनको बिना छीले हुए ही सेवन करना उचित है। कारण फलोंका अधिकांश तत्त्व छिल्कों ही में रहता है। छीलने के पश्चात् इन फलों पर वायुका शीघ्र ही प्रभाव पड़ता है और वे लाल पड़ जाते हैं, अतः सेवन करनेके समय ही काटना चाहिये।

आम—इसमें विटामिन 'ए' अधिक मात्रामें है। इसकी प्रकृति गर्म होती है। शरीर में कान्ति उत्पन्न करता है, एवं थकावट को दूर करता है। आमके टुकड़े और रसको ठंडे दूधमें मिला कर पीनेसे शीघ्र ही पच जाता है, और स्वास्थ्यवर्द्धक भी होता है।

पपीता—इसमें विटामिन 'ए' और 'सी' यथेष्ट अंशों में हैं। यह अत्यन्त हल्का भोज्य पदार्थ है। पाचक एवं शीतल

प्रकृति का है। नेत्रोंको ठंडक पहुंचाता है और विशेषतया उदर रोगियों को अधिक लाभदायक है।

केला—इसमें विटामिन 'ई' अधिक मात्रामें पाया जाता है, और सामान्य अंशोंमें अन्य सभी विटामिन्स पाये जाते हैं। यह मधुर और शीतल होता है। भूख और प्यासको शान्त करता है; किन्तु तनिक कठिनतासे पचता है।

अंगूर—इसमें विटामिन 'ए' 'बी' और 'सी' तीनों ही सामान्य रूपसे पाये जाते है। इसकी प्रकृति शीतल होती है। नेत्रोंको विशेष लाभदायक है। यह शरीरको पुष्ट एवं ज्वरको शान्त करता है। छोटे अंगूर बड़ोंसे खट्टे होते हैं परन्तु दोनों के गुण समान हैं।

अमरूद—इस फलमें विटामिन 'सी' अधिक है। यह शीतल प्रकृतिका है। यह रक्तको शुद्ध रखता है एवं भूखको बढ़ाता है, शरीरके भीतरी अंगोंकी पुष्टि करता है। इसका बीज कठोर और अपचनशील होता है। अतः उसको निकाल कर सेवन करना चाहिये।

खीरा-ककडी—इनमें सामान्य अंशोंमें विटामिन 'ए और 'सी' के अतिरिक्त फास्फोरस एवं लोहा यथेष्ट मात्रामें है। खीरा शीतल एवं हल्का होता है, इसका कड़वापन दूर करके, बिना छीले सेवन किया जावे तो अच्छा है। ककड़ी कुछ गर्म और भारी होती है। ये फल प्यासको शान्त करते हैं।

लोगोंकी ऐसी धारणा है कि फल जितने अधिक दामके होंगे, उतने ही लाभदायक होते हैं; किंतु वैज्ञानिक निरीक्षणोंसे सस्ते फलों—गाजर, खीरा-ककड़ी आदि; मंहगे फलों—सेब, अंगूर अनार, आदिसे अधिक लाभदायक एवं स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध हुए हैं। पैसेमें सेर भर बिकने वाली हरी शाकभाजियां जिन की ओर संभवतः हमारा ध्यान भी नहीं जाता; वैज्ञानिक दृटि-कोणसे स्वास्थ्यके लिये विशेष रूपसे हितकर हैं।

हरी तरकारियां—इनमें सब प्रकारके साग पात—सोया, मेथी, पालक, चौलाई, पुदीना, बथुआ, चना आदि सम्मिलित हैं। इनमें विटामिन 'ए' और 'डी' अधिक मात्रामें है। प्रोटीन्सकी भी अधिकता होती है, एवं कार्बोहाइड्रेटस भी सामान्य मात्रामें पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त खनिज पदार्थ—कैलसियम, पोटेसियम, आयोडीन, भी यथेष्ट अंशोंमें होते हैं। इतने तत्त्व एक साथ किसी भी फल या तरकारीमें नहीं मिल सकते। पालकके सागमें उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त फास्फोरस एवं विटामिन 'सी' और 'ई' भी काफी मात्रामें होते हैं। ये सब बहुत ही हल्के, शीतल एवं पाचक होते हैं। अनेक तत्त्वोंके होनेके कारण शरीरके प्रत्येक अंगकी पुष्टि करते हैं। ये क्षुधावर्धक और तरह-तरहके रोगों पर लाभदायक हैं; किंतु इनको अधिक उबालने अथवा मसालेदार बनानेसे सब तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। यदि इनसे वास्तविक लाभ उठना है तो उसी दशामें सेवन करना चाहिए। भाजीको धो कर, महीन काट कर नमक, मिर्च और सिरका डाल कर भली भांति खाया जा सकता है। अधिक स्वादिष्ट एवं हितकर बनानेके लिये टमाटर, प्याज, मूलीके टुकड़े आदि डाले जा सकते हैं।

गोभी—इसमें विटामिन 'ए' 'बी' और 'सी' तीनोंही अधिक मात्रामें पाये जाते हैं, फूल गोभीसे पत्ता गोभी अधिक लाभदायक है। इसमें फास्फोरस भी पर्याप्त अंशोंमें है। इनकी प्रकृति शीतल है। ये पाचक एवं स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।

टमाटर—इसमें विटामिन 'बी' और 'सी' अधिक मात्रा में हैं। विटामिन 'ए' भी यथेष्ट है। खनिज पदार्थ भी पर्याप्त अंशोंमें हैं। इसके सेवन करनेकी सबसे उत्तम विधि उसके रस को निकाल कर चीनी अथवा नमकके साथ पी जाने की है। अथवा उबलते जलमें २-३ मिनट तक डाल कर चटनीकी भांति भी खाया जा सकता है। अधिक उबालने या भूनने से सब तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

मूली, शलगम—इनमें विटामिन 'बी' के अतिरिक्त फास्फोरस और लोहा यथेष्ट अंशों में है। शलगममें विटामिन 'ए' और 'सी' भी सामान्य मात्रामें पाया जाता है। इनके सेवन करनेसे नेत्रोंको विशेष लाभ होता है।

आलू—इसमें प्रोटीन्स, कोर्बोज, और विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' सामान्य अंशोंमें पाया जाता है। भारत एवं अन्य देशोंमें इसका अधिक प्रचार है; किंतु अधिकतर मसालोंमें भून कर सेवन किया जाता है, जिसके कारण कुल तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, अन्यथा यह पुष्टिकारक एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है।

हरे चने, मटर—इनमें 'बी' विटामिन और प्रोटीन्स सामान्य अंशोंमें होते हैं। इसके अतिरिक्त हरे मटरमें विटामिन 'ए' और 'ई' भी पर्याप्त है। भिगोये हुए चने और मटरमें जबकि अंकुर निकल आते हैं, विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में पाया जाता है। वे अधिक लाभदायक होते हैं। सूखे

(शेष पृष्ठ १५६ पर)

गतांक की पहेलियों के प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न१—मान लो जनसंख्या १०० है, तो चारों व्याधियों से ग्रसित रोगियोंकी कमसे-कम संख्या निकालनेके लिये हमें इन रोगोंका जितना सम-विवरण संभव हो, उस ग्रामकी जनसंख्या में करना चाहिए। यहां पर कुल रोग ९५ + ९० + ८५ + ८० = ३५० हैं, जो प्रति व्यक्ति ३ रोग बंटने पर ५० शेष रह जाते हैं। अतः चारों रोगोंसे पीड़ितोंकी न्यूनतम संभव संख्या ५०% है।

विकल्प विधिः—

क्योंकि ९५% लंगड़े हैं अतः ५% ऐसे व्यक्ति हैं जो लंगड़े नहीं हैं। इन ५% को यदि शेष रोगोंसे ग्रसित मानें, तो ९०−५ = ८५% ऐसे रोगी बचे, जो लंगड़े और अंधे हैं, अर्थात् १५% को केवल एक रोग है। अब ८५% बहरेंमें से कमसे-कम ८५−१५=७०% ऐसे होंगे, जिन्हें तीनों रोग हैं; अर्थात् लंगड़े अंधे और बहरे हैं, और ३०%ऐसे हैं; जिन्हें केवल दो ही रोग हैं। अब ८०% गूंगोंमेंसे इन ३०% को गूंगा मान लिया जाय तो केवल ५०% ऐसे बचते हैं जिन्हें चारों रोग हैं।

प्रश्न २—मान लिया कि परातोंकी संख्या य और थालोंकी संख्या र है। फलतः गिलासोंकी संख्या (१००−य−र) हुई। अतः ५ य+ ३ र+ $\frac{१}{२}$ (१००−य − र) =८०, अथवा ९य+ ५र =६०/.˙.र=१२−$\frac{९}{५}$ य, क्योंकि य और, पूर्णांक होने चाहिएं, य का संभवमान केवल ५ है। अतः य=५, र=३ और गिलासोंकी संख्या=९२।

प्रश्न ३—मान लिया पुरुषके नाम चा, दा, ना हैं और उनकी बधुओंके नाम ची, दी, नी हैं। तो उनके नदीके पार जाने और लौट कर आने वाली पार्टियां क्रमशः ये होंगी (दी नी,) (ची, नी, ची) (दा ना, ना नी) (चा ना, दी) (ची नी ची) (ची दी)।

प्रश्न४—प्रत्येक क्रियाके बाद १२, १८, २२ और ४२ सेरके कनस्तरोंमें जितना दूध रहेगा, वह सेरोंमें यों होगाः— आरम्भसे (०, ०, ०, ४२), (०, १८, २२, २), यह २ सेर दूध करीब ३ सेर वाले लोटेमें डाल दो। तो रहा (०,१८ २२, ०), (०, १८, ४, १८), (०, १८, ४, १८), (०, ०, ४, ३६)। (०, ४, ०, ३६), (०, ४, २२, १४), (१२, ४, १०, १४)। लोटे वाला २ सेर दूध और १२ सेर एक व्यक्तिको बीचके दोनों बर्तनोंका दूध मिलाकर १४ सेर दूसरेको और शेष तीसरे को।

प्रश्न ५—दो; क्योंकि लुढ़कने वाले रुपयेको अपने केन्द्र के चातुर्दिक कोणीय गतिसे उस केन्द्रकी (नियत रुपयेके केन्द्रके चतुर्दिक) कोणीय गतिकी दूनी है। इकन्नियां लेकर प्रत्यक्ष देखो।

प्रश्न ६—३० दिन। क्योंकि अगले दिन यानी ३१ वें दिन वह दूना होकर पूरे तालाबको भर लेगा।

प्रश्न ७—७७=२३१/३; ६४=२२ (३ − १)= $(३+१)^{३}$ २ $(३३-१)^{२}$=$१_{३}^{२}$ ३, ११५६=$(३३+१)^{२}$

५२९=$(२+१)^{३+३}$=$(\overset{३}{३})^{२}$

प्रश्न ८—१९९ × भजनफल=संख्या (७७७७......) अर्थात् २०० × भजनफल—भजनफल=संख्या।

मान लो संख्याके अन्तिम चार अंक क, ख, ग, घ, हैं। तो २०० से गुणा करने पर अन्तिम ४अंक च,छ,०,०, होंगे, यदि ग और घ को इसे गुणा करने पर अंन्तिम दो अंक च, छ, की संख्या मिले। शेष इस प्रकार होगाः—......च,छ, ०, ०

......क,ख, ग,घ,

......७ ७ ७ ७

तुलना करने पर, घ=३, ग=२, अतः छ=२ घ=छ, च=२ ग=४ परिणामतः ख=८ और क=छ।

प्रश्न ९—क ने सोचा कि किसीको दो श्वेत चिन्ह दिखाई नहीं दिये; अन्यथा वह तुरन्त ही बाहर चला जाता। अतः अधिकसे-अधिक एक श्वेत चिन्ह हो सकता है। अब दो सम्भानाएं हैं। क ने एक श्वेत चिन्ह देखा या दोनों नीले चिन्ह देखे। स्थिति १—यदि उसने १ श्वेत देखा तो उसने यह तुरन्त तर्क कर लिया कि उसका चिन्ह नीला होगा, नहीं तो दो श्वेत चिन्ह हो जाते। स्थिति २—उसने दोनों नीले चिन्ह देखे तो उसने सोचा कि यदि मेरा चिन्ह श्वेत होता तो (स्थिति १ में दी हुई) तर्क युक्तिसे इनमें कोई तो निकलता ही। अतः मेरा नीला चिन्ह है।

प्रश्न१०—घोड़ोंकी मुठभेड़ $\frac{३}{२}$ घंटेमें हुई और मक्खी $\frac{३}{२}$ घंटेमें कुल १८० मील उड़ी।
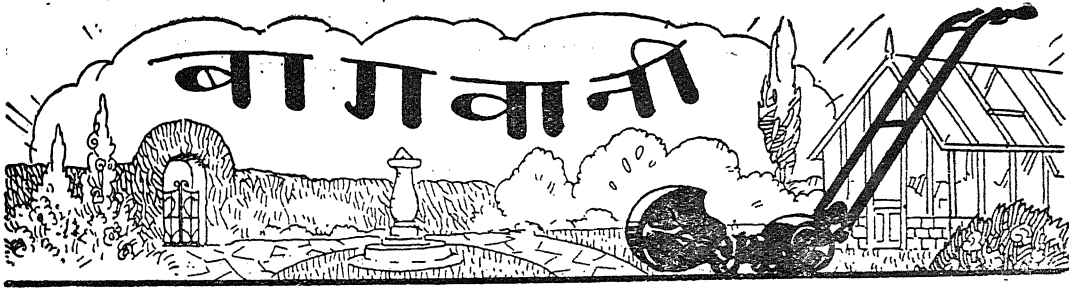
शकरकन्द

शकरकन्द शीघ्र सूखता नहीं है और इसलिये बागमें लगाने के बदले साधारणतः लोग इसे बाजारों से खरीदते हैं, जहां वह खेतों से लाया जाता है। परन्तु यदि इसे बाग में बोना हो तो अप्रैल के अन्तसे जुलाई के अन्त तक बोया जा सकता है। इसका पौदा एक लता है और इसकी जड़में ही कन्द लगता है। किसी शकरकन्दका छिलका लाल होता है और किसीका सफेद। शकरकन्द छोटा और बड़ा कई तरह का होता हैं; परन्तु साधारणतय: यह सातसे आठ इञ्च तक लम्बा होता है। दोनों सिरे नुकीले होते हैं और बीच का भाग मोटा होता है। इसे लोग उबाल कर खाते हैं। इसमें थोडी बहुत मिठास होती हैं। मिठास बढ़ाने के ख्याल से उबालने वाले पानी में कभी-कभी गुड़ भी डाल दिया जाता है: भूननेसे भी मिठास बढ़ जाती है।

किसी भी जमीन में शकरकन्द बोया जा सकता है, परन्तु सबसे मीठा शकरकन्द बालूकी जमीनमें उत्पन्न होता है। स्वाद भी थोडी-बहुत मात्रामें डालनी चाहिये। इसके उत्पन्न करने के लिये अठारह-अठारह इञ्चकी कलमें जमीनमें गाड दी जाती हैं। ये कलमें पौदा की डण्ठल के टुकडे होते हैं, जिन्हें पहले से ही काट कर रख लिया जाता है। इसके बदले पतला-पतला कन्द बोया जा सकता है। ऐसे कन्द जो काफी मोटे नहीं होते और इसलिये खानेके कामके नहीं होते, इस कामके लिये बचाकर रख लिये जाते हैं। यदि ऐसे कन्दों को जमीन में खोदे गए सूखे गड्ढों में रक्खा जाय तो अधिक सुरक्षित रहेंगे। ऐसे कन्द बाग या खेतमें मार्चके अन्तसे लेकर मई के अन्त तक बोये जाते हैं। परन्तु यदि कलम लगाना हो, तो यह काम जून में तब किया जाता है जब बरसात का पहला अच्छा पानी गिरता है। निराई करके जमीनको साफ करना चाहिये, परन्तु एक बार जब शकरकन्द का पौधा जमीन को ढक लेगा तो विशेष सेवा की कोई आवश्यकता नहीं पडेगी।

पटुआ

अप्रैलके आरम्भ से जूनके अन्त तक इसे बोया जा सकता है। पटुआ वस्तुतः कोई तरकारी नहीं है। परन्तु इसके फूलकी जड (पुट चक्र या calyx) को तरकारीकी तरह काममें लाया जाता है। यह भाग गूदे वाला और खट्टा होता है। लोग इसकी चटनीभी बनाते हैं। इसकी बहुत बढ़िया जेली (jelly) बनाई जा सकती है। यूरुपियन लोग जेली बनानेके लिए पटुएकी कद्र करते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं। एकके फूलकी जड़ और फल दोनों गहरे लाल रंगके होते हैं और दूसरेके फूल और फल दोनों ही हरे रंगके होते हैं। लाल वाली जातिको ही लोग अधिक पसन्द करते हैं; क्योंकि वह स्वादिष्ट होती है। पटुएको उत्पन्न करनेमें अधिक सेवाकी आवश्यकता नहीं होती।

पटुआको बीजसे उत्पन्न किया जाता है। बीज आरम्भ अप्रैलसे मईके अन्त तक बोया जाता है। पहले बीज क्यारियोंमें बोया जा सकता है और जब पौधे चार-पांच इंचके हो जांय तो उनको तीन-तीन फुटकी दूरी पर लगा देना चाहिए। जमीनमें खाद खूब दी गई हो; परन्तु खाद सड़ी हो और कुछ दिन पहले की दी गई हो। आवश्यकतानुसार इसे सातवें आठवें दिन सींचना चाहिए। इसके पौदेको पालेसे बहुत अधिक नुकसान होता है। इसलिये इसे ऐसे स्थानमें बोना चाहिए जहां धूपसे जमीन अधिक गर्म हो जा सके।

कुलफा का साग

मध्य मार्चसे जुलाईके अन्त तक बोया जाता है। बीजको क्यारियोंमें छीट कर पौधे उत्पन्न किये जाते हैं। बीज बहुत छोटा होता है; इसलिये इसको बहुत गहराईमें नहीं बोना चाहिये। बीजको छींट कर थोड़ी सी मिट्टी छिड़कनेसे काम चल जाता है। पौदे बहुत दिनों तक नहीं ठहरते। इसलिये सब बीज को एक बारगी नहीं बोना चाहिये। दो-दो सप्ताहके बाद बीजको बोनेसे बहुत दिन तक साग खानेको मिलता है।
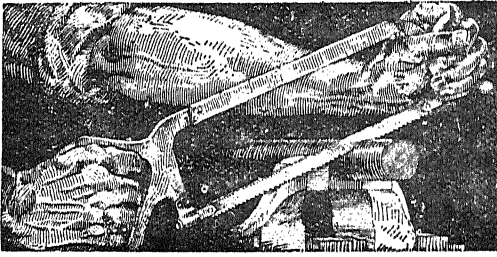
पुस्तकों के लिए टाण्ड

आजकल पढ़े लिखे आदमियों को किताब रखनेकी आवश्यकता रहती है। बाजारसे खरीदने पर इसका काफी दाम देना पड़ता हैं। इस वर्णन से तथा चित्रों की सहायता से आप घर बैठे बड़ी आसानीसे मेज बना सकते हैं।

(क) दोनों सिरों पर लगने वाले दो तख्ते हैं (इनमें चिड़ियों की पूँछके आकारकी कटी हुई जगह रहती है। जिनमें टाण्डके पड़े तख्ते लगाये जा सकें) इनकी लम्बाई ३० इञ्च और चौड़ाई ७ इञ्च होनी चाहिये।

(ख) सबसे ऊपर का पड़ा टाण्ड का तख्ता है। इसकी लम्बाई २२¾ इञ्च तथा चौड़ाई ७ इञ्च होनी चाहिये।

(ग) दो नीचे के खाने के दो तख्ते हैं। इनकी लम्बाई २२¾ इञ्च चौड़ाई ६½ इञ्च तथा सब तख्तोंकी मोटाई ½ इञ्च की होनी चाहिये।
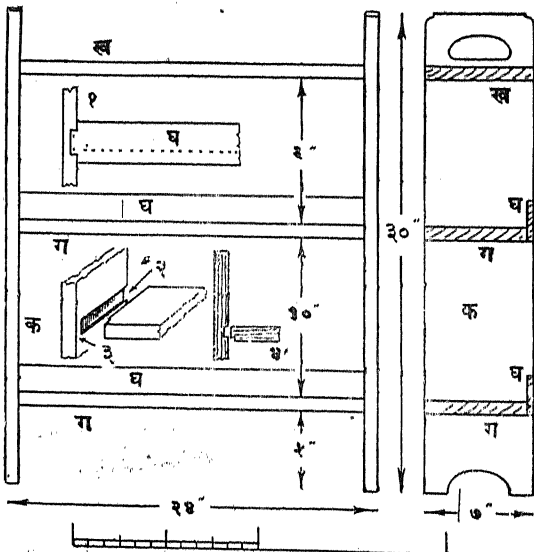
टाण्ड बनाने का तरीका

(घ) नीचे के तख्तों के पीछे लगने वाले दो छोटे-छोटे तख्ते हैं (इनके किनारे 'क' तख्तों में चिड़िया की पूंछ के आकार की जगह में जमे रहते हैं तथा पट तख्तों से ये पेंच से कसे रहते हैं)। इनकी लम्बाई २३½ इञ्च, चौडाई २½ इञ्च और मोटाई ½ इञ्च होनी चाहिये।

ये जो नापें दी गई हैं यह तख्तों की आखिरमें तैयारीके समय की हैं। इसलिये प्रारम्भमें जब तख्तों को काटा जाय तो उन्हें तनिक बड़ा रखना चाहिये, जिससे काटने और साफ करने के बाद ठीक लम्बाई चौड़ाई तथा मोटाई रह सके।

इसके अतिरिक्त सबसे निचले और बीचके तख्तेमें १०इञ्च जगह रहनी चाहिये। सबसे ऊपरके और बीचके तख्तेमें ६इञ्च जगह रहनी चाहिये। सबसे नीचेका तख्ता जमीनसे या रखनेके धरातलसे ५ इञ्च रहना चाहिये। इस प्रकार खानों की चौड़ाई, जमीनसे ऊपरके ५ इञ्च हिस्से को तथा लकड़ी के तख्तों की मोटाई को जोड़ा जाय तो मालूम होगा कि सबसे ऊपरके खाने के पट तख्तेके दोनों तरफके तख्ते ३½ इञ्च ऊंचे रह जायगे।

(१) में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार नीचे के दोनों तख्तों के पीछे लगाने वाली पटरियां चिड़िया की पूंछके आकारके भागोंमें फंसाकर किस प्रकार पेंचों से कस दी गई हैं। इसमें दो बिंदु से जो लगते हैं वे पेंच दिखाये गए हैं।

(२) इसमें यह दिखाया गया है कि चिड़िया की पूंछके आकारके हिस्से में तख्ता किस प्रकार फंसाते हैं।

(३) में यह दिखाया गया है कि चिड़िया की पूंछ के आकार का हिस्सा कहां तक बनाना चाहिये।

(४) में यह दिखाया गया है कि टांडके तख्ते के किनारे को किस प्रकार तथा किस स्थान से काटना चाहिये कि वह चिड़ियाके आकार वाली दरारमें ठीक-ठीक फंस जाय। चित्रसे यह ज्ञात होगा कि टांड के तख्ते के ऊपरी धरातल को नहीं

काटा गया है।
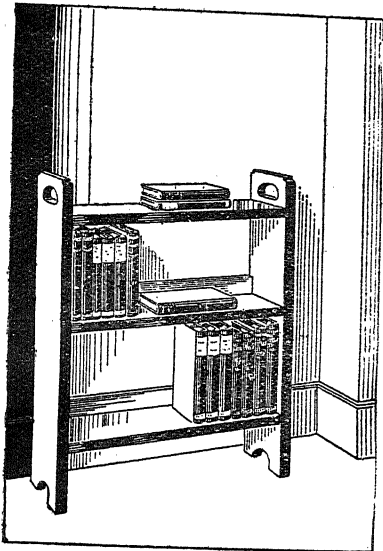
टाण्ड

इसके अतिरिक्त सुन्दरताके लिये दोनों ओरके ('क' तख्ते) तख्तों के नीचे का भाग इस प्रकार काटना चाहिये कि दो पाए बन जांय, तथा ऊपरी भागमें अंडाकार दो छेद कर देने चाहियें।

इन सब भागों को जब आप जोड़ेंगे तो चित्र में दिये गए टांडके आकार का किताबों का टांड तैयार हो जायगा।

(पृष्ठ १५५ का शेष)

हुए हरे चने और मटरमें कार्बोहाइड्रेटस यथेष्ट अंशोंमें पाया जाता है। इनकी प्रकृति शीतल होती है। ये पुष्टिकारक एवं रक्तको शुद्ध रखते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों फल एवं तरकारियां हैं, जिन में कोई न कोई विशेषता है, और सच तो यह है कि कोई भी फल या शाक-भाजी खाई जाए, उसका अवश्य ही स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक दशा में ही उनका सेवन करें। उनके वास्तविक स्वादमें अधिक कृत्रिमता लानेकी चेष्टा न करें। तभी हम उनके गुणोंसे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

'फल' मनुष्य शरीर का एक प्राकृतिक चिकित्सिक है। इसको प्रतिदिन यथेष्ट मात्रामें सेवन करनेसे हमारा शरीर तमाम रोगोंसे मुक्त हो कर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। शरीरके अन्तर्गत एक जाग्रति एवं नूतन स्फूर्ति उत्पन्न होती है।

'जड़ी बूटियों का उद्योग'

भारतकी वनस्पति-सम्बन्धी खोजका १९४०-४१ का वार्षिक विवरण हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसमें बताया गया है कि भारत ऐसा देश है जहां विभिन्न प्रकारकी जड़ी-बुटियां प्रचुरतासे पाई जाती हैं। औषधियां तैयार करनेके लिये कच्चे मालका इतना बाहुल्य होते हुए, कोई कारण नहीं है कि भारत औषधियां निर्माणके क्षेत्र में इतना पीछे रहे। पिछले वर्ष में व्यापारीवर्गने अपनी कुछ कठिनाइयां दूर करनेके लिये कलकत्ताके भारतीय अजायबघरकी औद्योगिक शाखाका और अधिक उपयोग किया है। वनस्पतियोंके कम खर्चीले उत्पादनोंके विषय में जानकारी तथा विवरण प्रदान करके और विदेशोंसे आने वाली वस्तुओंके बदलके विषयमें परामर्श दे कर सहायताकी है।

तेलके उद्योगमें आवश्यक उन्नति करनेके लिये भली प्रकार अध्ययन करनेमें, सुगन्धि देने वाले अनेक पौधोंकी खेती हो सकनेकी जांच करनेमें, और कई प्रकारके देशी वनस्पति रंगों, कुछ रत्नों, गोंद, और चमड़ा रंगनेका मसाला तैयार करने वाले पेड़ों और कई औद्योगिक उत्पादनोंके साधनोंका पता लगानेमें उपर्युक्त विभागने विशेष सहायताकी है।

देशमें औषधियां बनानेमें सहायता करनेके लिये भारतीय जड़ी-बूटियोंके विषयमें विशेष रूपसे अनुसंधान आरम्भ किया गया है। रासायनिक और जीव सम्बन्धी परीक्षणोंसे सिद्ध हो चुका है कि उत्तर भारतकी पहाड़ियोंमें जो अकरकरा उगता है वह विदेशोंसे आने वाले मालसे घटिया नहीं होता। भारतमें उत्पन्न होने वाली समस्त-जड़ी बूटियोंका इस समय विस्तृत रूप से श्रेणी विभाजन किया जा रहा है। इससे अच्छी वनस्पतियों के प्राप्त करनेमें सहायता मिलेगी तथा जड़ी-बूटियोंके उत्पन्न करनेकी प्रेरणा मिलेगी।

इसके विषयमें वनस्पति-अनुसन्धान विभागने; जिन प्रश्नोंके विषयमें परामर्श दिया है, उनमें ये भी हैं—समुद्री सेवारसे अगर और आयोडीन बनानेकी संभावना, तेल के पौधों की खेती करनेकी संभावना, और ऐसे घासोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करना जिससे तेल निकलता है व बहुत सी जड़ी-बूटियोंकी खेती करना। आलोच्य वर्षमें प्रायः ३९०० नमूनोंकी पहचान तथा उनके संबन्धमें पुनर्विचार किया गया। केवल १०७५ नमूनोंका विवरण किया जा सका। भारतीय अजायबघरके सार्व-

जनिक प्रदर्शन ग्रह में और नमूने बढ़ाये गये हैं। उनमें कुछ महत्वपूर्ण व्यापारिक रेशोंके नमूने, कुछ कच्ची औषधियां, वर्मा की साधारण लकड़ी और परतदार लकड़ी उल्लेखनीय है। भारतीय वनस्पतियोंके विषयमें किये गये प्रकाशनोंकी संख्या गत वर्ष जहां ७७ थी, वह अब १२७ हो गई है। भारत-सरकारके इन सब प्रयत्नोंसे आशा की जाती है कि निकट भविष्यमें भारतीय औषधि-उद्योगका एक विशाल क्षेत्र स्थापित हो जाएगा।

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

हीरेकी जांचके नये यन्त्र

अच्छे बुरे हीरेकी पहचान, उनके रंग और चमककी परख के लिये कुछ नये यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। उनका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है:—

'डायमण्डोस्कोप'—यह एक प्रकार की दूरबीन है जिससे हीरों के दोष और उसके काटने में रही त्रुटियां आदि ज्ञात हो जाती हैं।

'कलरीमीटर':—इस यन्त्रसे हीरेका रंग ज्ञात होता है। पुराने यन्त्रोंसे केवल सात प्रकारके रंगोंका निरूपण किया जा सकता था; किंतु इस यन्त्रसे १३ प्रकारके रंग-भेद पहचाने जा सकते हैं। हीरेको इस यन्त्रमें रख कर, दूरबीनसे उसके रंगका मिलान एक नियत रंग-बोर्डसे किया जाता है। जब दोनों रंगों में समानता आ जाती है, तो हीरे का क्रमानुसार स्थान ज्ञात जाता है।

'डायमोलाइट':—इस यन्त्र द्वारा 'मास्टर स्टोन' के साथ हीरों के रंग और चमकका मिलान किया जाता है। एक तेज़ लैंप द्वारा हीरे पर प्रकाश डाल कर यन्त्र द्वारा भीतरी रंगोंका अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक प्रकाशोंकी भांति इस यन्त्रमें न तो प्रकाशके गुण और न उसकी तीक्ष्णतामें भेद होता है अत: किसी भी समयमें हीरेकी परखकी जा सकती है।

इन विभिन्न यन्त्रों द्वारा अब यह संभव हो गया है कि हीरे का उसके गुणके अनुसार क्रमसे विभाजन किया जा सके।

कागजकी रक्षा:—दस्तावेज तथा रुक्के इत्यादि जो कागज बहुत अधिक मूल्यवान होते हैं, तथा जिन्हें बहुत काल तक सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता होती है, उनको सुरक्षित रखनेकी एक नई विधि निकली है।

एक पारदर्शी पतला कागज जिसे ग्लैसीन (glassine) कहते हैं, इस कार्यके लिये काममें लाया जाता है। छपे हुए पर्चे या दस्तावेज पर यह दोनों ओरसे लगा दिया जाता है और इसके किनारे लेवी या कोई जोड़ने की वस्तुसे असल पर्चेसे जोड़ दिये जाते हैं; किंतु इससे ही तो कागजकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये एक दबानेकी मशीन द्वारा बहुत दबावसे यह पतला कागज इस पर दबा दिया जाता है। दबनेके कारण पतला कागज असली कागजसे बिलकुल चिपट जाता है और इसको खराब नहीं होने देता—क्योंकि यह कागज स्वयं झिल्लीके रूपका पारदर्शी होता है इसलिये लिखे हुए शब्दोंके पढ़नेमें भी कठिनाई नहीं पड़ती।

कीटाणुओं (Bacteria) के द्वारा पैट्रोलके तालाब में आग लगना—युद्धके लिये जो पैट्रोल जमा किया गया था, उन हौजों में आपसे-आप आग लग जाती थी। ब्रिटिश-सरकार इसके भेदको जाननेके लिये बहुत परेशान थी। इसका कारण यह सोचा जाता था कि दुश्मनके इशारेसे किसी देशद्रोही ने यह कार्य किया है। कई स्फोट बहुत भयानक हुए, शक में बहुत से लोगों को पकड़ा भी गया; किंतु कसूर साबित न हो सका।

एक बार पैट्रोलके तालाबमें आग लगी और स्फोटके पश्चात् तालाबके निचले भागमें स्थित पानीमें से गैस के बहुतसे बुलबुले निकलते दिखाई पड़े। पैट्रोल पानीके ऊपर तैरता रहता है। इस गैस तथा बचे हुए पानीकी जब परीक्षाकी गई तो एक नये प्रकारके कीटाणुओंका पता चला जो पैट्रोलमें रह सकते हैं और इसको १० प्रतिशत ईथेन (ethane) तथा ६० प्रतिशत मिथेन (methane) में परिणित कर देते हैं। इन दोनों गैसों के कारण ही स्फोट होता था और ये कीटाणु इसके असली कारण थे। अभी तक इसका उपाय नहीं प्राप्त हो सका है।

आयुर्वेदीय विश्व-कोष की उत्कृष्टता पर विद्वानों की कुछ
सम्मतियां

निखिल भारतवर्षीय सप्तविंशतितमं वैद्यसम्मेलनं नागपुरम्

प्रदर्शन-विभाग

प्रमाण-पत्रम्

श्रीमतां बरालोकपुर निवासिनां पं० विश्वेश्वरदयालु राजवैद्य इत्येतेषां प्रदर्शन समागतो आयुर्वेदीय विश्व-कोष ग्रन्थो नितान्तवैद्योपयुक्त इत्यवधार्यतेभ्यः स्वर्णपदकेन सह, प्रथमश्रेण्याः प्रमाण पत्रमेतत्सम्मान पूर्वकं प्रदीयते आशास्यते च विषयेऽस्मिन्नतिवृद्धिं कुर्वन्तु नितरामिति।

प्रदर्शनाध्यक्षः—
वैद्यराज गंगाधर विष्णु पुराणिक
पनवेल

परीक्षक समिति
भिषक् केशरी श्री गोवर्धन शर्मा
छांगाणी
प्राणाचार्य सुन्दरलाल शुक्लः गणेश शास्त्री
जोशी आयुर्वेदाचार्य।
प्रदर्शन मंत्रिणः
लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणीक
ता० १७—८—३८

भारत प्रसिद्ध आयुर्वेद मार्तंड, नि० भा० वैद्य सम्मेलनों के सभापति श्रीयादव जो त्रिकमजी आचार्य बम्बई लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ 'कोष' मिला, इस कोष के प्रसिद्ध करने का आपका प्रयत्न स्तुत्य है। शब्दों की व्याख्या इसमें देखने को मिल सकती है। केवल एक ही 'कोष' से अनेक कोषों के रखने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। वैद्यों को इसका संग्रह अवश्य करना चाहिये।"

नि० भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य श्री पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी आयुर्वेद रत्न,भिषक् केशरी नागपुर से ता० १२—६—३८ को लिखते हैं—

आयुर्वेदिक मौलिक साहित्य को प्रकाश कर वस्तुतः आपने आयुर्वेद संसार को ऋणी बना दिया है। परमात्मा आपको लोमशायु प्रदान करे ताकि फिर भी आप उत्तरोत्तर मौलिक सेवा आयुर्वेद की कर सकें।

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह, प्राणाचार्य, रसायनाचार्य, प्रोफेसर और सुपरिनटेन्डेन्ट आयुर्वेद-कालेज हिंदू विश्व विद्यालय बनारस लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय विश्व-कोष" का द्वितीय भाग अवलोकन किया। यह कोष आयुर्वेद-चिकित्सा व्यवसायियों के लिये उपादेय है। विविध प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी-विषयों का संकलन बड़े परिश्रम और अनुसंधान के साथ किया गया है। आशा है वैद्य-समाज इस ग्रंथ रत्न को अपनाकर संकलयिताओं का उत्साह परिवर्धन करेंगे।

सुधानिधि नामक आयुर्वेद पत्रिका में उसके यशस्वी संस्थापक और सम्पादक, भिषक्मणि पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल राजवैद्य लिखते हैं—

"इसमें आयुर्वेदिक विषयों के साथ ही तिब्बी और एलोपैथी सम्बन्धी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। आज तक की खोजों का फल भी इसमें देखने को मिलेगा; अनन्नास जैसे बहुत से नवीन पदार्थों का समावेश भी इसमें मिलेगा। ऐसे बृहत्-ग्रंथों में जो धन-राशि लगती है उसके लगाने का साहस कर पंडित विश्वेश्वरदयालु जी ने आयुर्वेदीय जगत का बड़ा उपकार किया है, सबसे अधिक धन्यवाद तो इसके संकलन कर्त्ता चुनार-निवासी बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य और बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य को है, जिन्होंने वर्षों परिश्रम कर और जंगल पहाड़ों की खाक छानकर तथा रसायन, भौतिक विज्ञान, जन्तुशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, शरीरशास्त्र, द्रव्यगुण शास्त्र, शरीर क्रिया विज्ञान, शवच्छेद, औषध निर्माण, प्रसूतिशास्त्र, व्यवहार-आयुर्वेद, स्त्री-रोग, बालरोग, विषतंत्र आदि के ग्रंथों का आलोचन कर शब्द-संग्रह और उनका अर्थ दिया है। कहीं-कहीं आवश्यक विशद व्याख्या कर ग्रंथ का महत्व बढ़ाया गया है। वैद्यों को इससे अच्छी सहायता मिलेगी।"

सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्रज्ञ एवं वनौषधि-अन्वेषक श्रद्धेय ठा० बलवंत सिंहजी M. S. C. प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज हिंदू विश्व विद्यालय कोष के सम्बन्ध में इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट करते हैं—

"आयुर्वेद की शास्त्रोक्त परिभाषा जितनी व्यापक हो सकती है, आयुर्वेदीय विश्व-कोष का विषय क्षेत्र भी उतना ही व्यापक रखा गया है। यह बात कोष के लेखक द्वय हमारे मित्र ठा० रामजीत सिंह जी तथा ठा० दलजीतसिंह जी के उदार और विस्तृत दृष्टिकोण की परिचायक है। अनेक क्षेत्रों के विशेषज्ञ तथा बड़े २ विद्वानों की प्रशंसात्मक सम्मतियां उनकी सफलता की द्योतक हैं।

वनस्पति-विज्ञान और तत्सम्बन्धी खोजों में अधिक रुचि होने के कारण मैंने प्रस्तुत ग्रंथ के वनस्पति विषयक अंश को ध्यान से देखा। मुझे इस बात की प्रसन्नता हुई कि इस क्षेत्र में हमारे यशस्वी लेखकों ने संदिग्ध द्रव्यों पर निर्णयात्मक बुद्धि से विचार करने तथा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जैसा कि

आजकल के विरले ही लेखक करते हैं। संज्ञाओं की व्युत्पत्ति का ज्ञान संदिग्धता निवारण का एक प्रधान साधन है जिसे आप लोगों ने अपनाया है। यह तभी सम्भव है जब द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य का अवलोकन किया गया हो। इन दिशाओं में लेखक महोदयों की व्याकुल जिज्ञासा तथा उनकी उद्यमशीलता तथा अनवरत प्रयत्न को देखकर हमें आशा करना चाहिये कि कोष के आगामी खंडों में क्रमशः अधिकाधिक खोज पूर्ण विचारों का समावेश होता जायगा।

आयुर्वेद-कालेज
हिंदू विश्व-विद्यालय काशी
ता० २० अप्रैल १६४२ ई० } श्रीयुत् ठा० बलवंतसिंह जी

कलकत्ता के 'जर्नल आफ आयुर्वेद' पत्र के संपादक लिखते हैं—

In 'Ayurvediya Vishwa-Kosh' by Babus Ramjit Singh and Daljit Singh ji Vaidya, published from Anubhut Yogmala Office, Baralokpur Etawah (U. P.), the joint authors have employed monumental labours in compiling an encyclopoedic dictionary of Ayurvedic literature. Such books are really precious additions to the wealth of Ayurvedic culture, embracing a wide range of comprehensive study. The authors deserve congratulations for the gigantic venture they have embarked upon, and the first two volumes that have already seen light well justify the high hope thatthe subsequent parts completing the colossal task will, by its successful fulfilment, largely help to facilitate the cultivation of Ayurvedic lore in these days of our sastras. Renaissance couched in the rashtra bhasha of Hindustani the 'kosh' will be of all India utility.

Kaviraj M. *K. Mukherjee B. A. Ayurvedshastri*
Journal of Ayurved Calcutta

किंग जार्जस मेडीकल कालेज डिपार्टमेन्ट आफ फार्माकालाजी लखनऊ

२३ मार्च सन् १६३६ ई०

प्रिय महाशय !

आपने जो अपने 'आयुर्वेदीय कोष' का प्रथम खंड प्रेषित किया, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस प्रकार की रचना दीर्घ प्रयास एवं महान योग्यता की अपेक्षा रखती है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि, भारतीय चिकित्सा प्रणाली के प्रेमियों द्वारा यह पूर्णतया अभिनन्दित होगा। मैं आपके इस उद्योग की सफलता का अभिलाषी हूँ।

बी० एन० व्यास एम० बी०, रायबहादुर,
प्रधानाध्यक्ष निघण्टु विभाग विश्वविद्यालय-लखनऊ

हमारे शरीर की रचना के यशस्वी लेखक स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ जी वर्मा L.M.S. सिविलसर्जन जौनपुर, लिखते हैं—

'निस्संदेह आपका 'कोष' एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। प्रत्येक चिकित्सा प्रेमी को इस से लाभ उठाना चाहिये।"

डाक्टर भास्कर गोविंद घाणेकर, बी० एस० सी०, एम. बी. बी. एस. आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज, हिंदू विश्व-विद्यालय बनारस लिखते है—

'आयुर्वेदीय कोष का प्रथम विभाग मैंने आद्योपांत देखा। इसके और भी कई भाग निकल चुके हैं। इसका निर्माण करके लेखक द्वय ने वैद्य-समाज के ऊपर अतुल उपकार किया है। यद्यपि ग्रंथ का नाम आयुर्वेदीय कोष है तथापि इसमें आयुर्वेद, युनानी और एलोपैथी इन तीनों चिकित्सा प्रणालियों के सम्पूर्ण विषयों का विवेचन अकारादि क्रम से किया गया है। अर्थात् यह ग्रंथ वैद्यक का ज्ञान कोष है जो लेखक द्वय के अनवरत परिश्रम का फल है। इस प्रकार के एक दो कोष पहले हो चुके हैं परन्तु उनसे यह कोष अधिक विस्तृत और अधिक उपयोगी है। इसलिये वैद्य महानुभावों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस ग्रंथ को खरीद कर अपना ज्ञान बढ़ावें, तथा साहसी लेखकद्वय की उत्साह वृद्धि कर 'एक पंथ दो काज' की कहावत चरितार्थ करें।

'वनस्पति-चंद्रोदय' की भूमिका प्रथम भाग पृ० ७ पर ग्रंथ के लेखक महाशय लिखते हैं—

—हर्ष है कि हाल ही में हिन्दी में चुनार-निवासी बाबू रामजीत सिंह और बाबू दलजीत सिंह वैद्य ने महान परिश्रम के साथ एक आयुर्वेदीय विश्व-कोष का प्रणयन प्रारम्भ किया है। इस ग्रंथ के दो भाग निकल चुके हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य उठाया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रथ अंत तक सफलता पूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा।

श्रीमान् पं० आयुर्वेदाचार्य कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए. चाँदा (सी० पी०) से लिखते हैं—

"हमारे मित्रद्वय वैद्यराज, पुरुषसिंहों ने जो परिश्रम किया है और कर रहे हैं, इसके लिये केवल आयुर्वेद ही नहीं, अपितु हिन्दी भाषाविज्ञ समस्त संसार, उनका तथा प्रकाशक महोदय, सर्वमान्य चिकित्सक वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालु जी का आभारी है। यह केवल 'आयुर्वेदीय कोष' ही नहीं, प्रत्युत 'आयुर्वेदी विश्व-कोष' कहलाने के योग्य है। यद्यपि 'आयुर्वेद' शब्द में इस व्यापक अर्थ का समावेश है तथा लेखकों ने प्रस्तावना में इसका स्पष्टीकरण भी किया है, तथा आधुनिक काल में यह शब्द एक प्रकार से योग रूढ़ अर्थ का ही बोध कराता है। जैसे यद्यपि 'पंकज' में कीचोत्पन्न समस्त

वस्तुओं का समावेश है, तथापि सर्वसाधारणतः 'कमल' के ही अर्थ में उसका उपयोग किया जाता है। तद्वत् 'आयुर्वेद' से यद्यपि संसार की सब औषध प्रणालियों का बोध व्यापक अर्थ में होता है, तथापि आर्यों की वेदोक्त प्राचीन निदान एवं चिकित्सा-प्रणाली का ही बोधक है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में अकल अकलंक, अकाम, अकुलीन, अखिल, अकुशल इत्यादि कतिपय सर्व साधारण शब्दों का भी अर्थ दिया गया है। इसीसे इस ग्रंथरत्न को केवल 'आयुर्वेदीय कोष' के नाम से पुकारना, उसकी कीमत को घटाना है। अब आगे इस ग्रंथ को 'आयुर्वेदीय विश्व-कोष' इस नाम से प्रसिद्ध करने से इसका विशेष महत्व एवं प्रचार होगा, ऐसी मेरी विनीत सूचना है।

राजवैद्य पं० रवीन्द्र शास्त्री कविभूषण इस ग्रंथ की समालोचना करते हुये लिखते हैं—

आयुर्वेदीय विश्व-कोष के प्रथम खंड को मैंने खूब अच्छी तरह देखा है। ग्रंथ के सांगोपांग अध्ययन के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में यह क्रान्तकारी और अद्वितीय ग्रंथरत्न है, आयुर्वेदीय निघंटु के साथ ही एलोपैथिक तथा हिकमती निघण्टु का उल्लेख होने से सोने में सुगन्ध हो गई है। प्रत्येक शब्द का वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से होने पर भी साधारण जनता भी इससे बहुत लाभ उठा सकती है, मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रकाशन से आयुर्वेदिक साहित्य के एक महान अंग की पूर्ति हो गई है, जो वैद्य मात्र के लिये अभिमान की बात है।

पुस्तक के लेखक महोदयों ने निश्चय ही अपने ज्ञान और अन्वेषण का सदुपयोग करके वैद्य का न केवल हित ही किया है अपितु उनके लिये एक आदर्श भी बना दिया है। पुस्तक के प्रकाशक महोदय ने वास्तव में ऐसे विशालकाय ग्रंथ का प्रकाशन करके अपने उत्साह और आयुर्वेद प्रेम का परिचय दिया है। मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को ही इस सद्गुण के लिये धन्यवाद देता हूँ।

वैद्य मात्र से मेरी यह अपील है कि वह अपनी ज्ञान वृद्धि के लिये पुस्तक की एक २ प्रति अपने पास अवश्य रक्खें।

कविराज शशिकान्त भिषगाचार्य, पूर्व सम्पादक जीवनसुधा इस ग्रंथ की उपयोगिता पर लिखते हैं—

आयुर्वेद साहित्य में इस प्रकार के महा कोष की निहायत जरूरत थी, जिसके स्वाध्याय से वैद्यक डाक्टरी और यूनानी का पूर्ण ज्ञाता हो सके, यह बात आयुर्वेदीय विश्व कोष से पूर्ण हो सकती है, हिंदी में अभी तक ऐसा अभूत पूर्व ग्रंथ नहीं था। यह अभाव भगवान विश्वेश्वर के द्वारा पूर्ण हो रहा है, आयुर्वेद का साहित्य संसार के सब साहित्यों से पिछड़ा हुआ है। जब तक इस प्रकार की ज्ञान वर्धित अनुपम पुस्तकों का निर्माण नहीं होगा, तब तक आयुर्वेद साहित्य नहीं बढ़ सकता।

जो कार्य आयुर्वेद महा मंडल के हाथों द्वारा कभी का समाप्त हो जाना चाहिये था, वह गुरुतर कार्य पं० विश्वेश्वरदयालु जी अपने निर्बल कंधों पर उठा रहे हैं, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री गणपतिचन्द्र केला, सम्पादक 'धन्वन्तरि' विजयगढ़ (अलीगढ़) से लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय-कोष" मिला, हार्दिक धन्यवाद ! ऐसा आवश्यक विशाल आयोजन आप उठा रहे हैं, इसके लिये दोनों ही रचयितागण हमारे हार्दिक धन्यवाद को स्वीकार करें।

विश्वेश्वर भगवान ने प्रकाशितकर वैद्य समाज का जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है। ऐसे विशद विशाल विशेषोपयोगी ग्रंथ के संकलन में समस्त वैद्य-समाज और संस्थाओं को सहायता देकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।"

सम्पादक 'आयुर्वेद संदेश' लाहौर (१५ सितम्बर १९३४ ई०) के अङ्क में लिखते हैं—

"यह कोष अपनी पद्धति का पहिला ही कोष है, जिसमें वैद्यक, यूनानी और एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के न केवल अर्थ दिये गये है, वरन् सम्पूर्ण सर्व मतानुसार व्याख्या की गई है यथा अश्वगंधा की व्याख्या ५ पृष्ठों में समाप्त की गई है। अर्थात् अश्वगंधा का स्वरूप, पर्याय, अंग्रेजी नाम वानस्पतिक वर्णन, उत्पत्ति स्थान, आकृति, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योग तथा अश्वगंधारिष्ट, अश्वगंधा पाक, अश्वगंधा चूर्ण, अश्वगंधा घृतादि, मात्रा, गुण, अनुपानादि सहित एवं भिन्न-भिन्न द्रव्यों का शारीरिक रोगों पर सर्वमतानुसार अच्छा प्रकाश डाला गया है, जिससे पाठक पर्याप्त ज्योति प्राप्त कर सकते हैं। इस विस्तृत व्याख्या के कारण ही कोष के प्रथम भाग में जो ६०० पृष्ठों में विभक्त है, १०२२५ शब्दोंका वर्णन है। इस भाग में अनुक्रमणिकानुसार अभी तक 'क' अक्षर की भी समाप्ति नहीं हुई। यदि इसी शैली का अनुकरण अगले भागों में भी किया गया, तो कई भागों में समाप्त होगा। पुस्तक का आकार चरक तुल्य २२×२९-८ पेजी है। इसे आयुर्वेद का "महाकोष" समझना चाहिये।

श्री संपादक जी नवजीवन अकोला

लेखक तथा संकलनकर्ता सर्व श्री रामजीतसिंह जी वैद्य और दलजीतसिंह जी वैद्य प्रकाशक पं० विश्वेश्वरदयाल जी वैद्यराज बरालोकपुर इटावा मूल्य ६।) सजिल्द अजिल्द ५॥) रु०।

भारतवर्ष अनादि काल से अद्भुत विशेषताओं के लिये जगत प्रसिद्ध रहा है। उसने संसार को जहां दर्शन और विज्ञान का अलौकिक संदेश देकर अपना मस्तक ऊंचा किया है वहां वह चिकित्सा विज्ञान में भी सर्वोपरि रहा है। किन्तु धीरे धीरे ये सारी विशेषतायें हमारी मानसिक गुलामी के कारण हम से दूर भाग रही है और हम प्रत्येक क्षेत्र में परावलम्बी बन रहे हैं। भारत की आयुर्वेदीय औषधियां अपने गुणों आदि में अपनी सानी नहीं रखतीं, बशर्ते कि उनका उपयोग सम्यक् रूप में यथा विधि किया जाय।

प्रस्तुत कोष में रसायन, भौतिक विज्ञान, शल्य शास्त्र आदि आयुर्वेद विषयक हिन्दी संस्कृत और विभिन्न भाषाओं के शब्द उनकी व्युत्पत्ति एवं परिभाषा सहित अकारादि क्रम से परिश्रम पूर्वक संग्रहीत किये गये हैं। अनेक स्थलों पर खोज पूर्ण नोट दिये गये हैं जिन से प्राचीन और अर्वाचीनवैद्यों की अनेक शंकाओं का निवारण सहज ही हो जाता है। अ से लेकर अज्ञात यक्ष्मातक लगभग १०२५६ से भी अधिक शब्दों का यह उपयोगी कोष प्रत्येक वैद्यके लिये उपयोगी सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

देखिए "स्वराज्य" खंडवा, ११ जून सन् १९३५ की संख्या ४१ में अपने कैसे जोरदार उद्गार प्रगट करता है।

"इस विषय में आजकल जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रस्तुत 'आयुर्वेदीय कोष' को ऊँचा स्थान मिलना चाहिये। ग्रन्थकारों ने इस कोष के संकलन में जो परिश्रम किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।"

——

आयुर्वेदीय विश्व कोष द्वितीय खंड के सम्बन्ध में आयुर्वेदिक कालेज-पत्रिका (हिंदू विश्व-विद्यालय) की राय—

उपर्युक्त पुस्तक में आयुर्वेद, यूनानी एवं एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ और उनकी व्याख्या दी गई है। पुस्तक को देखने से यह पता लगता है कि यह विश्व-कोष गंभीर अध्ययन और परिश्रम से लिखा गया है। आयुर्वेद-संसार में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। बहुत दिनों से जिस कमी का अनुभव विद्वान लोग कर रहे थे, निस्संदेह इससे वह कमी पूरी हो जायगी। पूर्ण प्रकाशित होने के बाद यह एक आयुर्वेद का उज्ज्वल रत्न होगा। विद्यार्थियों से लेकर विद्वान विचारकों तक के लिये पठनीय मननीय और संग्रहणीय है। प्रकाशक और संकलन कर्त्ताओं के इस कार्य की हम सराहना करते हैं कि वे इसे पूर्ण करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे जिससे यह महान् ग्रंथ शीघ्र ही तैयार हो।

——

अगस्त, १९४२ सिंहार्क, सं० १९९९ वि०

प्रयाग की
विज्ञान-परिषद् का
मुख-पत्र जिसमें
आयुर्वेद विज्ञान भी
सम्मिलित है।

ा ५५
मूल्य ३) रु०

क
म
ल
का
फू
ल

ख्या ३२९
ख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

नियम

(१) 'विज्ञान' मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के मुख्य सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। वे आज २८ वर्षसे वैज्ञानिक साहित्य द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है।

सभ्यों को सुविधा

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव्य-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं। तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौने मूल्य पर मिलती हैं।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें 'मन्त्री, विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद' के पास भेजे जाएं। आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें सम्पादक विज्ञान अमृतसर के पास आनी चाहियें। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर मैनेजर, ब्रांच विज्ञान ऑफिस, अकाली मार्किट, अमृतसर के पते पर आने चाहियें।

विषय सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ५५ | अगस्त, सन् १९४२, सिंहार्क, संवत् १९९९ विक्रमी | संख्या ५

तारा-समूह

[लेखक—डा० गोरख प्रसाद, डी. एस-सी.]

आकाशमें जो तारे दिखलाई पड़ते हैं, वे पहिचानकी सुविधाके लिए तारा-समूहों (constellations) में बांट दिये गये हैं। इनमेंसे कुछ समूहों के नाम प्राचीन भारतीय ज्योतिष ग्रन्थोंमें मिलते हैं। शेषमें से कुछके नाम हालमें गढ़ लिये गये हैं। उदाहरणतः, कुछ नाम श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के सूर्यसिद्धान्त के विज्ञान-भाष्य में हैं; कुछ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके कोष में हैं; कुछ इन्दौर-पंचांग-शोधक-कमेटी की रिपोर्ट १९३१ में हैं। परन्तु तारा-समूहकी पूरी नामावली हिंदीमें अभी तक कहीं देखनेमें नहीं आई। सम्भवतः अभी तक बनी ही नहीं थी। नीचे पूरी सूची दी जाती है। कुछ नामों के गढ़ने में मेरे मित्र डाक्टर सत्यप्रकाशसे सहायता मिली, अतः वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। इस सूचीमें मैंने पुराने नामोंको यथासंभव ज्यों का त्यों ही रखा है। जब कभी कोई विशेष कारण था, तभी नाम दूसरे रक्खे गये हैं।

तारा-समूहोंकी पाश्चात्य सूचीका इतिहास अत्यन्त मनोरञ्जक है। वर्तमान सूचीके लगभग आधे नाम प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी टॉलमी (Ptolemy) की पुस्तक ऐलमैजेस्टसे लिये गये हैं। टॉलमी की सूची अधूरी ही थी; क्योंकि ग्रीससे सारा आकाश दिखलाई नहीं पड़ता था और जितना दिखलाई भी पड़ता था वह पूर्णतया टॉलमी के तारा-समूहों में नहीं आ पाया था। टॉलमी इतना यशस्वी ज्योतिषी था कि १५०० वर्षों तक उसकी सूचीमें हेर-फेर करनेकी किसीको हिम्मत नहीं पड़ी। परन्तु सोलहवीं शताब्दीसे टॉलमीकी सूचीमें लोग और नाम जोड़ने लगे। सूची कुछ समयमें आवश्यकतासे बड़ी हो गई और कई व्यक्तियोंकी सूझका परिणाम होनेके कारण कहीं-कहीं गड़बड़ी भी हुई। कई ज्योतिषियोंने, तब इसमें सुधार करना आरम्भ किया और अन्तमें केवल ८८ नाम रह गये। १९३० में अंतर्राष्ट्रीय-ज्योतिषिक-संघने इन ८८ नामों को निश्चित रूप से चुन कर उनकी सीमाएँ निर्धारित कर दीं। साथकी सूचीमें ये ही नाम दिये गये हैं।

टॉलमी ने लगभग १४० ई० में अपनी पुस्तक लिखी थी, परन्तु उसने स्वयं तारासमूहों के नाम नहीं गढ़े थे। वे उससे भी पुराने यवन ज्योतिषियों के रक्खे हुए थे। ये नाम ईजिप्ट से लाये गये नकशोंके अनुसार थे। ईजिप्टके तारा-समुहोंकी

आकृतियां सुमेर लोगों (Sumerians) से ज्ञात हुई थीं और सुमेरों को बाबुल लोगों (Babylonians) से। इस प्रकार ये आकृतियां लगभग ३००० ई० पूर्व से आ रही हैं। इन आकृतियों के नाम इन भिन्न-भिन्न देशोंमें वहां की भाषा के अनुसार भिन्न-भिन्न थे, परन्तु अर्थ लगभग बराबर ही एक से रहे हैं।

तारा-समूहोंकी पहिचानसे बड़ा आनन्द मिलता है, परन्तु इस विषयका पूरा ज्ञान स्थानाभावके कारण यहां नहीं बतलाया जा सकता। जिनको इस ओर रुचि हो, उन्हें श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत सूर्यसिद्धान्त का विज्ञान भाष्य देखना चाहिये; जहां आवश्यक नकशे भी मिलेंगे।

चन्द्रमाके मार्गके पासके तारे विशेष छोटे-छोटे समूहोंमें भी बांटे गये हैं, जिनको नक्षत्र या तारका-समूह (asterisms) कहते हैं। यह बँटवारा भारतवर्षकी विशेष वस्तु है। पाश्चात्य देशोंमें इसका प्रचार नहीं है।

तारा-समूहों की सूची

१.	Andromeda	अन्तरमदा *
२.	Antlia	पंप
३.	Apus	खग
४.	Aquarius	कुंभ *
५.	Aquila	गरुड़ †
६.	Ara	वेदी
७.	Aries	मेष *
८.	Auriga	रथी
९.	Bootes	भूतेश †
१०.	Caelum	टंक[1]
११.	Camelopardus	जिराफ[2]
१२.	Cancer	कर्क *
१३.	Canes Venatici	मृगया कुक्कुर
१४.	Canis Major	बृहत् कुक्कुर
१५.	Canis Minor	लघु कुक्कुर
१६.	Capricornus	मकर *
१७.	Carina	नौतल[3]
१८.	Cassiopeia	कश्यपी *
१९.	Canteurus	किन्नर[1]
२०.	Ceppeus	सुपूज्य[2]
२१.	Cetus	तिमि[3]
२२.	Chamaeleon	गिरगिट
२३.	Circinus	परकार
२४.	Columba	कपोत
२५.	Coma Berenices	केश[4]
२७.	Corona Australis	दक्षिण किरीट
२७.	Corona Borealis	उत्तर किरीट
२८.	Corvus	काक
२९.	Crater	चषक[5]
३०.	Cruz	स्वास्तिक †
३१.	Cygnus	हंस
३२.	Delphinus	उलूपी[6]
३३.	Dorado	खड्ग मत्स्य[7]

१—टंक (संस्कृत)=पत्थर गढ़नेकी टांकी; २—जिराफ=ऊँट की तरह, परन्तु चित्तीदार, पशु; ३—नौतल=नावका पेंदा।

१—किन्नर=मनुष्य के मुख और घोड़ेके शरीर वाला प्राणी; यूनानी साहित्यमें (centaur) इसी जाति का एक व्यक्ति विशेष था; २—यूनानी साहित्य में सुपूज्य आयोपा देशका राजा था; कश्यपी उसकी स्त्री थी, और अन्तरमदा उसकी लड़की। अन्तरमदाके सौंदर्यकी डाहसे समुद्रकी रानीने तिमि; (=ह्वेल) को भेजा। डरके मारे सुपूज्य ने अन्तरसदा को समुद्र तट पर बँधवा दिया। इतने ही में पारसीय (संभवतः खगाश्व पर चढ़ा हुआ), पहुंचा और तिमिको मार अंतरमदासे विवाह कर उसे अपने घर ले गया। इस कथानकका अनुवाद प्राचीन समय में संस्कृत में किया गया था और अंतरमदा, कश्यपी, पारसीय ये तीन नाम उसी समय रक्खे गये थे। सुपूज्यके बदले कपूज था, क्योंकि यूनानी शब्दका उच्चारण मिलता-जुलता था जब यूनानी शब्द लैटिन भाषा में लिखा गया तो ce का उच्चारण स हो गया। अंग्रेजी में लैटिन शब्द ही लिया गया है। इसलिये अब कपूजके बदले सुपूज्य अधिक उचित जान पड़ता है। ३—तिमि (संस्कृत)=ह्वेल मछली; ४—coma=केश, पूरे लैटिन नाम का अर्थ है बेरेनिसका केश; ५—चषक(संस्कृत)=प्याला; ६—उलूपी=एक प्रकारकी बड़ी मछली, सुइंस या सूँस; ७—खड्ग=तलवार, मत्स्य=मछली; खड्गमत्स्य=sword fish=darado।

३४. Draco	अजगर †	६३. Persus	पारसीय*
३५. Equuleus	टट्टू	६४. Phoenix	गृध्र
३६. Eridanus	वैतरणी	६५. Pector	चित्रकार
३७. For nax	भट्टी	६६. Pisces	मीन *
३८. Gemini	मिथुन*	६७. Pisces Australis	दक्षिण मीन
३९. Grus	बक†	६८. Puppis	नौ पृष्ठ[१]
४०. Hercules	हरकुलिश[१] †	६९. Pyxis	दिक्सूचक
४१. Horologium	होरामाप[२]	७०. Reticulum	जाल
४२. Hydra	जलसर्प	७१. Sagitta	सायक[२]
४३. Hydrus	जल-सर्पिणी	७२. Sagittarius	धनु *
४४. Indus	सिंधु	७३. Scorpio	वृश्चिक *
४५. Lacerta	शरट[३]	७४. Sculptor	शिल्पी[३]
४६. Leo	सिंह*	७५. Scutum	ढाल
४७. Leo Minor	लघुसिंह	७६. Serpens	सर्प
४८. Lepus	शशक †	७७. Sextans	षष्ठमांश[४]
४९. Libra	तुला *	७८. Taurus	वृष*
५०. Lupus	वृक †	७९. Telescopium	दूरदर्शक
५१. Lynx	विडाल	८०. Toucan	चक्रवाक[५]
५२. Lyra	वीणा	८१. Triangulum	त्रिकोण
५३. Mensa	पठार	८२. Triangulum Australe	दक्षिण त्रिकोण
५४. Microscopium	सूक्ष्मदर्शक	८३. Ursa Major	सप्तर्षि *
५५. Monoceros	एक शृंग[४]	८४. Ursa Minor	लघु सप्तर्षि
५६. Musca	मक्षिका †	८५. Vela	नौवस्त्र[६]
५७. Norma	गोनिया[५]	८६. Vergo	कन्या*
५८. Octans	अष्टमांश[६]	८७. Volans	उड़ंकू[७]
५९. Ophiucus	सर्पधर	८८. Vulpecula	लोमस[८]
६०. Orion	आग्रहायण *		
६१. Pavo	मयूर		
६२. Pegasus	खगाश्व		

ऊपर हिंदीके बदले संस्कृत शब्द इस अभिप्रायसे रक्खे गये हैं कि वे बँगला, मराठी, गुजराती, आदिमें भी प्रचलित हो सकें।

१—हरक्यूलीज यूनानी साहित्य में एक अत्यन्त पराक्रमी योद्धा था; हरकुलिश=हर + कुलिश (हर=ईश्वर, कुलिश = वज्र); २—होरामाप = घड़ी; —३ शरट (संस्कृत)=छिपकली; ४—एकशृंग =एक कल्पित जंतु जिसे एक ही सींग होता है, unicorn; ५—गोनिया=एक यन्त्र जिससे बढ़ई लोग समकोण नापते हैं; ६—अष्टमांश=कोण नापनेका एक यन्त्र।

१—नौपृष्ठ=नौकाका पिछला भाग; २—सायक = तीर; ३—शिल्पी=पत्थर गढ़ने वाला; ४—षष्ठमांश=कोण नापने का यन्त्र विशेष; ५—Toucan=अमरीकाका एक पक्षी जिसकी चोंच बहुत बड़ी होती है; ६—नौवस्त्र=नाव का पाल; ७—पूरा नाम volans pisces=उड़ंकू मछली; ८—लोमस = लोमड़ी।

* जिन नामों पर ऐसा चिह्न है, वे अत्यन्त प्राचीन हैं।

† जिन नामों पर ऐसा चिह्न है, वे दूसरों के गढ़े हैं।

रासायनिक खाद

[लेखक—डा० सत्यप्रकाश, डी. एस-सी.]

हमारे देश में अधिकतर प्राकृतिक खादों का ही उपयोग किया जाता है, जिनमें गोबर की खाद का सबसे अधिक प्रचार है। गोबरकी खाद के अतिरिक्त मछली की खाद, कूड़े-करकट की खाद, खूनकी खाद, पत्तियोंकी खाद और हड्डी की खादका भी यथावसर व्यवहार होता है। इन खादों के विशेष विवरणके लिये विज्ञान-परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित "उपयोगी नुसखे" वाली पुस्तक देखिये। हम इस लेखमें रासायनिक खादों का कुछ विवरण देंगे। इनमें से कुछका व्यवहार तो हमारे देशमें होने लगा है, पर फिर भी बहुत थोड़ी मात्रा में, अभी हमने खादों का महत्व समझा नहीं है। जिस खेत में हम आज १० मन अनाज उत्पन्न करते हैं, उसमें उचित खादों के व्यवहारसे आसानीसे २० मन पैदा कर सकते हैं। आजकल युद्धके समय तो सब ओर से यह घोषणा की जाती है कि भोजन-सामग्री अधिकसे अधिक मात्रामें तैयार की जानी चाहिये, पर यह तभी सम्भव है जब हम तीन बातों पर ध्यान दें। (१) जुताई का प्रबन्ध ठीकसे हो, (२) सिंचाई उचित अवसर पर और अच्छी मात्रामें की जाय, (३) खादों का उचित मात्रा में प्रयोग किया जाय। यह निश्चय है कि प्राकृतिक खादों पर हम सर्वथा निर्भर नहीं रह सकते।

पौधों को क्या चाहिये ?

हमें यह जानना चाहिये कि पौधे क्या चाहते हैं ? सब पौधों की आवश्यकतायें एक-सी नहीं हैं। हम अपने खेतों और बगीचों का इस प्रकार विभाग कर सकते हैं :—(१) धान की खेती जिसे नाइट्रोजन नहीं चाहिये, (२) गेहूं, जौ, चना और जुआर की खेती जिसे नाइट्रोजनकी विशेष आवश्यकता है, (३) तिल, सरसों, नारियल और अरंडी आदि तिलहनों की खेती, जिनमें से हम तेल प्राप्त किया करते हैं। इनको भी नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं है। (४) लौकी, कुम्हड़ा, करेला और टमाटर आदि शाक-भाजियों की खेती, जिन्हें विशेषतया पानी और खनिज-लवण चाहियें। (५) घास की खेती जिसे खनिज और नाइट्रोजन दोनों चाहियें। (६) फूल-पत्तियों की खेती, जैसे ऋतु-ऋतु के फूल, करोटन और पान आदि पौधे। (७) फलों की खेती जिनके लिये पानी और खनिज-लवण चाहियें। (८) मसालों की खेती हल्दी, धनिया, सौंफ और ज़ीरा आदि। (९) गुलाब, केवड़ा चमेली और खस आदि इत्र देने वाले फूल-पौधों की खेती।

यह ठीक है गोबर या विष्ठा की खाद में लगभग सुन्दर खादके सभी अंश विद्यमान् हैं, पर हर प्रकार की खेतीके लिये एक-सी ही खाद दी जाय, यह बुद्धिमत्ता नहीं है। उचित खाद देकर हम बचत कर सकते हैं। जिन पौधों को विशेष नाइट्रोजन नहीं चाहिये, उन्हें गोबर की खाद अधिक क्यों दी जाय, इस खादको अन्य पौधों के लिये बचाया जा सकता है। रासायनिक खादों के उपयोगमें सबसे बड़ा लाभ यह है कि हम खाद द्वारा केवल उस अंश की पूर्ति कर सकते हैं जिसकी पौधे को विशेष आवश्यकता हो। हमको यह भी जानना चाहिये कि पौधे को किस समय कौन-सी वस्तु की आवश्यकता है, जिससे उसको वैसी ही खाद दी जावे। बोने से पहले बीज बोने के बाद, फूल निकलने से पूर्व, पतझड़ के अवसर पर, किस ऋतु में किस समय, पौधा क्या चाहता है इसका ज्ञान कुशल माली और किसान दोनों को होना चाहिये, जो माली समय पर उचित खाद नहीं देता, वह खादसे पूरा लाभ नहीं उठा सकता। इन सब बातों का ज्ञान कृषि-विभाग और रसायनशालाओं में रुचि रखने से हो सकता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि राज्यकी ओरसे उचित परामर्श देने वाले विभाग सुलभ स्थानों पर खोले जांय, और ये परामर्श ऐसे हों जिनमें कृषकों और मालिकों की पूरी निष्ठा हो। यदि आपका किसान आप पर विश्वास नहीं रखता है, तो उसे आपके अच्छे-से-अच्छे परामर्शों से भी कोई लाभ नहीं हो सकता।

खादों का वर्गीकरण

आवश्यक अंशोंकी दृष्टिसे खादोंका चार विभागों में वर्गीकरण हो सकता है—(१) नाइट्रोजन वाली खादें, (२) फॉसफेट वाली खादें, (३) पोटाश वाली खादें और (४) विशेष खनिज-लवणों वाली खादें। पौधों को सोडियम, मेगनीसियम, कैलसियम और गन्धक के अतिरिक्त थोड़ा-सा मैंगनीज, ज़िंक, तांबा और बोरोन भी चाहिये। अधिकतर दो या अधिक खादों का उचित अनुपात में मिश्रण देना चाहिये। सबसे अधिक

आवश्यकता नाइट्रोजन, फॉसफोरस और पोटाश खादों की है। इनका कुछ उल्लेख नीचे किया जाएगा।

नाइट्रोजन की खाद

नाइट्रोजन बहुधा निम्न चार रूपों में दिया जाता है—

रूप	उदाहरण
१. नाइट्रेट	सोडियम नाइट्रेट, कैलसियम नाइट्रेट।
२. अमोनियम लवण	अमोनियम सलफेट, अमोनियम फॉसफेट।
३. पानी में घुलनशील	यूरिआ और अन्य घुलनशील यौगिक जो प्राकृतिक खादोंमें विद्यमान् रहते हैं।
४. पानी में अनघुल प्राकृतिक नाइट्रोजन,	मछली की खाद, गोबर, बिनौले की खली आदि में से।

कौन-सी खाद अधिक उपयोगी है, यह तीन बातों पर निर्भर है :—(१) नाइट्रोजनकी प्रतिशत मात्रा किसमें अधिक है। (२) पौधा किस खादमें से नाइट्रोजन अधिक आसानी से ले सकता है। (३) खेत में उस खाद की प्रक्रिया किस प्रकार होती है।

कुछ रासायनिक खादोंका हम यहां विवरण देंगे—

(१) सोडियम नाइट्रेट—यह 'चिल्ली का शोरा' नाम से हमारे देश में प्रायः बाहरसे आता है। दक्षिण अमरीका के चिल्ली प्रान्तमें इसका विशाल संग्रह है, वहीं से बहुधा स्वच्छ करके देश-देशान्तरों में भेजा जाता है। यह सोडा-राख और नाइट्रिक एसिड की प्रक्रिया से अथवा कैलसियमनाइट्रेट घोल और सोडियम ज़िओलाइटकी प्रक्रियासे भी बनाया जाता है।

कैलसियम नाइट्रेट—नाइट्रिक ऐसिड और चूने के पत्थर की प्रक्रियासे बनाया जाता है, इसमें थोड़ा-सा अमोनियम नाइट्रेट भी डाल देते हैं, जिससे थक्का न जमे और भुरभुरा रहे।

पोटैसियम नाइट्रेट—यह हमारे देश का साधारण कलमी शोरा है। सोडियम नाइट्रेट (चिल्ली-शोरा) और पोटैसियम क्लोराइडके घोलों को भी मिलाकर बनाया जाता है।

अमोनियम नाइट्रेट—यह पानी सोखता है, अतः इसमें बहुधा अमोनियम सलफेट या कैलसियम कार्बोनेट भी मिला देते हैं। अमोनिया और नाइट्रिक एसिडसे बनाया जाता है।

अमोनियम सलफेट—यह गन्धकके तेजाब और अमोनियासे अथवा सेलखड़ी (जिप्सम), कार्बोनिक ऐसिड और अमोनियासे बनाते हैं। खाद में इसका सबसे अधिक उपयोग होता है।

अमोनियम क्लोराइड—सौलवे और संश्लेषित अमोनिया विधियों को मिलाकर यह बनाया जाता है। इस विधिमें अमोनिया, सोडियम क्लोराइड और कार्बोनिक एसिड का प्रयोग किया जाता है। अमोनिया क्लोराइड का बहुधा कम प्रयोग किया जाता है, क्योंकि पोटाश क्लोराइड तो पोटाश के कारण देना ही पड़ता है, और दोनों को देने से क्लोराइड की मात्रा बहुत बढ़ जाती है जो बहुतसे पौधों के लिये हानिकारक है।

अमोनियम फॉसफेट—मोनो और डाइ-अमोनियम फॉसफेट दोनों का खाद में उपयोग किया जाता है। मोनो-फॉसफेट अमोनिया और फॉसफोरिक ऐसिडके संसर्गसे बनाते हैं। बहुधा फॉसफेट शिलाओं और गन्धकके तेजाबके संपर्कसे बनाते हैं। इस विधिसे बनाये गये फॉसफेटमें थोड़ा-सा आयरन और एल्यूमीनियम का फॉसफेट और कैलसियम फॉसफेट भी विद्यमान् रहता है, जिसको छानकर दूर करना बड़ा कठिन है। बाजार में जो अमोनियम फॉसफेट आता है, उसमें अमोनियम सलफेट भी मिला रहता हैं। डाइ-अमोनियम फॉसफेट बनाने के लिये गाढ़े फॉसफोरिक एसिड को अमोनियासे थोड़ा-सा शिथिल करते हैं, फिर ठण्डा करके और अमोनिया डालकर अवक्षेपित कर लेते हैं।

यूरिआ—इसमें ४६ प्रतिशत नाइट्रोजन होता है, और पौधे इसका उपयोग आसानीसे कर सकते हैं। यह प्रायः अमोनिया और कार्बन डाई-ऑक्साइड में बनाया जाता है। यह सुपरफॉसफेट में बहुधा मिलाया जाता है जैसाकि आगे बताया गया है।

कैलसियम सायनआइड—व्यापारिक पदार्थ में २२ प्रतिशतके लगभग नाइट्रोजन होता है। भूमि में मिट्टी के साथ मिलकर धीरे-धीरे यह मुख्यतः यूरिआ में परिणित हो जाता है।

जिन पदार्थोंका यहां उल्लेख किया गया है, वे बहुधा कई एक दूसरे में मिलकर खादके काममें आते हैं। उन्हें अकेले देने की अपेक्षा उनका मिश्रण अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

पोटाश खाद

मिट्टीमें सोडियमकी अपेक्षा पोटैसियम अधिक पाया जाता है। यह बहुधा सिलीकेट के रूप में रहता है। कैलसियम या मैगनीसियमके घुलनशील लवणों के संसर्गसे पोटैसियम सिलीकेट वाली मिट्टी कैलसियम या मैगनीसियम सिलीकेट में परिवर्तित

हो जाती है और मिट्टी में से घुलनशील पोटैसियम लवण पृथक् हो जाता है। यह पोटैसियम लवण पौधों के काम आता है। यदि हम खादमें पोटैसियम लवण दें, तो पौधों को और अधिक लाभ पहुँचता है।

संसार को पोटैसियम लवण जर्मनी और फ्रान्ससे अधिकतर मिलते रहे हैं। जर्मनी की स्टेसफर्ट डिपोज़िट इस काम के लिये प्रसिद्ध रही है। ये १०० वर्ग मीलके घेरे में पायी जाती हैं। यहां मुख्य खनिज तीन हैं :—

(१) कार्नेलाइट—पोटैसियम—मैगनीसियम क्लोराइड।

(२) पोलीहेलाइट—पोटैसियम—मैगनीसियम कैलसियम सलफेट

(३) सिलविनाइट—पोटैसियम—क्लोराइड।

गत महायुद्धके समय अमरीकाको जर्मनीसे पोटाश मिलना बन्द हो गया था, अतः वहां पोटाश के व्यवहार को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने सीमेण्ट शराब और चीनी के कारखानोंसे बची हुई राखोंका उपयोग किया और पोटैसियम लवण बनाये। अमरीका की सर्लेस और नेब्रास्का-झीलों के पानीमें भी पोटैसियम लवण पाया गया। उनसे इसे प्राप्त करने के कारखाने खुले। भारतवर्षमें जो शोरा पाया जाता है वह भी पोटैसियम लवण है और इसके व्यवहार से पौधोंको सोडियम और नाइट्रोजन दोनों प्राप्त हो जाते हैं। इस देशमें चिल्ली का शोरा (सोडियम नाइट्रेट) का प्रचार बहुत-सी कम्पनियां कर रही हैं, और वे अपने मालको खपाने के लिये यह युक्ति देती हैं कि भारतीय शोरे की अपेक्षा (जिसमें १४ प्रतिशत नाइट्रोजन है) चिल्लीके शोरे में (१६·५ प्रतिशत) अधिक नाइट्रोजन है। पर हमको अपने शोरे से मुफ्त में जो पोटैसियम प्राप्त हो जाता है, उसका वे विचार नहीं करतीं।

खादों में बहुधा पोटैसियम क्लोराइड और पोटैसियम सलफेट का व्यवहार होता है। तमाखू की खेतीके लिये क्लोराइड की अपेक्षा सलफेट अच्छा माना गया है।

फॉसफोरस यौगिकों की खाद

यों तो अमोनियम फॉसफेटका व्यवहार फॉसफोरसकी पूर्ति के लिये किया जा सकता है, पर अधिकतर मोनो-कैलसियम फॉसफेट और डाइ-कैलसियम फॉसफेटका अधिक उपयोग किया जाता है। जो चीज बाजार में सुपर-फॉसफेट के नामसे मिलती है, उसमें इन दोनों का मिश्रण रहता है। यूरोप में तो अनेक कारखानों के अप-द्रव्यों में से फॉसफेट व्यवसाय चलाया जाता है, पर हमारे देशमें हड्डीके चूरेसे ही इसकी प्राप्ति हो सकती है। अमेरीका में कैलसियम-क्लोराइड-फॉसफेट की विशेष चट्टानें हैं जिनमें ७०-८०% कैलसियम फॉसफेट है। रूस और अफ्रीका में भी पायी जाती है। इन चट्टानों से प्राप्त फॉसफेट (जिसमें १६-२०% फॉसफोरिक एसिड होता है) का चूरा-चूरा किया जाता है और ढलवा लोहे के कड़ाहों में गन्धक के तेजाब से (५०-५५° Be′) संचालित किया जाता है। इस प्रक्रिया में कार्बन डाइ-ऑक्साइड और सिलीकन-क्लोरिन यौगिकों की गैसें निकलती हैं।

एक और प्रकार का सुपर-फॉसफेट चला है जिसमें ट्रिप्ल—(त्रिगुण) सुपर-फॉसफोरिक एसिडकी तिगुनी मात्रा (६०-८०%) रहती है। सुपर-फॉसफेटोंमें कुछ मुक्त-अम्ल सदा विद्यमान् रहता है, अतः खादमें काम लानेसे पूर्व इसे शिथिल कर लेना आवश्यक है। कुछ दिन पूर्व चूने या कैलसियम सायनाइड से ऐसा किया जाता था। पर अब अमोनिया का प्रयोग ही सर्वोत्तम समझा जाता है। सुपर-फॉसफेटमें तौलके हिसाब से २% जल रहित अमोनिया मिलायी जाती है। इससे अधिक अमोनिया मिलनेसे अनुघुल यौगिक बन जाते हैं जिनसे पौधे फॉसफोरस नहीं प्राप्त कर सकते। अमोनिया वाले घोल में सोडियम और अमोनियम नाइट्रेट भी मिला लिये जाते हैं। कभी-कभी अमोनियाके साथ यूरिया मिलाने की भी प्रथा है। यदि सुपर-फॉसफेट को ऊँचे दबावके कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और अमोनिया में रक्खा जाय तो सुपर-फॉसफेट में यूरिया स्वयं अवक्षेपित हो जायगी। अर्थात् ऐसा करने पर ऊपर से यूरिया मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

हमने इस लेख में रासायनिक खादों के मिश्रण का थोड़ा-सा उल्लेख किया है। संसार में रासायनिक विधियों से खाद कितनी मात्रामें तैयार की जाती रही है, यह बात १६३४ के निम्न अङ्कों से प्रकट हो जावेगी—

नाइट्रोजन-खाद................८७६.५ टन

फॉसफोरस-खाद................१८८४४ टन

पोटाश-खाद ....८३६० टन

हमारे देशमें रासायनिक खाद बनाने की प्रथा अभी नहीं चली। शोरा और अमोनियम लवण अवश्य तैयार किये जाते हैं। पर व्यापार और कृषि दोनों की दृष्टिसे रासायनिक खादके व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

पृथ्वी का अंतर्भाग

[लेखक—श्रीयुत चन्द्रिकाप्रसाद, बी. एस-सी.]

पृथ्वीके भीतर क्या है? यह निश्चित रूपसे तो कहा ही नहीं जा सकता। अन्य वैज्ञानिक अनुसन्धानोंमें जिस प्रकार प्रयोगों द्वारा बातोंका पता लगा लिया जाता है, उस मार्गका अनुसरण यहां नहीं किया जा सकता। बैलून द्वारा वायुमें लोग २० मीलकी ऊंचाई तक उड़ चुके हैं, परन्तु पृथ्वीके अन्दर २ मीलकी गहराई तक भी नहीं जा सके हैं।

फिर भी, पहाड़ोंके बननेसे, पृथ्वीके बहुतसे भीतरी भाग ऊपर आ गये हैं और हम पृथ्वीकी ऊपरी १२ मील मोटी तह का पूरा-पूरा अन्दाज़ा लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति से हमें कई अन्य बातों और नियमोंका पता चलता है जिससे हम पृथ्वीके और भीतरका भी काफी ठीक अनुमान लगा सकते हैं।

कैंट और लाप्लासका यह सिद्धान्त है कि हमारा सौर-परिवार नीहारिकासे उत्पन्न हुआ होगा। अनुमान किया जाता है कि जब वाष्पयुक्त नीहारिका ठंडी हुई, तो अधिकांश भाग इकठा होकर गैसका गोला बन गया। यह हमारा सूर्य था। शेष भाग इसके चारों ओर शनि-वलयकी तरह फैल गया। यही धीरे-धीरे इकठा हो कर ग्रहोंमें परिवर्तित हो गया।

इस सिद्धान्तके आधार पर यह अनुमान किया गया कि पृथ्वी तप्त-द्रवका गोला है, जिस पर पतली पपड़ी चढ़ी हुई है। अब भी अधिकतर लोग इसी प्रकार पृथ्वीका चित्रण करते हैं, और इसका कारण भी है। गैसका गोला ठंडा होने पर पहले एक द्रवके गोले में परिवर्तित हो जायगा। जब यह गोला ठंडा होगा तब ऊपरी भाग अधिक शीघ्रता से ठंडा होगा। इसलिये सतह पर तो एक ठोस पपड़ी जम जायगी, परन्तु भीतरी भाग तरल ही रहेगा। इसका एक प्रमाण यह है कि पृथ्वीके अन्दर जितनी ही अधिक गहराई तक जायें उतनी ही गर्मी बढ़ती जाती है। यह निश्चय रूपसे ज्ञात है कि औसत रूपसे प्रत्येक ४० गज भीतर जाने पर तापक्रम एक डिगरी बढ़ता है।

यह नियम भूगर्भशास्त्रकी सबसे महत्वपूर्ण खोज है, इसलिये नहीं कि इसका उपयोग खनिजोंके पता लगानेमें किया गया है, परन्तु इसलिये कि इस खोजसे कई अन्य महत्वपूर्ण निश्चयों पर पहुंचा गया है। एक तो यह इस बातका परिमाण था कि पृथ्वीके अन्दर कोई तापका कोष होगा, क्योंकि सूर्यका ताप बहुत थोड़े ही गहराई तक अन्दर जाता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकलता है कि यदि तापक्रम इसी रूपसे बढ़ता जायगा तो ७० मीलकी गहराई पर तापक्रम ३,००० डिगरीसे अधिक होगा।

इतने अधिक तापक्रम पर कोई भी पत्थर ठोस नहीं रह सकता, और इसलिये हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि पृथ्वी की ठोस पपड़ी कहीं भी ७० मीलसे मोटी नहीं हो सकती है। यह देखते हुए कि पृथ्वीका अर्धव्यास लगभग ४००० मील है, पृथ्वी सेबकी तरह है, जिसका छिलका बहुत पतला है।

इस गणनामें, जिसमें यह मान लिया गया है कि अधिक गहराइयोंमें भी तापक्रम उसी रूपसे बढ़ता है, एक बात पर ध्यान नहीं दिया गया है, और वह है दबाव। और जैसा कि प्रयोगशालाओंमें देखा जा सकता है, दबावका प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। दबाव बढ़ानेसे पिघलनेका तापक्रम भी बढ़ जाता है, अर्थात् कोई भी वस्तु जितनी गर्मीसे साधारणतः पिघलती है, उससे कहीं अधिक गर्मी पर अधिक दबाव में पड़े रहने से पिघलेगी। यह प्रश्न उठता है कि क्या यह बात पृथ्वीके अन्दर लागू नहीं है, जहां पर दबाव अत्यधिक है। क्या यह विश्वास करना कि पृथ्वीका अन्तर्भाग ठोस है, अशुद्ध होगा।

वाद-विवादने इस "ठोस और तरल" के झगड़ेको बहुत सरस बना दिया, और जब ज़ोप्रिट्ज और रिटरने यह सिद्धान्त सामने रखा कि पृथ्वीका अंतः भाग गैसके रूपमें है, तब झगड़ा तीन तरफा हो गया। परन्तु यह सिद्धान्त शीघ्र ही तज दिया गया। आज कल केवल पहले ही वाले दोनों सिद्धान्त वर्तमान हैं और दोनोंके पक्षमें प्रमाण हैं। अब हम इन प्रमाणोंका अवलोकन करेंगे।

पृथ्वीके अन्दर का अत्यधिक दबाव लाप्लासके तरल अंतर्भाग वाले सिद्धान्तका खण्डन करता है। यह समस्या "तरल" वालोंके लिये बहुत कठिन थी और "ठोस" वालोंने इसके ही बल पर अपने प्रतिद्वन्दियोंकी हार बतलाई। एक कारण यह भी बतलाया कि यदि पृथ्वीका अंतरर्भाग तरल है, तो चन्द्रमाके कारण इसमें जो ज्वारभाटा उठेगा, उसे पपड़ी सम्हाल न

रुकेगी और वह टूट जायगी। परन्तु इस तर्कका कुछ भी प्रभाव न हुआ; क्योंकि तरलके समर्थकों ने भी एक इसी प्रकारकी गणना द्वारा यह पता लगाया कि यदि पृथ्वी पूर्णतया ठोस होती तो ज्वार भाटोंमें विचित्र विशेषता होती। ज्वार और भाटेकी ऊंचाइयोंमें आश्चर्यजनक अन्तर होता, विशेष कर प्रत्येक पंन्द्रहवें दिन और छठे मास। परन्तु ऐसा कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता, इसका यही कारण है कि सम्पूर्ण पृथ्वी ज्वार भाटेमें भाग लेती है, यह तभी हो सकता है जब पृथ्वीका अंत-र्भाग तरल हो। इस प्रकार दोनों विपक्षियोंकी प्रगति रुक गई। परन्तु धीरे-धीरे दोनों एक समझौते पर पहुंच गये, और यही समझौता अब ठीक माना जाता है।

ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी अब भी ४० से ७० मील की गहराई तक तरल है। ज्वालामुखी यह सिद्ध करते हैं कि ठोस पपड़ीके नीचे पिघले हुए पत्थर अवश्य हैं। हां, हम यह भी मान सकते हैं कि लावा ठोस पपड़ीमें वर्तमान ऐसे खोहोंसे आता है, जिनमें पिघला पत्थर रहता है; क्योंकि ऐसा होता है कि पास-पासके दो ज्वालामुखियों का उद्गार भिन्न-भिन्न समयों पर होता है और ऐसा भी होता है कि दोनोंसे विभिन्न प्रकारके पत्थर निकलें। यह विचित्र बात खोह वाले सिद्धान्तका समर्थन करती है। फिर भी इस सिद्धान्तके दलका संपूर्ण समर्थन कठिन है; क्योंकि ज्वालामुखियोंकी संख्या इतनी अधिक है कि पृथ्वी की पपड़ीके नीचे एक तरल परतकी कल्पना अधिक ठीक होगी, बनिस्बत इसके कि पपड़ीमें पिघले पत्थरकी उतनी ही खोहें हैं जितने ज्वालामुखी।

यहां तक तो कैंट और लाप्लासके समर्थक ठीक हैं। पृथ्वी की पपड़ीके नीचे द्रव है। परन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि क्या पृथ्वीके अन्दरका सब भाग द्रव है; दूसरे शब्दोंमें, क्या यह तरल भाग पृथ्वीके केंद्र तक चला गया है?

कई विचारोंसे हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि और अधिक गहराई पर हमें तरल परतके स्थान पर ऐसा अंतर्भाग मिलेगा, जिसके गुण भिन्न होंगे। इसे भारमंडल barysphere कहते हैं। पृथ्वीके घनत्वके आंकड़े इसका समर्थन करते हैं। पृथ्वीकी पपड़ीके पत्थरोंका औसत घनत्व २·५ है, अर्थात् ये पत्थर पानीसे २½ गुना भारी हैं। परन्तु समस्त पृथ्वीका घनत्व ५·५ के लगभग आंका जाता है। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पृथ्वीका अंतर्भाग बहुत भारी होगा। समूची पृथ्वीका औसत घनत्व ५·५ तभी हो सकता है। जब भारमण्डल का घनत्व लोहेके घनत्वसे भी अधिक हो।

इस सिद्धान्तका समर्थन भूकम्पोंके अध्ययनसे भी होता है। यदि जापानमें या अन्य कहीं भूकम्प आता है तो उत्पन्न हुई लहरोंका लेखन संसारकी सब भूकम्प-प्रयोगशालाओंके सूक्ष्म यंत्रों (कंप-लेखकों) में हो जाता है। इन लेखोंके अध्ययन और तुलनासे भूकम्प तरङ्गोंके संबन्धमें अनेक नई बातें ज्ञात हुई हैं।

पहले यह ज्ञात हुआ कि सतह पर जाने वाली सब लहरें समान वेगसे चलती हैं, परन्तु भूमिके अन्दरसे जाने वाली लहरें भिन्न-भिन्न वेगसे चलती हैं, लहरें जितनी ही अधिक गहराईसे होकर जाती हैं, एक सीमा तक उतना ही उनका वेग अधिक होता है। परन्तु और अधिक गहराईमें उनका वेग नहीं बद-लता। लगभग १८०० मीलकी गहराई तक पृथ्वी दो भिन्न भागोंमें विभाजित होती है। ऊपरी भागके गुण अस्थिर (variable) हैं और निचला भाग सभाग है। इससे हमें पृथ्वीके ठोस केन्द्रका बोध होता है। इसकी तो हम पहले ही से आशा करते थे, परन्तु अब हमें यह ज्ञात हो गया कि भार-मंडल १८०० मीलकी गहराईसे आरम्भ होता है। इसके बाद भी अनेक प्रयोग किये गये और सभीसे हम इसी निर्णय पर पहुंचे हैं कि पृथ्वीका केन्द्रिक-अंतर्भाग कमसे-कम इस्पात इतना कड़ा होगा।

इन बातोंको देखते हुए हमें पृथ्वीके पुराने कल्पित चित्रको तज देना होगा। लाप्लासका कथन कि पृथ्वीका अंतर्भाग तरल है, अशुद्ध है। अब हम पृथ्वीकी बनावट इस प्रकार चित्रित करते हैं:—पृथ्वी के अन्दर एक ठोस कड़ा गोला है, जिसके चारों ओर एक तरल परत है और सबसे ऊपर पत्थरोंकी पपड़ी है।

इस बनावटमें ठोस और तरल दोनोंका समावेश है। कब तक यह बनावट ठीक मानी जायेगी, यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि यह सिद्धान्त ऐसी बातों पर निर्भर है जिनके बारेमें हम अभी बहुत कम जानते हैं। अब भी इस प्रश्नका पूर्णरूपसे उत्तर नहीं दिया जा सका है कि अत्यधिक दबाव और गर्मी का पदार्थों पर क्या असर पड़ता है। हम केवल यही जानते हैं कि प्रयोगशालाओंमें पदार्थोंके क्या गुण हैं; परन्तु प्रयोगशालाओं में अत्यधिक दबाव उत्पन्न करना असंभव है और प्रयोगशाला के बाहरकी बातें हमें ज्ञात नहीं हैं। उधर पृथ्वीका केन्द्र अगम्य है।

सरल विज्ञान

[दूरदर्शक]

दूरदर्शक उस यंत्रको कहते हैं, जिससे दूरकी वस्तुएं स्पष्ट और बड़ी दिखलाई पड़ती हैं। दूरदर्शक दो पूर्णतया विभिन्न मेलके होते हैं। एकमें दूरस्थ वस्तुसे आये प्रकाशको एकत्रित करने और प्रतिबिम्ब बनानेके लिये दर्पण लगा रहता है और दूसरेमें ताल या लेंस।

तालयुक्त दूरदर्शक ही अधिक सुविधाजनक होते हैं और छोटे दूरदर्शक सब इसी जातिके होते हैं। दूरदर्शककी बनावट अत्यन्त सरल होती है। एक नलिकाके दोनों सिरों पर ताल लगे रहते हैं। इनमेंसे एक बड़ा होता है। उसे प्रधान ताल कहते हैं (चित्र १, २ और ३)। दूरदर्शक से देखते समय यह वस्तुकी ओर रक्खा जाता है। छोटे तालकी ओर आंख लगाई जाती है। इसीसे उसे चक्षु-ताल कहते हैं (चक्षु = आंख)।

प्रधानताल उन्नतोदार होता है, अर्थात् यह बीचमें मोटा और किनारों पर पतला होता है (उन्नत = फूला हुआ, उदर = पेट)। इससे जो प्रतिबिम्ब बनता है, उसे चक्षुताल से देखा जाता है। चित्र १ और २ में 'न' चक्षुताल है और 'फ' वह विंदु, जहां प्रतिबिम्ब बनता है।
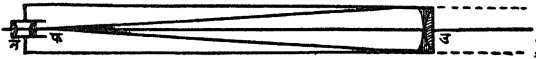
चित्र नं० १

चित्र १ में प्रतिबिम्ब बन जाने पर उसे चक्षुतालसे देखना प्रदर्शित किया गया है। चक्षुतालसे प्रतिबिम्ब बड़ा दिखलाई पड़ता है। चक्षुताल स्वयं उन्नतोदर ताल होता है या दो उन्नतोदर तालोंको साथ रख कर बनाया जाता है। ऐसे दूरदर्शकको ज्योतिषिक दूरदर्शक कहते हैं। क्योंकि इससे वस्तुएं उल्टी दिखलाई पड़ती हैं और इसलिये यह केवल आकाशीय पिंडों के देखनेके लिये काममें आता है। जब पृथ्वी पर स्थित वस्तुओं के देखनेके लिये दूरदर्शक बनता है तो 'उ' और 'फ' के बीच चार दर्पण इस प्रकार रख दिये जाते हैं कि वस्तु सीधी दिखलाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त, दर्पणोंसे दूरदर्शककी लम्बाई भी कम हो जाती है, जिससे बड़ी सुविधा होती है। साधारणतः दर्पण ही का काम देने वाले त्रिपार्श्व लगे रहते हैं। इसलिये ऐसे दूरदर्शकको त्रिपार्श्वीय (प्रिज़्मैटिक) दूरदर्शक कहते हैं। शिकार या युद्धके लिये बने त्रिपार्श्वीय दूरदर्शक सदा दोहरे बनते हैं, एक दाहिनी आंखके लिये, एक बाईंके लिये और दोनों अगल बगल इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि वे एक यंत्रकी भांति प्रयुक्त हो सकते हैं। इनको द्विनेत्री (बाइनाक्यूलर्स) या द्विनेत्री-त्रिपार्श्वीय-दूरदर्शक कहते हैं।
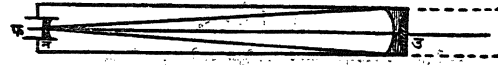
चित्र नं० २

सस्ते दूरदर्शकोंमें प्रतिबिंबको सीधा रखनेके लिए नतोदर चक्षुताल लगाते हैं और इस चक्षुताल को, प्रतिबिंब बनने से पहले ही प्रकाश रश्मियों के मार्गमें रख दिया जाता है चित्र २। ऐसे दूरदर्शक को नाटकदर्शी (ऑपरा-ग्लास) कहते हैं; क्योंकि बीचमें दर्पण न रहनेसे कम प्रकाशमें या रात्रिके समय भी यह प्रयुक्त किया जा सकता है और इसलिये बहुधा यह नाटकोंके पात्रों को अधिक स्पष्ट देखने के लिये काम में आता है। अन्य कामके लिये यह उतना उपयोगी नहीं होता जितना त्रिपार्श्वीय दूरदर्शक, क्योंकि एक बारमें वस्तुका थोड़ा-सा ही अंश दिखलाई पड़ता है। उदाहरणतः, १५ गुना बड़ा दिखलाने वाले नाटकदर्शीसे पूरा चन्द्रमा एक बारमें नहीं दिखलाई पड़ेगा, परन्तु उतनी ही शक्तिके त्रिपार्श्वीय दूरदर्शकसे चन्द्रमासे कई गुनी बड़ी वस्तु समूची देखी जा सकती है। नाटकदर्शीको गैलीलियन दूरदर्शक भी कहते हैं, क्योंकि इसका आविष्कार गैलीलियोने किया था।

केवल बहुत बड़े दूरदर्शक ही ऐसे होते हैं कि उनमें प्रधान तालके बदले दर्पण लगा रहता है। कारण यह है कि बहुत बड़े तालयुक्त दूरदर्शक बन नहीं पाते। संसारका सबसे बड़ा तालयुक्त दूरदर्शक ४० इञ्च व्यासका है। यह अमरीकामें है। इससे वस्तुएं लगभग ४००० गुनी बड़ी दिखलाई पड़ती हैं! परन्तु ज्योतिषी इससे भी शक्तिशाली दूरदर्शक चाहते हैं।

तब वे दर्पणयुक्त दूरदर्शक बनाते हैं। संसार का सबसे बड़ा दर्पणयुक्त दूरदर्शक १०० इञ्च व्यास का है! गत पन्द्रह वर्षों से एक २०० इञ्च व्यास का दर्पणयुक्त दूरदर्शक बन रहा है। आशा की जाती है कि यह शीघ्र ही तैयार हो जायगा। इससे वस्तुएं कोई २०,००० गुनी दिखलाई पड़ेंगी। इससे चन्द्रमा को देखने पर वह इतना स्पष्ट दिखलाई पड़ेगा मानो वह कुल २० मील की दूरी पर हो!
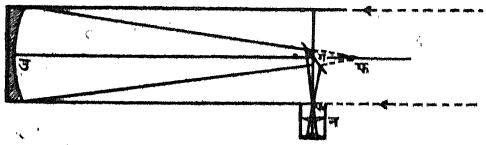
चित्र नं० ३

दर्पणयुक्त दूरदर्शकका दर्पण नतोदर होता है (छिछली कड़ाहीकी तरह)। इससे भी उसी प्रकार प्रतिबिम्ब बनता है, जैसे तालसे। परन्तु प्रतिबिम्बको चक्षुतालसे देखनेके लिये छोटा सपाट दर्पण लगा कर प्रकाश रश्मियोंको एक बगलमें ले आना पड़ता हैं (चित्र ३)। पहले कुछ लोग प्रधान दर्पणको तिरछा रखते थे जिसमें प्रतिबिंब एक ओर बने और छोटे दर्पणकी आवश्यकता न पड़े (चित्र ४)। परन्तु यह अच्छी रीति नहीं
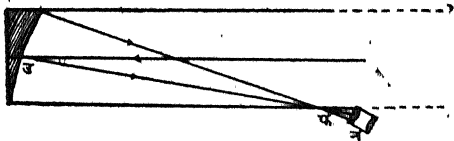
चित्र नं० ४

है। प्रतिबिंबको अधिक बड़ा करनेके लिये प्रतिबिम्बके बनने से पहले कभी-कभी एक छोटा-सा उन्नतोदर दर्पण लगा दिया
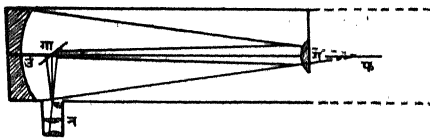
चित्र नं० ५

जाता है (चित्र ५), परन्तु इस रीतिका अधिक प्रचार नहीं है। प्रधान दर्पणमें छेद कर देनेका प्रचार अधिक है (चित्र ६-७)। कभी-कभी छोटा दर्पण नतोदर होता है (चित्र ६), परन्तु
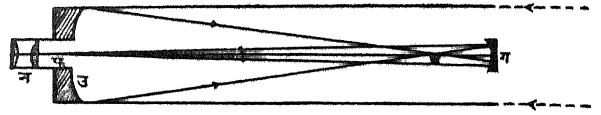
चित्र नं० ६

अधिकतर यह उन्नतोदर रक्खा जाता है (चित्र ७)। २०० इंच व्यास वाला नवीन दूरदर्शक इसी ढंगका बनेगा।
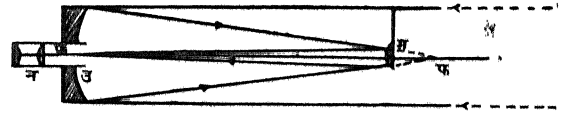
चित्र नं० ७

दूरदर्शकसे आकाशीय पिंडोंको सुभीतेसे देखनेके लिये उसे इस प्रकार आरोपित किया जाता है कि वह पृथ्वीकी धुरीके समानांतर धुरी पर घूम सके (चित्र ८)। बड़े दूरदर्शक पर एक छोटा दूरदर्शक भी जड़ा रहता है। इसे उपदूरदर्शक कहते हैं। किसी पिंडका जो भाग उपदूरदर्शकके केन्द्रमें रहता है, वही बड़े दूरदर्शकमें दिखलाई पड़ता है। यदि उपदूरदर्शक न रहे तो पता ही न चले कि वस्तुका कौनसा अंश दिखलाई पड़ रहा है; क्योंकि बड़े दूरदर्शकसे एक बारमें पिंडका बहुत सूक्ष्म भाग ही दिखलाई पड़ता है।
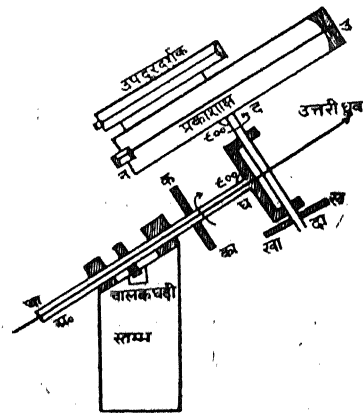
चित्र नं० ८

समय नापने के लिये आठ दस इञ्च व्यास के दूरदर्शक

का उपयोग किया जाता है। यह इस प्रकार आरोपित रहता है कि केवल उत्तर-दक्षिण दिशामें ही चल सकता है। (चित्र ९)। जब सूर्यका केन्द्र इस दूरदर्शकके केन्द्रमें दिखलाई पड़ता है तब ठीक दोपहर होती है।
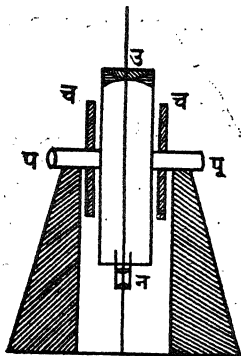
चित्र नं० ९

दिशा, या क्षितिजसे ऊँचाई, जाननेके लिये एक दो इञ्च व्यासके दूरदर्शकसे काम चल जाता है। इसे चित्र १० में दिखलाई गई रीतिसे आरोपित करते हैं। इञ्जिनियर लोग ऐसे यंत्रका निरन्तर प्रयोग करते हैं और उसे वे थियोडोलाइट कहते हैं।

जब ज्योतिषी कहीं ग्रहण आदि देखने दूर जाते हैं तो वहां चित्र ८ की तरहका आरोपण ले जाना कठिन होता है। तब वे दूरदर्शकको सुविधाजनक दिशामें स्थिर कर देते हैं और इसके सामने एक सपाट दर्पण लगा देते हैं जो घड़ीसे चलता रहता है (चित्र ११)। इस प्रकार आकाशीय पिंडके चलते रहने पर भी वह बराबर दूरदर्शकमें दिखलाई पड़ता रहता है।
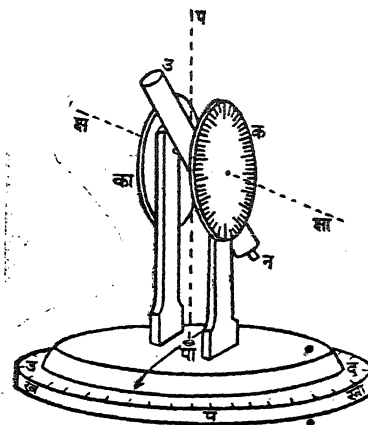
चित्र नं० १०
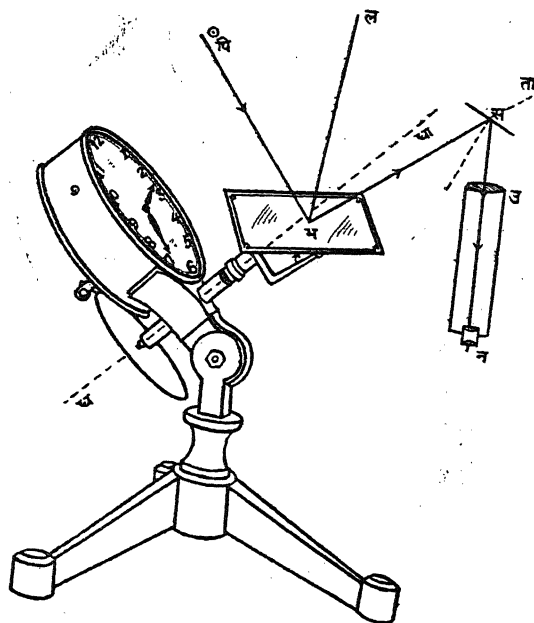
चित्र नं० ११

जीवों का रहन-सहन

[लेखक—श्री प्रतापनारायण सिंह]

संसारमें जीवोंकी प्राय: २० लाखसे ऊपर जातियां हैं। और अनेकों जीव ऐसे भी हैं जिनका पता ही नहीं। जन्तुओं की जो जातियां लुप्त हो चुकी हैं, उनकी संख्या और भी अधिक है। उनके मृतशरीर पृथ्वीके गर्भमें लीन हो चुके हैं। उनके विषय का ज्ञान मनुष्य को वर्त्तमान पशु जाति के ज्ञानसे न्यूनतम है। वर्त्तमान जन्तुओं के जीवन-प्रकार विभिन्न प्रकारके हैं। कोई भूमि पर रहते हैं अन्य जलमें, कुछ समुद्रके गहरे जलमें, और कुछ तट पर, नदियों, तालाबों, झीलों एवं नालों में भी अनेक प्रकारके जीव पाये जाते हैं। कोई बर्फीली चट्टानों पर, और कोई जलते रेगिस्तानोंमें रहते हैं। उनके आहार भी भिन्न प्रकारके हैं। कोई शाकाहारी है, तो कोई मांसाहारी। एक वर्गके जन्तु दूसरे को निगलने के लिए तैयार रहते हैं। इनकी शरीर-रचना बनावट के हिसाब से उनका वर्गीयकरण करना कठिन है। कई बार एक ही प्राणी नाना प्रकारका रूप धारण कर लेता है। इनके आकार विभिन्न प्रकारके होते हैं। कई जीव ऐसे हैं जो बिना दूरबीनकी सहायतासे देखे ही नहीं जा सकते। कहां बैक्टीरियासे अति सूक्ष्म जीव-परिमाणु और कहां विशाल-काय हाथी। एक प्रकार की ह्वेल मछली ७० फीट लम्बी होती है। जिराफ पशु बीस फीट ऊँचा होता है। कुछ पशु हैं, जिनका अस्तित्व मिट चुका है, उनका शरीर और भी विशाल होता था। वे प्राय: १०० फीट लंबे और ३०-४० फीट ऊंचे होते थे। जीवों की आयु भी विभिन्न होती है। किसी का अस्तित्व केवल कुछ मिनट अथवा घंटेका होता है, कुछ जन्तुओं की आयु दो-चार दिन, सप्ताह या महीने भरकी होती है, एवं अनेक ऐसे जीव हैं जो दो-चार वर्ष, दस-बीस अथवा सौ-पचास वर्ष तक भी जीवित रहते हैं। कौवे और कछवे की आयु सौ वर्षसे ऊपर होती है। कई सर्पों की आयु बहुत दीर्घ मानी गई है। सच तो यह है कि जन्तुओं की आयुके दीर्घत्व और लघुत्व के विषयका हमारा ज्ञान अभी अपूर्ण है। जो मनुष्य-द्वारा पालतू बना लिये जाते हैं, उनका जीवन बिगड़ जाता है और जंगली पशुओं का जीवन सब प्रकार के जन्तुओं और प्रहारों द्वारा असमय में ही नष्ट हो जाता है, इसलिये आयु का ठीक-ठीक निर्णय होना अत्यन्त कठिन है।

वर्गीकरण—कुछ ऐसे जीव हैं जिनका वर्गीकरण ही नहीं किया गया है। उनमें वनस्पति एवं जन्तु दोनों के सम्मि-लित गुण पाये जाते हैं। इनमें व्यक्तित्व जान लेना और भी कठिन कार्य होता है। इस विभागके कीड़े पौदोंसे ऐसे मिलते जुलते हैं कि वे वनस्पति जातिके ही समझे जाते थे। कारण यह है कि इन पौदों की टहनियों के अन्तिम सिरों की रचना जन्तुओं के शरीर की-सी होती है। उनकी भुजाएं खाद्य पदार्थ को ग्रहण कर, सारे परिवारको पुष्ट करती हैं। इस विभागके कई जीव समुदाय से पृथक रहते हुए भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। एक प्रकारके जन्तु पानीमें तैरते हुए अथवा लकड़ीके लट्ठों पर लगे मिलते हैं। इनमें तब वैयक्तिक एवं सामुदायिक दोनों अवस्थायें पायी जाती हैं। जल के कई सूक्ष्म जीवों में खिंचावट या सिकुड़न उत्पन्न होती है, जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और अन्तमें एकसे दो होकर जलमें पृथक-पृथक् तैरने लगते हैं। यही कार्य बार-बार होता है। इस प्रकार इन जातियों का वंश चलता रहता है। कई सूक्ष्म जन्तुओं के शरीर यदि काट लिये जांय तो एक-एक भाग सम्पूर्ण जीव बन जावेगा उनको जितना छेदा जावे, उतना ही वे बढ़ते जाते हैं। ऐसे जन्तुओं की कोई आयु ही नहीं है। वे अमर हैं। एक मच्छर के अंडेसे कई मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं। उनके अंडेके पुन: परमाणु बन जाते हैं। एक अंडेसे यदि एक ही जीव निकले तब एक व्यक्ति के जाननेमें कठिनता नहीं होती, परन्तु जब इसमें से कई जीव परमाणु निकल पड़ते हैं, तो जीवों के व्यक्तित्वमें गड़बड़ी पड़ती है। कई छोटे कीड़े अंडों से निकलते समय कुछ और ही दिखलाई पड़ते हैं, किंतु बड़ा होने पर रूपान्तर हो जाता है। कारण यह है कि वे अंडों से अपरिपक्व अवस्था में ही निकल आते हैं एवं बाहरके प्रभावसे विभिन्न रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। रेशमके कीड़े सुन्दर तितली हो जाते हैं।

अंग विशेषता—सभी जीवोंमें दो एक ऐसे प्रधान अंग हैं जिनके द्वारा वे अपनी रक्षा करते हैं। जैसे कुछ पक्षियों की तीक्ष्ण चोंच और पंजे, मधुमक्खी, भिड, बिच्छू आदिके डंक।

कुछ चौपायों के पंजे, गाय-बैल के सींग अन्य जन्तुओं के तेज दांत आदि। जब कोई शत्रु इनको सताता है या वे किसी पर आक्रमण करते हैं, तो इन्हीं विशेष अंगों द्वारा वे प्रहार करते हैं। मधुमक्खी अथवा बिच्छूका डंक अत्यन्त वेदना पैदा करता है। किसी जातिकी चींटियां अपने विषको इस प्रकार फेंकती हैं कि शरीर में दूर तक उसका प्रभाव हो जाता है। इसी प्रकार अन्य विषैले जन्तु रक्षाके हेतु अपने विषको काम में लाते हैं। सांप अपनी पूंछ और फणकी फटकार से शत्रुओंको डरा देता है। काले सांपके विषके भयङ्कर प्रहार से हम भली भांति परिचित हैं। विषसे भी अद्भुत शस्त्र मछली-इलेकट्रिक कैट-फिश में होता है। यह विद्युत्‌की धाराका प्रवाह करती है। तारपीडो मछली की विद्युत्-धारा इतनी तीक्ष्ण होती है कि मनुष्य तक मर सकता है। सीपिया मछली पर जब कोई आक्रमण करता है तो वह अपने शरीर से एक प्रकारका काला रस उगलती है। उससे धुंधला बादल-सा बनता है, उसीमें छिप कर यह शत्रुसे बचती हुई भाग जाती है। एक तोप चलाने वाली मक्खी होती है। जब उस पर किसीका आक्रमण होता है, तब वह अपने शरीरके पिछले भागसे एक ऐसा रस फेंकती है जो वायु से टकरा कर भभकता है। इससे आक्रमणकारी भयभीत हो कर भाग जाता है। कुछ जीवोंसे एक विशेष प्रकारकी दुर्गंधि निकलती है जिससे कोई शत्रु उनके निकट नहीं आने पाता। कुछ जन्तुओंके समस्त शरीर पर तीक्ष्ण एवं लम्बे कांटे होते हैं, जिससे प्रहार करने वाले डरते हैं। जीवोंके विभिन्न प्रकारके रंग भी उनकी रक्षा में सहायक होते हैं और कुछ जीवों में आकर्षण के कारण तीव्र रंग होता है। मोर, तोता एवं तितली आदि के रंग अत्यन्त मनोहर होते हैं; किंतु अधिकांश रंग कुछ न कुछ प्रयोजन रखते हैं। रेगिस्तानी पशुओं एवं पक्षियों का रंग बहुधा रेतीला, भूरा होता है; जिससे वे बालू में छिप कर अपनी रक्षा कर लेते हैं। बर्फीले प्रदेशों के जन्तु अधिकतर श्वेत होते हैं। हरे घासके जीव हरे रंगके होते हैं। शेरके भूरे शरीर पर लम्बी धारियां उसको झाड़ियों में छिपने में सहायता देती हैं। चीते और बाघके शरीर पर काले धब्बे होते हैं जिनसे वह पत्तियों और टहनियों में पहचाना न जा सके। गीदड़, लोमड़ी, तीतर, बटेर भूरे रंग की मिट्टी के एवं जंगलों में रहते हैं, इस कारण वे भूरे रंग के होते हैं। हारिल कबूतर का रंग, वृक्षों पर रहने के कारण हरे रंगका होता है। मछलियों का ऊपरी भाग धुंधला और काला रंग इस कारण होता है कि वे जलमें ऊपर से स्पष्ट दिखलाई न पड़ें और नीचे सफेद और चमकदार होने के कारण नीचेसे नहीं दिखलाई पड़तीं। इस प्रकार नीचे और ऊपर दोनों प्रकार की मछलियां कुछ अंश तक बची रहती हैं। उन खाड़ियों में जहां सिवार और भूरी काई होती है, मछलियां एवं जलके अन्दर जीव ऐसे मिले जुले और छींटदार रंगों के होते हैं कि उनका पता बड़ी कठिनतासे लगता है।

आत्मरक्षा—हरी घास में रहने वाले कीड़े मकौड़ों का जीवन बहुत ही संकटमय होता है। कारण यह है कि वे प्रायः समस्त पक्षियोंके भोजनके मुख्य साधन रहते हैं। अतः इनके संरक्षणकी व्यवस्था बड़ी मनोहर होती है। जो बहुत छोटे होते हैं वे पत्तियां खाते हैं और उन्हींमें छिपे रहते हैं। जो बड़े हो जाते हैं उन पर सीधी लकीरें होती हैं, जिनसे उनका ऊपरी अंग स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता। उनसे जो बड़े होते हैं उन पर पत्तियों के समान तिरछी धारियां होती हैं, जिससे वे भी पत्तियां ही ज्ञात हों, उनमेंसे एक प्रकारकी दुर्गंध भी आती है और रक्षाके लिये शरीर पर बाल भी होते हैं। इनमें कई बड़े विचित्र जन्तु होते हैं। एककी लम्बी टांगें होती हैं और नेत्रोंके समान दो चमकदार धब्बे होते हैं। इनका पेट मोटा और कमर पतली होती है। जब इनको कुछ भय होता है तो यह सिकुड़ जाते हैं। इन सब गुणोंसे इन जीवों की समानता पूर्णतया सर्प की भांति हो जाती है। वे कीड़े जो वृक्षों की छाल में रहते हैं, उनका रंग उसीके समान रहता है। रंगके अतिरिक्त जीवों की आकृति भी उनकी रक्षा करती है। कुछ कीड़े ऐसे हैं जिनकी आकृति टहनियों एवं पत्तियोंकी भांति होती है। वातावरण के अनुसार वे अपने रंग-रूप और स्वभावमें भी परिवर्तन कर लेते हैं, जिससे वे पूर्ण-रूपसे सुरक्षित हो जाते हैं। इस प्रकारकी शक्ति अनेक कीड़ों, गिरगिट, सर्प, मछली आदिमें पायी जाती है। कई चमकीले एवं सुगमतासे पहिचाने जाने वाले रंगोंके जीव-जन्तु यां तो दुर्गंधपूर्ण होते हैं या विषैले। अतः हम देखते हैं कि कुछ अंग-विशेषों द्वारा, वातावरणके अनुसार शरीर के रंग द्वारा अथवा आकृतिमें परिवर्तन करके जगतके समस्त जीव अपनी रक्षा करते हैं।

उन्हें ज्ञान भी है—जीवों एवं जन्तुओंमें ज्ञान और बोध की भी शक्ति होती है। कई जन्तुओं में कोई विशेषता होती है। कुत्ते में घ्राण-शक्ति एवं चील्ह, गृध्र में नेत्र शक्ति बड़ी

तीव्र होती है। वे दूसरे सूंघ अथवा देख कर वस्तु को पहिचान लेते हैं। कुछ जीवों में तीव्र स्वर सुननेकी अधिक शक्ति होती है। कई कीड़ोंमें दो नेत्रके अतिरिक्त एक तीसरा नेत्र भी होता है जो कि एक त्रिकोण के आकारमें होता है। इनकी रचना भिन्न प्रकारकी होती है। एक-एक नेत्रमें दो हजार अंगोंका पता लगा है। एवं वह अंगस्थल प्रकाश किरणोंको वहन कर पदार्थोंका दर्शन कराता है। शब्द उच्चारण करनेकी तीव्र शक्ति भी कुछ जीवोंमें पाई जाती है। हाथी अपनी बुद्धिमत्ताके लिये प्रसिद्ध है। कुछ पक्षी रात्रिमें सोते समय अपने परिवार वालों की पहरा दे कर रक्षा करते हैं और तनिक आहट आते ही प्रहरी एक प्रकारका शब्द करके सबको सावधान कर देता है। यह आवश्यक नहीं कि सब जीव रात्री ही में सोते हों। अनेक तो रात्रीमें अपने आहारके लिये निकलते हैं और दिनमें विश्राम करते हैं। यद्यपि उनके सोनेका समय रक्षाके लिये स्वावलम्बित होनेके कारण निश्चित नहीं है; किन्तु फिर भी चाहे रात्री हो अथवा दिन, वे अवकाशके समय और अपनी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करके सो लेते हैं। जीवोंको हमारी अपेक्षा जीवनके निमित्त, बहुत सावधान रहना पड़ता है। इस कारण कुछ भी उपद्रव होते ही, निद्रासे जाग पड़ते हैं, रात्रीके समय कई समुद्र के जीव प्रकाश करते हैं। उनमें प्रकाशक अंग विशेष होते हैं जिसके कारण उनके शत्रु समीप नहीं आने पाते।

विशेषतायें—कुछ जीवोंमें अन्य प्रकारकी विचित्रताएं होती हैं। कोयल अपने अंडोंको कौवेकी अनुपस्थितिमें उसके घोंसलेमें रख आती है जहां उनका पालन-पोषण होता है। बच्चे निकलनेके बाद भी कौवा भ्रममें रहता है और जब उस का भ्रम दूर होता है तब वे बच्चे उड़ कर कोयलोंमें जा मिलते हैं। गधेके किसी अंगमें खुजली होने पर वह दूसरे साथीके उसी स्थानको रगड़ता है जिससे उसका साथी मतलब समझ कर उसकी खुजली शान्त कर देता है। किलकिला नामक पक्षी की बुद्धिमत्ता भी प्रशंसनीय है। वह सिंह के खुले हुए मुंह में प्रवेश कर दांतोंमें फंसे हुए मांसके रेशोंको निकाल कर खा जाता है और सिंहको उस समय इतना आराम मालूम होता है कि वह मुंह नहीं हिलाता। इसी प्रकार घड़ियालके मुखसे एक पक्षी दांतोंमें फंसे रेशोंको निकाल देता है। पशुओंकी सेवाका एक सुन्दर उदाहरण है।

अनेक जीव अपने परिवार एवं कुटुम्बके साथ रहते हैं। वे एक प्रकारका कार्य करते हैं, एक ही आहार खाते हैं, और एक प्रकारका घर बना कर रहते हैं। ऐसे पारिवारिक जीवोंमें चींटियों एवं मधुमक्खियोंका एक अनुपम उदाहरण है। चींटियां अपना निवास स्थान बड़ी कुशलता से निर्माण करती हैं। चूहे भी अपने बिल बनानेमें बड़े उद्योगी होते हैं। कुछ जीव स्वयं अपने घरका निर्माण न कर दूसरोंके बनाये हुए घरमें जबरदस्ती निवास करने लगते हैं। जंगलोंमें रहने वाले जीव प्राकृतिक झाड़ियों एवं घने वृक्षों में ही रह कर काम चला लेते हैं; किंतु किसी न किसी प्रकारका आश्रय-स्थान विशेषतया: बच्चे या अंडे देनेके समय, सभी प्राणी निर्माण कर लेते हैं। कुछ पक्षी घर बनानेमें बड़े दक्ष होते हैं। बया इसका अच्छा उदाहरण है। मकड़ी का जाल भी उसकी कार्य कुशलता प्रकट करता है। प्राय: सभी जीव-धारियों को अधिक कार्य करना पड़ता है। जब हम उन्हें स्वतंत्रता से विचरण करते देखते हैं तो वास्तव में वे अपने भोजनकी खोजमें लगे रहते हैं। उनकी क्रियायें निष्प्रयोजन नहीं होतीं। प्रातः कालसे सायंकाल तक वे यन्त्र की भांति कार्य करते हैं। प्रत्येक पक्षी को अपना दैनिक कर्त्तव्य पालन करना पड़ता है। परिवार बसाना, घोंसला निर्माण करना, भोजन और जल प्राप्त करना, अपनी रक्षा करना आदि अनेक कार्य उनको करने पड़ते हैं। इन विभिन्न जीवोंमें भी लड़ाई झगड़े होते हैं। कभी-कभी एक वर्ग के जीवों से दूसरों की घमसान लड़ाई हो जाती है। वे अपने वर्ग एवं परिवारके लोगोंको भली भांति पहचानते हैं। चींटियां अपने विशाल परिवार वालों को एक विशेष संकेत द्वारा पहचान जाती हैं। वे अपने साथियों की दुर्दशामें सहायता करती हैं। एक ही परिवारकी दो चींटियों में कभी लड़ाई नहीं होती; किंतु दूसरे परिवार की चींटियों एवं अन्य कीड़ों से उनका बड़ा वैमनस्य रहता है। यदि एक बिल की चींटी दूसरे बिल में छोड़ दी जावे, तो चाहे उसी जाति ही की क्यों न हो दूसरे परिवार की होने के कारण घसीट कर बाहर निकाल दी जाती है। जीव-जन्तु भी हमारी भांति क्रीड़ा करते हैं। वे शब्द एवं गन्ध से बड़ा आनन्द उठाते हैं। मोर और कबूतर का नाचना प्रसिद्ध है। बिल्ली और भेड़के बच्चों का खेलना कूदना मानव शिशुओं के समान ही है।

संसारके जीवोंमें किसीका महत्व कम नहीं है। प्राय: सभी ने प्रकृतिके परिवर्तनमें कार्य किया है और बड़े जीवोंकी अपेक्षा कीटाणुओंने अधिक कार्य किया है। कुछ तो इतने सूक्ष्म होते

हैं कि केवल खुर्दबीन से ही देखे जा सकते हैं। फेरामेनीफेरा के समूहों द्वारा समुद्रमें मीलों विस्तृति सफेद खड़िया की चट्टान बन गई है। अमेरिका फ्लोरिडा प्रायद्वीप शंखों और मूंगों के मृतक शरीरों द्वारा ही बना है। पेरिस की भूमिका निर्माण भी इसी प्रकार के सूक्ष्म जीवों द्वारा ही हुआ है। शाकपात और अनाज उपजने के योग्य उर्वरा भूमि अनेक प्रकार के उपयोगी कीटाणुओं द्वारा ही तैयार होती है। कई रोगों की उत्पत्ति भी इन्हीं जीव परमाणुओंसे होती है। समस्त वातावरण इन कीटाणुओंसे भरा पड़ा है। प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा, निमोनिया, राजयक्ष्मा, एवं सर्दी-जुकाम तक के जीव-परमाणु वायु-मण्डल में वर्तमान रहते हैं; किंतु अनुकूल अवस्थामें ही वे हमारे ऊपर आक्रमण करते हैं एवं शरीरमें नाक, मुख और चर्म, इत्यादि द्वारा प्रविष्ट होकर रोगकी उत्पति कर देते हैं, पर उचित व्यवस्था न मिलने पर वे कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते। घाव आदिके सड़ जानेका कारण भी यही हैं। इन हानिकारक कीटाणुओंके अतिरिक्त अनेक अन्य कीटाणु हैं जिनसे कि मनुष्यके शरीरको लाभ पहुंचता है, कुछ ऐसे बैक्टीरिया भी हैं, जो मनुष्य को अनेक प्रकारसे लाभ पहुंचाते हैं। बड़े जीवोंने मनुष्यसे शिक्षा पाकर भूतल पर अनेक कार्य किये हैं। घोड़े, हाथी, गाय बैल आदिने अनेक जंगलोंको खेतोंमें परिणित कर दिया है। वे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचनेके लिये मनुष्यके अच्छे साधन है एवं उनसे अनेक प्रकारका कार्य लिया जाता है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ईश्वरने जो इन असंख्य जीवोंका निर्माण किया है उनसे जगतका उपकार ही हुआ है और वे निष्काम नहीं हैं।

मकड़ी और उनका कार्य

[लेखक—कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम. एस-सी]

संसारके जीवोंमें मकड़ीका वर्गीकरण उस समूहमें किया जा सकता है जिससे मनुष्य जातिको लाभ पहुंचता है। यदि मकड़ी इस विशाल संख्यामें उन कीड़े मकोड़ों का संहार न करे जो कि मनुष्यकी कृषिको एवं अन्य प्रकारसे हानिकारक हैं, तो उनकी सम्पूर्ण वृद्धिसे जितनी हानि होनेकी सम्भावना हैं, उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। मकड़ियां दो प्रकारका सूत बनाती हैं; एक तो वह जिससे कि वह अपना जाल बुनती हैं। यह कुछ कमजोर होता है। दूसरी प्रकारका सूत ककूनका होता हैं जो कि अत्यन्त शक्तिशाली होता है और अनुमान किया गया था कि रेशम के कीड़ों द्वारा निर्माण किये हुए रेशम के स्थान पर प्रयोग किया जाता है एवं कुछ वस्त्र भी उसके बनाये गये, किंतु वह हर प्रकारसे असली रेशम से घटिया प्रमाणित हुआ। इसके अतिरिक्त रेशम के कीड़े सरलतापूर्वक पाले जा सकते हैं, किंतु चंचल प्रकृति होनेके कारण मकड़ीको बन्द करके रखना असम्भव सा ज्ञात हुआ, जो कि रेशम के कार्यालय के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

मकड़ी की अनेक जातियां हैं। प्रत्येक का रहन-सहन एक दूसरेसे भिन्न होता है; उनके नाम जाल भी बुननेके ढंग पर रखे जाते हैं, जैसे—कूदने वाली, फंदेदार, पक्षी-भक्षक, भेड़िया एवं केकड़ा मकड़ी आदि। समस्त मकड़ी जातिमें पक्षी-भक्षक मकड़ी सबसे विशालकाय होती है। यद्यपि जैसा कि नाम से विदित है यह प्राय पक्षी-भक्षक नहीं होती और पूर्ण रूप से बड़े कीड़े मकौड़ों पर ही निर्वाह करती हैं, फिर भी इन निर्दयी जीवों के अनेक विषैले पंजे होते हैं जिनकी सहायता से यह चिड़ियों एवं अन्य छोटे-छोटे जीवोंको मार डालनेकी क्षमता रखती है। ये मकड़ियां किसी प्रकार का जाल नहीं बुनतीं; बल्कि भूमि में छेद करके अथवा खोखले पेड़ों के तनों में रहती हैं। अपने शिकार के लिये रात्री में बाहर निकलती हैं। इनमें सूंघने एवं सुनने की शक्ति कम होती है। उनके आठ नेत्र केवल प्रकाश और अन्धकार का अन्तर ज्ञात कर सकते हैं। ये अधिकतर दीर्घ-जीवी होती हैं। इन जीवोंका स्पर्श ज्ञान पूर्णरूपसे विकसित होता है, इसीसे स्पर्शकर्त्ताका परिचय प्राप्त कर लेती हैं। ज्यों ही किसी कीड़े मकौड़े का इनसे शरीर स्पर्श हो जाता है, अत्यन्त फुर्तीसे उसे झपट कर दबोच लेती हैं; किंतु यदि वह भाग्यसे बच गया तो फिर उसे अपने जीवनका कोई भय नहीं रहता। कारण यह है कि अन्य ज्ञान-शक्तियोंके अभावके कारण, यह मकड़ी उस जीवका पीछा करनेमें पूर्णरूपसे असमर्थ है। मकड़ियोंका एक अपूर्व लक्षण, जो कि प्रायः सब जातियों

में पाया जाता है, वह यह है, कि मादा-मकड़ी नर-मकड़ीसे बड़ी होती है, एवं मादा-मकड़ी एक युवा नर अथवा बच्चा नर मकड़ी में विशेष अन्तर नहीं कर पाती ।

मकड़ियां प्रायः हर स्थान पर पायी जाती हैं। वे अपना जाल, कमरे, बगीचे, और तालाबके ऊपर जहां कहीं भी स्थान मिला, बुन लेती हैं। मकड़ियोंके विषयमें सबसे मनोरञ्जक बात उनके निर्मित सूत एवं उसके प्रयोगके सम्बन्धमें है। रेशमके कीड़ों एवं मकड़ियोंमें सूत निर्माणकी क्रिया भिन्न है। मकड़ीमें सूत उसके उदरके समीप एक अंग-विशेषसे उत्पन्न होता है, जो कि तरल-पदार्थकी भांति निकल कर कठिन रूपमें, वायुके सम्पर्कसे परिणित हो जाता है। इन अंग-विशेषोंकी संख्या मकड़ीकी प्रत्येक जाति में भिन्न होती है। किसी में वे शरीर के पीछे दृष्टिगोचर होती हैं एवं किसीमें नहीं भी होती। बागकी मकड़ियों में इन सूत निर्माण करने वाले अंगों की संख्या अधिक होती है। अतः वे अन्य जाति की मकड़ियोंसे अधिक सूत भी उत्पन्न करती हैं। इन अंग-विशेषकी संख्या २ से ८ तक होती है। किंतु प्रायः ६ पाये जाते हैं। ये अंग छोटे और गोलाकार होते हैं। इनमें अनेक नलीदार छोटे बड़े छिद्र होते हैं। इन्हीं महीन नलियों द्वारा सूत शरीरसे बाहर आता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि मकड़ी के इस छोटे से शरीर में इस प्रकार की ६०० नलियां होती हैं, जो एक बड़े यन्त्रकी भांति निरन्तर सूतका निर्माण करती रहती हैं; किंतु सूत निर्माण आवश्यकतानुसार होता है। एवं प्रत्येक छिद्रसे एक ही प्रकार का सूत नहीं निकलता। जालेकी नींव डालनेके लिये शक्तिशाली सूतकी आवश्यकता पड़ती है। यह काम मकड़ी के सिरके समीप वाले अङ्ग करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर और भी अधिक मजबूत धागे बीच वाले अंगोंसे प्राप्त होते हैं। अन्य अंग कम लचक वाला और अधिक शक्तिशाली सूत तैयार करते हैं जो कि ककूनके निर्माण में प्रयुक्त होते हैं। बचे हुए अंग लसीले धागोंका निर्माण करते हैं, जिनकी सहायतासे मकड़ी अपने शिकारको जालेमें फंसाती है।

जालोंके निर्माणमें मकड़ियोंकी कार्यकुशलता प्रशंसनीय है। यदि हम बगीचेमें मकड़ीके जालेको देखें तो वह प्रायः गोलाकार दिखलाई देगा। उनमें जो लम्बी धारियां पड़ी होती हैं, वे अधिक मजबूत धागेकी होती हैं। कारण यह है कि उसी पर जाले की नींव पड़ी होती है। वृत्ताकार जालेके केन्द्रमें कुछ छितरे हुए धागोंका समूह होता है। मकड़ी किस प्रकार जाले बनाती है, इसका सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। जाला निर्माणका समस्त कार्य मादा मकड़ी ही करती है। एवं नर-महोदय इस आशासे एक कोनेमें पड़े रहते हैं कि मादा मकड़ी की तनिक असावधानीके कारण, यदि अवकाश मिले, तो पकड़े हुए शिकारको हजम कर लें। मादा-मकड़ीको नींव वाले धागोंकी जिन पर उसके समस्त निवासस्थानकी कुशलता निर्भर करती है, विशेष चिंता होती है। उसको उन स्थानोंके चुनावमें सावधानी रखनी पड़ती है जिनमें ये धागे बांधे जाते हैं। अपने चुने हुए स्थानके सहारे, धागोंका एक सिरा बांध कर, वह दूसरे सिरे पर पहुंचती है और एक बार ढीले सूतको तान कर, दूसरे सहारोंमें बांध देती है। इस प्रकार वह चारों ओरकी लम्बी धारियोंका निर्माण करती है। यदि इन नींव वाले धागोंकी मजबूतीमें मकड़ीको तनिक भी सन्देह हुआ तो वह पुनः उनके ऊपर एक बार यात्रा करती है और उनका दोहरे धागेसे निर्माण करती है। जब तक वह पूर्णरूपसे निश्चिन्त नहीं हो जाती, जाले बनानेका आगेका कार्य स्थगित रहता है। तत्पश्चात् वह जाल के संपूर्ण शरीरका निर्माण करती है। एवं बीचकी धारियोंका ऐसा स्थान निश्चित करती है जिसमें सारे जाले पर सम-दबाव एवं तनाव पड़े। इन धारियोंसे वह लसीले धागोंका सम्बन्ध स्थापित करती है जिनके द्वारा शिकार पकड़े जाते हैं। प्रत्येक धारीमें इस धागेको जोड़ कर तान देती है और यदि केन्द्रके अतिरिक्त मकड़ी जालेके किसी दूसरे भागसे छिप कर निकलती है, तो वह एक धागेमें वहांका संबन्ध भी जोड़ लेती है, जिससे शिकारके आने पर फौरन उसे सूचना प्राप्त हो जाती है और वह घटनास्थल पर पहुंच कर अपना कार्य आरम्भ कर देती है।

ये लसदार धागे, अन्य धागों की अपेक्षा मोटे एवं एक लसीले पदार्थ से ढके दिखलाई पड़ते हैं। जब ये धागे ताने जाते हैं, तो बराबरकी दूरी पर लसीले पदार्थके सम-बिन्दु स्थान पर बन जाते हैं। इनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि एक बड़े जाले में अनुमानतः १२०,००० बिंदु पाये जाते हैं। इन बिन्दुओं का निर्माण बहुत काल तक वैज्ञानिकों के विचार का साधन बना रहा है; किंतु अब हमें विदित हुआ है कि यदि कोई लचकदार तरल लसीले पदार्थसे ढका हुआ धागा तना जाता है, तो उस पर उसी प्रकारकी बिंदुओंकी रचना हो जाती है, जिस प्रकार मकड़ी अपने लसीले धागे को तान कर निर्माण करती है। अब हमें देखना है कि किस प्रकार मकड़ी अपने शिकारको

फँसाती है। चूँकि मकड़ियोंमें देखनेकी शक्तिका अभाव होता है, इस कारण वे केवल स्पर्श-ज्ञान द्वारा शिकार करती हैं। ज्यों ही कोई कीड़ा जालेके लसीले धागेमें फंस जाता है, उसके भाग्यका निर्णय हो जाता है। उसको निकल भागनेकी कोशिश करना एकदम व्यर्थ होती है। ऐसी चेष्टा उस अभागे जन्तुको और भी जकड़ देती है और साथ ही साथ मकड़ीको सूचना भी दे देती है। जाले की प्रकम्पनक्रिया से मकड़ी झपट कर उस स्थान पर पहुंचती है; किंतु स्वयं उस लसीले धागे में न फंस जाये, इस बातकी सावधानी रखती है। शिकार के पास पहुंचते ही उसको मुंहसे पकड़ लेती है और अपने आगेकी प्रायः २०० नलियों द्वारा सूत निकाल कर उसको लपेटना आरम्भ कर देती है। इतनी शीघ्रतासे यह कार्य करती है कि थोड़े समयमें ही उस जीवमें हिलने डुलने की सामर्थ्य नहीं रहती। फिर उसको सुरक्षित स्थानमें ले जाती है और आरामसे उसका रक्त चूस लेती है। इस खींचातानीमें जालेका कुछ हिस्सा टूट फूट भी जाता है, जिसकी शीघ्रतापूर्वक मरम्मत करली जाती है। और पुनः मकड़ी दूसरे शिकारकी प्रतीक्षामें बैठ जाती है।

शिकारको फंसानेके लिये जालोंका विभिन्न प्रकारसे निर्माण होता है। हमारे बगीचेकी मकड़ीसे मिलती जुलती उत्तरी अमेरिकाकी एक जातिकी मकड़ी अपने सम्पूर्ण जालेको धागेकी एक चौड़ी पंक्तिसे ढक देती है। इस प्रकारके ऊपरी सजावका एक कारण है। इस मकड़ी को प्रायः बड़े जीवों का सामना करना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें ज्यों ही वह जालमें फंस जाता है उसको शीघ्रतासे धागों द्वारा लपेटनेकी आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि धागोंका निर्माण मकड़ी के कुछ ही पलका कार्य होता है, किंतु फिर भी ऊपरके सजे हुए धागे द्वारा कीड़ेको बांधनेका कार्य जल्दी होता है और उसको भाग निकलनेका अवसर नहीं मिलता; किंतु यदि फंसा हुआ जीव अधिक बलवान हुआ और मकड़ी उसे पकड़े रखनेमें असमर्थ हुई, तो वह शीघ्रतासे छिपनेके स्थान में वापस चली जाती है और उस समय तक प्रतीक्षा करती है जब कि वह बलवान कीड़ा अपना सारा बल लगा कर जालेको तोड़ कर निकल भागे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लसदार धागे केवल थोड़े समयके लिये ही शिकारको फंसा कर रख सकते हैं, उनको पूर्णरूपसे अधिकारमें करनेके लिये मकड़ीको ऊपरसे सावधान करना आवश्यक हो जाता है। शिकार तक पहुंचनेके लिये एक ऐसे रास्तेका निर्माण होता है, जिस पर लसदार रेशे नहीं होते। अन्यथा स्वयं मकड़ीके फंस जाने की सम्भावना होती है। एक अंग्रेजी मकड़ीका जाल और भी कुशलतासे निर्माण होता है। पूरे जालेका केवल छठा हिस्सा होता है और देखनेमें एक त्रिकोणकी भांति होता है। इसमें केवल चार धारियां होती हैं। प्रत्येकसे एक धागा निकल कर समीपके किसी स्थान से जुड़ा हुआ होता है। इन्हीं किसी एक फंसाने वाले धागेसे मकड़ी लटक जाती है और अपने शिकारकी प्रतीक्षा करती रहती है। धागेके हिलनेसे शिकारके फंसनेकी शीघ्र ही खबर मिल जाती है। त्यों ही मकड़ी अगले सभी पंजोंसे धागे को छोड़ देती है जिसमें वह उछल कर शिकारको फंसा लेती है; किंतु यदि उसे प्रथम बार सफलता नहीं मिलती तो वह पुनः धागेको खींच कर तोड़ देती है। इस प्रकारकी चेष्टा करनेसे या तो शिकार पूर्णरूपसे फंस जाता है अथवा भाग निकलता है। एक दूसरे प्रकारकी मकड़ी फंसाने वाले धागों को पंजों से इस प्रकार खींच कर बैठती है कि वह एक खुले हुए छत्तेके समान दीख पड़ता है और ज्यों ही उसे शिकार की सूचना मिलती है वह धागोंको एकाएक छोड़ देती है, जिसमें कीड़ा चारों ओरसे घिर कर पूर्णरूपसे फंस जाता है।

घरों में पाई जाने वाली मकड़ियों का जाला किसी विशेष प्रकार का नहीं होता। अधिकतर धागे लसदार नहीं होते। शिकारको फंसाने के लिए लसदार धागों की थोड़ी संख्या होती है। अन्य वर्ग की मकड़ियां अत्यन्त सुन्दर रेशमी धागों का निर्माण करती है एवं उनके जालेमें ऐसे रेशमी धागे फैले रहते हैं। साधारण धागों के निर्माणक अंगों के अतिरिक्त इन रेशमी धागोंके निर्मित करनेके लिये इन मकड़ियोंके अंग विशेष होते हैं, जो कि सामनेके हिस्से में होते हैं एवं उनमें बहुत छिद्र होते हैं जिनसे कि रेशम निकलता है। इस रेशमके धागों को संपूर्ण जालेमें फैलानेके लिये मादा-मकड़ीमें एक महीन कंघी होती है। जलमें रहने वाली मकड़ियोंको हम छोटे तालाबोंमें देख सकते हैं। मादा-मकड़ी अपने जालेका निर्माण रहने के लिये करती है; शिकारको फंसानेके लिये नहीं। जलके किसी उपयुक्त पौधेकी डालियों एवं पंक्तियोंमें यह अपना जाल बुनती है। संपूर्ण जाल निर्माण करनेके पश्चात् उनके छिद्रोंमें मकड़ी वायु भरती है। वह जलके अन्दर चली जाती है और निकल कर वायुके विन्दुको पिछले पञ्जोंमें भर लेती है और जाले में पहुंच कर निकाल देती है। इस प्रकार अनेक बार करनेसे चिपटा जाल फूल जाता है।

अपने शिकार के लिये मादा-मकड़ी जाल की सतह के ऊपर ही प्रतीक्षा करती है। शिकारको पकड़नेके बाद वह अपने जालेमें वापस आती है। गर्मी के अन्तमें मादा-मकड़ी का निवासस्थान छोटे बच्चों का पालन-ग्रह बन जाता है। एक दीवार खींच कर जालेके ऊपरी भागमें अपने अंडे देती है। अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात मादा कुछ गहरे जल में जाकर दूसरे जाले का निर्माण करती है, जिसमें वह जाड़ोंमें आराम करती है। अंडोंसे निकलने के बाद छोटे बच्चे जाले बनाने की बजाय खाली घोंघों में जल भर कर उसीमें तैरते रहते हैं। जलकी मकड़ियों में एक दूसरी जातिकी अंग्रेजी मकड़ीका रहन-सहन इन सभीसे बिल्कुल भिन्न है। इनके देखनेकी शक्ति तीव्र होती है जिसके कारण वे अपने शिकारकी खोज करती हैं। जालों का निर्माण बहुत कम करती हैं एवं मादा अपने अंडोंको एक थैलेमें साथ लिये रहती है और जब बच्चे निकल आते हैं तो कुछ दिनों तक माँ की पीठ पर निवास करनेके पश्चात् अलग होकर अपनी जीविका पैदा करते हैं। यद्यपि वे जलके ऊपर तैर सकते हैं; किंतु फिर भी उनको एक निवासस्थानकी आवश्यकता होती है। अतः कुछ सूखी पत्तियोंको एकत्रित कर उनको धागोंसे बाँध देते हैं। इसी के सहारे खड़े हो कर वे जल के कीड़ों का शिकार करनेकी प्रतीक्षा करते हैं। कभी-कभी इसको छोड़ कर शिकार करने चले जाते हैं, फिर वापस चले आते हैं। काई के सहारे वे जल के भीतर भी भ्रमण कर कुछ स्वादिष्ट भोजन पा जाते हैं।

फंदे बनाने वाली मकड़ियों का पता लगाना कठिन कार्य है, क्योंकि वे अत्यन्त सावधानी से छिप कर उसका निर्माण करती हैं। उनके निवासस्थान का साधारण ढांचा भूमिके अन्दर एक सीधे-सादे लम्बे छिद्रके समान होता है। छिद्रका मुख मोटे धागों से ढका रहता है, ताकि मिट्टी न गिरने पावे। छिद्र का भीतरी भाग रेशमी धागोंसे घिरा होता है। बाहर जानेका रास्ता एक ढक्कनसे ढका रहता है। आरम्भमें जब यह मकड़ी अपना घर बनाती है, तो भागे छोटा रखती है; किंतु ज्यों-ज्यों वह बढ़ती जाती है, अपने घर और रास्ते दोनोंको बड़ा करती जाती है एवं उसका ढक्कन ऐसे मिश्रित पदार्थोंसे निर्माण करती है कि वह बाह्य वातावरणके तदाकार हो जाता है। यही कारण है कि उसका पता लगाना कठिन हो जाता है। छिद्र बनानेका सारा कार्य मकड़ी अपने मुखसे करती है और मिट्टीको दूर फेंकती जाती है। तैयार होनेके पश्चात् मकड़ी द्वार पर बैठ कर शिकार की प्रतीक्षा करती है और किसी कीड़ेको पा जाने पर वह अंदर चली जाती है और आनन्दसे भोजन करती है। यद्यपि मकड़ी बहुत छिपा कर अपना घर बनाती है फिर भी उसके शत्रु पता पा जाने पर द्वारको खोलनेकी चेष्टा करते हैं; किंतु मकड़ी भीतर से सारी शक्ति लगा कर द्वार के ढक्कन को बन्द किये रहती है और अपनी रक्षा करती है; किंतु यदि शत्रु बलवान् हुआ तो द्वार को तोड़ डालता है। ऐसी अवस्था में मकड़ी शीघ्रतापूर्वक भूमिके भीतर जा छिपती है। इस जातिकी कुछ मकड़ियाँ और भी पेंचदार निवासस्थान का निर्माण करती हैं और अंग्रेजी के 'वाई' शब्दकी भाँति उनका ढांचा होता है; अर्थात दो द्वार होते हैं। एक द्वार तो उपर्युक्त रूपसे ढक्कनसे ढका होता है और दूसरा रास्ता घास अथवा काई में छिपा होता है जो कि शत्रुसे हारने पर भाग निकलनेके कार्यमें लाया जाता है। कभी-कभी एक तीसरा रास्ता भी होता है जिससे मकड़ी अपने शिकारको फंसाती है। इसके सभी द्वार पर एक फन्दा होता है जिसमें उनके शिकार फंस जाते हैं। उसका निर्माण इस ढंग का होता है कि भूमिके कीड़े मकोड़ों को उसका ज्ञान नहीं होता, जिससे वे उसमें आ फंसते हैं, विभिन्न जातिकी मकड़ियोंकी कार्य-पटुता जालेका संगठित निर्माण एवं शिकार फंसानेकी अनेक विधियां निस्सन्देह प्रशंसनीय हैं।
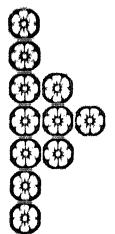
ऊषर भूमि को उर्वरा व उन्नत बनाना

[लेखक—डा० प्रोफेसर नीलरत्न धर, डी. एस-सी., आई. ई. एस.]

भारतवर्ष के कृषि प्रधान देश होने के कारण कोई भी वैज्ञानिक अनुसंधान उतना महत्व नहीं रखता जितना कि कृषि योग्य भूमिकी उन्नति। ऊषर भूमि को उर्वरा भूमि में परिणित करनेके विभिन्न उपाय एवं भूमिमें नेत्रजन सम्बन्धी पदार्थोंको प्रचुर मात्रामें रखनेकी विधियां आदि विषय के गम्भीर अध्ययन पर ही भारतीय कृषिकी उन्नति निर्भर है।

भारतीय कृषि पर सन् १६२८ की रायल कमीशनने यह घोषित किया था कि भारतीय मिट्टियोंमें मुख्यतः मिश्रित नेत्रजनकी कमी है और इस देशकी खाद सम्बन्धी प्रधान कठिनाई नेत्रजनकी न्यूनता है यह भली भांति विदित है कि पौधोंको स्वस्थ बनाने और पैदावार में उन्नतिके लिये मिट्टी में नेत्रजनका होना अत्यन्त आवश्यक है जिस प्रकार कि एक जीवको अपना अस्तित्व रखनेके लिये प्रोटीनकी आवश्यकता होती है जो कि नेत्रजन संबन्धी पदार्थ होते हैं, उसी प्रकार पौधोंको भी वैसे ही रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश पौधे वायुके स्वतन्त्र नेत्रजनके शोषक नहीं होते। ऐसी दशामें, उस नेत्रजनसे वृक्षोंको कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। योरप एवं संसार के अन्य प्रगतिशील देशों में, अमोनियम, साल यूरिया, नाइट्रेट्स सायन अमाइडस आदि रासायनिक पदार्थ मिट्टीमें मिला कर पौधों के भोज्य पदार्थकी मात्रा बढ़ा कर पदावारकी उन्नति करते हैं। वे सब पदार्थ मिट्टी से मिलकर अमोनियमके लवण में परिणित हो जाते हैं, जो कि पैदावारकी उन्नतिमें सहायक होते हैं और इनकी सहायतासे अनुकूल वातावरणमें अनाजों की उत्पत्ति दूनी की जा सकती है। इसी विधिसे बेलजियम में प्रति एकड़ भारतवर्षकी अपेक्षा गेहूंकी दुगुनी उत्पत्ति की जाती है। भारतके कृषकोंकी निर्धनता और विदेशी बनाये हुए अमोनियम लवणोंके प्रयोगमें अधिक व्यय पड़नेके कारण रासायनिक खादोंका उपयोग स्पष्टतः असम्भव है। अतः अधिकांश भारतीय किसानोंको भूमिकी उन्नति करनेके लिले देशी खादों गोबर आदिका प्रयोग करना पड़ता है। इन पदार्थोंमें भी प्रोटीन्स होते हैं जो कि मिट्टीके सम्पर्कमें आने पर अमोनियम लवणमें परिणित हो जाते हैं। तत्पश्चात् मिट्टीमें वायुके आक्सीजनसे नाइट्राइटस हो जाते हैं। वायुके आक्सीजनसे ये रासायनिक पदार्थ नाइट्रेट्समें परिणित हो जाते हैं, जो कि पौधों के वास्तविक खाद्य-पदार्थ है। पौधे भूमि से इन पदार्थों का शोषण करते हैं, जो कि उनके विभिन्न अंगों की पुष्टि करते हैं और इन्हींकी सहायतासे प्रोटीन्स आदि पदार्थोंका निर्माण होता है। प्रत्यक्ष रूपसे अमोनियम लवण अथवा नाइट्रेटसका उपयोग नहीं होता। जब वे रासायनिक क्रियासे नाइट्रेटसमें परिणित हो जाते हैं, तभी पौधे उनका सेवन करते हैं।

प्रोफेसर धर एवं उनके सहयोगियों के कई वर्षों के निरन्तर अनुसंधान के पश्चात् उन्होंने एक नूतन और अल्प व्यय की विधि को खोज निकाला है, जिसके द्वारा चीनीके शीरे अथवा राब की सहायता से मिट्टी के नेत्रजन लवणों में परिणित और वायु को स्वतंत्र नेत्रजन की संलग्नता दोनों क्रियायें पृथ्वी में हो जाती हैं। जैसा कि विदित है कि शीरा चीनीके कार्यालयों का प्रधान अनुपयोगी पदार्थ है और वह इस विशाल मात्रा में निर्माण होता है कि इस देशमें उनका उपयोग एक बहुत बड़ी समस्या है। वही अनुपयोगी प्रचुर मात्रा में निर्मित पदार्थ अब सफलतापूर्वक ऊषर भूमि की उन्नतिके लिये प्रयोग किया जाता है। शीरा व प्रेसकेक दोनों ही इस कार्यके लिये प्रयोग किये जाने वाले जिपसम अथवा गन्धकसे अधिक उपयोगी हैं। प्रो० धर और उनके सहयोगियोंने अपने प्रयोगोंसे यह निश्चयपूर्वक सिद्ध कर दिया है कि मिश्रित नेत्रजन जो कि पौधोंकी वृद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक है याने अमोनियम लवण एवं नाइट्रेटस की मात्रा, शीरा मिला देने से भूमि को भली भांति जोतने पर, विशेष रूप से बढ़ जाती है। शीरे में शर्करा पदार्थों की प्रचुर मात्रा होती है। हमें विचार करना है कि किस प्रकार इस शर्करी पदार्थसे नेत्रजन लवणों की मात्रा भूमि में बढ़ जाती है? जिस प्रकार शर्करी पदार्थ वायुके आक्सीजन से मिश्रित होकर जीव के शरीर में गर्मी एवं पौरुष उत्पन्न करता है, उसी प्रकार शीरा मिला देने से भूमि से स्वतन्त्र गर्मी उत्पन्न होती है, जिसका उपयोग वायु के नेत्रजन एवं पृथ्वी के आक्सीजन के सम्मिश्रण कराने में होता है। इसीके फलस्वरूप नाइट्रेटसका निर्माण होता है। वायुके स्वतंत्र नेत्रजन को लवणों में परिणित करनेके लिये पौरुषकी आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यक गर्मीका उत्पादन

शर्करी पदार्थों के आक्सी-करण द्वारा होता है। इस प्रकार शीरे की सहायता से जो नाइट्रेट्सका निर्माण होता है, वह भूमि के भली भांति जोते जाने पर रासायनिक क्रिया द्वारा शर्करी पदार्थों के साथ अमोनियम लवणमें परिणित हो जाते हैं। यही कारण है कि शीरे से मिश्रित भूमि में अमोनियम लवणों की मात्रा अधिक हो जाती है। ये लवण वायु और प्रकाश के संपर्क में आने पर और साथ ही साथ कुछ कीटाणुओं के प्रभावसे नाइट्रेटसमें परिणित हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शीरा को खाद की तरह प्रयोग करनेसे नेत्रजन लवणों की मात्रा बढ़ जाती हैं जो कि पौधोंकी वृद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

भारतमें पैदावारकी न्यूनता—

यह सर्वविदित है कि भारत में अनाजों की उत्पत्ति अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है, जैसा कि निम्नलिखित आंकड़ों से विदित है:—

चावल—

भारतवर्ष	१२६५	पौंड प्रति एकड़
जापान	३,०४०	,, ,,
मिश्र	२,७८३	,, ,,

चीनी

जापान	३·३४०	,, ,,
मिश्र	३,३७७	,, ,,
जावा	११६८८	,, ,,
हवाई	१८,७६६	,, ,,

इस कमी का मुख्य कारण भारतीय मिट्टियों का दोष है उनमें नेत्रजन लवणों की अत्यन्त कमी है जो कि पौधों का प्रधान भोजन है। यद्यपि वायु में नेत्रजन की मात्रा पर्याप्त है; किंतु अधिकतया पौधे उस स्वतन्त्र नेत्रजन से लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं जो कुछ उन्हें मिट्टी के लवणोंसे मिल जाता है वे उसी पर निर्भर करते हैं, और योरप एवं अन्य ठंडे प्रदेशोंमें उसकी मात्रामें ०·१ प्रतिशत नेत्रजन होता है। यह सन्तोषका विषय है कि पौधों के लिये अन्य उपयोगी खाद्य-पदार्थ जैसे चूना, पोटास, फासफेट आदि भारतीय मिट्टियों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। प्रगतिशील प्रदेशों में नेत्रजन संबन्धी लवणों का विशाल मात्रा में निर्माण किया जाता है, जिनको मिट्टी में खाद दी जाती है; किंतु भारतवर्षमें इस प्रकारका कोई कार्यालय नहीं है। इस व्यापार के स्थापित करने के लिये सस्ती विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है; किंतु भारत में ऐसी व्यवस्था न होनेके कारण नेत्रजन कार्यालयका संचालन करना कठिन है।

शीरा व भारतीय मिट्टी—प्रोफेसर धर एवं उनके सहयोगी मुख्यतः सर्व श्री पालित, गोपालराव, भट्टाचार्य, टंडन आत्माराम, मुकर्जी, विश्वास, शेषाचार्य, श्रीवास्तव, और सुन्दर रावके अनेक वर्षों के अनुसन्धानों ने यह निश्चयपूर्वक सिद्ध कर दिया है कि शीरेके प्रयोगसे मिट्टीमें नेत्रजनकी मात्रा बढ़ जाती है। शीरेके शर्करी पदार्थका वायुके आक्सीजनके साथ बैक्टीरिया, सूर्य प्रकाश, लोहा मैंगनीज आदि खनिज-पदार्थ जो कि मिट्टी में उपस्थित रहते हैं, की सहायतासे आक्सीकरण होता है। इस क्रिया द्वारा प्रचुर मात्रामें स्वतन्त्र गर्मी निकलती है जो कि वायु के नेत्रजन व आक्सीजनका सम्मिश्रण कर भूमिमें नाइट्रेट्स व अमोनियाकी वृद्धि करते हैं—यही पौधोंका प्रमुख भोज्य-पदार्थ है। कारण यह है कि स्वतन्त्र नेत्रजन का उपयोग करनेमें अधिकांश पौधे असमर्थ होते हैं। शीरा मिट्टीमें न केवल नेत्रजनकी मात्रा बढ़ा देता है, बल्कि उसकी शीतकको भी बढ़ा देता है, जिसका उपयोगी प्रभाव दो वर्ष तक रहता है। शीरेके प्रयोग से प्रो० धर ने मिट्टीमें नेत्रजनकी मात्रा शत प्रतिशत बढ़ा दी है और अन्य खेतोंकी अपेक्षा शीरेकी मिट्टीमें पैदावारकी भी यथेष्ट मात्रामें वृद्धि हो जाती है। शीरेके प्रयोगसे चावलकी उत्पत्ति विशेष रूपसे बढ़ जाती है। प्रायः खेतोंमें ८·१ मन प्रति एकड़ चावल उत्पन्न होता है। किंतु शीरेके प्रयोगसे उसकी उत्पत्ति १४·५ मन प्रति एकड़ हो जाती है और साथ ही साथ पौधेकी भी वृद्धि हो जाती है। मद्रासकी फरी कम्पनी और शाहजहांपुरके सरकारी खेतोंमें शीरेके प्रयोग द्वारा गन्नेकी उत्पत्ति ४० प्रतिशत बढ़ गई है। शीरेके प्रयोगके विषयमें प्रो० धरने स्पष्ट रूपसे बतला दिया है कि वे बोनेसे २-३ मास पहले ही मिट्टीमें मिला देना चाहिये और जिस समय पौधे उत्पन्न हो रहे हों शीरेका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये। शीरेका सम्मिश्रण करनेके पश्चात् और बोनेसे पहले खेतोंको ३-४ बार भली भांति जोत देना चाहिये। जलका उपयोग उसी मात्रामें होता है जैसा कि साधारण खेतोंमें हुआ करता है। प्रो० धर एवं उनके सहयोगियोंने अपने प्रयोगोंमें सदा शीरे मिश्रित मिट्टियों में अन्य मिट्टीयोंकी अपेक्षा जलकी मात्रा अधिक पाई है।

शीतप्रधान देशों में सूर्यप्रकाश की न्यूनता के कारण वातावरणका तापक्रम कम होता है। ऐसी दशामें शीरेके शर्करी पदार्थ

का आक्सीकरण कठिनतासे होता है। इस क्रिया द्वारा जो स्वतंत्र गर्मी निकलती है, वह मिट्टीमें नेत्रजनकी मात्रा बढ़ानेके लिये अपर्याप्त होती है। शीत-प्रधान देशोंमें शीरेके प्रयोगकी असफलताका यही प्रधान कारण है। इसके अतिरिक्त प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें किये गये प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि एजोबैक्टर नामक कीटाणु जो कि भूमिमें नेत्रजनकी मात्रा बढ़ाने में सहायक होता है, १० (सा०) से कम ताप क्रम पर निष्काम हो जाता है; किंतु २०° और ५०° डिग्री तापक्रम पर शीघ्रतापूर्वक अपना कार्य सम्पादन करता है। यही कारण है कि शीतप्रधान देशोंके कृषिगण मिट्टीमें नेत्रजनकी मात्रा बढ़ानेमें कीटाणुओंका सहयोग पानेमें असमर्थ रहे हैं। किंतु भारत जैसे उष्ण प्रधान देशोंमें उपरोक्त बैक्टीरिया-शीरे अथवा अन्य शर्करी पदार्थों के प्रयोगसे मिट्टीमें नेत्रजन लवणों की मात्रा बढ़ानेमें विशेष रूपसे सहायक होते हैं।

प्रो० धरके, 'अमोनियम सलफेट' नामक रासायनिक खाद के अकेले और शीरेके साथ मिट्टी पर प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि नेत्रजनकी मात्रा शीरे द्वारा प्रयोगित भूमि में अन्यों की अपेक्षा निश्चित रूपसे बढ़ जाती है। इस प्रकार शीरा मिट्टी के नेत्रजनको परिणित करने का कार्य करता है। उष्ण प्रदेशों में 'अमोनिया सलफेट' की अपेक्षा उसका शीरेके साथ सम्मिश्रण करके खाद प्रदान करनेमें अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह भी ध्यान रखने योग्य बात है, कि शीरा, गोबर, पत्तियां, हड्डी आदिकी खादके प्रयोग करने पर उन भागोंसे नेत्रजनकी मात्रा अधिक पायी जाती है जो कि सूर्यके प्रकाशमें ज्यादा देर तक रहे हैं। गोबर न केवल अपने नेत्रजन द्वारा भूमि में उसकी मात्रा बढ़ाता हैं किंतु वह वायुके स्वतन्त्र नेत्रजनका भी मिट्टी से संबन्ध कर उन लवणोंकी वृद्धि करता है। यह एक अत्यन्त उपयोगी क्रिया है जिसके द्वारा वायुका नेत्रजन प्रचुर मात्रामें मिट्टीके साथ मिश्रित होकर पौधोंको आवश्यक भोज्य-पदार्थ प्रदान करता है। आक्सीकरण द्वारा नाइट्रेटसके निर्माणकी क्रियामें मनुष्य जातिके हितके लिये सूर्यकी किरणें प्रधान भाग लेती हैं, उसीकी सहायता द्वारा वे सम्पूर्ण रासायनिक क्रियायें सम्पादित होती हैं; किंतु नेत्रजन बहुत समय तक मिट्टीमें सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। सर जान रसलका कहना है कि जो नेत्रजनसे परिपूर्ण खाद मिट्टीको प्रदान की जाती है, उसका ६० प्रतिशत स्वतन्त्र नेत्रजन गैसके रूपमें निकल कर नष्ट हो जाता है, २५ प्रतिशत पौधे ले लेते हैं और केवल १० प्रतिशत मिट्टीमें रह जाता है। नेत्रजनके इस प्रकार नष्ट होनेका कारण अमोनियम नाइट्रेटस नामक एक अस्थिर पदार्थ का पृथक होना है। यह क्रिया सूर्यके प्रकाशसे और भी बढ़ जाती है। उपरोक्त रासायनिक लवणका निर्माण भूमिके पृष्ट पर खादोंके देने पर होता है। नेत्रजनकी यह हानि शीरे अथवा अन्य कार्बनीय-पदार्थों के प्रयोगसे बहुत घट जाता है। यही कारण है कि शीरे व खादका प्रयोग करने पर अन्य रासायनिक खाद जैसे अमोनियम सल्फेट अथवा यूरिया आदिकी अपेक्षा भूमिमें नेत्रजन अधिक काल तक सुरक्षित रखा जाता है। इसके अतिरिक्त शीरेका मिट्टी पर अवशेष प्रभाव रहता है; किंतु अन्य रासायनिक खादोंके प्रयोगमें यह प्रभाव नहीं पाया जाता।

ऊषर भूमिकी उन्नति—अनुमान किया जाता है कि केवल युक्तप्रांतमें ४,०००,००० एकड़ भूमि ऊषर है। डा० जे. एन. वोलकर ने उत्तरी भारतवर्षमें तमाम ऊषर भूमिकी परीक्षा करनेके बाद उन्होंने भारतीय कृषिकी उन्नति नामक रिपोर्टमें, जो कि लन्दनमें १९३३ ई० से प्रकाशित हुई थी, इस प्रकार लिखा था;—

उत्तरी भारतके मैदानोंमें विशाल भूमि ऊषर पड़ी हुई है और केवल उत्तरी पश्चिमी प्रांतोंमें प्रायः ४-५ हजार वर्ग मील ऊषर भूमि है। पंजाब, बिहार, एवं दक्षिणी भारतमें इस प्रकार का विस्तृत बंजर क्षेत्र पड़ा हुआ है। स्वभावतः ऐसी भूमिकी उन्नति करना भारतके लिये एक प्रधान समस्या है।

ऊषर भूमिके दोष—(१) इनमें अत्यन्त खार होता है पी. एच. १०·८ से भी अधिक है। ऐसी मिट्टीमें न तो एजेटों बैक्टर और न नाइट्राइट निर्भारक कीटाणु पाये जाते हैं। (२) इस मिट्टीमें कैलसियम एवं अन्य पदार्थ साधारण मिट्टी से कम मात्रामें पाया जाता है।

(३) इनमें नेत्रजनकी मात्रा भी कम होती हैं। कई एक नमूने की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि नेत्रजन की मात्रा ०·००८ से ०·०२ प्रतिशत होती है; किंतु भारतके साधारण प्राकृतिक मिट्टीमें नेत्रजनकी मात्रा प्रायः ०·०५ प्रतिशत होती है। कार्बनीय पदार्थोंकी भी कमी है।

(४) खारी मिट्टीमें जल कठिनतासे प्रवेश कर पाता है।

(५) जलके साथ भलीभांति सम्मिश्रण करने पर खारी मिट्टीके अणु शीघ्रतापूर्वक तहमें नहीं बैठ पाते। यह भी एक

अवगुण है ।

(६) बैक्टीरिया अथवा अन्य उपयोगी कीटाणुओंकी प्रतिक्रिया खार मिट्टीमें शिथिल पड़ जाती है ।

इन्हीं सब दोषोंके कारण ऊसर भूमि अन्न उत्पन्न करनेमें सर्वथा अयोग्य है ।

उन्नतिके उपाय—प्रो० धर एवं उनके सहयोगियोंके अनुसन्धान द्वारा प्रकट हुआ है कि शीरा ऊसर भूमिकी उन्नतिके लिये सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है । यह भली भांति विदित है कि शीरे में ६०-७० प्रतिशत शर्करी पदार्थ, ४·५ प्रतिशत पोटास, २ प्रतिशत चूना, ०·५ प्रतिशत फासफोरिक एसिड, ०·५ प्रतिशत लोहा व अलूमिनियम आक्साइड, ०·५ प्रतिशत मिश्रित नेत्रजन और शेष भाग जल होता है । इस के अतिरिक्त शीरा निश्चित रूपसे अम्ल होता है । इलाहबाद, बंगलोर, जावा, हवाई एवं अन्य चीनी उत्पादक प्रदेशोंके अनुसन्धानोंसे विदित है कि मिट्टीमें शीरा प्रदान करने पर कारबोनिक एसिडके साथ अन्य अम्लका निर्माण शर्करी-पदार्थों के अपूर्ण आक्सीकरण आदि द्वारा होता है । शीरे की अम्ल एवं रासायनिक क्रिया द्वारा निर्मित अम्लों के सहयोगसे ऊसर भूमि का खार भली-भांति नष्ट किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त उपरोक्त आक्सीकरण द्वारा जो कारबोनिक एसिडका निर्माण होता है वह सोडियम कार्बोनेटको बाइ-कार्बोनेट में परिणित कर देता है । शीरेसे प्रयोगित मिट्टीसे रासायनिक क्रिया द्वारा जो गैस निकलती है, उसके द्वारा भूमिमें झिरझिरापन उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण जलके प्रवेश करनेमें सुगमता हो जाती है । जो चूना शीरेके साथ मिट्टीमें मिल जाता है, वह अम्लों की क्रियासे घुलनशील हो कर खारको कैलसियमयुक्त मिट्टीमें परिणितकर देता है जिसका कि स्वाभाविक भूमिमें होना आवश्यक है।

ये घुलनशील कैलसियम-लवण मिट्टीके अणुओं पर एकत्रित होकर जलको प्रवेशनीयक्रियाकी उन्नतिमें सहायक होते हैं। डा० धरके प्रयोगोंके परिणामोंसे यह प्रकट है कि ऊसर भूमिकी उन्नतिके लिये जिपसम अथवा चूर्ण गन्धकसे अधिक उपयोगी एवं लाभदायक शीरेका प्रयोग है । जब उन पदार्थोंका उपयोग किया जाता है तो मिट्टीके नेत्रजनकी हानि होती है; किंतु शीरे के प्रयोगसे नेत्रजनकी मात्रा बढ़ जाती है । शीरेके द्वारा ऊसर भूमि शीघ्र ही उर्वरा भूमिमें परिणित हो जाती है । कारण यह है कि शीरेके अम्लों द्वारा खार शीघ्र ही उदासीन हो जाता है, एवं घुलनशील कैलसियम-लवण मिट्टीको झिरझिरा कर देता है, जिससे वह जलशोषक हो जाती है । प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि जिपसम अथवा चूर्ण-गन्धक से ऊसर भूमि को उर्वरा में परिणित करनेके लिये प्रायः ४ वर्षकी आवश्यकता होती है; किंतु शीरेके प्रयोगसे यह क्रिया केवल २ मासमें पूर्ण होजाती है । मैसूर एवं संयुक्तप्रांत में शीरे के प्रयोग से ऊसर भूमि को सफलतापूर्वक उर्वरा भूमि में परिणित किया गया है और उन स्थानों पर जहां कभी कुछ उत्पन्न ही नहीं हुआ था, आज कल अच्छी पैदावार हो रही है ।

प्रेसमड द्वारा ऊसर भूमिकी उन्नति—प्रायः ३०-४० लाख मन प्रेसमड (गन्नेका अनुपयोगी भाग) प्रतिवर्ष भारतीय चीनी कार्यालयोंसे उत्पन्न होता है । यह पदार्थ जो कि शर्करी पदार्थ कैलसियम व नेत्रजन लवणोंसे परिपूर्ण होता है, किसी भी प्रयोगमें नहीं लाया जाता है । किंतु प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशाला के प्रयोगों द्वारा यह विदित हुआ है कि अधिक खार वाली ऊसर भूमिकी मिट्टीके साथ जब उपरोक्त पदार्थ का सम्मिश्रण किया जाता है तो मिट्टीका खार अधिकांश अंशोंमें घट जाता है और भूमि जल प्रवेशनीय हो जाती है । घुलनशील कैलसियम-लवण, खारी मिट्टीको कैलसियमयुक्त भूमि में परिणित कर देता है । अतः गन्नेका अवशेष भी ऊसर भूमि की उन्नतिके लिये विशाल मात्रामें प्रयोग होना चाहिये ।

सन् १८७४ ई० से ही उत्तरी पश्चिमी प्रांतका सिंचाई विभाग ऊसर भूमिको उर्वरा करनेमें प्रयत्नशील है । इस समस्या को सुलझानेके लिये सन् १८७७ ई० में एक 'रेह कमेटी' का निर्माण हुआ; जिसके फल स्वरूप सन् १८७९ में आवा, सन् १८८२ में कानपुर और सन् १८८५ में अलीगढ़में प्रयोग आरम्भ हुए । किंतु अभाग्यवश किसी सुयोग्य वैज्ञानिक का सहयोग न प्राप्त होनेके कारण कोई विशेष परिणाम नहीं निकला; जैसा कि संयुक्त प्रांतके कृषि विभागके डाइरेक्टरके १३ नवम्बर १९३५ के पत्रसे विदित है—

"ऊसर भूमिकी उन्नति पर जूही (कानपुर) व अल्यागपुर (उन्नाव) में इस विभाग द्वारा वैज्ञानिक प्रयोग किये गये; किंतु कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं प्राप्त हुआ, एवं बबूलके वृक्ष वन विभागमें भेज दिये गये हैं । अतः अब वन-विभागसे इस बातकी जांचकी जावे ।"

भारतीय कृषि रसायनज्ञ स्वर्गीय डा० जे० डब्ल्यू० लेदरने

अलीगढ़ एवं संयुक्तप्रांतके अन्य भागोंको ऊषर भूमिकी मिट्टी का निरीक्षण किया और साथ ही साथ जिपसमके प्रयोगसे ऊषर भूमिकी उन्नति करनेकी चेष्टा भी की थी। उनके परिणामोंसे यह प्रकट होता है कि उपरोक्त रासायनिक-खादके प्रयोग करने पर भी गेहूं उस मिट्टीमें उत्पन्न नहीं हो सकती, जिसमें सोडियम कार्बोनेटकी मात्रा ०·००८ से ०·००८२ प्रतिशतकी होती है—

लेदर महोदयके परिणाम इस प्रकार हैं:—

१. केवल एक प्रयोग जो कि ऊषर भूमिको उर्वरा करनेमें समर्थ हुआ है वह जिपसमका उपयोग है; किंतु ऐसा करनेमें व्यय अधिक पड़ जाता है। प्रायः ७००-८०० रुपये प्रति एकड़। ऐसी दशामें इसका व्यवहार नहीं किया जा सकता। यदि जिपसमका मूल्य आधा भी हो आवे, यानी २० रुपये प्रति टन, इतने पर भी इसका प्रयोग अधिक व्ययके कारण असम्भव है।

२. भलीभांति खाद देने और जोतने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होता। निस्संदेह ऊपरकी मिट्टी अवश्य उर्वरा हो जाती हैं; किंतु नीचेकी मिट्टी उसी प्रकार बंजर रहती है। लवणोंके खुरचनेसे भी कोई लाभ नहीं होता (संयुक्त प्रांतमें ऊषर भूमिका निरीक्षण-जे० डबल्यू० लेदर द्वारा; इलाहबाद, १६२७, पृष्ठ ३७) खेतोंमें, ऊषर भूमिको उर्वरा बनाने पर, शीरेका प्रयोग—

सन् १६३५ में मैसूर-राज्य के कृषि-विभाग ने कई ऊषर खेतोंमें धान बोनेसे तीन सप्ताह पहले १ टन शीरा प्रति एकड़ प्रयोग किया था। फलस्वरूप उस बंजर भूमिसे जहां पिछले वर्ष कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ था, उसीमें १२००-१८०० पौंड चावल प्रति एकड़ उत्पन्न हुआ। भारतकी स्वाभाविक चावलकी पैदावार १२६५ पौंड प्रति एकड़ है। मैसूर-राज्य के इन परिणामोंसे पूर्णरूपसे सन्तुष्ट होनेके कारण इन प्रयोगों को १८० एकड़ ऊषर भूमिसे अधिक भूमि उपयोग करनेको आज्ञा दे दी गई। इस प्रकार आशा की जाती है कि प्रयाग विश्वविद्यालय की रसायनशाला में खोज की गई विधि द्वारा मैसूर-राज्य अपनी सारी ऊषर भूमि की उन्नति, शीरेके प्रयोगसे करेगी। बिहार, संयुक्त-प्रांत व पंजाबमें भी खारकी मात्राके अनुसार ३ से १० टन प्रति एकड़ शीरेका प्रयोग कर ऊषर भूमिकी उन्नति की गई है। इस विधि द्वारा सरकारी खेतों, सोराव, उन्नाव, सहारनपुर, कानपुर, मैनपुरी एवं अन्य स्थानोंमें बिल्कुल निष्काम ऊषर भूमि को स्थायी रूपसे उर्वरा भूमिमें परिणित किया जाकर चावलकी अच्छी पैदावार की गई है।

अधिक खारकी ऊषर भूमिकी उन्नति करनेके लिये समभागमें शीरा व गन्नेके अवशेषका मिश्रण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। बात यह है कि शीरेमें प्रायः २ प्रतिशत घुलनशील चूना होता है। गन्नेके अवशेषमें भी इस पदार्थकी अधिक मात्रा होती है अतः जब इनका मिश्रण ऊषर भूमि पर प्रयोग किया जाता है तो मिट्टीका सोडियम, कैलसियम में परिणित हो जाता है; जो कि मिट्टीका एक स्वाभाविक गुण है। चूंकि इस प्रयोग से भूमिका सोडियम, कैलसियममें परिणित हो जाता है, इस कारण उसका प्रभाव स्थायी होता है। केवल एक बार शीरेके प्रयोग करने पर ऊषर भूमि प्रायः ४-५ वर्ष तक भली भांति चावल उत्पन्न कर सकती है। इस बीचमें शीरेके प्रयोगकी पुनः आवश्यकता नहीं पड़ती। श्री एन्च० एन० बाथम, डा० बी० के० मुकर्जी, आदि कानपुर में, बिहार में, डा० मीरचन्दी और बम्बईमें डा० वसु आदि लोगोंने प्रयाग विश्वविद्यालयके इन प्रयोगोंके परिणामोंका पूर्णरूपसे समर्थन किया है।

इस प्रयोगका प्रति एकड व्यय—१० टन शीरा अथवा ५ टन शीरा व ५ टन गन्नेके अवशेषका मिश्रण एक खराब ऊषर भूमिके प्रति एकड़को स्थायी रूपसे उर्वरा कर देने के लिये पर्याप्त है। अधिकसे अधिक व्यय प्रति एकड़ प्रायः ८० रुपये पड़ते हैं; जहां योरपकी विधि द्वारा 'जिपसम' के प्रयोग से ऊषर भूमिको उर्वरा भूमिमें परिणित करनेके लिये ८०० रुपये प्रति एकड़से कम व्यय नहीं पड़ सकता। इसके अतिरिक्त जिपसम द्वारा नेत्रजनकी मात्रा नहीं बढ़ती, जो कि भारतीय मिट्टियोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है। किंतु शीरेके प्रयोगसे भारतीय भूमि कैलसियम, फासफेट, पोटास और सब नितान्त भाग नेत्रजन आदिसे परिपूर्ण हो जाती है। आंकड़ोंसे विदित है कि भारतमें प्रति मनुष्य केवल ०·७५ एकड़ भूमि कृषिके लिये पाता है; जहां यू० एस० ए० में २·६ एकड़; व फ्रांसमें २·३ एकड़ भूमि एक आदमीको मिलती है। अतः हमें यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि कृषिके लिये भारतमें प्रति मनुष्य भूमि की अत्यन्त कमी है। यही कारण है कि भारतमें ऊषरको उर्वरा करनेका प्रश्न अत्यन्त आवश्यक है, जिससे कि भारतीय जनता को लाभ होगा।

———

भारत में सुगन्ध का व्यापार

[लेखक—श्री सद्‌गुरु शरण निगम, एम. एस-सी.]

आदिकाल से ही मनुष्य प्रिय सुगन्ध की ओर आकर्षित रहा है। प्राचीन साहित्यके पृष्ठ सुगन्ध विषयक वर्णनोंसे भरे पड़े हैं। प्रत्येक जाति, प्रत्येक समाज इसका प्रेमी रहा है। वर्त्तमान कालमें भी सुगन्ध मानव-हृदय की कोमल प्रवृत्तियों को प्रभावित करने की क्षमता रखती है और कितने ही कवि, नीम हकीम और किशोर कवियों के उद्‌गारों को प्रज्वलित करने में साधक है, सुगन्धित वस्तु, चाहे वह प्राकृतिक हो, या अप्राकृतिक, मनुष्य को प्रिय है। सुगन्ध किसी भी वातावरणको एक अनुपम स्वर्गीय सुखसे भर सकती है। इसके अतिरिक्त, सुगन्धमें स्वास्थ्य की दृष्टिसे भी, अनेक गुण हैं। इसमें रोगोंके कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। सम्भवतः यही कारण है कि सम्पन्न व्यक्ति इसको अपने शृङ्गार का प्रमुख अङ्ग मानते आए हैं और निर्धन लोग यदि प्रतिदिन नहीं तो विशेष अवसरों पर तो अवश्य ही प्रयोग करते रहे हैं।

सुगन्ध-व्यवसाय भारत के लिये नवीन नहीं है। सुगन्धित वस्तुओं के निर्माण करने की कला, भारत के सुदिनों में चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। यह व्यवसाय भारतके प्राचीन एवं सम्मानित व्यवसायों में स्थान रखता है और आज भी हमारा देश विशेष प्रकार की सुगन्ध निर्मित करने के लिये प्रसिद्ध है। यहां पर यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सुगन्ध का व्यवसाय भोगविलास की वृद्धि का कारण बना है। भारत की बनी हुई सुगन्धित वस्तुएं इस उच्च-कोटि की हुआ करती थीं कि संसारके कोने-कोने में उनकी ख्याति हो चुकी थी। विशाल रोमन सामराज्य के वैभव-कालमें भारतीय चन्दन, केसर और कस्तूरी, रोमन रमणियों और सामन्तों के शृङ्गार और सजावट के विशेष अंग थे।

सुगन्ध-व्यवसायियों के लिये अभी विस्तृत और बहु-मुखी क्षेत्र खाली पड़ा है। निःसन्देह आधुनिक कृत्रिम वस्तुओंमें इस व्यवसाय को कुछ धक्का पहुंचा है; किन्तु सुगन्ध की मांग दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। वास्तव में यदि इस व्यवसाय का समुचित संगठन हो, तो भारत ही इसका सर्वश्रेष्ठ निर्माता हो सकता है। यह तो एक निश्चित बात है कि जंगलों के बहुत से सुगन्ध प्रदान करने वाले वृक्ष नष्ट हो रहे हैं और आजकल गुलाब और चमेली ही ऐसे दो फूल हैं जिनको इस व्यवसाय की दृष्टि से अधिक मात्रा में उत्पन्न किया जाता है। अतः इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि यह व्यवसाय अभी और फल फूल सकता है। पर ऐसा करने से पूर्व हमें अमेरिका की भांति अपने देशको सुगन्ध विषयक विशाल सामग्रीका निदर्शन करना होगा। इस व्यापारकी उन्नति के विषय में यह कहा जा सकता है कि भारतीय पैदावार एवं सामग्री अन्य स्थानोंकी अपेक्षा घटिया है; किन्तु इस पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। इसको सुधारनेके लिये अनुभवी कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है जो इस कार्य को उत्साह एवं सहिष्णुताके साथ करने को तैयार हों। फिर कोई कारण नहीं कि सुगन्ध व्यवसाय अन्य व्यवसायों की भांति उन्नतिशील न हो जाए और भारतसे विदेशोंमें जाने वाले पदार्थों में इसका प्रमुख स्थान प्राप्त हो जाए। और यही समय है कि भारत को सुगन्ध विषयक पौधों, जड़ी बूटियों और लताओं की खेती समुचित रूपसे आरम्भ करनी चाहिये एवं उनके मधुर और हृदय विकसित करने वाले तत्त्व निकालें। हमारे गांवों और जंगलोंमें ऐसी मनमोहक सुगन्ध प्रदान करने वाले कितने ही पदार्थ पड़े हैं; किन्तु उनसे लाभ उठाने वालों का अभाव है।

यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम वस्तुओं ने शुद्ध एवं प्राकृतिक सुगन्धके व्यापारको बहुत कुछ छीन लिया है, पर यह ध्यान रखना चाहिये कि मांग की अधिकताके कारण ही वैज्ञानिकों ने हमारी सहायता की। यद्यपि कृत्रिम और आविष्कृत पदार्थ सस्ते नहीं होते; किन्तु वास्तविक वस्तुओं में एक विशेष माधुर्य्य एवं आकर्षण है जो कि कृत्रिम द्रव्यों में नहीं पाया जा सकता। इसकी सत्यता को या तो कृत्रिम सुगन्धके व्यवसायी या सुगन्ध को असली जौहरी ही पहचान सकते हैं। व्यापार सम्बन्धी दूसरे प्रमुख तैल जिनपर कि केवल थोड़ा ध्यान दिया गया है; किन्तु अधिकतया उनकी उपेक्षा ही की गई है वे भारतीय वनस्पति तैल हैं जो चार स्पष्ट वर्ग में विभाजित किये जा सकते हैं—(१) सिट्रोनेला, (२) लेमन घास, (३) रेशा घास और (४) जिंजर घास।

इन चारों वनस्पतियोंके सुगन्धित पदार्थ तंबाकू और साबुन के व्यापार में विशेष रूपसे प्रयोग किये जाते हैं। इनके तत्त्व

'जिरानिश्राल" और "सिट्राल" हैं। इनका प्रयोग गुलाब और केवड़ासे कृत्रिम सुगन्ध उत्पन्न करनेके लिए विस्तृत रूपसे होता है। यद्यपि 'सिट्रोनेला' की खेती मध्यप्रांत एवं अन्य प्रांतों में भी की जा सकती है, पर सिंहल द्वीपमें इसपर एकाधिपत्य होरहा है और उस द्वीप के निवासी सहस्रों एकड़ भूमि में इसकी खेती कर बहुत लाभ उठा रहे हैं। 'रोशा' वनस्पति जिससे व्यापारका 'पाम रोजा' तैल निकाला जाता है। अपने उसी प्राचीन स्थान पर स्थित एवं प्रफुल्लित है जहां भीलोंने उसकी प्रथम बार उत्तरी खानदेशकी उर्वरा भूमि पर स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त यह वनस्पति बरार और मध्य प्रांतीय निमार जिलों में भी अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न हो रही है। हमें ज्ञात हुआ है कि 'रोशा घास' का पामरोजा तेल जो कि बम्बईसे विदेशों को भेजा जाता है वह अपना प्रभुत्व और आकर्षण इङ्गलैण्ड, फ्रांस, अमेरीका, जर्मनी, हालैण्ड और स्विटजरलैण्डमें फैला चुके हैं। इसके व्यापारियोंके लिए और भी विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है। लेमन घाससे सुगन्ध तैल निकालनेका एक छोटा कार्यालय ट्रावनकोर राज्यके अन्तर्गत स्थित है। एक दूसरी प्रमुख पैदा करने वाली पत्ती 'जिरानियम' दक्षिणके यारकंद नामक स्थानमें उत्पन्न होती है एवं उससे भी तैल निकाला जाता है। इसी प्रकार भारतीय पौदों से औषधियों के लिये अनेक द्रव्यों का निर्माण हो सकता है। उदाहरणार्थ नीम्बू के वृक्षके विभिन्न अङ्गोंसे तीन बहुमूल्य तैल निकाले जा सकते हैं, बरगमोत (Bergamot) फलके छिल्के से, पेटिटग्रेन (Petitgrain) पत्तियों से और निरोली (Neroli) फूलों से निकाले जाते हैं। बादाम, आड़ू और खूबानी के अङ्ग विशेष से तेल और बेनजलडिहाइड (Benzaldehyde) निकाले जा सकते हैं। दूसरे प्रकारके पदार्थ जैसे, सौंफ, अमेर्ग, अजवायन, लौंग, इलायची के बीजसे उच्च कोटिके सुगन्धित द्रव निकलते हैं जो कि वैदेशिक कार्यालयों में विशुद्ध करनेके पश्चात् फिर भारतमें ऊँचे दामों पर बेचे जाते हैं।

सुगन्ध का प्रयोग जैसे भी हो, उसमें से सुगन्ध विशेष निकलनी ही चाहिये, यही अच्छी सुगन्धकी कसौटी है। उसका कार्य है कि प्रयोगकर्ता को अपनी भीनी एवं मीठी सुगन्ध से प्रफुल्लित करना। अतः सुगन्धके निर्माणकर्त्ताओं का प्रमुख कार्य यह है कि उनकी निर्मित वस्तुयें ऐसी मनमोहक गन्धसे ओत-प्रोत हों जो कि खरीदने वाले को प्रिय लगें। इसके लिये उन्हें सामग्रियोंके चुनावमें विशेष ध्यान देना चाहिए।

ओटो—सुगन्धमें सर्वोत्तम यह वह प्रमुख सुगन्ध है जिस में फूलोंका प्राकृतिक तत्व निहित रहता है। ओटोकी सर्व विजयी मधुर गन्धके सामने कोई दूसरे गन्ध नहीं ठहर सकते। यद्यपि आजकल ओटोकी मांग कम हो गई है, परन्तु यह उसके गुणोंमें न्यूनता के कारण नहीं, बल्कि अधिक मूल्यके कारण। भारतीय दृष्टिकोण से ओटो समस्त इत्रोंकी रानी रही है और पिछली कई शताब्दियों से निर्माणकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित करती रही है। आजकल इसका व्यवसाय उत्तरी भारत में और विशेषकर जौनपुर, गाजीपुर और कैटामें केन्द्रित है। यह सर्वविदित् है कि कालान्तर में फूल सूख जाते हैं और उनकी सुगन्ध भी नष्ट हो जाती है। यह निर्माणकर्त्ताओं का कार्य है कि इन सूखे फूलोंमें से विभिन्न इत्र निकालें और यही उनकी कला एवं कार्यकुशलता है। पुष्पक तैल (Fleral oil) ओटो के पश्चात् दूसरा महत्वशाली वर्ग पुष्प सम्बन्धी तैलों का है। यह फूलोंकी कोमल पंखड़ियों से निकाला जाता है। केशों के शृङ्गार की इन तैलों में अनुपम सामग्री है। इसकी मनमोहक सुगन्ध स्वास्थ्य के लिये हितकर है।

सुगन्धित जल (Aromatic waters)—उपर्युक्त सुगन्धों के बाद सुगन्धित जलों का स्थान है। इनमें भी अनेक गुण हैं एवं विभिन्न वर्गों में अनेक प्रकार की सुगन्ध रहा करती है। इस वर्गमें प्रमुख गुलाब जल है जिसका बहुत अधिक प्रयोग होता हैं एवं केवड़ा जल केवड़े की निराली सुगन्धसे परिपूर्ण है।

एसेंसियल तैल (Essential oils)—सुवासित तैलों का निर्माण भी इत्र व्यवसाय का एक प्रधान अङ्ग है और ऐसे सुगन्धित पदार्थों से जिनमें इस वर्ग के तैलों का निर्माण किया जा सकता है भारतवर्ष परिपूर्ण है। इनमें उस वर्गके तैल भी सम्मिलित हैं जो कि सुगन्ध के लिये ही नहीं औषधि के विभिन्न कार्यों में भी उपयुक्त होते हैं।

फूलों का तत्व (Essence)—ऊपर के सभी इत्र भारत में पाए जाते हैं। उनके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के सुगन्धित पदार्थ का भी निर्माण होता है, जिसे फूलों का सत्त कहा जा सकता है। ओटो की भांति इस वर्ग के सुगन्ध भी अनेक लोगों को पसन्द हैं। कृत्रिम उपायोंसे निर्मित सत आज कल रुमालों में विस्तृत रूपसे प्रयोग किये जाते हैं। कारण यह है वे सस्ते होते हैं और उनमें अनरूप सुगन्ध होती है। निर्माणकर्त्ताओं की कलाका चरम निदर्शन इसी में है कि वह ऐसी

वस्तुओं का निर्माण करें जो सर्वप्रिय हों और जिनकी सुगन्ध टिकाउ हो।

अन्य मिश्रित जातियोंके इत्र,—इन सबके अतिरिक्त सुगंधों के और भी अन्य वर्ग हैं, उदाहरण के लिये पोमेड, पाउडर, केशों के सुगन्धित तैल व लोशन आदि में प्रयोग किये जाने वाले द्रव्यों का रमणियों की वेष-भूषा और शृङ्गार के लिये यथेष्ट महत्व रखते हैं। इसकी मांग भारतवर्ष में उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। यदि वास्तविक अच्छे पदार्थोंका निर्माण हो तो कोई कारण नहीं कि भारतीय व्यापारी अपनी वस्तुयें अधिक संख्यामें और यथेष्ट लाभ पर बेच सकें। शृङ्गार की एक दूसरी वस्तु तरल आलता है जो रमणियों के कोमल पद-पल्लवोंको रंजित करनेके काम आती है, इसका निर्माण अत्यन्त सरल एवं व्यापार में लाभदायक है।

सुगन्ध निर्माण करने की सामग्री—एक सफल निर्माणकर्त्ता होने के लिये इत्र-फरोशों को उन सब सहस्रों प्रकार की सामग्रियों और उपादेयों से परिचित होना नितांत आवश्यक है, जो कि सुगन्ध निर्माणमें अपना विशेष स्थान रखते हैं; उसके लिये प्रत्येक अवयवोंका वैज्ञानिक परिचय, आपसमें एक दूसरेका सम्बन्ध और उनके क्रियात्मक रूपों को जानना आवश्यक है। जबतक वह इन समस्त बातों से परिचित न होगा, उसको यह ज्ञात करना कठिन होगा कि कौन-सा सुगन्ध किस मात्रामें मिश्रित करने पर एक मनमोहक सुगन्ध का निर्माण होगा। इसके अतिरिक्त सुगन्ध निर्माण-कर्त्ताओं में एक विशेष घ्राणशक्ति का होना आवश्यक है। प्रत्येक सुवासित पदार्थसे उसको परिचित होना चाहिये। उसमें इतनी क्षमता हो कि वह किसी सुगंधित पदार्थ को सूंघ कर बता सके कि उसमें किसका मिश्रण है और उसका निर्माण उचित रूपसे हुआ है या नहीं। साधारण रूपसे सुगन्धित पदार्थ तीन भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :—

(१) शुद्ध वनस्पति से प्राप्त, (२) पशुओं द्वारा और (३) कृत्रिम उपायों द्वारा निर्मित सुगन्धित द्रव्य।

वानस्पतिक सुगन्धके उपादेय—इसका सबसे साधारण उदाहरण फूलकी उस सजीव ताजगीमें मिलेगा जिनकी पंखड़ियों में तेल भरा रहता है। फूलोंके अतिरिक्त ये इत्र, जड़ी बूटियों पत्तियों, छालों, तनों, फलों एवं घास-पात से भी निकाले जा सकते हैं। उदाहरणार्थ भारतमें लौंगके फूल, तेजपत्ते और दारचीनी की छाल, सिवार और चन्दन की लकड़ी, नींबू, बादाम और सौंफ आदिसे सुगन्ध निकाले जाते हैं।

पशुओंके सुगन्ध साधनः—कुछ जीवों द्वारा सुगन्ध निर्माण किया जा सकता है। यह अधिकतर पशुओं की नाभि-ग्रन्थियोंमें पाया जाता है एवं प्राकृतिक दशा ही में बिकता है। इनमें से प्रमुख कस्तूरी, अम्बरग्रीस सिवेन्द एवं कैस्टर हैं। जीवोंसे निकाले हुए सुगन्ध में एक विशेष गुण होता है जिस पदार्थ के साथ इसका सम्मिश्रण कर दिया जाता है उसमें एक स्थायी सुगन्ध उत्पन्न हो जाती है, यह गुण अन्य सुगन्धोंमें नहीं पाया जाता।

कस्तूरीः—यह एक विशेष जाति के मृगों की नाभि से निकाला जाता है इसमें एक अनुपम सुगन्ध होती है जिसका तनिक सा अस्तित्व निर्माणकर्त्ताओंको विचलित कर देता है। क्योंकि यह बहुत ही सीमित और थोड़ी मात्रामें पाया जाता है इस कारण इसमें कृत्रिम पदार्थका मिश्रण होता है जिसका पहचानना कठिन परीक्षा होती है, मिश्रित की जाने वाली वस्तुओं में मिट्टी, सूखा रक्त एवं पशुके मलमूत्र हैं। एवं मिश्रणकी मात्रा २५ से ले कर ७५ प्रतिशत तक होती है।

अम्बरग्रीज—यह एक विशेष प्रकारकी मछलियोंमें पायी जाती है और उसकी अन्तड़ियोंसे निकाली जाती है। इसका एक अंश मात्र भी अपने वातावरणको परिपूर्ण कर देता है अतः इस का पुट ओटो अथवा अन्य सुगन्धोंके निर्माण में दिया जाता है एवं इसका अधिक मूल्य और आदर है।

सिवेट—इस जन्तु सम्बन्धी सुगन्धमें भी अत्यन्त तीव्र गन्ध होती है। अतः सुगन्ध निर्माणकोंको केवल थोड़े अंशमें प्रयोग करना उचित है। कारण यह है कि अधिक मात्रामें प्रयोग करनेसे असह्य सुगन्ध आने लगती है, किंतु उचित अनुपातमें रहनेसे अति प्रिय व स्थायी सुगन्ध देती है।

कैसटर—ऊदबिलाव नामक जीव से उत्पन्न सुगन्धित एवं चिकना पदार्थ है यह थोड़ी ही मात्रामें प्रयोग किया जाता है। इससे मिश्रित पदार्थ तरल और काले रंगका होता है। अधिक अंशमें प्रयोग करनेसे समस्त द्रव्य काला पड़ जाता है। अधिक कालके पश्चात् इसकी सुगन्ध और भी अच्छी हो जाती है।

कृत्रिम सुगन्धि—तीसरे वर्गके वे सुगन्ध हैं जो कृत्रिम उपायों द्वारा निर्माण किये जाते हैं। सुगन्ध व्यवसायमें इसके आगमनसे एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई है। यह किसी प्राकृतिक सुगन्धित पदार्थकी देन नहीं; किंतु अनेक रासायनिक प्रयोगों का परिणाम है और प्रयोगशाला में प्रस्तुत की जाती है। इन

कृत्रिम उपायों द्वारा बनाए गये सुगन्धित पदार्थों में निम्न लिखित प्रधान हैं—

अमाइल ऐसिटेट (Amyl acetate) में बबूल, बोरनिश्राल ऐसीटेट (Bornyl acetate) में चमेली, लिनालिल ऐसीटेट (Linalyl acetate) में जंगली संतरा, जिरानियाल ऐसीटेड (Geranyl acetate) में वन गुलाब बेनजाइल अलकोहल (Benzel alcohal) में जर्द चमेली; फिनाइल इथाइल अलकोहल (Phenyl ethyl alcohal) में गुलाब, बेनजलडिहाइड (Benzaldehyde) में कड़वा बादाम, सिनामिक अलडिहाइड (Cinnamic aldehyde) में दारचीनी व तेजपते, सिट्राल (Citral)में लेनन घास, सिट्रोनिलाल (Citronellal) में गुलाब, इथाइल अन्थरेलाइट (Etheyl anthraneleite) निरोली जिरानियममें गुलाब, हिलिओट्रोपिन (Heliotropen) में सूर्य कमलकी सुगन्ध पायी जाती है और वे वास्तविक सुगन्धों के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। कृत्रिम उपायों द्वारा सुगंधोंकी सूची इतनी विशाल है कि सबों का नाम देना असम्भव है। इसके अतिरिक्त प्रयोगशालामें कई पदार्थोंकी गन्ध ऐसी है जिन का कि प्राकृतिक सुगधोंसे विभिन्न करना असम्भव होता है। इन कृत्रिम पदार्थोंमें तीव्र सुगन्ध होनेके कारण उनका मिश्रण इनडोल (Indole) जैसे पदार्थोंके साथ कर भेजा जाता है। इनको माडीफायरस (Modifiers) कहते हैं जिसके कारण उसकी सुगन्ध हल्की एवं मधुर हो जाती है। इनके विभिन्न अनुपातोंसे फूलोंकी प्राकृतिक सुगन्ध उत्पन्नकी जाती है।

अन्तमें यह कहना अप्रासगिक न होगा कि भारतके सुगन्ध निर्माणकी सफलता प्राकृतिक एवं कृत्रिम उपायोंसे बनाये गये सुगन्धों के उचित अनुपात के सम्मिश्रण पर भी निर्भर है। इसमें प्रयोग होने वाले पदार्थों का विशुद्ध रूप में होना आवश्यक है। गंधहीन अलकोहल, एवं स्वच्छ जल प्रयोगमें लाना चाहिए। फल और फूलोंके सड़े हुए भागको अलग कर देना उचित है। जड़ एवं दूसरे कठिन सुगन्धित पदार्थोंको काट, छोटे छोटे भागों में विभाजित कर, धूप में सुखा कर रखना चाहिये। उनको प्रयोग करनेसे पहले स्वच्छ जलमें भिगो देना चाहिए। बाजार में बिकने वाले तैलों का प्रयोग नहीं करना चाहिये, कारण यह है कि वे शुद्ध नहीं होते और थोड़े समयके पश्चात उनमें से दुर्गंध निकलने लगती है। इन तेलोंका गंधहीन और रंगहीन होना आवश्यक है और ऐसे ही स्वच्छ पदार्थों के प्रयोगसे सुगंध निर्माण किये हुए सुगन्धित पदार्थों के प्रतियोगितामें सफलता पूर्वक चलाया जा सकता है। सुगन्ध निर्माणके लिये भारतवर्ष में एक बहुत ही विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है। ऐसे दो चार बड़े कार्यालयों के स्थापित हो जानेसे जो करोड़ों रुपयों के सुगन्धित द्रव्य विदेशोंसे आते हैं। उनको बचानेके अतिरिक्त देशके अतिरिक्त अन्तर्गत व्यापारका एक विशाल क्षेत्र खुल जावेगा।

—o—

श्वास-विज्ञान

[लेखक—विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, एन. डी. डी. वाई.]

योग भारतवर्ष की अति प्राचीन विद्या है, जिससे हमारे देशका जन-समुदाय बहुत दूर हट गया है। योगकी तरफ लोगों के बहुत बुरे-बुरे भाव उठते हैं। योगीका नाम धारण करने वाले अनेक प्रकारके मनुष्य पृथ्वीके ऊपर दृष्टिगोचर होते हैं। कोई भड़कीले वस्त्र पहन कर हाथमें सारंगी ले कर गोपीचन्द, भर्तृहरि और महादेव जी के गीत गाता फिरता है और समय पाकर दंद फंदसे लोगोंको ठगता है, तो कहीं कोई सन्यासीकी सूरत बनाये हस्तरेखा, भाग्य-रेखा देखने के बहाने भोली-भाली जनताको अपना शिकार बनाता है, किसी-किसी जगह यह भी देखने में आया है कि कुछ लोग कांटे की शैय्या पर सोते हैं और अपने सिद्धिपने का परिचय देते हैं। कुछ लोग ऐसे भी देखे जाते हैं जो अपने सिद्धिपनेसे विख्यात हो चले हैं। दुनिया के लोग पूजते हैं पर वे ऐसे घृणित कर्म करते हैं कि जिनसे लोग योगी या योगसे घृणा करने लगते हैं और ऐसे ही लोगों के कारण यह पवित्र विद्या नष्ट प्राय हुई। पर अब समय के प्रभाव से यह अन्धकार दूर हो चला है और अब बड़े-बड़े पच्छिमि सभ्यता वाले डाक्टर लोग भी इस योग विद्या को चिकित्साका एक अंग समझने लगे हैं। हमारे पूर्वजोंने अपना अमूल्य समय नष्ट कर अपने चित्तको मनुष्यकी शारीरिक मानसिक और अध्यात्मिक उन्नतिमें लगाया था, जिसके कारण वे

इतने महानात्मा वाले और सर्व पूज्य बने। हम सब उन्हीं की सन्तान हैं, पर अपने आदर्श पुरुषों के आचरण से अपने को बहुत दूर पाते हैं। कारण है उन विषयों का अध्ययन न करना, लोगोंका सत्संग न करना। योगसे श्वासका और श्वास का योगसे बहुत बड़ा घनिष्ट संबंध है। इसलिये हमने उचित समझा कि योग विषयमें कुछ बता कर तब अपने मुख्य उद्देश्य पर आएं।

मनुष्य का जीवन सम्भवतः श्वास-प्रश्वास पर अवलम्बित है। श्वास ही जीवन है, ऐसा सभी विद्वान मानते हैं। शरीर के अन्दर जबतक श्वास चलता है तबतक वह जिन्दा है और जब शरीरमें श्वासकी गति बन्द हो जाती है, तब मुर्दा हो जाता है यानी उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। यह क्रम श्वास क्रियाका सिर्फ मनुष्य मात्राके लिये नहीं है वरन् संसार के अन्दर के समस्त प्राणियों के लिये श्वास की जरूरत है। जिस तरह हवाकी प्राणियों को जरूरत होती है उसी तरह पेड़ पौधों को भी हवाकी आवश्यकता है।

शरीर में अन्य क्रियाओं से श्वास क्रिया प्रधान है; क्योंकि वस्तुतः अन्य क्रियाएं इसीके आधीन रहती हैं। भोजन और पानीके बिना मनुष्य थोड़े समय तक जिन्दा रह सकता है, परन्तु बिना श्वास लिये जीवन केवल कुछ ही क्षणों तक रह सकता है। मनुष्य सिर्फ जिन्दा रहने के लिये ही श्वास पर नहीं अवलम्बित रहता, वरन् लगातार बीमारियों से छुटकारा पानेके लिये उसे ठीक-ठीक श्वास लेने की आदत का बहुत बड़ा सहारा लेना पड़ता है। श्वासकी क्रियामें जो मनुष्य सावधानी से श्वास लेता है उसका भविष्य स्वच्छ और अधिकाधिक सुन्दर बनेगा और जो मनुष्य उसकी क्रिया में जरा भी असावधानी करेगा वह अपने शरीर को विकारों तथा बीमारियों का घर बना लेता है। ऐसी दशामें श्वास क्रिया में कितनी सावधानी की आवश्यकता है, इसका निर्णय करना पाठकों के ऊपर छोड़ता हूं। योगी लोग श्वास-क्रिया के बल पर ऐसे-ऐसे अभ्यास करते हैं जिनसे वह अपने शरीर पर अधिकार जमा लेता है और अपने शरीर के किसी भी हिस्से से जीवन या प्राण की धारा बहा सकता है। और वह यह भी जानता है कि वह अपने नियमित श्वास (प्राणायाम) द्वारा अपनेको प्रकृतिसे सामीप्य कर सकता है। और इस प्रकार अपनी गुह्य शक्तियों को जगा सकता है। वह यह जानता है कि मैं इस विधिसे शरीर के अन्यान्य रोगों को भगाने में समर्थ हूंगा।

श्वास-क्रिया के संबन्धमें जानने से पहले उसके रास्ते और कार्यका ज्ञान लेना जरूरी है। श्वास लेने के अवयव फेफड़े और उनसे जुड़ी हुई हवा ले जानेकी नलियां हैं। फेफड़े दो हैं और वे वक्षःस्थल के दोनों ओर रहते हैं। हृदय, रुधिर और हवाकी बड़ी नलियोंके बीचमें पड़ कर दोनों फेफड़ोंको एक को दूसरेसे पृथक करता है। हवा जानेकी नलियां नासिकाके अंतरंग भाग फेरिंक्स (Pharynx) लेरिंक्स (Larynx), घोंघा और घोंघे की फेफड़ोंसे जोड़ने वाली नलियोंसे बनी हैं। जब हम श्वास लेते हैं तब वायुको नाकके मार्गसे भीतर खींचते हैं नाक के भीतरी भीगे हुए पर्दे के सम्पर्क से वह हवा गर्म हो जाती है। क्योंकि भीगे हुए पर्देमें "पुष्कल" गर्मी रहती है फिर वहां से लेरिंक्स में होती हुई वह घोंघे में जाती है और घोंघा नीचे जाकर कई नलियोंमें विभक्त हो जाता है, जिन्हें ब्रांकियल ट्यूब्स कहते हैं। ये नलियां और भी पतली-पतली नलियोंमें विभक्त होकर फेफड़ेकी नन्हीं-नन्हीं कोठरियोंमें प्रवेश कर जाती हैं। फेफड़ोंमें नन्हीं-नन्हीं कोठरियां लाखोंकी तादादमें होती हैं।

फेफड़ेमें हवा 'डायाफ्राम' की क्रिया द्वारा खींची जाती है। यह डायाफ्राम (Diaphragm) एक सुदृढ़ चिपटी चादर के रूपकी मांस पेशी है जो पेट और छातीके बीचमें फैली हुई है, जो पेट और छाती की कोठरी से पृथक करती है। इस डायाफ्रामकी क्रिया अपने आप हृदयकी धड़कनकी तरह होती है। जब यह फैलती है तो यह छाती और फेफड़ोंके विस्तारको बढ़ा देती है और इस प्रकार जो फेफड़ों में खाली स्थान बनता है, उसे भरनेके लिये बाहरसे हवा नाक द्वारा प्रवेश करती है। जब यह सिकुड़ती है तो छाती और फेफड़े संकुचित हो जाते हैं और हवा फेफड़ेसे बाहर फेंक दी जाती है।

फेफड़ेमें हवाके साथ कौनसी क्रिया होती है? इसके ऊपर विचार करनेसे पहले रक्त-संचालनके विषय में योग्य विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। यह तो सर्वविदित् ही है कि खूनको पहले हृदय संचालित करता है फिर यह खून धमनियों और बारीक धमनियों में होता हुआ शरीरके प्रत्येक भागमें पहुँच जाता है। इसके बाद वह दूसरे मार्गसे बारीकसे बारीक शिराओं में होता हुआ मोटी शिराओं में लौटता है और वहां से फिर हृदयमें वापस आता है। फिर हृदयसे निकल कर वह फेफड़ोंमें खिंच जाता है। जब पहले हृदयसे रुधिर संचालित हो कर धम-

नियोंकी राह शरीरमें फैला था तो उसका रंग लाल, चमकदार, और जीवनदायक था। परन्तु जब शिराओं की राह से वापस आया था तब उसका रंग नीला और दोषयुक्त था। क्योंकि शरीरकी तमाम गन्दगियों को बटोरता हुआ आया था। यह गन्दा खून वापस आकर हृदय की बाईं कोठरी में पहुंचता है और तब यही गन्दा खून निकल कर दाहिनी ओर दूसरी वेंट्रीकल नामक कोठरी में जाता है। फिर यहां से फेफड़ों में आता है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह गन्दा रुधिर फेफड़ोंकी लाखों हवा वाली कोठरियोंमें बंट जाता है। जब श्वास ली जाती है तो हवा भी इन्हीं कोठरियोंमें पहुंचती है और जब हवा के आक्सीजनका स्पर्श इस गन्दे रुधिरसे होता है तब उसमें एक तरहकी जलन पैदा होती है और रुधिर हवाकी आक्सीजनको खुद ही खींच लेता है और अपनी कार्बोनिक एसिड गैसको हवाके सुपुर्द कर देता है। इस तरह रुधिर साफ और आक्सीजन मिश्रित होकर चमकीला, लाल एवं जीवन शक्तिदायक तथा और सामानसे युक्त होकर हृदयकी बाईं कोठरी में जाता है वहां से वह फिर वेंट्रीकल में जाता है। वहां से फिर नलियों और बारीक नलियों द्वारा शरीर के अंग प्रत्यंग को जीवन दान देने जाता है। यह अनुमान किया गया है कि २४ घंटेमें ३५०० पाइंट रुधिर फेफड़ेकी बाल सी बारीक नलियों में होकर गुजरता है, जिसके दोनों तरफ आक्सीजन होता है।

अब यह देखना है कि यदि साफ हवा पूरे परिमाणमें फेफड़ोंमें न पहुंचेगी तो शरीरके अंगोंसे लौटा हुआ गन्दा खून साफ न हो सकेगा और परिणाम होगा कि यह शरीर केवल जीवनदायक सामग्रियों से वंचित ही नहीं; किंतु रुधिरकी गन्दगी जिसको फेफड़ों में साफ हो जाना चाहिये था वह फिर शरीर के अंग-प्रत्यंगों में वापस जायगी और विष उत्पन्न करके मृत्यु को न्योता देगी। गन्दी हवा भी ऐसा ही असर करती है; लेकिन धीरे-धीरे। यह भी देखने में आयेगा कि यदि कोई उचित परिमाणमें श्वास न लेगा तो रुधिरका काम भी उचित रीतिसे न चल सकेगा। और तब शरीर का उचित पालन-पोषण भी न होगा, तो फिर बीमार होना निश्चित् है अथवा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। इसके प्रतिकूल अच्छी तरह श्वास लेने से खून का संचालन अच्छी तरह होता है, जिससे शरीर सुखी एवं रोग रहित हो जाता है।

आक्सीजन द्वारा केवल प्रत्येक भाग बलवान ही नहीं बनाया जाता; किंतु पाचन-शक्ति भी अधिकांश में भोजन के आक्सीजन पर ही अवलम्बित है और यह तभी होगा जब रुधिर में आक्सीजन अधिक रहे और वह खाए हुए अन्नके सम्पर्कमें आकर एक प्रकारकी जलन उत्पन्न करे, जिसे जठराग्नि कह सकते हैं। इसलिये आवश्यक है कि फेफड़ों द्वारा आक्सीजन काफी मात्रा में ग्रहण किया जाय। यही कारण है कि निर्बल फेफड़े वालों की पाचन-शक्ति भी निर्बल होती है। इस कथन से भली भांति सिद्ध है कि पचे हुए अन्नसे शरीर पुष्ट होता है और अपच से शरीर अपुष्ट होता है। सारांश यह कि आक्सीजन की कमी का अर्थ पुष्टि और सफाई की कमी होना है जिसका परिणाम स्वास्थ्य हानि है; अतएव वस्तुतः श्वास ही जीवन (प्राण) है।

अब यह तो सर्व प्रकारसे सिद्ध ही है कि शरीरको स्वस्थ्य और बलवान बनानेके लिये जितना ही आक्सीजन यानी प्राण वायु मिल सके, उतना ही अच्छा है। इससे संबन्ध रखने वाले विषय ये हैं।

(१) श्वास कसरतों को करना, जिनसे प्राणवायु मिल सके और श्वास-यन्त्र को बड़ा करना अर्थात् सीने को चौड़ा बनाना। मनुष्यको चौबीस घंटे प्राण-वायु की आवश्यकता होती है। जिस समय हम कसरत करते हैं उस समय तो हवा मिलती है, पर दस या पन्द्रह मिनट के लिये। ज्यादा श्वास लेने से २४ घंटेकी जरूरत पूरी नहीं होगा। इसलिये सीनेकी चौड़ाई बढ़ानी ही पड़ेगी। जब हम मामूली तौर पर श्वास लेते हैं। तो करीब ५०० घन सेन्टी मीटर हवा एक बारमें खिंच आती है पर यह सीनेके अन्दर सिर्फ ऊपरके हिस्सेमें ही आती जाती है। सीने के अन्दरके सारे हिस्सों में नहीं जाने पाती। पाठक ऊपर यह भली प्रकार समझ ही चुके हैं कि पूर्णतया श्वास की क्रिया ठीक न होने पर शरीर के अन्दर सीने पर विकार इकट्ठा होने लगता और वह धीरे-धीरे खराब होने लगता है। ऊपर-ऊपर तो श्वास आती जाती है पर बीच और नीचे के हिस्सों में श्वासके नहीं आने जानेसे विषैले कीड़े पैदा होते हैं। और ये कीड़े समय पाकर सारे शरीर में खराबी उत्पन्न कर देते हैं। कभी-कभी यह देख कर मन विचलित-सा हो उठता है कि हमारे देश के लोग न तो अपने पूर्वजों के बताये हुए नियमों पर चलते हैं और न अपना ही कोई नियमित ढंग निकाल कर उस पर चलते हैं। हमारे देशमें विद्याके बड़े-बड़े केन्द्र हैं। उन केन्द्रोंमें बड़े-बड़े विद्वानों का समागम होता है। पर अन्य विषयों

के साथ-साथ मामूली रहन सहन, खान-पान और व्यायाम की तरफ किन्हीं महाशय का ध्यान नहीं जाता। और रोगोंकी बढ़ती के साथ-साथ क्षय दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है पर इसे रोकने के लिये कोई उपाय नहीं किया जाता। जितने भी श्वास-रोग हैं उनसे बचनेके लिये यदि मनुष्य भोजन सुधार के साथ-साथ हर रोज दो प्राणायाम की क्रिया कर ले तो उसे किसी प्रकारकी श्वासकी बीमारीका होना असम्भव है। साथ ही साधारण श्वास में भी आश्चर्यजनक उन्नति होती है।

ऊपर मैंने दो ऐसे व्यायामों का जिक्र किया है जिनसे प्राण-वायु ज्यादा मिले और सीना चौड़ा हो। अब एक तीसरा व्यायाम और होना चाहिये, जिससे शरीरके स्नायु तन्तु स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनें। क्योंकि हमारे शरीरमें जितने भी अंग हैं उन सबकी चाल ज्ञान-तन्तुओं पर ही निर्भर है।

योग-शास्त्र में ज्यादा से ज्यादा प्राणवायु प्राप्त होने का जिक्र नहीं है अर्थात् प्रणायामका संबन्ध प्राणवायु से नहीं बताया गया है। यदि ऐसा समझा जाय कि एक मिनटमें एक साधारण आदमी सत्रह बार सांस लेता है और हर सांस में करीब ५०० घन सेन्टीमीटर हवा खींचता है तो १ मिनटमें ५००×६० ३०००० घन सेन्टीमीटर हुआ। अब एक आदमी ५०० घन से०हवा लेनेके बाद १६०० घन से० श्वास और ले सकता है और ५०० घन से० सांस निकालनेके बाद १६०० घ० से० श्वास और निकाल सकता है। इस हिसाबसे सीनेकी श्वासकी ताकत १६००+५००+१६००=३७०० घन से० हुई। मैं प्राणायाम करते समय यदि पांच सिकेण्ड में श्वास लेता हूं, १५ सेकेण्ड रोकता हूं और १० सेकेण्डमें निकालता हूं तो एक मिनटमें दो ही बार हुआ अर्थात् एक मिनट ३७००× २०=७४०० घन से० हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि मामूली तौरसे जो सांस ली जाती है उससे कम प्राणायामकी हालतमें ली जाती है। इस हिसाबसे मालूम हो जायगा कि प्राणायाम प्राण-वायु के लिये नहीं किया जाता है। प्राणायाम कुछ और उद्देश्यसे किया, कराया जाता है जिसका उल्लेख फिर कभी करेंगे। यदि कोई प्रणायामको मामूली श्वासकी कसरत समझे, जिससे मेरा मतलब सिर्फ प्राण-वायु लेना है तो वह भारी भूल करता है। शायद पच्छिमी विद्वान इसी भ्रममें पड़ कर यह कह दिया करते हैं कि प्राणायाम अवैज्ञानिक है और इसमें प्राण-वायु नहीं मिलती। मैं तो यह समझता हूं कि उन महाशयोंसे किसी ने यह नहीं बताया कि योग शास्त्र में प्राण-वायु प्राप्त करने के लिये एक बड़ी सुन्दर क्रिया है जिसे 'कपाल भाथी' कहते हैं। इस क्रियाका मुकाबिला संसारमें शायद वायुकी कोई भी कसरत नहीं कर सकती। इस क्रियामें एक बारमें मामूली तौर पर ८०० घन से० भील श्वास निकाली जाती है। यह क्रिया एक मिनटमें १२० बार की जाती है अर्थात् १ मिनटमें १२०× ८४०=६६०० घन से० हुआ जो मामूली हालतकी श्वाससे सोलह गुणा ज्यादा होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्वास विज्ञान हमारे योग-शास्त्रमें इतना पूर्ण है कि पच्छिमि विद्वानों को इतना जाननेके लिये दो तीन शताब्दियां लगेंगी। पच्छिमी विद्वानों ने प्राण-वायु के लिये एक ही तरह की कसरतका अवलम्बन लिया है। इसलिये इनके यहां श्वास का रोकना जायज नहीं है। पर अपने यहां प्राण-वायु और सीनेको बढ़ानेके लिये अलग-अलग क्रियायें हैं जिनका सौंदर्य दूध और घी है।

अब हम एक ऐसा प्राणायाम बता कर अपने लेखको समाप्त करेंगे। जिससे प्राण-वायु ज्यादा मिलती और सीना भी चौड़ा होता है, साथ ही खूनका दौरा भी बढ़ता है, इस प्राणायाम में रेचक, कुम्भक, पूरक करने की आवश्यकता नहीं होती। इसे बैठ कर, खड़े होकर या धीरे-धीरे चलते हुए भी कर सकते हैं। पर खड़े होकर हाथ कमर पर और बैठने की दशा में हाथ जंघों पर, और पीठको स्वाभाविक अवस्था में सीधा रखते हैं। अब खुले हुये नथनों से धीरे-धीरे सांस खींचते हैं। सांस लेते समय और निकालते समय पेट खींचा हुआ होता है श्वास लेते और निकालते समय गले में मीठी-मीठी खर्र-खर्र की आवाज निकलती है। चेहरा सामने और सीधा रहता है, पांच सिकेण्ड में श्वास लेना और १० सेकेण्ड में धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिए। पहले हफ्तेमें यह प्राणायाम सात बार सुबह और सात बार शामको करना चाहिये। हफ्तेमें ३ बार बढ़ा कर २८ बार सुबह और २८ बार शामको कर सकते हैं। जो नियम दूसरी व्यायामोंके साथ लागू हैं वे इसमें भी लगते हैं। यह जरूरी है कि श्वासकी यह या कोई क्रिया साफ हवाके स्थानमें की जाय, इस प्राणायामसे जन-साधारणको बहुत लाभ होगा।

———o———

स्वास्थ्य और विज्ञान

[लेखक—आयुर्वेदाचार्य्य डा० पुरुषोत्तम नारायण शर्म्मा ए. एम. एस.]

स्वास्थ्य-विज्ञान का गूढ़ से गूढ़ रहस्य हमारे नित्यप्रति के आहार-विहार, आचार और विचारों में छिपा हुआ है। यदि हम अपना रहन-सहन, रीति-रिवाज और मनकी शक्तिकी ओर उचित ध्यान दें और स्वास्थ्य-विज्ञान के साधारण नियमों का पालन करें तो हमको अनुभव होगा कि हम विज्ञान की बड़ीसे बड़ी बात को सुगमता से पूरी कर और इससे पूर्ण लाभ उठा कर अपनेको स्वस्थ रख सकते हैं।

१. **प्राणायाम**—शरीर-विज्ञान में शरीर के भीतर कार्य्य करने वाले अङ्गोंको उनके कार्य्य भेदसे निम्न विभागोंमें विभाजित किया गया है स्नायु-संस्थान (Nervous System), श्वसन-संस्थान (Respiratory System), रक्तवह-संस्थान (Circulatory System), पचन-संस्थान (Digestive System) जननेन्द्रिय संस्थान (Generative System) और निस्रोत ग्रन्थियां (Endocerine or ductless glands). शरीरका पूर्ण स्वस्थ रहना इस बात का निदर्शक है कि उपर्युक्त सब संस्थान अपनी अविकृतावस्था में परस्पर सहयोग के साथ अपना-अपना कार्य्य सम्पादन कर रहे हैं। ठीक कार्य्य होनेके लिये यह अनिवार्य है कि इन अङ्गों को उचित मात्रामें शुद्ध रक्त मिलता रहे और रक्त शुद्धिके लिये प्राण-वायु (Oxygen) का रक्तके साथ संयोग होना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार के अशुद्ध रक्त के साथ प्राण-वायु का संयोग होने के लिये हमारा श्वसन-संस्थान पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये; क्योंकि अशुद्ध रक्त की शुद्धिके लिये प्राण-वायु हमको केवल उसी वायुसे प्राप्त होती है, जो हम अन्तः श्वसनके साथ फुफ्फुसमें प्रविष्ट करते हैं। यदि हमारा श्वसन-संस्थान विकृत है तो पाचक-अङ्ग भी सुचारु रूपसे अपना कार्य्य नहीं कर सकते और रक्त विषाक्त (Toxic) हो जाता है। त्याज्य वस्तुओं को शरीरसे बाहर निकालनेका कार्य्य फुफ्फुस (Lungs) आंतें (Intestines) वृक्क (Kidneys) और त्वचा (Skin) द्वारा होता है। यदि शरीरस्थ रक्त दूषित हो जाय और ये अङ्ग अपना नैसर्गिक कार्य्य ठीक ढंगसे न कर सकें तो सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि कितनी घोरसे घोर व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं।

रक्तशुद्धि के लिये प्राणायाम से बढ़ कर अन्य कोई उपाय नहीं है। इस बातका सदा स्मरण रखना चाहिये कि जो मनुष्य श्वास-प्रक्रिया को ठीक रखनेके लिये किसी प्रकार का प्राणायाम नहीं करते, वे अपने फेफड़ों के कुछ भागोंको बिल्कुल बेकार कर लेते हैं और वह भाग सदाके लिये एक दुर्बल स्थान (Weak point) हो जाता है। ऐसे स्थान फुफ्फुस के अग्र भाग (Apex of the lung) में अधिक होते हैं, अतः इन भागोंका संकोच और विस्फार कम होनेसे और शुद्ध वायु कम मिलनेसे यक्ष्मा जैसी भयङ्कर व्याधियोंका सूत्रपात भी यहींसे होती है। अर्थात् इन्हीं स्थानोंसे प्रारम्भिक विकृतिका श्रीगणेश होता है। प्राणायाम से पचन-संस्थान के अवयव दृढ़ होते हैं। अन्ननलिका (Oesophagus), आमाशय (Stomach), अग्नाशय (Pancreas), आंते (Intestines), गुम्बोदरपेशी (Diaphragm) तथा पेट की पार्श्व की मांसपेशियां क्रमसे संकुचित और विस्फारित होती हैं और ऐसा होने से शुद्ध रक्तका भली प्रकार परिभ्रमण होता है और पाचक अङ्ग विकृत नहीं होते। हम देख चुके हैं कि प्राणायामसे श्वसन-संस्थान और पचन-संस्थान अपना ठीक कार्य्य करते हैं और शरीरस्थ रक्तकी शुद्धि होती है। अब इस शुद्ध रक्तको शरीरके विभिन्न देशोंमें पहुंचा कर और उनके पोषण करनेका कार्य्य हृदय का है। प्राणायाम करने से हृदय का समस्त अशुद्ध रक्त वाहर निकल कर शुद्ध होता है और हृदय पर चारों ओर से दबाव पड़नेके कारण शुद्ध रक्त समस्त शरीरमें पहुंचता है। इसी प्रकार सांस लेते समय मस्तिष्कसे दूषित रक्त प्रवाहित होता है और शुद्ध रक्तका संचार होता है। यदि श्वास गहरा हो तो यह कार्य्य और भी उत्तमता के साथ होता है, क्योंकि अशुद्ध रक्त निकलने से अधिक से अधिक रक्त शुद्ध होकर मस्तिष्कमें पहुंचता है। इसी प्रकार निस्रोत-ग्रन्थियों (Endocerine glands) का भी ठीक कार्य उनमें शुद्ध रक्त पहुंचने और उनके पोषणके ऊपर निर्भर होता है।

२. **विचार**—मानव शास्त्रवेत्ताओं (Pscycho-

logists) से इस बातको सिद्ध किया है कि अच्छे विचार वाला मनुष्य अधिक आयु वाला होता है और इसके विपरीत आचरण करने से मनुष्य की आयुका क्षय होता है। कहावत प्रसिद्ध है कि जालिम की जिन्दगी हमेशा कम होती है। इस कहावतमें वास्तविकता हो या न हो, परन्तु वैज्ञानिक सत्य कूट कूट कर भरा है; सच्चरित्र, धर्मिष्ठ, शान्त मनुष्य केवल इसीलिये अधिक आयु वाला होता है कि उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति का अधिक अपव्यय नहीं होता। इसके विपरीत दुराचारी कलह-प्रिय और क्रोधी पुरुष सदा दुःखी रहते हैं।

३. **मनकी शक्ति**—इसका भी स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी मनुष्य को कोई शंका हो जाय और उस को निर्मूल न किया जाय तो उसको जिस व्याधिकी शङ्का होती है वह कालान्तरमें उसी व्याधिसे पीड़ित होता है। अपने पाठकों के सम्मुख एक साधारण उदाहरण रखना अच्छा होगा। शरीर में वृश्चिक (Scorpion), सर्पविष (Snake bite), कांतल (Centipedes) प्रभृतिके काटनेसे जो विषैले लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे केवल उन मंत्रों द्वारा ही दूर हो जाते हैं, जो वास्तवमें रोगीको केवल विश्वास दिलानेके लिये ही उच्चारित किये जाते हैं, उनमें और कुछ नहीं होता। अतः स्वस्थ रहने के लिये यह आवश्यक है कि अपने मनको कभी दुर्बल नहीं करना चाहिये।

४. **बोलना** (भाषण)—जिस समय मनुष्य जोरसे बोलता है, उस समय मस्तिष्कके स्नायु अधिक कार्य्य करने लगते हैं, अतः उनमें दुर्बलता आना स्वाभाविक ही है। नेत्र भी वाणी के अनुरूप बर्तते हैं, अतः सत्य और प्रिय भाषी का मुख और नेत्राकृति कोमल और कठोर भाषी की शक्ल भी विकराल होती है। अधिक बोलनेसे नेत्रके स्नायु भी कमजोर हो जाते हैं; हम जो कुछ बोलते हैं, उसका कानों द्वारा स्वयं भी अनुभव करते हैं, अतः बोलने का प्रभाव श्रवणेन्द्रिय पर भी होता है उदाहरणके लिये कानमें अधिक पीड़ा होने से मनुष्य बोल नहीं सकता। अधिक बोलनेसे मनुष्यके मस्तिष्कगत स्नायु कमजोर हो जाते हैं तथा उनके क्षीण होनेसे वह अपनी गुप्तसे गुप्त बातका भी रहस्य खोल देता है। भोजन करते समय बोलना भी हानिकारक है, क्योंकि प्रथम तो अन्न श्वासनालिका में प्रवेश करके सद्यः प्राण तक हर सकता है और द्वितीय पाचक अङ्गों पर दबाव पड़नेसे पचन-संस्थान की क्रिया ठीक नहीं होती। अतः अधिक सम्भाषण करने से केवल गला ही नहीं वरन् मस्तिष्क आँख, कान और पचन-संस्थान की भी हानि होती है।

५. **भय**—भयसे मानसिक शक्तियोंका नाश होता है। मनुष्यको झूठा धोखेबाज और कृतघ्नी बनानेमें भी भय का बहुत हाथ है। जिन बच्चोंको अधिक भय दिखाया जाता है वे सदा दुर्बल रहते हैं और उनका शारीरिक और मानसिक पतन अधिक होता है।

६. **उपवास**—उपवास केवल धार्मिक दृष्टिसे ही नहीं परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से भी बड़े महत्व का है। शरीर में जो अनेकानेक प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं, उनको भस्म करने के लिये उपवास सर्वोत्तम औषधि है। उपवाससे पचन-संस्थान के अवयवोंको विश्राम मिलता है। जब मनुष्य थक कर विश्रामकी आवश्यकता प्रतीत करता है, ठीक उसी तरह हमारे पचन-संस्थान के अवयवोंको भी कमसे कम सप्ताहमें एक बार अवश्य विश्राम मिलना चाहिये। कच्चे रस (आम रस) से अधिकतर रोगोत्पत्ति होती है और इसके लिये उपवास अत्यन्त लाभप्रद है। नियम से उपवास करने वालों को अग्निमान्द्य, अजीर्ण, मधुमेह, रक्त भाराधिक्य प्रभृति शिकायतें बिल्कुल नहीं होतीं। उपवास से शरीरमें लघुता और उत्साह आता है। उपवास करनेसे मस्तिष्क भी निर्मल और पवित्र रहता है, क्योंकि ऐसा करने से मल के कीटाणु दिमाग़की ओर नहीं चढ़ने पाते।

७. **झूठा और साथ खाना**—झूठा भोजन अथवा एक साथ मिल कर खाना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त हानिकारक है। जूठी सिगरेट, हुक्का, चाय आदिका सर्वथा परित्याग करना चाहिये। होटलों, रेस्टोरेंटों और भोजनालयों में हजारों प्याले एक बाल्टीमें गोता लगा कर साफ कर दिये जाते हैं। वह भी जूठन से कम नहीं समझने चाहियें। विज्ञान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मुख के अतिरिक्त जीवाणुओं को शरीर में प्रविष्ट करनेका अन्य बड़ा मार्ग नहीं है, इस प्रकार साथ या जूठा खाने से, एक शैय्या पर बैठने व सोने से, एक ही वस्त्र का उपयोग करने से प्रति वर्ष हजारों आदमी पायरिया, रक्तपित्त, उपदंश, नेत्राभिष्यन्द, कुष्ठ, क्षय, आन्त्रिक ज्वर, मसूरिका प्रभृति दुःसाध्य व्याधियोंसे पीड़ित हो जाते हैं।

भाग ५५ | सितम्बर, १९४२ | संख्या ६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

'विज्ञान' मासिक पत्र (वार्षिक मूल्य तीन रुपया) विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है । विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी । इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना । परिषद् के सभी कर्मचारी तथा सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं । कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद्का सभ्य चुना जा सकता है । सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है । सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं, और पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें तथा आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला की समस्त पुस्तकें पौन मूल्य पर मिलती हैं ।

नोट—सब सामयिक पत्र, लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र, मनीआर्डर आदि पुस्तकें 'मन्त्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ । परंतु आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें ब्रान्च विज्ञान ऑफिस, अकाली मार्केट, अमृतसर के पते पर जाना चाहिए ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५५ | कन्या, संवत् १९९९ विक्रमी, सितंबर, सन् १९४२ | संख्या ६

वृद्धावस्था और मृत्युका प्रश्न

[लेखक—डा० श्रीरंजन, एम० ए०, डी० एस-सी०]

संभवतः विज्ञानके किसी विभागने मनुष्य जातिका ध्यान उतना आकर्षित नहीं किया है जितना कि उसके जीवन का प्रश्न। साधारणतः अब तक ऐसा विश्वास किया जाता था कि ज्यों-ज्यों मनुष्य की आयु बढ़ती जाती है—वह वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है—त्यों-त्यों वह मृत्युके समीप आता जाता है किन्तु अब यह प्रमाणित किया जा चुका है कि यह कथन पूर्णतया सत्य नहीं है। कुछ छोटे जीवों में उनकी अमरता दिखलायी गयी है। इन जीवोंमें एक 'पारामीसियम' भी है। वह जीव केवल एक सेलका है। नर व मादा धर्मों के सम्मेलनके परिणाम-स्वरूप इन जीवोंकी वंश-वृद्धि होनेके अतिरिक्त इनकी संख्या साधारण विभाजनसे भी बढ़ती है। वह जीव एक सीमा तक बढ़नेके पश्चात् दो बराबर भागोंमें विभाजित हो जाते हैं एवं दोनों भाग अलग-अलग अपनी जीविका संचालन करते हैं। वे भाग उसी प्रकार बढ़नेके बाद उपर्युक्त विभाजनकी विधिकी पुनरावृत्ति करते हैं। इस प्रकार उनके जीवनमें मृत्युका प्रश्न ही नहीं आता। इस प्रकार वुडरफ महोदयने 'पारामीसियम' को १३ वर्षसे अधिक समय तक रक्खा। इस विधिमें नर एवं मादा धर्मोंका सम्मेलन न होनेका विशेष रूपसे प्रबन्ध किया गया था और केवल विभाजन क्रिया द्वारा ही उनकी वंश-वृद्धि की गई थी। उपर्युक्त समयमें पारामिसियमकी संख्या ८५०० पीढ़ियों तक पहुँच गई। इस बीचमें एक भी जीवकी मृत्यु नहीं हुई। इस दृष्टांतको देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कुछ जीव निस्संदेह अमर हैं।

इस प्रकारकी विभाजन क्रिया द्वारा जीवोंकी संख्या-वृद्धि स्पंज, फ्लैट-वर्म एवं अन्य अगणित सेलोंसे-निर्मित जीवोंमें भी होती है। प्लेनेरिया नामक कीड़ा तालाबोंमें पाया जाता है, संपूर्ण रूपसे बढ़नेके पश्चात् शरीरके पिछले भागमें एक सिकोड़ प्रकट होती है और जीवके शरीरसे क्रमशः वह भाग अलग हो जाता है। कीड़ेमें नूतन पूँछ निकल आती है और विभाजित भाग अपना एक सिर निर्माण कर नया जीवन संचालन करता है। यह क्रिया पुनः होती है

और उनकी संख्या बढ़ती जाती है। वृक्षोंमें भी इस प्रकार की अमरता पायी जाती है। वास्तविकता तो यह है कि पुरानेसे पुराने वृक्षमें ऐसे विभाजन क्रिया वाले सेल उपस्थित रहते हैं। वृक्षोंकी वंशवृद्धिका साधारण साधन उनका कलम लगाना है। यह विधि स्वयं इस बातको प्रमाणित करती है कि वृक्षोंके कुछ अंग अमर हैं। कारण यह है वह कलम अत्यन्त शीघ्रता से बढ़कर वृक्षमें परिणत हो जाती है और जिसको कि हम नीबू, आम या अमरूदका पेड़ समझते हैं वह एक पुराने वृक्षकी शाखामात्र है जो कि कलम द्वारा बढ़कर संपूर्ण वृक्षमें परिणत हो जाती है।

भलीभांति विकसित अगणित-सेलोंके जीवोंमें जननक्रिया विभिन्न प्रकारसे होती है। दो विशेष सेलोंके संयुक्त प्रभावसे एक नूतन जीव अपना जीवन आरम्भ करता है। उपर्युक्त सेलोंको जर्म सेल कहते हैं जिनमें कि एक असाधारण शक्ति होती है। मनुष्य जातिमें 'ओवा' नामक जर्म-सेल स्त्रीमें और 'स्पर्म' नामक मनुष्यमें पाया जाती है। इन दोनोंके सहयोगसे एक नया जीव अपना अस्तित्व स्थापित करता है। संयुक्त-क्रियाके पश्चात् उनका दो सेलोंमें विभाजन हो जाता है। पुनः वे विभाजित होते हैं और सेलोंकी संख्या बढ़ जाती है। जर्म सेलमें परिणत हो जाते हैं और शेष शरीरके निर्माणमें सहयोग देते हैं। ये शरीर निर्माणक सेल कुछ समयके पश्चात् वृद्ध हो जाते हैं और मृत्युके ग्रास हो जाते हैं। यही हाल उन जर्म सेलोंका होता है जो शरीरके अंतर्गत रह जाते हैं किन्तु वे जर्म सेल जो शरीरके बाहर निकल आते हैं एवं स्त्रीके ओवाके साथ संयुक्त होकर एक नूतन जीवका निर्माण करते हैं वे अपना अस्तित्व उस नये शरीरमें बनाये रखते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि शरीरकी मृत्यु हो जाती है किन्तु जर्म सेल सदा जीवित रहता है। वह केवल एक शरीरको छोड़कर दूसरेमें चला जाता है और अपना अस्तित्व स्थापित रखता है।

लोब महोदयके चमत्कारिक आविष्कारोंने यह प्रकट किया है कि अंडेके बढ़नेके लिये नर और मादा धर्मोंका परस्पर मिलना हमेशा आवश्यक नहीं होता। मेढ़कके अंडोंमें नर धर्म का कार्य एक सुई द्वारा संपन्न किया जा सकता है। अंडेमें तनिक सुई चुभो देने पर अंडेके बढ़नेकी क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस अंडे द्वारा उत्पन्न मेढ़क एक वर्ष तक जीवित रहा। लोब महोदयने अंडेका रसायनिक भाग भी अध्ययन किया। साधारणतः समुद्रके 'अर्चिन' नामक जीवके अंडे जो कि नर धर्मके संपर्कसे रहित थे—वे समुद्रके जलमें अधिक समय तक रखनेसे कुछ समयके बाद नष्ट हो जाते थे किन्तु यदि वे रासायनिक पदार्थ जैसे ब्यूट्रिक ऐसिडके संपर्कमें रक्खे जाते हैं तो उनके नष्ट होनेकी सम्भावना जाती रहती है और उनमेंसे मेढ़कके बच्चे निकल आते हैं।

इन परिणामोंसे जीवनका वैज्ञानिक अस्तित्व भलीभांति स्पष्ट हो जाता है और इस जीवनकी रासायनिक क्रियाका प्रतिपादन करना मनुष्यकी ज्ञान-शक्तिके ऊपर निर्भर है। लोब महोदयके अनुसार एक सेलमें दो प्रकारकी क्रियाएँ एक साथ हो रही हैं [१] सेलोंका क्षय और मृत्युकी ओर प्रस्थान और [२] क्रिया सेलोंका विभाजन होकर क्रमशः संख्या बढ़ना। और यदि किसी प्रकार प्रथम क्रिया यानी सेलोंका क्षय किसी प्रकार रोक दिया जावे तो दूसरी क्रिया सेल निर्माणका कार्य—अनिश्चित रूपसे संपन्न होता चला जावे। हमें यह भी ज्ञात है कि सेलोंकी क्षय एवं मृत्यु 'एनजाइम' के प्रभावसे होती है। अतः यदि इस प्रभावको रोका जासके तो जीवोंकी आयु बढ़ाई जा सकती है। इस कार्यके लिये 'पोटेसियम-सायनाइड' एक रासायनिक पदार्थ है। लोब महोदयने यह दिखलाया है कि यदि इसका अत्यन्त थोड़ी संख्यामें समुद्रके जलमें सम्मिश्रण कर दिया जावे तो समुद्रके अर्चिनके अंडे साधारण जलमें रक्खे अंडोंसे प्रायः तिगुने कालसे अधिक समय तक जीवित रहते हैं और उनके शीघ्र ही नष्ट होनेकी सम्भावना जाती रहती है।

केवल जर्म सेल ही नहीं किन्तु किसी-किसी दशामें शरीरके सेलोंको भी कृत्रिम-रूपसे बढ़ाया जाकर अनिश्चित समय तक जीवित रक्खा जा सकता है। बर्न महोदयने सफलतापूर्वक मुर्गीके गर्भावस्थाके हृदय और नसके कुछ सेलोंको बाहर निकाल कर रक्तमें अनेक समय तक सुरक्षित रक्खा। आपने अपने अनुसंधानों द्वारा यह प्रकट किया कि कुत्ता, बिल्ली और मनुष्यके समस्त सेल उपर्युक्त विधि द्वारा पर्य्याप्त समय तक जीवित रक्खे जा सकते हैं। केजल महोदयने एक प्रयोगमें मुर्गीके हृदयके कुछ भागोंको

१८ वर्ष तक सकर्मक क्रियामें जीवित रक्खा। यह काल मुर्गीके बच्चोंके जीवित रहनेके समयसे कहीं अधिक है। वह भाग आज भी उसी प्रकारकी क्रियामें है जैसा कि वह १८ वर्ष पहले था। वास्तवमें ऐसा ज्ञात होता है कि यह महोदय उसे अनिश्चित समय तक जीवित रक्खेंगे।

इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि जीवोंके जीवित रहनेका समय उसकी वंश-परम्पराके ऊपर भी निर्भर होता है। अनेक ऐसे वार्षिक वृक्ष हैं जो कि बीजसे लेकर फूलके फलने तककी क्रिया केवल कुछ ही महीनोंमें समाप्त कर देते हैं। मनुष्यकी औसत आयु प्रायः १०० वर्षसे कुछ कम है। किन्तु यह दिखलाया गया है मनुष्यकी आयु उनके वंश पर होती है। कुछ ऐसे वंश हैं जिनमें लोग ५० वर्ष तक ही जीवित रहते हैं और दूसरे वंशोंके लोग साधारण रूपसे अधिक काल तक जीवित रहते हैं। पर्ल महोदयने 'ड्रोसोफिला' नामक फलकी मक्खीका अध्ययन करते हुये यह दिखलाया है कि लंबे पंख वाली मक्खियाँ नाटे पंखों वालों से अधिक समय तक जीती हैं, इस अध्ययनके फलस्वरूप आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं :—

अ=शक्तिका बाहरी साधन

ब=स जीवकी संचित शक्ति जो कि अ=स में परिणत करनेकी क्षमता रखती है।

उत्पत्ति :—१—गर्मी २—कार्य ३—जीवित पदार्थ ४—मलमूत्र

उपर्युक्त सूचीसे इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यदि एक विशेष वंशका जीव बाहरी शक्तिके साथ इस प्रकार क्रिया करे कि 'स' का अधिक उत्पादन हो तो वह जीव निस्संदेह अधिक काल तक जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त उक्त महोदय वृक्षोंकी संचित शक्तिका अध्ययन करते हुये एक अत्यन्त आवश्यक परिणाम पर पहुँचे हैं कि जितनी ही शीघ्रतासे वृक्ष बढ़ते हैं उनके जीवनकी आयु घटती जाती है। दूसरे शब्दोंमें जीवका जितना अधिक व्यस्त जीवन होता है वह शीघ्र ही मृत्यु का प्राप्त होता है।

ऊपर यह दिखलाया जा चुका है कि यह आवश्यक नहीं कि सेल अमर हो किन्तु उनका जीवन कृत्रिम रूपसे अनिश्चित समय तक के लिये बढ़ाया जा सकता है। यह प्रयोग अभी पूर्ण रूपसे विकसित जीवोंके लिये जैसे मनुष्य आदिके साथ सफल नहीं हो सका है। अतः मृत्युका कारण सेलोंके ऊपर न निर्भर रहकर जीव विशेषकी गूढ़ रचनापर आश्रित है। केजल महोदयने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रकट किया है कि जीव अंश केवल मलमूत्रोंको अलग रख कर अनेक समय सुरक्षित रखा जा सकता है। कारण यह है कि वे विषयुक्त होते हैं और जीवोंकी आयु घटा देते हैं। आपने उपयुक्त खाद्य सामग्री प्रदान कर जीव अंशोंको इस प्रकार अधिक समय तक जीवित रक्खा है। अतः अधिक समय तक जीवित रहनेके लिये यह आवश्यक है कि जीव अपने रक्त और शरीरके अन्य भागोंको मलमूत्र एवं अन्य विषयुक्त पदार्थोंके संपर्कसे सुरक्षित रक्खे। सेलोंकी मृत्यु चाहे वह शरीरके भीतर हो अथवा बाहर, विषके प्रभावसे ही होती है। मिचिनाफ महोदयने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखलाया है कि अंतड़ियोंमें विषयुक्त पदार्थोंके संग्रह हो जानेपर यह जीर्णावस्थाको प्राप्त हो जाता है। वृद्धावस्थाका दूसरा कारण प्रोटोप्लाज़्म है जो कि जीवन का मूल तत्व है। यह पदार्थ कोलायडल दशामें अनेक रासायनिक पदार्थोंका सम्मिश्रण है। रसायनज्ञोंका कथन है कि कोलायडल पदार्थ अधिक समय तक रखनेसे निष्काम हो जाता है। लिनश्योर महोदयने यह दिखलाया है कि प्रोटोप्लाज़्मके स्वाभाविक क्रमशः रूपांतर होनेके कारण कोलायडथक्केके रूपमें परिणत होता जाता है जिसके फलस्वरूप शरीर जीर्ण होकर मर जाता है। वृद्धावस्था उसी समयसे आरम्भ हो जाती है जब कि सेलोंका विभाजन और नूतन कोलायडका निर्माण बन्द हो जाता है अथवा एक निश्चित गतिसे कम हो जाता है। पुनर्युवावस्था उसी समय वापस हो सकती है जब कि नूतन सेलों और कोलायडका पुनः निर्माण आरम्भ हो। एक सेल वाले जीव, अगणित सेल वाले अनेक वृक्ष, कुछ सुरक्षित जीव अंश, और जीवोंके जर्मप्लाज़्म अमर कहे जाते हैं इसका यही कारण है कि नये कोलायडल प्रोटोप्लाज़्मका निर्माण और सेलोंकी विभाजन क्रिया अनिश्चित रूपसे संपादित की जा सकती है।

पुनर्युवावस्था प्राप्त करने पर स्टेना, वारोनाफ आदि महोदयोंके अध्ययन पर विचार करना इस लेखमें संभव नहीं है। किन्तु संक्षेपमें उनका प्रयोग जनन क्रियासे संबं-

धित जीर्ण भागोंको हटा कर नये युवा नसोंको लगाना है। किन्तु उनके परिणामोंको ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर यह प्रकट होता है कि उनका कार्य केवल कुछ समय तकके लिये उत्तेजना प्रदान करना होता है उसके द्वारा जीवोंकी आयुके बढ़ने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इन गूढ़ विषयोंकी आधुनिक जानकारीके परिणाम स्वरूप हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि जीवनका तत्व प्रोटोप्लाज़्मकी रसायनिक क्रियाका ज्ञान हमें पर्य्याप्त रूपसे प्राप्त हो गया है। इसके पहले उसके विषयमें कोई विशेष जानकारी नहीं थी। भविष्यमें इस विषय पर जो अनुसंधान किये जावेंगे वे मुख्यतः कोलायडको पुनर्निमाण करने और मलमूत्र आदि विषयुक्त पदार्थोंको और भी सफलतापूर्वक शरीरके बाहर निकालनेकी विभिन्न विधियों पर प्रकाश डालनेका प्रश्न होगा। उस समय यह कहना संभव होगा कि जीवनमें मृत्युका होना आवश्यक नहीं है।

कागज़की रक्षा

दस्तावेज़ तथा रुक्के इत्यादि जो कागज़ बहुत अधिक मूल्यवान होते हैं तथा जिन्हें बहुत काल तक सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता होती है उनको सुरक्षित रखनेकी एक नई विधि निकली है।

एक पारदर्शी पतला कागज़ जिसे ग्लैसीन (glassine) कहते हैं इस कार्यके लिये काममें लाया जाता है। छपे हुये पर्चे या दस्तावेज़ पर यह दोनों ओर से लगा दिया जाता है और इसके किनारे लेई या अन्य जोड़नेकी वस्तुसे असले पर्चेसे जोड़ दिये जाते हैं। किन्तु इससे तो कागज़की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये एक दबानेकी मशीन द्वारा बहुत दबावसे यह पतला कागज़ इस पर दबा दिया जाता है दबनेके कारण पतला कागज़ असली कागज़से बिलकुल चिपट जाता है और उसको खराब नहीं होने देता—क्योंकि यह कागज़ स्वयं झिल्लीके रूपका पारदर्शी होता है इसलिये लिखे हुये शब्दोंके पढ़नेमें भी कठिनाई नहीं पड़ती।

चमकने वाला मार्ग

रातको कोहरेमें मोटरोंको ठीक-ठीक मोड़नेके लिये इस बातकी आवश्यकता थी कि सड़क पर कोई चमकने वाली वस्तु होनी चाहिये जिससे ड्राइवरको ठीक-ठीक दिशा ज्ञात हो सके। एक वैज्ञानिकने इसके लिये निऑन (Neon) गैसकी नलियोंका उपयोग किया है।

जिस स्थान पर दिशा दिखानेकी आवश्यकता होती है वहां पर निऑन गैसकी नलियाँ सड़कमें लगी रहती हैं, इन नलियोंको मोटरोंके दबावसे दबकर टूटनेसे बचानेके लिये एक पारदर्शी रबड़का उपयोग किया जाता है। यह रबड़ बड़ा मज़बूत होता है, भारीसे भारी मोटरसे भी यह दबकर नहीं टूटता तथा जलवायुके कारण भी इसके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं।

कीटाणुओंके द्वारा पेट्रोलमें आग लगाना

युद्धके लिये जो पेट्रोल जमा किया गया था उन हौज़ोंमें आप-से-आप आग लग जाती थी। ब्रिटिश सरकार इसके भेदको जाननेके लिये बहुत परेशान थी। इसका कारण यह सोचा जाता था कि दुश्मनके इशारेसे किसी देश-द्रोही ने यह कार्य किया है। बहुत भयानक, कई विस्फोट हुए, उनके शकमें बहुतसे लोगोंको पकड़ा गया किन्तु क़सूर साबित न हो सका।

एक बार पेट्रोलके तालाबमें आग लगी और विस्फोटके पश्चात् तालाबके निचले भागमें स्थित पानीमें से बहुतसे गैसके बुलबुले निकलते दिखाई पड़े (पेट्रोल पानीके ऊपर तैरता रहता है)। इस गैस तथा बचे हुये पानीकी जब परीक्षाकी गई तो एक नये प्रकारके कीटाणुओंका पता चला जो पेट्रोलमें रह सकते हैं और इसको १० प्रतिशत ईथेन (Ethane) तथा ९० प्रतिशत मीथेन (Methane) में परिणत कर देते हैं। इन दोनों गैसोंके कारण ही विस्फोट होता था और ये कीटाणु इसके असली कारण थे। अभी तक इसका उपचार नहीं प्राप्त हो सका है।

संयुक्त-प्रान्तमें व्यापारिक शिक्षा

[ले०—श्री के० एल० गोविल, एम० ए०, बी० काम०]

भारतवर्ष पुनरोत्थानकी अवस्थामें है। इसके चिह्न राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में विद्यमान हैं। जीवनके प्रत्येक भागमें हमारी प्राचीन-पद्धतिपर पश्चिमीय विचारों का परदा पड़ गया है। हमारी देशी-कार्य-पद्धतिमें कोई विकास अथवा अचानक उन्नति नहीं हुई है। राजनैतिक दृष्टिसे शिक्षित-समाज प्रजातन्त्र राज्य का समर्थक है किन्तु अधिकांश जनता राम-राज्य ही में विश्वास रखती है। सामाजिक दृष्टिकोणसे भारतीय, जाति-पाँति अथवा संयुक्त वंशावलीमें विश्वास नहीं रखते। वास्तविकता तो यह है कि आधुनिक विचारोंके प्रभावसे दोनों बन्धन टूट रहे हैं। किन्तु अधिकांश जनता प्राचीन रीतियों पर ही आरूढ़ है। वे जाति-विभाजनका सम्पूर्ण विचार रखते हैं और साधारणतः एक वंशमें ही निर्वाह करते हैं। वे धार्मिक-रीतियोंमें पूर्ण विश्वास रखते हैं और विभिन्न रीतियोंका पालन करते हैं। आर्थिक दृष्टिसे—पश्चिमीय रीतिके आधुनिक यंत्रोंके प्रयोग द्वारा बड़े व्यापार स्थापित हैं और शिक्षित समुदाय उन्हींमें सलग्न है। किन्तु उसके साथ ही साथ अत्यन्त प्राचीन ढङ्गपर भी भारतमें व्यापार स्थापित है। जापान, अमेरिकाके संयुक्त प्रदेश और देशी कार्यालयोंकी प्रतियोगितामें भी भारतवर्षकी ३० प्रतिशत वस्त्रोंकी माँग हाथके बुने हुये कपड़ोंपर निर्भर है। हमारे देशमें जहाँ विशाल-मात्रामें आधुनिक ढङ्गपर वस्तुओंका निर्माण होता है, वहीं प्राचीन ढङ्गपर निर्मित वस्तुओंकी माँग भी है।

इस प्रकार हम रूपान्तरकी दशामें हैं। पुनरोत्थानके चिह्न सब जगह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। किन्तु परस्पर विरोधी वातावरणके होनेके कारण हम आगेका मार्ग निश्चित नहीं कर सके हैं। शिक्षा प्रणालीका भी वही हाल है—जिसका कि इस लेखसे प्रधान सम्बन्ध है। यह तो सभी मानते हैं कि शिक्षा-प्रणालीमें परिवर्तन होना चाहिये। सरकारने विशेषज्ञोंकी एक कमेटी निर्माण की थी जिससे कि हम बहुत आशा रखते थे, जैसा कि साधारणतः ऐसी बैठकोंसे हमें आशा होती है। आधुनिक-शिक्षा-प्रणाली पर प्रत्येक दिन ही कड़ी आलोचनाएँ हम देखा करते हैं। प्रत्येक भागसे तरह-तरहके प्रस्ताव रखे जाते हैं। आलोचकोंके विचारोंसे विभिन्न मत रखते हुये भी मैं यह कहूँगा कि शिक्षा-प्रणालीकी आलोचनाएँ—विशेषतः बेकारीकी दृष्टिसे—निराधार होती हैं। विश्वविद्यालय एवं अन्य शिक्षा-प्रदान करनेवाली संस्थाएँ समस्त युवकोंको काममें नहीं ला सकतीं। वे तो केवल ऐसे स्थान हैं जहाँ कि मनुष्य गम्भीर अध्ययन करके अपनी ज्ञान शक्तिको बढ़ा सके। हम इस बातसे सहमत हैं कि हमारे युवकोंकी बेकारी बढ़ती आ रही है। तो किस प्रकार इस समस्याको सुलझाया जावे? केवल शिक्षा-प्रणालीमें परिवर्तन कर देनेसे तो कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इस समस्याको सुलझानेका वास्तविक उपाय देशमें व्यापारकी उन्नति करना है। इस दिशामें हमारे शिक्षित बेकार कार्यमें लाये जा सकते हैं। सरकार समस्त शिक्षित युवकोंको अपने कार्यमें नहीं लगा सकती और न संसारके किसी भी देशमें ऐसा सम्भव हो सका है। कला-कौशल और व्यापार उनके लिये एक नूतन क्षेत्र खोल देगा। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें दीक्षांत भाषण देते हुये सर विश्वेशर ने उपाधिधारियोंको जो उपदेश दिया था वह निस्सन्देह उत्तेजना और आशापूर्ण था। आपके विद्वत्ता-पूर्ण-भाषणका प्रधान अभिप्राय यह था कि या तो देशको व्यापारिक बनाओ या मिट जाओ। लखनऊ विश्वविद्यालयके एक उसी वार्षिक शुभ अवसरपर सर पुरुषोत्तमदास ठाकुर दासने भी इसी विषयपर ज़ोर दिया था। इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों और सुप्रसिद्ध नेताओंने इस विषयपर प्रकाश डाला है।

हमारे यहाँ कच्चे मालकी अधिकता है और देशके अन्दर ही तैयार मालकी विशेष माँग है। विशेषज्ञों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि ऐसे व्यापारमें आर्थिक सहायता प्रदान करनेके लिये पूँजीकी भी कमी नहीं है। थोड़े ही समयमें सरकारी दशा आवश्यकतासे अधिक एकत्रित हो जाता है। चीनी, सीमेंट, बैंकिंग, लोहे आदि व्यापारोंमें पूँजीपतियोंने करोड़ों रुपये लगा दिये हैं। और

उसके धन पर वार्षिक लाभ प्रदान किया जावेगा। इसमें जो सबसे अधिक न्यूनता है वह यह है कि [१] सरकार-की सीधी आर्थिक नीति और [२] उचित प्रकारके मनुष्य जो कि देशमें आर्थिक दृष्टिकोणमें परिवर्तन कर सकें। अर्थ-शास्त्रकी नीतिमें व्यापारिक समझौता, विदेशका लेन देन, आने-जानेके साधन, रेलवेका लाभ आदि सभी सम्मिलित हैं। जहाँ तक दूसरी न्यूनताका सम्बन्ध है—विद्वानों, सामाजिक सुधारकों और सरकारकी सम्पूर्ण शक्ति मनुष्य-की उन्नति पर केन्द्रित हो जानी चाहिये। एक व्यापारिक उन्नतिके साधनकी खोज करता है जिससे कि देशके धनमें वृद्धि होती है। वह स्वयं अपना कार्य निकालनेके अतिरिक्त हज़ारोंको जीविका प्रदान करता है। एक व्यापारीके द्वारा रेलवेकी आयमें वृद्धि होती है और साथ ही साथ सरकारी कोष भी भरता है। हमें अनेक टाटा, पुरुषोत्तम-दास, बिरला, कमलापति जैसे सफल व्यापारियोंकी आवश्यकता है। इस समय हमें जरूरत इस बातकी है कि अधिक-से-अधिक मालकी उत्पत्ति करें।

किस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं। हमारे देशके होनहार युवक आई० सी० एस० और पी० सी० एस० की इनी गिनी जगहोंके लिये चेष्टा करते हैं। लेकिन उनमेंसे केवल थोड़ोंको सफलता प्राप्त होती है और शेष युवकगण एक निराश-जीवन व्यतीत करते हैं। अतः इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये कि देशके विद्वानोंका ध्यान व्यापारकी ओर आकर्षित किया जावे। कठिनाई तो यह है कि एक सरकारी अफसरकी प्रतिष्ठा बड़े-से-बड़े दुकानदार व्यापारी अथवा किसानसे अधिक मानी जाती है। एक करोड़पतिको भी एक आई० सी० एस० के सामने झुकना पड़ता है। ऐसा ख्याल निकाल देना होगा। हम आशा करते हैं कि ऐसी प्रणाली बदल जावेगी। व्यापारके लिये हमें बड़े विद्वान मिल सकते हैं जिनकी सहायतासे भारतीय व्यापारको आशातीत सफलता प्राप्त हो सकती है।

प्रत्येक भारतवासीके लिये अच्छी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु देशकी व्यापारिक दृष्टिकोणसे उन्नतिके लिये शिक्षाका रूप वैज्ञानिक एवं व्यापारिक होना चाहिये। देशके युवकोंका ध्यान वैज्ञानिक शिक्षाकी ओर आकर्षित हुआ है। किन्तु व्यापारिक दृष्टिकोणसे नहीं। वह इस कारणसे कि वे सरकारी नौकरीकी प्रतियोगितामें पाठ्य-विषय होनेके कारण उनमें सफलता प्राप्त कर सकें। अभाग्यवश व्यापारिक विषयोंकी सदासे अवहेलनाकी गई है किन्तु वास्तविकता यह है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान समाजके लिये उसी समय लाभदायक हो सकते हैं जब कि वे सफलतापूर्वक देशके व्यापारमें प्रयोग किये जा सकें। यही कारण है कि पिछले १५० वर्षोंमें "व्यापारका सीमित उत्तरदायित्व" एक बहुत बड़ा आविष्कार समझा जाता है। व्यापारिक उन्नतिके लिये दूसरी महत्वपूर्ण खोज भापके इंजनका है। समस्त आधुनिक व्यापार इसीकी पूंजी पर निर्भर है। हमारे कुछ व्यापारी लोगोंकी धारणा है कि स्कूलोंमें व्यापारिक शिक्षा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उसको सीखनेके लिये सबसे अच्छा साधन किसी व्यापारमें लग जाना है। उनका विचार है कि उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेनेके पश्चात् मनुष्य व्यापारिक कार्योंके अयोग्य हो जाता है। इस पुष्टिमें वे उन आदमियोंकी उपमा देते हैं जिन्होंने केवल प्रारम्भिक अथवा कोई भी शिक्षा नहीं प्राप्त की है। किन्तु वे व्यापारमें सफलतापूर्वक सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

उपर्युक्त उदाहरणोंके विश्लेषण पर हमें ज्ञात होगा कि ऐसे व्यापार कुशल लोगोंकी सफलताका कारण यह नहीं है कि उनमें शिक्षाकी कमी थी। किन्तु उसका कारण यह था कि उन्होंने शिक्षाकी पूर्ति क्रमशः स्वयं की, जिसके कारण न केवल उन्होंने अपने गुण विशेषकी उन्नतिकी बल्कि उसके साथ-ही-साथ अपने निरूपण, निर्णय, धारणा एवं हर एक शक्तिकी भी वृद्धि की। यद्यपि वे लोग आर्थिक दृष्टिकोणसे भले ही सफल हुये हों किन्तु उचित प्रकारकी शिक्षा न होने के कारण उनमें उन गुणोंका अभाव होता है जो कि एक शिक्षित मनुष्यमें पाया जाता है और जिसके द्वारा व्यापारका अधिक महत्व बढ़ सकता है। इनमेंसे कुछ ऐसे लोग थे जिनका स्वाभाविक गुण ही व्यापारके योग्य था जिससे उनकी अपूर्ण शिक्षा उन्नतिमें किसी प्रकार-की बाधा नहीं डाल सकी। उसी श्रेणीके कुछ ऐसे लोग हैं जो कि अगर स्कूलमें शिक्षा प्राप्त किये होते तो अधिक उन्नति कर सकते थे। हर दशामें जनताकी शिक्षा स्कूलमें होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक कठिनाइयाँ

दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती हैं। उनको सुलझानेमें विद्वानोंकी धारणा और निर्णय शक्तिकी आवश्यकता होती है। यहाँपर हमारे वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो महोदयके एक भाषणका थोड़ा भाग देना उपयोगी होगा। उनके भाषणका विषय "विश्वविद्यालयके वाणिज्य-व्यवसाय उपाधि प्राप्त युवकगण" था। यह भाषण साम्राज्यके चतुर्थ विश्वविद्यालय-कांग्रेसके अवसर पर सन् १९३१ में दिया गया था। आपने कहा कि एक औसत लड़केको लीजिये, वह विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाकर ज्ञान शक्तिको बढ़ा कर अधिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। कालेजमें समय व्यतीत करनेके कारण निस्सन्देह वह कुछ देर बाद अपने व्यापारका रहस्य प्राप्त करेगा किन्तु इस बीचमें उसने जो शिक्षा प्राप्त की, उसे अधिक लाभदायक होगी। अधिकांश हालतोंमें मुझे यह आशा है कि एक युवक सम्भवतः, विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करनेके कारण व्यापारमें कुछ कालके पश्चात् संलग्न होते हैं। अतः वह इन लोगोंसे कम अनुभवी होते हैं जो कि किसी स्कूलकी शिक्षा प्राप्त करनेके बाद ही व्यापारमें लग जाते हैं। किन्तु ३० वर्षकी अवस्था तक वे अपने सम्पूर्ण रहस्योंसे परिचित हो जाते हैं। उसके पश्चात् सारे जीवन भर उन लोगोंसे अधिक अनुभवी हो जाते हैं जो कि केवल साधारण शिक्षा मात्र प्राप्त करते हैं। कारण यह है कि फिर उनको विश्वविद्यालयसे प्राप्त विस्तृत ज्ञान शक्ति न केवल उनके अनुभवमें ही योग देती है बल्कि वे व्यापार को अधिक सफलतापूर्वक संचालन करनेमें समर्थ होते हैं। ऐसी अवस्थामें जब कि मनुष्यको स्वयं अपनी धारणा एवं निर्णयपर निर्भर रहना पड़ता है। उसके ऊपर बड़े कार्य संचालनका भार आ पड़ता है। उस समय विश्वविद्यालयकी उच्च शिक्षा ही उसको सम्पूर्ण कार्य सम्पादित करनेमें सहायक होती है। कोई भी मनुष्य चाहे वह कितना ही कलामें निपुण क्यों न हो एक सफल सर्जन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी ज्ञान-शक्ति पूर्ण न हो। इसके अतिरिक्त आप यह भी देखेंगे कि जो मनुष्य अपने वाणिज्य-व्यवसायमें अपने साथियोंसे आगे बढ़ जाता है और अपने क्षेत्रमें विशेष आदर प्राप्त करता है उनमें वही गुण विद्यमान होते हैं जो कि विश्वविद्यालयकी शिक्षा-प्राप्त युवकमें पाये जाते हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि विश्वविद्यालयके उपाधिधारियोंकी वाणिज्य और व्यापारमें हमेशा ही मांग रहेगी। उन युवकोंकी मांग बराबर रही है जिसने कि विश्वविद्यालयमें अपना समय भली-भांति उपयोग किया हो और अपने कार्यको सम्पूर्ण उत्साहसे सम्पन्न किया हो।

भारतीय व्यापारमें आज ऐसे लोगोंकी आवश्यकता है जिनको विस्तृत अनुभव हो, जिनमें जनताकी सेवाका भार हो और जो लोग परिश्रम और सचाईके साथ कार्य-संचालन कर सकें। निस्सन्देह यह कहना यथार्थ है कि जहां विस्तृत-दृष्टि नहीं होती मनुष्य मिट जाते हैं। सम्पूर्ण साम्राज्यमें वाणिज्य और व्यवसायके लिये उपाधिधारियों-का क्षेत्र खुला हुआ है। उनको अधिक-से-अधिक संख्यामें सहयोग देना चाहिये जिससे न केवल हमारे समाजकी उन्नति होगी बल्कि उसके द्वारा मनुष्य जातिकी एक बहुत बड़ी सेवा होगी।

हमें आशा है कि हमारी सरकार अपने रचनात्मक कार्य-क्रम द्वारा शिक्षामें सहायता प्रदान करेगी। अब तक शिक्षाके प्रति एक कृपण भाव रहा है। सन् १९३१ की जन-संख्या-से ज्ञात हुआ है कि १० वर्षसे ऊपर शिक्षित भारतवासियों की संख्या केवल ८ प्रतिशत है, जहां कि अमेरिकाके संयुक्त प्रदेशमें शिक्षितोंकी संख्या ९५·७ प्रतिशत, संयुक्त राज्यमें ९२·५ प्रतिशत, जर्मनीमें ९९·७ प्रतिशत और जापानमें ९६ प्रतिशत थी। राज्यक्रान्तिके पश्चात् रूसने अपने अशिक्षितोंकी संख्या ८३ प्रतिशतसे घटाकर केवल १० प्रतिशत कर दी। स्कूलमें जाने वाली जन संख्या का व्यय भारतमें २२·३ रुपये प्रति बालक है, यू० एस० ए० में २७५ रुपये, संयुक्त राज्यमें १०२ रुपये, और जापानमें ५८ रुपये प्रति बालक है। रूसकी पंचवर्षीय योजनामें केवल चार वर्षके बीचमें शिक्षा प्रसरणमें १,५८४ करोड़ रुपये व्यय हुआ था और प्रत्येक शिक्षा ग्रहण करने वालेको १५८ रुपये दिये गये थे। इन विभिन्न देशोंके आँकड़ोंसे हमारे देशमें फैली हुई अशिक्षा और उसके निवारणके लिये अपर्याप्त व्यवस्था भली-भांति प्रकट हो जाती है? हमें आशा है कि इस नूतन व्यवस्थामें अशिक्षा-का नाश हो जावेगा और साथ ही साथ भारतवर्षमें साधारण और कला-कौशल सम्बन्धी उच्च-शिक्षाका प्रबन्ध किया

जावेगा एवं इस दिशामें सरकार द्वारा विशेष प्रोत्साहन मिलेगा। हमारा ऐसा विश्वास है कि यदि उच्च-शिक्षाके प्रति उच्च पदाधिकारीगण उदासीन रहेंगे तो देशके लिये उसका फल अच्छा न होगा। हम इसकी महत्ताको अभी अनुभव नहीं कर सकते किन्तु उसकी अपेक्षा करना उच्च शिक्षा और देशके उन्नतिके प्रति कुठाराघात करना होगा। ३५ करोड़ जनताके बीचमें कुल १२ हज़ार विश्वविद्यालय-के उपाधिधारियोंके प्रतिवर्षकी संख्या ऐसी बड़ी नहीं है जिस पर शिक्षाके दृष्टिकोणसे गर्व किया जा सके।

युक्त प्रान्तमें व्यापारिक शिक्षा देनेके आधुनिक साधन अपर्य्याप्त हैं। व्यापारिक शिक्षा देनेके लिये युक्त प्रान्तमें कोई भी संस्था नहीं है। यह विषय हाई स्कूलकी परीक्षा-में एक स्वेच्छानुसार विषय है, जिससे प्रतिवर्ष बैठनेवाले १५,००० विद्यार्थियोंमें केवल ६०० बालक इस विषयमें परीक्षा देते हैं। इन्टरमीडियेटके ६६ कालिजोंमें केवल ११ कालिज व्यापारिक शिक्षा प्रदान करते हैं और ६००० लड़कोंमें प्रायः ४०० विद्यार्थीगण परीक्षामें बैठते हैं। इला-हाबाद, लखनऊ, और आगरा विश्वविद्यालयमें इस विष-यके विद्यार्थियोंको 'बेचुलर आफ कामर्स' की उपाधि प्रदान की जाती है और प्रायः १५० व्यापारिक शिक्षा प्राप्त उपाधि-धारी प्रतिवर्ष संयुक्त प्रान्तके उपर्युक्त विश्वविद्यालयों द्वारा बाहर निकलते हैं। एम० काम० की उपाधि भी अब प्रदान की जाने लगी है। यद्यपि हिंदीकी मिडिल परीक्षामें व्यापारिक शिक्षा निर्धारितकी गई है किन्तु कहीं भी उसकी शिक्षा नहीं प्रदानकी जाती है। ऐसी अवस्थामें अधिक संख्यामें विद्यार्थियोंका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित करना चाहिये। व्यापारिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थिगण यदि मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् अपनी शिक्षा समाप्त भी कर दें तो भी वे छोटे-मोटे व्यापारोंमें मुनीमी कर एवं अन्य प्रकारसे यथेष्ट सहायता पहुँचा सकते हैं। इन तीन वर्षोंके बीचमें बालकोंको, बैङ्क, पोस्टआफिस, रेलवे, बीमा कम्पनी आदि विषयोंमें शिक्षा प्रदान करनी चाहिये। स्वाभावतः ऐसी शिक्षा प्राप्त बालकगण साधारण व्यापारियोंको पुराने मुनीमोंसे अधिक सहायक सिद्ध होंगे जो कि केवल अपने अनुभवसे उपर्युक्त विषयोंको सीखते हैं। मेरी यह अनुमति है कि मिडिलकी परीक्षामें जो विद्यार्थी इस विषयको ले उसे अंग्रेज़ीमें भी परीक्षा देनी चाहिये। कारण यह है कि अधिकांश व्यापारिक विधियाँ अंग्रेज़ी ढङ्ग पर होती हैं और उनके समझनेकेलिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थीको अंग्रेज़ी भाषाका साधारण ज्ञान हो।

दूसरी बात यह है कि सातवीं कक्षासे ही यह विषय बालकोंकी स्वेच्छा पर छोड़ देना चाहिये। सातवीं-आठवीं कक्षामें बालकोंको बही-खाता, साधारण हिसाब-किताब, चेक, बिल आदिसे परिचित करा देना चाहिये। हाई स्कूल और इण्टरमीडियेटकी कक्षाओंमें व्यापारिक शिक्षा अंग्रेज़ीमें प्रदान करनी चाहिये। अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा शिक्षा देना यद्यपि आधुनिक विचारोंके प्रतिकूल है किन्तु फिर भी वास्तविकता तो यह है कि अंग्रेज़ीका ज्ञान प्रत्येक दूकानदार और व्यापारीके लिये आवश्यक है। अंग्रेजके बच्चोंके लिये व्यापारिक शिक्षा प्राप्त करते समय विदेशी भाषाओंका ज्ञान कराना आवश्यक होता है। विश्वविद्यालयकी शिक्षामें हमारे युवकगणको व्यापारिक संस्थाओंके विभिन्न अंगोंमें जैसे आय व्ययके निरीक्षण, मंत्रीत्व, बैङ्क एजेंट, क्रय-विक्रय और विज्ञापन विभागकी अनेक विधियोंमें पारंगत हो जाना चाहिये। व्यापारिक शिक्षा प्राप्त किये हुये विद्यार्थी न केवल व्यवसायके लिये उपयुक्त होते हैं बल्कि सरकारी पदों पर भी कुशलता पूर्वक कार्य संचालन कर सकते हैं। वे इन्कम टैक्स दफ्तर, उद्योग विभाग, रेलवे दफ्तर, चुङ्गी आदि सरकारी विभागोंके सर्वथा उपयुक्त होते हैं। आजकल व्यापारिक शिक्षाके प्रति जनताका कुछ द्वेष भाव-सा है। उसका कारण यह है कि वे विषय-उपयोगितासे अनभिज्ञ है और फिर यह विषय अन्य शिक्षाकी अपेक्षा नूतन भी है। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि व्यापारिक शिक्षाकी इतिश्री केवल थोड़ा हिसाब किताब और व्यापार सम्बन्धी कुछ बातोंको जान लेने तक ही है। लोगोंकी यह एक दम निर्मूल धारणा है। व्यापारके विभिन्न अंगोंकी शिक्षा प्रदान करनेके अतिरिक्त इस विषयमें संयुक्त कार्यालय, सहयोगी सहायता, उद्योग-संगठन, व्यापारिक समझौता, विदेशी लेन-देन, वस्तुओंका मूल्य आदि गम्भीर बातोंका भी अध्ययन सम्मिलित है। यह सब विषय विश्ववि-द्यालयके व्यापारिक शिक्षाके पाठ्यक्रममें संयुक्त हैं। पिछले

सप्रू कमेटीमें कुछ पदाधिकारियोंने 'बी० काम०' उपाधिका 'बेकाम' कह कर मज़ाक उड़ाया था जो कि पूर्णतः अनुचित था। हमने प्रयाग विश्वविद्यालयके उत्तीर्ण बी० काम० उपाधिधारियोंके आंकड़े एकत्र किये हैं जिससे यह ज्ञात हुआ कि अधिकांशतः युवकगण कार्यमें लगे हुये हैं एवं उनकी पर्याप्त संख्या भारतीय व्यापारमें भी सहयोग दे रही है। व्यापारिक और आर्थिक विषयों पर विश्वविद्यालय को अनुसन्धान करनेकी समुचित व्यवस्था करनी चाहिये। सरकारको यूनिवर्सिटीके अध्यापकोंपर विश्वास कर इन गूढ़ विषयोंपर अनुसन्धान करनेके लिये प्रोत्साहन देना चाहिये।

अन्तमें मैं भारतके बड़े व्यापारियोंसे अनुरोध करूँगा कि वे अपने कार्यमें विद्वानोंका सहयोग लें और उनके ऊपर यह अभियोग न लगायें कि व्यापारमें उनका सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा है। इस प्रान्तमें जहाँ तक व्यापारिक शिक्षा-का मेरा अनुभव है मैंने देखा है कि सफल व्यापारियोंका सहयोग हमेशा ही बोर्ड और विश्वविद्यालयकी समितियोंको प्राप्त रहा है। हम इस बातके उत्सुक रहे हैं कि उनका अनुभव और सहयोग हमें प्राप्त होता रहे और इस बातकी चेष्टा भी की यद्यपि उनका कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त रहा है। प्रयाग विश्वविद्यालयके व्यापारिक शिक्षाके पाठ्य-क्रम-में उनकी आलोचनाओं एवं अनुमतिसे अनेक परिवर्तन किये गये हैं और इस विभागमें ऐसे अनुभवी लोगोंका सहयोग भी प्राप्त है। ऐसे व्यापारियोंको हमारे शिक्षित युवकोंको यथेष्ट समय देना चाहिये उनके सहयोगके द्वारा ही हम एक सफल परिणामपर पहुँच सकते हैं। जो विदेशी कार्यालय भारतवर्षमें सफलता पूर्वक चल रहे हैं उनके लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि वे हमारे देशके शिक्षित युवकोंको शिक्षा दें। निस्सन्देह यह एक अपमानका विषय है कि प्रायः डेढ़ सौ वर्षोंसे विदेशी लेन-देनके दफ्तरमें कार्य करते हुये भी वहाँ पर कोई भी भारतवासी विश्वसनीय और उच्च पद पर नहीं है। हमारी सम्पूर्ण चेष्टा मनुष्यको पूर्णरूपसे शिक्षित कर देने पर आकर्षित हो जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त सरकारकी सीधी आर्थिक नीतिका होना भी आवश्यक है। इन प्रयत्नोंसे हमारे देशकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। शिक्षा—चाहे वह प्रारम्भिक अथवा विश्वविद्यालयकी क्यों न हो, हर दशामें उसको प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

कुछ मनोरंजक वैज्ञानिक बातें

कीड़े खाने वाले पौधे

उत्तरी अमेरिकामें "वीनस फ्लाई ट्रेंप" नामक एक पौदा पाया जाता है। इसकी पत्ती का सिरा जाल-सा होता है। जालके दोनों हिस्सोंमें तीन छोटे रोयें होते हैं। जब कोई जन्तु उड़ते उड़ते पत्ती पर बैठ जाता है अथवा उसके सम्पर्कमें आ जाता है तो जालके दोनों भाग तुरन्तही बंद हो जाते हैं जिससे वह जन्तु उसके भीतर बंद हो जाता है फिर बहुतसी गाँठोंसे पौदा रस निकालता है जिससे कीड़ेका शरीर पच जाता है जो कि पौधेकी पुष्टिमें सहायक होता है।

ब्रिटेनमें "सनड्यू" नामक पौदा भी जीव-जन्तु खाया करता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और गोल होती हैं और किनारों पर छोटे छोटे रोयें होते हैं जिनका सिरा गोल होता है और जिनमें से एक प्रकारका चिपचिपा रस निकलता है। जब कोई कीड़ा पत्तीके गोल सिरेको स्पर्श करता है तो वह उसमें फंस जाता है और सब रोयें उसे चारों ओर से ढक लेते हैं। फिर वह जीव रस द्वारा हज़्म किया जाता है। कीड़ेके अंशसे मिश्रित रस पौदेके विभिन्न भागोंमें वितरण हो जाता है जिससे पौदा बढ़ता और बलवान होता है। तत्पश्चात् पत्ती खुल जाती है और कीड़ेका सूखा शरीर गिर पड़ता है।

जलका वृक्ष

दक्षिणी अमेरिका, मेडेगास्कर, ब्राजील और अफ्रीकामें एक उपयोगी और महत्वपूर्ण वृक्ष पाया जाता है जिसका नाम 'जलका वृक्ष' है। यह वृक्ष केलेकी भांति होता है और उसकी पत्तियाँ केलेसे बड़ी होती हैं। वृक्षोंकी लम्बाई १ फुटसे लेकर ६०-७० फुट तककी होती है। इसकी पत्तियोंकी डण्ठलें जो कि वृक्षके तनेके सिरे पर निकलती हैं—जलसे भरी होती हैं, जो कि एक २ इंचकी पौदोंमें होती हैं। जब उन्हें काटा जाता है तो उनमेंसे स्वच्छ जल निकलता है यद्यपि उसका स्वाद पानी जैसा रुचिकर नहीं होता किन्तु जलके अभावकी अवस्थामें यात्रिओंको जीवन दान देता है।

नवीन भौतिक दृष्टि-कोण

३—प्रसरणशील विश्व

[ले० —श्री देवेन्द्र शर्मा, एम० एस-सी०]

बढ़ा था युक्त व्योमतल नित्य;

....

धराकी यह सिकुड़न भयभीत

आह कैसी है ?

—'प्रसाद' (कामायनी—श्रद्धा)

प्रवाद है कि एक मेंढक यह सुनकर कि संसारमें कोई उससे भी दीर्घकाय जीव (बैल) है [illegible] [illegible]में फूलते फूलते मर गया। कहा जाता है एक बार हिमालयकी बराबरी करनेके लिये विन्ध्याचल इतना [illegible] कि सूर्य, चन्द्रादिके मार्गोंमें बाधा पड़ने लगी। [illegible] हैं कि आज भी संसारकी समस्त सभ्य शक्तियाँ अपने आपको दूसरों-से बड़ा दिखानेके लिये सर्वनाशके मार्ग पर अग्रसर हैं। इतना ही नहीं, सबसे आश्चर्यकी बात है कि विश्व स्वयं फैल रहा है, सम्भवतः प्रति-स्पर्द्धामें नहीं—मेंढक, विन्ध्या अथवा सभ्य जातियोंके पद चिह्नों पर नहीं। यदि प्राणि मात्रको ज्योतिष विज्ञानका कुछ ज्ञान करा दिया जाय तो आए दिन ये घटनाएं सुनने और देखनेमें न आवें। फिर भी इस ग्रह पर कोई ईर्ष्या संक्रामक व्याधिके दूर करनेका दावा नहीं कर सकता, क्योंकि मानव समझ दायें और बायें समान सुगमतासे हो जाती है।

विश्वमें हमारा स्थान—आदि-संस्कृतिमें स्वभावतः अपने आपको सर्वोच्च समझ कर ही पृथ्वीको समस्त सृष्टिका केन्द्र माना और सूर्य, चन्द्र, तारादिको अहर्निशि उसके चारों ओर घूमते पाया। जब तक कि पृथ्वीके शेष-नागके फन अथवा कछुयेकी पीठ पर टिके रहनेमें कोई अलङ्कार न हो हमारे ग्रहका इस प्रकार स्थायी होना निरर्थक है। आधुनिक वैज्ञानिक समस्त आकाश-मण्डलको पृथ्वीके चारों ओर घूमनेकी कल्पनाको स्वप्नमें भी सत्य नहीं कह सकता, क्योंकि सुदूर नक्षत्रों तथा नीहारिकाओंकी दूरी (जो काफ़ी ठीक-ठीक मालूम है) देखते हुये वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि २४ घंटेमें पूरा चक्कर लगानेके लिये उन्हें प्रकाश-वेगसे कहीं-कहीं अधिक तेज़ चलना चाहिये—यह सापेक्षतावादसे, जिसकी सत्यता प्रमाणित है, सर्वथा असम्भव है। आकाशमें नक्षत्रोंके साथ (जो २४ घण्टोंमें पृथ्वीके चारों ओर घूमते प्रतीत होते हैं) कुछ घुमक्कड़ भी देखे गए; उनका आकाशीय मार्ग सर्वथा भग्न-प्रतीत होता था। परन्तु सूर्यके केन्द्र तथा पृथ्वी और इन घुमक्कड़ों (ग्रहों, Planets=wanderers) को उसके चारों ओर घूमते देखने पर यह कठिनाई दूर हो गई। जैसा प्रायः होता है सूर्यको उसका सच्चा अधिकार सौंपने पर कुछ स्वार्थियोंने इसका यथाशक्ति विरोध किया, परन्तु सत्यकी सदा विजय होती है। दूसरेके गौरव और सम्पदाका अपहरण करने वाले आज भी कम नहीं।

परन्तु सूर्य एक निरपेक्ष केन्द्र नहीं हो सकता; वह केवल अपने परिवार*के लिए ही ऐसा हो सकता है। अपनी नीहारिका | में भी यह केवल एक साधारणसा जलता हुआ प्रकाश है। इससे छोटे और बड़े, बहुत ठण्डे और बहुत गर्म अनेक नक्षत्र हैं। सृष्टिमें हमारी कोई महत्ता प्रतीत नहीं होती, हाँ उसको छोड़कर जो मानवने अपने आप अपने लिए घोषित कर रक्खी है। यद्यपि सौर-परिवारमें किसी और ग्रह पर पृथ्वी जैसे जीवधारियोंके पाये जानेकी सम्भावना नहीं तथापि इसमें आश्चर्य नहीं कि विश्वके

*सौर परिवारमें सूर्य तथा उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह, उपग्रह तथा पुंछल तारे हैं। ग्रहोंमें बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनिश्चर, वारुणी, वरुण, यम (प्लूटो) की क्रमशः सूर्यसे दूरी बढ़ती जाती है। अवा-न्तर-ग्रह मङ्गल और बृहस्पतिके बीचमें हज़ारों छोटे २ ग्रहों-का समूह हैं; हो सकता है ये कालान्तरमें एक बड़ा ग्रह रहे हों।

|एक नीहारिका अरबों तारोंका समूह है और अरबों नीहारिकाएं इस विश्वमें हैं। हमारी नीहारिका स्वच्छाकाशमें रातको श्वेत बादलोंसी दिखाई देती है और 'आकाश गङ्गा' के नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिणकी ओर इसकी दो शाखें दिखाई देती हैं।

मरुस्थलमें अनेक मरुद्वीप हों। वहाँके बुद्धिमान् जीवधारियों-का अपने पड़ोसियोंके विषयमें भाँति भाँति की कल्पना करनेका विचार कितना मनोरञ्जक है। सम्भव है जब यहाँ हम बन्धुत्वका पाठ सीख लें तो दोनों ओरसे विश्व-बन्धुत्वके लिये प्रयत्न हो। कब और कहाँ ? इसका विज्ञान अभी कोई उत्तर नहीं दे सकता !

विश्वमें अरबों नीहारिकाओंका अनुमान किया जाता है। स्वच्छ मेघशून्य रात्रिको आकाशमें कुछ छोटे-छोटे बादलों-के से टुकड़े दिखाई देते हैं जो दूरदर्शककी सहायतासे अनेक नक्षत्रोंके पुञ्जके रूपमें आते हैं; और आँखके लिये शून्य स्थानों पर सुदूर नीहारिकाएं दूर-दर्शक बादलोंके टुकड़ोंके समान दिखाई देती हैं, क्योंकि बहुत दूर स्थित नीहारिकाओंके नक्षत्रोंको दूरदर्शक भी अलग २ नहीं दिखाता। आकाश गङ्गाके समान प्रत्येक नीहारिकामें अरबों नक्षत्र हैं। कौनसी नीहारिका विश्वके केन्द्र पर स्थित है यह प्रश्न चतुर्दा विस्तृत-विश्वमें कोई अर्थ ही नहीं रखता। यहाँसे नीहारि-काओंके व्यवधानको मीलोंमें व्यक्त करना कठिन है क्योंकि यह दूरी बहुत बड़ी है। अतः इसके लिए हम दूसरा पैमाना प्रयोगमें लाते हैं। प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० माल जाता है , फिर भी उसे सूर्यसे यहाँ तक आनेमें प्रायः ८ मिनट लगते हैं। इसी प्रकार सूर्यके अतिरिक्त हमारे सबसे निकटके नक्षत्रसे प्रकाशको यहाँ तक आनेमें ४. २७ वर्ष लगते हैं—वह सूर्यकी अपेक्षा २७०००० गुनी दूरी पर हुआ। अतः नक्षत्रोंके व्यवधानको हम प्रकाश-वर्षोंमें व्यक्त करते हैं। नीहारिकाओंके लिये भी यह पैमाना प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु उनकी बहुत बड़ी दूरीके कारण प्रायः मैगापारसेक (Megaparsec)—१ मैगापारसेक =३२६ लाख प्रकाश-वर्ष—का प्रयोग होता है। ये व्यवधान हमारे सीमित ज्ञानके कारण कल्पनातीत प्रतीत होते हैं। उनके १० गुने अथवा दसवें भागके अनुमान करनेमें हमारे मानसिक जगत् में कोई परिवर्तन न होगा। फिर भी ये संख्याएं संहत सत्य हैं।

विश्वका प्रसरण—व्यापक सापेक्षतावादके प्रति-पादनके दो वर्षके अनन्तर ही दी सित्तर (de Sitter) ने सिद्धान्तकी सहायतासे गणित द्वारा यह बतलाया कि विश्व फैल रहा है—कम-से-कम उसे ऐसा दिखाई देना चाहिये। यह एक नितान्त काल्पनिक विचार प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रकारकी बातें अभी तक हम कहानियोंमें अथवा उस युगकी गाथाओंमें पढ़ते आये हैं जिसका ज्ञान सर्वथा सन्दिग्ध है। मानव मस्तिष्क कितना भी क्लिष्ट क्यों न हो पर वह सरलताको अपनाता आया है। चमत्कार उसकी उत्सुकता एवं श्रद्धाको जागृत कर सकते हैं, पर जब तक उनका कारण न ज्ञात होगा, सदा सन्देहात्मक दृष्टिसे देखे जायँगे। हो सकता है इसलिये साधारण मनुष्यको विश्वका प्रसरण काल्पनिक प्रतीत होता है; परन्तु इस प्रसरणमें ही गणितज्ञ और भौतिकज्ञकी सरलताकी भावना तुष्टि पाती है।

नीहारिकाओंके हमसे दूर भागनेका प्रथम आभास प्रोफ़ेसर स्लिफर (Slipher) के प्रयोगोंमें मिला। क्या इन स्वर्गीय ब्रह्माण्डोंको मनुष्योंके इस छोटेसे ग्रहसे कुछ विरक्ति अथवा घृणा है जो वे निरन्तर हमसे दूर भाग रहे हैं ? नहीं, इस महाप्रसरणमें प्रत्येक कोप दूसरेसे दूर जा रहा है। यदि वहाँ देवता हों तो वे भी कहते होंगे कि उनका आराधक मानव भी उनसे घृणा करता है ! अस्तु। फैलने अथवा दूर हटनेके वेगका मालूम करना कठिन नहीं। डापलर (Doppler) के प्रसिद्ध सिद्धान्तसे हम जानते हैं कि जब लहरें पैदा करने वाले और उनका पता लगाने वालेके बीचकी दूरी बढ़ेगी तो पता लगाने वाले (detec-tor) के पास दोनोंके स्थिर होनेकी अपेक्षा प्रति सेकण्ड कम लहरें पहुँचेंगी और आवृत्ति घट जायगी, या दूसरे शब्दोंमें लहर-लम्बान बढ़ जायगी। इसी प्रकार दूरीके घटनेका प्रभाव लहर-लम्बानका घटना या आवृत्तियोंका बढ़ना है। ध्वनि वायुकी लहरों द्वारा चलती है, और हमने प्रायः अपने किसी प्रिय जनकी गाड़ीको प्लेटफ़ार्म छोड़ने पर उसकी सीटीकी आवाजको क्रमशः मोटी (भर्राई हुई सी) होते हुये सुना है। यह 'भर्राना' केवल मानसिक नहीं क्योंकि आप अपने बड़े-से-बड़े शत्रु को ले जाती हुई गाड़ीकी सीटीमें भी एक भारेपनका अनुभव करेंगे ! मैंने एक मित्रका उदाहरण केवल इसलिये लिया कि प्रायः लोग शत्रुओंको इस प्रकार बिदा करने नहीं जाते। परन्तु शून्यमें उन सुदूर नीहारि-काओं तक हमारा शब्द कैसे पहुँचे अथवा हम 'देव-वाणी' क्योंकर सुनें ? यहाँ प्रकाश-ऊर्मियाँ हमारी सहायताको

आती हैं। यदि हम किसी दूरस्थ नीहारिकाके वर्ण-पटको देखें तो ज्ञात होगा कि उसमें वे रेखाएं जो पृथ्वी पर उत्तेजित (excited) परमाणुओं और अणुओंसे एक अमुक स्थान पर आती हैं अपेक्षाकृत लोहित-वर्णकी ओर हटी हुई होती हैं, जिसका अर्थ है आने वाले प्रकाशमें ऊर्मि-लम्बानका बढ़ना, अर्थात् नीहारिकाका दूर भागना। जैसा हम देख आए हैं महान् गुरुत्वाकर्षक क्षेत्रोंसे जाते हुये प्रकाशकी आवृत्तियाँ घटती हैं (ऊर्मि-लम्बान बढ़ता), और हो सकता है कि गन्तव्य स्थान तक पहुँचनेमें मार्गमें पदार्थकी उपस्थितिके कारण प्रकाश लोहित हो जाता हो। परन्तु डाक्टर स्विकी (Dr. Swicky) का यह सिद्धान्त कुछ निर्मूल-सा सिद्ध हुआ और अब उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि विश्वमें पदार्थका घनत्व बहुत सूक्ष्म है।

हबल् (Hubble) के अवलोकनों और मापोंसे ज्ञात होता है कि नीहारिकाओंके पीछे हटनेका वेग ५५०००० मीटर प्रति सेकण्ड प्रति मेगापारसेक है। इस प्रकार १० मेगापारसेककी दूरी पर स्थित नीहारिका १ मेगापारसेक पर की अपेक्षा दस गुना तेज़ीसे जाती हुई दिखाई देगी। अभी तक किसी भी नीहारिकाको अपनी ओर आते हुए नहीं देखा गया।

यह समझनेके लिये कि चतुर्विस्तृत-विश्व किस प्रकार फैल रहा है हम एक रबरके गुब्बारेका उदाहरण लेते हैं। यदि उसकी झिल्लीकी सतहमें लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाईके तीनों विस्तार मान लिये जायें तो उसके फूलनेकी उपमा प्रसरणशाली विश्वसे दी जा सकती है। हम गुब्बारेकी सतह पर बिन्दुओंको इस प्रकार रख सकते हैं कि प्रत्येकके चारों ओर कोई न कोई बिन्दु हो—परन्तु चपटी सतह पर यह करना सम्भव नहीं क्योंकि किनारेके बिन्दुओंके एक ओर कुछ नहीं। विश्वमें नीहारिकाएं सब ओर नीहारिकाओंसे घिरी हुई हैं, अतः व्योम (देश) में वक्रता का होना आवश्यक है। इतना ही नहीं व्योमका पिहित होना आवश्यक है, क्योंकि बिना ऐसा हुये व्योमकी सीमा तथा केन्द्रके प्रश्न उठते हैं और हमें उसकी सीमा तथा अन्त परेशान करने लगते हैं। जिस सीमा तक तीन विस्तारोंमें पृथ्वीको गोल एवं सम कह सकते हैं उसी तक चार विस्तारोंमें विश्वको गोल कहा जा सकता है, क्योंकि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर दोनोंमें ही जगह-जगह पदार्थके वितरणमें असमानताएं हैं।

दी सित्तरकी विश्वकी प्रतिमामें पदार्थ नहीं किन्तु गति है। विश्वमें पदार्थका घनत्व न के बराबर है और इसी आधार पर गणितकी सहायतासे वह एक गतिशील, शून्य विश्वकी रचना करता है। दूसरी ओर आइन्सटाइनके विश्वमें पदार्थ है किन्तु गति नहीं, वह स्थायी है। परन्तु ये दोनों सीमाएं वास्तविकतासे दूर हैं। यदि हम दी सित्तरके विश्वमें कुछ पदार्थ रख अथवा आइन्सटाइनके में से कुछ निकाल कर उसका साम्य भंग कर दें तो यथार्थता के निकट आ सकते हैं। इस प्रकार आइन्सटाइनके स्थायी और दी सित्तरके 'प्रगतिशील' विश्वके बीचमें कई विश्व बन सकते हैं जिनमेंसे एक आजके आधे 'रूढ़' (Conservative) और आधे 'प्रगतिशील' विश्वका प्रतिनिधि होगा।

विश्वकी रचना तथा उसका प्रसरण भौतिक विज्ञान तथा गणितके विद्यार्थीके लिये एक आकर्षक और मनोरंजक विषय है; किन्तु यहाँ हम गणितमें न जाकर भौतिक दृष्टि से ही इस विषयका अध्ययन करेंगे। हम जानते हैं कि सृष्टिमें प्रत्येक वस्तु दूसरीको अपने ओर खींचती है। यह आकर्षण दोनों वस्तुओंकी मात्राके गुणन पर तथा उनके बीचकी दूरीके वर्गके व्युत्क्रम (Reciprocal) पर निर्भर है (हम यहाँ सरलताके लिये न्यूटोनियन आकर्षण का ही विचार करते हैं—इससे सापेक्षवादको कोई धक्का न पहुँचेगा)। परन्तु सापेक्षता-सिद्धान्तके आधार पर गणनामें हमको एक घटक (Factor) का सामना करना पड़ता है; यह आकर्षणका विरोध करता है और नीहारिकाओंको खिंचकर एक स्थानमें आनेसे रोकता है, अतः इसे ब्रह्माण्डीय-प्रतिसरण (Cosmic repulsion) नाम दिया गया है। समझनेके लिये हम एक उदाहरण लेते हैं: धन विद्युतसे आविष्ट कुछ गोलियोंको यदि धागेसे पास २ लटका दिया जाय तो हम देखते हैं कि वे एक दूसरेको प्रतिसरित करती हुई दूर २ हट जाती हैं। सम्भवतः दो एक ही प्रकारके विद्युतसे आविष्ट सरकण्डेकी गोलियोंका प्रयोग हम सबने अपना विद्युतका अध्ययन

आरम्भ करते हुए देखा होगा। यद्यपि दोनोंके बीच न्यूटो-नियन-आकर्षण है तथापि प्रतिसरण उससे कहीं अधिक है जिससे वे दूर २ हटने लगती हैं। *विश्वके विषयमें विचार करते समय हमारे सामने (अधिक ठीक होगा रचियिताके सामने) यह प्रश्न भी है कि ब्रह्माण्डीय-प्रतिसरण न्यूटोनियन आकर्षणसे कम हो जाय और विश्व सिकुड़ने लगे। यहाँ गोलियोंमें भी ऐसा हो सकता है (प्रसङ्गेन ब्रह्माण्डीय-प्रतिसरण और विद्युत–आवेशमें कोई मौलिक समानता नहीं)। इस सम्बन्धमें कि विश्वका प्रसरण ही क्यों प्रारम्भ हुआ विद्वानोंमें मतभेद है। परन्तु यह देखना कठिन नहीं कि एक बार जो क्रिया प्रारम्भ हो जायगी वही चलती रहेगी, क्योंकि प्रसरणका अर्थ है घनत्वकी और साथ-में न्यूटोनियन आकर्षणकी कमी जिससे वह बढ़ता जायगा। दूसरी ओर यदि सिकुड़ना प्रारम्भ होता तो घनत्व तथा आकर्षण बढ़ते जाते और फलतः सिकुड़न भी। यहाँ, जैसा प्रायः होता है, हम देखते हैं कि गोलियोंका उदाहरण विश्वकी प्रतिमाका सच्चा प्रतिनिधि नहीं है, क्योंकि इसमें प्रतिसरण गोलियोंकी दूरी और उनके आवेशपर निर्भर है।

यह कहना कठिन है कि सृष्टिकी आदिसे अब तक विश्वका व्यास कितना बढ़ गया है। परन्तु ऐडिङ्गटन (Eddington) ने इष्टांश-यन्त्र-शास्त्र तथा सापेक्षता-वादकी सहायतासे विश्वके प्रारम्भिक अर्द्ध-व्यासके मूल्यमें ऋणाणु और धनकणके विन्यास तथा मात्रा, विश्वके मध्यमान घनत्व और उसमें ऋणाणु-धनकण युग्मकी संख्या ($१०^{७९}$ = १ के आगे ७९ शून्य) की गणना की है। साथ ही नीहारिकाओंकी दूरी तथा उनके पीछे हटनेके वेगमें जो सम्बन्ध है उसे भी गणना द्वारा मालूम किया है और प्रयोग द्वारा ज्ञात हुए फलोंसे पर्याप्त सामंजस्य रखता है। हाँ, यद्यपि विश्वका इस समय व्यास नहीं मालूम तथापि उसके प्रसरणकी दरका जानना कठिन नहीं। १३००००००० वर्षमें नीहारिकाओंके बीचका व्यवधान द्विगुणित हो जाता है—पृथ्वी भी इतनी परिवर्तनशीला कहाँ? यहाँ कुछ पुरानी चट्टानोंकी इतनी आयु है। यह एक विकट समस्या है, क्योंकि इस प्रकार विश्वकी आयु पृथ्वी अथवा सौर-परिवारसे भी कम ठहरती है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए दो सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। एक है स्पन्दमान-विश्व (Pulsating Universe) का जिसके अनुसार विश्व एक स्ववेष्टनकारिणी (Self winding) घड़ीकी कमानी (Spring) के समान बढ़ता और सिकुड़ता रहता है। यद्यपि यह सिद्धान्त हमको आने वाली प्रलयके भयसे सदाके लिए मुक्त कर देता है, तथापि अपने आप चाभी देने वाली घड़ियाँ कहीं देखनेमें नहीं आतीं—यह एक सन्देहजनक बात है। दूसरा सिद्धान्त युगान्तरमें आइन्स्टाइनके स्थायी-विश्वका होना तथा कुछ परिवर्तनोंके साथ ब्रह्माण्डीय-प्रतिशरणका बढ़ जाना। अपने उदाहरणमें हम आवेशहीन गोलियोंको बहुत काल तक स्थायी दशामें रख सकते हैं, परन्तु ज्योंही सब पर एकसा आवेश हो जायगा हमारा छोटा सा विश्व प्रसरण प्रारम्भ कर देगा। हो सकता है किसी 'व्यक्ति' के लिये हमारा विशाल विश्व केवल सरकण्डेकी गोलियोंका खेल हो।

आइन्स्टाइनके सापेक्षतावादसे तथा मिलने (Milne) के गतिवाद (Kinematical Theoy) से हम प्रसरणशाली विश्वके अस्तित्वको पाते हैं। मिलनेका सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षणको सर्वथा अनावश्यक समझता है—वह उसका किसी रूपमें भी प्रतिपादन नहीं करता; अन्यथा मिलनेका विश्व-रचना सम्बन्धी सिद्धान्त अधिक सीधा एवं सरल है। अस्तु, इस दिशामें अभी और अन्वेषणकी आवश्यकता है। जो हम जानते हैं, प्रयोगसे भी, वह है विश्वका प्रसरण—कुछ उसी तरहका जैसा फुलझड़ीसे निकलती हुई चिनगारियोंका। जिस प्रकार पृथ्वी पर सीधे चलनेसे हम वहीं पहुँच जाते हैं जहाँसे चले थे उसी प्रकार चार विस्तारमें वक्र विश्वमें प्रकाश किरणें सरल रेखा-गामिनी होनेके कारण वहीं आ सकती हैं जहाँसे चली थीं। इस तरह हम वर्त्तमानके साथ-साथ भूतको देखनेमें भी समर्थ हो सकते हैं, केवल वे प्रकाश किरणें इस लम्बी यात्रा-से थककर कुछ लोहित, कुछ मुर्झाई हुई होंगी। लोगोंने भूत देखे हैं। कहते हैं तुलसीदासने हनुमान और राम-

*क्योंकि तत्वोंके पिण्डोंमें धनकण हैं इसलिए उनके आपसके कारण पिण्ड एक सीमा तक ही स्थायी रहते हैं। यही कारण है कि तत्वोंकी संख्या सीमित है...। इसका उल्लेख हम आगे किसी प्रकरणमें करेंगे।

लक्ष्मणके दर्शन किये थे; परन्तु कुछ भविष्य-वाणी भी करते हैं ! जो भी हो, ये भौतिक विज्ञानकी सीमाके बाहरकी बातें हैं। जिस समय विश्वका अर्द्धव्यास सबसे छोटा था (वह स्थायी था) उस समय भी प्रकाशको पूरा चक्कर लगानेमें ६०००००००० वर्ष लगते थे और प्रत्येक १३००००००-००० वर्षमें वह दूना हो रहा है। किन्तु जैसे ही व्यास १·००३ गुना हुआ प्रसरणके कारण विश्वके चारों ओर जानेमें असमर्थ हो गया, और उसके बादका चला हुआ प्रकाश विश्वकी परिक्रमा कभी न कर सकेगा। यही नहीं, जब प्रसरण १·०७३ गुना हो गया तो प्रकाशके लिए आधा चक्कर लगाना भी असम्भव हो गया। इस प्रकार अब आधे विश्वके लिये हमारे यहाँसे प्रकाश का पहुँचना सम्भव नहीं और विश्वके बहुतसे भागके विषयमें हम भी कभी कुछ न जान सकेंगे। यहाँ भौंरा कमलमें बन्द हो गया है, वह बाहरके विषयमें कुछ न जान सकेगा, अब सूर्योदय भी न होगा। परन्तु अभी पंखुड़ियोंके भीतर ही जाननेको बहुत है।

विश्वका प्रसरण अथवा अणुका सिकुड़न पर्यायी हैं। एकका बढ़ना दूसरेके छोटे होनेके समान है। यहाँ अकबर का बीरबलको बराबर लम्बाईकी दो रेखाओंमेंसे एकको बिना मिटाये हुये छोटा करनेको कहना और बीरबलकी युक्ति स्मरण हो जाती है। यदि कोई विश्व-व्यापी प्राणी (या जिस नामसे भी उसे सम्बोधित करें) सत्ता रखता हो तो उसका शरीर विश्वके साथ फैलेगा। वह इसका अनुभव न करेगा, अतः उसके लिये अन्तर-नीहारिका-व्यवधान अविचल होगा, परन्तु हम सब--जीव जन्तु, गिरि, कन्दरा, वृक्ष, नदी, ग्रह, उपग्रह और सौर-परिवार तथा निहारिकाएं भी सिकुड़ती दृष्टि आयेंगी--'धराकी यह सिकुड़न आह कैसी है ?' पृथ्वीकी कक्षा दिन पर दिन छोटी होती जाएगी और उसके परिभ्रमण कालको स्थिर मानना भूल होगी। यह अपनी लम्बाई तथा कालकी इकाइयोंको ऐसा निश्चित कर लेगा कि प्रकाश-वेग अविचल रहे। उस पैमाने पर हमारी आयु घट रही है, समय जल्दी-जल्दी चल रहा है, और हमारे अनन्त वर्ष मिल कर 'विश्व-काल' का एक पल मात्र होंगे। उस समय हमारी दृष्टिसे विश्व फैल कर अनन्तमें लीन हो जायगा और विश्व-व्यापीकी दृष्टिमें हमारी लघुता अनस्तित्वके समान होगी।

'ऊमर तरु विशाल तव माया,
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया,
जीव चराचर जन्तु समाना,
भीतर बसहिं न जानहिं आना।'

तरु दिन पर दिन बढ़ रहा है, फल और जन्तु छोटे हो रहे हैं--छोटे और द्रुत-गामी, और एक दिन एक अस्पष्ट उद्वेग और फिर कुछ नहीं।

तीरन्दाज मछली

दक्षिणी आस्ट्रेलिया और इस्ट इण्डीजकी नदियोंमें 'टाक्सेटेस' नामक एक मछली पाई जाती है। इसका वज़न प्रायः एक सेर होता है और करीब एक फुट लंबी होती है। यह अपनी जीविका-उपार्जन एक बहुत ही अनोखे ढङ्गसे करती है--जब मछली देखती है कि नदीके किनारे उगे हुए पौधों पर कोई मक्खी या कीड़ा बैठा है तो वह चुपचाप उसके निकट जाती है और मुँहमें पानी भर कर इतने ज़ोरसे फेंकती है कि वह जीव तुरन्त ही पानीमें गिर पड़ता है। गिरते ही मछली आगे बढ़ कर मुंहसे निगल जाती है। मछलीका निशाना संभवतः कभी खाली नहीं जाता।

उड़ने वाली मछली

अटलांटिक महासागर आदिमें कुछ ऐसी मछलियाँ पायी जाती हैं जो समुद्रसे ५००-६०० फुटकी ऊँचाई तक उड़ सकती हैं। उनके पर लंबे और रंग बिरङ्गे होते हैं और देखनेमें तितलीकी भाँति लगती है। इनके मुँहकी बनावट मोटी और सुरक्षित होती है। यह मछलियाँ जहाज़के मस्तूलकी ऊँचाई तक उड़ती देखी जाती हैं। आरंभमें बहुत तेज़ीसे उड़ती हैं पर ऊपर जाकर धीरे २ इनकी गति शिथिल पड़ जाती है फिर भी इनके उड़नेकी रफ्तार १० मील प्रति घंटा है। हवाके झोंकेके विरुद्ध यह सफलता-पूर्वक उड़ती हैं। उस समय यह टेढ़ी मेढ़ी उड़ती हुई दिखलाई पड़ती हैं पर मौसम ठीक होने पर यह सीधी उड़ती हैं। उड़ते २ वे जहाज़के केबिनकी खिड़कियोंसे आ टकराती हैं अथवा कभी २ जहाज़के डेकोंपर भी आ पड़ती हैं।

वायुयानोंमें निपुणता

[ले०—श्री सुरेशशरण अग्रवाल, एम० एस-सी०]

वर्तमान युद्ध निस्संदेह वायुयानोंका युद्ध है। जिस राष्ट्रका हवाई-मार्गोंपर जितना अधिक अधिकार होगा उतनी ही उसकी विजयकी सम्भावना है। युद्धके आरम्भसे ही अंग्रेज़ी तथा जर्मनी वायु-शक्तियोंपर लोगोंने अपने विचार प्रकट किये हैं, परन्तु अधिकांशकी आलोचनाको निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता, सत्य तो यह है कि वास्तविक शक्तियोंका पूर्ण विवरण तो किसीको ज्ञात है नहीं, वे तो 'फ़ौजी-भेद' हैं जिन्हें 'वार-आफ़िस' वाले छुपा-छुपा कर रखते हैं, परन्तु जैसे युद्ध चलता जाता है तो इन शक्तियोंका आभास अनुमानतः लगाया जा सकता है। यह युद्ध सितम्बर १९३९ में आरम्भ हुआ था, इसके चार माह बाद ही यह पता चल गया कि यद्यपि अंग्रेज़ोंके पास लड़ने वाले वायुयानोंकी संख्या जर्मनोंकी अपेक्षा कम थी, किन्तु यदि दोनों ओरके वायुयानोंकी मशीनरीकी तुलना की जाय तो अंग्रेज़ी वायुयान उच्चकोटिके ठहरते थे, यह निर्णय उन्हीं जर्मनी वायुयानोंकी सहायतासे निकाला जा सका है जो इंग्लिस्तानमें पाये गये या जैसी कि अंग्रेज़ी-भेदी-दल जर्मनी वायुयानोंकी गुप्त सूचना पा सके। अब भी लन्दनके प्रसिद्ध अख़बार 'इन्जीनियर' के अनुसार संख्यामें अंग्रेज़ी शक्ति जर्मनीसे कम है। परन्तु वहांके वायुयान चालकोंकी निपुणता तथा कुशलता बारम्बार परीक्षाकी वेदी पर चढ़ाई गई है और कभी भी हीन नहीं पाई गई। बहुत बार अंग्रेज़ी वायुयान लड़ाईके बाद काफ़ी ख़राब अवस्थामें लौटे हैं, परन्तु विशेषता यह है कि वह अपने आधार-स्थानों (base) पर भलीभांति तथा सुगमतासे आ सके हैं, इस चतुराईके लिये बहुत मात्रामें श्रेय अंग्रेज़ी संचालकोंको जाना चाहिये किन्तु यह स्पष्ट है कि जो अद्भुत कार्य उन्होंने किये, वायुयानकी मशीनरीकी उत्तमताके बिना असम्भव थे।

भाग्यवश सितम्बर १९३९ में इङ्गलेण्डमें कई प्रकारके वायुयान थे जिनमें कई विशेष गुण थे और जो कुशलताके तल पर पहुँचनेके बाद थोड़ा समय बीते ही विशाल पैमाने पर बनाये जाना आरम्भ हुये थे। इनमें मुख्य थे विकर-सुपरमैरीन, 'स्पिटफ़ायर' और 'हुरीकेन', 'वेलिंगटन' नामका दूरगामी विध्वंसक और फिर ब्रिस्टलका विध्वंसक 'ब्लेन-हाइम' 'स्पिटफ़ायर' तथा 'हुरीकेन' तो पिछले वर्षोंके गवेषणात्मक कार्यके परिणाम थे और इन्हींके कारण इङ्गलैण्ड को इशनाइदर ट्राफ़ी प्राप्त हुई थी। कैसी विचित्र बात है कि इस प्रतियोगितामें भाग लेनेके लिये इङ्गलिस्तानकी सरकार क्रुद्ध थी परन्तु जब ट्राफ़ी आ गई तो सराहना करने लगी और इन विमानोंके निर्माणमें सबसे अधिक सहायता इंगलैण्डकी दानवीरा लेडी हाउस्टनने की थी।

'ब्लेनहाइम' की उत्पत्ति तथा प्रचारमें निजी सम्पत्ति तथा साहस विशेषकर सहायक हुआ है, 'वेलिंग्टन' की बाबत भी यही कहा जा सकता है। इङ्गलैण्डमें 'विकर्स' नामकी वायु-सामग्री बनानेमें प्रसिद्ध राथ कम्पनी है तो राथ कुशल वैज्ञानिक वैलिसकी चतुराईसे उन्होंने बड़े पैमाने पर बहुतसे जहाज़ तथा विध्वंसक बना डाले।

इङ्गलैंडकी जो वायुसेनाके विचारसे सितम्बर १९३९ में स्थिति थी वह भाग्यवश बुरी नहीं थी जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। इसमें व्यक्तिगत कुशलता अधिकतर सफलताका कारण है। परंतु इंगलैंडकी एयर मिनिस्ट्रीको भूल जाना अनुचित ही होगा। वहां का मन्त्रिमंडल भी इस ओर ध्यान जमाये था। आगकी चिन्गारी जो सितम्बर १९३९ में जल उठी उसकी आशा तो पहलेसे भी की जाती थी और सरकार एतदर्थ उदासीन नहीं थी। रणकी घोषणाके साथ शासकोंने पहला काम यह किया कि वायु-सामग्रीके नवीन नमूने थे उन्हींको standard ठहराया और यद्यपि नवीन नमूने थे अभी अंकुरसे वृक्ष रूपमें फलीभूत न हुए थे, सरकारने समस्त पुराने नमूनोंको ख़ारिज ठहरा कर नवीनके अनुसार वायु-सेनाकी प्रगतिकी आज्ञा दी। जिस समय इंगलैंडके शासकोंने यह पग लिया तो वहां की जनताने बड़ा दुन्द मचाया और सरकार पर दोषारोपण किया कि पुराने नमूने क्यों नहीं अपनाये गये, उनके आधार पर तो बहुमात्रामें रण-सामग्री तैयारकी जा सकती थी। सरकार ने विरोध सहन किया और उसका अपने पग पर जमे रहना लाभदायक ही हुआ। यदि वह विरोधियोंकी बात मान कर पुराने नमूनोंके आधार पर ही विशाल संख्यामें सामग्री की रचना करनेकी आज्ञा दे देती तो क्या होता? इसका 'हाँ या न' में उत्तर देना सहज नहीं है परन्तु यदि जर्मनोंके

अनुभवसे सीखें तब तो सरकारके पगकी प्रशंसा ही करनी होगी। जर्मनोंने निपुणताकी अपेक्षा मात्रा पर ज़्यादा ज़ोर दिया। उन्होंने १६३६-३७ में जो नमूने तैयार किये थे उन्हींको आधार बनाकर विशाल पैमाने पर युद्ध-सामग्री बनाना आरम्भ कर दी इससे जर्मनोंको शायद हानि ही हुई हो क्योंकि युद्धारम्भके दो वर्ष पूर्व कालमें ही हवाई-माल की उपजमें विशेष अनुसन्धान तथा उन्नति हुई। उसी कालमें 'वेलिंगटन' तथा 'ब्लेनहाइम' संसारके प्रमुख उपस्थित हुये। यही नहीं, बल्कि शक्ति-संचालकतायें तथा अन्य साधन भी उन्हीं दिनोंमें निकले। इनका युद्धके ऊपर जो प्रभाव पड़ा है वह किसीसे छिपा नहीं है। कई अंग्रेज़ी तथा अमेरिकन लेखक कहते हैं कि जर्मन जो इन नवीन उपायोंसे पिछड़ गये उसका उनको सदैव ध्यान रहता है और आजकल वह अतीतकी गल्तीको स्मरण करते हुये आगे उन्नति कर रहे हैं।

उपर्युक्तके समर्थनमें दृष्टान्त देना उपयुक्त ही होगा। जर्मनोंका पनडुब्बी विध्वंसक डाइवबाम्बर 'स्तूक' नामका है जिसमें ८७ मोनोप्लेन होते हैं। इस विध्वंसकने पौलैंड तथा फ्रांसकी सेनाओंके विरुद्ध काफ़ी सफलता पाई, परन्तु दोनों बार इन स्तूकोंके साथ (Anti-aircraft defence) पर्याप्त मात्रामें नहीं था। इन स्तूकोंका आध्यात्मिक प्रभाव तो बहुत पड़ा, किन्तु उनकी सफलता उनके मौलिक गुणोंकी अपेक्षा कम ही रही। वास्तवमें यह स्तूक अब आठ वर्ष पुराने हैं। जब फ्रांस पर जर्मन विजय पा चुके तो इङ्गलैण्ड पर आक्रमण किया और तब इन स्तूकोंकी भेंट एक अच्छे पैमानेपर तैयार की हुई हवाई सामग्रीसे हुई। अगस्त और सितम्बर १६४० में जर्मनोंने 'स्तूक' का प्रयोग इङ्गलैण्डके विरुद्ध बहुत मात्रामें किया। परन्तु अंग्रेज़ी 'स्पिटफ़ायर' और 'हुरीकेन' ने आधेसे अधिक स्तूक नष्ट कर दिये। यह तो एक रहस्यकी बात है कि डाइवबाम्बर में अंग्रेजोंने इस बीच क्या उन्नतिकी है—जैसे कि ब्लैकबर्नके 'स्कू' और हाकर 'हैनले' परन्तु यह ज्ञात है कि एक नवीन अमेरिकन नमूने-डगलसकी उच्चतम गति ३३० मील प्रति घंटा है, यानी प्रयागसे दिल्ली सवा घंटेसे भी कम समयमें। इसके विपरीत जर्मन 'स्तूक' की गति २४० मील प्रति घंटा है। इस उदाहरणसे हम अनुमान कर सकते हैं कि अंग्रेज़ी सरकारने जो निर्णय किया वह कहाँ तक सुन्दर था। वास्तवमें म्यूनिशमें जब योरपके दिग्गजों-की छोटी-सी सभा हुई थी तभीसे अंग्रेज़ी मशीन 'मात्रा-मात्रा' की ओर झुकने लगी थी। और अब जब कि कनाडा तथा अमेरिका भी उनकी मदद कर रहे हैं तब तो युद्ध-सामग्री मात्राके अभावको भी वे काफ़ी पूरा कर सके हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि इंगलैंडमें अब नये नमूनों की खोज ही बन्द हो गई है। नवीन विध्वंसक जैसे ब्रिस्टल-का 'बोफोर्त'। बोल्टन-पालका 'डिफ़ाएन्ट' और केयरीका 'फुलमार' मैदानमें आ चुके हैं और बहुतसे तैयारीमें होंगे, दुर्भाग्यवश यह अज्ञात है कि इन दिनोंमें जर्मनके तथा जापानके लोगोंने विध्वंसकोंमें क्या-क्या नवीन खोजें की हैं।

घरेलू डाक्टर

[संपादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरख प्रसाद, आदि]

आहार—आहारमें कई अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश रहते हैं, जिनमेंसे प्रोटीन, वसा, और कार्बोहाइड्रेट पर विचार किया जा चुका है। नीचे खनिज लवण और विटा-मिनों पर विचार किया जायगा।

खनिज लवण—भोजनमें थोड़ी-सी मात्रामें कैलसियम (चूनामें रहने वाली धातु), लोहा आदि खनिज पदार्थोंका रहना भी अनिवार्य है। भारतवर्षमें जो वस्तुएँ खानेमें काम आती हैं, उनमें ये खनिज कितनी मात्रामें रहते हैं, यह आगे दी गई सारिणीसे ज्ञात हो सकता है। वास्तवमें ये पदार्थ भी हमारे भोजनमें बड़ी विषम मात्रामें रहते हैं। यदि भोजन समतुलित है, तब तो ये सब पदार्थ शरीर को मिलते रहते हैं, नहीं तो इनमेंसे कुछका इतनी कमी हो जाती है कि शरीरमें व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणतः, आयो-डीनकी कमीसे घेघा (गलगंड) उत्पन्न हो जाता है (देखो 'आयोडीन')। स्थानाभावके कारण यहाँ पर विस्तारपूर्वक

इस पर नहीं विचार किया जा सकता कि किस पदार्थकी कमीसे क्या रोग होते हैं। ये बातें रोगोंके वर्णनमें मिलेंगी। नीचे केवल कुछ प्रधान खनिजों पर ही विचार किया गया है।

कैलसियम—कैलसियम दूधमें (मक्खन निकाले दूधमें भी), पनीरमें और पत्तोंवाली सागोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। जिस प्रकार बच्चोंको बड़ोंकी अपेक्षा भोजनमें प्रोटीनकी आवश्यकता अधिक मात्रामें होती है, उसी प्रकार उनको कैलसियम तथा अन्य खनिज लवणोंकी आवश्यकता भी अधिक होती है। कैलसियमसे हड्डी बनती है। चावलमें कैलसियम बहुत थोड़ी मात्रामें रहता है। इसलिये जो लोग चावल अधिक खाते हैं उनके भोजनमें कैलसियमकी कमी रह जाती है।

गर्भावस्थामें तथा दूध पिलानेके दिनोंमें स्त्रियोंको अधिक कैलसियम की आवश्यकता होती है। तीन महीनेके स्वस्थ स्तनपोषित बच्चेकी हड्डियोंमें बहुत-सा कैलसियम रहता है। यह सब कैलसियम बच्चा माँके रक्त और दूधसे ही प्राप्त करता है। यदि माताके भोजनमें कैलसियमकी मात्रा अधिक नहीं रहती है तो बच्चा माँकी हड्डियोंका कैलसियम यथासंभव खींच लेता है। ऐसी अवस्थामें माँ भी कमज़ोर हो जाती है और बच्चा भी कमज़ोर रह जाता है। गर्भावस्था तथा दूध पिलाने के दिनोंमें माँ के शरीरका बहुत अधिक कैलसियम निकलता रहता है, इसलिये इन दिनों माँको दूध खूब पीना चाहिये।

कुछ पुस्तकोंके अनुसार एक आदमीको प्रतिदिन ०·६८ ग्राम (१ ग्राम = १ माशा) कैलसियमकी आवश्यकता होती है और बच्चेको १·० ग्राम कैलसियम की। भारतवर्षमें जो लोग मशीनसे साफ किया हुआ चावल खाते हैं और प्रायः चावल ही खाकर रहते हैं, उनके भोजनमें कैलसियम-की मात्रा प्रतिदिन केवल ०·२० ग्राम रहती है। यह मात्रा बहुत थोड़ी है। बच्चोंके भोजनमें कैलसियमकी मात्रा ०·६० ग्रामसे अवश्य अधिक होनी चाहिये और गर्भावस्थामें तथा दूध पिलानेवाली माताके भोजनमें कैलसियमकी मात्रा इससे भी अधिक होनी चाहिये।

सबसे अधिक मात्रामें कैलसियम दूधसे प्राप्त किया जा सकता है। हरी तरकारियोंमें तथा ज्वारमें भी काफी कैलसियम होता है, किन्तु इन वस्तुओं से प्राप्त कैलसियम शरीरमें इतनी सुगमतासे नहीं ग्रहण होता है जितनी सुग-मतासे दूधका कैलसियम। जिन बच्चोंके शरीरमें कैलसियमकी कमी हो उनकी इस कमीको दूर करनेके लिये कैलसियम लैक्टेट (calcium lactate) देना चाहिये।

भारतवर्षमें पानके साथ जो चूना लोग खाते रहते हैं उससे भी कैलसियमकी कमीकी पूर्ति सम्भवतः हो जाती है, परन्तु निश्चित् रूपसे अभी नहीं कहा जा सकता कि इस चूनेका कितना भाग पच पाता है और पानके साथ चूना खाना शरीरके लिये कितना लाभदायक है।

फ़ॉसफ़ोरस—प्रायः कहा जाता है कि १·० ग्रामसे अधिक फॉसफोरस प्रतिदिन खाना चाहिये। कैच्चे अनाजोंमें फॉसफोरस पर्याप्त मात्रामें रहता है, परन्तु धोने और राँधने से उनका बहुत कुछ फ़ॉसफ़ोरस नष्ट हो जाता है। प्राकृतिक भोजनोंमें कैलसियमके साथ-साथ फॉसफोरस भी रहता है। पानके साथ चूना या यों ही चूना खाया जाय तो बात दूसरी है, क्योंकि चूनेमें फॉसफोरस नहीं रहता।

लोहा— हेमोग्लोबिन (haemoglobin) अर्थात् खूनका लाल रङ्ग, शरीरका एक बहुत आवश्यक पदार्थ है। यही फेफड़ोंसे ऑक्सिजनको तन्तुओं तक ले जाता है। इसमें लोहके लवण होते हैं। शरीरमें शुद्ध रक्त बननेके लिये भोजनमें लोहेका रहना परमावश्यक है। मलेरियामें या अङ्कुशा (हुक वर्म) के लग जाने पर जब रक्तका लाल अंश नष्ट हो जाता है तब भोजनमें लोहेकी आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ जाती है। बढ़ते हुये बच्चों तथा प्रौढ़ मनुष्योंके भोजनमें २० मिलीग्राम लोहा होना चाहिये। साधारणतया भारतके बहुतसे प्रान्तोंमें रहनेवाले मनुष्योंके भोजनमें लोहा इस मात्रासे थोड़ा कम भी हो तो काम चल जा सकता है। उपर्युक्त मात्रा कोनूर (दक्षिणी भारत) की प्रयोगशाला के प्रयोगोंके फल-स्वरूप निर्धारितकी गई है। यह न समझना चाहिये कि लोहेका चूर खानेसे लोहेकी कमी पूरी हो जायगी। ऐसा लोहा पचेगा ही नहीं। भोज्य पदार्थोंमें जो लोहा रहता है वह तरह-तरहके लवणोंके रूपमें रहता है। ऐसे भोज्य-पदार्थों-में से भी कुछका लोहा तो शरीरमें आसानीसे पच जाता है, लेकिन बहुत-से पदार्थोंका लोहा कठिनतासे पचता है। अनाज, दाल और गोश्तका लोहा शरीर आसानीसे पचा लेता है किन्तु शाक-तरकारियोंका लोहा आसानीसे नहीं

पचती। यदि दिन भरके भोजनमें कुल मिलाकर २० मिलीग्रामसे अधिक लोहा हो तो समझना चाहिये कि भोजनमें शरीरकी आवश्यकताके लिये पर्याप्त लोहा है।

कई प्रकारकी रक्ताल्पतामें अधिक लोहावाले भोजनके देनेके अतिरिक्त लोहेके लवणोंसे बनी ओषधि देना लाभदायक होता है। रक्ताल्पतासे बचनेके लिये भोजनमें लोहेकी मात्रा अधिक होनी चाहिये। गर्भावस्थामें स्त्रियोंको रक्ताल्पता-रोगके होनेका विशेष भय रहता है।

विटैमिन; विटैमिन ए—भोजनमें कुछ विशेष पदार्थ भी होते हैं जो रहते तो हैं अति अल्प मात्रामें, परन्तु जिनका रहना है अत्यन्त आवश्यक। इनके अभावमें तरह-तरहके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनका आविष्कार कुछ ही वर्षोंसे हुआ है। इनको खाद्योज या विटैमिन (vitamin) कहते हैं। कई तरहके विटैमिनोंका पता चला है जिन्हें अंग्रेज़ीके अक्षर ए, बी, सी, आदिसे सूचित करते हैं। पशुजन्य वसा, बिना मक्खन निकाला ताज़ा दूध, दही, मक्खन, बिना मिलावटका घी, अंडेकी ज़र्दी, बकरी-भेड़, आदिका यकृत (जिगर), मछली, इत्यादि पदार्थोंमें विटैमिन ए बहुतायतसे पाया जाता है। सबसे अधिक मात्रामें यह कुछ मछलियोंके यकृतके तेलमें, जैसे कॉड लिवर आयल तथा हेलीबट लिवर आयलमें, रहता है। (ये कॉड और हेलीबट नामक मछलियोंके यकृतसे निकले तेल हैं।) शाक-तरकारियोंमें विटैमिन ए अधिक मात्रामें नहीं मिलता, किन्तु कैरोटीन (carotene) नामका पदार्थ जो कुछ शाक-तरकारियों और फलोंमें रहता है शरीरमें पहुँचकर विटैमिन ए का कार्य करता है। इसलिये शाक-तरकारियोंके भोजनसे भी विटैमिन ए की पूर्ति हो सकती है। पत्तेवाली शाक-तरकारियाँ जैसे पालक, लेट्यूस, पातगोभी (करमकल्ला), धनिया, इत्यादिकी पत्तियाँ और पके हुये फल जैसे आम, पपीता, टमाटर, संतरा (नारंगी) इत्यादिमें कैरोटीन बहुतायतसे होता है। गाजरमें भी यह बहुत रहता है। वस्तुतः गाजरको अँग्रेज़ीमें कैरेट (carrot) कहते हैं और कैरोटीन शब्द इसीसे निकला है।

ग्राम और मिलीग्राम वैज्ञानिक तौलें हैं। १ ग्राम लगभग १ माशेके बराबर होता है। १००० मिलीग्राम = १ ग्राम। भोजनोंमें विटैमिन ए तथा कैरोटीनकी मात्रा इतनी कम रहती है (और शरीरमें इनकी आवश्यकता इतनी सूक्ष्म मात्रासे पूरी हो जाती है) कि माशा, रत्ती या मिलीग्राममें इनका आँकना असम्भव है। इसलिये इनकी मात्रा दिखानेके लिये अन्तर-राष्ट्रीय एकाई काममें लाई जाती है। शरीरको विटैमिन ए की कितनी आवश्यकता होती है इसके विषयमें अभी तक पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है। किन्तु समतुलित भोजनके लिये विटैमिन ए की कम-से-कम ३,००० अन्तर-राष्ट्रीय एकाई अवश्य होनी चाहिये। पाश्चात्य देशोंमें तो अधिकतर लोग मांस तथा अंडा खाते हैं, इसलिये उनके लिए विटैमिन ए की पूर्ति पशुजन्य पदार्थोंसे हो जाती है। मांस, मक्खन, मछलीका तेल तथा अन्य पशुजन्य पदार्थोंको भोजनमें रखनेसे खर्चा अधिक
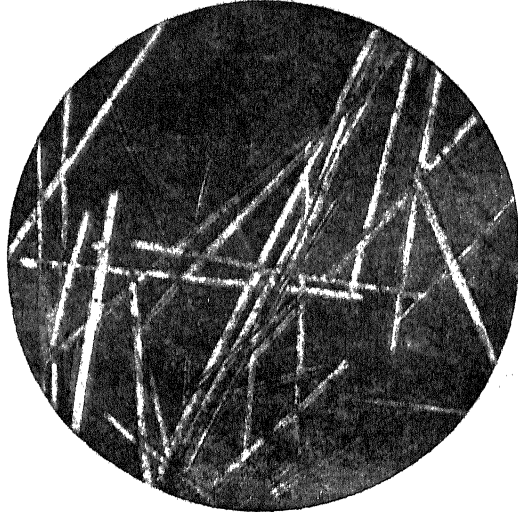
विटैमिन ए के रवे

विटैमिन ए अब शुद्ध रूपमें भी अलग किया जा सकता है।

पड़ता है। भारतवर्षमें तो कम खर्चेसे पर्याप्त मात्रामें विटैमिन ए प्राप्त करनेके लिये हरे पत्तोंका साग खूब खाना चाहिये। उदाहरणतः १॥ छटाँक चौराईके सागमें ३,००० अंतर-राष्ट्रीय एकाइयाँ विटैमिन ए की (कैरोटीनके रूपमें) रहती हैं। इतना प्रौढ़ अवस्थाके व्यक्तिके लिके पर्याप्त है। इसी प्रकार बच्चोंकी आवश्यकता, जो कुछ अधिक होती है, हरे पत्तोंके सागके खानेसे पूरी हो सकती है। बहुत छोटे

बच्चों तथा बीमार लड़कोंको विटैमिन ए कॉडलिवर ऑयलके रूपमें दिया जा सकता है। यदि बच्चोंको प्रतिदिन भोजनमें थोड़ी मात्रामें कॉड लिवर ऑयल दिया जाय तो उनका भोजन और अधिक पौष्टिक हो जाय।

खानेकी चीज़ोंमें विटैमिन ए की मात्रा कई एक कारणों से बढ़ और घट जाती है। दूध और मक्खनमें विटैमिन ए की मात्रा जानवरके भोजन पर निर्भर है; यूरोपमें प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ कि जब गायें हरी घास—जिसमें कैरोटीन बहुत अधिक होता है—अधिक खाती हैं तो उनके दूधमें विटैमिन ए की मात्रा बहुत बढ़ जाती है; और गायों-को जब भूसे पर रहना पड़ता है तो विटैमिन ए की मात्रा कम हो जाती है। हरी शाक-तरकारियाँ जितनी ही अधिक हरी होंगी उनमें उतना ही अधिक कैरोटीन होगा। इसलिये शाक-तरकारी जितनी ही अधिक हरी तथा तुरन्तकी तोड़ी होगी वह उतनी ही अधिक लाभदायक होगी। साधारणतः पकानेसे कैरोटीन नष्ट नहीं होता है।

विटैमिन ए की रासायनिक बनावट।

विटैमिन ए की रासायनिक बनावट बड़ी जटिल है। प्रत्येक अणुमें अनेक परमाणु होते हैं जो इस चित्रमें गोल बिंदिओंसे सूचित किये गये हैं। इस जटिलताका बोध तब सुगमतासे होगा जब ध्यान रक्खा जायगा कि नमकके अणुमें केवल दो परमाणु होते हैं और पानीके अणुमें केवल तीन परमाणु।

सारिणीमें दिखाया गया है कि खानेकी वस्तुओंमें कितनी-कितनी मात्रायें विटैमिन ए या कैरोटीनकी रहती हैं। यह मात्रा कुछ चीज़ोंके लिये बहुत अधिक है और कुछ चीज़ोंके लिये बहुत कम। गणना करनेके लिये इन दोनों अतिवाली वस्तुओंको छोड़कर मध्यकी वस्तुओंके पढ़नेसे हिसाब लगाना अधिक उत्तम होगा। यदि किसी आदमी-को यह न मालूम हो कि किस पदार्थमें कितना विटैमिन है तो उसे केवल इतनी बात याद रखनी चाहिये कि सारी हरे पत्तेवाली शाक-तरकारियोंमें कैरोटीन बहुत अधिक होता है तथा अन्य तरकारियों और दलोंमें कम।

भारतवर्षमें लोगोंके भोजनमें विटैमिन ए की मात्रा प्रायः कम ही रहती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे इसकी मात्रा पूरी हो जाया करे। विटैमिन ए की कमीके कारण शरीरमें क्या-क्या रोग उत्पन्न हो जाते हैं यह आगे बताया जायगा।

विटैमिन बी— विटैमिन बी बेरी-बेरी रोगकी दवाके

नामसे भी प्रसिद्ध है। विटैमिन बी बिना छिले अनाजों, दालों, अंडों, फलों तथा बहुत-सी तर-कारियों, यकृतों, तथा मांश-पेशियों और दूधमें पाया जाता है। विटैमिन बी के दो भेद माने जाते हैं, एक तो विटैमिन बी$_1$ और दूसरा विटैमिन बी$_2$। दोनोंके गुणोंमें थोड़ा-बहुत अंतर है। मशीनसे साफ़ किये हुये चावलमें विटैमिन बी$_1$ की कमी हो जाती है और इसी कमीके कारण बेरी-बेरी रोग हो जाता है (देखो बेरी-बेरी)। भारतवर्षके उन प्रांतोंमें जहाँ चावल अधिक खाया जाता है बेरी-बेरी रोग प्रायः इसी मिलके साफ़ किये चावलके खानेके कारण होता है। पुराने ढंगसे ढेकीमें कूट कर धानकी भूसी छुड़ाने पर चावलमें यह विटैमिन रह जाता है और इसलिये ऐसा चावल मिलके साफ़ किये (पालिश किये) चावलसे कहीं अधिक उपयोगी है।

स्कूलके लड़कों तथा आदमियोंको विटैमिन बी$_1$ की लगभग ३०० अंतर-राष्ट्रीय एकाइयोंकी आवश्यकता होती है। आप बड़ी आसानीसे जान सकते हैं कि आपके भोजनमें इस विटैमिनकी कितनी कमी है और फिर उसके अनुसार अपने भोजनमें कुछ परिवर्तन कर सकते हैं। यदि २ छटांक मशीनसे साफ़ न किया गया अनाज, ३ छटांक पत्तेवाली तथा अन्य तरकारियाँ और १-१½ छटांक दाल

प्रति दिन खाया जाय तो भोजनमें पर्याप्त मात्रामें विटैमिन बी$_1$ रहेगा। इसके बाद यदि आपका जी चाहे तो मशीनसे साफ़ किया हुआ चावल भी आप खा सकते हैं। यदि आप शाक-तरकारियाँ, दाल तथा फल कम खाते हैं तो भोजनमें मशीनसे साफ़ किया हुआ चावल बहुत कम रहना चाहिये। यदि आपके भोजनमें $\frac{1}{10}$ भाग केवल चावल ही है तो भी कोई हानि नहीं, लेकिन वह चावल देहाती ढंगसे धानसे निकाला हुआ होना चाहिये, मिलका साफ़ किया हुआ नहीं। पकानेके पहले चावलको कई बार धोनेसे विटैमिन बी$_1$ का बहुत-सा भाग धोवनके साथ निकल जाता है। साथ ही, बहुत धोनेसे खनिज लवण भी बहुत कुछ निकल जाते हैं। जिन चावलोंमें बहुत अधिक कना (चावलकी धूलि) होता है या कीड़े होते हैं उनको कई बार धोना पड़ता है। ग़रीब आदमी निर्धनताके कारण ऐसा ही चावल लेते हैं और उसे अधिक धोकर खाते हैं। उनके खानेमें चावलकी मात्रा अधिक होती है और खनिज पदार्थवाले अन्य भोज्य पदार्थोंकी बहुत कम। इसलिये उनके शरीरको बहुतसे खनिज लवणोंकी आवश्यकता बनी ही रह जाती है।

दूधमें प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ, तथा अन्य विटैमिन तो बहुत अधिक मात्रामें होते हैं किन्तु विटैमिन बी$_1$ अधिक नहीं होता।

विटैमिन बी$_2$ का भोजनमें होना बहुत आवश्यक है। वस्तुतः विटैमिन बी$_2$ कोई एक विटैमिन नहीं है बल्कि कई विटैमिनोंका मिश्रण है। सारिणीके द्वारा आपको ज्ञात हो सकता है कि भोज्य पदार्थोंमें यह किस मात्रामें रहता है। अनाजोंमें यह बहुत कम और मिलके साफ़ किये हुये चावलमें तो बहुत ही कम रहता है। कुछ दालोंमें यह बहुत अधिक मात्रामें रहता है। इनमें उड़दकी दाल, चना और अरहर मुख्य हैं। कुछ पत्तोवाले शाकों तथा अन्य तरकारियोंमें भी यह काफ़ी होता है, लेकिन फलोंमें इसकी मात्रा अधिक नहीं होती। सबसे अधिक मात्रामें यह खमीर (Yeast) में होता है। दूधसे प्राप्त वस्तुओं (मलाई, मठा, दही और पनीर), चर्बीरहित मांस, यकृत, अंडे, दाल और हरी तरकारियोंमें भी यह पर्याप्त मात्रामें मिलता है। इस बातका काफी सबूत मिला है कि गरीबोंके भोजनमें, जिसमें दूध या मांस नहीं रहता, या बहुत कम रहता है, बी$_2$ विटैमिन-समूहोंकी बड़ी कमी रहती है।

मुँहके कोनों पर जो घाव हो जाते हैं या जीभ पर जो छाले पड़ जाते हैं संभवतः बी$_2$ समूहके विटैमिनोंकी कमीके कारण होते हैं। ये रोग बहुधा उन लोगोंको होते हैं जिनके भोजनमें मशीनसे छाँटा चावल ही अधिक मात्रामें रहता है। यदि ऐसे व्यक्तियोंको प्रतिदिन दो-तीन तोला सुखाया हुआ खमीर, या डेढ़पावसे आधसेर तक दूध, या दो-तीन अंडे खानेको दिया जाय तो रोग शीघ्र दूर हो जाता है। यदि साथ ही आहारको अन्य बातोंमें भी सम-तुलित रक्खा जाय तो रोग और भी शीघ्र अच्छा होता है। (खमीर उस कुछ पीले-पीले फेनदार लसदार वस्तुको कहते हैं जो पानीमें पतला साने आटे, या गुड़, शक्कर, आदि पर मीठे तरल पदार्थोंके ऊपर जम जाता है, विशेष कर यदि आटे या शीरेमें थोड़ासा खमीर, जामनके रूपमें, डाल दिया जाय।)

विटैमिन सी— विटैमिन सी (vitamin C) को ऐस्कौर्बिक ऐसिड (ascorbic acid) भी कहते हैं। इस विटैमिनसे स्कर्वी (scurvy) नामक रोगका निवारण होता है (स्कर्वी रक्तका एक रोग है जिसके परिणाम-स्वरूप मसूड़े सूज आते हैं, शरीरमें नीले चकत्ते पड़ जाते हैं और बड़ा दुर्बलता जान पड़ती है; यह रोग बहुधा समुद्री नाविकोंको होता है जो महीनों तक हरी तरकारी आदि नहीं पा सकते)। तरकारियोंमें से उनमें यह विटैमिन अधिक मात्रामें रहता है जो हरी पत्तीके रूपमें होती हैं और जिन्हें लोग साधारणतः साग कहते हैं, जैसे पालक, चौराई, आदि। परन्तु जब तरकारियाँ बासी हो जाती हैं और सूख जाती हैं तो आरम्भमें उपस्थित विटैमिन सी का अधिकांश नष्ट हो जाता है।

अनाजोंमें उनकी साधारण अवस्थामें, विटैमिन सी कुछ भी नहीं रहता। परन्तु यदि उनको कुछ समय तक पानीसे तर रक्खा जाय और उनमें अंकुर निकलने लगे तो अनाजके भीतर और हरे-हरे अंकुरोंमें विटैमिन सी बन जाता है। अंकुर उत्पन्न करनेकी सबसे अच्छी रीति यह है :—

चना, गेहूँ या बिना दली दाल (मटर, अरहर, मसूर

आदि) को पहले पानीमें २४ घण्टे तक भिगा देना चाहिये और तब भींगे कपड़े या सीड़ वाली भूमि पर फैला कर उसे ऊपरसे गीले कपड़े या बोरेसे ढक देना चाहिये । यह कपड़ा या बोरा सूखने न पावे । इसके लिये उस पर समय-समय पर पानी छिड़कते रहना चाहिये । दो या तीन दिनमें अंकुर निकल आवेंगे और अनाज खाने योग्य हो जायगा । ऐसे अनाजको कच्चा खाना चाहिये, या, यदि उबाला भी जाय तो उसे १० मिनटसे अधिक समय तक न पकाना चाहिये ।

जब हरी तरकारियाँ और ताज़े फल न मिल सकें तो अंकुर उगे अनाजसे विटैमिन सी की पूर्ति बड़े सस्तेमें हो सकती है । अंकुर उगे दालोंमें (चना, मूँग आदिमें) १०० ग्राम पीछे १० या १५ मिलीग्राम तक विटैमिन सी रह सकता है ।

देहाती मसल भी है "जो खाय चना, सो रहै बना", परन्तु पूर्ण लाभके लिये चनेको इतने समय तक तर रखना चाहिये कि उसमें अंकुर निकल आवें ।

एक बहुत सस्ता और सुगमतासे मिल सकनेवाला फल है जिसमें विटैमिन-सी बहुत प्रचुर मात्रामें रहता है । यह है आँवला (संस्कृत आमलक, लैटिन Phyllanthus emblica, Linn) । सम्भवतः आँवलेमें जितनी अधिक मात्रामें विटैमिन सी रहता है उतना किसी अन्य फलमें नहीं (देखो आँवला) । आँवला भारतीय जंगलोंमें भी खूब होता है और जनवरीसे अप्रैल तक जितना चाहे उतना आँवला मिल सकता है । ताज़े आँवलेके रसमें नारङ्गीके रसकी अपेक्षा बीस गुना अधिक विटैमिन सी रहता है । एक आँवलेमें डेढ़-दो संतरों (बड़ी नारङ्गी) के बराबर विटैमिन सी रहता है ।

फलों और तरकारियोंको गरम करने, पकाने, या सुखाने से उनके विटैमिन सी का अधिकांश, या प्रायः कुल अंश, नष्ट हो जाता है । परन्तु आँवला इस विषयका अपवाद है; पकाने पर भी इसका सब विटैमिन नष्ट नहीं होता । इसके तीन कारण हैं । एक तो आँवलेमें इतना विटैमिन सी रहता है कि कुछ नष्ट होने पर भी काफी विटैमिन बचा रह जाता है । दूसरे, आँवलेमें खटास होती है और खटास विटैमिन सी की बहुत कुछ रक्षा करती है, उसको नष्ट नहीं होने देती । तीसरे, आँवलेमें कुछ अन्य पदार्थ भी हैं जो विटैमिन सी की बहुत कुछ रक्षा करते है । इसीलिये आँवले के मुरब्बेमें भी कुछ विटैमिन सी रह जाता है । आँवलेको सुखा कर रखनेसे विटैमिन सी बहुत-कुछ बचा रह जाता है । सुखानेकी अच्छी रीति यह है कि इसे दरकच लिया जाय (हल्के हाथ कूट लिया जाय) या इसका भरता-सा बना लिया जाय और धूपमें डालकर चटपट सुखा लिया जाय । सूख जाने पर गूदेको बारीक पीस लिया जाय । इस प्रकार बनाये गये चूर्णमें प्रति ग्राम १० से १६ मिलीग्राम विटैमिन सी रहता है । विशेष रीतियोंसे सुखाने पर विटैमिन सी की और अधिक मात्रा सुरक्षित रह जाती है, परन्तु उन रीतियोंके वर्णनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है । चूर्णके रक्खे रहने पर धीरे-धीरे विटैमिन सी नष्ट होता रहता है, विशेष कर यदि चूर्ण नम (सीड़ वाले) या गरम स्थानमें पड़ा रहे । परन्तु तो भी, साधारण रीतिसे रक्खे रहने पर, आँवला-चूर्ण महीनों तक उपयोगी सिद्ध होता है । यथा-सम्भव ऐसे चूर्णको सूखे और ठंढे स्थानमें रखना चाहिये ।

आँवलेको रखनेके लिये एक दूसरी विधि यह है कि उसमें नमक मिला लिया जाय । इसके लिये आँवलोंको पहले खौलते पानीमें ६-७ मिनट तक डुबा देना चाहिये और पीछे उन्हें नमकके खूब गाढ़े घोलमें रख देना चाहिये । बस। इस रीतिसे आँवलेका विटैमिन बहुत-कुछ सुरक्षित रह जाता है । जब आँवलोंको बहुत देर तक उबाला जाता है और फिर घी या तेलमें तला जाता है और नमक-मसाला डाला जाता है, तो अधिकांश विटैमिन नष्ट हो जाता है ।

अत्यन्त प्राचीनकालसे हमारे देशवासी आँवलाके गुणों को जानते रहे हैं । कई एक आयुर्वेदिक ओषधियों तथा शक्ति-वर्धक प्राशोंमें यह पड़ता है । आँवला-चूर्णसे बनी टिकियाएँ अब फौजी सिपाहियोंको विटैमिन सी प्रदान करनेके काममें आ रही हैं । १६१४-१८ की लड़ाईमें मेसोपोटेमिया तथा अन्य रण-क्षेत्रोंमें, जहाँ हरी तरकारियों की कमी थी या जहाँ वे मिल ही नहीं सकती थीं, अनेक सिपाहियोंको स्कर्वी-रोग हो गया था । वर्तमान समरमें आँवला-चूर्णकी टिकियाओंके प्रयोगके कारण आशा की जाती है कि कहीं भी स्कर्वी न हो पायेगी और इस प्रकार सैनिकों का स्वास्थ्य सुरक्षित रह सकेगा । १६४० में जब हिसार

प्रान्त (पञ्जाब) में दुर्भिक्षके समय स्कर्वी प्रचण्ड रूप धारण कर रही थी तब ताज़ा आँवला इस रोगका अचूक इलाज सिद्ध हुआ।

पाठशालाओंके विद्यार्थी और प्रौढ़ व्यक्तियोंके समतुलित आहारमें प्रतिदिन ३०-५० मिलीग्रामकी मात्रामें विटैमिन सी चाहिये। विटैमिन सी गरमीसे नष्ट हो जाती है; इसलिये तरकारी पकानेमें बहुत-कुछ विटैमिन सी नष्ट हो जाता है, विशेषकर यदि उसको बहुत देर तक आँच पर रक्खा जाय। तो भी यदि भोजनके समय कुछ छटाँक ताज़ा फल और थोड़ी-बहुत हरी तरकारी, विशेषकर पत्तीवाला साग, रहे तो विटैमिन सी की आवश्यकता पूरी हो जायगी। ऐसे बच्चे जिन्हें बाहरका दूध खौला कर पिलाया जाता है या बोतल बन्द दुग्ध-चूर्णसे दूध तैयार करके पिलाया जाता है, विटैमिन सी पर्याप्त मात्रामें नहीं पाते। उनको अवश्य थोड़ा नारंगीका रस या अन्य ताज़े फलका रस भी मिलना चाहिये।

विटैमिन डी— विटैमिन डी वह विटैमिन है जो अस्थि-दौर्बल्य (रिकेट्स और ऑस्टियोमैलेशिया) को दूर रखता है। यह पशुओंके यकृत (जिगर, liver) और उनके यकृतसे निकले तेलमें, अंडोंकी ज़र्दी (पीले भाग) में, और दूध, मक्खन तथा घी में रहता है, परन्तु यह दूध और मक्खन आदि ऐसी गाय-भैंसोंसे प्राप्त होना चाहिये जो हरी वनस्पति भी खाती हों और धूपमें भी निकलती हों। घरमें बन्द रहनेवाली या केवल भूसा और खली खाकर पली गायके दूधमें विटैमिन डी प्रायः नहीं रहता। सबसे अधिक मात्रामें यह विटैमिन मछलियोंके यकृतसे मिलता है। बच्चोंका अस्थिदौर्बल्य (रिकेट्स) और बड़ोंका अस्थि-दौर्बल्य (ऑस्टियोमैलेशिया) दोनों गुरु रोग हैं और इनके लक्षण अन्यत्र दिये जा चुके हैं (देखो अस्थि-दौर्बल्य)।

मनुष्यकी त्वचामें सूर्य-किरणोंके लगने पर विटैमिन डी उत्पन्न होता है। यही कारण है कि रिकेट्स बहुधा उन बच्चोंको होता है जो अँधेरे घरोंमें रहते हैं और ऑस्टियो-मैलेशिया बहुधा उन स्त्रियोंको होता है जो सदा परदेमें रहती हैं। सम्भवतः रिकेट्स बहुत बच्चोंको रहता है। परन्तु कम मात्रामें रहनेके कारण उसकी ठीक पहचान लोगोंको नहीं हो पाती। तो भी उपाय इतना सरल और सस्ता है कि इससे अधिक सरल कुछ हो ही नहीं सकता; कुछ खर्च भी नहीं होता। बहुतसे घरोंमें जाड़ेके दिनोंमें बच्चोंको तेल लगानेके बाद धूपमें सुलानेकी प्रथा है। ऐसा करना बहुत स्वास्थ्य-प्रद है। केवल इसी का ध्यान रखना चाहिये कि सूर्यके प्रकाशसे आँखें न खराब होने पावें। गरमीके दिनोंमें प्रौढोंको धूपमें रहनेमें कुछ कठिनाई हो सकती है, परन्तु उन दिनों भी, प्रातःकाल स्नानके बाद, धूपमें थोड़े समय प्रायः नंगे बदन रहनेमें कुछ भी असुविधा नहीं। औषधियोंके रूपमें विटैमिन डी प्राप्त करनेमें पैसा खर्च होता है।

विटैमिन डी, कैलसियम और फ़ास्फ़ोरसमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि विटैमिन डी प्रायः न मिले और साथ ही कैलसियम भी न मिले तो रिकेट्स आदिका डर बहुत बढ़ जाता है। इसीलिये कैलसियमकी मात्रा पर भी ध्यान रखना परमावश्यक है। ऑस्टियोमैलेशियाका प्रथम लक्षण यही है कि हड्डियोंमें पीड़ा जान पड़ती है और रोग बहुधा गर्भवती स्त्रियोंमें उत्पन्न होता है, जब पेटके बच्चेकी हड्डियोंके बननेमें कैलसियमकी विशेष आवश्यकता रहती है। बच्चा पैदा हो जानेके बाद रोग दब जाता है, परन्तु बादके गर्भधारणोंमें यह रोग अधिकाधिक उग्र रूप धारण करता है। अन्तमें अभागी रोगीकी हड्डियाँ इतनी टेढ़ी हो जाती हैं कि वह सीधी खड़ी नहीं हो पाती। साथ ही बहुधा बस्तिगह्वरकी हड्डियाँ इतनी टेढ़ी हो जाती हैं कि फिर बच्चा आप-से-आप पेटसे बाहर नहीं निकल पाता।

बच्चोंको खूब विटैमिन डी मिलते रहनेसे सुंदर और दृढ़ दाँत बननेमें सहायता मिलती है। गर्भिणी स्त्रियोंको बराबर विटामिन डी पर्याप्त मात्रामें मिलते रहनेसे माँ को तो लाभ होता ही है, पेटके बच्चेके भावी स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

साधारण मछलियोंकी अपेक्षा कॉड (cod) नामक समुद्री मछलीकी यकृतके तेलमें अधिक विटैमिन डी रहता है। प्रयोगशालाओंमें विटैमिन डी अलगसे भी बन सकता है। परन्तु तब यह औषधिके रूपमें, नपी-तुली मात्रामें ही, खाया जा सकता है।

पकानेका परिणाम— कुछ लोगोंकी धारणा है कि यथासंभव आहार कच्चा (बिना आग पर पकाये ही) खाना चाहिये। वे समझते हैं कि पकानेसे आहारका पोषक

गुण बहुत-कुछ मर जाता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। विटैमिन सी थोड़ी-सी ही गरमी पाकर नष्ट हो जाता है, इसलिए यह वांछनीय है कि राँधे भोजनके साथ थोड़ा-सा ताज़ा फल ऐसा रहे जो बिना राँधे ही खाया जाता हो। साधारण रीतिसे राँधने (पकाने) से प्रोटीन, वसा और कारबो-हाइड्रेटोंको कोई हानि नहीं होती, चाहे अन्न हो, चाहे मांस। तरकारियोंके राँधनेमें थोड़ेसे प्रोटीन का क्षय अवश्य होता है, विशेष कर जब नमक पहले ही डाल दिया जाता है। परन्तु तरकारियोंमें प्रोटीन यों भी कम रहता है। जब राँधनेके पहले आहार सामग्रीको खूब धोया जाता है तो बहुत-सा खनिज पदार्थ और बी समूहके विटैमिन बह जाते हैं। राँधनेसे ये पदार्थ उतना नष्ट नहीं होते जितना धोने-से। इसलिये खाद्य पदार्थोंको बहुत सफाईसे रखना चाहिये जिसमें राँधनेके पहले केवल एक बार धोना पड़े; इस धोने-में भी बहुत समय न लगाना चाहिये। तरकारियोंको पहले अच्छी तरह धोकर सफाईसे काटना चाहिये, जिसमें काटने-के बाद उन्हें धोना ही न पड़े।

निम्न श्रेणीके चावलको अकसर कई बार और खूब मल-मल कर धोना पड़ता है। इस प्रकार धोये चावलमें विटैमिन बी और खनिज पदार्थ बहुत ही कम बच पाते हैं।

तलने और छौंकने (या बघारने) से आहार-पदार्थोंकी पोषक शक्तिमें विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यदि घी या तेल तलनेके लिये प्रयुक्त होता है तो घी आदिके विटैमिन ए में से कुछ अंश अवश्य नष्ट हो जाता है, परन्तु यह विटैमिन तो अन्य पदार्थोंसे पर्याप्त मात्रामें सुगमतासे मिल जाता है। साधारण रीतिसे राँधने पर आहार-पदार्थोंका विटैमिन ए प्रायः कुल-का-कुल सुरक्षित रह जाता है। तरकारियोंमें सोडा (सोडियम कारबोनेट या वाशिंग सोडा) डाल देनेसे विटैमिन ए अधिक मात्रामें नष्ट हो जाता है। कुछ लोग कुछ भोजनोंमें थोड़ा-सा सोडा इस लिये डाल देते हैं कि तरकारियोंका हरापन सुरक्षित रहे, या इसलिये कि दाल गल जाय। सोडा क्षारमय होता है। इसीसे इससे विटैमिन नष्ट हो जाता है। खटाई डालनेसे विटैमिन अधिक सुरक्षित रहता है। इसलिये यदि तरकारी आदिमें खटाई डालनी हो तो आरंभमें ही डाल देनी चाहिये, परंतु तब बरतनमें राँगेकी कलई हो, या बरतन लोहेका हो, अन्यथा पीतल आदिके बरतनोंसे कुछ ताँबा और जस्ताके घुल आनेसे स्वाद बिगड़ जाता है और भोजन अस्वास्थ्यकर भी हो जाता है।

चावल या तरकारियोंको पानीमें उबाल कर पानी फेंक देनेकी रीति अत्यन्त हानिकर है। इससे प्रायः सभी खनिज पदार्थ और विटैमिन निकल जाता है। धनी लोग चावलको उबाल कर माँड फेंक दें तो कोई बात नहीं है क्योंकि वे चावल बहुत कम मात्रामें खाते हैं और 'संरक्षक आहार' (नीचे देखो) बहुत अधिक मात्रामें। इसलिये उनकी दशा-में खनिज और विटैमिन आदिकी पूर्ति अन्य रीतिसे हो जाती है, परन्तु जो संरक्षक भोजन थोड़ा-बहुत ही पा सकते हैं उनको माँड़ न निकालना चाहिये।

दुष्पोषण- आहार द्वारा आवश्यकतासे कम पोषण मिलनेको दुष्पोषण (malnutrition) कहते हैं। यह वांछनीय है कि बच्चों या अनाथोंके पालन-पोषण करने-वाली संस्थाओंके प्रबंधकर्ता लोग जानें कि ऐसे भोजनका शरीर पर क्या परिणाम होता है जो असमतुलित और दोषपूर्ण होता है। जिन गृहणियोंके ऊपर घरके प्रबन्धका भार है। उनको भी इसका ज्ञान होना चाहिये। असम-तुलित भोजनमें साधारणतः अनाज बहुत अधिक मात्रामें रहता है, जिससे प्रोटीन, खनिज पदार्थ और विटैमिनोंकी कमी पड़ती है। ऐसे आहारमें सुधारकी आवश्यकता है। असमतुलित भोजनके कारण उत्पन्न रोगोंकी सूची लंबी है और भारतवर्षमें ये रोग अकसर देखनेमें आते हैं। इनमेंसे मुख्य हैं बेरी-बेरी (beri-beri), गर्भवती अवस्थामें होने वाली रक्ताल्पताकी कुछ जातियाँ, और आँखके कई रोग। दुष्पोषणजनित ऐसी अवस्थाएँ जो इतनी बुरी नहीं हैं कि उनको रोगका नाम दिया जा सके बहुत फैली हुई हैं। बच्चोंके बढ़ने और स्वस्थ रहनेके लिए यह परमा-वश्यक है कि उनको समतुलित भोजन पर्याप्त मात्रामें मिले। दुष्पोषित बच्चा अपनी आयुके हिसाबसे बहुधा छोटा होता है; ऊँचाईके हिसाबसे उसकी तौल भी औसतसे कम होती है, क्योंकि वह बहुत दुबला होता है। वह शीघ्र रोगग्रस्त भी हो जाता है। पाठशाला जानेवाले बच्चोंके छोटे-छोटे रोग, जिनके कारण उन्हें पाठशालासे अकसर अनुपस्थित रहना पड़ता है, आहार पर ध्यान देनेसे बहुत

कम कर दिये जा सकते हैं। दुष्पोषित लड़कोंमें न खेलके लिए उत्साह रहता है और न पढ़नेके लिये चाव। त्वचाकी परीक्षासे दुष्पोषणका पता सुगमतासे लग जा सकता है। सूखी, खुरखुरी त्वचा, या काँटेके समान (पीब-रहित) फुंसियों-निकले रहने पर समझना चाहिये कि भोजन ठीक नहीं मिल रहा है और विटैमिन ए की विशेष कमी है। सभी जानते हैं कि दुष्पोषित पशु "खैारहा" हो जाता है, सुपोषित पशुके रोएँ घने, चिकने और चमकीले होते हैं। इसी प्रकार, सुपोषित बालककी त्वचा चिकनी और स्वस्थ होती है। दीप्तमान, स्वच्छ आँखें भी साक्षी देती हैं कि आहार उचित है। आँखके सफेद भाग पर चकत्तोंका बन जाना (ज़ेरोफ्थैल्मिया Xerophthalmia) विटैमिन ए की कमीका परिणाम है। मुँहके भीतर या जीभमें छाले और मुँहके कोनों पर घाव दुष्पोषित बालकोंमें बहुधा दिखलाई पड़ते हैं। सुपोषित बच्चोंकी जीभ चिकनी सर्वत्र एक रंगकी होती है; उस पर और काँटेकी तरह दाने नहीं निकले रहते और न उनमें चटकने (ऊपरी तहके फटने) की रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं। ऊपरी तह जीभ परसे कहीं अनुपस्थित भी नहीं रहती। जीभका छाला; या ऊपरी तहका कहीं-कहींसे मिट जाना, साधारणतः विटैमिन-बी२ की कमीके कारण उत्पन्न होता है।
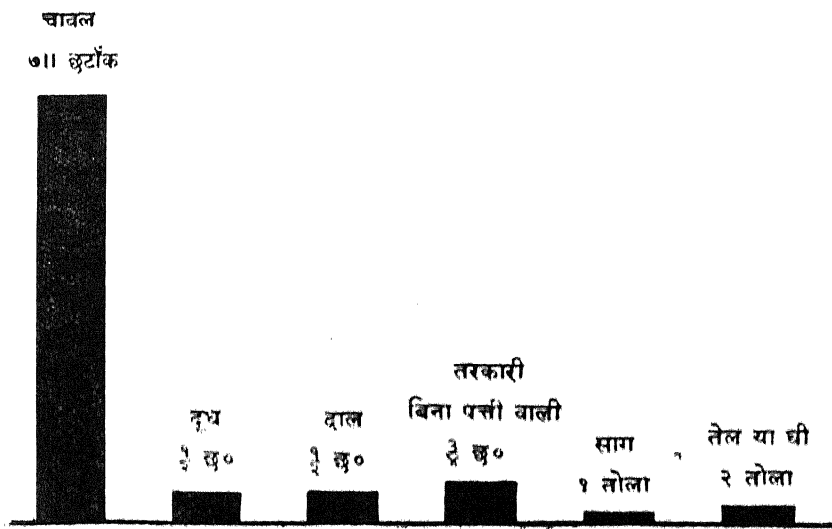
अपर्याप्त और असमतुलित भोजन।

इस भोजनमें चावल ही अधिक है। इतने भोजनसे कुल १७५० कैलोरियाँ प्राप्त होती हैं, जो स्वस्थ्य मनुष्यके लिये १ दिनके लिए काफ़ी नहीं है।
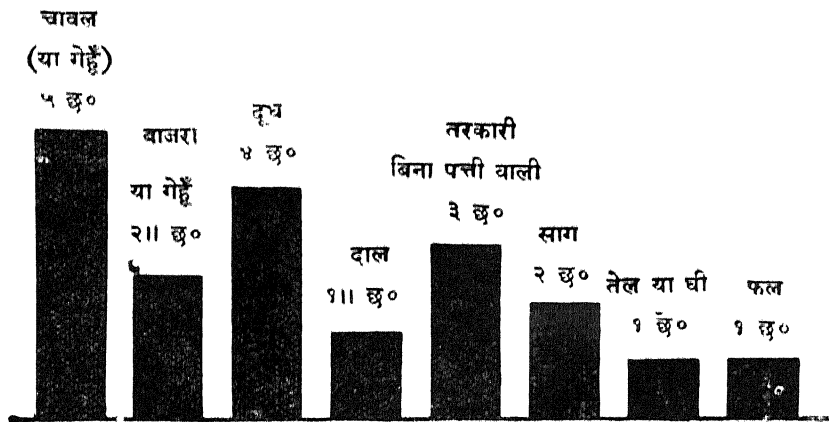
पर्याप्त और समतुलित भोजन।

इस भोजनमें एक तिहाई चावलके बदले बाजरा या गेहूँ रख दिया गया है। दूध, दाल, तरकारी, साग, वसा और फलकी मात्राएँ बढ़ा दी गयी हैं। इससे सभी आवश्यक पदार्थ शरीरको पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं। इतने भोजन से २६०० कैलोरियाँ प्राप्त होती हैं। इतना भोजन एक दिनके लिये काफ़ी है।

सरल विज्ञान

पौधोंके विषयमें कुछ रोचक बातें।

कोष—यदि पौधोंके तनोंको या पत्तियोंको काट कर सूक्ष्मदर्शक यंत्र (चित्र १) से उन्हें तीन-चार सौ गुने बड़े पैमाने पर देखा जाय तो पता चलता है कि इनमें छोटे-छोटे घर होते हैं। इनको कोष (सेल) कहते हैं (चित्र २)। एक कोषकी बनावट चित्र ३ में दिखलाई गई है। एक दूसरे पौधेके कोषकी सजावट चित्र ४ में दिखलाई गई है। कोषोंमें रस भरा रहता है।

पत्तियाँ—बहुतसे पौधोंमें फूल भी लगते हैं और फल भी (चित्र ५), परन्तु बहुतसों में फूल और फल नहीं
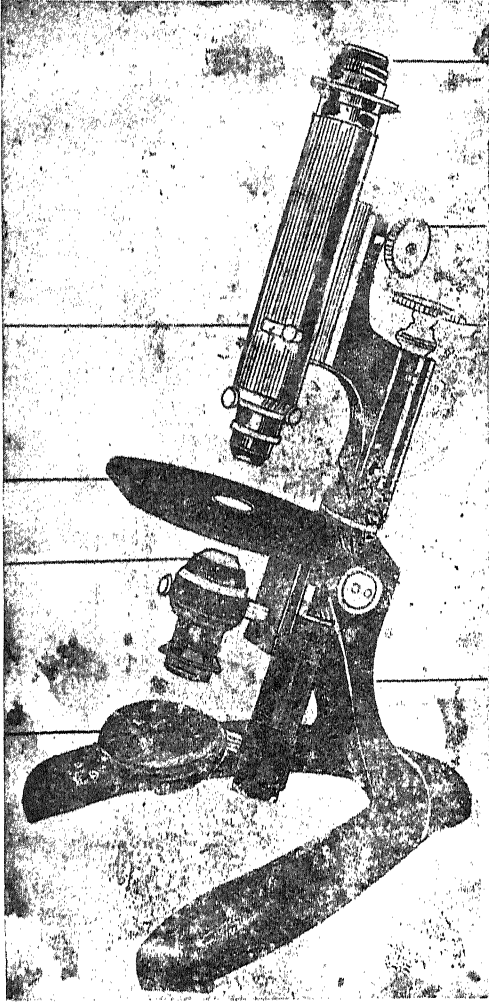
चित्र १—सूक्ष्मदर्शक यंत्र

इससे वस्तुएँ लगभग १००० गुनी बड़ी दिखलाई पड़ती हैं।
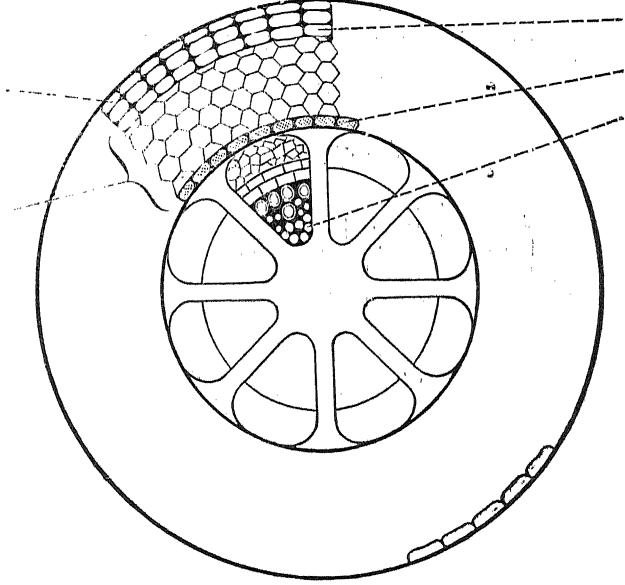
चित्र २—तनेकी बनावट।

पौधेके तनेको बड़े पैमाने पर सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखने पर पता चलता है कि उनमें बहुत-से छोटे-छोटे घर होते हैं जिन्हें कोष कहते हैं।
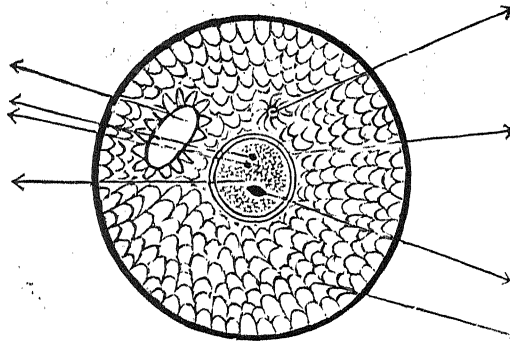
चित्र ३—कोष।

ऐसे ही कोषोंसे पौधेके अंग बने रहते हैं।
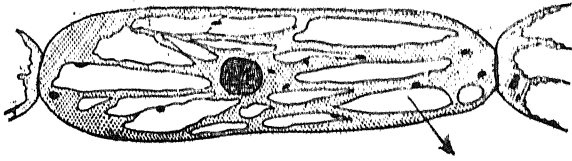
चित्र ४ -कोष।
यह एक दूसरे पौधेका कोप है। चित्र २ से इसकी तुलना करें॥

चित्र ५ — एक पौधा।
बहुतसे पौधोंमें फूल और फल भी लगते हैं।

चित्र ६ —मटरकी पत्तियाँ।

चित्र ७ —बबूलकी पत्तियाँ।
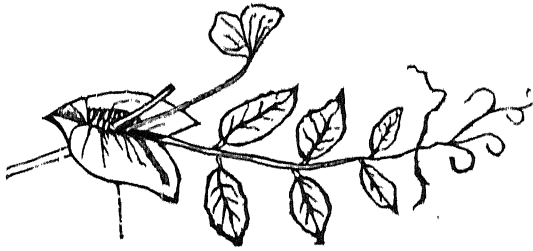
चित्र ८ —कॉर्न-पॉपीकी पत्ती और कली।

चित्र ९ —सेमरकी पत्ती।
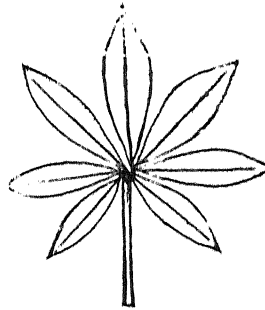
होते। पौधों और वृक्षोंकी पत्तियाँ बहुत ही विभिन्न आकारोंका होती हैं (चित्र ६—१२)। कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई बहुत ही बड़ी; कोई चिकनी, कोई रोएँदार; कोई चिकने किनारीकी, कोई दाँतीदार किनारेकी; कोई एकहरी, कोई तिन-पतिया, कोई बहुत-सी नन्हीं-नन्हीं पत्तियोंके संयोगसे बनी। इन पत्तियोंके आकार और पौधों या वृक्षोंके स्वभावमें घनिष्ठ संबन्ध है। केले, मकई आदि बड़ी पत्तियों वाले पौधोंको बहुत पानी चाहिए, क्योंकि उनकी बड़ी-बड़ी पत्तियोंसे बहुत-सा जल वाष्पके रूपमें निकला
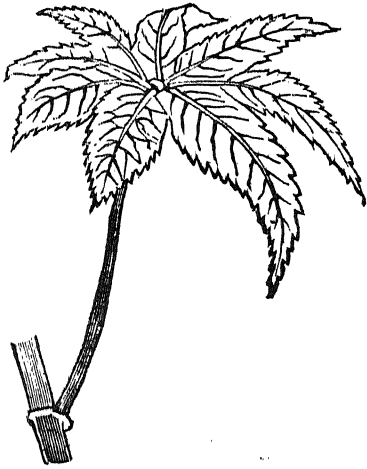
चित्र १०—एरंड (रेंड़) की पत्ती।

चित्र ११—कपासकी पत्ती।

चित्र १२—दो बेलें।।
देखो कि एक बेल सीधी लिपट रही है और दूसरी उलटी।

चित्र १३—सूर्यमुखीका फूल।
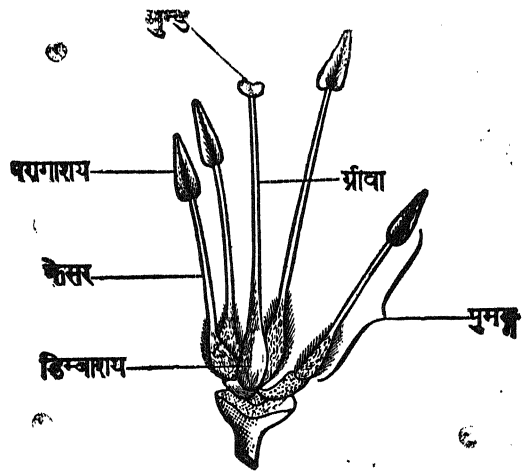
१४– फूलोंके भीतरी अङ्ग।
पँखुड़ियोंको तोड़ देनेके बाद ये अंग दिखलाई पड़ते हैं।

करता है। बबूलकी पत्तियोंका क्षेत्रफल कम होता है। इसलिए उसे इतने पानीकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

फूल— फूल तरह-तरहके आकारके, तरह-तरहके रंगके, तरह-तरहकी सुगंधके होते हैं। सूर्यमुखोका फूल चित्र १४ में दिखलाया गया है। बीज लगनेवाले फूलोंमें पँखुड़ियोंको

चित्र १५—डिंबाशयकी भीतरी बनावट।

नोचकर अलग कर देनेके बाद अकसर चित्र १४ की तरह के अंग दिखलाई पड़ते हैं। परागाशयसे धूलकी तरह 'पराग' निकलता है जो साधारणतः पीले रंगका होता है। जब पराग वायुसे उड़कर, या मधुमक्खियों, भौंरों या कीड़े-मकोड़ोंकी टाँगोंमें लिपटकर, या अन्य रीतिसे दूसरे फूलोंके उस अंग पर पहुँच जाता है जिसे चित्रमें 'मुंड' से सूचित किया गया है तो 'डिंबाशय' में बीज बनने लगता है। कुछ फूलोंमें पराग उसी फूलके मुंडमें जा लगता जिससे वह निकला रहता है, परन्तु अधिकांश फूलोंमें ऐसा नहीं होता। वहाँ वायु आदिके ही द्वारा आया पराग ग्रहण हो सकता है। डिंबाशयको चीरकर कम शक्तिके सूक्ष्म-दर्शक यंत्रसे देखने पर अकसर चित्र १५-सा दृश्य दिखलाई पड़ता है। बहुत-से परदोंसे ढके भरमें नन्हा-सा बीज रहता है जो धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा होता है।

सबसे बड़ा फूल

दुनियाँका सबसे बड़ा फूल सुमात्रामें होता है। इसका नाम "राफलेसिया अर्नोल्डी है। इसकी परिधि लगभग ३ फुट होता है। फूलका रंग मक्खनके समान होता है जिसमें ५ अंडाकार पंखड़ियाँ होती हैं। फूलके बीचमें अनेक लंबे एवं बैंगनी रङ्गके पराग-दंड होते हैं। फूलका वज़न प्रायः १५ पौंड होता है और उसमें २ गैलन पानी समा सकता है। इसकी कलियोंको देखनेसे ऐसा ज्ञात होता है मानो भूरे रंगकी गोभियोंके बड़े फूल हों। इसके बृहद् आकारके कारण वहाँ के कुछ लोग इसे 'दैत्य पुष्प' भी कहते हैं।

सोने वाली मछली

दक्षिणी आस्ट्रेलिया और अमेरिकामें ऐसी मछलियाँ पाई जाती हैं जिन्हें गर्मी भर सोनेकी आदत होती है। ये मछलियाँ नीचे कीचड़में बैठ जाती हैं और एक प्रकारका अंडाकार घर बनाकर सो जाती हैं। गर्मीके कारण नदी, झील या तालाबके सूख जानेपर ये मछलियाँ अपने सूखे घरमें रह जाती हैं किन्तु पानी पड़ते ही ये फिर सजीव हो उठती हैं।

रसायनिक मछली

अमेरिकाके एक डाक्टरने सील मछली पर अध्ययन किया है। अधिकतर सील मछली खारे जलमें पायी जाती है किन्तु समय-समय पर उसको स्वच्छ जलकी भी आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्थामें वह स्वयं स्वच्छ जलका उत्पादन करती है। भोजनके पचनेकी क्रियामें सीलके पेटके भीतर स्वतः जलका रासायनिक निर्माण हो जाता है, किन्तु समस्त जलका एक बारगी ही उपयोग नहीं होता—गुर्देकी एक विशेष प्रकारकी रचना होनेके कारण जल केवल थोड़ी मात्रामें ही निकलता है। डाक्टर साहिबने यह भी पता लगाया है कि गुर्दोंसे उसी समय जल निकलनेकी आवश्यकता पड़ती है जब कि मछली अपने पेटसे मलको बाहर निकालती है।

ताँबेकी सतहका बचाव

एक पदार्थ जिसे ग्लिप्टल (glyptal) कहते हैं यदि ताँबेकी बनी वस्तुओं पर लगा दिया जाय तो ताँबेकी वस्तुएँ बिलकुल ठीक रहती हैं। न तो उनकी चमक कम होती है और न रंग ही खराब होता है।

क्या अन्य ग्रहोंमें भी प्राणी हैं ?

[प्रवासी बंग-साहित्य-सम्मेलनके विज्ञान-विभागके सभापति प्रोफेसर ए० सी० बैनर्जी, आई० ई० एस०, के बँगला अभिभाषणका अनुवाद । अनुवादक—श्री शांतिराम मुकर्जी, एम० ए०]

विज्ञान-सभाके सभापति होनेके लिये स्वागत-समितिके सभापति पूज्यपाद पंडितप्रवर श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण महाशयका सादर निमन्त्रण पाकर मैं गौरव अनुभव करता हूँ । मुझसे अधिक योग्य व्यक्ति रहने पर भी आप लोगों ने मुझको विज्ञान शाखाका सभापति बनाकर सम्मानित और अनुगृहीत किया है । विज्ञान और गणित-शास्त्रका मैं एक दीन सेवक हूँ तथा ज्योतिष-शास्त्रसे भी मेरा सम्बन्ध है । इस समय सारी दुनियाँमें महासमरकी अग्नि प्रज्वलित हो रही है । विज्ञानने प्रलयकारी मूर्त्ति धारण करके मानव जातिको ध्वंस करनेके लिये ही नाना प्रकारके यन्त्रोंकी उद्भावना की है । बहुतोंके मनमें यह प्रश्न उदय हो सकता है कि क्या विज्ञान सचमुच ही मानव समाजको प्रलयकी तरफ ले जा रहा है ? कई वर्ष पहले एक दार्शनिक पण्डितके साथ विज्ञानके विषयमें मेरी बातचीत हुई थी । उनके मतमें विज्ञान-मानव जातिकी अवनतिके लिये अनेकांशमें उत्तरदायी है । अवश्य, निरंकुश नेतासे परिचालित प्रबल जाति अपनी शक्तिके गर्वसे दुर्बल जातिका संहार करने और गणतन्त्रका उच्छेद करनेके लिये नाना प्रकारके प्राण विनाशक और ध्वंसकारक यन्त्रादिकी खोज करके विज्ञानका दुरुपयोग करती है । गणतान्त्रिक जातियाँ स्वायत्तशासन अक्षुण्ण रखनेके लिये आत्मरक्षार्थ विज्ञानका आश्रय लेनेमें विवश होती हैं । खेद है कि विज्ञानका बहुत अप-प्रयोग हो चुका है । मगर विज्ञानका प्रकृत उद्देश्य और आदर्श यह नहीं है । मानवकी पार्थिव, मानसिक और नैतिक उन्नतिके लिये ही विज्ञानकी उत्पत्ति हुई है । बीसवीं शताब्दी में विज्ञानकी अवस्थामें बहुत परिवर्त्तन हुये हैं और उसकी भावधारा भिन्न-भिन्न मार्गोंमें परिचालित हुई है ।

आधुनिक विज्ञानने सतेज और उर्वर कल्पना शक्तिके उत्कर्ष-साधनमें बहुत सहायता की है । विज्ञानने वर्त्तमान समयमें नवरूप धारण करके मानसिक शक्तिके क्रम-विकाशके संघटनमें और मानवात्माकी क्रमोन्नति साधनमें विशेष सफलता पाई । ज्योतिष-शास्त्रके अध्ययनसे मनका प्रसार और कल्पना-शक्तिका विकास जैसा होता है वैसा दूसरे किसी शास्त्रसे होता है कि नहीं, इसमें बहुत सन्देह है । असीम विश्वकी विशालता, ग्रह-नक्षत्रोंकी जन्मकथा, नीहारिकाकी नीरव वाणी मानवके मनको पृथ्वीकी क्षुद्र सीमासे मुक्त करके वैचित्र्यमय अनन्तकी तरफ ले जाती हैं । सौरजगत् और नक्षत्रपुञ्जकी जन्मकथा अतीव मनोरम कहानी है और ग्रहरहस्य भी एक विचित्र विषय है । हमारी पृथ्वी एक बहुत छोटा ग्रह है । इस पृथ्वीमें ही जीवका वास है अथवा दूसरे ग्रहोंमें भी, बुद्धिमान जीव रह सकता है, इस विषयमें ज्योतिर्विदों ने बहुत गवेषणा की । आइये, हम भी असीम विश्वमें जीवके अनुसन्धानके लिये चलें ।

मापकी विराट इकाइयाँ

हम लोग साधारणतः दीर्घताके निर्णयके लिये जो परिमापक इकाई व्यवहार करते हैं, वह नीहारिका और नक्षत्रोंके आयतन और दूरत्वका निर्णय करनेके लिये सर्वथा अनुपयोगी है । ज्योतिर्विद्गण उस विशाल दैर्घ्य और दूरत्वको नापनेके लिये दो प्रकारकी परिमापक इकाइयोंका व्यवहार करते हैं । परिमापकके लिये इस मामलेमें इञ्च, फुट और मीलका प्रयोग विशेष असुविधाजनक है । ज्योतिष शास्त्रमें इसलिये "आलोकवर्ष" और 'लम्बनसेकण्ड", ये दोनों परिमापके लिये व्यवहृत होते हैं । आलोकरश्मिकी गति प्रत्येक सेकण्डमें १८६'००० मील है । एक वर्षमें आलोकरश्मि जितनी दूर जा सकती है उतने दूरत्वको 'आलोकवर्ष" कहते हैं । एक आलोकवर्ष करीब ६ ०००,००० ०००,००० मील है । जिस ज्योतिष्कका लम्बन त्रिकोणमितिका एक सेकण्ड या एक डिग्रीका $\frac{1}{3600}$ अंश है उसी दूरत्वको एक लम्बनसेकण्ड कहते हैं । एक लम्बन सेकण्ड करीब २०×१०^{१२} मील है ।

पार्थिव वस्तुओंके भीतर आलोकका वेग ही चरम गतिका वेग है । आइये, हम लोग कल्पनाकी सहायतासे आलोकका वेग लेकर विराट विश्वमें परिभ्रमण और विविध नवतथ्यका अविष्कार करें ।

ग्रहोंमें जीवनकी सम्भावना

सबसे नज़दीक ज्योतिष्क चन्द्र पृथ्वीसे २४०,०००

मील दूर है। आलोककी गतिसे हम लोग चन्द्रलोकमें डेढ़ सेकण्डमें पहुँचेंगे। चन्द्रमें बहुत जलहीन समुद्र मरुभूमि निर्वापित ज्वालामुखीके मुँह पर्वतों और शैलशृङ्गों की श्रेणियाँ दीख पड़ती हैं। मगर किसी प्रकारका जीव, उद्भिद या वायुमण्डल चन्द्रलोकपर नहीं हैं। नौ करोड़ बीस लाख मील जाकर हम लोग आठ मिनटमें सूर्यलोकमें आ जायेंगे।

सूर्यकी ऊपरी तापमात्रा ५००० डिग्री सेन्टीग्रेड और उसके केन्द्र-स्थलकी तापमात्रा करीब एक करोड़ चालीस लाख डिग्री सेन्टीग्रेड है। अगर हमारा शरीर अग्निप्रस्तरसे (सिलिका) न बनाया जाय तो हम सूर्यके पास पहुँचते ही बिल्कुल भस्म हो जायेंगे। सूर्यसे अग्निमय प्रचण्ड वायु-प्रवाह हर मिनटमें हज़ारों मीलकी गतिसे निरन्तर निकलता है। सूर्यमें किसी तरहका उद्भिद पैदा नहीं हो सकता और कोई जीव भी नहीं रह सकता।

सौर जगत्में चलते-चलते धीरे-धीरे हम लोगोंका दूसरे ग्रहोंसे परिचय होगा। बुध सूर्यका सबसे निकटवर्त्ती ग्रह है, इसलिये उसको दूसरे ग्रहोंसे अधिक उत्ताप और आलोक मिलते हैं। बुधमें वायुमण्डल नहीं है। इसमें किसी जीवका रहना सम्भव नहीं है। शुक्र ग्रह निविड़ वायुमण्डलसे परिवेष्टित है। वायुमण्डल इतना गहरा है कि शुक्रका आलोक चित्र लेनेसे इसके कठिन ऊपरी तलका कोई अंश भी चित्रमें प्रतिबिम्बित नहीं होता। घूमते-घूमते मङ्गल ग्रहमें भी हम लोग आयेंगे। उसमें जीव रह सकता है कि नहीं इस विषयकी आलोचना पीछे की जायगी।

आकारमें और जड़मान में (mass) ग्रहोंमें वृहस्पति सबसे बड़ा है। वृहस्पतिको ग्रहराज कहनेमें भी कुछ अत्युक्ति न होगी। इसका आलोक-चित्र लेनेसे इसके विषयमें बहुत तथ्य जाने जा सकते हैं। वायुमण्डलसे वृहस्पति वेष्टित है। 'कार्बन-डाइ ऑक्साइड' (Carbon-dioxide) नामक वायवीय पदार्थकी मेघराशि वायु-मण्डलमें बहती हुई देखी जाती है। वृहस्पतिके शरीरमें जो बन्धनियाँ देखी जाती हैं उनके आकार परिवर्त्तनशील हैं। बन्धनियाँ वायुमण्डलकी अंश मात्र हैं और इसके अन्तर्गत वायुकणायें चक्राकारमें प्रबल वेगसे संचरण करती हैं। वृहस्पतिके नौ उपग्रह हैं। वृहस्पतिकी देहका ताप—-१४० सेण्टीग्रेड है। वृहस्पतिके वायुमण्डलसे यह मालूम होता है कि पृथ्वीका-सा जीव इस ग्रहमें नहीं रह सकता। इसके वायुमण्डलमें ऑक्सीजन बहुत कम है और जल है भी तो वह बर्फके रूपमें है—तरल अवस्थामें नहीं है। वैज्ञानिकके अनुमानने कई समय कवियोंकी कल्पनाको पराजित किया है। कोई-कोई वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि वृहस्पतिके शरीरमें बड़े-बड़े "एमोनिया" के सागर हैं वे कठिन बर्फ स्तूपके ऊपर पछाड़ करके गिरते हैं। किसी-किसीका अनुमान ऐसा भी है कि वृहस्पतिमें वैसा जीव रह सकता है, जिसके लिये एमोनिया वैसा प्रयोजनीय हो जैसा पानी हमारे लिये है। इन सब काल्पनिक जीवोंके लिये बहुत ही उग्र चीज मानी जा सकती है।

वलयधारी शनिके समान अद्भुत आकृतिका दूसरा कोई ज्योतिष्क आकाशमें दृष्टिगोचर नहीं होता। उसके नौ उपग्रह और तीन वलय हैं। किसी समय तीनों वलय मिलकर शनिका एक उपग्रह था शनिके बाहरका ताप साधा-रणतः -१५० सेण्टिग्रेड माना जा सकता है। इसका घनत्व बहुत थोड़ा है। सम्भवतः शनिके भीतरका अंश वायवीय पदार्थसे भरा है, और इसके ऊपर एक कठिन आवरण है। उसके ऊपर फिर वायुमण्डल है। शनि जीवके वासके उप-युक्त नहीं है।

प्लूटो सौर-जगतका सबसे बाहरी ग्रह है। इसको सौर-जगतका द्वारपाल कहा जाता है। सूरजसे प्लूटोकी दूरी लगभग ३७० करोड़ मील है। आलोककी गतिके वेगसे हम लोग करीब छः घण्टेमें प्लूटोमें पहुँचेंगे। प्लूटोमें वायु-मण्डल है कि नहीं यह अभी तक मालूम नहीं हुआ। प्लूटोकी देह इतनी शीतल है कि उस पर कोई जीव नहीं रह सकता।

महाशून्यमें प्रवेश

अब सौर-जगतको छोड़कर आलोककी गतिसे महा-शून्यमें हम लोग चलना आरम्भ करें। रास्तेमें पहले बड़ी छोटी धूलकी कणायें और भौतिक रश्मिकणिकायें देखी जायेंगी। चार वर्ष और तीन महीनेके बाद हम लोग सबसे निकट ग्रहमें पहुँचेंगे। उसका नाम समीपतर महिपासुर (प्रौक्सिमा सेण्टॉरी) है। सूरजसे उसकी दूरी ४·२७ आलोकवर्ष या २·५ × २०^{१३} मील है। बेतारवार्त्ता

भी आलोककी गतिसे जाती है। आज एक बेतारवार्त्ता पृथ्वीसे भेजी जाय तो उसको प्रक्सिमा-महिपासुरके अधिवासीगण (अगर वहाँ कोई रहे तो) ४'२७ वर्षके बाद सुनेंगे। अगर कोई बेतारवार्त्ता महाभारत या मोहिन-ज़ोदारोकी समृद्धिके समय अथवा जब पिरामिड बनाया गया था तब भेजी गई होती तो ऐसे अधिक अन्तर पर ज्योतिष्क हैं जहाँ वह वार्त्ता अब तक पहुँच ही न पाती। घूमते-घूमते और तीन महीने बाद तथा साढ़े चार वर्षके बीचमें "आलफ़ा महिपासुर" नामक युगल नक्षत्रमें पहुँचेंगे। लुब्धक नक्षत्रमें पहुँचनेमें हम लोगोंको आठ वर्ष लगेगा। चाक्षुप दर्शनमें यह तारा आकाशका सबसे उज्जवल नक्षत्र मालूम होता है। इसका एक छोटा साथी है और दोनों मिलकर एक "युगल नक्षत्र" बना है। इस छोटे नक्षत्रका व्यास पृथ्वीके व्याससे केवल तिगुना है। परन्तु इसका जड़ भाग सूर्यके जड़ भागका तीन चौथाई है। इसका घनत्व पानीके घनत्वसे पचास हज़ार गुना है। इससे जड़ पदार्थ लेकर एक दियासलाईके बक्समें भरनेसे उस बक्सका गुरुत्व करीब अठाईस मन होगा। ओ॰ एरिबडानि बी नामक एक दूसरे नक्षत्रका घनत्व इससे करीब ६८,००० गुना है। इन सब बड़े छोटे ज्योतिष्क नक्षत्रोंको "क्षुद्रकाय श्वेततारका" कहा जाता है। पन्द्रह वर्षके बाद हम लोग श्रवण नामक एक बड़े नक्षत्रमें पहुँचेंगे। इसको छोड़ते हुए १३५ वर्षके पीछे हम लोग वृषराशिके अन्तर्गत "हाइजस" नामक तारकाबहुल ज्योतिष्कमें आयेंगे। कृत्तिका नक्षत्रपुंजमें पहुँचनेमें करीब ३२३ वर्ष लगेंगे।

इस प्रकार घूमते घूमते १०,००० वर्षके बाद हम लोग गोलाकार तारकागुच्छमें पहुँचेंगे। उस गुच्छमें बहुतसे स्पन्दनशील नक्षत्र देखे जाते हैं। ये गुच्छ समूह छायापथके प्रान्तदेशमें स्थित हैं। निर्मल मेघविहीन अँधेरी रातमें आकाशमें छायापथ या आकाश वलय सुस्पष्टतासे प्रकाशित होता है। क्षीणोज्जवल मण्डलाकारमें गगन पर एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक यह विस्तृत देखा जाता है। पुराणमें इस आकाशवलयको आकाश-गंगा या वैतरिणी नदी नाम दिया गया है। गणनासे निर्णय हुआ है कि छायापथमें कम-से-कम बीस हज़ार करोड़ तारे हैं। उसमें तारोंकी संख्या पृथ्वीकी लोक संख्याकी सौगुनी है। छायापथका आकार बहुत बड़ा होने पर भी असीम नहीं है। हम लोग छायापथके भीतर हैं इसलिये इसके आकार और गठनके विषयमें हमारी स्पष्ट धारणाकी सम्भावना नहीं है। छायापथके भीतर बहुत तरहकी नीहारिकायें स्थित हैं। इन सब नीहारिकायोंको तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया जाता है यथा :—

(१) ग्रहरूपी नीहारिका

(२) आकृतिविहीन नीहारिका

(३) निष्प्रभ नीहारिका

ग्रहरूपी नीहारिकाके साथ ग्रहसृष्टिका कोई सम्बन्ध नहीं है। वे सब नीहारिकायें वर्त्तुलाकार हैं इसलिये ऊपरके नाम दिये गये हैं। वे बहुत अनिविड हैं।

आकृतिविहीन नीहारिकाओंके गठन सौष्ठवहीन और विक्षिप्त हैं। घनत्व, स्वच्छता और उज्जवलताके तारतम्यके अनुसारसे ये नीहारिकायें बहुत तरहसे अजीब आकार धारण करती हैं।

निष्प्रभ नीहारिकायें आलोक विकिरण नहीं कर सकती हैं। इसलिये इनके पीछे जो सब तारे हैं उनको अस्पष्ट और तिमिराच्छन्न कर देते हैं।

अत्युक्ति नहीं है कि एक तारा एक-एक सूर्य है और इसका ताप इतना अधिक है कि इसमें कोई जीव नहीं रह सकता। नीहारिकायें भी जीवके वासके लिये अनुपयोगी हैं।

छायापथ अणुके समान है। इसका व्यास करीब तीस हज़ार लम्बन सेकण्ड है और केन्द्र स्थलका वेध करीब छः हज़ार लम्बनसेकण्ड है। छायापथ एक विश्वलोक है। कई नीहारिकाओं और नक्षत्रराशियोंसे एक विश्वलोक बनता है। इस आकाशवलयके केन्द्रसे सूर्य करीब ६०,००० हज़ार लम्बनसेकण्ड दूर है। छायापथका मेरुदण्ड धनु और वृश्चिक-राशिको भेद करके चला गया है। अपने मेरुदंडको अवलम्बन करके छायापथ बाईस करोड़ वर्षमें एक बार आवर्त्तन करता है। इस आवर्त्तनसे इसके पृष्ठके निकटस्थ नक्षत्रोंका वेग प्रति सेकण्ड करीब २२० मील है। ब्रह्माण्डमें बहुतसे विश्वलोक देखे जाते हैं। छायापथके बाहर विश्वलोकोंके भीतर उत्तरभाद्रपदा नीहारिकाका आयतन सबसे बड़ा है। उसका गठन कुण्डलाकार है। ज्योतिर्विदोंका अनुमान यह है कि छायापथ भी एक बड़ी-सी कुण्ड-

लिन नीहारिका है। कई विश्वलोकोंको मिलाकर एक विशाल महालोक (मेटा-गैलक्सी) बनता है।

छायापथकी सीमाके ठीक बाहर दो विशिष्ट तारका-गुच्छ दृष्टिगोचर होते हैं। स्पेनदेशके प्रसिद्ध पर्यटक फार्डिनाण्ड म्यागेलनने भूमण्डल प्रदक्षिणके समय दक्षिण आकाश मेरुके इन दो तारकापुञ्जोंको सबसे पहिले देखा था। उनके नामसे इनको "म्यागेलन धूमराशि" कहा जाता है। पृथ्वीसे इनके दूरत्व ८५,००० और ६५,००० आलोकवर्ष हैं।

उत्तर भाद्रपदा नीहारिका एक विश्वलोक है। यदि वह बहुत बड़ा और आयतनके लगभग छायापथके तुल्य है तो भी मालूम होता है कि यह असीम अनन्तके भीतर एक छोटे द्वीपके रूपमें बहता है। उसमें कोई जीव रहे तो वह भी हमारे छायापथको शून्यके भीतर भासमान एक छोटा-सा द्वीपके आकारमें देखेगा। जितनी नीहारिकायें अभी तक आविष्कृत हुई हैं, उनमें जो सबसे दूर हैं उनकी दूरी २×२०^{२१} मील है। आलोकवर्षके हिसाबसे यह दूरी करीब बत्तीस करोड़ आलोकवर्ष है।

ग्रहोंका जन्म

विश्व ब्रह्माण्डमें जीवके रहने योग्य स्थानकी खोज करनेके लिये ग्रह और उपग्रहकी जन्मकथाकी आलोचना ज़रूरी है। जीन्स जेफ्रिस आदि ज्योतिर्विदोंका विचार यह है कि ग्रह-समुदाय (या ग्रह-समवाय) विश्वब्रह्माण्डका आकस्मिक विषय है। उनके अनुमानसे दो सौ करोड़वर्ष पहले सूर्य और एक तारा महाशून्यमें चलते-चलते परस्पर बहुत पास आ गये थे। वे परस्पर छूते-छूते बच गये, नहीं तो दोनोंके संघर्षसे दोनों ही चूर्ण हो जाते। अब दूसरा तारा बहुत दूर चला गया। सूर्य और दूसरे नक्षत्रका व्यवधान जितना कम होने लगा, एक दूसरे पर मध्याकर्षणका प्रभाव उतना ही अधिक होने लगा। इस आकर्षणके लिये सूर्य और नक्षत्रके ऊपरकी वायुतरंगें उत्क्षिप्त हुई और ये ज्योतिष्कोंके चरमसान्निध्य समयमें दोनों वाष्प-प्रवाह-युक्त होकर अविच्छिन्न वाष्पबाहु बन गईं। पीछे वह नक्षत्र जब दूर चला गया तब वह वाष्पस्रोत फिर विभक्त हो गया और सूर्यकी ओर के अंशने सूरजके चारों ओर वर्त्तुलाकारसे आवर्त्तन करना आरम्भ किया। अन्तमें यह आंशिक वाष्पपुञ्ज एकीभूत न होकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। ये सब अंश क्रमशः घनीभूत होकर ग्रह और उपग्रह बन गये।

हालमें लिट्लटन साहबने यह विचार प्रकट किया कि सूरज पहले युगल नक्षत्रका एक तारा था। सूरजके साथीके बहुत समीप और एक तारा आ पड़ा। दोनोंके माध्याकर्षणके फलसे जो वाष्पतरंग बनी उसका एक अंश सूर्य्यके प्रभावके भीतर आ गया और इससे ग्रह और उपग्रह बने। सूर्य्यका साथी सूर्य्यसे विच्युत होकर दूरसे दूर प्रदेशमें चला गया। दूसरा तारा भी अब बहुत दूर हट गया। जीन्स और जेफ्रिस साहबोंके विचारके विषयमें विशेष आपत्ति यह है कि ग्रहसमवायको, विशेषतया बृहस्पति और शनिग्रहको इतना भारवेग (मोमनटम) कहाँसे मिला। पण्डितोंने गिनके देखा कि सूर्य्यसे इतना भारवेग मिलना सम्भव नहीं है। अगर दूसरी तारकासे इतना भारवेग लिया जाय तो सूरज और नक्षत्रके बीचमें व्यवधान इतना कम होना चाहिये कि वे परस्परको छुयें और इससे दोनोंका संघात अवश्यम्भावी है और अन्ततः दोनों ही चूर्ण हो जायेंगे। लिट्लटन साहबके मतके विरोधमें इस तरहका प्रश्न उठाया जा सकता है। उनके अनुमानके विपक्षमें और दूसरे कारण दिखाये जा सकते हैं। उन सबका स्थानाभावसे यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता।

हमारा अभिमत यह है कि एक समय सूर्य्य एक स्पन्दनशील शैविक (सीफिइड) नक्षत्र था। हम लोगोंने गवेषणा करके देखा है कि जब तक इस स्पन्दनका दोलन-विस्तार बहुत कम रहता है तब तक स्पन्दनकी स्थितिशीलताका (स्थायित्व या स्टेबिलिटी) कोई व्यतिक्रम नहीं होता। अगर किसी कारणसे आयाम बढ़ जाय तो स्पन्दन और सुस्थित नहीं रहता, यह वर्धनशील हो जाता है और स्पन्दन अप्रतिष्ठ और दुःस्थित हो जाता है, इसलिये शैविक तारकाकी देहसे जड़पदार्थ वाष्पबाहुके आकारमें दूरपर उत्क्षिप्त होते हैं, और स्पन्दन भी बन्द हो जाता है। अन्तमें यह वाष्पबाहु विभिन्न अंशमें विभक्त हो जाती है और वह घनीभूत होकर ग्रह और उपग्रहोंको बनाती है। हमारी धारणाके अनुसार एक तारा घूमते-घूमते स्पन्दनशील आदिम सूरजके पास आया था, उस नक्षत्रके आकर्षणसे सूरजका आयाम बढ़ गया और सूरजके पृष्ठसे वाष्प-

पुञ्जने उत्क्षिप्त होकर आखिरमें ग्रह और उपग्रह बनाये। गिनके देखा गया कि सूर्य्यके चारों ओर घूमने और मेरु दण्डके चारों ओर आवर्त्तन करनेमें ग्रहोंको जिस कार्य्यकरी-शक्तिकी आवश्यकता होती है, ग्रहसमवायको वह सूरजसे ही मिल सकती है। अपने अग्निकुण्डके तापमें परमाणुके रूपान्तर-प्रतिक्रियासे सम्भूत ताप और शक्ति सूर्य्यमें बहुत है। उन ग्रहोंने अपनी-अपनी गतिके लिए इसका किञ्चिन्मात्र ही जमा किया है।

परस्पर संघर्ष

महाशून्यमें अपरिमेय जगह है। एडिंगटन साहबके मतसे नक्षत्रोंकी अबाध और अजवहितगति रहने पर भी शून्यमार्गमें इनका चलना बहुत निरापद है और नक्षत्रोंका संघर्ष भी बहुत विरल घटना है। ज्योतिर्विद छायापत्रके भीतरके नक्षत्रोंकी संख्या गिन कर इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि एक निर्दिष्ट नक्षत्रकी दूसरे नक्षत्रोंके साथ संघर्षकी सम्भावना १०¹⁷ वर्षोंमें केवल एक बार है। अगर औसतमें एक एक नक्षत्रोंके साथ उमर ५×१०¹²वर्ष हो तो एक करोड़ नक्षत्रोंके भीतर सिर्फ एकका ग्रह और उपग्रहसे वेष्टित होना सम्भव है। जीन्स, जेफ्रिस और लिट्लटन साहबोंके अभिमतमें ग्रह समवाय एक विरल घटना है। हमारी गवेषणाके अनुसार ग्रहसमवाय ऐसी विरल घटना सम्भव नहीं है। ग्रहसृष्टिके लिये दो नक्षत्रोंका बहुत नज़दीक आना ज़रूरी नहीं है। सूर्य और दूसरे तारोंका थोड़े समयके लिये परस्पर अपेक्षाकृत नज़दीक आनेसे सूर्यके स्पन्दनका आयाम थोड़ा-सा बढ़ जाता है और अन्तमें उत्क्षिप्त जड़ पदार्थसे ग्रहों और उपग्रहोंकी सृष्टि होती है।

मंगलमें जीव

यह कहना ठीक है कि पृथ्वीमें जैसे सब जीव रहते हैं, ऐसे जीव सूर्य वा दूसरे किसी नक्षत्रमें नहीं रह सकते। जिस ग्रहमें अनुकूल पानी, वायु और ताप हैं सिर्फ उसीमें ही जीवोंका रहना सम्भव है। मंगल ग्रहमें जीव हैं कि नहीं इस विषयकी हम लोग अब विशद आलोचना करेंगे। हर पंद्रह या सत्रह वर्षके बाद पृथ्वीसे मंगलका दूरत्व कम होकर केवल ४४,०००,०००, मील होता है। उस समय ज्योतिर्विद्गण बड़े दूर्वीक्षणयन्त्रसे मंगलग्रहकी अच्छी तरहसे परीक्षा करते हैं। ऐसा अवसर १९०९ और १९२४ ई० में आया था और फिर भी १९४२ ई० में हुआ था। परन्तु दुःखकी बात यह है कि सारी पृथ्वीमें लड़ाईके कारण इस दुर्लभ सुयोगको पूरी तरहसे फलप्रद करना सम्भव नहीं हो सका।

लालरश्मिके आलोक-चित्र पर मंगलके पृष्ठमें कुछ मलिन अंश और रेखा स्पष्ट देखी जाती हैं, मगर बैंगनी रश्मिके चित्रमें यह सब कुछ नहीं देखा जाता है, सिर्फ उमेयमेरुके बर्फके दो आवरण देखे जाते हैं। इसको छोड़के बैंगनी रश्मिके आलोक चित्रमें मंगल थोड़ा-सा बड़ा दीखता है। वैज्ञानिकगण कहते हैं कि इन दोनों आलोक चित्रोंके भीतर इतना अन्तर रहनेसे यह मालूम होता है कि मंगलमें वायु-मण्डल ज़रूर है। राइट (Wright) साहबके मतसे मंगलका वायु-मण्डल सौ मील गहरा है।

भिन्न प्रकाशोंमें मंगलका आलोक-चित्र कैसे लिया जाता है यह संक्षेपमें कह रहा हूँ। हर आलोक चित्र लेनेके समय कैमराके मुँहमें पहुँचनेके पहिले आलोक-रश्मियोंको एक तरहके पर्देके भीतरसे लिया जाता है। इस पर्देको रंगका छन्ना (फिल्टर) कहा जाता है। बहुत तरहके छन्ने होते हैं। किसी छन्नेसे सिर्फ लाल रंगकी, किसीसे बैंगनी और किसीसे दूसरे रंगकी आलोक-रश्मि जा सकती हैं—एकके भीतरसे सिर्फ एक ढङ्गकी रश्मि घुस सकती है। मंगलके पृष्ठसे जो किरणें पृथ्वीकी तरफ़ आती हैं, उनके भीतर लाल रश्मियोंके निकटकी सभी रश्मियें मंगलके वायु-मण्डलके भीतरसे आकर हम लोगोंके पास पहुँचती हैं। मगर बैंगनी रश्मियोंका अधिकांश फिर मंगलकी वायु-कणोंसे प्रतिबिम्बित होकर दूसरी तरफ लौट जाता है और इस कारण मंगलका चित्र भी अस्पष्ट होता है और इसका आकार थोड़ा-सा बढ़ जाता है। [शेष अगले अंकमें]

एल्यूमीनियमके पालिशकी रक्षा

रबड़की बहुत पतली झिल्ली एल्यूमीनियमके बने शीशोंको खुरचनेसे बचानेके लिये लगा दी जाती है। किन्तु रबड़में अमोनियाके कारण चमकदार सतह पर कुछ हल्का सा दाग़ रह जाता था, इसके लिये जो रबड़ इन वस्तुओं पर चढ़ाई जाती है वह ऐसी बनाई जाती है।

इस शीर्षके नीचे हम ऐसे लेख छापा करेंगे जो उच्च आदर्श से लिखे रहेंगे। वस्तुतः ये लेख किसी विश्व-कोष (एनसाइक्लोपीडिया) में स्थान पाने योग्य रहेंगे।

अपेरण

अपने मार्गसे विचलित होनेको अपेरण कहते हैं। अंग्रेज़ीमें इसे अबेरेशन (aberration) कहते हैं। विज्ञानमें यह शब्द दो विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। ज्योतिषमें अपेरणसे तारों आदिके दिशामें उस अन्तरको कहते हैं जो पृथ्वीके वेगके कारण पड़ता है। भौतिक विज्ञानमें अपेरणसे उस त्रुटिका बोध होता है जिसके कारण ताल, आदिसे होकर जाने पर प्रकाश-रश्मियाँ ठीक एक बिन्दु पर नहीं एकत्रित हो पातीं।

पहले हम ज्योतिषिक अपेरण पर विचार करेंगे। ज्योतिषिक अपेरणकी उत्पत्तिका कारण यह है कि पृथ्वीका वेग प्रकाशके वेगकी अपेक्षा इतना कम नहीं है कि वह शून्यके बराबर समझा जा सके। पृथ्वीमें कोई वेगके न रहने पर जहाँ तारा दिखलाई पड़ता उसे हम 'शुद्ध स्थिति' कहेंगे। अब हम तर्कसे सिद्ध कर सकते हैं कि जब पृथ्वी गतिशून्य नहीं है तो तारा अपने शुद्ध स्थानसे कुछ हटा हुआ दिखलाई पड़ेगा। कितना हटा हुआ, यह पृथ्वीके वेग पर निर्भर है और तारेकी स्थिति पर भी। कुछ तारे ऐसी स्थितिमें भी रह सकते हैं कि वे किसी विशेष क्षण पर अपने शुद्ध स्थान पर ही बने रहें।

गणितसे यह बात सुगमतासे सिद्ध की जा सकती है, परन्तु बिना गणितके भी हम देख सकते हैं कि यह बात अवश्य सच होगी। पहले हम दो-चार परिचित उदाहरण लेकर दिखलायेंगे कि क्यों किसी वस्तुके चलनेकी दिशा दर्शकके वेग पर भी निर्भर है। मान लीजिये कि कोई मनुष्य बाँसकी पोली नली लिये स्थिर खड़ा है। नली ऊर्ध्वाधर (खड़ी) स्थितिमें है। यदि पानी बरस रहा हो और बूँदें सीधी गिर रही हों तो नलीके मुँहमें घुसने वाली बूँद अवश्य ही नलीकी दीवारोंको न छूकर सीधे नीचे चली जायगी और नलीके दूसरे मुँहसे निकल कर बाहर हो जायगी। परन्तु यदि मनुष्य नलीको खड़ी ही स्थितिमें रक्खे हुये दौड़ने लगे तो क्या ऐसा सम्भव है? ज़रा-सा विचार करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि उत्तर यही होगा कि नहीं, क्योंकि यदि बूँदको नलीके पार करनेमें एक सेकण्ड लगता है तो दौड़ने पर एक सेकण्डमें मनुष्य कुछ आगे अवश्य बढ़ जायगा। मान लो मनुष्य एक सेकण्डमें १ हाथ आगे बढ़ जाता है। तो, यदि नलीका व्यास १ हाथसे कमका होगा तो अवश्य बूँद नलीके ऊपरवाले मुँहमें घुसने पर नीचेवाले मुँह तक पहुँचनेके पहले ही चलती हुई नलीकी दीवारमें धक्का खा जायगी। प्रत्यक्ष है कि यदि कोई चाहे कि दौड़ते रहने पर भी बूँद नलीकी दीवारों को न छुये तो यह आवश्यक है कि नलीको तिरछी स्थितिमें रक्खा जाय। ऊपरी मुँह कितना आगेकी ओर झुका रहे यह इस बात पर निर्भर है कि नलीका वेग (अर्थात् दौड़नेवाले व्यक्तिका वेग) कितना है। वेग जितना ही अधिक होगा नलीको उतना ही अधिक झुका कर दौड़ना पड़ेगा।

ठीक जैसे दौड़ते मनुष्यको नलीको इस अभिप्रायसे तिरछा रखना पड़ता है कि एक मुँहसे भीतर घुसनेवाली बूँद दूसरी ओरके मुँहसे बाहर निकल सके और दीवारसे न टकरा जाय, उसी प्रकार तारोंको देखनेमें दूरदर्शकको तिरछा करना पड़ता है जिससे प्रकाशकी जो रश्मियाँ एक ओरसे घुसें वे दूसरी ओर निकल सकें और ऐसा न हो कि वे दूरदर्शककी दीवारसे टकरा कर भीतर ही रह जायें। इसका अर्थ यह है कि दूरदर्शकको तारेकी शुद्ध दिशासे कुछ भिन्न दिशामें रखना पड़ता है, अर्थात् तारेकी प्रत्यक्ष दिशा शुद्ध दिशासे कुछ भिन्न रहती है।

ऊपरका उदाहरण प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणितज्ञ और ज्योतिषी क्लेयरो (Alexis Claude Clairaut)

का दिया हुआ है। इससे अधिक परिचित उदाहरण यह है कि जब वर्षाकी बूँदें सीधी गिरती रहती हैं और मनुष्य स्थिर रहता है तो उसे छातेको खड़ी स्थितिमें रखना पड़ता है, परन्तु यदि वह चलने या दौड़ने लगे तो छाते को आगेकी ओर झुका कर रखना पड़ता है। अर्थात्, चलते हुये व्यक्तिको बूँदोंके आनेकी दिशा अपने वेगके कारण कुछ भिन्न जान पड़ती है।

दो वेगोंका परिणाम समानान्तर चतुर्भुज बना कर जाना जा सकता है। यदि प्रकाश और दर्शक दोनोंको एक ऐसा वेग दे दिया जाय जो दर्शकके वेगका उल्टा और मान में उसके बराबर हो तो दर्शकका लब्ध वेग शून्य हो जायगा और प्रकाशका लब्ध वेग वस्तुतः प्रकाशका सापेक्षिक वेग होगा। हमें यहाँ प्रकाशके इस सापेक्षिक वेगके मानसे कुछ प्रयोजन नहीं है। हमें इसकी दिशासे मतलब है। प्रकाश-के शुद्ध दिशा और प्रत्यक्ष दिशामें जितना अन्तर है वही 'अपेरण' है। स्पष्ट है कि यह अन्तर दर्शकके वेगके मान और दिशा दोनों पर ही निर्भर है।

अपेरणका पता पहले-पहल जेम्स ब्रैडली (James Bradley) ने सन् १७२५ में लगाया। पता अचानक ही लगा क्योंकि खोज दूसरी ही बातकी हो रही थी। प्राचीन विद्वानोंका मत था कि पृथ्वी अचल है। सूर्य, ग्रह आदि सब इसकी प्रदक्षिणा करते हैं, परन्तु कोपरनिकसका सिद्धान्त था कि सूर्य अचल है और पृथ्वी इसकी प्रदक्षिणा करती है। गैलीलियो और टाइको ब्राहीके बेधोंसे तथा केपलर और न्यूटनकी गणनाओंसे लोगोंको विश्वास हो चला था कि कोपरनिकसकी ही बात ठीक है; सूर्य अचल है और पृथ्वी इसकी प्रदक्षिणा करती है। परन्तु यदि वस्तुतः पृथ्वी चलती है तो दूरस्थ तारोंके हिसाबसे पास वाले तारोंको चलते हुये दिखलाई पड़ना चाहिये, ठीक उसी तरह जैसे रेलके यात्रीको समीपस्थ वृक्ष आदि पीछेकी ओर भागते दिखलाई पड़ते हैं। यह कि समीपस्थ तारों को भी इसी प्रकार पीछेकी ओर विचलित होते हुये दिख-लाई पड़ना चाहिये कई ज्योतिषियोंने बतलाया था। टॉमस डिग्सने तो सन् १५७३ में ही यह बात कह दी थी। परन्तु किसीने तारों की इस गतिको देख नहीं पाया था। कारण यह है कि तारे जितनी ही दूर होंगे उनकी ऐसी गति उतनी ही सूक्ष्म होगी। यह अवश्य सच है कि कई ज्योतिषियों ने दावा किया था कि उन्होंने तारोंकी ऐसी गति—जिसे लम्बनजनित गति कहते हैं—देखी थी; परन्तु टाइको ब्राही और जी० बी० रिचियोलीके सूक्ष्म बेधों ने सिद्ध कर दिया कि उनके दावे निर्मूल थे। वे बेधकोंके यन्त्रोंकी त्रुटियोंके कारण या निजी अशुद्धियोंके ही कारण उत्पन्न हुये होंगे। परन्तु टाइकोके समयके बाद यन्त्रोंकी शक्ति दिनों-दिन बढ़ती गई और ज्योतिषी उत्तरोत्तर सूक्ष्म विचलनोंके नापनेमें समर्थ हुये। जीन पिकार्ड दस वर्षके परिश्रमके परिणाम स्वरूप यह निश्चित रूपसे कह सका कि ध्रुवतारा अपने मध्यम स्थानसे हटा-बढ़ा करता है और स्थितियोंके बीचका महत्तम अन्तर लगभग ४०″ (चालीस विकला) के बराबर रहता है। लोगोंने इसे पहले लम्बन-जनित विचलन ही समझा, परन्तु शीघ्र पता चला कि यह लम्बनके कारण उत्पन्न नहीं हो सकता। यह विचलन पिकार्डके दृष्टि-भ्रमके कारण दिखलाई पड़ गया हो ऐसी भी बात नहीं थी, क्योंकि १६८६ और उसके बादके वर्षोंमें बेध करके इंगलैण्डके राजज्योतिषी फ्लैमस्टीड ने बतलाया कि सितम्बरकी अपेक्षा जूलाईमें ध्रुवतारेकी क्रांति (विषुव वृत्तसे दूरी) ४०″ कम रहती है। १६७४ में रॉबर्ट हुक ने अपने बेधोंसे पता चलाया कि गामा ड्रैकोनिस नामक तारेकी क्रांति अक्टूबरकी अपेक्षा जूलाईमें २३″ अधिक रहती है। इस तारेमें विशेषता यह थी कि लन्दनसे देखने पर—और बेधकर्त्ता वहीं थे—यह आकाश के शिरो-बिंदुसे होकर जाता है और इस प्रकार बेधके समय इसकी स्थितिमें वायुवर्तन (रिफ्रैकशन) के कारण अधिक अन्तर नहीं पड़ता, और जो कुछ पड़ता भी है वह गणनाद्वारा सचाईसे जाना जा सकता है। [शेष अगले अंक में]

पारदर्शी रुपदकी एड़ियाँ

स्त्रियोंके जूतोंकी ऊँची-ऊँची एड़ियाँ अब पारदर्शी रुपद-की बनाई गई हैं। घिसकर छोटी न हों इसके लिये ऐसी विधि रक्खी गई है कि ये सर्वदा एक विशेष ऊँचाई तक ही बनी रहें। इन एड़ियोंमें नीऑन (Neon) गैस भर दी जाती है जिससे नाचते समय रात्रिमें स्टेज पर ये बड़े सुन्दर रंगकी लगती हैं।
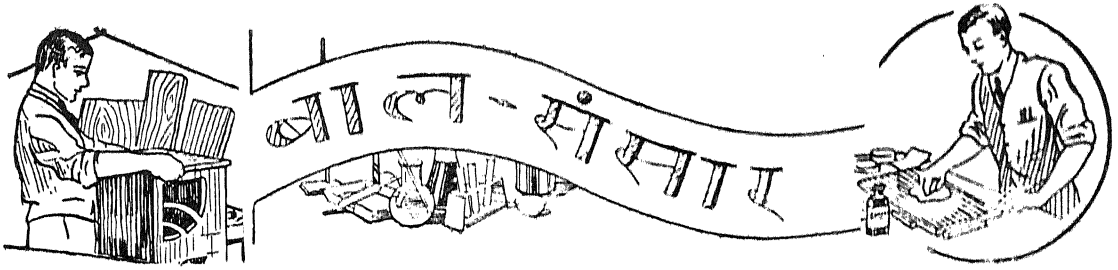
पहेलियाँ

"यह बड़ा विचित्र समय है।" सतीश ने कहा, और सब लोग यह सुननेके लिये उत्सुक हो गये कि इस समय-में क्या विशेषता है?

सतीशचन्द्रके यहाँ मित्र-गोष्ठी बैठ कर गपबाज़ी कर रही थी। किसीने यह नहीं विचारा था कि इस बात-चीतसे पहेलियोंका सूत्रपात होगा। नीचे लिखा वार्त्तालाप पहलेसे खोज-विचार कर नहीं निश्चित किया गया था; इसलिये पाठकको इसमें छिद्र ढूँढ-ढूँढ कर नहीं निकालना चाहिये।

"यह बहुत विचित्र समय है", सतीशने दुहराया। एक आदमी ने चौखूंटे मकानका नकशा ऐसी चतुराईसे तैयार किया है कि चारों ओरकी खिड़कियोंसे दक्खिणका दृश्य दिखलाई पड़ता है।

गोपेश्वर नाथ बोले, "यह कैसे हो सकता है मेरी समझमें नहीं आता। उत्तरकी ओरकी दीवारमें जो खिड़की रहेगी उससे दक्षिणका दृश्य तो दिखलाई ही नहीं पड़ सकता! हाँ, यदि दर्पण लगा कर कुछ प्रबन्ध किया जाय तो बात दूसरी है।"

सतीशने उत्तर दिया, "नहीं जी, कोई दर्पण-वर्पण नहीं लगाया गया है, और तब भी चारों ओरसे दक्खिणका दृश्य दिखलाई पड़ता है। आपने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि यदि आप मकान बनानेके लिये उपयुक्त स्थान खोजें तो मकान बनानेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। थोड़ा-सा विचार करने पर आप यह समझ जायेंगे कि यदि आप ठीक उत्तरी ध्रुव पर खड़े हों तो आप चाहे जिधर मुड़ें आपका मुँह सदा दक्षिणकी ओर रहेगा। उत्तरी ध्रुव पर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा तो होती ही नहीं। प्रत्येक दिशा दक्षिण ही होती है।"

गोपेश्वर बोले, "बात तो ठीक है। मुझे जल्दीमें सूझी नहीं। परन्तु यदि आप अपनेको बहुत चतुर समझते हैं तो मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये। मान लीजिये कि दुनियाँ गोल और चिकनी है। इसके चारों ओर एक लोहेकी छड़ लपेटी गई है जो सब जगह पृथ्वीको छूती है। अब प्रश्न यह है कि यदि छड़की लम्बाई छः गज़ बढ़ा दी जाय, तो छड़ और पृथ्वी-तलके बीच कितनी जगह छूट जायगी। यह मान लिया गया है कि चारों ओर बराबर जगह छूटी रहेगी।"

सतीश चन्द्रके मामाने कहा कि पृथ्वीकी नापकी तुलना में छः गज़ इतनी कम है कि छड़ और ज़मीनके बीचकी दूरी नाम-मात्र ही होगी।

सतीश चन्द्रने कहा, "यह तो बिना गणना किये ही मैं बतला सकता हूँ कि दूरी इंचके सौवें भागसे भी कम होगी।"

दूसरोंकी भी यही राय थी। गोपेश्वर नाथने कहा, "आप लोगोंको सुन कर आश्चर्य होगा कि गणनासे यही उत्तर निकलता है कि लम्बाईके छः गज़ बढ़ जानेसे छड़ सब जगह पृथ्वी-तलसे लगभग एक गज़ उठ जायगी।"

सबको उत्तरसे अत्यन्त विस्मय हुआ। कुछ ने कहा भी कि गोपेश्वरकी गणनामें कहीं भूल हुई होगी। परन्तु उत्तर है बिल्कुल ठीक। यह वृद्धि, छड़की पूर्व लम्बाई पर नहीं निर्भर है। किसी भी गोलेके ऊपर लपेटी छड़को, चाहे वह गोला पृथ्वी हो चाहे फुटबाल, यदि छः गज़की वृद्धि कर दी जाय तो उस वस्तुकी तलसे छड़की दूरी लग-भग एक गज़ हो जायगी। जो लोग गणित नहीं जानते उनके लिये अवश्य यह आश्चर्यजनक होगा।

सतीश चन्द्रका छोटा भाई रमेशचन्द्र पूछ बैठा, "क्यों भैया, मेरे मास्टर साहबने बताया है कि अगर दो बराबर चीज़ोंको बराबर संख्याओंसे गुणा किया जाय तो गुणनफल बराबर होते हैं। है यह ठीक?"

"यह तो प्रत्यक्ष ही है", सतीशचन्द्र ने कहा, "जैसे ३ फुट बराबर होता है १ गज़ के, और ३ दुनी ६ फुट बराबर होता है २ गज़के।"

"अच्छा, पानीका आधा भरा गिलास, पानीके आधे खाली गिलासके बराबर होता है ?"

"अवश्य !"

"तब तो ऊपरके नियमके अनुसार पानीका पूरा भरा गिलास पानीके पूरे खाली गिलासके बराबर हुआ ?"

"ऐसा तो हो ही नहीं सकता। मैंने इस बात पर इस दृष्टिकोणसे तो विचार ही नहीं किया था," सतीशने कहा।

आशा है पाठक इस बात पर स्वयं विचार करेंगे।

गोपेश्वर बोल उठे, "अच्छा रमेश, तुम गिनतीमें बारह हज़ार बारह सौ बारह लिख सकते हो ?" रमेशने लिखनेकी कोशिश तो की, पर लिख न सका। तब गोपेश्वर ने इसे इस प्रकार लिखा : १३२१२।

संगमलाल, जिसके पिता डाक्टर हैं, अब तक यह सब चुपचाप सुन रहा था; बोला, "भाई, मेरा भी एक सवाल है उसे हल कीजिये। मैं अपने पिताजीके लिये अक्सर दवाखानेसे रूई मोल लाया करता हूँ। बड़े बंडलका घेरा १२ इंच होता है। मैं फीतेसे हमेशा घेरा नाप लेता हूँ, जिससे मालूम हो जाय कि बंडलमें पूरी रूई है कि नहीं। परसों दवाखानेमें बड़े बंडल नहीं थे और दूकानदार ने मुझे दो छोटे बंडल दे दिये। प्रत्येकाका घेरा ६ इञ्च था, यद्यपि लम्बाई बड़े बंडलकी तरह ही थी। मैंने सोचा कि रूई तो उतनी ही है और दाम भी उतना ही होना चाहिये, पर दूकानदारका कहना था कि दोनोंमें मिलाकर बड़े बंडलसे अधिक रूई है, और उसने मुझसे कुछ आने अधिक दाम लिया। अब यह बतलाइये कि दोनों बंडलोंमें अधिक रूई थी या बराबर।"

गोपेश्वर नाथ हँसकर बोले, "धोखा खा गये !"

"क्या दोनोंमें बड़े बंडलके बराबर ही रूई थी ?" रमेश बात काट कर बोल उठा।

"जी नहीं ! तुम दोनोंकी बात गलत है, संगमलाल बुरी तरह ठगे गये। जितनी रूई बड़े बंडलमें होती है संगमको उसका केवल आधा ही मिला। इसलिये उसे आधा ही मूल्य देना चाहिये था। उलटा उसने अधिक दे डाला।"

सचमुच संगमलाल बुरी तरहसे ठगा गया। एक ऐसे वृत्तका क्षेत्रफल जिसकी परिधि एक दूसरे वृत्तकी परिधिकी आधी है, दूसरे वृत्तके क्षेत्रफलका केवल चौथाई होता है। इसलिये दोनों छोटे बंडलोंमें कुल मिला कर एक बड़े बंडल की आधी ही रूई थी।

—चंद्रिका प्रसाद

वायुयान गिरानेवाली तोपोंके लिये नई गाड़ी

यह मोटर गाड़ी तीन मशीन गनों तथा एक तोपको लेकर १०० मील प्रति घंटेकी गतिसे चल सकती है। यह मोटर फ़ौलादकी मोटी चादरसे ढकी रहती है। इस चादरको काफ़ी बड़ी गोली भी पार नहीं कर सकती। ४५° का कोण बनानेवाली ढलवीं सड़क पर भी यह चढ़ सकती है; रेते, कीच तथा टूटी-फूटी, ऊबड़-खाबड़ भूमिमें भी यह चल सकती है। एक बार तेल भर कर २२५ मील तक इसमें तेल भरनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती।

इस पर लगी तोप ३·७ सेण्टीमीटर व्यासकी होती है तथा मशीनकी सहायतासे प्रति मिनट १२० गोली छोड़ती है। इसकी सहायतासे वायुयानोंका भय दूर करनेमें पर्याप्त सहायता मिली है।

समुद्री दानव

लगभग सभी समुद्रोंमें एक ऐसा जानवर पाया जाता है जिसके सिर पर आठ पाँव होते हैं और दो रस्सीनुमा मूंछे भी होती हैं। इसकी शक्ल बहुत भयानक होती है और देखकर मनुष्य डर जाता है। यह २-४ इंचसे लेकर बीस फुट तककी परिधिका होता है, और आगेकी ओर न चल कर पीछेकी ओर तैरता है। इसके पाँव बलवान और लचीले होते हैं और इन्हींकी सहायतासे वह अपना शिकार पकड़ता है। अपने लम्बे पैरोंसे यह कई आदमियोंको एक साथ पकड़ सकता है और समूचा निगल सकता है। इसके शरीरसे कस्तूरी-जैसी सुगन्ध निकलती है।

लौकी

लौकी फरवरीसे लेकर जूलाई तक और फिर सितम्बर-नवम्बर में बोई जा सकती है। यह एक लता है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। उत्तरीय भारतवर्षमें प्रायः सब जगह लौकी होती है। लौकीका फल छोटा-बड़ा कई आकार और प्रकारका होता है। कच्चा रहने पर फल हल्के हरे रंगका होता है। फलका आकार भी कई तरहका होता है, परन्तु दो तरहकी लौकी देखनेमें आती है। एक तो वह जो हाथ-डेढ़ हाथ लम्बी और छः सात इञ्च मोटी होती है और दूसरी वह जो अधिक नाटी और मोटी होती है। लौकी कभी-कभी दो हाथसे भी अधिक लम्बी होती है।

किसी भी जातिकी लौकी हो, सबके बोने और सेवा करनेकी रीति एक ही है। किसी भी जमीनमें लौकी उगाई जा सकती हैं, परन्तु यदि ज़मीनमें खाद खूब दी गई हो तो अच्छा है। बीज क्यारियोंमें बोया जा सकता है और जब पौधेसे दो-तीन नवीन पत्तियाँ निकल आवें तब उनको पाँच-पाँच छः-छः फुटकी दूरीपर लगाया जा सकता है। परन्तु अक्सर लौकी उसी स्थानमें बोई जाती है जहाँ उसे अन्तमें रखना होता है। प्रत्येक स्थानमें चार-पाँच बीज बोया जाय तो अच्छा हो। पौधोंके उगनेके बाद सबसे मज़बूत पौधेको छोड़ कर बाकीको निकाल देना चाहिये।

गर्मीमें बोई गई लौकीको पानी देना चाहिये। ऐसी लौकीके पौधेको ज़मीनमें फैलने दिया जाता है। परन्तु बरसातमें बोई गई लौकीको फैलनेके लिये लकड़ी गाड़नेकी आवश्यकता पड़ती है। अक्सर इसे झोपड़ी या मकानके पास ही बोते हैं और छप्पर या दीवाल पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार अच्छे फल लगते हैं। पहाड़ों पर लौकी आरम्भ अप्रैलसे मईके अन्त तक बोई जा सकती है।

नेनुआ (तरोई)

बोनेका समय मध्य फरवरीसे मध्य जूलाई तक। नेनुआ, तरोई और सतपुतिया प्रायः एक ही जातिकी वस्तुएँ हैं। फलोंका बाहरी आकार अवश्य विभिन्न होता है परन्तु अन्य बातोंमें वे एक दूसरेसे बहुत मिलते जुलते हैं। ये सब फल लतासे उत्पन्न होते हैं और इनकी तरकारी बनती है। सतपुतियाका फल सबसे छोटा होता है, नेनुआका फल चिकना होता है और तरोईके फलमें उभरी हुई धारियाँ होती हैं।

ये पौधे प्रायः सभी तरहकी ज़मीनमें पैदा किये जा सकते हैं, परन्तु यदि इन पौधोंकी सेवा अच्छी हो तो फल अधिक लगेंगे और वे अधिक स्वादिष्ट भी होंगे। गर्मीके दिनोंमें पौधा तीन-तीन फुट पर बोया जाता है और ज़मीन पर फैलने दिया जाता है। बरसातमें पौधोंको पाँच या छः फुटकी दूरी पर पंक्तियोंमें लगाना चाहिये और प्रत्येक पंक्तिमें बीजोंको सात-आठ इञ्च पर लगाना चाहिये। फिर लकड़ियाँ गाड़ देनी चाहिये जिन पर पौधे चढ़ाये जा सकें। गर्मीके दिनोंका पौधा चौथे-पाँचवें दिन सींचना चाहिये, परन्तु बरसातके दिनमें इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ज़मीनको निराई करके साफ रखना चाहिये।

करैला

साधारणतः बोनेका समय मध्य मार्चसे मध्य जूलाई तक है, परन्तु अक्टूबर तक भी इसे बोया जा सकता है। करैला लतासे उत्पन्न होता है जो बहुत पतली होती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक तो वह जो गर्मीके दिनोंमें उत्पन्न होती है और दूसरा वह जो बरसातमें। गर्मीका फल लगभग चार इञ्च लम्बा और गहरे रङ्गका होता है और उसकी ऊपरी सतह बहुत ऊबड़-खाबड़ (दाँतीदार) होती है। बरसाती फलका रङ्ग इतना गहरा नहीं होता और फल नापमें बड़ा भी होता है। अन्य बातोंमें वह गर्मी वाले फलकी ही तरह होता है। करैला बहुत कड़ुआ होता है और लोग इसकी कड़ुआहट पसन्द भी करते हैं। करैला किसी भी ज़मीनमें हो सकता है और
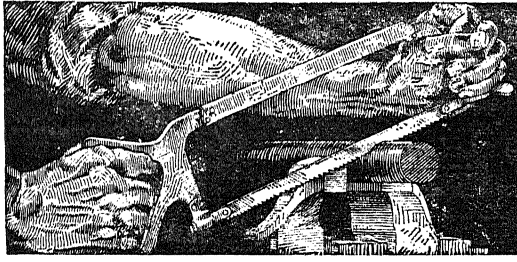
[शेष पृष्ठ २३२ पर]

आधुनिक फैशनकी छोटी मेज़

आधुनिक फैशनकीकी यह छोटी-सी मेज़ सागवान, शीशम या अन्य किसी अच्छी लकड़ीकी बनने पर और बढ़िया पालिश कर देनेपर अत्यन्त सुन्दर लगती है। इसका बनाना भी सरल है। चित्रोंसे सब बातें आप ही समझमें आ जायँगी। एक चित्रमें इंचोंका पैमाना भी दिया है। इसलिये सब ब्योरोंकी नाप देनेकी आवश्यकता नहीं है और न विशेष वर्णनकी।

मेज़की कुल ऊँचाई २१ इंच है। पेंदा १४ इंच × १४ इंचका है और सिरा २० इंच × २० इंचका। पेंदेकी बारी १४ इंच लम्बी, १½ इंच × ⅞ इंच नापकी, चार लकड़ियों-से बनायी जाती है। कोने तिरछे काटे जाते हैं और मज़बूती-के लिये प्रत्येक कोनेपर लकड़ीका चौकोर टुकड़ा सरेससे चिपका और कील या पेंचसे जड़ दिया जाता है। चारों कोनों पर तल्ले भी लगाये जाते हैं जिससे पेंदी ज़मीनसे ज़रा उठी रहती है।
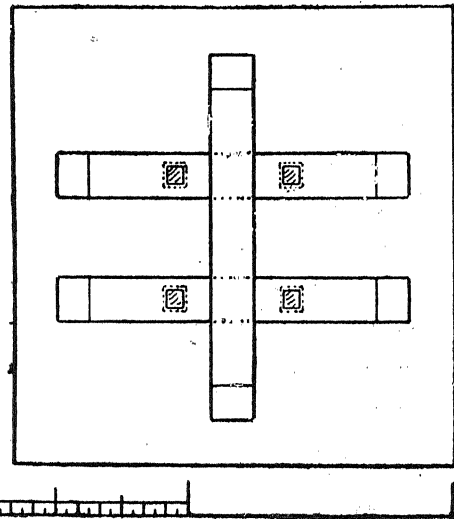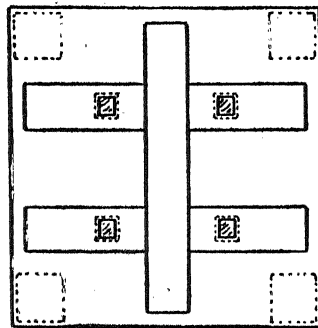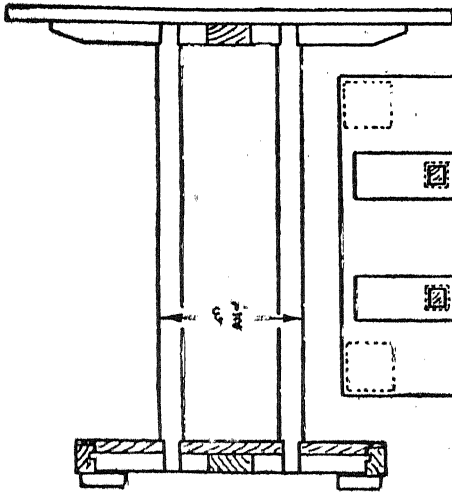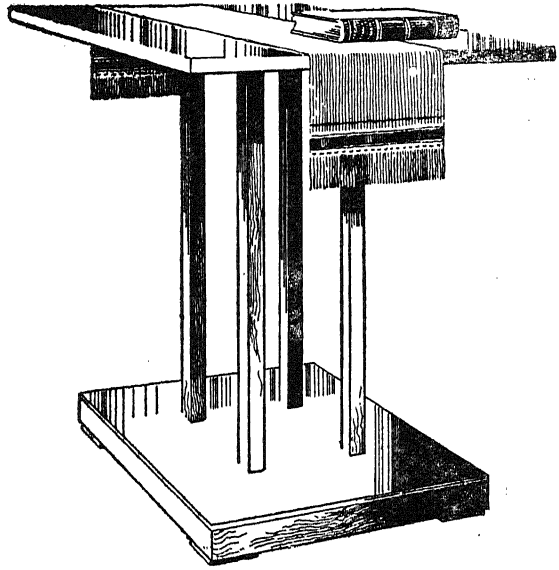
मेज़की टाँगे १½ इञ्च × १½ इञ्चकी हैं, और उनके बीच इतनी जगह रहती है कि बाहरी कोरसे बाहरी कोर तक ६½ इञ्चकी दूरी रहे। मेज़ बनाते समय पायोंको टिकानेके लिए उन पर लकड़ीकी पट्टियाँ छोटी कीलोंसे जड़ दी जाती हैं। पीछे ये लकड़ियाँ उखाड़ दी जाती हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो इन पायोंके सच्चा फिट करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी।

माथा या तो दस-दस इञ्च चौड़े पल्लोंको जोड़ कर बनाया जाय या ½"मोटी प्लाइवुड हो। यदि प्लाइवुडका इस्तेमाल किया जाय तो चारों किनारों पर अच्छी लकड़ीकी पट्टी जड़ देनी चाहिये जिसमें प्लाइवुडके परतोंकी संधियाँ छिप जायँ।
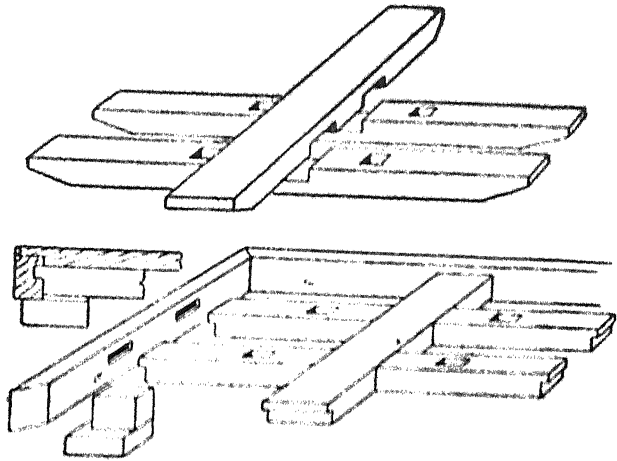
बाग़बानी

[शेष पृष्ठ२३० का]

इसके लिये विशेष अधिक खादकी आवश्यकता नहीं होती। नेनुआकी तरह इसके लिये भी बरसातमें लकड़ियाँ गाड़ देनेकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु गर्मीके दिनमें लता ज़मीन पर फैलने दिया जा सकता है।

केवाँच या कौंच

बोनेका समय मध्य अप्रैलसे मध्य जून तक। यह सेमकी तरह एक फली है और लतामें पैदा होती है। फलियाँ गुच्छेके रूपमें लटकती हैं और लगभग छः इञ्च लम्बी होती हैं। इसका ऊपरी छिलका गहरे हरे रङ्गका होता है जिसमें काले रङ्गकी पुट रहती है। इस पर रोवें होते हैं। इनको खुरच कर छुड़ा देनेसे फलकी त्वचा चिकनी दिखलाई पड़ती है।

किसी भी अच्छी ज़मीनमें पाँच-पाँच या छः-छः फुट की दूरी पर बनी पंक्तियोंमें बोयी जा सकती है। प्रत्येक पंक्तिमें बीज छः इञ्च पर रहे। पौधोंको चढ़नेके लिये लकड़ियाँ गाड़ देनी चाहिये। जब तक बरसातका पानी न पड़े तब तक लगभग प्रत्येक सप्ताहमें इसकी सिंचाई करनी चाहिये। बरसातके आरम्भ हो जाने पर विशेष सेवाकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु ज़मीनसे जंगली घास आदि को निखकर निकाल देना चाहिये। फल मध्य सितम्बरसे लेकर नवम्बरके अन्त तक तैयार होता है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।